'सिद्धान्त' की व्याख्या करते हुए भी आचार्य ने कहा है। "परीक्षकैर्बहुविध परीक्ष्य परीक्ष्य हेतुभिश्च साधयित्वा कृतो निर्णय सिद्धान्त ।" "तथा परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति" इत्यादि। अत समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार उपयोगी साहित्य का निर्माण उक्त कसौटी पर कसकर करना नितान्त आवश्यक है। आयुर्वेद का औषधि विज्ञान न केवल भारतीयों के लिए ही अपितु समस्त भूमण्डल के वैज्ञानिकों के लिए सम्प्रति आकर्षण का केन्द्र बन गया है। देश की प्राकृतिक सम्पत्ति का अधिकाधिक उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जाय एतदर्थ सभी गवेषकों की टकटकी लगी है। ऐसी परिस्थिति मे आवश्यक है कि औषध विज्ञान का साहित्य भी इतना सम्पन्न हो कि गवेषकों को उसमे पर्याप्त सामग्री कार्य सिद्धि के लिए प्राप्य हो सके। आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी जी का प्रयास इस दिशा मे स्तुत्य है।

यद्यपि कालचक्रवश तथा राजनैतिक कारणों से गत अनेक शताब्दियाँ आयुर्वेद की वैज्ञानिक विचार धारा मे अवरोध उत्पन्न करती रही है तथापि इसका प्रवाह अब तक रुक नही सका है। आयुर्वेद का आदर्श

"एव भूयश्च वृत्तसौष्ठवमनसूयता परेभ्योऽप्यागमयितव्यम्।
परस्यापि अभ्युपदिशतो वचोयशस्यमायुष्यञ्च श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्च।'

सदा अक्षुण्ण रहा है। नवनवोन्मेष शालिता, गुण ग्राहिता एव तत्व परीक्षण मे आयुर्वेद कभी पीछे नही रहा है। आत्रेय काल से प्रारम्भ कर आधुनिक काल तक जितने भी विचारक और लेखक हुए हैं सबो ने तत्कालीन विचारो का स्वागत किया है तथा उनसे अपने साहित्य का कलेवर सुधारा है। शाश्वत विज्ञान की सुदृढ शिला पर प्रतिष्ठित आयुर्वेद का गगनदीप काल की कराल थपेडो को सहते हुए आज भी नील नभो मण्डल मे जगमगा रहा है। बृहत्त्रयी, लघुत्रयी, रसरत्नसमुच्चय, आयुर्वेद विज्ञान, सिद्धान्त निदान, आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान आदि मे अन्तर्निहित विकासक्रम की जो रूपरेखा है वह स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसी प्रकार औषध विज्ञान के क्षेत्र मे भी वैदिक काल से लेकर अब तक सहिता ग्रथो मे तथा निघण्टुओ मे (कैयदेव निघण्टु, धन्वन्तरी निघण्टु, राज निघण्टु, मदनपाल निघण्टु, भावप्रकाश निघण्टु, राजवल्लभ निघण्टु, निघण्टु सग्रह, निघण्टु रत्नाकर, शालिग्राम निघण्टु, आदर्श निघण्टु तथा द्रव्यगुण विज्ञान प्रभृति मे) वैज्ञानिक विचार धारा अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। फिर भी यह तथ्य स्पष्ट रूपेण अनुभव मे आता है कि मध्यावधि मे भारतीयो की आत्मसातकरण की शक्ति कुछ क्षीण हो गई थी जिससे सामयिक वैज्ञानिक देन को वे आत्मसात नही कर पाये।

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान या औषध विज्ञान की दिशा मे दिवगत आचार्य प्रवर श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य कृत 'द्रव्यगुण विज्ञानम्' आधुनिक युग

की सर्व प्रथम देन है । वर्तमान काल मे आयुर्वेद की देहली पर उन्होने द्रव्यगुण का जो दीप सजाया है उसे दृष्टि मे ओझल नही किया जा सकता। आचार्य प्रियव्रत शर्माजी ने तथा अन्य लेखको ने उनके पथ का अनुसरण कर जो इस दिशा मे प्रयास कर औषध विज्ञान के साहित्य को समृद्ध किया है वे सभी धन्य-वादार्ह हैं । परन्तु इससे यह सन्तोष कर लेना कि औषध विज्ञान का कार्य अविकल रूपेण नि.शेष सम्पन्न हो गया, यह उचित नही । यह मानना पडेगा कि अभी बहुत कुछ शेष रह गया है और उसे पूरा करना है । वैज्ञानिक पर-म्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए तथा उसे समृद्ध करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न दृष्टिकोणो मे उपलब्ध साहित्य का (औषध विज्ञान के साहित्य का) आलोचनात्मक अध्ययन किया जाय और स्वाध्याय के आधार पर आवश्यक एव उपयोगी साहित्य का सकलन कर उसे सरल सुबोध तथा व्यावहारिक बनाया जाय ।

वैदिक वाङ्मय मे ही विश्व के सभी द्रव्यो को 'साशन' और 'अनशन' दो विभागो मे विभक्त कर दर्शाया गया है जैसे—"ततो विश्वङ् व्याक्रामत साशनानशने अभि" (पुरुष सूक्त म ४) अर्थात् विश्व के द्रव्य 'साशन' तथा 'अनशन' दो रूपो मे अभिव्यक्त हुए । इस साशन तथा अनशन द्रव्यो को पर-वर्ती साहित्य मे सजीव, सेन्द्रिय तथा चेतन और निर्जीव, निरिन्द्रिय तथा अचेतन सज्ञा दी गई, पुन चेतन द्रव्यो के उपविभागो का भी वर्णन उपलब्ध होता है, जैसे 'अन्त. सज्ञा' और 'बहिरन्त सज्ञा' आदि । इसी प्रकार अचेतन द्रव्यो के भी उपविभागो का वर्णन उपलब्ध होता है । स्थावर तथा जङ्गम, भेद से भी द्रव्यो का वर्गीकरण प्राप्त होता है । द्रव्यगुण विज्ञान नामक पुस्तको मे इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है । यह पहले कहा जा चुका है कि इन सब वर्णनो युक्त साहित्य के उपलब्ध होने पर भी औषध विज्ञान के अनेक अशो का वर्णन अब भी शेष है ।

प्रस्तुत पुस्तक मे इन अभावो की पूर्ति करने का यथा सभव प्रयास किया गया है । इसके परिचय के लिए थोडा पुस्तकगत विषयो की झाँकी करना आवश्यक है । सम्पूर्ण औषधि विज्ञान शास्त्र को अधोलिखित चार भागो मे विभक्त कर लिखा गया है—

१. **प्रारम्भिक औषधि शास्त्र विवरण**—इस भाग मे निघण्टु तथा द्रव्यगुण शास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देकर निघण्टु तथा द्रव्यगुण शास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध को सप्रमाण समझाया गया है । आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त तथा द्रव्य-गुण शास्त्र का सक्षिप्त परिचय विभिन्न युगो मे विभक्त कर दिया गया है । परिचयानतर द्रव्यगुण शास्त्र के व्यापक क्षेत्र का दिग्दर्शन करा कर उद्भिज्ज द्रव्यो का प्राणि विज्ञान के साथ सम्बन्ध दर्शाया गया है। साथ ही स्थावर सृष्टि का भी सकेत कर आयुर्वेदानुसार द्रव्य के स्वरूप का निरूपण किया गया है ।

भूमि विज्ञान तथा देश विज्ञान का वर्णन कर औषध द्रव्यो की खेती पर प्रकाश डाला गया है। यह अश उपलब्ध द्रव्यगुण विज्ञान के ग्रन्थो मे प्राप्त नही होता है। द्रव्य गुण कर्मादि के समुचित ज्ञान के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है। भारतीय प्राचीन उपलब्ध साहित्य मे इसका सकेत मात्र मिलता है। आधुनिक विज्ञान मे इस पर प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है। इस विशिष्ट विज्ञान को 'इकोलोजी' कहते है। औषध व्यवहार के लिए औषधि मात्रा का ज्ञान परमावश्यक है। अत मात्रा निर्धारण के मूल सिद्धान्तो के साथ साथ वयोबल तथा काल के अनुसार मात्रा का विस्तृत वर्णन इस मे किया गया है। मात्रा वर्णन के पश्चात् व्यवहारिक उद्भिज्ज शास्त्र का वर्णन कर औषध विज्ञान के पृष्ठभूमि को सुदृढ किया गया है। आयुर्वेद के सहिता ग्रन्थो मे एकान्त हित द्रव्य, हित द्रव्य तथा आहित द्रव्यो का वर्गीकरण उपलब्ध होता है। इस भाग मे इनका सकारण वर्णन किया गया है। आयुर्वेद के उपलब्ध सहिता ग्रन्थ सूत्रकालीन होने से औषधो के नामकरण मे अनेक रहस्य उपलब्ध होते है। अत औषधो के नामकरण की मूलधारणा का वर्णन कर यह स्पष्ट किया गया है कि अमुक सज्ञा या नाम गुणवाची, कर्मवाची, आकृतिवाची, उत्पत्तिस्थान वाची, तथा वर्णवाची इत्यादि है। आधुनिक विज्ञान मे औषधो के परिचयार्थ उनके स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का अध्ययन कर एक स्वतत्र शास्त्र का ही विभाग उपलब्ध होता है, जिसको 'फार्माकाग्नोसी' कहते हैं। यह ज्ञान आयुर्वेदोक्त विविध औषधो के नाम (सज्ञा) से ही प्राप्त हो जाते हैं। इसके बाद औषधियो के प्रतिनिधि सग्रह काल तथा सरक्षण विधि का वर्णन किया गया। द्रव्यो के गुण कर्मो का क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ, इसका वर्णन कर औषध कल्पो के क्रमिक विकास का वर्णन किया गया है। इस प्रकार औषध विज्ञान शास्त्र के प्रथम भाग को पूरा किया गया है।

२ **सैद्धान्तिक विवरण**--इसमे सर्व प्रथम रस--विज्ञानीय वर्णन है। 'रस' शब्द की निरुक्ति तथा परिभाषा के अनन्तर उसके भेद--प्रभेदो का विस्तृत वर्णन किया गया है। रसो के पाञ्च भौतिक सगठन तथा उनके दोषो पर प्रभाव का भी युक्तियुक्त वर्णन किया गया है। उद्भिज्जो के जीवन चक्र का वर्णन कर रसोत्पत्ति का सकारण उल्लेख है। षड्रसो के ज्ञान का क्रम सुबोध करने के लिए विभिन्न रसो के सर्वाङ्गिक लक्षण, ऐन्द्रियक गम्य तथा गुणानुवाचि लक्षणो की तालिका दी गई है। 'षड्रस' ही क्यो ? इसकी युक्ति युक्त व्याख्या कर मतभेदो को उद्धृत कर तथा उनका निराकरण कर बतलाया गया है। रसाभिव्यक्ति मे सहायक वस्तुओ का उल्लेख कर व्यक्त तथा अव्यक्त रस एव पञ्चमहाभूतो से रसोत्पत्ति का सकारण वर्णन किया गया है। पुन रस की प्रधानता की युक्तियुक्त व्याख्या कर विपाक काल मे परिणत रसो का सोपपत्तिक वर्णन हुआ है। जिह्वा के अतिरिक्त रस-ज्ञान अन्य किस इन्द्रिय या साधन से समव

है इसका भी विशद वर्णन किया गया है। विद्यार्थियों को किस प्रकार रस का ज्ञान प्रायोगिक पद्धति से हो सकता है इसका भी सोदाहरण वर्णन किया गया है। रसो के वर्णन के बाद गुणो का क्रमिक विकास बतलाया गया है। गुणो के भेदोपभेद बतला कर द्रव्यो मे गुण परिज्ञान किस प्रकार करना चाहिए इसका विस्तृत वर्णन किया गया हैं। अन्यान्य भौतिक गुणो का उल्लेख कर उनके परिचायक साधनो का भी सोदाहरण वर्णन किया गया है। गुणज्ञान की आयुर्वेद मे क्या उपादेयता है इसको सोदाहरण समझाया गया हैं। प्रत्येक गुण का निरूपण पृथक् पृथक् कर उनके सामान्य तथा विशेष स्वरूपो का विस्तृत वर्णन किया गया है। गुण वर्णन के अनन्तर वीर्य विज्ञान का वर्णन है। वीर्य की परिभाषा बतलाकर द्विविध वीर्य, अष्टविध वीर्य आदि का वर्णन सोदाहरण तथा युक्तिपूर्वक किया गया है। वीर्य सम्बन्धी विभिन्न मतो का उल्लेख कर उन के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। इसके बाद 'विपाक विज्ञान' का वर्णन किया गया है। विपाक की परिभाषा बतलाकर उनके प्रकारो का वर्णन किया गया है। इस (विपाक) प्रक्रिया को अधिक सुबोध बनाने के लिए यह स्पष्ट किया गया है कि रसो का (नानाविधि रसयुक्त द्रव्यो का) शरीर के विभिन्न स्थानो (पाचक स्थानो) पर किस प्रकार विपाक द्वारा परिणमन (रसन्तर) होता है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि जठराग्नि, भूताग्नि तथा धात्वग्निया किस प्रकार पाकप्रक्रिया द्वारा रसो मे परिवर्तन उत्पन्न कर आहार द्रव्य को शारीर धातुओ के ग्रहण योग्य बनाती हैं। विषय को पूर्ण सुबोध बनाने के लिए आहार द्रव्यो के घटको का उभय मत से (आयुर्वेदीय तथा आधुनिक) उल्लेख कर पाचक रसो के प्रक्रियाजन्य परिणामो का फार्मूला (संकेत सूत्र) भी दिया गया है। इस प्रकार शरीरान्तर्गत होने वाले जीव रसायनिक कर्मों (Biochemical activities) का विस्तृत वर्णन किया गया है। विपाक वर्णन के पश्चात् प्रभाव का वर्णन किया गया है।

प्रभाव आयुर्वेद का विशिष्ट पारिभाषिक पद है। इसको अचिन्त्य वीर्य भी कहा है। आचार्य द्विवेदी जी ने प्रभाव सम्बन्धी अशेष साहित्य का संकलन कर उसकी विशद व्याख्या पाठको के सम्मुख उपस्थित करने का सफल प्रयास किया है। सोदाहरण प्रभाव का वर्णन कर इस भाग का संवरण किया गया है।

३ **सामान्य परिभाषा तथा विशिष्ट परिभाषा**—आयुर्वेद वाङ्मय मे विशेष कर औषधि विज्ञान के क्षेत्र मे ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्दो का उल्लेख प्राप्त होता है जिनका ज्ञान परिभाषा के विना प्राय संभव नही। इसके अतिरिक्त अनेक अनुक्त, लेशोक्त तथा गूढार्थ पदो का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिनके लिए परिभाषा की आवश्यकता होती है। आचार्य द्विवेदी जी ने सर्व प्रथम सामान्य तथा विशेष पारिभाषिक पदो की एक लम्बी सूची दे दी हैं। इस सूची के अन्तर्गत यावतीय औषध विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक पद

है उनका सकलन सविभाजन किया गया है। पुन कर्म परिभाषा- व्याकरणीय स्कन्ध के अन्दर कर्म सम्बन्धी सज्ञाओं की सोदाहरण विस्तृत व्याख्या की गई है। वृहत्त्रयी तथा निघण्टुओं मे ऐसी सज्ञायें (कर्मवाची सज्ञाये) दो सहस्र से भी अधिक प्राप्त होती है। इन सज्ञाओं का सम्बन्ध प्राय दोष, धातु तथा मलों मे है। अत दोष सम्बन्धी, धातु सम्बन्धी तथा मल सम्बन्धी कर्मवाची सज्ञाओं का पृथक् पृथक् वर्ग बनाकर इस भाग मे सोदाहरण वर्णन किया गया है। इसी प्रकार उपधातु तथा उपमल सम्बन्धी सज्ञाओं का भी सोदाहरण वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त गुण-कर्म सम्बन्धी सज्ञाओं तथा प्रति कर्म सम्बन्धी सज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है। पश्चात् परिभाषा सूची देकर परिभाषा प्रकरण के अन्तर्गत शरीर के विविध अवयवों पर कार्य करने वाली कर्मवाची सज्ञाओं या तथा रोग पर प्रभाव डालनेवाली सज्ञाओं का वर्णन कर इस भाग को पूर्ण किया गया है। रसायन तथा वाजीकरण की भी विस्तृत व्याख्या इस भाग मे की गई है।

४ **कर्म विज्ञान**—इस भाग मे औषधि प्रयोग विज्ञान अर्थात् औषधिया किस प्रकार किन किन मार्गो मे शरीर के विविध अवयवों पर कार्य करती हैं तथा उनका शरीर मे निर्गमन किस प्रकार होता है इनका वर्णन किया गया है। कर्म विज्ञानीय विभाग के अन्तर्गत विभिन्न रसो, गुणो तथा कर्मों का किन किन शारीर धातुओं पर किस प्रकार और क्या प्रभाव होता है इसका विस्तृत विवरण किया गया है। सशोधन विज्ञानीय विभाग के अन्तर्गत ऊर्ध्वाध: सशोधन की विस्तृत व्याख्या कर वामक तथा विरेचक एव शिरो विरेचनद्रव्यो का वर्गीकरण कर उनपर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। शरीर के विभिन्न सस्थानो पर औषध द्रव्यों का प्रभाव किस प्रकार होता है, इसका विस्तृत विवरण सप्रमाण सयुक्तिक तथा सोदाहरण किया गया है। सस्थानो पर, अधिष्ठानो पर तथा अवयवो पर द्रव्य प्रभाव के अनुसार औषध वर्गो की तालिका बनाकर उनकी विस्तृत व्याख्या की गई है। शोधन औषधियो मे वामक-विरेचक तथा शिरोविरेचक औषधिया किस प्रकार शरीर के विभिन्न अवयवो पर प्रभाव डालकर शोधन कर्म करती हैं इसका सकारण विस्तृत वर्णन कर यह दर्शाया गया है कि इनके अयोग, अतियोग तथा मिथ्यायोग का क्या परिणाम होता है तथा सम्यग् योग मे क्या लाभ होता है। पश्चात् इनके गणो का वर्णन किया गया है। इनके बाद वात सशमन-वेदना स्थापन-वात निग्रहण- इन पारिभाषिक पदो की व्याख्या तथा इन वर्गो की औषधियो के गुण कर्मों का सोदाहरण वर्णन किया गया है। इसी प्रकार पित्त सशमन-दाह प्रशमन-मादक द्रव्य-स्वेदल या स्वेदन द्रव्य-दीपन-पाचन द्रव्य प्रभृति की व्याख्या तथा इन वर्गो के औषध द्रव्यो के गुण कर्मो का सोदाहरण वर्णन किया गया है। तदनन्तर श्लेष्म-प्रशमन श्लेष्म निष्कासन प्रभृति द्रव्यो की व्याख्यासहित सोदाहरण वर्णन किया गया है।

आचार्य प. विश्वनाथ द्विवेदी की लेखनी द्वारा आयुर्वेद का साहित्य प्रचुर रूप मे समृद्ध हुआ है। इनसे तथा इनकी रचनाओं से आयुर्वेद जगत पूर्ण परिचित है। भारतवर्ष का एक मात्र आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र के द्रव्यगुण विभाग के अध्यक्ष पद पर रह कर जो औषध विज्ञान सम्बन्धी खोज उन्होने की है तथा जिस प्रकार केन्द्र के द्रव्यगुण विभाग को समृद्ध किया है वह सर्व विदित ही नही अपितु सर्व स्तुत्य है। इनके तत्वावधान तथा निर्देशन मे द्रव्यगुण सम्बन्धी साहित्य का इतना सकलन हुआ है तथा द्रव्यगुण के विषयो पर इतने प्रबन्ध लिखे हुए है कि वह आयुर्वेद के इस विषय का अजस्र स्रोत बन गया है। **'औषधि विज्ञान शास्त्र'** नामक उनकी यह कृति उनके गम्भीर गवेषणा सतत स्वाध्याय-शीलता तथा अनवरत परिश्रम का पुष्ट प्रमाण है।

इस भूमिका मे मैने "औषधि विज्ञान शास्त्र" का परिचय देने का थोडा प्रयास किया हे तथापि पुस्तक के अध्ययन से ही इसमे प्रतिपादित अमूल्य एव विस्तृत ज्ञानराशि का ज्ञान सभव है। मै आशा ही नही पूर्ण विश्वास करता हू कि अध्यापक तथा अध्ययनार्थी इसके स्वाध्याय से पूर्ण लाभान्वित होगे और औषधि विज्ञान सम्बन्धी सकल एव सफल भाण्डार को प्राप्त कर आयुर्वेदीय चिकित्सा को सर्व सुलभ बनायेगे। मै आचार्य द्विवेजी के इस प्रयास की पूरी पूरी प्रशसा करता हू और आशा करता हू कि द्विवेदी जी की लेखनी से आयुर्वेद का साहित्य सदा सम्पन्न होता रहेगा।

"भिजसां साधुवृत्तानां, भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं, भद्र भद्राभिलाषिणाम्॥" इति शम्॥

—रामरक्ष पाठक

भूमिका-लेखक

आयुर्वेद बृहस्पति **वैद्य रामरक्ष पाठक**, आयुर्वेदाचार्य
जी. ए एम एस. (पटना), एफ. ए आई एम (मद्रास)
भू पू डायरेक्टर–भण्डारनायक मेमोरियल आयुर्वेदिक रिसर्च एण्ड पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीट्यूट, नावित्र, श्रीलका
भूतपूर्व डायरेक्टर–केन्द्रीय आयुर्वेदान्वेषण सस्था, जामनगर
भूतपूर्व प्रिंसिपल–गुरुकुल काँगडी आयुर्वेद महाविद्यालय
तथा—श्री अ शि. आयुर्वेदिक कालेज, बेगूसराय
"त्रिदोष तत्त्व विमर्श" तथा **"पदार्थ विज्ञान"**
आदि ग्रंथों के प्रणेता

प्रस्तावना

आज पाठको के समक्ष औषधि विज्ञान शास्त्र को रख कर अतीव हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ क्योकि इस विज्ञान पर आयुर्वेद मे कोई भी ग्रथ आज तक लिखने का किसी ने प्रयत्न नही किया है। आयुर्वेद के विशालतम इस विषय का अछूता रह जाना आश्चर्यजनक है।

कुछ लेखको ने द्रव्य गुण विज्ञान का सकलन व द्रव्य परिचय का विचार आधुनिक-लेखको के विचार को देख कर, कभी-कभी उत्साहित हो शार्ङ्गधर की परिभाषा तक लिख कर छोड दिया है किन्तु सक्षिप्त आधुनिक विचार ही कही कही देखने को मिलते है। इस विषय का नाम मात्र का उल्लेख द्रव्य गुण विज्ञान मे जो कि आचार्य यादवजी और अन्य लेखको ने लिखा है वह वनौषधि परिचय मात्र तक सीमित रहा है। यद्यपि इन ग्रथो ने अपना अच्छा प्रभाव आयुर्वेदज्ञो पर डाला है तथापि औषधि परिचय व गुण मात्र का उल्लेख ही सब कुछ नही है। अत. जब से मै स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर मे आया हमारी धारणा यह हुई कि इस अछूते विषय को लिखा जाय। हमने कई वर्ष तक इस विषय के साहित्य का सग्रह किया और अब उनका विचार इस रूप मे आ चुका है कि अपने विचार को सबके सामने रख सकूँ।

चरक सुश्रुत और वाग्भट्ट ने औषधियो के कार्यकर सज्ञाओ को लिखते हुए १८०० सौ सज्ञाये लिखी हैं। जिनका हम श्रेणी विभाजन करे तो सैकडो की सख्या मे कार्मुक सज्ञाये बनती हैं। इन कार्मुक सज्ञाओ की परिभाषा उनके द्रव्य और उनकी शरीर पर क्रिया विधि का सग्रह जो शास्त्र मे है वह सग्रह किया है और जो नही है वह हमने निर्माण की है।

पाठको को जान कर आश्चर्य होगा कि इस प्रकार की सज्ञायें है जिनका आज तक आधुनिक फारमेंकोलोजी मे प्रति शब्द तक नही है। दोष सबधी विचार तो आधुनिक विज्ञान मे माना नही जाता परन्तु जो माना जाता है उस मे भी इस प्रकार के शब्द नहीं है जिनका इसमे वर्णन आता है। उदाहरण के रूप मे कुछ हम विचार सज्ञा सबध की रखते है।

यथा. रक्त पर कार्य करने वाली औषधियो का वर्गीकरण आयुर्वेद मे निम्न है। रक्त पर कई सज्ञाये है। १. रक्त प्रसादन, २ रक्त नाशन, ३ रक्त जनन, ४. रुधिरोप शोपण, ५ रक्त शोधन, ६ रक्त कोपन, ७ रक्त दूषण, ८ शोणित सधान कर, ९. रक्त सघात भेदन, १० रक्तावसेक जनन, ११ रक्त सग्रहण, १२ रक्त स्थापन, १३. असृक दोषघ्न आदि।

जो लोग इस विषय के जानकार है उन्हे मालूम है कि रक्त सघात भेदन, रक्तशोधन, रक्त दूषण यह सज्ञाये आधुनिक शास्त्र मे है ही नही।

वात सबधी सज्ञाओ मे, वात प्रशमन, २ वात निग्रहण, ३ वात प्रसादन, ४ वातानुलोमन, ५. पूति मारुत कृत, ६. वातावसादक, ७ वेदना स्थापन, ८. निद्रा कर, ९. वातशूलघ्न १० सज्ञाहर, ११ आक्षेपजनन, १२. जीवनीय आदि आदि।

इस प्रकार की सज्ञाये आज जो वैद्य महानुभावो के समक्ष रखा जाय तो वे यही अनुमान लगाते है कि आधुनिक सज्ञाओ को लेकर बनाया गया है एतदर्थ हमने इनका सग्रह नाम निर्देश व स्थान सग्रह के साथ दिया है।

ताकि ये नव्य विचार परायण व्यक्ति समझ सके कि आयुर्वेद का विशाल साहित्य इससे अछूता नही है और उसके ही ये वस्तु है। कई बार चर्चा होने पर लोग बडा आश्चर्य करते हैं।

हमने इनको सामान्य व विशेष रूप मे विभाजन करके श्रेणी बद्ध किया है। इसमे सामान्य से अभिप्राय उन सज्ञाओ से है जिनका उल्लेख सामान्य रूप मे सब के साथ होता है जैसे प्रसादन अवसादन अनुलोमन् हरण, प्रकोपन आदि जो कई एक के साथ जाते है। यथा वात-प्रसादन, पित्त-प्रसादन, श्लेष्म-प्रसादन, रक्त-प्रसादन, मास-प्रसादन, शुक्र-प्रसादन आदि। यह सज्ञायें सबके साथ लगती हैं। अत इनका नाम सामान्य रखा गया है। विशेष वे हैं जो कि विशेष रूप मे ही उल्लिखित होते है। यथा दीपन, पाचन, जीवनीय, रसायन, वाजीकरण, व्यवायी, विकाशी आदि आदि।

फिर इन सज्ञाओ की परिभाषा यदि शास्त्र मे है तो दिया है परिभाषा बद्ध न होने पर उनके प्रयोग व परिभाषा का निर्धारण शास्त्र व कोष के अनुसार लिखा गया है। अथवा टीकाकारो के विचार जो हैं उनका उल्लेख पूर्वक विवरण दिया गया है। कही कही पर सशोधन भी किया है। यदि आधुनिक सज्ञायें मिलती है तो उनको रखा है, नहीं तो उनको आधुनिक नाम नही दिया है। अथवा जिनमे मतभेद है उनका भी उल्लेख नही किया है। यथा रूप मे रख दिया गया है।

परिभाषा के बाद उनके द्रव्य व उनका भौतिक सगठन दिया है और बाद मे उनका कार्य शरीर पर किस प्रकार होता है, यह भी लिखा है। यह विचार

आधुनिक व आयुर्वेद के साहित्य को देखकर किया गया है। इसमे जो है सब आयुर्वेद के अनुकूल ही लिखा है। आयुर्वेद के वे गुण व उनके द्रव्य उनके भौतिक सगठन व उनका तदनुकूल कार्य क्या होता है उल्लेख किया है।

आयुर्वेद के कोटेशन बराबर दिये हैं ताकि कोई अपना विचार सरलता से बना सके। इस प्रयास मे हमने काफी समय लगाया है। इनका उपदेश भी दिया है। और कहते समय अनुभव होने वाली त्रुटि को पुन पूरण किया है। इस प्रकार करने मे भी बहुत सा साहित्य व कार्मुक सज्ञाये रह गयी है जिनका लेखन जारी है।

इस विषय पर चर्चा तो कई ने की है। परिभाषाये प्राय शार्ङ्गधर ने अधिक दी है। अष्टाग सग्रह मे भी कुछ सज्ञाये मिली। परन्तु वह ४० व ५० तक सीमित रही है। फिर टीकाकारो को देखा है जो बाकी बचा है वह हमने आयुर्वेद के कोष व प्रयोग के अनुसार दिया है। इस विषय पर विचार द्रव्य गुण लेखक परिभाषा उल्लेख मे किये है। श्री यादवजी महाराज ने तो जो ठीक समझा वह आयुर्वेद से, जो नही मिला, वामन गणेश देसाई से लिखा है। श्री प्रियव्रत शर्मा ने भी वही परिपाटी चलाई है। कुछ चेष्टा की है कि लिखे। श्री कालेडा बोगला वालो ने तो कई विचार लिखे है परन्तु ऐसा भ्रम उत्पन्न कर डाला है कि आयुर्वेद व डाक्टरी विचार करके आधुनिक विचार ही भर दिये है। इससे भ्रम हो जाता है कि क्या आयुर्वेद मे यह विषय नही है या यह अछूता है। एतदर्थ हमारा सारा प्रयत्न है कि यह विचार आधुनिक मे भी अधिक आयुर्वेद मे है। जो लोग हृदय पर कार्य करने वाली दवाये, वृक्क पर कार्य करने वाली दवाये, गर्भाशय पर कार्य करने वाली दवाये आधुनिक जानकर लिखी हैं उनके लिये हमने दर्पण का कार्य किया है।

फिर हमने इसको चार प्रधान भागो मे विभक्त किया है। चिकित्सा क्रम के अनुसार सुश्रुत ने चार उपक्रम लिखे है। यथा

१ सशोधन, सशमन, आहार व आचार।

इनको पुन चरक व अष्टाग हृदयकार ने सशोधन व सशमन इन दो विभागो मे विभक्त किया है।

उदाहरणार्थ सशोधन के भेद

वमन, विरेचन, वमनोपग, विरेचनोपग, भेदनीय, आस्थापन, आस्थापनोपग, शिरो-विरेचन, शिरो-विरेचनोपग, शुक्र शोधन, रक्त शोधन, स्तन्य-शोधन, मूत्र-विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, दत-शोधन, मुख-शोधन, रूक्षण, स्नेहन, स्वेदन अपतर्पण, शोषण, अपरा-पातन, प्रपीडन आदि आदि।

सशमन मे जीवनीय बृहणीय सधानीय, दीपनीय, पाचनीय, बल्य, वर्ण्य, कण्ठ्य, हृद्य, तृष्णाघ्न, छर्दिनिग्रहण, हिक्का-निग्रहण, शुक्र-जनन, स्तन्य-जनन, ज्वर-हर, श्रम हर आदि सैकडो कर्म है जिनका समावेश इसमे होता है।

आहार व आचार का विशेष विवरण इसमे प्रसग वश ही आया है। नियमित रूप मे नही आया है। क्योकि यह विषय हमारे विचार से आयुर्वेद मे स्वतत्र स्थान रखता है और इस पर अलग ही ग्रथ लिखने का विचार है।

इस प्रकार जितने कर्म है उनका विवरण रखने की चेष्टा की गई है। औषधि कर्म विज्ञान आयुर्वेद की रीढ है बिना इसके जाने कोई भी चिकित्सा सभव नही है। चिकित्सा कर लेना अलग वस्तु है और किस प्रकार औषधि कार्य करती है यह जानना अलग वस्तु है। अत बडे परिश्रम मे यह साहित्य तैयार किया गया है। आयुर्वेद के विद्वानो के हाथ मे देकर प्रसन्नता है कि वे इसकी जाच करके अपने विचार प्रगट करे।

इसके अवशिष्ट भाग फिर सग्रह करके उनका विवरण उपस्थित किया जायगा। आज तो तैयार विषय ही आपके सामने है। आज की विचित्र स्थिति है। प्रकाशक चाहते है कि सारा मैटर थोडे से मे मिल जाय। लेखक जिसने अपने जीवन के अमूल्य काल को इसमे कई वर्ष तक लगाकर लिखा है थोडे पैसे मे देने में हिचकता है। अतः विशिष्ट प्रकार की क्रिया का समादर नही हो पाता। यही नही वस्तु प्रकाश मे आती ही नही।

जो भी हो आज यह वस्तु आपके पास उपस्थित है। जिस भावना व प्रेम से लिखा गया है वह भाव तो लेखक ही जानता है।

कई वर्ष से तैयार वस्तु को प्रकाशित करने की इच्छा थी वह श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रकाशन क्रम से पूर्ण हुई है। पाठक इस पर विचार करे और देखे वह वस्तु कितनी आवश्यक है।

आज आयुर्वेद के विद्यार्थी हडताल करते है क्योकि उनको उचित साहित्य नही मिलता जो कि आयुर्वेद मे उनकी प्रेरणा को कार्यान्वित कर सके। कहा यह जाता है कि छात्र आधुनिकता की तरफ जाते हैं किन्तु उनके आकर्षण का पाठ जब तक आप नही पढाते तब तक वह आपके आयुर्वेद को क्यो मानें। यह आपका कार्य है कि आप भी वैसा ही साहित्य दे जैसा कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे है। नही तो वे उस प्रकार की वस्तु के ग्राहक अवश्य बन जायेंगे और आपका शुद्ध आयुर्वेद रखा रह जायगा। विद्वानो से निवेदन है कि वे इस बात को समझे और आयुर्वेद की त्रुटि को कम करे।

विषय को प्रतिपादन करने व नियमित बनाने के लिये इसको चार विभागो मे वर्णन किया गया है। यथा—

१. प्रथम वह भाग जो कि द्रव्यगुण मे जानने के लिये आवश्यक है।

२. सैद्धान्तिक भाग जो कि रस गुण वीर्य विपाक सबधी है।

३. तीसरा भाग परिभाषा लिखने से पूर्व परिभाषा वाचक शब्द संग्रह व उनका वर्गीकरण तथा प्रत्येक की परिभाषा, उनके द्रव्य व उनका भौतिक संगठन ।
४. प्रत्येक क्रिया का कर्म किस प्रकार होता है वह विस्तार पूर्वक दिया गया है ।

इस प्रकार इस विषय को उपस्थित किया है ।

आवश्यकता—प्रत्येक रोग मे उनकी क्रिया पद्धति का उल्लेख करते समय आचार्यो ने क्रम पद्धति का उल्लेख किया है जैसे ज्वर मे दीपन, पाचन, लघन व विशिष्ठ चिकित्सा । अतिसार मे शोधन, दीपन, पाचन आदि । इसी प्रकार हर रोग मे चरक ने क्रिया क्रम लिखा है । अत यह कर्म किस प्रकार होते है इनका उल्लेख आवश्यक जान पडा है । अत सारा प्रयत्न किया गया है ।

वैद्य श्री प रामनारायण शर्मा, प्रबन्ध निर्देशक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा लि ने इस ग्रन्थ को प्रकाशन करके इस साहित्य को जनता के सामने रखा है, एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं । यदि यह शीघ्रता मे प्रकाशन नही करते तो यह साहित्य पडा ही रहता । आशा है कि यह विषय सबको पसद आयगा ।

बसत पचमी
वा रा ण सी
१०-२-७०

विदुषामनुचर

विद्यनाथ द्विवेदी

आभार प्रदर्शन

इस ग्रथ के लेखन मे हमने जिन–जिन ग्रथो की सहायता ली है वे निम्न-लिखित ग्रथ हैं। यथा :—

१. चरक
२. सुश्रुत
३ वाग्भट्ट
४ अष्टाग सग्रह
५. भेल सहिता
६ चरक की चक्रपाणि टीका
७ सुश्रुत की डल्हण टीका
८ अष्टाग हृदय की अरुणदत्त की टीका
९. काश्यप सहिता
१० धन्वन्तरि निघटु
११ राज निघटु
१२ भाव प्रकाश निघटु
१३ कैयद्देव निघटु
१४. औषधि गुण धर्म विज्ञान
१५. फार्मेकोलोजी घोष
१६ फारमेकोलोजी वाइज
१७ फारमेकोलोजी ट्रिस्ट
१८ मेडिकल फारमेकोलोजी ड्रिल
१९ शार्ङ्गधर व उसकी आढमल्ल की टीका।
२० भैषज्य रत्नावली।
२१ यूनानी द्रव्यगुण– श्री दलजितसिंह
व अन्य आधुनिक फारमेकोलोजी की पुस्तके।

इस पुस्तक के लिखने मे हमे सज्ञा सबधी सग्रह हमारे छात्रो ने बडी मेहनत से की है। बाकी श्रेणी विभाजन, परिभाषा व मौतिक द्रव्य संग्रह व क्रिया–कर्म का विवरण मैंने तैयार किया है। अत उन छात्रो को जिन्होंने मूलभूत सज्ञाओ का सग्रह वृहत्त्रयी से किया था उनका आभार प्रकट करता हूँ।

इसके कई लेक्चर हमारे विभागीय टाइप राइटर श्री गोस्व मी ने टाईप किये है बाकी हमने किया। अत वह भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रथ की भूमिका लिखकर आचार्य श्री रामरक्ष पाठक ने महती कृपा की है एतदर्थ धन्यवाद के पात्र है इनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

विश्वनाथ द्विवेदी

औषधि विज्ञान शास्त्र

संक्षिप्त सूची पत्र

विषय - सूची

भाग २ रा

सैद्धान्तिक विवरण

भाग ३

औषधि शास्त्र का परिभाषा खण्ड

विषय — पृष्ठ

भाग ४

औषधि प्रयोग विज्ञान

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

★★★

भाग १

औषधि विज्ञान शास्त्र

भाग १

प्रारंभिक औषधि शास्त्र विवरण

१. निघंटु व द्रव्यगुण शास्त्र

ऐतिहासिक विवरण :-

वैदिक काल मे ही निघटु शब्द का अर्थ औषधियो के गुण धर्म को बतलाने वाले विज्ञान को समझा जाता था। वेदो के अर्थ को प्रतिपादन करने वाले वैदिक निरुक्त ने निम्न लिखित अर्थ किया है। यथा [1]

ते तु निगमना न्निगन्तव एव संतो निगमनान्निघंटव उच्यन्ते।

वैदिक साहित्य मे मत्रादि के अर्थ को स्पष्ट करने वाले साहित्य को निघटु की सज्ञा दी गई थी। धीरे धीरे यह शब्द आथर्वण सप्रदाय के औषधियो के गुण धर्म विवरण को बतलाने वाला माने जाने लगा और इस विज्ञान का नाम [2] "निघंटु" बन कर इस अर्थ मे रूढ हो गया। अत बाद के औषधि गुण धर्म के विवेचन करने वाले साहित्य सग्रहो को भी निघटु ही कहा जाने लगा। यथा

राजनिघंटु, धन्वन्तरि निघंटु, मदनपालनिघटु आदि।

जहाँ तक ज्ञात होता है बीसवी शताब्दी से पूर्व यही शब्द प्रचलित था। इधर आधुनिक चिकित्सा विज्ञानादि के सम्पर्क मे आकर निघटु का अध्यापन व अध्ययन होने लगा है तब से इसकी नई सज्ञा, द्रव्य गुण शास्त्र का प्रदान किया गया

---

१ ते निगंतव एव संतो निगमनान्निघटव उच्यन्ते। इत्यौपमन्यवः। निरुक्त ५। अतः इत्येवमर्थ निगमयितृत्वान्निगतव एते सम्पन्नाः संतोऽपिपरोक्ष वृत्तिना शब्देन- गकार स्थाने घकार मत्वा तकार स्थाने, टकारं कृत्वा वर्ण व्यापत्यादि लक्षणम्।

२ तमिमंसमाम्नाय निघंटव इत्याचक्षते। निश्चयनाधिकेवागूढार्थाएव परिज्ञाताः सन्तोमंत्रार्थान् गमयंति ज्ञापयंति ततो निगम संज्ञानिघंटव एव इमे भवंति।

है और द्रव्य गुण शास्त्र के नाम से निघटु की सज्ञा प्रदान हो गई है। चरक ने ³"द्रव्यगुण" इस शव्द को ही प्रयोग किया है।

वास्तव मे यह शव्द आधुनिक मैटेरिया मेडिका का शाब्दिक अनुवाद है जो कि आजकल अपना स्वरूप वदल चुका है। फिर भी इसके निघटु शव्द के अर्थ मे कोई अन्तर नही आता। अत सस्कृत के विद्वानो और वैद्यो के सामने निघटु शव्द की अपनी मर्यादा औपधियो के गुण धर्म वाचक शास्त्र के रूप मे अव तक वनी हुई है।

वास्तव मे आयुर्वेद मे द्रव्य शव्द से औपधियो का ही ग्रहण होता है। सुश्रुत ने "द्रव्याणि पुनरोपधय" ऐसा ही विचार किया है। अत द्रव्य गुण शास्त्र मे औपधियो के रस, गुण, वीर्य, विपाक व प्रभाव का ग्रहण होता है। यथा

द्रव्ये रसो गुणो वीर्य विपाक शक्ति रेव च।
पदार्था पच तिष्ठति स्व स्वं कुर्वति कर्म च॥ भाव मिश्र॥

अत यह कल्पना द्रव्य गुण शास्त्र के लिए निघटु के स्थान पर करना असगत प्रतीत नही होता।

२. आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त भूत आधार

आयुर्वेद वेदो का उपाग है। अत यह जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन करके जीवन विज्ञान की सत्ता का प्रतिपादन करता है उसके आधार वेद या श्रुति, उपनिपद या स्मृति तथा पड्दर्शन यथा साख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमासा, वेदान्त और योगदर्शन आदि है। इनकी छाप आयुर्वेद के ऊपर पडी है और विशेप कर पड्दर्शनो के प्रभाव से अधिक प्रभावित हुआ है। इन दर्शनो मे विशेपकर वैशेपिक व साख्य दर्शन का प्रभाव इसमे अधिक दृष्टिगोचर होता है। इन दोनो के वाद न्याय दर्शन का, पश्चात् वेदान्त व मीमासा का स्थान और क्वचित् योग दर्शन की झलक भी दिखाई देती है।

इसका प्रधान कारण यह है कि आयुर्वेद की अधिकाश सहिताये दर्शनो के समकालीन ही प्रति सस्कृत हुई है। कई ऐतिहासिको के विचार से तो इनके प्रतिसस्कर्त्ता भी एक ही व्यक्ति माने जाते है साथ ही आयुर्वेद के साहित्य मे वैदिक सरणी का अनुशीलन भी मिलता है। अत ये प्रधान हेतु हैं जो कि आयुर्वेद को वेद का तथा उपनिपद और दर्शनो का अग मानने मे वाधित करते है। प्रभाव आयुर्वेदिक साहित्य मे वैशेपिक व साख्य की सज्ञाये ज्यो की त्यो अपना ली गई है किन्तु आयुर्वेद के आचार्यो ने इसका उपयोग अपनी इच्छा के अनुरूप

३ समन्यम्यते मर्यादयाऽयमिति समाम्नाय।
यस्माद्द्रव्यगुण कर्माणि वेदयत्यतोऽपि आयुर्वेद च सू अ १

किया है। तथा आयुर्वेदोपयोगी साहित्य मे जितना आवश्यक समझा है उतना ही प्रयोग किया है। इतना ही नही बल्कि अवैदिक दर्शनो का भी प्रभाव इन पर पडे बिना नही रहा है। जिनमे चार्वाकादि का नाम सरलता मे लिया जा सकता है।

अत आयुर्वेद के साहित्य मे इनके मौलिक सिद्धान्तो का प्रभाव और आधार उपर्युक्त दर्शनो के सिद्धान्तो के अनुसार ही है।

विशेषता आयुर्वेद मनुष्य के शरीर को निरोग बनाने वाला उचित साहित्यो का प्रतिपादन कर उनके सिद्धान्तो का अनुसरण करता है और निरोग बनाने के उपायो मे चिकित्सा के विभिन्न साधन आयुर्वेद के अष्टाग के रूप मे आकर प्रतिपादित होते दिखाई पडते है। अन्य वस्तुओ के अतिरिक्त चिकित्सा मे औषधियो का उपयोग आता है। और यह औषधि द्रव्य ही रुग्ण का रोग परिमोक्ष करने मे सहायक होते है यदि इनका प्रयोग युक्ति पूर्वक किया जाय। इन औषधि द्रव्यो के विज्ञान का ही नाम द्रव्यगुण विज्ञान शास्त्र है। इस शास्त्र के प्रतिपादन मे उपर्युक्त दार्शनिक सज्ञाओ का व सिद्धान्तो का पूर्ण सानिध्य है। अत इसके विवरण मे इनके मौलिक सिद्धान्त प्रयुक्त हुये है और द्रव्यो के उत्पत्ति का सिद्धान्त भी दार्शनिक सिद्धान्त है। इसको आधार मान कर ही द्रव्य गुण शास्त्र चलता है।

३. द्रव्यगुणशास्त्र का संक्षिप्त परिचय

आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है। जीवन की रक्षा सम्बन्धी स्वास्थ्यकर-पद्धति का सर्वप्रथम उपदेष्टा है अत चिकित्सा मे प्रयुक्त होनेवाले औषधि-द्रव्यसमूह का आदिस्रोत और इस प्रकार के इतिहास का श्री गणेश करनेवाला यह विज्ञान है। इस प्रकार इसके औषधिद्रव्य के परिचय का इतिहास मे प्रथम स्थान है। द्रव्यगुण-शास्त्र के इतिहास सम्बन्धी काल को चार विभागो मे विभक्त किया जा सकता है, जिनमे प्रधान—

१ वैदिक काल २ सहिता काल
३ सग्रह काल ४ आधुनिक काल है।

वैदिक काल—यह काल इस्वीय सन् से कई हजार वर्ष पूर्व का है। सृष्टिक के इतिहास के साथ इसका इतिहास प्रारम्भ होता है। आधुनिक इतिहास के शास्त्रियों के मत मे भी कई हजार वर्ष पूर्व तो अवश्य वैदिक काल माना जाता है। वैदिक काल मे चिकित्सा का एक सप्रदाय था। जो औषधियो का विशेषज्ञ होता था। [1] इनको आथार्वण सप्रदाय की सज्ञा दी गयी है और [1] इसके माननेवाले भिषक् दैवभिषक् कहलाते थे और इनको कम मे कम ७००

औषधियों का ज्ञान रखना पड़ता था। यह चिकित्सा में मन्त्र तन्त्र और अर्ष्ट वृटियों का भी प्रयोग करता था।

अथर्ववेद का साहित्यावलोकन हमें केवल वनौषधियों का ही ज्ञान नहीं देता बल्कि धातु चिकित्सा का भी प्रतिपादन करता है। स्वर्ण का उपयोग (दाक्षायणी हिरण्य) ताम्र, सीस, वगादि का प्रयोग नगर्माण मृगशृग इत्यादि का भी प्रयोग बतलाता है। मक्षेप में यह ११० वनौषधियों का जिनमें १०० अपामार्ग, पृश्निपर्णी, पर्ना, श्येनी आदि का नाम आता है, जो प्रधान है। इस काल मे औषधियों के विशेप वर्गों का भी उल्लेख मिलता है। यथा फलिनी, मूलिनी, प्रस्तृणवती, स्तम्भिनी, प्रतन्वती, काण्डिनी, विशाखा प्रतुमती अफला इत्यादि कई वर्गीकरण भी उपलब्ध होते है। इस प्रकार से वैदिक काल में औषधियों के विज्ञान का आदि इतिहास उपलब्ध होता है। इस काल में वनौषधि चिकित्सा ही थी किन्तु तत्कालीन वैद्य योगों के रूप में प्रयोग करते थे या नही इस बात का ज्ञान लब्ध नही होता।

संहिता काल—संहिता काल से उस काल को समझना चाहिये जब कि आयुर्वेद का साहित्यिक विकास और भी बढ़ा और वेदो उपनिषदों के अतिरिक्त इस के ग्रन्थों का संकलन किया जाने लगा। और बड़ी बड़ी संहितायें आयुर्वेद की लिखी जाने लगी। ब्रह्मसंहिता, धन्वन्तरि संहिता, आत्रेय संहिता, अग्निवेश संहिता, सुश्रुत संहिता, चरक संहिताएँ लिखी नही बल्कि प्रति संस्कार भी की गयी। इनमे प्राय सब ईस्वीय सन् से बहुत पूर्व की है और जहाँ तक इतिहास बतलाता है स्पष्ट है कि ईस्वीय सन् से ५ शताब्दी पूर्व औषधियों का वर्गीकरण उपलब्ध था और विभिन्न दृष्टिकोण से उनका वर्गीकरण किया गया था। कल्प की विधि तो पहले से ही चालू थी। वेद के उपांगो मे कल्प एक उपांग था।

वेदांगानि षडेतानि शिक्षाव्याकरण तथा।
निरुक्त ज्योतिष कल्प छन्दोविचितरीत्यपि ॥

कल्प के शब्दार्थों मे क्रम "कर्मप्रयोगान्तम् कल्पम् तत्र प्रवक्षते" यह प्रतिपादित है अत औषधि के क्रम मे भी यही माना जा सकता है। संहिता काल मे यह प्रौढ रूप से प्रसिद्ध हुआ और चरक इत्यादि मे तो कल्पस्थान पृथक् ही लिखा और औषधिकल्पो का विवरण दिया है। इसका अनुसरण बाद वालों ने भी किया और कल्प एक रूढिपदवाचक और औषधों के विभिन्न योगो के प्रतिपादनार्थ मे प्रयुक्त होने लगा। आज भी कल्प शब्द से चिकित्सक संसार औषधि-कल्प ही समझता है।

इस काल मे वनौषधियों की परीक्षा, संस्कार, संग्रह, संरक्षण व प्रयोग का विशेष रूप से अध्ययन किया गया। वनौषधियों के बाह्य व आभ्यन्तर स्थिति का अध्ययन करके उनके पत्र, पुष्प, बीज, मूल, काण्ड इत्यादि का तथा वनस्पति

के जीवन, अकुरोद्भेद, पोपण, पाचन, रसमवहन, सतानोत्पादन इत्यादि का अध्ययन किया गया। औषधियो के गुणो के अकन के लिये रसगुणवीर्यविपाक प्रभाव की शैली का प्रादुर्भाव हुआ। इस सहिताकाल मे औषधि सम्बन्धी ज्ञान वहुत ही प्रौढ हो गया था। इस काल मे वहुत सी सहिताएँ लिखी गई और वहुत प्रचार आयुर्वेद का हुआ। यह काल ई सन् के बाद ३–४ शताव्दी तक चलता रहा। इसके बाद के काल का ठीक इतिहास नही मिलता किन्तु इस काल मे आयुर्वेद के साहित्य मे अभिवृद्धि दृष्टिगोचर नही होती। इसे सग्रह-काल के नाम से यहाँ लिखा गया है।

संग्रह काल—इस काल को सग्रह काल इसलिये कहते है कि इस काल मे स्वतन्त्र सहिताओ के रचने की प्रथा मे कमी हुई। पूर्व के सहिताओ के अशो को सग्रह किया गया व नाम मे सहिताएँ जोडी गयी यथा शार्ङ्गधर सहिता इत्यादि। सकलन सग्रह ग्रन्थ बने। किन्तु यह भी वहुत ही महत्वपूर्ण काल था। इस काल का सक्षिप्त इतिहास हमे बताता है कि यद्यपि कोई नयी सहिताएँ न बनी किन्तु इन सहिताओ की टीकाएँ की गयी। आयुर्वेद की चिकित्सा का प्रभाव पर्याप्त था वलिक चर्मावस्था पर था। हमारी चिकित्सा के प्रति लोग आकृष्ट थे। वाग्भट प्रथम शताव्दी मे उत्पन्न हुए थे, इस काल से ही प्राचीन सहिताओ का सग्रह किया जाने लगा। वाग्भट ने अष्टागहृदय या वाग्भटसहिता लिखी। जो कि चरक और सुश्रुत के साराशो के सग्रह का स्वरूप है। इसके बाद माधव-कर ने माधव निदान, भावमिश्र ने भावप्रकाश, शार्ङ्गधर ने शार्ङ्गधर सहिता और अन्यो ने भी कई सहिताएँ लिखी।

इस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव अच्छी तरह हो चुका था। चिकित्सा के क्षेत्र मे धर्म से वडी हानि हुई और अहिसा के आधारपर आयुर्वेद के विकास का मार्ग सकुचित होता गया। शल्यक्रिया आदि अल्प हो गये। पाँचवी शताव्दी मे वृन्दमाधव ने विजयरक्षित और श्री कठदत्त ने माधव निदान की टीका की। चक्रपाणिदत्त ने चरक की टीका की।

सातवी शताव्दी मे भारतीय चिकित्सा खलिफा उल हारून उल रशीद के दरवार मे वगदाद पहुची और वैद्य श्री मक की सहायता से चरक-सुश्रुत का अनुवाद पारसी व अरवी मे हुआ। ग्यारहवी-वारहवी शताव्दी मे वग के कई विद्वान वैद्यो ने यथा विजयरक्षित व श्री कठदत्त ने माधव-निदान की मधुकोष व आतकदर्पण टीकाएँ लिखी। इशान कार्तिक, सुधिर, मैत्रेयादि वग के कई विद्वानो ने विविध टीकाये की। तेरहवी शताव्दी मे मुसलमानो का आक्रमण भारत पर हुआ। धर्मान्धता के वातावरण मे इन साहित्यो के सृजन का कार्य अवरुद्ध हो गया। साहित्य की होली जली। क्या क्या न हुआ। इसके बाद से सोलहवी शताव्दी

एक पुस्तक (Hortus Indicus malabarics) लिखी। इसके बाद डो रोक्सवर्ग ने फ्लोरा इन्डिका (Flora Indica) लिखा। इसके बाद बहुतो ने इस तरफ ध्यान दिया जिसमे प्रधान –

१–जान फ्लेमींग (John Fleming) ने एसियेटिक रिसर्च के बहुत अंको मे धारावाहिक मेटेरिया मेडिका पर विचार उपस्थित किया १८१०।

२–डा एन वेल्सि – फार्माकोपिया बगाल (Pharmacopeaoa Bengal)

३–डा वर्डवुड (Dr Bird wood) फ्लोरा बोम्बे (Flora Bombay)

४–डा बेडन पोवेल (Dr. Badenpowel) पजाव प्रोडक्टस

५–रा वा कन्हाईलाल ने इन्डिजिनस ड्रग्स

६–डा वायगट (Voigot) १८५५ मे Hortus Substances Calcuttensis

७–डा जे डी हुकर फ्लोरा आफ ब्रिटीस इन्डिया १८९७

८–सर जार्ज वाट (George watt) डिक्शनरी आफ इकोनोमिक प्रोडक्टस १९०८

९–सर जार्ज किग सिकोना

१०–डा. डेवीड प्रेन (David prain) बगाल प्लान्ट्स (हुगली, हावडा, २४ परगना)

११–श्री उदयचन्द राय ने Hindu Materia Medica

१२–श्री मेजर वी डी बसु और किर्तीकर ने Indian Medicinal plants

१३–डा आर एम क्षौरी ने Materia Medica Indica

१४–,, आर एन चोपरा ने Indigenous Drugs

१५–,, नाडकर्णी ने The Indian Materia Medica

१६–कविराज विरजाचरण ने वनौपधिदर्पण

इनके अतिरिक्त डा विलसन, डा. एन्सली, डा मुडेन शेरीफ, डा. व्हाइट, डा डायमक (Dymock) ने भी Indian Materia Medica इन्डियन मेटिरिया मेडिका पर किताबे लिखी।

१८ वी, १९ वी और २० वी शताब्दी मे भारतीय वैद्यो मे भी चेतना फैली। पश्चिमी लेखको की लेखनी मे लिखे अनर्गल बातो और भारतीयों के

प्रति वनस्पति शास्त्र की अनभिज्ञता प्रदर्शन करने वाले लोगों ने नवचेतना जागृत कर दी। श्री उदयचन्द राय ने इस आधार पर ही हिन्दू मेटेरिया मेडिका इंग्लिश मे लिखकर भ्रान्ति दूर करने की चेष्टा की। २० वी शताब्दि तक कई भारतीयो को इस नवचेतना ने कार्य मे प्रवृत्ति उपस्थित की। जिनमे

चक्रपाणिदत्त – द्रव्यगुण सग्रह,

लालाशालिग्राम – शालिग्रामनिघण्टु,

चन्द्रराजभण्डारी ने–वनौषधिचन्द्रोदय

लालारूपलाल–रूपनिघण्टु

आचार्य शकरदत्त ने शकर निघण्टु

बापदेव ने बापदेवनिघण्टु

निघण्टु सग्रह

डा वामनदेसाई–वनौषधिसग्रह

आचार्य यादवजी त्रिकमजी ने द्रव्यगुण विज्ञानम्

इत्यादि ने कई निघण्टु लिखे।

भावप्रकाश के निघण्टुअश की टीका कई व्यक्तियो ने की और उसके निघण्टुअश को पठनोपयोगी बनाने मे पूर्ण चेष्टा की। जिनमे भावप्रकाश निघण्टु ललितार्थकरी टीका श्री विश्वनाथ द्विवेदी, भावप्रकाश निघण्टु विद्योतिनी टीका श्री गगासहाय पाडे प्रधान हैं। ललितार्थकरी टीका मे आधुनिकतम विचारो का सकलन किया जा चुका है और इसके प्रथम सस्करण को तीन बार छपाना पडा। अब इसका छठवाँ सस्करण हो चुका है। यह सब टीकाओ मे उत्तम है। द्वितीय विद्योतिनी टीका का अभी नवीन सस्करण निकला है।

इस प्रकार इस विषय पर अनेको ग्रन्थो का सकलन हुआ और होता जा रहा है। इनकी उत्पत्ति के और भी कारण हैं और इनके विषयो का समालोचना करना अभिप्राय नही है। केवल द्रव्यगुण विज्ञान पर के साहित्य की आधुनिक काल तक की चर्चा कर दी गयी है। इस प्रकार हम द्रव्यगुण विज्ञान पर एक सरसरी निगाह डालने पर इतना विवरण पाते हैं।

४. द्रव्यगुणशास्त्र का व्यापक क्षेत्र

द्रव्यगुण का विशाल क्षेत्र :–

द्रव्यगुण के विशाल क्षेत्र के ऊपर यदि विचार करे तो ज्ञात होता है कि इसका क्षेत्र अति ही विशाल है। वैदिक काल के चिकित्सक जब सहस्रो औषधियो का ज्ञान रखते थे और बाद के चिकित्सक भी इसका पूर्ण ज्ञान रखते थे तब इसका व्यापक क्षेत्र स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है। वेदो मे १५० और चरक मे ५२६, सुश्रुत मे ५७३, अष्टाग हृदय मे ९०२ तथा निघण्टुवो मे३७३, धन्वन्तरि निघटु मे, ७५० राजनिघटु मे, इसी प्रकार भावप्रकाश मे ४२६, मदन पाल निघटु मे ४७४, कैयदेव निघटु मे ४०० औषधियो का वर्णन मिलता है तब उसके व्यापक क्षेत्र के विषय मे विशेष रूप मे ध्यान आकर्षित होता है। प्राचीन-

नम संहिताओं मे चरक सहिता मे त्रिस्कध आयुर्वेद का जो वर्णन है उसमे औपधि स्कध का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

आयुर्वेद की परिभापा मे जब "आयुष्याणि अनायुष्याणि द्रव्यगुण कर्माणि वेदयत्यदोऽयायुर्वेदः" परिभापा की हुई मिलती है तब इसका आयुर्वेद का रीढ मानने मे कोई हिचक नही रह जाती महर्षिआत्रेय ने जब इसको क्षेत्र बना मा दिया है तब इसके व्यापक क्षेत्र का महत्व और भी स्पष्ट हो जाता है। विमान स्थान के ८ वे अध्याय मे चरक ने लिखा है कि द्रव्य गुण शास्त्र का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उन्होंने द्रव्य परिचय के विवरण मे कहा है कि इस विज्ञान की परीक्षा करते हुए निम्न बातो का परीक्षण[2] करना आवश्यक है यथा।

१ प्रकृति विज्ञान या द्रव्य परिचय विज्ञान
२ द्रव्य गुण विज्ञान
३ प्रभाव विज्ञान
४ देश विज्ञान
५ सग्रह व सरक्षण विज्ञान
६ सस्कार विज्ञान
७. मात्रा मात्र विज्ञान
८ औपधि प्रयोग विज्ञान

आदि का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। बिना इसके जाने औपधि का प्रयोग होना सभव नही है अत प्रत्येक चिकित्सक को इसका ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार इसका क्षेत्र कितना व्यापक हो जाता है स्पष्ट विदित होता है।

प्राचीनकाल के वैद्य इन बातो का ज्ञान रखते थे। अत इसके विवरण मे हमे इतनी बातो का ज्ञान होना ही चाहिए कि इस औपधि का स्वरूप क्या है। किस देश मे होती है तथा किस ऋतु मे इसका सग्रह करना चाहिए। क्या क्या संस्कार करने पर यह उपयोगी बन सकती है। इसके गुण कर्म व दोप विज्ञान क्या क्या है। किस मात्रा मे प्रयोग करने पर यह लाभदायक होती है। किस मात्रा पर प्रयोग करने पर यह हानिकारक हो जाती है। किस प्रकार के रोगी पर इसका प्रयोग करने पर इसका क्या असर होगा। इत्यादि

व्यापक क्षेत्रः—

अत इसका कितना व्यापक क्षेत्र है इसका स्पष्ट विवरण मिल जाता है। इसमे उद्भिज्ज या वनौषधि, प्राणिज व खनिज द्रव्यो का विवरण मिलता है। अत द्रव्य गुण शास्त्र के व्यापक क्षेत्र मे इन सब का समावेश हो जाता है। क्रमश इनका विवरण आगे देगे।

---

[1] **हेतु लिंगौषधज्ञान स्वस्थातुरपरायणम्** ॥ च. सू अ १ ॥

[2] **इदमेवं प्रकृतिमेव गुणमेवं प्रभावमेवमस्मिन्देशे जातमस्मिन्नृतावेव गृहीतमेव निहितमनया मात्रया प्रयुक्त मस्मिन्व्याधौ एवं विधस्य पुरुषस्य एतावतं दोषमपकर्षति उपशमयति वा।**

५. प्राणि विज्ञान व बायोलोजी (Biology)
औद्भिद् व स्थावर सृष्टि

प्राणि विज्ञान--द्रव्यो के विविध भेदो मे प्राणि विज्ञान का स्थान प्रधान है। इसमे पशु पक्षियो व वनौपधियो का विवरण मिलता है। सस्कृत साहित्य मे वनौपधि विज्ञान के लिये उद्भिज्ज[1] या उद्भिद शब्द का प्रयोग होता है।

आधुनिक भाषा मे इन दोनो के लिये बायोलोजी शब्द का प्रयोग मिलता है। बायोलोजी शब्द का अर्थ 'जीवन सबधी विज्ञान' है। बायास Bios=Life का अर्थ जीवन या लाइफ व लोगस का अर्थ डिस्कोर्स या विज्ञान (Discourse) होता है। अत इसमे पशु पक्षी से लेकर उद्भिद तक का प्रयोग मिलता है। आयुर्वेद के द्रव्य गुण विज्ञान मे उनका वर्णन है। निघटुकारोने उद्भिद के वर्णन मे कई दृष्टिकोण से विचार किया है।

इसमे वनौपधि के बाह्य व आभ्यतर रचना, उसके आगिक रचना आगिक परिचय अर्थात् त्वक्पत्र, पुष्प, काड, मूल, शिरा, फल, बीज, मजरी, गुठी, मिगी आदि का विवरण मिलता है।

इनके अतिरिक्त देश काल, ऋतु भूमि व रोग विज्ञान के आधार पर विवरण मिलते हैं अत उद्भिज्ज के वर्णन मे निम्न बातो का विवरण देना आवश्यक हो जाता है यथा

१. बाह्याभ्यतर आकार प्रकार विज्ञान या शारीर विज्ञान.

उद्भिज्जशारीर विज्ञान या मारफोलोजी (Morphology) मारफोलोजी शब्द इस निमित्त आधुनिक भाषा मे दिया जाता है। मारफस शब्द का अर्थ आकार (Morphe=Form) और लोगस शब्द का अर्थ डिसकोर्स या साइस विज्ञान होता है इसके दो भेद होते हैं १ आभ्यतर रचना विज्ञान (Internal Morphology) २ बाह्य रचना विज्ञान External Morphology) रचना विज्ञान मे भी स्थूल रचना व सूक्ष्म रचना विज्ञान ऐसा भेद मिलता है। इस पूरे शब्द को आजकल एनाटोमी भी कहते हैं। इस विज्ञान के अन्दर शरीर के सूक्ष्म भागो का छेद लेकर देखते है और अध्ययन करते हैं।

---

१ उद्भिज्ज उद्भिदस्तरुगुल्माद्या उद्भि दुद्भिज्ज मुद्भिदम्। अमरकोष।

मारफोलोजी मारफMorph=फार्म Form लोगस Logas=Science या Discourse) स्थूल रचना=हिस्टोलोजी Histology। सूक्ष्म रचना साइटोलोजी (cytology) एनाटोमी एना Ana=Asunderora part टोनिन=काटना (Tounein=to cut)

एक उद्भिद के पूर्ण परिचय के लिये व्यवच्छेदक, रचना विज्ञान के अतिरिक्त उनके शरीर क्रिया विज्ञान का भी अध्ययन करना होता है। इसे औषधि का क्रिया शारीर कहते हैं।

१. **क्रिया शारीर** (Anotomy, physiology)—वनस्पति क्रिया शारीर के भीतर उद्भिद शरीर मे भी आहार ग्रहण, रस संवहन, श्वासोच्छ्वास निद्रा व संज्ञा आदि का विवरण होता है। यह भी इस विज्ञान के अन्दर आता है।

२ **भूमिविज्ञान या देशविज्ञान या इकोलोजी** (Ecology)—इस विज्ञान के अन्दर औषधियो के निवास, वृद्धि व विस्तार आदि का क्रम होता है। किस देश या स्थान मे कौन सी औषधि मिलती है आनूप व जंगल साधारण भेद से देश का विवरण मिलता है।

३. **काल विज्ञान या ऋतु विज्ञान**—औषधियो के रोपण का काल क्या है तथा उनके उगने का काल, पुष्पित होने का काल, पकने व फलने-फूलने का काल, संग्रह व संरक्षण का काल क्याहै आदि इस विज्ञान मे होते है।

४ **गुण विज्ञान** (Pharmacology)—औषधि के भीतर कौनसा रस है और क्या गुण है तथा क्या क्या कर्म यह औषधि करती है। इसी विज्ञान के अन्दर वीर्य विज्ञान, विपाक विज्ञान, प्रभाव विज्ञान आदि सब आते है।

५. **वर्गीकरण विज्ञान** (Classification)—औषधि के गुण कर्म के आधार पर उनका क्या वर्ग होगा। जाति उपजाति पुष्प फल बीज आदि अवयवो के आधार पर इनका क्या वर्ग होगा आदि इस वग मे आते हैं। आयुर्वेद मे रस गुण वीर्य विपाक आदि के अनुसार वर्गीकरण[1] मिलता है।

६ **वृक्षायुर्वेद या माइकोलोजी** (Mycology)—इस विज्ञान के भीतर वनौषधि को किस ऋतु मे लगाना, किस ऋतु मे कितनी दूरी पर रोपण करना, व्याधि होने पर क्या उपाय करना, पौधो के रोगो का ज्ञान करना, चिकित्सा करना आदि सब का समावेश होता है।

इतने विशाल विवरण के जानने पर वनौषधि का ठीक ज्ञान होता है। अतः इन सब का ज्ञान करना चिकित्सक का कर्तव्य है।

औद्भिद् या स्थावर सृष्टि—पेड पौधो के रूप मे उगने वाले द्रव्यो को उद्भिद् कहते है। यह सृष्टि वैदिक साहित्य मे शासन वर्ग मे तथा चरकादि के साहित्य मे सेंद्रिय या चेतन या सजीव, द्रव्यो के वर्ग मे आते है। इन्हे स्थावर भी कहते है। वैदिक काल मे सृष्टि को संहिता काल तक दो प्रधान भेदो मे विभक्त पाते हैं। यथा—

१ : सपुष्प सृष्टि **२ अपुष्प सृष्टि**

[1] देखिए आयुर्वेद की औषधियाँ और उनका वर्गीकरण।

१ अपुष्प सृष्टि यह वर्नोषधियो का वह विभाग है जिसमे पुष्प प्रत्यक्ष रूप मे नहीं पाया जाता। यह या तो अपुष्प या निगूढ पुष्प सृष्टि के नाम से प्रसिद्ध है इसकी वनस्पति सज्ञा है। या क्रिप्टोगेम्स कहते है। (Kryptogams)

इसका शाब्दिक अर्थ क्रिप्टस का प्रच्छन्न और गेमस का उद्वाह (Kıyptos=Conceeled, Gamos=Marrıage) अर्थात् जिनके पुष्पो की क्रिया लैंगिक क्रियाये प्रच्छन्न होती है। चरक ने अपुष्पा फलवन्ती ये ते वनस्पतय स्मृता —लिखा है।

२ सपुष्प सृष्टि (Phanerogoms) यह वर्ग जिनमे पुष्प दिखाई पडते है। और इनके बीज की उत्पत्ति परागण (Phaneros=Vısıble क्रम द्वारा हुआ करता है। वैदिक साहित्य तथा चरक व सुश्रुत के साहित्य मे इसके तीन विभाग मिले है। १ वानस्पत्य २ औषध ३ वीरुध। यथा

औद्भिद तु चतुर्विधम्। वनस्पतिस्तथा वीरुद्वानस्पत्यस्तथौषधि।

फलैर्वनस्पति पुष्पै वानस्पत्य फलैरपि। औषध्यः फलपाकान्ता प्रतानैर्वीरुध स्मृता। चरक।

सपुष्प उद्भिज्ज के वर्णभेद—१. नग्न वीजी या जिम्नोपरमस
२ आवृत वीजी या एजिओ स्परमस।

१ नग्न वीजी इस वर्ग भेद मे पुष्प के बाद जो बीज लगते है उन पर आवरण नही होता। वह नग्न होते है। यथा देवदारु वर्ग के द्रव्य। इनका पारिभाषिक अर्थ यह है जिमनस अर्थात् नग्न नेकेड (Gymnos=Nakcd) स्पर्मा अर्थात् बीज (Sperma=Seed) Angeom=Case

२ आवृत वीजी इस वर्ग के उद्भिज्जो मे बीज एक आवरण द्वारा आच्छादित होता है। इसमे पत्र पुष्प फल बीज काड सब विकसित होते है। इसके दो प्रधान भेद है

१ द्विदल गण या डाई कार्टलीडन्स (Dıcoty ledons)—मुद्गदाल।

२ एक दल या मोनोकाटेलीडन्स (Monocotyledons)=ज्वार-बाजरा नारियल। आधुनिक वर्ग भेद मे इनका और भी विवरण मिलता है। यथा

१ **अणुद्भिज्ज या थैलोफाइटा** Thallophyta=Thollos अणु या सूत्र। (phyta=पेड) वे उद्भिज्ज जिनका आकार सूक्ष्म सूत्र की तरह होता है। इनमे (काड-मूल) पत्र शाखाये नही होती। इसके दो भेद प्रधान भेद है १ हरितक या एल्गी (Algeae) २ श्वैतक या फुगा (fungı) हरितक यह उद्भिद हरित या हरिद्र वर्ण के होते है। इनमे पर्ण हरित पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। यह समुद्र, समुद्र तल या गीली भूमि मे पाये

जाते है। श्वेतक फूग या फफूद ' यह बहुधा श्वेत या क्वचित हरित वर्ण के पाये जाते है।

२ **उद्भूतावयवी ब्रायोफाइटा** (Bryophita)—इनका आकार क्षुद्र होता है और इनमे काड व पत्रादि दिखाई पडते है। परन्तु वास्तविक मूल नही होता। और यह वर्षा ऋतु मे दीवाल या वृक्षो या प्रस्तरो पर दिखाई पडते हैं।

३ **पूर्णिनी** (Pteridophyta)—इस वर्ग की औपधियो मे हरित पत्रादि अधिक होते हैं। पुष्प व बीज नही होते। यथा—हसराज–सुनिषण्णक।

संख्या अब तक उभ्रिज्ज शास्त्रियो ने बहुश जो गणना की है उसका स्वरूप निम्न रूप मे ज्ञात हुआ है। यथा

अपुष्प वनस्पति १	हरितक (Algeae)	१४०००
	श्वेतक (fungi)	७००००
	मोसिस व अन्य (Mossis)	१७०००
	हसराज व अन्य	८२००=१,०९,२००
सपुष्प वनस्पति २	नग्न बीजी–	५००
	आवृत बीजी–	१,३३,०००=१,३३,५००
इनमे द्विदल	(१,०९,२०० व एक दलीय	२४०००)

.. . .

यथा यह जोडिये कुल २,४२,७०० होते है।

६. आयुर्वेद में द्रव्य का स्वरूप

यद्यपि आयुर्वेद मे द्रव्य का आधार परिभापार्थ दार्शनिक ही है परन्तु वह भी स्वतत्र सा है इसका कारण यह है कि आयुर्वेद के द्रव्य सूक्ष्म व स्थूल दोनो प्रकार के विभागो मे परिगणित होते हैं। विशेप रूप मे यह सुश्रुत के मतानुसार औषधि द्रव्यो तक उनका क्षेत्र सीमित रह जाता है। चरक ने भी इसी तरह औषधियो को द्रव्य माना है। अत परिभाषा मे जहाँ सूक्ष्म व सामान्य दोनो का ग्रहण करना होता है वहाँ पर दार्शनिक परिभापा ही ग्रहण की जाती है। यथा

१ **यत्राश्रिता कर्म गुणा. कारणं समवायि यत्।**
तद्द्रव्यम् :...... च सू १

२ : **क्रिया गुणवत् समवायि कारणम्।** सु सु अ. ४०

३ : **द्रव्य माश्रय लक्षणम् पंचानाम्।** र वै स. ज..१६३

४ **रसादीना पचानाम्भूतानां यदाश्रय भूतं तद्द्रव्यम्।** भाव०

५ ' **रसो गुणो तथा वीर्यं विपाक शक्ति रेव च। पंचाना यत्**
समाहार तद्द्रव्यमिति कथ्यते। वाचस्पत्यभिधान।

ऊपर की परिभाषाओ मे स्पष्ट है कि चरक व सुश्रुत की परिभाषा दार्शनिको की सार्वभौम मत के आधार पर बनी हुई है। जिसमे समस्त द्रव्य मात्र का समावेश हो जाता है। जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जिसमे कर्म और गुण आश्रित हो तथा जो अपने कार्य द्रव्यो का समवायि कारण हो उन्हे द्रव्य कहते है। चरक की इस परिभाषा से वैशेपिकोक्त पचमहाभूतो के अतिरिक्त काल, दिक्, आत्मा, मन इन चार कारण द्रव्यो का भी समावेश हो जाता है।

सुश्रुत की परिभाषा मे साख्य दर्शनोक्त पाचभौतिक द्रव्यो का ही ग्रहण स्पष्ट होता है। जिसमे क्रिया व गुण समवायि कारण बनते हो। किन्तु आयुर्वेद मे द्रव्य गुण मे औषधि द्रव्यो के गुण कर्म मे सीमा सीमित होने से रस वैशेपिक ने उसे ही द्रव्य माना है। रस वैशेपिक कार का मत है कि पाँच वैशिष्ट्य के साथ रसादि पचक रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव व शक्ति का आश्रय भूत हो वही द्रव्य है। भाव मिश्र व वाचस्पत्याभिधान की परिभाषा मे तो औषधि रूप ही द्रव्य स्पष्ट मानते है। क्योकि इनमे ही रसादि पचक मिलते है। अत परिभाषा के क्षेत्र मे सुश्रुत के परिभाषोक्ति के आधार पर द्रव्य मे औषधियो का ग्रहण ही प्रधान है। यथा—

इह हि औषधानि [1] द्रव्याणि।

अत जिस प्रश्रय वस्तु मे रस, गुण, वीर्य, विपाक व कर्म आश्रित हो वही द्रव्य माना जा सकता है।

७. भूमिविज्ञान व देशविज्ञान

इकोलोजी (Ecology)

देश—Okios=House and logus=Discourses)

वनौषधियो की सख्या असख्य है इनमे कौन कहा पर उगती है और किस के लिये कैसी भूमि चाहिए इस निमित तथा किस वीर्य की औषधि किस कर्म के लिये उपयुक्त होगी यह जानना अत्यावश्यक है अत इसके ज्ञानार्थ देश विज्ञान व भूमि विज्ञान का जानना अत्यावश्यक है।

देश से प्राचीन साहित्यकार निम्न अर्थ लेते है यथा

'देश जनपदो नीवृद्विषयश्चोपवर्तनम्।'

प्रदेश स्थान माख्या भू, रवकाश स्थितिप्रदम्। अमर

देश शब्द से जनपद, जनावासदेश ग्राम, स्थान, भूमि, अवकाशादि का ज्ञान होता है किन्तु आयुर्वेद मे 'देशो भूमि आतुरश्च' के अनुसार भूमि रोगी शरीर ही माना जाता है लेकिन यहाँ पर देश का अर्थ भूमि या प्रदेश से है। जहाँ पर

[1] इनका पूर्ण विवरण 'आयुर्वेद की औषधियाँ' मे विस्तार पूर्वक दिया गया है।

औषधियाँ उत्पन्न होती है। अत प्राचीन काल से ही उत्तम औषधि के उत्पन्न होने वाले देश का ज्ञान करना आवश्यक समझा जाता था। द्रव्य संग्रह व सरक्षण के लिये भी किस प्रकार की भूमि किसके लिये लेना चाहिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है अत महर्षि धन्वन्तरि ने इसके ज्ञानार्थ एक विशद अध्याय ही सुश्रुत सहिता मे लिखा है। जिसे 'भूमि प्रविभागीय' अध्याय ही कहते है।

आयुर्वेद मे इसके ज्ञानार्थ देश का विभाजन तीन बडे भाग मे किया गया है। यथा -

१–जागल देश (wood lands) इसमे की वनौषधि xeroplytes कहलाती है
२–आनूप देश (Marshy lands) ,, , Hydroplytes ,, ,,
३–साधारण देश (Tempratezone) , ,, Mesoplytes कहलाती है।

जागल प्रदेश–उस प्रदेश को कहते है जो विस्तृत आकाश वाला खुला हुआ भू भाग हो। जिसमे अधिक तर वृक्षखदिर, अश्वकर्ण, धव, तिनिश, शल्लकीशाल वदरी, तिंदुक, अश्वत्थ व आमलकी के गहन वन का साधारण रूप वाले हो। अनेक शमी-शीशम के पेड हो जो स्थिर व शुष्क वायु के झकोरो मे सदा चलाय मान हो, जिसमे मृग जलान्वेषणार्थ जाते हो, जिसमे अल्प जल हो, खर परुष सिकता पूर्ण मृत्तिका हो, लाव तित्तिर चकोर जिसमे भ्रमण करते हो। जो वात-पित्त वहुल हो, जहाँ के पुरुष स्थिर व कठोर शरीर से युक्त हो, उस भूमि को जागल प्रदेश कहते हैं। यह चरक का मत है। च स क १

सुश्रुत के मतानुसार—खुली भूमि वाला, जहाँ के वृक्ष अल्प कंटक युक्त हो, अत्यत विरल व छोटे-छोटे हो, जहाँ वर्षा थोडी होती हो, जहाँ कूप झरना आदि मे कम जल हो, पानी कम वरसता हो, जहाँ हवा उष्ण व वेग मे चलती हो, जहाँ पहाड छोटे हो, वात पित्त के रोग अधिक होते हो, उसे जागल प्रदेश कहते है।

---

१ तत्र जागलः पर्याकाश भूयिष्ठ। तरुभिरपि कदर खदिरासनाश्वकर्ण धव तिनिश शल्लकी साल सोम वदरी तिन्दुकाश्वत्थ वटामलकी वनगहन। अनेकशमी ककुभ शिशपाप्राय स्थिर शुष्क पवन वल विधूयमानप्रनृत्यत् तरुण विटप प्रतत मृग तृष्णा कूपोपगूढस्तनु खरपरुष सिकता शर्करा वहुल, लाव तित्तिर चकोरानुप्रचित भूमि भागो वात पित्त वहुल स्थिर कठिन मनुष्य प्रायो जागलो ज्ञेय। च क अ १।

आनूप देश—° जिस प्रदेश मे हिन्ताल ताल, तमाल नारिकेल, कदली के घने वन हो, नदी व समुद्र का प्रान्त भाग जिसमे हो, जिसमे शीतल वायु अधिक चलती हो, जिसके जलीय भाग पर बेत व नरमल के गुल्म अधिक हो, जिसमे नदियाँ प्रवाहित होती हो, पर्वत व कुज मे शोभित हो, मद पवन जहाँ चलता हो, घने वृक्षो मे पूर्ण व अनेक प्रकार के पुष्पित गहन वनो मे पूर्ण, जिसके पेड स्निग्ध लता प्रतानो मे युक्त हो, जहाँ हस, चक्रवाक, बलाका, नदी मुख, पुंडरीक कलहस, कोकिल, मयूर आदि मे अनुनादित हो जहाँ के पुरुष सुकुमार हो, पवन व कफ प्राय रोग होते हो वह अनूप देश कहलाता है।

सुश्रुत के मतानुसार—जहाँ जलाधिक्य हो भूमि बहुत ऊँची नीची हो, वर्षा बहुत हो, बहुत जगल हो, कोमल व शीतल पवन जहाँ चलता हो, बहुत बडे पर्वत और वृक्ष हो, जहाँ लोग अधिक सख्या मे मृदु व सुकुमार शरीर के हो, जहाँ वात व कफ रोग होते हो उसे आनूप देश कहते है।

वाराह मिहिराचार्य ने इस देश मे जम्बू वेतस वानीर कदम्ब उदुम्बर, अर्जुन बीज पूर द्राक्षालकुच दाडिम नक्तमाल तिलक पनस आम्रातक आदि के वृक्षो का होना कहा है।

साधारण देश—वह देश जहाँ पर जागल व आनूप दोनो देशो के वीरुध वनस्पति वानस्पत्य पक्षी मृग आदि मे युक्त हो, जहाँ के प्राणी स्थिर सुकुमार बल वर्ण युक्त हो उसे साधारण देश कहते हैं। इस प्रदेश मे दोनो देशो के लक्षण पाये जाते हैं। शीत, वर्षा, वायु समान रूप मे मिलते है। तथा दोषो मे साम्यता होती है प्राणियो मे साम्यता होती है उसे सामान्य देश के नाम से पुकारते हैं। यह विचार चरक व सुश्रुत दोनो का है। इस प्रकार से देश के विवरण उपस्थित करने के बाद इन देशो की भूमि की भी परीक्षा की जाती है।

वनौषधियो के रोपण के लिए मृदु भूमि की आवश्यकता पडती है। उनका विवरण देते हुए वराह मिहिर ने निम्न विचार उपस्थित किया है।

यथा **"मृद्वी भूः सर्व वृक्षाणाम्"**।

अर्थात् सब प्रकार के वृक्षो के लिये मृदु भूमि की आवश्यकता होती है। औषधियो के विषय मे विचार करते हुये उसने लिखा है कि किस

° चरक अथानूपोहिन्ताल तमाल नारिकेलकदली वनगहन सरित समुद्र पर्यत प्राय शिशिर पवन बहुलोवजुल वानीरोपशोभित तीरामि सरिद्भि रुपगत भूमि मार्गो क्षितिधर निकुजेपशोभितोमन्द पवनानुवीजित क्षितिरुह गहनो अनेक वनराजिपुष्पितवनगहन भूमिभागो, स्निग्ध तरुप्रतानोपगूढो हस चक्रवाक बलाकानन्दीमुख पुडरीककादम्बमद्गुभृगराज शतपत्रमत कोकिल तरु विटप, सुकुमार पुरुष पवन कफ प्रायोज्ञेय। च क अ १

सुश्रुत : आतुरोप क्रमणीयाध्याय ३५-४२

प्रकार की भूमि में औषधियों को ग्रहण करना चाहिये। उचित भूमि के लिये निम्न विचार दिया गया है।

श्वभ्र शर्कराश्म विषम वल्मीक श्मशानायातन देवायतन सिकताभिरनुपहतामनूषरामभंगुरामदूरोदकां, स्निग्धा प्ररोहवती, मृद्वी, स्थिरा, समा, कृष्णा, गौरालोहिता वा भूमि मौषध ग्रहणार्थ परीक्षेत। सुश्रुत सू. ३६

अर्थात् जो भूमि चिकनी स्थिर समतल, कोमल हो जिसका वर्ण कृष्ण गौर रक्त वर्ण का हो उसे औषध ग्रहण के लिये चुनना चाहिए। जिसमे कंकड पत्थर रेत न मिले हुये हो। जो बावी श्मशान देव स्थान से दूर हो बालू व ऊसर भूमि से दूर हो जहाँ जल समीप हो ऐसी हरी भरी भूमि को औषधि ग्रहण के लिये चुनना चाहिए। भूमि संगठन के हिसाब से इसके चार भेद होती है।

१. **पार्थिव भूमि**—जो भूमि अश्मवती स्थिरा गुर्वा श्यामा कृष्ण व स्थूल वृक्ष सस्य प्राया हो वह पार्थिव भूमि होती है।

२ **आप्य भूमि**—जो भूमि स्निग्धा चिकनी, शीतल आसन्नोदका व स्निग्ध गुण भूयिष्ट हो धान्य तृण आदि से युक्त हो कोमल वृक्षो से युक्त हो जिसका वर्ण श्वेत हो वह आप्य भूमि होती है।

३ **आग्नेय भूमि**—जो भूमि कई प्रकार की भूमि के वर्णों से युक्त हो जिस मे छोटे-छोटे पत्थरो से युक्त हो अल्प सख्यक पाडु वर्ण के वृक्ष जिसमे हो व पीले अकुर प्ररोह से युक्त हो वह आग्नेय भूमि कहलाती है।

वायव्य भूमि—रुक्षा भस्म रासभ वर्णातनु रुक्षकोटराल्परसवृक्ष प्राया अनिल भूयिष्ठा। अर्थात्—जो भूमि रुखी भस्म के वर्ण की या गर्दभके वर्ण की हो जहाँ के वृक्ष पतले रुखे कोटर युक्त हो अल्प रस वाले हो वह वायव्य भूमि कहलाती है।

नाभस भूमि—मृद्वी समा श्वभ्राव्यक्त रसाल्पजलासर्वतो असार वृक्षा महा वृक्ष पर्वत प्राया श्यामा चाकाश गुण भूयिष्ठा।

अर्थात्—जो भूमि मृदु समतल बिल युक्त हो जहाँ की भूमि का रस अव्यक्त, जल अल्प, असार-वृक्षो से युक्त श्यामल हो बडे पर्वत व वृक्षो से युक्त हो वह भूमि आकाश तत्त्व प्रधान कहलाती है।

---

१ **पार्थिव भूमि**—अश्मवती स्थिरा गुर्वीश्यामा कृष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुण भूयिष्ठ. पार्थिव।

२ **आप्य भूमि**—स्निग्धा शीतलाऽऽसन्नोदका स्निग्ध शस्य प्राया तृण कोमल शस्य प्रायाशुक्लाम्बुगुण भूयिष्ठा। सु सू ३६।

३ **आग्नेयी**—नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविरलाल्पपाडुवृक्ष प्ररोहाऽग्नि गुण भूयिष्ठा आग्नेयी।

इस प्रकार की पाच प्रकार की भूमि का विभाग आयुर्वेद मे मिलता है। इसी प्रकार के क्षेत्र का भी उल्लेख मिलता है जो कि सुश्रुत के उस भेद मे मिलता जुलता है।

पार्थिव क्षेत्र--जो क्षेत्र पीत वर्ण के गोलकण व पाषाणो मे शोभित पीली भूमि वाला हो, वृक्षलता मे भी पीत फूल वाले और भूमि कठिन हो उसे पार्थिव क्षेत्र[1] बताते है। राज नि०

आप्य क्षेत्र--जो क्षेत्र चन्द्राकृति स्वच्छ कमल की तरह श्वेत पाषाण व नदी नदादि जलाशयो मे व्याप्त हो उसे आप्य क्षेत्र[2] कहते है।

तैजस क्षेत्र--जो देश खदिरादि से पूर्ण हो जिस मे चित्रक व बाँस के वृक्ष हो जिस क्षेत्र के भूमि के पाषाण व कणो का आकार त्रिकोण हो और पाषाण लाल रग के हो वह तैजस क्षेत्र[3] कहलाता है।

वायवीय क्षेत्र--जिसका वर्ण धूसर व धूम्र वर्ण के पाषाणो मे पूर्ण हो जो षट्कोण आकार के कणो मे युक्त हो, मृगादि पशु व शाक आदि अधिक हो और रूक्ष वृक्ष हो उन्हे वायवीय क्षेत्र कहते हैं।

आतरिक्ष क्षेत्र--जिसका बहुविध भूमि का वर्ण हो जो वर्तुल कणो से निर्मित श्वेत पर्वतो से युक्त तथा ऊँचे पर्वतो से युक्त और देवी के निवास योग्य हो उन्हे आतरिक्ष क्षेत्र कहते है।

इस प्रकार भूमि के वर्ण पर्व के आकार व भूमि कणो के आधार पर भूमि या क्षेत्र का प्रविभाजन किया हुवा पाते है।

इसी प्रकार शिव नामक आचार्य ने भी भूमि के चार प्रकार बतलाये हैं। यथा--ब्राह्म क्षेत्र, क्षात्र क्षेत्र, वैश्य क्षेत्र तथा शूद्रक्षेत्र।

१ ब्राह्म क्षेत्र--प्रायो दर्भपलाशवारि बहुलयत्रार्जुना मृत्तिका।
ज्ञेय तत् प्रथम द्विजाति सुखदंद्रव्य तदुत्थभवेत्।

अर्थात्--जिस भूमि मे दर्भ कुश कासादि पलाश अधिक हो जल परिपूर्ण भूमि हो और भूमि का वर्ण श्वेत हो वह ब्राह्म क्षेत्र होता है।

२ क्षात्र भूमि--ताम्र भूमि वलयच भूधरंयन्मृगेन्द्रमुख सकुलाकुलम्।
घोर घोष खदिरादिदुर्गम क्षात्र मेतदुदितपिनाकिना ॥

अर्थात् जिस भूमि मे वर्ण ताम्र वर्ण का हो जो पर्वत सिह मृगादि मे युक्त हो खदिरादि वृक्षो मे पूर्णशब्द सकुल हो उसे क्षात्र क्षेत्र कहते है।

---

[1] पार्थिव क्षेत्र-पीत स्फुरद्वलयशर्करिलाश्म रम्य पीतं यदुत्तम मृगं चतुरस्र भूतम्।
प्रायश्च पीत कुसुमान्वित वीरुदादि तत्पार्थिव कठिन मुद्यतशेष तस्तु ॥

[2] आप्य क्षेत्र--अर्द्ध चन्द्राकृतिश्वेत कमलाभ दृषच्चितम्।
नदी नद जलाकीर्ण आप्य तत्क्षेत्रमुच्यते।

[3] तैजस क्षेत्र--खदिरादि द्रुमाकीर्ण भूरि चित्रक वेणुकम्।
त्रिकोण रक्त पाषाण क्षेत्र तैजसमुच्यते ॥

३. वैश्य क्षेत्र—शातकुंभ निभ भूमि भास्वरं स्वर्ण रेणु निचितं निधान वत्।
सिद्ध किन्नर सुपर्व सेवितं वैश्यमाख्य मितीदं शेखरः।

अर्थात् जिस भूमि का वर्ण पीत वर्ण हो या स्वर्ण वर्ण हो जिस के कण स्वर्ण की तरह चमकते हो, सिद्ध किन्नरादि द्वारा जो सेवित हो वह भूमि वैश्य भूमि कहलाती है।

४ शूद्र क्षेत्र—श्यामस्थलाढ्यबहु शस्य भूतिदं लसतृणं बब्बुल वृक्ष वृद्धिदम्।
धान्योद्भवैः कर्षक लोक हर्षदजगाद शौद्रं जगतो वृष ध्वजः।

अर्थात् जो भूमि काले वर्ण की हो, नाना प्रकार के तृण व घास आदि होते हो, तृण व बबूल अधिक हो, जहा के किसान प्रसन्न हो उस भूमि को शूद्र क्षेत्र कहते हैं।

इस प्रकार चार तरह की भूमि का विवरण मिलता है।

वाराह मिहिर ने भी वर्ण भेद से चार प्रकार की मृत्तिका का श्वेत, रक्त, पीत व कृष्ण यह बतलाया है। यथा—

सित पीत रक्त कृष्णा विप्रादीनाप्रशस्यते भूमि । वाराही संहिता वास्तु ।
अ० ५३ श्लोक ९६

इस प्रकार उत्तम भूमि का चयन करके तब औषधि ग्रहण का क्रम बनाना चाहिये। भूमि चयन का एक प्रधान कारण यह भी है कि विभिन्न प्रकार की भूमि मे विभिन्न गुण वाले द्रव्य पाये जाते है। सुश्रुत ने इस का विवरण सुदर किया है। यथा—

विरेचन द्रव्य—तत्रपृथिव्याम्बुदगुण भूयिष्ठायांभूमीजातानि
विरेचनद्रव्याणि आददीत।

वमन—अग्न्याकाश भूयिष्ठायांवमन द्रव्याणि।

वमन विरेचन—उभय गुण भूयिष्ठायांउभयतोभागानि।

संशमन—आकाश गुण भूयिष्ठायांसशमन द्रव्याणि। बलवत्तराणि भवति।
आदि। इस प्रकार की भूमि की अवस्था मिलती है। राज निघटुकार ने एक और भूमि का विभाग दिया है। इसने इस आधार पर देश का भी प्रविभाग बतलाया है।

राज निघटुकार ने निम्न रूप मे भूमि का भेद गिनाया है।

१ उर्वरा भूमि २ शर्करा भूमि ३ क्षार भूमि ४ कृष्ण भूमि ५ पाडु भूमि।

उर्वरा भूमि—जो भूमि सर्व प्रकार के शस्य को उत्पन्न करती है वह उर्वरा भूमि है।

शर्करा भूमि—रेत वाली भूमि शर्करान्वित भूमि कहलाती है।

क्षार भूमि- ऊमर भूमि या क्षार युक्त भूमि रेतीली व खारी भूमि वाली भूमि को कहते है।

कृष्ण भूमि--जहाँ की भूमि काली हो उसे कृष्ण मृद्देश कहते है।

पाण्डु भूमि--जिस की भूमि पीली हो उसे पाडु भूमि कहते है।

अन्य भी कई भेद देश के अमरसिंह व अन्य लोगो ने किया है। यथा--

१ **देवमातृक देश**--जो देश प्राकृतिक जल वृष्टि पर निर्भर रहता हैं।

२ **नदी मातृक देश**--जो देश नदी के जल पर सीचा जाकर अन्न उत्पादन करता है।

३ **द्वैमातृक देश**- जा देश दोनो प्रकार के जल वृष्टि व नदी जल से लाभ उठाते है।

४ **म्लेच्छ देश**--जहा पर म्लेच्छो का आवास होता है।

५ **आर्यावर्त**--जहा की भूमि मे आर्य लोगो का निवास होता है।

६ **मध्यदेश**--जहा पर सब प्रकार के व्यक्ति रहते है।

७ क्षेत्र भेद से कई भेद है यथा--

१. **कुमुद्वान**--जहा पर कमल अधिक होते ह।

२ **शाद्वल क्षेत्र**--जहा की भूमि हरी भरी हरियाली युक्त होती है।

३ **सजम्वान क्षेत्र**--जहा की भूमि मे पक अधिक हो और उपज अति सामान्य हो।

४ **शार्कर क्षेत्र**--जहा की भूमि मे रेत अधिक हो मृत्तिका कम हो।

५ **आनूप क्षेत्र**--जहा की भूमि मे जलाधिक्य रहता है।

६ **सैकत क्षेत्र**--जहा की भूमि मे रेत ही रेत हो।

मौद्ग क्षेत्र--जहा की भूमि मे मूग ही मूग उपजता हो।

माषीण क्षेत्र--जहा की भूमि मे उडद ही होता हो।

शालि क्षेत्र--जहा की भूमि मे धान्य ही अधिक होता हो।

इस प्रकार से देश का व क्षेत्र का जो विभाजन है वह कई बातो पर निर्भर करता है। जिनमे प्रधान निम्न है--

१ जलवायु　२ उष्णता　३ प्रकाश　४ भूमि की बनावट आदि जिनका विवेचन निम्न है।

जलवायु या क्लाईमेट--इस के लिए निम्न बातो का विचार करना पडता है।

१ उष्णता या तापमान या गरमी--वनस्पति जीवन के लिये गरमी की आवश्यकता सब स्वीकार करते हैं। कुछ वनस्पतिया अल्प उष्णता मे ही अपना जीवन चला लेती हैं। वह अधिक गर्मी पडने पर अपने जीवन व्यापार को चलाने के लिये अपने मुख छिद्र या स्टोमेटा को वद करना, रात्रि मे पत्रो को सक्रिय करना, पुष्प का पोषण करना यह सब कर लेती है।

बहुजलीय वनौषधियाँ—जल की आवश्यकता का विवरण जो बतलाया गया है वह वनौषधि जीवन पर पूरा प्रकाश डालता है। यथा. बहुजलीय वनौषधिया पानी के भीतर रहती है या इनका भाग आंशिक रूप मे पानी मे डूबा रहता है। जो डूबे रहते है वह ट्रासपिरेशन मे अपने भीतर का जल बाहर नही निकालते। इन पौधो मे ट्रासपिरेशन या तो होता नही या कम होता है। इनके पानी मे डूबे भाग नरलता से पानी का शोषण कर लेते है।

अत यह अन्य द्रव पदार्थ को कम लेते है या नही लेते। इनमे जाइलम व फ्लोयम की रचना कम विकसित होती ह। इन के पानी मे डूबे रहने वाले भाग वायु कोषो से भरे होते है और इनमे आक्सीजन भरा रहता है।

अल्पजलीय पौधे—इस प्रकार के पौधे मरु भूमि मे अथवा जहा अल्प जल हो या मिलना अनियमित होता है वहा उगते है। इन के निवास स्थान मे शुष्कता रहती है अत ट्रासपिरेशन की गति मे सहायता मिलती है। अत यह पौधे विभिन्न प्रकार के होते है। इनका प्रधान उद्देश्य पानी को रोक रखना ट्रासपिरेशन पर नियत्रण रखना प्रधान होता है। इनके अगो मे परिवर्तन के कुछ उदाहरण है यथा—

१ इन के स्टोमेटा अदर की तरफ निम्न भाग मे होते ह। सतह पर नही होते। अत ट्रासपिरेशन कम होता हे। पानी खर्च नही हो पाता।

२. बहुत से पौधो मे छिद्र एक तरफ ही पत्तियो के सतह पर होता हे। जल रोकने के लिये ये पत्तियाँ मुड जाती है और जल निकलने का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

३. पत्तियो की सतह पर रोये होते है और पत्र की सतह ढकी होती है। इससे इसके भीतर से पानी नही उडता।

४. अल्प जलीय पौधो की पत्तिया प्राय छोटी होती है। जिससे सतह का क्षेत्र फल कम हो जाता है। अत ट्रासपिरेशन कम होता हे।

५ पत्तिया चौडी चपटी न होकर काटो का रूप धारण करती है अत जल शोषण नही होता।

६ ऐसे पौधो का बाहरी स्तर मोटा होता है अत जल का शोषण नही होता।

७ कुछ पौधे पानी को अपने अदर रोक लेते है इनकी पत्तिया तने रसीले होते है। त्वचा मोटी होती है। यथा—नागफणी।

८ कुछ पौधे गर्मी के ऋतु मे अपनी वृद्धि रोक देते हैं फिर अनुकूल दशा होने पर बढते है। यथा—चीड।

अधिक गर्मी पड़ने पर कई फल वाले पौधों के मुरझा जाते हैं या फल कट जाता है। और बीज प्राय वनस्पतियां २० से ४० डिग्री सेंटीग्रेड की गर्मी पसन्द करती है। कई वनस्पतियां २ डिग्री से नीचे और ८५ डिग्री की उष्णता से नष्ट हो जाती हैं। बहुत सी बर्फ की शीतलता मे भी जीवन व्यतीत करती है। शीत प्रदेश, उष्ण प्रदेश, समशीतोष्ण प्रदेश के पेड़ पौधों मे गर्मी के तारतम्य के आधार पर बहुत अंतर मिलता है। अत गर्मी वनस्पति जीवन के लिये अत्यावश्यक वस्तु है।

प्रकाश–प्रकाश का स्थान वनस्पति जीवन मे महत्व पूर्ण है। वनस्पतियों के शरीर विज्ञान को ध्यान पूर्वक अध्ययन करें तो ज्ञान होगा कि वनस्पति की हरीतिमा, कार्बन सात्म्यीकरण, वाष्पी भवन आदि कार्य प्रकाश की उपस्थिति मे होते है। इस प्रकार यह प्रकाश वनस्पति जीवन मे प्राण वत् जीवन व स्नायु का कार्य करता है छायेदार पौधो के नीचे के पौधों के पत्ते बड़े पतले होते है। शाखायें लम्बेपर्व वाली होती है। पत्र व डंठल कोमल व पतले होते हैं। उन के छाती मे पर्ण हरित कम होता है। पत्रमुख छिद्र स्टोमेटा दोनो तरफ होते है। ऐसी वनस्पति जो छाये मे रहती है उसे छाया प्ररोही या सायोफाइट्स (Ciophytes) कहते हैं। कुछ वनपस्पतियां जो तृण वर्ग की होती है अथवा तनराज या कोई वर्ग की होती हैं जो कम प्रकाश मे भी हरी होती है उन्हे हेलियोफाइट्स, (Heliophytes) कहते है। इन्हे प्रकाश प्ररोही भी कह सकते है। इनका जीवन प्रकाश की कमी वेशी पर निर्भर करता है, जो प्रकाश की महत्ता को वतलाता है।

जल–वनस्पति जीवन के लिये जल की आवश्यकता बहुत ही अधिक है जैसे मनुष्य जीवन के लिये जल माना जाता है। पानी का अंश इनके सब अंगों मे व्याप्त रहता है और यह ९० प्रतिशत तक पाया जाता है। अच्छे जल प्रदेश मे वनौषधियाँ अधिक होती हैं। मरु प्रदेश मे जहा जल की मात्रा कम होती है वनोषधिया कम होती है। बहु जलीय वनौषधि को जलाशी वनस्पति की रचना मे जल के आधार पर पार्थक्य होता है।

वायु–वनस्पति जीवन मे जल की तरह वायु की भी आवश्यकता होती है। किन्तु अत्यधिक वायु की आवश्यकता नही समझी जाती। उन प्रदेशो मे जहा जल होता है, घना जगल होता है, पेड बडे होते हैं। वायु के तीव्र वेग को भी ऐसे पौधे सह लेते है। तीव्र वायु क्षेत्र मे रहने वाले पेड ताड, नारियल, खजूर आदि जाति के होते है। जिन के पत्र फटे हुवे लम्बे व दृढ होते है। और हवा के तीव्र झोंके इसमे निकल जाते है। और जल्दी टूटते नही। पेड पौधे कम होते हैं। इस प्रकार जैसे जैसे ये पौधे अपने जीवन मे वायु का उपयोग करते है उनमे वायु से वचने का साधन स्वय वन जाता है।

देश की व भूमि की रचना मे कई क्रम होते है। इसे क्रमश खोद कर देखे तो कई स्तर दिखाई पडते है और कई प्रकार की मृत्तिका मिलती है। यथा काली पीली रेतीली कणदार व खारी। इनका महत्व विभिन्न प्रकार के वनस्पति जीवन के लिये आवश्यक होता है। भूमि को उर्वरा वनाने मे कई प्रकार के क्रिमि भी भाग लेते है। यथा झिगुर गुबरैले आदि इनका सामान्य विवरण निम्न है–

काली मिट्टी– कृष्ण मृत् मे ५० प्रतिशत काली मिट्टी का होना आवश्यक है। इसमे पानी **हवा दोनो अनुचित रूप मे इकट्ठे होते है**। इनके कण सूक्ष्म होने से पानी को छनने नही देते। स्तर बडे और कठिन होते है। एक बार भूमि गीली होने पर सरलता से वायु को नही जाने देते। सूखने पर अधिक पानी पाने पर मृदु होती है। यह भारी और चिकनी होती है।

रेतीली या मरु भूमि—यह भूमि रवे दार कणो से युक्त होती है। इसमे पानी रुकता नही। यह हल्की व जल्द सूखने वाली होती है। इसमे जल व वायु दोनो का भाग अधिक होता है और सरलता से निकल जाता है। **इसमें १० भाग मिट्टी का व शेष भाग रेत का होता है।**

गौर मृत् या पीली मिट्टी—वनस्पति के उपज के लिये गौर मृत्तिका का महत्व बहुत अधिक है। यह वनस्पतियो के जीवन की हर प्रकार की पूर्ति कर देती है। **इन में पानी नीचे तक पहुँचता है। हवा भी दूर तक जाती है। इस भूमि में कम से कम ३० प्रतिशत मृत्तिका होती है।**

इस मे कई प्रकार के रासायनिक द्रव्य मिले रहते है जो भूमि को उपजाऊ वनाने मे सहायक होते है। इनमे नमक आदि अधिक मात्रा मे हो तो जमीन शुष्क हो जाती है। इसमे जलाकाक्षी वनस्पतिया अधिक होती है। जिस भूमि मे जीव जतु व घास फूस अधिक होते है वह उपजाऊ होती है। जिस भूमि मे **नाईट्रोजन गंधक फासफोरस चूना लोहा मैगशियम** पोटेशियम अधिक होता है वह उपजाऊ होती है। आज के नवीन अन्वेपणो से ज्ञात हुआ है कि जिस भूमि मे **बोरोन मैंगेनीज और यशद का भाग अधिक होता है उपजाऊ बनाने** मे भाग लेता है।

अम्ल रस का होना भूमि के लिये लाभदायक होता है। **चूना का एक निश्चित** प्रभाव मे होना लाभप्रद माना जाता है। **जो भूमि अधिक गीली होती है उसमें अम्ल की उपस्थिति अधिक मानी जाती हैं। कितनी ही वनस्पतियां समुद्र के किनारे की भूमि में होती है**। जिनका स्वाद खारा होता है। या अम्ल होता है।

समुद्र की गीली भूमि के वनौषधियो का स्वाद अम्ल लवण होता है। खारी व नमकीन भूमि तालाव या नदी के छोर भाग मे सूखने पर पपडीदार

हो जाती ह इनमें अम्लता रहती है वह भूमि जिस मे रेह सज्जी का भाग अधिक होता है उन मे पलाश, कुमारी अधिक होते है इन भूमि के रसो मे परिवर्तन होता रहता है। वहा के पौधो की जडे अधिक गहरी होती है जो सट कर खाद बनाती है। कुछ पौधे ऐसे होते है जो नाइट्रोजन को अधिक एकत्र करते है और भूमि को उपजाऊ बनाते है। यथा– मूंग, उडद, मटर, अरहर आदि जो द्विदल वर्ग के होते हैं।

जीवित प्राणि व भूमि––भूमि को उर्वरा बनाने के लिये प्राणियो का सहयोग भी लाभदायक होता है। आहार प्राप्ति के लिये वनस्पतियाँ कठिन परिश्रम करती है बहुत सी परोपजीवी वनस्पतियाँ बडे बडे पेड पौधो पर अपना जीवन निर्वाह करती हैं। यथा––रास्ना, वदा, पीपल, वट, अश्वत्थ आदि।

शिम्बी वर्ग की वनस्पतियो के साथ बकटीरिया का अधिक सबध है जमीन के भीतर बहुत से सूक्ष्म प्राणी व बडे प्राणी उपजाऊ बनाने मे भाग लेते हैं।

इस प्रकार भूमि की महत्ता का विवरण मिलता है।

८. औषधि द्रव्यों की खेती
(Cultivation of the Drugs)

जितने द्रव्य औषधार्थ व्यवहृत होते हैं उनमें अधिकाश खेती करके उपलब्ध होते है। इनमे आहार द्रव्य, औषधि द्रव्य, तैल द्रव्य और मसाले वाले वस्तु का अधिकतर उपयोग खेती से प्राप्त द्रव्यो मे ही होता है। आहार द्रव्यो मे जितने भी द्रव्य है उसमे शूक धान्य, शमीधान्य व क्षुद्रधान्य यह सब कृषि से ही मिलते हैं। स्निग्ध द्रव्यो म उद्भिजो मे प्राप्त होने वाले तिल, अलसी, एरड, मूँगफली, कुसुम्ब, सर्षप, राई आदि सबही द्रव्य स्नेहनार्थ और औषधि के लिए कृषि मे प्राप्त होते है। मसालो मे धनिया, हल्दी, लवग, इलायची, दालचीनी, कालीमिर्च, पीपल, लालमिर्च आदि सब सामान कृषि से ही मिलते हैं। कुछ द्रव्य ऐसे भी है जिनके लिए खेती की जाती है– यथा अफीम, भाग आदि। कभी-कभी अच्छी उपज के लिये भी खेती करनी पडती है। आजकल बहुत से द्रव्य जो कि जगलो से एकत्रित किये जाते है, वह सब पहले खेतीमे प्राप्त होते थे। औषधियोके लिए जगल (वन) भी उचित साधन है, जहा से औषधियो का सग्रह किया जाता है। पहाडी प्रान्तो मे कई द्रव्य पाये जाते है। यथा वत्सनाभ, अष्टवर्ग, हरड, वहेडा आवला आदि।

सामान्यरूप मे औषधि द्रव्योकी खेती का अभिप्राय प्रधानरूप से उनकी गुणावत्ता का विशेषरूप से पाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार के द्रव्य मे औषधि तत्त्व अधिक मिलते है। इसके प्रधान हेतु निम्न है—

(१) कुछ निश्चित औषधियो की प्राप्ति जिनकी खपत अधिक है और उनके उत्तम उत्पादन की आवश्यकता समझी जाती है। यथा वत्सनाभ, दालचीनी, लवग, तगर, सिनकोना।

(२) विशिष्ट भूमि की औषधियो मे रस, गुण, वीर्य, विपाक अधिक पाये जाते है। यथा केशर, कुष्ठ, वेलाडोना, पुष्कर मूल।

(३ विशिष्ट जलवायु मे जहा संग्रह करने, उनके छीलने आदि का उत्तम प्रबन्ध होता है। यथा आर्द्रक, दालचिनी, हृन्पत्री, सुरजान, कालीमिर्च, इलायची।

विशेष रूप मे व्यापारी उस भूमि मे उत्पादन करना अधिक चाहते है, जहा पर उत्पादन सस्ता हो, भूमि सस्ती मिलती हो, माल भेजने मे भूमि या समुद्र नजदीक हो। रोपणकी सुविधा, खाद की सुविधा, कीट पतगो से बचने की गुंजाइश हो आदि आदि तथा जहापर पर्याप्त धन लगाने की सुविधा हो और सग्रह करने का साधन हो, इनकी प्राप्ति के लिये खेती के साधन, द्रव्यो मे जाति का सुधार, उत्तम किस्म का उत्पादन आदि की सुविधा के लिये कई बाते अपेक्षित है। यथा —

ऋतु--कई प्रकार के द्रव्यो की उत्पत्ति के लिये वहा की गर्मी, सर्दी, वर्षा व भूमि की उचाई का ध्यान रखना आवश्यक होता है।

उष्णता—सबसे अधिक उष्णता विषुवत रेखा के पार्श्विक प्रदेशो मे होती है। किन्तु प्रत्येक ३४ फीट की उचाई पर १ डिग्री उष्णता की कमी होती है। अत उष्ण प्रदेशो मे सामुद्री किनारे के उष्ण और पर्वतीय देशो को सामान्य रूप से शीत गिना जाता है। सिगापुर का तापमान बहुत सामान्य २५ फा० और मास्को जैसे प्रदेशो मे भी २७ फा० की उष्णता पाई जाती है। भारतवर्ष मे इस प्रकार की सुविधा अन्य देशो की अपेक्षा अधिक उत्तमता से पाई जाती है। यहा के पर्वतीय क्षेत्रो मे कम तापमान दक्षिण व मध्य भागो मे उष्ण और सामुद्रिक किनारो पर समशीतोष्ण रहता है। अत सामान्य रूप से द्रव्य उत्पादन मे यहा की भूमि अच्छी समझी जाती है। यथा—कोचीन, कालीकट की भूमि मे शुंठीका उत्पादन, देहरादून व आसाम की पहाडियो पर चाय, मद्रास मे कॉफी और समतल भागो मे जीरा, सोफ, धनिया, मेथी आदि मसालो के अनुकूल प्राकृतिक ऋतु सुलभ है। एरण्ड के लिये उष्ण ऋतु व समतल भूमि, शर्करा के लिये वर्षा ऋतु और समतल भूमि चाहिये। चाय के लिये ३००० से ६००० फीट की ऊचाई, कोका के लिये २०० से ५०० ऊचाई, कॉफी के लिये २५०० से५००० फीट की ऊचाई चाहिये। वर्षा का प्रभाव पेड पौधो पर अधिक होता है। उष्ण ऋतु व शीत ऋतु मे उत्पन्न औषधियो, शीत व उष्णप्रदेश मे उत्पन्न औषधियो व समशीतोष्ण प्रदेश मे उत्पन्न औषधियो मे उनके तात्विक सगठन मे बहुत अतर हो जाता है अतः उनके रस गुण व

वीर्य, विपाकमे भी अन्तर आ जाता है अत हिमालय की औपधि की चरकादि महर्पि वीर्यवान मानते हैं। यथा—

हिमवत औषधि भूमिपु

अत ऋतुका प्रभाव विशेप रूप से वनौषधि के उत्पादन मे पडता है।

प्रदेश-आयुर्वेद मे प्रदेशो का विभाग इस आधार पर विशेप प्रकार का दिखाई पडता है यथा—जागल, आनूप व सामान्य भूमि प्रदेश। आधुनिक कृपि शास्त्री भी इस प्रकार का भेद मानते है और उनका प्रविभाग निम्न है यथा —

(१) जागल या वुडलैंड (Wood lands)

(२) मैदान या ग्रास लैंड (Grass lands)

(३) मरुभूमि या रेगिस्तान (Desert)

उनके विचारमे भूमि का निम्न विवरण होता है यथा—

उष्णकटिबंधीय जागल प्रदेश या ट्रापिकल वुडलैण्ड (Tropical wood land), वर्षा प्रधान प्रदेशो मे ससार मे ब्राजिल, ब्रह्मा, मलाया, दक्षिणी नाईजीरिया है। भारतवर्ष मे भारत के केरल, बगाल, आसाम के प्रदेश आते है जिनमे ४० इच से अधिक पानी बरसता है। यहा की वनौपधिया व अन्य उद्भिज्ज सदा हरित मिलते है। वृक्ष कम से कम २० फीट ऊचे सुन्दर व वदाक जाति के पौधो मे भरे होते हैं, जो अन्य पेडो के ऊपर अपना निर्वाह करते है।

बरसात जागल भूमि—मानसून फोरेस्ट्स (Mansoon Forests)—इस प्रकार के जगल मालाबार, लका, पश्चिम बगाल और हिन्दी चायना मे होते है। इस स्थान के वृक्ष वर्षा प्रधान जगलो मे छोटे और उष्ण ऋतु मे पत्र रहित हो जाते है।

बड़े वृक्ष रहित जंगल (Savannah Forests)—इस प्रदेश के वृक्ष २० फीट से कम ऊचे होते है। और घास या तृण जाति के पौधे अधिक होते है। ग्रीष्म ऋतु मे ये पौधे पत्र रहित हो जाते है। इनमे जडी बूटिया सामान्य औषधिया झाडीदार वृक्ष प्रधान रूप मे उगते है।

कटकी जगल या थारनी फारेस्टस (Thorny Forests)—इस प्रकार के जगल मे झाडीदार कटकी वृक्ष होते है। जिनमे स्नुही, करमर्द गूगल, करीर या विरकत आदि जातिके पौधे अधिक होते है। ग्रीष्म ऋतु मे इनके पत्र गिर जाते है। फिर भी वृक्षो के नीचे पौधे काटेदार पौधे, कोमल पौधे, जमीन पर फैलने वाले पौधे अधिक मिलते है। (Terrestrial herbs)

उष्णकटिबधीय तृणभूमि या ट्रापिकल ग्रास लैंडस—इस प्रकार की भूमि मे वृक्ष रहित तृण जाति के पौधे अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं। इस प्रकार की भूमि मे अफ्रिका, दक्षिणी अमेरिका और भारत वर्ष की कुछ भूमि पाई जाती

है। जहां पर पानी वरसने व न बरसने का समय निश्चित होता है। इनमे घास अधिक उगती है। जिनकी उचाई ६ फीट तक होती है। नीचे के क्षुप व पौधो पर यह लिपट जाती है। इनमे छोटी झाडिया और पौधे होते है।

समशीतोष्ण भूमि या ट्रापिकल वुड लेंडस (Tropical woodlands) उष्ण कटि वर्षीय जागल भूमि इस प्रकार की भूमि मे पेड-पौधे व जडी बूटिया अधिक होती है। जहा शीत कम पडती है, वृक्ष पौधे वर्षाकाल मे सदा हरित रहते हैं।

किन्तु जहा शीत अधिक होती है वहा के पेड व पौधे छोटे और कम पत्रयुक्त या पत्ररहित होते है, यथा देवदारु वर्ग के बहुत से वृक्ष व पौधे रेतीली भूमि मे व धुसरी भूमि, दलदली भूमि और पर्वतीय भूमि मे पाये जाते है।

सामान्य समशीतोष्ण भूमि या टेम्परेट ग्रासलैड माइल्ड टेंपरेट रीजन (Mild Temperate regeon)--इसमे शीत कालीन वर्षा है। भारतीय पूर्वी पश्चिमी घाट, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, केलीफोर्निया इत्यादि मे सदा हरित अल्प जल मे जीने वाले पौधे अधिक होते है। यथा-जैतून, काजू, तुवरक आदि। आर्द्रता की स्थिति मे कटकी जगल की स्थिति वन जाती है।

समशीतोष्ण तृणभूमि या टेंपरेट ग्रास लैड--(Temperate grass lands)—इस भूमि मे शीत उष्णता के आधार पर तृण या घास की वृद्धि होती है। इसमे वृक्ष वहुत छोटे होते हैं। ऐसे प्रदेश दक्षिणी अफ्रिका व दक्षिणी अमेरिका मे मिलते है।

भूमि चयन--औषधियो की खेती के लिये उचित भूमि की आवश्यकता होती है। भूमि मे पाई जाने वाली वस्तुओ के आधार पर उपज निर्भर करती है। यथा-मोटी रेती, सूक्ष्म रेत, ककड या ग्रेवेल्स, मोटे चट्टानीय ककड, उत्तम मिट्टी साधारण मिट्टी इत्यादि।

इनकी मात्रा उत्तम भूमि या साधारण भूमि की रूपरेखा तैयार करते है। प्राचीन चिकित्सको ने इसके ऊपर विचार किया था और इसके भाग प्रविभागो का उल्लेख किया है। आधुनिक कृपिशास्त्री भी इसे स्वीकार करते हैं।

महर्षि चरक ने इसको निम्न रूप मे स्वीकार किया है।

उत्तम औषधि उत्पादक भूमि में—

१ स्निग्ध मृत्तिका या पिंडोल।
२ स्निग्ध कृष्ण मृत्तिका या काली चिकनी मिट्टी।
३ स्निग्ध मधुर मृत्तिका या चिकनी मिट्टी।
४. सुवर्णवर्ण मृत्तिका या पीली मिट्टी।
५ मृदु भूमि या कोमल मृत्तिका।
६. अफाल कृष्ट मृत्तिका की उत्पन्न औषधि उत्तम होती है।

सुश्रुत ने भी भूमि प्रविभागीय अध्याय में भूमि का अच्छा विवरण दिया है। यथा–उनका कथन है कि अभ्रक, कंकड़, पत्थर मिली भूमि, गड्ढा मिश्रित भूमि, ऊंची, नीची व वल्मीक की भूमि, श्मशान की भूमि का त्याग कर के उत्तम भूमि को इस निमित्त चुनना चाहिए। उत्तम भूमि वह है जिसमें क्षार न हो, फूटने वाली, जल से अधिक दूर न हो, ऐसी मृत्तिका जिसमें स्निग्ध मृत्तिका युक्त भूमि जिसमें कृष्ण वर्ण, गौर वर्ण, लोहित वर्ण की मृत्तिका हो औषधार्थ ग्रहण करनी चाहिये। सुश्रुत ने इसके पाँच विभाग किये हैं।

पार्थिव भूमि—जो पत्थर युक्त, कंकड युक्त, स्थिर, भारी श्याम या काले वर्ण की हो, जहाँ बडे-बडे पड हो, हरे हरे वृक्ष व घास इत्यादि अधिक हो वह पार्थिव भूमि है।

आप्य भूमि—जो स्निग्ध हो, थोडी-सी खोदने पर जल निकल आता हो, जो शीतल व कोमल हो, धान्य तृण व हरे भरे वृक्ष वाली हो वह आप्य भूमि कहलाती है।

आग्नेय भूमि—जो नाना वर्ण की छोटे-छोटे पत्थर व कंकडों से युक्त, लघु गुण वाली, अल्प वृक्षों वाली, जो पीले वर्ण की लता व वृक्षों से युक्त हो।

वायव्य भूमि—जो भस्म के वर्ण या रासभ के वर्ण की हो, जिनमें छोटे छोटे वृक्ष व कोटर युक्त हो व अल्प रस वाले वृक्षों से युक्त हो, वह वायव्य भूमि होती है।

नाभस भूमि—जो भूमि कोमल, श्वेत, अव्यक्त रसवाली हो, जिसमें प्राय असार वृक्ष हो, पर्वत प्राय हो, जिसका वर्ण श्याम हो, रस जिसका अव्यक्त हो, उसे नाभस भूमि कहते हैं।

ठीक ऐसा ही विचार आधुनिक चिकित्सकों का भी है। यथा—कृषि योग्य भूमि या स्वायल का विवरण वे निम्न देते हैं।

उत्तम भूमि में निम्न बाते होनी चाहिये—

१ जिसमे पिडोल का भाग Clay Soil ५० प्रति
२ चिकनी मिट्टी (Loomy Soil) ३० से ५० प्रति
३ रेतीली चिकनी मिट्टी (Sandyloomy) २० से ३० प्रति
४ चिकनी रेतीली (Loomy Sands) १० से २० प्रति
५ रेतीली भूमि (Sandy Soil) ७० प्रति रेत
६ चिकनी भूमि (Clammy Soil) ५ से २० प्रति
७ चिकनी परतु चूना मिश्रित २० से अधिक चूना भाग
८ मिश्रित भूमि (Vegetable Soil) ५ प्रति अधिक आर्द्रता

ऊपर की भूमि तब निकृष्ट श्रेणी की गिनी जाती है जब ५ प्रतिशत आर्द्रता की कमी हो। मध्य शक्ति की जिसमें ५ से १५ प्रति आर्द्रता हो और

उत्तम, जिसमे १.५ मे छ प्रति स्निग्धता हो। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि उत्तम भूमि के लिये स्निग्धता व आर्द्रता का होना अत्यावश्यक है। वह भूमि जिसमे स्निग्धता अधिक व चूने का भाग कम हो अम्ल प्रतिक्रिया वाली और जिसमे चूने का भाग अधिक हो क्षारीय प्रतिक्रिया वाली समझी जाती है। इस प्रकार की भूमि मे उपजे द्रव्यो के गुण मे तारतम्य पाया जाता है। प्राय पौधो के लिये चूने वाली भूमि पोषक तत्त्व अधिक प्रदान करती हैं। यही कारण है कि प्राचीन चिकित्सक भूमि के विचार मे आनूप जागल व साधारण देश की कल्पना मे भूमिगत तत्त्वो का विवरण अधिक देते है।

इस प्रकार की भूमि के आधार पर प्राचीन चिकित्सको ने विभिन्न क्रिया कर द्रव्यों की सूची भी बनाई है। यथा--

विरेचन द्रव्य--पृथ्वी व अम्बुगुणवाली भूमि मे उत्पन्न।

वमन द्रव्य--अग्नि, आकाश, मारुत युक्त भूमि मे।

वमन विरेचनार्थ--उभय गुण भूमि मे।

संशमन द्रव्य—आकाश गुण प्रधान भूमि मे उत्पन्न होते है। इत्यादि।

भूमि के विषय मे तो प्राचीन चिकित्सक रस भेद मे भी भेद करते थे। यथा–मधुर भूमि, अम्ल भूमि, लवण भूमि, कषाय भूमि, कटु भूमि व तिक्त भूमि आदि।

पांच भौतिक आधार पर भूमि का विवरण

आचार्यो ने महाभूतो के आधार पर भी भूमि का विभाग किया है। यथा पार्थिव भूमि, आप्य भूमि, वायव्य भूमि, नाभस भूमि, आग्नेय भूमि आदि। जिनका विवरण देश के विवरण मे विशेष रूप से दिया गया है। उसे वही पर देखना उचित होगा।

भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये जैसे मिट्टी की विशेषता है उसी प्रकार भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये कई प्रकार के कीट भी भाग लेते है। यथा-- गडूपद, झिंगुर, गुबरैले व अन्य प्रकार के कई कीट छोटे या बडे। इनका सक्षिप्त विवरण निम्न है।

१. काली मिट्टी— रसो के आधार पर यह कहना उचित है कि अम्ल रस का जमीन मे अधिक होना महत्व पूर्ण नही है। चूने का एक निश्चित मात्रा मे मिला होना अम्ल का प्रतियोगी समझा जाता है। जो भूमि अधिक गीली होती है उसमे अम्ल की मात्रा का होना अधिक समझा जाता है। कितनी ही वनस्पतियाँ समुद्र के किनारे की भूमि मे पायी जाती है। जिनका स्वाद अम्ल होता है। या खारा होता है। खारी व नमकीन भूमि तालाब की भूमि व नदी के छोर की भूमि सूखने पर पपडी दार हो जाती है, इनमे अम्ल का भाग होता है और

वह भूमि जिनमे रेह खार, सज्जी का भाग होता है वहाँ पर पलाश, वासा, घृत कुमारी अधिक उगते है। इनमे क्षारीयता अधिक होती है। इन भूमि के रंगो मे भी परिवर्तन होता रहता है। वहा की भूमि के पौधो की जडे अधिक नीची भूमि मे जाती हैं, सडती है और खाद बनाती है। कुछ पौधे ऐसे है जो नाइट्रोजन को अधिक इकट्ठा करते है और भूमि को उपजाऊ बनाते है। यथा—मूंग, उडद, मटर, अरहर, चना इत्यादि। यह शिम्बी वर्ग के होते है।

जीवित भूमि व प्राणि—अभी हमने प्राणियो मे भूमि को उपजाऊ बनाने की चर्चा की थी। वनस्पति का जीवित प्राणियो से गहरा सबध है। आहार प्राप्ति मे वनस्पतियाँ कठिन प्रयास करती है। बहुत सी परोपजीवी वनस्पतियाँ पेडो पर अपना अड्डा जमाती है। वन्दा, रास्ना, पीपल, वट यह पेडो पर सरलता से अपना स्थान बनाती है। शिम्बी वर्ग की औषधियो के साथ बेक्टीरिया का अधिक घना सबध रहना है। भूमि मे रहने वाले बहुत से सूक्ष्म प्राणी व बडे प्राणी उपजाऊ बनाने मे सहायक होते है। इनमे भूमि के भीतर परिवर्तन होकर उपजाऊ बनाने मे बडी सहायता मिलती है।

भूमि को उर्वरा बनाने की विधि—भूमि को उर्वरा बनाने के लिये सर्व प्रथम उस भूमि को साफ करके हल मे जोतनी चाहिए। पश्चात् उसको आर्द्र बनानी चाहिये। जोतने, खोदने और आर्द्र करने के बाद भूमि मुलायम हो जाती है। उसमे वायु प्रवेश का मार्ग बन जाता है। इसके पश्चात भूमि के सूख जाने पर रोलर या पटेला चलाकर सम बना दी जाती है।

उर्वरा भूमि—भूमि की शक्ति के परिवर्द्धनार्थ कई प्रकार के खाद्य द्रव्यो का प्रयोग होता है। उत्तम खाद्य वही कहलाता है जिनमे चूना, फास्फेट, नाईट्रोजन व पोटेशियम का भाग मिला होता है। इस निमित्त कई प्रकार के साधनो का प्रयोग किया जाता है। यथा—

१. गोबर का बना हुआ खाद (Farmyard Manure)—यह सब प्रकार के खाद्यो मे उत्तम होता है। जो जमीन मे से खोदकर गोबर रखकर सडाकर तैयार किया जाता है।

२ मिट्टी मिला हुआ या कम्पोस्ट खाद (Compost Manure)—यह गोबर के साथ मिट्टी या कूडा करकट मिलाकर सडाकर बनाया जाता है। इसे मिश्र खाद्य या मैनोर कहते हैं।

३ हरित खाद—भूमि को तत्काल उसकी शक्ति को बढाने के लिये उसमे आर्द्रता व स्निग्धता उत्पन्न करने के लिये हरे द्रव्य या हरी वनौषधियो या तृण को भूमि मे मिलाते है। इस निमित्त प्राय ऐसे हरे द्रव्य को चुनते है जिनमे नाइट्रोजन का भाग अधिक होता है। विशेष कर शिम्बी वर्ग की औषधियां या घास लाभदायक होते है। इन्हे जमीन मे बो देते हैं और बडा होने पर इसको जोतकर जमीन मे मिला देते है।

वृक्षायुर्वेद मे इसका प्रयोग बहुत सुदर दिया हुवा है। इस निमित्त वे लोग मृदु भूमि का चयन करते थे। यथा—

मृद्वी भूःसर्ववृक्षाणाम्।

इसके बाद उसमे उर्वरा बनाने के लिये तिल को बोते थे और बढने पर उसे भूमि मे मिला देते थे।

यह खाद्य भिन्न-भिन्न द्रव्यो के लिये भिन्न-भिन्न होना चाहिये। विशेष प्रकार के खादो के लिये विभिन्न प्रकार के रासायनिक द्रव्य प्रयोग मे आते है। इनकी प्राप्ति हम भूमि से करते है। विशेष प्रकार के खाद भूमि मे नाइट्रोजन, फास्फेट व पोटेशियम की मिली भूमि मे मिलते है, अत इस निमित्त विशेष प्रकार के रासायनिक खादो का प्रयोग होता है, जिनको कारखानो मे तैयार किया जाता है।

उत्पादन या प्रोडक्शन—Production

औषधियों और विभिन्न प्रकार के द्रव्यो के उत्पादनार्थ कई विधियो का आश्रय लिया जाता है। जिनमे प्रधान निम्न है।

१ **बीज**—उत्तम प्रकार के बीज को सग्रह करके बोने के लिये प्रयोग करते है। इनमे प्रधान शतपुष्पा, धनिया, एरड, तिल, अलसी, कुसुम्भ आदि है। इनके बोने के लिये विभिन्न ऋतुओ की आवश्यकता होती है।

२. **कंद**—कई प्रकार के द्रव्य कद के कली, पुत्रिका या उसके काड को रोपण करके उत्पन्न किये जाते है। यथा—केशर, सुरिजान, अदरख, वत्सनाभ, जैलप।

३. **स्कंध**—कई प्रकार के द्रव्य बीज व कदो से उत्पन्न नही होते। इस निमित्त उनके काड का रोपण करके उगाया जाता है। यथा—वट, प्लक्ष, शोभांजन, उदुम्बर या अन्य क्षीरी वृक्ष।

रोपण कलम लगाना या अन्य विधि

कई प्रकार के वृक्षो के जातीय गुण बढाने अथवा अच्छी जातीयता की वृद्धि के लिये अन्य वृक्ष के साथ कलम लगाते है। उन्हे छीलकर मिट्टी या खाद देकर कुश के साथ बाध देते है और पानी देते रहते है। मूल निकल आने पर उन्हे काटकर अलग लगा देते है। विशेष कर पुष्प फल व कन्दो की जाति मे ऐसा करते हैं। इस प्रकार कई विधिया प्रयोग की जाती है।

६. औषधि मात्रा विज्ञान औषधि प्रमाण विज्ञान

डोजेस और पोसोलोजी (Doses or Posology)

औषधि मात्रा–औषधियों की मात्रा [illegible] आयुर्वेद के चिकित्सकों की विचार धारा [illegible] है। यथा–

रोगमादौ परीक्षेत ततो नतरमौषधम्।
तत कर्मभिषग् पश्चात् ज्ञान पूर्व समाचरेत्।

अतएव किसी रोगी की मात्रा के निर्णय में [illegible] आश्रय लेकर कई बातों पर विचार करना चाहिए। [illegible] विचार प्राप्त है–

द्रव्य देश बल कालमनल प्रकृति वय
सत्व सात्म्य तथा हार अवस्थाश्च पृथग्विधा।
सूक्ष्म सूक्ष्म समीक्ष्यैषा दोषौषध निरूपणे।
या वर्तते चिकित्साया न स स्खलति जातु चित्। अ. हृ. सू १२
पुनश्च –मात्रायानास्त्यवस्थान दोष मग्नि बल वय।
व्याधि द्रव्य च कोष्ठ च वीक्ष्य मात्राप्रयोजयेत॥

पुनश्च दोष प्रमाण नुरूपा हि भेषज प्रमाण विकल्पो बल प्रमाणा नुरूपो भवति। द्रव्य प्रमाण तु यदुक्त मस्मिन् मध्येषु नत् [illegible] वयो बलेषु।
तन्मूल मालम्ब्य भवेत् विकल्पोतेषाविकल्पयोऽभ्यधिको न भाव। च क. अ. १२
तत्र सर्वाण्येव औषधानिव्याधी पुरुष बलान्यभि समीक्ष्यविदध्यात्। सु सू अ ४०
मात्राया न व्यवस्थास्ति व्याधि कोष्ठ बल वय।
आलोच्य देश कालौ च योज्या तद्वच्च कल्पना। अ. स.

ऊपर के वाक्यो से स्पष्ट है कि मात्रा किसी द्रव्य की निश्चित नही है। क्यो कि आयुर्वेद के चिकित्सको की दृष्टि मे सूक्ष्म विवेचन पूर्वक कई विषयो पर विचार करके तब मात्रा का निर्णय किया जाता है। यद्यपि सामान्य मात्रा का निर्देश है फिर भी विवेचन पूर्वक कई विषयो पर विचार कर के तब ही मात्रा का निर्णय किया जाता है। इस विधि मे विचार करने पर चिकित्सक को कही भी धोका नही उठाना पडता। क्यो कि एक ही औषधि दोष दूष्य कालादि के विचार के अनुसार समान रूप से सब को नही दी जा सकती। अत मात्रा के निर्णय के समय चिकित्सक को निम्नलिखित विषयो को विचार करके तब मात्रा का निर्देश किया जाता है। यथा–– दूष्य, दोष, देशकाल बल, अग्नि प्रकृति, वय, सात्म्य आहार अवस्था, व्याधि द्रव्य, कोष्ठ रोगी की अवस्था लिंग क्रिया। इतने विषयो पर विचार करके तब चलने पर मात्रा का प्रमाण निर्भर

करता है। किन्तु उनमे भी विशेष कर भेषज प्रमाण विकल्प, का ध्यान रखना पड़ता है। यथा--**दोष प्रमाणानुरूपो हि भेषज प्रमाण विकल्पो बल प्रमाणानुरूपो भवति।** किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि औषधि की मात्रा का प्रमाण कुछ भी निर्दिष्ट नहीं है। क्योंकि सामान्य मात्रा के निर्देश के बिना दोष दूष्यादि के विवेचन पूर्वक किस आधार पर औषधि की मात्रा का निर्देश या निर्णय चिकित्सक देगा।

अत सामान्य मात्रा का निर्देश होना चाहिए। सामान्य निर्देश के बिना क्या निर्णय रहेगा। अत सामान्यापेक्षी उपर्युक्त १६ षोडश बातो का विवेचन कर के तब ही मात्रा का निर्देश किया जा सकता है।

यदि ऐसा नहीं तो हीन मात्रा मे व्याधि शमन का न होना तथा अधिक मात्रा मे किसी व्याधि का हो जाना, किस प्रकार सभव हो सकता है। अत ज्ञात होता है कि प्राचीन चिकित्सक सदा इस बात का विचार करके ही तब सामान्यापेक्षी मात्रा का निर्देश करते आये है और सूक्ष्म निरीक्षण पूर्वक अपना विचार प्रकट करते आये है। हीनाधिक मात्रा के विषय मे इनका विचार निम्न रहा है।

दोषवच्चातिमात्र स्यात्तस्यस्यात्युदक यथा।
संप्रधार्य बलं तस्मादामयस्यौषधस्य च।
नैवाति बहु नात्यल्पं भैषज्यमवचारयेत्॥ च० चि० ३०

पुनश्च--नाल्पं हन्त्यौषधि व्याधि यथाऽऽपोऽल्पा महानलम्।
मात्रया हीनया द्रव्यं विकारं न निवर्तयेत्।
द्रव्याणामति बाहुल्यात् व्यापत सजायते ध्रुवम्। च. वि अ ८--१०९

अत स्पष्ट है कि हीन मात्रा और अधिक मात्रा औषधि का निर्णय किसकी अपेक्षा करना चाहिए। अत स्पष्ट रूप मे सामान्य मात्रा का निर्देश होना ही चाहिए।

अतएव मात्रा क्या सामान्य रूप मे होगी यह विचारणीय है।

इस विषय मे विचार निम्न है।

सुश्रुत का विचार यह है कि मात्रा हमेशा एक सी ही नही होती। घटती बढती है। अत आयु के अनुसार मात्रा होती है। यथा--

तत्रोत्तरासुवयोवस्थासुत्तरोत्तरा भेषज मात्रा विशेषा भवंति।
ऋते च परिहाणे। तत्राद्या पेक्षा प्रति कुर्वीत।

अर्थात् आयु बराबर बढती रहती है अत इनके आधार पर आयु के उत्तरोत्तर अवस्थाओ मे मात्रा भी बराबर बढती है।

मात्रा--काश्यप सहिता के खिल स्थान मे स्पष्ट निर्देश है कि मात्रा ही चिकित्सा की मूल है। यथा।

मात्रा मूल चिकित्सितम्।

अत यह सभव नही है कि बिना मात्रा निर्देश के सब औषधियाँ समान रूप से एक ही मात्रा की होगी। अत मात्रा के निर्देशनार्थ आयु का निर्णय होना अत्यावश्यक है। आयु के आधार पर ही सामान्य मात्रा का निर्देश होता है। सुश्रुत ने वय को तीन भागो मे बाँटा है। यथा

वयस्तुत्रिविध---बाल, मध्य, वृद्धमिति।
बालास्तावदून षोडश वर्षा षोडश सप्ततयोरन्तरे मध्यवय, सप्तते रूर्ध्वं वृद्धमाचक्षते॥ सु० सू० अ० ३५

अर्थात् वय के तीन बडे प्रविभाग है। बाल, मध्य, वृद्ध। जिसमे १६ वर्ष तक बाल, १६ से ७० तक मध्य और ७० से ऊपर वृद्धावस्था होती है।

औषधियो की मात्राये प्राय मध्य वय के अनुसार ही निर्दिष्ट है। जहाँ विशेष आवश्यकता होती है वहाँ पर वृद्ध, बाल व मध्य का निर्देश हो जाता है। अत विचार करे तो हमे मध्य आयु के अनुसार ही विचार करना पडता है। उदाहरणार्थ पचविध कषाय कल्पना मे मात्रा का निर्देश निम्न रूप मे किया गया है। यथा

स्वरसः **स्वरसस्य गुरुत्वाच्चपलमर्धं प्रयोजयेत्।**
अहोरात्रोषित चाथ, पल मात्र रसपिवेत्।

अर्थात् पच विध कषाय कल्पना मे स्वरस सबसे गुरु होता है अत इसकी अर्द्ध पल की मात्रा है। जो अहोरात्र रख कर जल मे स्वरस निर्माण किये जाते हैं उनकी मात्रा एक पल या चार तोले की है।

इस पर भी कुछ चिकित्सको का विचार है कि द्रव्य की तीक्ष्णता के अनुसार भी मात्रा मे हेर फेर होता है। यदि तीक्ष्ण वीर्य औषधि हो तो उसकी मात्रा उपर्युक्त मात्रा मे चौथाई ही देना चाहिए। मध्य वीर्य हो तो आधी मात्रा मे देना चाहिए।

इन सब के होते हुये भी सामान्य मात्रा का निर्देश तो बाल, वृद्ध, मध्य के लिये होना ही चाहिए। इस तरह की मात्रा का निर्देश सतोष जनक नही होता। अस्तु शार्ङ्गधर ने एक मात्रा कल्पना का आधार निर्दिष्ट किया है। यथा यह सैद्धान्तिक दृष्टि कोण रखती है। यो तो चरक आदि ने प्रत्येक द्रव्य के साथ मात्रा का निर्देश किया है। घृत, तैल, चूर्णादि का भी मात्रा निर्देश है। फिर भी सामान्य मात्रा का निर्देश नही होगा यह कहना उचित नही है। यह मात्रा सभवत वनस्पति द्रव्यो के लिए ही मालूम होती है। यथा

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषज रक्तिका।
अवलेही कृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतै।
वर्धयेत्तावदेकैकांयावद्भवति वत्सर।
मासैर्वृद्धि स्तदुर्ध्वं स्यात् यावत षोडश वत्सर।
तत स्थिरा भवेत्तावद्यावद् वर्षाणि सप्तति.।
ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनै शनै। शा० १६

ऊपर के विचार मे १६ वर्ष तक की मात्रा भिन्न और १६ से ७० तक की मात्रा भिन्न और ७० वर्ष के ऊपर मात्रा भिन्न होती है। यह तीन क्रम दिखाई पड़ता है। फिर भी यह मात्रा कुछ बड़ी मालूम होती है। विश्वामित्र की पद्धति ठीक जँचती है। यथा

वय का प्रविभाग--

चरक सुश्रुत व वाग्भट के अनुसार वय की स्थिति निम्न मानी जाती है।

चरक	सुश्रुत	वाग्भट
बाल--- १ अपरिपक्व धातु १ से १६ वर्ष २ विवर्द्धमान धातु १६ से ३०	१ क्षीरप १ वर्ष तक २ क्षीरान्नाद २ से ४ वर्ष ३ अन्नाद ४ से १६	कौमारावस्था जन्म से १६ वर्ष तक यौवन १६ से ३४ वर्ष
मध्य वय ३० से ६० वर्ष तक	मध्य १६ से ७० तक वृद्धि १६ से २० यौवन २० से ३० वर्ष तक सम्पूर्णता ३० से ४० वर्ष हानि ४० से ७० वर्ष	मध्य ३४ से ७० वर्ष तक
वृद्धावस्था ६० से १०० वर्ष तक	वृद्ध या जरा ७० से ऊपर	वृद्धावस्था ७० से उर्ध्वकाल

ऊपर के विचारो का विवेचन करे तो सर्व सम्मत आयु का रूप निम्न होगा।

बालावस्था --१६ वर्ष तक, १६ से ६० या ७० तक मध्यमावस्था और ७० से ऊपर वृद्धावस्था या परिहार।

इन तीनो अवस्थाओ मे मात्रा भिन्न भिन्न होती है। जिन मात्राओ का निर्देश है वह मध्य मात्रा मे ही निर्णीत होती है। इसी को आधार मानकर बाल या वृद्ध की मात्रा का निर्देश किया जाता है। बाल काल से युवा तक महान परिवर्तन होता है। अत मात्रा के निर्देश मे बालक की मात्रा को क्रमश बढाया जाता है और उसका क्रम निर्दिष्ट होता है। शार्ङ्गधर ने जो मात्रा का निर्देश किया है वह सामान्य मात्रा न होकर के बाल्य काल से लेकर वृद्धावस्था तक का निर्देश करती है। ऊपर जिस मात्रा का निर्देश है वह निम्न प्रकार है--

अर्थात् बालक की प्रथम मास की मात्रा १ रत्ती होती है। प्रति मास वह १ रत्ती बढती है। इस आधार पर एक वर्ष मे मात्रा १२ रत्ती तक हो जाती है। एक वर्ष के बाद मात्रा एक एक माशे बढती है और १६ वर्ष तक १६

माशे तक हो जाती है। इस प्रकार १६ वर्ष की मात्रा ९६ रत्ती या एक तोले तक पहुचती है। इस मात्रा मे मृदु वीर्य वाली औषधि की मात्रा यह है। मध्य वीर्य की इसमे आधी और तीक्ष्ण वीर्य की इस मे आधी अर्थात् चौथाई होती है। काष्ठौषधि की यह मात्रा कुछ बडी सी लगती है। अत विश्वामित्र ने एक मात्रा का दूसरा उपक्रम वतलाया है। यथा—

विडग फल मात्र तु जातमात्रस्य भेषजम्।
एतेनैव प्रमाणेन मासि मासि विवर्द्धयेत्।
कोलास्थि मात्र क्षीरादे दद्यात् भेषज कोविदै।
क्षीरान्नादे कोल मात्र मन्नादे डुम्बरोमतम्॥ विश्वामित्र॥

इस प्रकार जात मात्र बाल की मात्रा १ विडग फल मात्र और प्रत्येक मास मे १ विडग बढकर वर्ष भर मे १२ विडग भर या २ रत्ती मात्रा होती है। ६ विड्ग वरावर एक रत्ती होता है। क्षीर पीने वाले वालक की मात्रा कोलास्थि मात्र, क्षीरान्नाद की मात्रा कोल के वरावर और अन्नाद की मात्रा १ उदुम्वर के वरा-वर होती है। इस प्रकार क्षीराद की आधे माशे और क्षीरान्नाद की एक माशे और अन्नाद की गूलर के छोटे फल के वरावर २ मे चार माशे तक होती है। मृदु मध्य और तीक्ष्ण वीर्य औषधि की मात्रा वैसे ही आधी और चौथाई हो जाती है। इस प्रकार मात्रा का विवरण विश्वामित्र और शार्ङ्गधर तक ही सीमित हो जाती है। इसे भी यदि मात्रा मानकर के चले तो ज्ञात होता है कि चरक व सुश्रुत ने मध्य वय को ही आधार मान कर के अपना विचार प्रकट किया होगा और पूर्ण मात्रा का ही निर्देश किया होगा। अत वय को आधार मान कर के चलने पर एक क्रम मिल जाता है कि १६ वर्ष की आयु से ६० तक ६ रत्ती की मात्रा का क्रम वना। ६० रत्ती या एक वर्ष की मात्रा यदि मान ली जाय तो जिसे उदुम्वर कहते है। तो एक वर्ष के वच्चे की मात्रा ६० का षोडषाश होगी। अर्थात् पौने चार रत्ती। ६ मास वाले को २ रत्ती और एक मास वाले को एक रत्ती की मात्रा वन सकती है।

अत १६ वर्ष के वालक के आधार पर मात्रा निकालने के लिये वालक के वर्षों को १६ मे भाग देकर जो अश आवे उसको पूर्ण मात्रा मान कर उसके उतने हिस्से कर के लेने मे मात्रा निर्वारण का क्रम वन जाता है। यथा चार वर्ष के वालक की मात्रा पूर्ण मात्रा का ४। १६ या १। ४ एक वटा चार होगा। आठ वर्ष का आठ वटा सोलह होगा। अर्थात् आधी। इस नियम से मिलता जुलता नियम डौलिंग का है। उसके अनुसार वालक के वर्षों को २० से भाग देकर जो भाग फल आता है उतना प्रौढ मात्रा का अश वालक का होता है। यथा—चार वर्ष के वालक की मात्रा चार वटे वीस या १। ५ एक पच-माश होगी। ऐसे ही दो नियम मात्रा के विषय मे आधुनिक विचारको के चलते है। वह है—**श्री यग की विधि व श्री कार्डलिंग की विधि**

श्री यग की विधि--बालक के वर्षों में १२ जोड कर के बालक की आयु के वर्ष में भाग देने पर प्रौढ मात्रा का अंश बालक का फलकल आता है। यथा--

एक वर्ष के बालक का	१ + १२ = १३	इनका भागांश बननेपर १।१३
४ वर्ष का	४ + १२ = १६	पूर्ण मात्रा का चौथाई भाग
१२ वर्ष का	१२ + १२ = २४	पूर्ण मात्रा का आधा भाग

काउलिंग की विधि--काउलिंग की विधि में बालक के वर्षों को १ जोड-कर २४ से भाग देते हैं। जो फल आता है वह प्रौढ मात्रा का अंश होता है।
यथा-- ४ वर्ष में ४ + १ = ५ ५ / २४ प्रौढ मात्रा का पाच बटा २४
१२ वर्ष में १२ + १ = १३ १३/२४ प्रौढ मात्रा का १३।२४
इन विधियों से बाल मात्रा का निर्णय होता है।

आयुर्वेद में शार्ङ्गधर व विश्वामित्र की विधि का क्रम सीधा है। उसे अपनाना चाहिए। चरक व सुश्रुत शार्ङ्गधर की विधि मानते थे या नही इस विषय में कुछ कहना उचित न होगा। चरक व सुश्रुत ने मात्रा का विवरण इस प्रकार तो नहीं दिया है जिस प्रकार शार्ङ्गधर व विश्वामित्र का है। किन्तु वय का निर्धारण किया है। इसके आधार पर वयोपेक्षी मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है। ऊपर वर्णित विवरण सामान्य गणित का क्रम है जिसके आधार पर यह मात्रा सूत्र बन सकता है। सामान्य रूप से १६ वर्ष तक की मान आयु की, बाल आयु की मर्यादा है। इसको ही आधार मानकर पूर्णायु मात्रा से डीलिंग व यग और काउलिग की तरह मात्रा निर्देश हो सकता है।

इस आधार पर मात्रा का मान निकाला जा सकता है।

इस मात्रा का भी कतिपय चिकित्सक तारतम्य के रूप में विचारार्थ रखते हैं। यह मात्रा भी पूर्व कथित क्रमानुसार दूष्य, देश, बल, काल, अनल, प्रकृति, वय, सत्व-सात्म्य आहार, व अवस्था को ध्यान में रखकर सूक्ष्म विचार कर के तब मानी जाती है। अत क्रमश सब पर विचार करना उचित होगा।

१. दोष प्रमाण तुल्यो हि भेषज प्रमाण विकल्प बल प्रमाणानुरूपो भवति।

मात्रा का निर्धारण--निदान काल में दोष प्रमाण को निर्धारण करके तब करते हैं। इसके सिद्धान्त निदान की विधि में निर्दिष्ट है। अतः दोष प्रमाण जानकर तब मात्रा प्रमाण बनाना उपयुक्त होता है। यदि किसी को तीव्र ज्वर है, प्रदाह प्रलाप है तो शीतवीर्य औषधि का पूर्ण मात्रा में उपयोग कर के ज्वर उतारने की चेष्टा की जाती है। इस समय अल्प मात्रा की औषधि दोष प्रशमन में सहायक नहीं होती किन्तु यदि दोष में तीव्रता नहीं है तो साधारण मात्रा में औषधि अपना कार्य कर लेती है। अत: दोष प्रमाण का ध्यान रखकर तब मात्रा का निर्देश होता है।

दूष्य प्रमाण ज्ञान--औषधि मात्रा के निर्धारण के समय दोष किस मात्रा मे रस रक्तादि धातुओं मे किस मात्रा मे विकृति उत्पन्न कर दिये है यदि इसका ध्यान रखकर चिकित्सक केवल दोष का ही विचार करता है तो उस मात्रा मे पूर्ण लाभ सम्भव नही है। अत दूष्य प्रमाणत भी विचार करना मात्रा प्रमाण का निर्णय करने मे सहायक होता है।

वय प्रमाणत --यह ठीक है कि औषधि अपने गुण के बल पर ही फल प्रकट करती है परन्तु यह फल भी आयु के अनुसार मात्रा रखने पर ही निर्भर करता है। इस विषय पर बहुत सूक्ष्म विचार आयुर्वेद मे मिलता है। जिनका विवरण आयु के नाम पर पूर्व मे कर चुके है। बाल की मात्रा पृथक, मध्य आयु की मात्रा पृथक व वृद्ध की मात्रा का पृथक निर्देश मिलता है।

देशत--भिन्न भिन्न देश की खाद्य मात्रा व प्रचलन भिन्न होता है। अत रोगी किस देश का है और उसकी शक्ति शीत, उष्ण, आनूप, जागल व सामान्य देश के अनुसार कितना सहन कर सकता है यह निर्णय करते है। शीत देश का व्यक्ति उष्ण वीर्य द्रव्यो को अधिक सात्म्य कर जाता है और उष्ण देश का व्यक्ति उष्ण सहन शील होने से शीत को अधिक मात्रा मे सात्म्य कर सकता है अत सदा इस का विचार कर के तब मात्रा का विचार करना चाहिए।

लिग या जाति--रोगी स्त्री है या पुरुष। स्त्रियाँ पुरुषो की अपेक्षा सुकुमार होती है। अल्प सहन शील होती है। इसका ध्यान रखना होता है।

काल व ऋतु--भारत मे तीन प्रधान ऋतुएँ होती है, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्। इसके अतिरिक्त काल विभाजन मे प्रात, मध्याह्न, सायकाल, दिन व रात्रि का ध्यान रख करके औषधियों की मात्रा दी जाती है। यथा ग्रीष्म ऋतु मे उष्ण औषधि को, शीत ऋतु मे शीतल औषधि का अधिक देना हानिकारक होता है। दोष वृद्धि काल मे बल कारक औषधि का प्रयोग किया जाता है।

बल का विचार--रोगी मे बल की कितनी मात्रा है और कितनी मात्रा मे यह औषधि को सहन कर सकता है। सबल है या हीन बल है, मध्य बल है। सबल को औषधि मात्रा अधिक भी सहन करने की शक्ति होती है। निर्बल कभी अल्प शक्ति की मात्रा को भी सहन नही कर पाता। रोग बल या व्याधि बल के अनुसार ही औषधि की मात्रा का ध्यान उसके कोष्ठ बल को देखकर कि इसके शरीर के कोष्ठों मे कौन मे कोष्ठ सबल या निर्बल है ऐसा जानकर ही औषधि का प्रयोग लाभप्रद होता है।

प्रकृति--रोगी किस प्रकृति का है। वातज, पित्तज या श्लेष्मल प्रकृति का है। तेज मिजाज या शान्त विचार का है। आधुनिक विचारक भी इसका विचार करते है। यथा

लिफेटिक या फ्लेग्मेटिक टैम्परामेंट (Phlagmatic Temprament)
–श्लेष्म प्रकृति

सेन्ग्वीन टेम्परामेंट (Senguine Temp)–या रक्तज प्रकृति
बिलियस टेम्परामेंट (Bilious Temp)–पित्तज प्रकृति

मैलेन्कोलिक या नर्वस टेम्परामेंट (Nervous Temp)–वातज प्रकृति इत्यादि का विचार करके वे लोग भी मात्रा का विनिश्चय करते है। जैसे गर्म चीज पित्त प्रकृति को सहन नही होती। पित्त प्रकृति वाले कुनीन गन्धक या संखिया जैसे तेज वस्तु को सहन नही कर पाते। वात प्रकृति के क्रूर कोष्ठ वाले, पित्त प्रकृति के मृदु कोष्ठ वाले, श्लेष्म प्रकृति के मध्य कोष्ठ वाले होते हैं। अत उनको रेचक औषधि की मात्रा सभाल कर दी जाती है।

अग्नि बल––रोगी के शरीर मे पाचन शक्ति कितनी है, अग्नि बल क्या है। अग्नि नाश है सामान्य अग्नि है या तीक्ष्णाग्नि है इसका विचार करके ही मात्रा का विनिश्चय किया जाता है। सामान्य रूप मे औषधि की मात्रा देने मे अग्नि बल, व्याधि बल व पौरुष बल देख कर ही औषधि की मात्रा को देते है। यथा

तत्र सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्निपुरुषबलान्यभि समीक्ष्य विदध्यात्। सु सू ४०

सत्वम् : जो व्यक्ति सत्ववान होता है मनसा बल युक्त होता है वह विपत्ति उत्कर्ष व कठिन शल्यादि क्रिया मे मन को दृढ करके सब कुछ सह लेता है। सत्व तीन प्रकार का होता है। प्रवर, मध्यम व अवर सत्ववान। प्रवर सत्व वाला सत्व गुण प्रधान होने से छोटा शरीर होने पर भी अधिक कष्ट सह लेता है। मध्य सत्व वान रजोगुण प्रधान होने से थोडा सहता है और अवर सत्व वाला तकलीफ जरा भी नही सह पाता और चिल्लाता है।

सत्ववान् सहते सर्व सस्तभ्यात्मानमात्मना।
राजसस्तभ्यमानोऽन्यै सहते नैव तामस। सु सू ३५

सात्म्यम्––जिस व्यक्ति को जो वस्तु देश काल जाति ऋतुरोग व्यायाम उदक दिवास्वप्नादि मे से कोई भी जो प्रकृति विरुद्ध होने पर भी पीडा कर नही होते उन्हे सात्म्य कहते हैं। यह सात्म्यता अभ्यास वश व अवस्थावश दो प्रकार की होती है।

ओक सात्म्यता––जो वस्तु अभ्यास करके सात्म्य होती है वह ओक सात्म्य कही जाती है।

अवस्था सात्म्यता–जो वस्तु आहार विहार की परिस्थिति या अवस्था विशेष के कारण सुखकर या सात्म्य होती है। अनेको नशावाली या विषैली औषधिया अवस्था विशेष मे व अभ्यास वशात् सात्म्य हो जाती है। उनकी विशिष्ट मात्रा भी सात्म्य हो जाती है, कुछ देश के अनुसार, कुछ जाति के अनुसार व कुछ विभिन्न ऋतुओ मे

विशिष्ट मात्रा में सात्म्य हो जाती है। कुछ रोग सात्म्य व कुछ स्थानीय सात्म्य से कुछ जल व वायु के कारण सात्म्य हो जाती है। कार्य दिन रात्रि भी विशेष रूप से सात्म्य करता है। इसलिये मात्रा के निर्णय में इनका ध्यान रखना पड़ता है।

सुश्रुत ने संशोधन व संशमनीयाध्याय में जो बातें मात्रा के लिए लिखी हैं वह सभी इसमें विचारणीय होती हैं। यथा :

सर्वाण्योषधानि व्याध्यग्नि, पुरुष, बलान्यभि समीक्ष्य विदध्यात्। तत्र व्याधि बलादधिकमौषधमुपयुक्तं तमुपशम्य व्याधिं व्याधिमन्यमावहति। अग्नि बला-दधिकमजीर्णं, विष्टभ्य वा पच्यते। पुरुष बलादधिकं ग्लानि मूर्च्छा मदानावहति। संशमन एव संशोधनमतिपातयति। हीनेभ्योदत्तं किंचित्करं भवति। तस्मात् सम मेव विदध्यात्।

सामान्य रूप से मात्रा औषधियों की उस राशि का नाम है जो प्राणियों के शरीर पर कार्य को करने के लिये आवश्यक होती है। यह राशि सब पुरुष में एक समान नहीं होती। ऊपर की स्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। फिर भी यह मात्रा कम से कम व अधिक से अधिक राशि में होकर भी हानि कर नहीं होती। अल्पतम व अधिकतम मात्रा की मध्यमावस्था को मात्रा का माध्य-मिक मानते हैं। यही मध्य मात्रा होती है। इस मध्य मात्रा को ध्यान में रखकर चिकित्सक ऊपर के अवस्था विशेष को ध्यान में रखकर औषधि की उचित मात्रा का निर्धारण करते हैं और वही उचित मात्रा होती है। महर्षि चरक ने स्पष्ट लिखा है कि——

द्रव्य प्रमाणं तु यदुक्तमस्मिन् मध्येषु तत् कोष्ठ वयोबलेषु।
तन्मूलमालम्ब्य भवेत् विकल्पः तेषाविकल्पोऽभ्यधिकोनभाव.। च. क. १२।८६

चरक संहिता में चरक ने और काश्यप संहिता में महर्षि काश्यप ने विचार माध्यम आयु के दिए हैं। उसमें काश्यप के मत से अवश्य विचार करके मात्रा का निर्धारण करना चाहिये। यथा

तस्मादग्नि ऋतु सात्म्य देह कोष्ठ वयो बलम्।
प्रकृतिं भेषजं चैव दोषाणामुदय व्ययम्।
विज्ञायैद्यथोदिष्टा मात्रा सम्यक् प्रयोजयेत्।
अप्रमत्त सदा च स्यात् भेषजानां प्रयोजने। खिल स्थान।

इन बातों से स्पष्ट है कि मात्रा का जो विवरण शास्त्रों में दिया हुआ है वह मध्यम मात्रा को निर्दिष्ट करके ही दी गई है। इसके अनुसार ही मात्रा प्रयोग होना चाहिए।

सुश्रुत ने बालकों के लिये मात्रा का जो निर्देश किया है वह स्पष्ट है अत उस पर विचार करना उचित है यथा

तेषु यथाऽभिहित मूद्रच्छेदनीय मौषध मात्रया क्षीरपस्य क्षीरसर्पिषा मयुक्त विदध्यात्। धात्र्याश्च केवल क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्च पूर्ववत्, अन्नादस्य कषायादीनात्मन्येव न धात्र्या ।

स्वाथ की मात्रा के विषय मे उनका मत और स्पष्ट है यथा

तत्र मासादूर्ध्वं क्षीरपायाङ्गुलिपर्वद्वय ग्रहण सम्मिता मात्रा विदध्यात् ।

१ . कोलास्थि संमितांमात्रा कल्कस्य विदध्यात् ।

२ कोल सम्मितामन्नादायेति ।

यही नहीं बल्कि वह यहा तक स्पष्ट कहते हैं कि .

येषा गदाना ये योगा प्रवक्ष्यतेऽगदकराः ।
तेषु तत्कल्क सलिप्तौ पाययेत् शिशु स्तनौ । सु शा

३४८ · सामान्य मात्रा के निर्देश के लिये पूर्ववत् उनकी सम्मति है यथा

सर्वाण्येवौषधानिव्याध्यग्नि पुरुष बलान्यभि समीक्ष्य विदध्यात् ।

मध्य मात्रा के लिये सर्वत्र चरक सुश्रुत आदि ने मात्रा निर्देश किया है यथा

स्वरस मात्रा : स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्ध प्रयोजयेत् ।
अहोरात्रोषितं चार्थं पलमात्र रसपिबेत् ।

२ : द्रव्यमार्द्र शिलापिष्ट शुष्कं वा सजल भवेत् ।
प्रक्षेपावाप कल्कास्ते, तन्मान कर्ष सम्मितम् । शा.

३ . अत्यत शुष्क यद्द्रव्यं सुपिष्ठ वस्त्र गालित ।
तन स्याच्चूर्ण रजः क्षोदः तन्मात्रा कोल सम्मिता ।

४ कषायस्य मध्यमात्रा पलमाना प्रकीर्तिता ।

५ योगराज गु०, चरक चि० १६, पाडु रोग :
उदुम्बर समा मात्रा तत. खादेत्यथाग्निना ।
दिने दिने प्रयुजीत जीर्णे भोज्यं यदीप्सितम् ।

मडूर वटक उदुम्बर समान् कृत्वा वटकांस्तान यथाग्निना ।
उपयुंजीत तीव्रेण सात्म्ये जीर्णे च भोजनम् ।

धात्र्यवलेह : धात्री फल रसद्रोणे सुपिष्टं लेहवत् पचेत् ।
शाता मधु प्रस्थ युता लिह्यात्, पाणितल ततः ।

मुक्ताद्य चूर्णम् मुक्ताप्रवाल वैदूर्य शखस्फटिक मंजनम् ।
एषापाणि तल तुल्यानाक्षौद्र सर्पिषा । च. चि काम

इस प्रकार की मात्रा का निर्देश यहाँ पर मिलता है । यह सब मध्यम मात्रा है । इसको पुन उसी प्रकार मात्रानुरूप करके तब बाल आदि मे उपयोग करना चाहिए ।

सुश्रुत ने मध्य मात्रा को जो वय की है १६ से ७० वर्ष माना है। इस दशा मे मध्य मान की१६ वी या बीसवी भाग की मात्रा उपयुक्त मात्रा बन सकती है। चरक व वाग्भट ने १६ वर्ष की मात्रा को मध्यमायु की मात्रा माना है अत १६ वा भाग मध्य मात्रा का करना युक्ति सगत है।

आधुनिक काल के चिकित्सक भी निम्न लिखित बातो के लिये विचारार्थ रखते है। यथा

१ प्राकृतिक असहिष्णुता या व्यक्तिगत सात्म्य
२ अभ्यास या हैबिट
३ शोषण व उत्सर्ग
४ मानसिक स्थिति
५ देश व जलवायु
६ काल या टाइम
७ कल्प या प्रिपरेशन

यह सब विषय बहुत स्पष्ट होने से इनका विवरण नही दिया गया है। जिस प्रकार आयुर्वेद वाले देश-द्रव्य आदि का आधार मान करके मात्रा का निर्देश करते है उसी प्रकार आधुनिक विचार वाले भी विचार करते है। इस पर अच्छी तरह विचार करके तब मात्रा का निर्णय करना चाहिए।

सुश्रुत ने तो स्पष्ट कहा है कि

रोगे शोधन साध्ये तु यो भवेद्दोष दुर्बल ।
तस्मै दद्यात्भिषक् प्राज्ञो दोषप्रच्यावन मृदु ।
चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बल नृणाम् ।
अव्याधि दुर्बलस्यातिशोधन हि तदा भवेत् ।
स्वय प्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनम् ।
भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्त व्याधिनाशनम् ।
पुनश्च व्याध्यादिषु तु मध्येषु क्वाथस्याजलिरिष्यते ।
विडालपदक चूर्ण देय कल्कोऽक्षसम्मित ॥ सुश्रुत सू ३९

आधुनिक मात्रा विनिर्णय के विषय

१ आयु या एज—रोगी के आयु की अनुसार इस पर विचार किया जाता है।

२ जाति या सेक्स—स्त्री व पुरुष के भेद से स्त्रियो मे अल्प बल और पुरुषो मे अधिक बल होने के आधार पर विचार किया जाता है। स्त्रियो के गर्भ काल और स्तन्य काल, आर्तव काल का विचार रखते है। आयुर्वेद मे पुरुष बल के नाम से इसका विवरण मिलता है।

३ आकार प्रकार व भार : साइज व वेट आफ दी बॉडी—शरीर के भार के अनुसार मात्रा का निर्णय किया जाता है।

४ प्रत्यात्म नियता प्रकृति या इडियोसिन्क्रेसी—आयुर्वेद की विभिन्न प्रकृतियो मे प्रत्यात्म नियता प्रकृति पर इसमे विशेष विचार करना पडता है।

५. **प्रकृति या मिजाज या टेंपरामेंट**—यह प्रकृति के सम्बन्ध का ही विचार है। पाश्चात्य वैद्यक में इस विषय पर विचार भिन्न रूप में किया गया है। यथा : नरवस टेंपरामेंट या वात प्रकृति। बिलियस टेंपरामेंट या पित्त प्रकृति। लिम्फैटिक टेंपरामेंट या कफ प्रकृति आदि कह सकते हैं।

६ **अभ्यास या टोलेरेंस**—इसको सहज या नेचुरल या कन्जेनिटल जो कि अभ्यास के कारण होती है। आदत के द्वारा या हैबिट, अभिक्षमता या प्रेम्यूनिटी इत्यादि कई भेद होते हैं। सात्म्यता के रूप में इसका विवरण मिलता है।

७ **मानसिक स्थिति या मेंटल कन्डीशन**—मानसिक स्थिति के अनुसार इस पर विचार होता है। आयुर्वेद में इस को सत्व के भेद से बतलाया गया है।

८ **व्याधि बल**—रोगानुसार इसका विचार किया गया है।

९ **जलवायु या क्लाइमेट**—विभिन्न जलवायु के अनुसार इसका विवरण किया जाता है।

१० **फास्ट या उपवास**—खाली पेट में औषधि देने से उसका प्रभाव अधिक होता है।

११. **कालानुसार विचार या टाइम आफ एडमिनिस्ट्रेशन**—औषधि देने के समय का विचार। किस प्रकार के व्यक्ति को कब औषधि दी जानी चाहिए।

१२ **औषधि शोषण व परित्याग या रेट आफ औबसरपशन**—कौन पुरुष किस प्रकार की औषधि का कितना भाग अपने भीतर शोषण कर सकता है और कौन नहीं। कितना भाग उसके शरीर से वैसे ही निकल जाता है इत्यादि का विचार करके तब औषधि की मात्रा तय करते हैं।

इस प्रकार बहुत सी विधियाँ आयुर्वेद व पाश्चात्य वैद्यक में मिलती हैं जिनके आधार पर मात्रा का विनिश्चय किया जाता है। यह सारी बातें आयुर्वेद में विशिष्ट रूप से वर्णित हैं अतः इनका वर्णन यहाँ पुनः करना उचित नहीं जान पड़ता।

१०. व्यावहारिक उद्भिज्य शास्त्र

(Economical Botany in Ayurveda)

यह शास्त्र बहुत विशाल, राष्ट्ररक्षक, स्वास्थ्यप्रद व जीवन रक्षक है। अतः इसका जानना अत्यावश्यक है। संसार का अधिक प्राणि जगत उद्भिज्ज के द्वारा ही अपना जीवन व्यापार चलाता है। जो मांस भक्षी है वह भी शाकाहारी प्राणियों के ऊपर ही अपने को निर्भर करते हैं। इस विशाल शास्त्र के द्वारा चिकित्सा के चतुर्विध उपक्रम संशोधन, संशमन, आहार व आचार की पूर्ति होती है। अतः यह विज्ञान चिकित्सा विज्ञान का भी मेरुदंड है। इसके दो प्रधान भेद हैं। यथा—

१—प्राकृतिक उद्भिज्ज शास्त्र २—कृत्रिम उद्भिज्ज शास्त्र

प्राकृतिक वर्ग से तात्पर्य उन साधनो से है जो प्राकृतिक रूप मे उत्पन्न होते है। कृत्रिम उद्भिज्ज से अर्थ उस शास्त्र का है जो जिसके अन्तर्गत कृत्रिम साधनो से कृषि आदि के द्वारा आहार द्रव्यो का उत्पादन करते हैं। सस्कृत साहित्य मे इसका वर्णन पर्याप्त मिलता है। प्राणि जगत के कल्याणार्थ आचार्यो ने इनका अध्ययन करके तव उचित साहित्य सृजन किया था। इस महान शास्त्र मे से चिकित्सको ने शास्त्रोपयोगी साहित्य ही लिया है। अत उनके साहित्य मे इनका पूरा वर्णन नही मिलता। औपधि व आहारोपयोगी भाग ही मिलता है।

आधुनिक काल मे इस शास्त्र को व्यावहारिक उद्भिज्ज विज्ञान या व्यावहारिक या प्रायोगिक उद्भिज्ज शास्त्र (Economic Botany) कहते है। वाराह मिहिर ने तो इन सवो का नाम वृक्षायुर्वेद दिया है।

प्राचीन व आधुनिक मतो मे इसके कई भेद है। यथा—

प्राकृतिक उद्भिज्ज शास्त्र १—वनविज्ञान इसमे निम्न शामिल है—
(महारण्यमरण्यानी) १—महारण्य विज्ञान या अरण्यानी विज्ञान
महच्च तदरण्य च २—विपिन विज्ञान (Forestry)

कृत्रिम वन विज्ञान या कृषि शास्त्र (Horticulture)

१—उपवन विज्ञान—**उपगतवनम्**
२—उद्यान विज्ञान
उपवन कृत्रिम वनमेवयत् ३—गृहाराम विज्ञान—**गृहस्य आरामा**
४—वाटिका विज्ञान
५—क्षेत्र विज्ञान

३. **कृषि शास्त्र**—कृषि शास्त्र मे सव कृत्रिम साधनो द्वारा यथा—कर्षण करना, खाद लगाना, वीज वपन करना, रोपण करना आदि विज्ञान इससे सवधित है। इसके भी दो भेद है। यथा—

१—सामान्य कृषि विज्ञान **२—विशेष कृषि विज्ञान**

यह विज्ञान आयुर्वेद का आहारोपयोगी वर्ग का दाता है। इसके द्वारा धान्य, शाक, फल व पुष्पादि की पूर्ति होती है। इस शास्त्र मे धान्योत्पत्ति के विविध साधनो का यथा भूमि चयन, रोपण, फालन, कर्षण, निरावन, सिंचन,

---

१—अटव्यरण्य विपिन गहन कानन वनम्।
क जल अनन जीवनमस्य हति–काननम्।
अटवी—अटन्ति अत्र = अट गतौ।
अरण्य–ऋ गतौ, विपिनम,–पि गतौ–
गहनम–गाहू विलोडने,–वनम्–वनसभक्तौ–
उपवनम्–आमात्यगणिकागेहो पवने वृक्षवाटिका–
उद्यान–पुमानाक्रीड उद्यान राज्ञ साधारण वनम्।
प्रमदवन–स्मादेतदेव प्रमदवन मत. पुरोचितम्।

जलवायु प्रदान खाद निर्माण व उत्पादन पर विशेष विचार करता है । किंतु यह भी वनस्पति शास्त्र के पूर्ण ज्ञान के बिना सभव नही है । अत इस पर थोडा प्रकाश डालना आवश्यक है ।

प्राकृतिक उद्भिज्ज शास्त्र या वन विज्ञान (Forestry)--राष्ट्र की आय अरण्य व महारण्यों पर बहुत कुछ निर्भर करती है, इसके अतिरिक्त यह मानव जाति के दो प्रधान साधनों की पूर्ति का आधार है । यथा--प्रथम औषधि प्रदान करना व द्वितीय गृह के साधनों को प्रदान करना । दैनदिन के जितने कार्य है वह सब वन मे ही प्राप्त होते है । अत वन विद्या का जानकार सब प्रकार से जन साधारण की सहायता कर सकता है । वन बने रहे, सूख न जायँ, तुषपात न हो, इन बातों का ध्यान रखना वन विशेषज्ञ का कार्य होता है । इसके आधार पर गृह निर्माण व कला विज्ञान का काम चलता रहता है, इसमे ध्यान रखना पडता है कि नये उपयोगी पेडो का रोपण हो पूर्णायु वाले बेकार स्थान न घेरे, नये उपयोगी वृक्ष चलते रहे रोगी न हो। यह सब तभी हो सकता है जब कि वन बने रहे । अत इस शास्त्र की आवश्यकता का अनुभव होता है ।

गृह के आवश्यक साधन, यथा--इमारतो मे उपयोग, लकडी के सामान मेज, कुर्सी, खाट, चौखट, खिलौने बिना लकडी के बन नही सकते । बहुत से आवश्यक साधन ये वन हमे देते है । औषधि, मधु, कद मूल फल आदि हमे इससे मिलते है । प्राणि जागल प्राणी ।

कृत्रिम वन विज्ञान या उपवन विज्ञान (Horticulture)--आराम विज्ञान कृत्रिम वन विज्ञान का बोधक है । जो नगर या उसके आसपास लगाया जाता है । सामान्य अरण्य के लाभ को उठाने के लिये ही कृत्रिम वन विज्ञान को अपनाया जाता है । इसमे वन विज्ञान-उद्यान विज्ञान, गृहाराम विज्ञान, वाटिका विज्ञान आदि सब सम्मिलित है । इसमे जीवनोपयोगी फल, मूल, शाक, पुष्प आदि का उत्पादन करना जनोपयोगी बनाना इसका उद्देश्य होता है । इसके कई विभाग है ।

१ **फल विज्ञान शास्त्र या पोमोलोजी** (Pomology)—इसमे फल संरक्षण उत्पादन फल का उत्तम बनाना अच्छी स्थिति मे रखना आदि सम्मिलित है ।

२. **शाक विज्ञान या डेरी कल्चर** (Dericulture)—इसमे विभिन्न प्रकार के शाको का उत्पादन, विशिष्ठ प्रकार का शाकोत्पादन आदि ।

३. **पुष्प विज्ञान या पुष्पोत्पादन या फ्लोरिकल्चर** (Floriculture)-इसमे विभिन्न प्रकार के पुष्पो का लगाना, उनका प्रशस्ती करण, सुन्दर पुष्प उगाना होता है । इन सब विज्ञानो का सबध हमारे आयुर्वेद के साथ लगा हुवा है । इसका साहित्य कई स्थानो पर मिलता है । यथा—वृहत् सहिता, अग्नि

पुराण, विष्णु पुराण, सद्दर्शन समुच्चय, वाराही संहिता आदि आदि । वृक्षायुर्वेद में किन-किन उपयोगी वृक्षों को लगाना किस किस दिशा में कौन सा पेड़ रोपण करना, कितनी दूरी पर रोपण करना, क्या खाद देना, रोगी होने पर क्या दवा देना यह सब सम्मिलित है । आयुर्वेद के धान्य वर्ग, फल वर्ग, शाक वर्ग तथा अन्य वर्गों का सारा साधन इस शास्त्र मे मिलता है ।

कृषि शास्त्र या एग्रोनोमी (Agronomy)--कृषि शास्त्र का क्षेत्र इतना विशाल है कि इसके बिना कोई भी कार्य होना संभव नही जान पड़ता । आहारोपयोगी वर्ग का सारा का सारा अंग इसमें आ जाता है । धान्य, फल, फूल, शाक आदि जो भी आहारोपयोगी वस्तु है वे सब इसके अंदर आ जाते है । इसमें धान्य उत्पत्ति के लिये किस प्रकार की भूमि चाहिये, उपजाऊ बनाने के लिये भूमि में किस प्रकार का खाद्य या खाद लगाना चाहिये, धान्य उपजाने के विभिन्न प्रकार, धान्य रोपण काल,सीचने की विधि फालन कर्षण निरावन आदि का सब का विवरण देता है । वास्तव मे इस शास्त्र के अंतर्गत संसार का बड़ा भारी कल्याण निहित है । इस विषय का विवरण निम्न है ।

फल विज्ञान—उपवनो मे जो फल व फूल लगाये जाते है वे सौंदर्य की वृद्धि के साथ ही साथ आहार सामग्री मे भी सहायक होते है । एतदर्थ उनका उत्पादन पूर्ण व उचित मात्रा मे होने चाहिये । यह शास्त्र विभिन्न प्रकार के फलो का उत्पादन, संरक्षण, प्रेषण आदि का पूर्ण विवरण देता है । आयुर्वेद मे फल वर्ग पृथक ही दिया गया है । इसमे विभिन्न प्रकार के फूलो का गुण दोष बतलाया गया है ।

शाक विज्ञान (Denculture)-शाक मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है । भिन्न-भिन्न ऋतुओं मे भिन्न-भिन्न प्रकार के शाक लगाने की प्रक्रिया का विवरण इसमे है । शाक उगाने का मौसम, उनके खाद, उनका संरक्षण व उन्हे उत्तम बनाने की विधि आदि का विवरण इसमे मिलता है । शाक वर्ग के नाम से एक पृथक विवरण गुण दोष के साथ आयुर्वेद मे वर्णित है । इसका उपयोग प्रत्येक गृहस्थ व वैद्य जानता है ।

पुष्प विज्ञान (Floriculture)--फूलो के उत्पादन की कला एक दम पृथक ही है । किस ऋतु मे कौन सा फूल रोपण करना चाहिये और कब उन्हे पृथक उगा कर बढ़ाना चाहिये, किस प्रकार की भूमि, किस प्रकार का खाद, किस प्रकार की जलवायु, किस फूल के लिये आवश्यक है यह जानना अत्यावश्यक है । फूलो से उद्यान को किस प्रकार सजाना चाहिये, किस प्रकार के पुष्प औषधोपयोगी हैं और कौन सजावट के लिये व कौन सुगंध के लिये चाहिये, यह जानना अत्यावश्यक है । यह विज्ञान बहुत लाभ प्रद विज्ञान है ।

वन विज्ञान की तरह व्यवहारायुर्वेद का विशाल क्षेत्र इन सबो का विवरण देता है । वाराह मिहिर ने जिस विज्ञान का विवरण किया है उसमे यह उद्भिज्जोत्पादन एक विशिष्ट अंग है ।

उद्भिज्ज विज्ञान (Plant breeding)--उद्भिज्ज विज्ञान एक महत्व पूर्ण शास्त्र है। इसमे फल, फूल, शाक, सब्जी, कद मूल आदि का रोपण स्थापन बड़े आकार का बनाना, अधिक मात्रा मे उत्पादन करना आदि सम्मिलित है। नई नई जातियों का आविष्कार करना वनस्पति परंपरा को जीवित रखना वृद्धि करना कलम लगाना, अन्य पौधो के साथ मिलाना आदि का क्रम इसमे मिश्रित है।

उद्भिज्ज विकृति विज्ञान या प्लाट पैथालोजी (Plant Pathology) प्राचीन काल मे पौधो के रोगो का ज्ञान करना, विभिन्न जलवायु का उन पर प्रभाव पड़ना, रोग निदान के बाद उनकी चिकित्सा करना, पौधो का जीवाणु व कीटाणु मे प्रभावित होना कीट पतगो द्वारा रोगी बनना इत्यादि की जानकारी थी, किन्तु आज इस विज्ञान का साहित्य कम मिलता है। परपरा क्रम मे जो कुछ मालियो द्वारा चला आ रहा है, वह हो रहा है। आधुनिक विज्ञान मे इसका अध्ययन होने लगा है और नये नये ज्ञान का आविष्कार हो रहा है। अत प्राचीन काल मे इसका ज्ञान वृहत सहिता मे था जिसका उल्लेख आज भी मिलता है। उनके रोग और उनकी चिकित्सा विवरण मिलता है। यह वृक्षायुर्वेद के प्रकरण मे है। यथा--

वृक्षो के रोगो में--शीत वातातपै. रोगो जायते पांडुपत्रता।
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखा शोषो रस सति'॥

अर्थात्--ठडी वायु और धूप अधिक लगने से वृक्ष रोगी हो जाते है। इससे पत्र पीले हो जाते हैं, उनकी वृद्धि नही होती, पत्र नये नही लगते, शाखाये सूखने लगती है और पेडो मे रस टपकने लगता है।

चिकित्सा--चिकित्सित मथैतेषा शस्त्रेणादो विशोधनम्।
विडग घृत पकाक्तान् सेचयेत क्षीर वारिणा॥ १५॥

रोगी होने पर वृक्षो के रुग्ण भाग को शस्त्र से काट कर उस स्थान पर विडग व घृत से युक्त पक लगाना चाहिये और दुग्ध मिश्रित जल से सीचना चाहिये।

फल नाश में--फलनाशे कुलत्थैश्च माषैं र्मुद्गैस्तिलैर्यवै.।
शृत शीत पय सेको फल पुष्पाभिवृद्धये।
अविकाजशकृतच्चूर्णस्याढके द्वेतिलाढकम्।
सक्तु प्रस्थो जलोद्रोणो गोमास तुलया सह।
सप्त रात्रोसितैरेतैः सेक कार्यो वनस्पति'।
वल्ली गुल्मलताना च फल पुष्पाय सर्वदा॥

अर्थात्--यदि फल न लगते हो तो कुलथी, उडद, मूंग, तिल या यव का शृत शीत जल बनाकर उससे सेक किया जाय, तो पुष्प वृद्धि होती है।

पुन. भेड बकरी की मेगनी का चूर्ण एक आढक, तिल २ आढक, १ प्रस्थ सत्तू १ द्रोण जल व १ तुला गोमास मिला कर सात रात तक रखकर औषधि बना ले। इसके सेक से वनस्पतियो मे वल्ली व गुल्मलता आदि मे फल व पुष्प लगते है।

क्रिमि विज्ञान या जीवाणु शास्त्र (Bactereology)--

विकृति विज्ञान के साथ विभिन्न क्रिमियो द्वारा उत्पत्ति होने का ज्ञान शास्त्र मे मिलता है। जितने कृमि जीवन रक्षा मे सहायक होते है, उतने हानि कारक होते है, पौधो के लिये कितने आवश्यक है वैसे सूक्ष्म क्रिमियो का ज्ञान लगाया जा चुका है।

प्राचीन काल मे ही सिरका बनाना, शुक्त आरनाल, काजी बनाना, मद्य व सुरासव बनाना, जमीन को उपजाऊ बनाना, पुष्प व कदो को सहायता देना इत्यादि कई कार्य इनके द्वारा होते पाये जाते है। आजकल इस विषय पर आधुनिक विचारको का ज्ञान विशेष मिलता है किन्तु इसका ज्ञान पहले से ही था।

औषधोपयोगी उद्भिज्ज विज्ञान फारमेस्युटिकल बोटानी (Pharmaceutical Botany);—औषधोपयोगी उद्भिदो का ज्ञान, करना, और उन्हे उपयोगी बनाना, उनकी आकृति और शरीर क्रिया का ज्ञान रचना पोषण व वर्गीकरण का ज्ञान हुये बिना चिकित्सा का ज्ञान कभी भी नही हो सकता। अत इस विज्ञान के लिये औषधोपयोगी वनौषधि विज्ञान का होना अत्यावश्यक जानकर प्राचीन चिकित्सको ने इस विषय पर बहुत बडा साहित्य लिखा है। इस निमित्त किस का कब सचय करना, किस ऋतु मे सग्रह करना, औषधि का कौन सा अग उपयोगी होगा इसका ज्ञान करना, औषधि के लिये कौन सी भूमि उत्तम होगी उसका चयन करना, कहाँ की औषधि गुणकारी होगी। इसका ज्ञान आदि का विस्तृत वर्णन आयुर्वेद मे मिलता है।

यह विषय ही आयुर्वेद का प्राण है। इसके न जानने वाले वैद्य चिकित्सा करने मे समर्थ नही हो सकते अत यह विषय बहुत ही महत्व पूर्ण होने से विशाल साहित्य का मुखापेक्षी है। इसका विवरण पृथक ही किया गया है।

परिचय विज्ञान की त्रुटि से आज पसारी जो भी देता है, उसे वैद्य ग्रहण कर लेते है। अत उचित लाभ नही मिलता। इस विषय का जानना अत्यावश्यक है। इसका विशिष्ठ विवरण पृथक ही किया जायगा।

इस प्रकार देखने मे आता है कि राष्ट्र के लिये उद्भिज्ज ससार कितना आवश्यक विषय है। बिना इसके आहार, वस्त्र, फरनिचर, औषधि, गृह निर्माण, फल-फूल, शाक, बीज व अन्य वस्तु प्राप्त नही हो सकते। इस विषय पर आयुर्वेद विशिष्ट विचार व विशिष्ठ विशाल साहित्य रखता है। इसका ज्ञान उस स्थान के साहित्यावलोकन मे ही सभव है।

यहाँ इसका दिग्दर्शन मात्र कराने के अभिप्राय से उल्लेख मात्र किया गया है। आयुर्वेद का यह विज्ञान मूल स्तंभ है। इसका ज्ञान आगे के साहित्य में मिलेगा।

वृहत् संहिता से इस विषय संबंधी जो साहित्य मिलता है उनका संचय ज्ञानार्थ यहाँ किया गया है। यथा—

वाराह मिहिर ने वाराही संहिता में इस विषय पर निम्न विवरण उपस्थित किया है आराम विज्ञान के अन्तर्गत निम्न बातें आती हैं।

प्रान्त च्छाया विनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशया ।
यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥

वृक्षा वन विज्ञान ५५ वां अ० १

जलाशयों का स्थान छाया हीन होने पर चित्त को आनंद प्रद नहीं होता। अतः जलाशयों के किनारों पर आराम का उद्यान या बगीचों को लगाया जाना उचित है।

भूमिचयन—मृद्वी भू सर्व वृक्षाणां हिता तस्या तिलान् वपेत् ।
पुष्पितास्नश्च गृहिणीया त्कर्मैतत् प्रथम भुवि ।।

इस विवरण में आराम बनाने के लिये मृदु भूमि का ग्रहण करना चाहिये। यही नहीं सब वृक्षों के लिये मृदु भूमि का होना आवश्यक है। ग्रीन मैन्योर के लिये उस भूमि में पहले तिलों को बोना चाहिये। जब वे फूल से युक्त हो जाय तब उन्हें जोतकर के जमीन में मिला देना चाहिये। इससे भूमि उर्वरा हो जाती है।

बाग में के मंगल वृक्ष— अरिष्टाशोक पुन्नाग शिरीषो स प्रियंगव ।
मांगल्याः पूर्व मारामें रोपणीया गृहेषु वा ॥३॥

अर्थात्—नीम, अशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियंगु यह मंगल वृक्ष हैं, इनका रोपण बाग या घरों में करना चाहिये।

कांड रोप्य द्रुम—कलम लगाने योग्य या कांड रोपण में लगने वाले पेड।

पनसाशोक कदली जम्बू लकुच दाडिमा ।
द्राक्षा पालेवताश्चैव बीज पुरातिमुक्तका ।
एते द्रुमा कांड रोप्या गोमयेन प्रलेपिता ।
मूल च्छेदेऽथवा स्कंधे रोपणीया प्रयत्नतः ।

रोपण विधि— अजात शाखाशिशिरे जात शाखान् हिमागमे ।
वर्षागमे च सुस्कधान् यथादिक् प्रतिरोपयेत् ।

एक स्थान से हटाकर अन्यत्र लगाने में।

घृतोशीर तिलक्षौद्र विडंग क्षीर गोमयै ।
आमूल स्कंध लिप्तानां सक्रामण विरोपणे ।

अर्थात्—एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने या संक्रमण से बचाने के लिये पौधों को घृत उशीर तिल व शहद वायविडंग दूध व गोबर समान भाग लेकर मूल से स्कन्ध तक लेप करके तब स्थानान्तर करना अथवा कलम लगाने के लिये ले जाना चाहिये।

जल सींचने के लिये समय —

साय प्रातश्च धर्मान्ते शीत काले दिनान्तरे।
वर्षासु च भुव शोषे सेक्तव्यारोपित द्रुमा ।

ग्रीष्म मे सवेरे शाम, शीत काल मे एक दिन का अन्तर देकर, वर्षा मे जब भूमि शुष्क हो जाय तब पानी से सींचना आवश्यक है।

वृक्षारोपण विधि—

उत्तमविंशति हस्ता मध्यमे षोडशान्तरम्।
स्थानात् स्थानान्तर कार्य वृक्षाणाद्वादशावरम्।
अभ्यास जातास्तरव सस्पृशन्त परस्परम्।
मिश्रै र्मूलैश्च न फल सम्यग्यच्छन्ति पीडिता ।

अर्थात्--२० हाथ की दूरी पर वृक्ष का लगाना उत्तम, १६ हाथ पर लगाना मध्यम, बारह हाथ की दूरी पर लगाना अधम क्रम है। वास्तव मे इतना स्थान होना चाहिये कि पेड अच्छी तरह फल व फूल सके। करीब बोने मे एक की जड दूसरे मे मिल जाती है और एक की छाया दूसरे से मिल जाती है और फल फूल आदि ठीक नही लगते।

शीघ्र फूल लाने की विधि --

वासराणि दश दुग्ध भावित बीजमाज्य युत हस्त भावितम्।
गोमयेन बहुशो विरुक्षित क्रौड मार्ग पिशितैश्च धूपितम्।
मत्स्य शूकर वसा समन्वितं रोपण च परिकर्मितावनी।
क्षीर सयुत जलावसेचन जायते कुसुम युक्त तत्।

बीज को हाथ मे घी लगाकर चिकना करके दस दिन दुग्ध की भावना देकर सूखे गोबर मे रखकर सुखाकर शूकर व हरिण के मांस का धूपन करके मत्स्य शूकर के वसा मे मिलाकर बनाई हुई भूमि मे रोपण करने पर और क्षीर व जल मे सेचन करने पर जो पौधा उगता है वह शीघ्र ही पुष्प व फल देता है।

वृक्ष रोपण के नक्षत्र——

ध्रुव मृदु मूल विशाखा गुरुभ श्रवणस्तथाश्विनी हस्तम्।
उक्तानि दिव्य दृग्भि पादप सरोपणे भानि ॥

तीनो उत्तरा, रोहिणी मृगशिरा रेवती चित्रा, अनुराधा मूल विशाखा, पुष्य श्रवण अश्विनी हस्त यह नक्षत्र वृक्ष रोपण के लिये उत्तम हैं।

रोपण विधि——

शुचिर्भूत्वा तरो । पूजाकृत्वा स्नानामुलेपनै ।
रोपयेत् रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥

पवित्र होकर वृक्ष की पूजा करके वृक्ष एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोपण करने पर उन्हीं पत्तों सहित वह लग जाता है।

शीघ्र अंकुरित होने के लिये--

शतशोऽङ्कोल सम्भूत फल कल्केन भावितम्।
एतत्तैलेन वा बीज श्लेष्मातक फलेन वा।
वापित करकोन्मिश्र मृदि तत्क्षण जन्मकम्।
फल भारान्विता शाखाभवनोति किमद्भुतम्।

किसी बीज का अकोल के फल कल्क से भावना देकर अथवा अकोल के तैल की सौ भावना देकर अथवा लिसोढ़े के फल की भावना देकर सुखाकर रख लेवे। इसको ओले के जल से डालकर मिट्टी मे बोने पर तत्क्षण अंकुर फल व फूल लग जाते है।

श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुली कृत्यभावयेत्।
अकोल विज्जलाभि श्चच्छायाया सप्त कृत्वैत्र।
माहिषं गोमयघृष्टान्यस्यकरी षेचतानि निक्षिप्य।
करका जल मृद्योगेन्युप्तान्यह्नना फल कराणि।

बीज को लिसोढ़े के बीजो को छिल्का रहित करके अंकोल फल रस की सात भावना देकर छाया मे सुखाकर भैस के गोबर मे घिसकर करीष मे रख छोड़ना चाहिये इसे मृत् व जल सयोग करने पर एक दिन मे वृक्ष फल देते है।

वृक्ष को लता बनाने के लिये उपाय--

प्राचीन काल मे वृक्ष को लता के रूप मे परिवर्तित करने के उपाय का पता लगता है। इसके दो उदाहरण वाराही सहिता मे मिलता है। यथा--

तिन्तिडीक मपि करोति वल्लरी व्रीहि माष तिल चूर्ण सक्तुभि।
पूतिमास सहितैश्च सेचिता धूपिताश्च सततहरिद्रया।

अर्थात्-- इमली के वृक्ष को वल्ली बनाना हो तो उसके बीज को धान, उड़द व तिल के चूर्ण मे मिलाकर रखने और रोपण करके सड़े मास के जल से सेचन करने पर और लगातार हल्दी के धूप देने से यह सफलता मिलती है।

२--द्वितीय विधि--

कपित्थ वल्ली करणायमूलान्यास्फोत धात्री धव वासिकानाम्।
पलाशिनी वेतस सूर्य वल्ली श्यामातिमुक्तं सहिताष्ट मूली।
क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते नाल शतं स्थाप्य कपित्थ बीजम्।
दिने दिने शोषित मर्क पादै मास विधिस्त्वेवततोऽधिरोप्यम्।
हस्तायत तत् द्विगुण गभीरखात्वावरप्रोक्त जलाव पूर्णम्।
शुष्कं प्रदग्ध मधु सर्पिषातन् प्रलेपयेद्भस्म समन्वितेन।

चूर्णी कृतैमाषतिलै र्यवैश्च प्रपूरयेत् मृत्तिकयान्तरस्थम् ।
मत्स्यामिसाम्भ सहित च हन्यात्यावद्घनत्वं समुपागत तत् ।
उप्त च वीज चतुरागुलाधो मत्स्या भमा मास जलश्च सिवतम् ।
वल्ली भवत्याशु शुभ प्रवाला विस्मापितो मडप मावृणोति ।
वृक्षा० ३ २६–२६

कपित्थ के पेड को वल्ली वनाना हो तो उसके वीज को अपराजिना धात्री, यव, वासा, पलाश वेन व सूर्य वल्ली श्यामा अतिमुक्ता के मूलो को लेकर दुग्ध मे शृत शीत करके उसकी सौ भावना देकर नित्य धूप मे सुखावे। यह रोपण योग्य वीज हो जाता है। फिर इसके निमित्त उस योग्य खाद वनाना चाहिये। एक हाथ लम्बे व दो हाथ गहरे गढ्ढे को खोदकर जल से भर देवे, वाद मे उसे सुखा देवे व जला देवे उस जली मिट्टी को मधु घृत मे मिलाकर लेप लगा देवे। उसमे उडद यव व तिल मिलाकर भर देवे। तव मत्स्य के मास रस से मिलाकर मथ देवे। जब सव मिलकर गाढ़ा हो जाय तो तैयार समझे। इसमें चार अगुल नीचे वीज डालकर मछली के मास रस से सिचन से कपित्थवृक्ष लता की तरह फल व पुष्प से युक्त होकर मडप वना देता है।

वाराही सहिता के वन प्रदेश मे प्रतिमार्थ काष्ठ चयन का वर्णन अच्छा मिलता है। काष्ठो का उपयोग पहले मूर्ति वनाने के लिये भी होता था। इस विपय पर विचार निम्न है।

प्रतिमार्थ त्याज्य काष्ठ—

पितृवन मार्ग सुरालय वल्मीकोद्यान तापसाश्रमजा।
चैत्य सरित सगम सभवाश्च घटतोय सिक्ताश्च।
कुब्जानुजान वल्ली निपीडिता वज्र मारुतो पहता ।
स्वपतितहस्ति निपीडित शुष्काग्निप्लुष्ट निलया ।
तरवो वर्जयितव्या .. . .।
शुभदा स्यु स्निग्ध पत्र कुसुमलग्न फला ।
सुरदारु चदन मधूक शमी तरव शुभा द्विजातीनाम् ।
क्षत्रस्यारिष्ठ निम्ब खदिरा विल्वा विवृद्धि करा ।
वैश्याना जीवक खदिरसिंधुक स्यदनाश्च शुभ फलदा.।
तिदुक केसर सर्जार्दिर्जुनाम्रशालाश्च शूद्राणाम् ।

शैय्या आशन के शुभ वृक्ष—–

असनस्यदन चदन हारिद्र तिदुकी शाला.।
काश्मयर्जुन पद्मक शाका वा शिशपाश्च शुभदाः।

अशुभ वृक्षा—

अशनिजलानिल हस्ति प्रपातिता मधु विहग कृत निलयाः।
चैत्य श्मशानपथिजोर्ध्वशुष्क वल्ली निवद्धाश्च।

फटकिनोवा ये तु महानदी नगमोद्गमाश्च ये ।
सुरभवनजाश्च नशुभाः ये चापर याम्यदिक् पतिताः ।

हानि— प्रतिविद्ध वृक्ष निर्मितशयनाशन मेवनात्कुल विनाश ।
व्याधिभय व्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्च नैकविधा ।

काष्ठ विशेष का फल.—
य. सर्व श्रीपर्ण्यापर्यंको निर्मितः स धनदाता ।
असन कृतो रोग हर्तास्तिदुक सारेण वित्तकर ।
यः केवल. शिशपया विनिर्मितो वहुविध सवित्तकर ।
चदनमये।रिपुघ्नो धमयशो दीर्घ जीवितकृत ।
य. पद्मक पर्यंकोसदीर्घमायु श्रियमुत्वित्त ।
कुरुते शालेन कृत. कल्याण शाक रचितश्च ।
केवल चंदन रचितंकांचनगुप्तविचित्ररत्न युक्तम् ।
अध्यासन पर्यंकविबुधैरपिपूज्यते नृपति ।

काष्ठ जो सयोग में अशुभ है—
अन्यैर्न समायुक्ता नतिंदुकाशिशपाश्च शुभफलदा. ।
न श्रीपर्णोंर्न च देवदारु वृक्षो न चाप्यशन ।

एक साथ लगने वाले वृक्ष—
शुभदौतुशाकशालौपरस्परसयुक्तपृथवचैव ।
तद्वत पृथक्प्रशस्तौ सहितौ च हरिद्रक कदवौ ।
सर्वः स्यंदन रचितौन शुभ.प्राणान् हिनस्ति चाम्वकृत. ।
असनोन्यदारुसहित क्षिप्रदोषान् करोति वहून् ।

पादशुभा— पाये जिनके शुभ माने जाते हे—
अम्त्र स्यदनचदन वृक्षाणांस्यदनाच्छुभा पादा. ।
फल तरूणा शयनाशन मिष्ट फल भवति सर्वेण ।

पाये व योग— एकेनाव्याविद्धरसा भवतिहिपादेन वैकल्यम् ।
द्वाभ्या न जीर्यतेऽन्न, त्रि चतुर्भि क्लेश वध वधाः ।
सुषिरेऽथवाविवर्णग्रंथीपादस्यशीर्षगेव्याधि ।
पादेकुभौयश्च ग्रथी तस्मिन्नुदर रोग ।
कुभाधस्तज्जघा तत्रकृतो जंघयो करोति भयम् ।

पाय में छिद्र का दोष— निष्कुट मथकोलाक्ष शूकरनयन वत्सनाभम् ।
च कालक मन्यद्धुधुकमितिकथित छिद्र संक्षेपैः ।

दोष— निष्कुट संज्ञे द्रव्यक्षयस्तु कालेक्षणे कुलध्वस ।
शस्त्र भय शूकरजे रोग भय वत्सनाभाख्यै ।
कालक धुंधुक सज्ञ कीटैर्विद्धच न शुभदम् ।
सर्वं ग्रथि प्रचुर सर्वत्र न शोभनदारु ।

निष्कुट— छोटा मुख भीतर घटवत् छिद्र
कोलाक्ष — मटर के बराबर छिद्र
शूकरनयन— विषम विवर्ण अर्ध पर्व छिद्र
वत्सनाभ— वामावर्त छिद्र १ पर्वलम्बा
धुधुक— विशेष किस्म का छिद्र ।
कालक— काले रग का छिद्र ।

काष्ठ योग का फल—

एक द्रुमेण धन्य वृक्षद्वयनिर्मित चधन्यतरम् ।
त्रिभिरात्मज वृद्धिकर चर्तुभिरथयशश्चाग्रम् ।
पच वनस्पति रचिते पचत्वयाति य शेते ।
षष्ठसप्ताष्ट तरुणा काष्ठैर्धारिते कुल विनाश. ।
शैय्या शनलक्षणनाम एकोत्रिंशतितमोध्याय । वाराही सहिता

११. असंयोज्यता अथवा विरुद्ध औषध व विरुद्ध कर्म

(Incompatibility)

औषधियो के गुण कर्म जान लेने मे ही चिकित्सक का कर्म समाप्त नही हो जाता बल्कि उसे औषधि द्रव्य व आहार द्रव्यो मे विचार करके देखना पड़ता है कि कौन कौन से द्रव्य आपस मे मिल कर भी हित कारक नही होते । बल्कि हानि कर प्रभाव करते है । या विरुद्ध कर्म कृत हो जाते है । विशेष कर जब चिकित्सक किसी रोगी को कोई नुस्खा लिखता है तो उसे विशेष सतर्क होना पड़ता है कि योग के द्रव्य आपस मे मिलकर कोई हानि कर प्रभाव तो नही कर रहे है । अथवा किस कर्म के लिये औषधि लिखी गई है उससे विपरीत कर्म तो नही हो जायेगे । अत द्रव्य जो वह लिख रहा है वह भौतिक व रासायनिक संयोग से कार्य मे एक दूसरे के विपरीत कार्य कर तो नही हो रहे है । ऐसा देखा जाता है कि चिकित्सक के इच्छा के विपरीत कभी कभी ध्यान न देने से दो परस्पर गुण विरोधी द्रव्य मिलकर तीसरे अनिच्छित व हानिकारक द्रव्य बन जाते है और औषधि की उपयोगिता नष्ट हो जाती है । इस प्रकार की अवस्था को विरुद्ध द्रव्य का कर्म या असयोज्य (इनकाम्पटीबिलिटी) कहते है । इसके निम्न रूप बन जाते हैं । महर्षि चरक ने इस विषय पर आत्रेय सम्प्रदाय के अनुसार विशेष विचार किया है । यथा

१ परस्पर गुण विरुद्ध २ सयोग विरुद्ध ३ सस्कार विरुद्ध ४ रस विरुद्ध ५ कार्य विरुद्ध ६ देश विरुद्ध ७ काल विरुद्ध ८ मात्रा विरुद्ध ९ स्वभाव विरुद्ध उपक्रम पाये जाते है । १० पाक विरुद्ध ११ वीर्य विरुद्ध १२ सात्म्य

विरुद्ध १३ कोष्ठावस्था क्रम विरुद्ध १४ सपद् विरुद्ध १५ परिहार विरुद्ध १६ विधि विरुद्ध १७ अवस्था विरुद्ध आदि विरुद्धोपक्रमो का विवरण सुश्रुत व अन्य ग्रन्थो मे भी मिलता है।

इस विषय पर बडी सूक्ष्मता के साथ विचार किया गया है। यथा

यच्चापि देश कालाग्नि सात्म्यासात्म्यनिलादिभि ।
सस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्था क्रमैरपि ।
परिहारोपचाराभ्या पाकात् सयोगतोऽपि च ।
विरुद्ध तच्च न हित हृत सपत् विधिश्च य । च सू २६।८६।८७

पुनश्च—परस्पर गुण विरुद्धानि कानिचित्, कानिचित् सयोगात्, सस्कारादपराणि देश काल मात्रादिभिश्चापराणि तथा स्वभावादपराणि। च सू २६।८३

अत यह तो स्पष्ट ही है कि यदि इतने प्रकार मे असयोज्यता हो सकती है तो चिकित्सक उसे करना नही चाहेगा। चिकित्सक हमेशा रोगी को लाभ प्रद ही औषधि देने की इच्छा रखता है। अत वह हानि कारक विकार से औषधि देने का विचार कर ही नही सकता। अत क्रमश इन पर विचार करना चाहिए।

गुण विरुद्ध द्रव्य (फिजिकल व केमिकल इनकाम्पिटिबिलिटी)—
गुण विरुद्ध द्रव्यो के वर्ग मे कई उपर्युक्त कार्य आ जाते है। यथा

१ रस विरुद्ध २ कार्य विरुद्ध ३ विपाक विरुद्ध

रस विरुद्ध कार्य—निम्न रसो को एक दूसरे के विरुद्ध बतलाया गया है। यथा

१ मधुर व अम्ल	रस व वीर्य मे परस्पर विरुद्ध
मधुर व लवण	
२ मधुर व कटु	परस्पर विरुद्ध रस मे वीर्य विपाक मे
३ मधुर व तिक्त	रस व विपाक मे परस्पर विरुद्ध
मधुर व कषाय	
४ अम्ल व लवण	परस्पर रस विरुद्ध
५ अम्ल व कटुक	रस व विपाक विरुद्ध
६ अम्ल व तिक्त, अम्ल व कषाय	परस्पर रस विपाक वीर्य विरुद्ध
७ लवण व तिक्त, लवण व कषाय	सब प्रकार विरुद्ध
कटुकषाय व कटु तिक्त	रस व वीर्य विरुद्ध
८ तिक्त व कषाय	रस विरुद्ध

महर्षि सुश्रुत ने इन बातो का स्पष्ट रूप मे सूत्र स्थान २०। १६ पर विचार किया है।। यथा

अथातो रस द्वदानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्याम । तत्र मधुराम्लौ रसवीर्य विरुद्धौ मधुर लवणौच। मधुर कटुकौ च सर्वत । मधुर

तिक्तौ रस विपाकाभ्या मधुर कषायौ च । अम्ल लवणौ रसत । अम्ल कटुकौ रस विपाकाभ्या अम्ल तिक्तावम्लकषायौच सर्वत । लवण कटुकौ रस विपाकाभ्या । लवण तिक्तौ लवण कषायौ च सर्वत कटु तिक्तौ रस वीर्याभ्या कटु कषायौ च । तिक्त कषायौ रसत । सू. अ २०।१६

इस प्रकार के सयोग कार्य विरुद्ध मे आते है। इन्हे फिजियालाजिकल इनकाम्प्टीबिलिटी कहते है।

भौतिक क्रम विरुद्ध : तरतम युक्त भाव

१ उष्ण व शीत द्रव्य का अति मात्रा मे मयुक्त सयोग

२ अति रूक्ष व अति स्निग्ध
अति उष्ण व अति शीत | तरतम युक्त भावो मे आते हैं।

सयोग विरुद्ध (केमिकली असयोज्य इनकम्पटीबल)——जो दो द्रव्य आपस मे मिल कर तीसरे द्रव्य बन जाते हैं और शरीर को अहित कर हो उन्हे सयोग विरुद्ध कहते हैं। यथा

१ दूध के साथ निम्न द्रव्य——१ वल्लीफल, कूष्माड, कर्कटी, कारवेल्लक कर्कोटक २ कवक व छत्राक ३ करीर व वशाकुर ४ अम्ल फल ५ लवण ६. कुलत्थ ७ पिण्याक ८. दधि ९ तैल १० विरोही अकुरित धान्य ११ पिष्ट १२ शुष्क शाक १३ अजा व भेड का मास, १४ मद्य १५ जम्बूफल १६ चिलचिम मछली, १७ गोधा व वराह मास आदि।

इनका सयोग आपस मे उदर के भीतर जाकर किसी न किसी प्रकार हानि कारक स्वरूप रस गुण व वीर्य विपाकानुसार रखते है।

सयोग विरुद्ध द्रव्यो मे सुश्रुत ने निम्न लिखित द्रव्य और बतलाये हे। यथा

१ **दूध के साथ**——मूली, आम्र, जामन व शशक, शूकर व गोधा मास।

२ **दूध के साथ**—सब प्रकार की मछली विशेष कर चिलिचिम।

३ कदली फल को ताड फल के साथ दूध, दही व तक्र के साथ।

४ लकुच फल को दूध दही व माष सूप के साथ दूध के पहले व बाद मे नही सेवन करना चाहिए।

५ नवाकुरित धान्य, वसा, मधु, गुड, दुग्ध व माष के साथ ग्राम्य व आनूप देश के जानवरो के मास।

६ दूध व मधु के साथ रोहिणी शाक व जातुक शाक।

७ वनलावक का मास मदिरा व उबाले धान्य के साथ।

८ काकमाची पीपल व काली मिर्च के साथ।

९ नाटी शाक कुक्कुट मास व दही के साथ नही खाना चाहिए।

१० मधु का उष्णोदक अनुपान के साथ।

११ पित्त के साथ मास का सेवन नही करे।
१२ मद्य के साथ कृशरा व पायस।
१३ सौवीरक के साथ तिल शष्कुली।
१४ मत्स्य के साथ इक्षु विकार।
१५ गुड काकमाची। मधु के साथ मूली।
१६ गुड व मधु के साथ वाराह मास आदि आदि।

कर्म विरुद्ध—सुश्रुत का कर्म विरुद्ध विवरण प्राय सस्कार विरुद्ध ही अधिक ठहरता है। यथा

१ कपोत मास को सरसो के तैल के साथ सस्कारित नही खाना चाहिए। २ एरड की अग्नि या एरड तैल मे भर्जित कपिजल, मयूर, लाव, तित्तिर का मास। ३. कास्य पात्र मे दस दिन रखा हुआ घृत नही खाना चाहिए। ४ मधु को उष्ण ऋतु मे या उष्ण जल के या द्रव्य के साथ नही खाना चाहिए। ५ मत्स्य व अदरख पकाये हुय बरतन मे काकमाची का शाक नही खाना। ६ तिल कल्क सिद्ध उपोदिका शाक नही खाना चाहिए। ७ नारिकेल के साथ सूकर वसा मे भुना हुआ बगुला का मास। ८ लौह शलाका मे भुना हुआ भास का मास नही खाना चाहिए। सु सू अ २०। १३

मान विरुद्ध द्रव्य—१ मधु व जल तथा मधु व घृत समान भाग मे मिला कर नही खाना चाहिए। २ दो स्निग्ध द्रव्य। मधु व स्नेह, जल व स्नेह समान भाग से मिलाकर नही खाना। ३ मधु व स्नेह को अतरिक्ष जल के साथ।

ऊपर के द्रव्य यद्यपि अलग अलग अच्छे द्रव्य है पर असमान मात्रा मे मिला कर सेवन करने पर हानि कारक हो जाते है।

देश विरुद्ध—जागल देश मे रुक्ष तीक्ष्ण भेपज या द्रव्य का सेवन
आनूप देश मे शीत स्निग्ध द्रव्य नही करना चाहिए।

काल विरुद्ध—१ शीत काल मे शीत, रुक्षमधुर व लवण रस वाले द्रव्य।
२ उष्ण काल मे उष्ण कटु तिक्त कपाय रस वाले द्रव्य।

अग्नि विरुद्ध—मदाग्नि मे गुरु द्रव्य का सेवन।

सात्म्य विरुद्ध—कटु तिक्त कपाय व उष्ण सात्म्य को स्वादु शीतादि सेवन

दोष विरुद्ध—वात विकार मे रुक्ष शीतादि सेवन।
पित्त विकार मे उष्ण तीक्ष्ण आदि द्रव्य।
श्लेष्म विरुद्ध मे मधुर स्निग्ध सान्द्रादि।

कोष्ठ विरुद्ध—मृदु कोष्ठ को तीक्ष्ण उष्णादि अधिक भेदन द्रव्य।
क्रूर कोष्ठ मे अत्यल्प मद वीर्य रेचन द्रव्य।

क्रम विरुद्ध—श्रम व्यायाम व्यवायसेवन को वात प्रकोपक द्रव्य।
निद्रा व आलस्य मे श्लेष्म प्रकोपक द्रव्य।
विट मूत्र त्याग बिना ही भोजनादि करना।

परिहार विरुद्ध—वाराह मांस सेवन करके उष्ण जल सेवन
स्नेहादि पान करके शीत जल का सेवन।

पाक विरुद्ध—अपक्व, दग्ध, या अतिशय पक्व तंदुल रोटी आदि।

हृद् विरुद्ध—जो वस्तु खाने की इच्छा न करती हो उसी को खाने के
लिये बाध्य होना।

सपत् विरुद्ध—असजात रस, अतिक्रान्त रस, विपन्न रस वाले, विकृत द्रव्य
का सेवन।

विधि विरुद्ध—आहार विधि छोड कर भोजन करना।

स्वरूप विरुद्ध—फिजिकल इन्कम्पेटिबिल।

कई द्रव्य ऐसे होते हैं कि वे आपस मे नही मिलते या मिलाने पर प्रक्षेपित हो जाते हैं। अत इनको साथ न मिला कर ऐसे द्रव्यो के सयोग से देते हैं कि जो स्वरूप को परिवर्तन करे। अथवा उनको इस प्रकार मिला दे कि उनके सेवन की सुविधा हो जाय। यथा

१ जल व तैल। जल व घृत	यह आपस मे नही मिलते। अलग अलग रह जाते है।
२ जल व वंशलोचन ३ जल व राल ४ जल व तृणकान्त मणि	आपस मे मिलाने पर नही मिलते।

अत प्रथम वर्ग के साथ ऐसे द्रव्य को मिलाते है कि स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। यथा—मधु या शर्बत।

यथा बबूल के गोंद का सयोग। इस प्रकार बबूल गोंद मे द्रव मिला कर मथित कर स्नेह का योग देकर मथन कर देते है तो दूधिया घोल बन जाता है। इस घोल मे स्वरूप वर्द्धनार्थ गुलाबी वर्ण व सुगध मिला देते है।

विधि स्नेह मे चतुर्थांश बबूल निर्यास लेकर कुछ जल डाल कर उसे भली प्रकार रगडते है इसके बाद थोडा थोडा तैल डाल करके मिलाते जाते हैं और भली भांति रगडते जाते है ताकि तैल घोल मे छोटे छोटे कणो के रूप मे मिल जाय जब तैल सब मिल जाता है तब दूधिया घोल बन जाता है। पतला करने के लिये इच्छानुसार थोडा थोडा जल मिला देते है। शीशी मे भर करके इच्छानुसार गध व वर्ण दे देते है। सुगध के लिये अर्क गुलाब, अर्क सौंफ, अर्क दालचीनी मिलाते है। गध के लिये शर्बत गुलाब या टिंचर कार्डं को मिला देते है। निर्यास मे दो अधिक प्रचलित है। यथा बबूल का गोंद और गोंद कतीरा।

बबूल निर्यास के मेलन की विधि--बबूल का गोद मिलाने के सब माध्यमो मे उत्तम समझा जाता है। किन्तु इसकी भी मेलन की मात्रा एक निश्चित ही होती है। इसका ज्ञान होना चिकित्सक को अत्यावश्यक है। यथा :

१ स्थिर तैलो मे चतुर्थाश यथा: एरड तैल मे या इस तरह के तैल मे।

२ उडन शील तैलो मे आधा यथा सौफ का तैल।

३ तैलाक्त रालो के साथ मिले तैलो मे बराबर की मात्रा य, शीतल चीनी का तैल या बालसम पेरु आदि।

गोद कतीरा--यह बबूल से कुछ कम स्नेह घोलने की शक्ति रखता है। इसको प्रयोग करने पर मात्रा अधिक डालनी पडती है। यथा

१ प्रत्येक एक औस के लिए १० ग्रेन गोद कतीरा मिलाते है। कभी ठीक न घुलने पर बबूल का भी सहयोग लेते है। कभी कभी इनके प्रयोग मे अडे की पीली जर्दी का भी प्रयोग होता है। यह स्थिर तैलो के घोल बनाने मे बबूल मे दूनी ताकत रखता है यथा

४ औस स्थिर तैल २ औस उडन शील तैल	इसमे ४ ड्राम अड पीतक पर्याप्त समझा जाता है।

इसके साथ बनाये घोल मे अम्ल या लवण मिलाने मे यह पृथक नही होता।

किलाट चूर्ण या केसीन का सयोग--कभी कभी इसकी भी आवश्यकता होती है। यथा -

१ एक औस स्थिर तैल के लिये तीन चौथाई ३।४ ड्राम केसीन लिया जाता है। किन्तु इसके घोल करने पर पूति भवन का डर रहता है। इस निमित्त सरक्षणार्थ रक्षक द्रव्य मिलाते है। अन्यथा घोल खराब हो जाता है।

सैपोनिन्स : फेनी भवन वाले द्रव्य--कुछ तैलो मे द्रव्यो को घोलने की शक्ति होती है इस निमित्त उनके टिचर या द्रव्य का प्रयोग करते है। यथा

१ अरिष्टक या रीठा २ सैनेगा ३ बन प्याज या सिल्ला

यह द्रव्य औषधि द्रव्य भी है अत इनके मेलन के समय ध्यान देना पडता है।

नोट--इस प्रकार विरोधी भावो क सयोग से होने वाले विचारो का सग्रह किया गया है शेष निम्न है। अभी तक आहार सबधी विषयो का ही एकान्तत विचार किया गया है। औपधि कर्म के ज्ञानार्थ अन्य बातो के लिये भी जानकारी आवश्यक है। आयुर्वेद के औषधि द्रव्यो पर मिलाने मे क्या असर होता है वह स्पष्ट रूप मे उदाहरण देकर नही बतलाया गया है। आगे कुछ कर्म और अन्य बातो का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया जा रहा है।

वीर्य विरुद्ध औषधि--औषधियो के निर्णय को करते समय हमे ध्यान रखना चाहिए कि औषधियाँ आपस मे वीर्य विरुद्ध न चुन ली जाँय। एतदर्थ वैद्य को निम्न लिखित विरुद्ध वीर्यो का ध्यान रखना चाहिये। यथा :

१ गुरु व लघु।	६ मृदु व कठिन
२ उष्ण व शीत	७ विशद व पिच्छिल
३ स्निग्ध व रुक्ष	८ श्लक्ष्ण व खर
४ मद व तीक्ष्ण	९ सूक्ष्म व स्थूल
५ स्थिर व सर	१० सान्द्र व द्रव

सामान्य रूप मे औषधियो का मेलन इस प्रकार का होना चाहिए कि समवेत द्रव्यो मे औषधियो की मात्रा दोनो की इतनी समान न हो जाय कि वीर्य हानि हो जाय।

कर्म विरुद्ध औषधियाँ--रोग निर्णय के बाद्य चिकित्सक को इस बात का निर्णय रखना पडता है कि औषधियो का चयन इस प्रकार रहे कि मात्रा का प्रभाव उस विशेष प्रकार की क्रिया की सृष्टि करे कि औषधि का निर्दिष्ट कर्म जैसा चिकित्सक चाहे वैसा ही बना रहे। अत मेलन के समय विपरीत क्रियाकर द्रव्य इस प्रकार समझ कर चुने जाँय कि उचित क्रिया की प्राप्ति हो सके।

यथा रक्त स्तंभन व रक्त स्राव वृद्धि कर द्रव्य का एक साथ होना २ स्वेदन व स्वेदापनयन ३ रेचक-ग्राही ४ मूत्रल व मूत्र सग्राही ५ दाह प्रशमन व दाह कर उष्ण द्रव्य ६ दोष प्रकोपक व दोषहारक ७ वमन व छर्दि निग्रहण।

इस प्रकार औषधियो के चयन का क्रम इस तरह रखना चाहिए कि उपयुक्त कर्मानुसार कार्य का सपादन हो सके। उदाहरणार्थ कुछ क्रम निर्दिष्ट किये जा रहे है। यथा

ग्राही दीपन व पाचन द्रव्य--रस पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, विजय पर्पटी व ताम्र पर्पटी के साथ निम्न रसो को।

श्वास व कास में निम्न रसो के साथ– श्लेष्म कालानल, श्लेष्म शैलेन्द्र रस, श्वास कुठार श्वास कास चिन्तामणि व कफकेतु के साथ सर्पगधा, देवदाली, श्लेष्मातक व कर्मरंग का मेलन।

सर्पगधा आदि वर्ग के द्रव्य यह समझ कर कि थोडा कफ बढा देगे, देने पर एक साथ श्लेष्मा के लक्षणो को बढा देते है और सब लक्षण उग्र हो जाते है। पहले वर्ग के द्रव्य श्लेष्म वर्द्धक केन्द्र को प्रसादन के बदले अवसादन करके श्लेष्म को क्रिया हीन करते है। जब कि दूसरा वर्ग एक साथ श्लेष्म के केन्द्र को प्रसादित करके श्लेष्म लक्षण एक साथ बढा देते है और श्वास मे अचानक वृद्धि व उपसर्ग भी एक साथ आ जाते है। कास के रोगी या श्वास के रोगी को बिना सोचे समझे नीद लाने के लिये सर्पगधा औषधि मे मिश्रण करते ही रोगी की हालत बिगड जाती है। इसी प्रकार श्वास मे कफ की उग्रता के लिये कफ की वृद्धि की हालत मे देवदाली का वमन हानि कर हो जाता है। अत रोगी की अवस्था विशेष व कर्म को देखकर तब इस प्रकार औषधि का चयन करना पडता है। इस प्रकार निम्न लिखित द्रव्य सयोग भी ध्यान पूर्वक दिये जाँय। यह विवरण प्रयोग करके लिखे गये है। अदाज से नही।

१ वासावलेह व शर्बत लिमोंडा और कर्मरग स्वरस।

२ लेखन व कर्षण की क्रिया एक साथ करने से कुछ भी लाभ नही होता। पचकोल व दाडिमाष्टक के साथ त्रिफला का योग।

यह द्रव्य दीपन पाचन व जिह्वाउद्वेजन करते है। त्रिफला सकोचन व सग्रह क्रिया करता है।

३ शूल गज केशरी व शूल वज्रिणी के साथ रससिंदूर या मकरध्वज का योग।

चिकित्सक यह जानकर दवा देता है कि क्रिया तीव्र हो जाकर लाभ होगा वहाँ पर उग्रता के कारण वान्ति हो जाती है दवा ठहरती ही नही।

४ महागधक के साथ कफकेतु। तीव्र लेखन क्रिया के कारण दीपन व पाचन की क्रिया नही हो पाती और न कफघ्न क्रिया ही हो पाती है।

५ गुग्गुल के साथ अधिक मात्रा मे सखिया व मकरध्वज का प्रयोग।

यह क्रिया रुक्षता व शुष्कता की वृद्धि करके शरीर कर्षण-कर बन जाती है अत वात शमन के बदले और उग्रता रोग की हो जाती है यदि रोग मे श्लेष्मानुबध न हो।

६ चदनासव व उशीरासव के साथ अभयारिष्ट अगस्त्य हरीतकी, कस हरीतकी।

रस विरुद्ध होने से लाभ कुछ भी नही होता।

७ भास्कर लवण के साथ दाडिमाष्टक रस विरुद्ध होते है।

८ भास्कर लवण व उशीरासव अभयारिष्ट आरनाल व शुक्त। यह सर्वत विरुद्ध है।

९ भास्कर लवण व पञ्चतिक्त चूर्ण का प्रयोग वीर्य विरुद्ध होता है।

१० भास्कर लवण सामुद्रादि चूर्ण, शंख भस्म, कपर्द भस्म, शुक्ति भस्म के साथ पर्पटी का प्रयोग दीपन पाचन क्रिया बढाने के लिये हानिकारक है। विष उत्पन्न करता है।

११ पारद के साथ ककारादष्टक का प्रयोग।

इस प्रकार से औषधि का प्रयोग उनके दोष गुण व कर्म को ध्यान में रख-कर करना चाहिए।

भौतिक असयोज्यता का रूप—कई प्रकार के द्रव्य इस प्रकार के होते है कि जिनका मेलन एक विचित्र रूपान्तर उत्पन्न करता है और भौतिक परिवर्तन होकर रूप बदल जाता है तब रोगी द्रव्य को देखकर उसे सेवन करने में अनिच्छा प्रकट करता है। इसका ज्ञान होना चाहिए। यथा

१ **कपूर के साथ पिपरमेंट या अजवायन के सत्व थायमल का सयोग**—दोनो मिलने पर एक तैल का रूप धारण करते हैं। यह पानी मे जल्द मिलता नही। अत रोगी सरलता से नही लेते।

२ **शुद्ध टकण व चौकिया सुहागा**—दोनो मिलाकर पिष्टी बनाते हैं। जो जानते वे इस योग को हानि कर मानते है। चौकिया सुहागा के बदले फिटकरी का भी मेल वही रूप धारण करता है। दद्रु की यह प्रथमावस्था की उत्तम दवा है।

३. **अघुलन शीलता या एकरूपता**—कुछ द्रव्य एक मे मिलते ही विशिष्ट क्रिया करते हैं अथवा एक रूप हो जाते है। कुछ अपनी क्रिया के साथ उफान भी लाते है। यथा

१ **अम्ल व क्षार का योग**—यथा चूर्णोदक लाईम वाटर व दुग्धाम्ल या लैक्टिक एसिड का योग।

कुछ जान बूझकर ऐसे बनाये जाते है यथा

जम्बीर द्राव या निम्बू स्वरस के साथ शख, शुक्ति व कपर्द भस्म का योग एक साथ उफान ला देता है।

भृग व नरसार का योग—गैस बनाने लगता है व अमोनिया का गध देता है। क्रिया विरुद्ध धुस्तूर व अफीम का योग एक साथ देना आदि।

इस प्रकार बहुत से योग है जिनका प्रयोग सोच समझ कर करना चाहिए। अथवा लाभ के बदले हानि होती है।

१२. हिताहित ज्ञान या प्रयोगोपयोगी करण

योगो के निर्माण मे चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह योग मे मिलने वाले हित व अहित द्रव्य का ज्ञान रखता हो। आयुर्वेद के प्रत्येक आचार्य ने इस विषय पर विचार किया है परन्तु, द्रव्य गुण विज्ञान के किसी भी नव्य लेखक ने इस पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया। यह विशेष उल्लेखनीय विषय है। पर्याप्त सामग्री होते हुवे भी इसकी चर्चा न करना एक कमी की बात मालूम होती है। अत इस विषय की आलोचना का प्रकरण उपस्थित किया गया है।

आवश्यकता—किसी योग मे या किसी औषधि विवरण मे कौन कौन से द्रव्य साथ मे रखना चाहिये ताकि उनका मेल हानिकारक न हो। अत किस द्रव्य का कितना अंश मेल मे अहितकर होगा और कितना हितकर होगा यह जानना अत्यावश्यक है। अत द्रव्य के मेल मे अहित का परिमार्जन और हित का मेल करने की विधि का जानना प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है। रोगी मे एक रोग के निवारण के साथ दूसरा न हो जाय एतदर्थ अति ही सावधानी की आवश्यकता है। क्योंकि आयुर्वेदिक चिकित्सा का मुख्य आधार यह है कि—

प्रयोग शमयेत् व्याधिं यो नान्य मुदीरयेत्।
नासौ विशुद्ध शुद्धस्तु शमयेत् यो न कोपयेत्।

अ० हृ० सू० १३। १६

२— **योह्युदीर्णं शमयति नान्य व्याधि करोति च।**
सा क्रिया नतु यो व्याधिं हरत्यन्य मुदीरयेत्।

सु० सू० अ० ३८

अर्थात्—वह प्रयोग जो उत्पन्न व्याधि को शान्त कर दे और दूसरी व्याधि भी उत्पन्न न करे वह उत्तम चिकित्सा प्रणाली है। जो एक को शान्त करके दूसरी व्याधि को उत्पन्न करता है वह उत्तम चिकित्सा नहीं है। अतः दोष परिहारार्थ और उचित क्रिया के सपादनार्थ हित का ज्ञान व अहित का परिमार्जन अत्यावश्यक है। इसी निमित्त रस विमान मे आठ विशेष विधियो का उल्लेख मिलता है। अहित परिमार्जन की क्रिया को सस्कार कहते है जो कि गुणान्तराधान का कारण बनता है। यथा—

सस्कारो हि गुणान्तराधान मुच्यते

यह सस्कार अहित का परिमार्जन व हित का आगमन बतलाता है। इस निमित्त कई प्रकार की विधियो का आश्रय लेना पडता है। यथा—

संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते ।
ते गुणा तोयाग्नि सन्निकर्ष शौच मंथन देश काल
वशेनभावनादिभि काल प्रकर्ष भाजनादिभिश्चाधीयन्ते ।
च० वि० ८

अर्थात--मस्कार की क्रिया द्वारा औपधियो मे गुणान्तराधान होता है। इन गुणो की प्राप्ति के लिये औपधि द्रव्य को जल, अग्नि के सयोग मे शुद्ध करते है देश के अनुमार कई प्रकार की भावना मथन व अन्य विधियो का आश्रय लेकर कुछ विशिष्ट पात्रो मे रखकर किंचित कालावधि रखना पडता है। अग्नि सयोग द्वारा शोधन, भर्जन, दहन, प्रक्षालन कर्म करके प्रयोगोपयोगी बनाया जाता है। यह मारी विधि हित गुणो की प्राप्ति के लिये ही की जाती है।

यथा--पारद + गधक के मयोग के बाद मस्कार द्वारा कूपीपक्व रस--रस सिंदूर व मकरध्वज आदि बनाकर विशेष गुण युक्त बनाते है। इन सस्कारो के द्वारा गुरु द्रव्य लघु और लघु द्रव्य गुरु बन जाते हैं। इस प्रकार की कई क्रियाये करनी पडती है जिन्हे योजना के नाम मे पुकारते है। इस योजना मे कई प्रकार की युक्तियो का आश्रय लेना पडता है।

योजना--योजना उस विधि का नाम है जो कि अहित का निवारण और हित का उपार्जन करते है। यथा विरेचनार्थ निशोथ के सेवन करने के बाद गले की खराश को दूर करने के लिये ईसब गोल का सयोग व आतो की ऐंठन को दूर करने के लिये शुठी का योग करते है। इसी प्रकार दोपो के दूरी करणार्थ विभिन्न प्रकार के आयोजन करने पडते हैं। चरक ने कल्प स्थान मे औपधियो के दोप दूरी करणार्थ विभिन्न प्रकार के कल्पो का विवरण दिया है। यह विधि प्रयोगार्थ बनाने के लिये प्रयुक्त होती है

सयोग--योजना की मुखद प्रवृत्ति के लिये मपर्क मे आने वाले द्रव्यो का चयन करना पडता है। मयोग दो या अधिक द्रव्यो के मेलन का नाम है। इस प्रकार के मेल मे विशेष गुणो का आधान होता है। यथा-- स्वेद के लिये स्वेदोपग द्रव्य का चयन और विरेचन के लिये विरेचक द्रव्य सग्रह। यह चयन की विधि देश काल पात्र के अनुमार सपन्न होती है। भिन्न भिन्न कर्मों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के द्रव्य लिये जाते हैं। इसकी युक्ति निम्न है।

आवश्यकता--यदि विना विचारे ही द्रव्यो का मयोग किया जाय तो हानि की मभावना रहती है अत इस के लिये भी नियम है। यह नियम निम्न विचार को लेकर किये जाते है। मयोग की आवश्यकता निम्न है।

१--औपधि के दोप परिहारार्थ।

२--औपधि कर्म की तीव्रता के लिये।

३—औषधि कर्म की तीव्रता को मद करने के लिये।

४—औषधि को आशुकारी बनाने के लिये।

५—ससृष्ट या मिश्र दोषो के परिहारार्थ औषधि सम्मेलन के लिये।

६—औषधि सरक्षण के लिये।

७—इष्ट रस गध व वर्ण की प्राप्ति के लिये व भार की वृद्धि के लिये।

८—अन्य किसी उद्देश्य के लिये जिसे चिकित्सक उचित समझता है।

प्राचीन काल मे एकौषधि का ही अधिक प्रयोग उचित समझा जाता था। पश्चात् धीरे धीरे अन्य योगज औषधियो के भी सयोग पर विचार किया गया और उसके बाद संसृष्ट दोषो को जान कर उसके परिहार की विधि का नियत्रण किया गया। उनका क्रमश विवरण नीचे दिया जाता है।

औषधि दोष परिहारार्थ—औषधि के दोष परिहारार्थ आवश्यकता तब पडती है। जबकि कर्म के विचार मे कोई औषधि लाभकारी हो परतु उसका प्रभाव शरीर के किसी अग पर अहित कर प्रभाव डालता हो तब उचित सयोग की आवश्यकता पडती है। यथा—

१—इन्द्रायण के प्रभाव को जो आँतो पर ऐठन उत्पन्न करता है अथवा सनाय के प्रयोग मे आँतो पर हानिकर प्रभाव डालकर के ऐंठन डालता है उसे दूर करने के लिये शुठी, शतपुष्पा का सयोग।

२—कर्म अहित कर न हो पर रूप रस स्वाद मे से कोई ऐसा हो जिससे रोगी न खाता हो। यथा—आरग्वध के काले रग के कारण अथवा उसके विरस स्वाद के कारण या एलुवा के गध व स्वाद के कारण कोई दवा न खाता हो तो उसको गध व रस मे युक्त करने के लिये शर्करा या केशर कस्तूरी का गध मिलाकर सुन्दर बना देना।

औषधि द्रव्य के बल वर्द्धनार्थ—जब एक द्रव्य बढाने से दूसरे द्रव्य का बल बढ जाता हो तब उचित द्रव्य का सयोग करते है। यथा—

> भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरसभावनैः।
> सुभावित ह्यल्पमपि द्रव्य स्याद्बहुकर्मकृत्।
> स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद्द्रव्याणि भावयेत्। च क अ १२।४७

१— गुरुणांलाघवं विद्यात् संस्कारात् स विपर्ययात्।
ब्रीहि लाजा यथा च स्यात् सक्तुनां सिद्ध पिडका। चरक

२— संयोगो द्वयोर्बहूनां वा द्रव्याणा सहतीभाव,
स विशेषमारभते, यं पुनरेकैकशो द्रव्याण्यारभन्ते।

२—सयोग स्त्विहप्राधान्येनैवोपलभ्यमानद्रव्यमेलको विवक्षितः।
च० वि० अ० १ चक्रपाणि टीक॥

अत मदन फल की वामक क्रिया की वृद्धि के लिये उसी के रस की भावना या जीमूतक के रस की भावना या आरग्वधादि क्वाथ के साथ लेना आदि। ग्राही क्रिया के लिये दम्मूल अश्ववंन, न्यून मगधा के साथ मोचरस का मिलाना या खदिर व पत्तग का मिलाना। यहा विविध औषधि कर्म की तीव्रता लाने के लिये भी प्रयुक्त होती है।

२–द्रव्य के अहित प्रभाव से रक्षा और तीव्र प्रभाव को मद करने के लिये। कई द्रव्य क्रिया मे बहुत उग्र होते है किन्तु उनका प्रयोग करना ही पडता है ऐसी दशा मे उस द्रव्य के क्षोभक प्रभाव को दूर करने के लिये विरुद्ध वीर्य वाले द्रव्य का भी प्रयोग साथ मे मिलाकर करते है। यथा––मधु, घृत या मधूच्छिष्ट का मिलाना। पिच्छिल, स्निग्ध, मद व अन्य द्रव्य का प्रयोग करना पडता है। विशेष कर अम्ल व क्षार मिश्रित औषधियो के साथ मे मेल करना आदि। यथा––

इष्ट वर्ण रस स्पर्श गधार्थमपि चामयम्।
अतो विरुद्ध वीर्याणा प्रयोगमिति निश्चितम्। च क १२।

औषधि को आशुकारी बनाने के लिये औषधियो का सयोग उचित रूप मे करना पडता है। इस निमित्त द्रव्य के गुण को बढाने वाली औषधि का सयोग विभिन्न प्रकार के द्रव्य के साथ करना पडता है। यथा––

मद्य, शुक्त, आसव-अरिष्ट जो तीव्र कार्य करते है उनका योग करके तीव्रता लाई जाती है। मूत्रल बदरी पाषाण के गुण को बढाने के लिये पचतृण कषाय का अनुपान या औषधि की योग मिश्र या ससृष्ट दोषो के परिहारार्थ करना पडता है। ससृष्ट व्याधि मे यथा ज्वर के साथ कास या श्वास का उपद्रव हो जाने पर तत्तद्दोष हारक वस्तु कास श्वासहर औषधि का योग।

देश व काल का विचार––देश भेद से औषधि के गुण व कर्म मे अतर आ जाता है। वहा के प्राणियो का जीवन व जलवायु के अनुसार सात्म्य और बलादि का विचार करना पडता है। महर्षि चरक ने इस पर विचार करते हुवे चि अ ३० मे वहा के प्राणियो के जीवन आदि का विवरण दिया है। यथा–– आनूपदेश मे उष्ण रूक्षादि वस्तु सात्म्य होते है।

२ धन्व देश मे स्निग्ध शीतादि द्रव्य सात्म्य होते है। पुन. इसका प्रयोग जिस प्रकार के व्यक्ति पर करना है उसकी प्रकृति मे यह द्रव्य सात्म्य होगा कि नही यह ध्यान देना पडता है। यथा––

औचित्यात् यस्य यत् सात्म्य देशस्य पुरुषस्य च।
अपथ्यमपि नैकातात्तत्यज्य लभते सुखम्।
वाह्लीका पल्लवाश्चीना शूलीका यवना शका.।
मासगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरोचिता।

मत्स्यसात्म्यास्तथा प्राच्याः क्षीरसात्म्याश्च सैंधवा ।
अश्मकावन्तिकानां तु तैलाम्लं सात्म्यमुच्यते ।
कंदमूलफलं सात्म्यं विद्यान्मलयवासिनाम् ।
सात्म्यं दक्षिणत पेया मंथश्चोत्तरपश्चिमे ।
मध्यदेशे भवेत् सात्म्यं यवगोधूमगोरसाः ।
तेषांतत्साम्त्य युक्तानि भषजान्यवचारयेत् ।

च चि अ ३०।२९८ से ३०१

काल विचार—भारत वर्ष मे ६ ऋतुये होती है। ऋतुओ के अनुसार विभिन्न प्रकार के आहार व्यवहार आदि का प्रयोग करना पडता है अत जिस ऋतु मे जिस द्रव्य का प्रयोग उचित है उसका ही प्रयोग करना चाहिये। नित्यग काल मे दिन व रात्रि के हिसाव मे भी वस्तु योजन का क्रम भिन्न होता है। दिन मे गीत वीर्य द्रव्यो का प्रयोग अधिक हो सकता है, रात्रि मे नही। वाल वृद्ध युवा के क्रम मे भी सात्म्यासात्म्य द्रव्य व मात्रा का हिसाव रखना होता है। जो मात्रा युवा की होगी वह वाल मे नही होगी। इसी प्रकार वृद्ध मे भी पाचन की व सात्म्य करने की गक्ति उतनी नही होनी। अत कालानुमार इसका ध्यान रखना पडता है और औपधि का सयोग करना पडता है।

उपयोग संस्था या औषधि उपयोग के नियम—औषधि सेवन के क्रम मे यह भी ध्यान रखना पडता है कि इतनी औषधि की मात्रा इतने काल मे अपना निर्दिष्ट फल देगी। अत इतनी मात्रा ही देना उचित है और इस मात्रा के प्रयोग से इच्छित फल भी होता है। यथा—गीत ज्वरावरोधार्थ गीत भजी रस की मात्रा ज्वरागमन से पूर्व तीन-तीन घटे पर तीन वार देना चाहिये ताकि ज्वर आने से पूर्व पर्याप्त मात्रा ज्वर रोकने योग्य मिल जाय। महर्पि चरक ने इस प्रकार औपधि उपयोग की विधि को 'उपयोग सस्था' मजा प्रदान की है।

प्रकृति करण की रक्षा—इस प्रकार के विचार मे औपधि की प्रधान प्रकृति की रक्षा का ध्यान अवश्य रखना पडता है। क्योकि प्रधान औपधि की प्रकृति वदल देने पर लाभ की सभावना नही रहती। अत मेलक द्रव्य ऐसा लेना चाहिये जो इस के विपरीत न हो। यथा—तैल व घृत की स्निग्धता, गर्करा की मधुरता, अम्ल की अम्लता, क्षार की क्षारीयता। मेलक द्रव्य मे हमेगा मूल भूत द्रव्य के वीर्य को और कार्यशील वनाने के लिये व तीव्र कार्य करने के लिये प्रयोग किये जाते है। अत यह ध्यान मे रखना पडता है कि मेलक की मात्रा इतनी अधिक न हो जाय कि प्रधान वस्तु का गुण ही समाप्त हो जाय। यथा—अम्ल प्रधान द्रव्य मे आम्लिक क्रिया का लाभ उठाना है तो उसमे लवण या क्षार इतना ही मिलावेगे कि अम्लता की मात्रा कुछ कम हो जाय और लवण व क्षार इतना नही मिलाया जायगा कि अम्लता का अत हो जाय। अत

इस प्रकार प्रकृत गुण की रक्षा के लिये जो भी नियम बनाये जाते हैं उनको 'संज्ञा प्रकृति करण' की दी गई है। अत इस प्रकृतिकरण के रक्षार्थ जिन उपादानो का प्रयोग होता है वे उपादान कारण कहलाते हैं। यह कारण संस्कार वाचक भी होते है अत स्वाभाविक द्रव्य मे संस्कार करने की पद्धति को अपनाना पड़ता है। यह पद्धति कई प्रकार की है और संस्कार के आधार पर उसकी विभिन्न संज्ञाये होती हैं। जिनका नाम कल्पना के नाम से आगे आयेगा। इनमे प्रधान पंच विध कषाय कल्पना चूर्ण, वटी, वटक, मोदक, अवलेह रस पाडव, आसव अरिष्ट, सुरा आदि होता है और इनके नियम विभिन्न होते है। प्रकृति करण की क्रिया मे पड्रसो का ध्यान रखना आवश्यक होता है। इसके साथ और भी विचार करना पडता है। यथा—

१ रसप्रभावत २ द्रव्य प्रभावत ३ दोष प्रभावत ४ विकार प्रभावत आदि। इनपर विचार करते समय इनके मान का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। अत विमानी करण की विधि के ज्ञानार्थ इस विषय का ज्ञान अत्यावश्यक है। संक्षेप मे इस प्रकार विवरण मिलता है।

रसप्रभाव विमान[1]—मधुर अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय यह छ रस है। यह औषधि द्रव्यो मे पाये जाते है। इनका उचित प्रकार से प्रयोग व्याधि मे रक्षा करता है। इनके प्रभाव दोष शामक व प्रकोपक होते है। अत चिकित्सक को रोग की परीक्षा के बाद जब औषधि का निर्णय करना होता है तब अमुक द्रव्य का प्रधान रस यह है और अनु रस यह है। इतनी मात्रा पर मिलने पर अमुक रस प्रधान योग मे कार्यकर हो सकेगा और अमुक दोष का प्रशम हो सकेगा। इस व्यवस्था के लिये उसे दोष हर व दोष प्रकोपक द्रव्य का ज्ञान होना ही चाहिये। अत शामक व प्रकोपक द्रव्य की गुणावली का ज्ञान स्मरण कर के व्याधि के दोष का परिमार्जन कर सकते है। समान गुणवाले द्रव्य समान गुण की वृद्धि करते हैं व विपरीत वाले गुण का ह्रास करते है। अत मेलक द्रव्य के गुण व दोष का ज्ञान होना आवश्यक है। अत औषधि व आहार की व्यवस्था करते समय जब अनेक रसवाले द्रव्यो को अनेक दोषात्मक व्याधि की निवृत्ति के लिये योग का निर्माण करना पडता है तो रसो के द्वारा दोषो पर क्या प्रभाव पडेगा यह सावधानी के साथ विचारना पडता है।

---

१ रस दोष सन्निपाते तु ये रसा यैर्दोषैः समान गुणा गुणभूयिष्ठा वा भवन्ति ते तानभिवर्द्धयति, विपरीतगुणा विपरीतगुणभूयिष्ठा वा शमयन्त्यभ्यस्यमाना इति। एतद्व्यवस्थाहेतो षट्त्वमुपदिश्यते रसाना, परस्परेणा संसृष्ठाना, त्रित्व च दोषाणाम्॥ च वि अ १।७

तत्र खल्वनेकेषु रसेषु द्रव्येष्वनेकात्मकेषु दोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोष प्रभावमेकैकत्वेनाभिसमीक्ष्य ततो द्रव्य विकारप्रभावतत्त्व व्यवस्येत्।

रसवि० चरक

अतः नाना प्रकार के द्रव्यो के योग मे उन के मेलन मे उनके प्रकृत व विपरीत गुणो के मिलने से प्रधान रस कौन हुआ और अप्रधान कौन हुआ इसका ज्ञान रखना औषधि व्यवस्था का मुख्य साधन है। इस प्रकार विभिन्न रस सपत के समवेतावस्था मे जो रस प्रधान होते है वे अपने प्रधान गुण से तत् सम दोष की वृद्धि और विपरीत का क्षय करते है। कभी कभी बडे योगो मे इस प्रकार की कठिनाई भी होती है वहा पर रस द्रव्य विकार प्रभाव को स्मरण कर योग के लाभालाभ का विचार करते है।

चरक का मत इस विषय मे निम्न प्रकार का है यथा--

तत्र खल्वनेकेषुरसेषु द्रव्येषु अनेक दोषात्मकेषुच विकारेषुरसदोषप्रभाव एकैकत्वेनाभि समीक्ष्य ततो द्रव्य विकारयो प्रभावतत्व व्यवस्येत्।

२. न हि विकृतिविषमसमवेताना नानात्मकाना परस्परेण चोपहतानाअन्यैर्विकल्पनैर्विकल्पितानामवयव प्रभावानुमानेनैव समुदाय प्रभावतत्व अध्यवसातु शक्यम्।

३. तथायुक्ते हि समुदये समुदायप्रभावतत्व मेवमेवोपलभ्य ततो द्रव्य विकार प्रभावतत्वं व्यवस्येत्।

ऊपर के विचारो के अनुसार विभिन्न प्रकार की स्थिति मे भी विभिन्न प्रकार से विचार करके योग के मेलन के बाद रस का निर्णय व व्यवस्था करके मेलन की विधि को सफल बना लेते हे। इस प्रकार हित का मेलन व अहित का परिमार्जन करना सभव होता है।

१३. औषधि का आयुर्वेद में वर्णन क्रम

नामकरण – वर्गीकरण

औषधियो के वर्णन के विषय मे बहुत विशाल साहित्य आयुर्वेद मे पाया जाता है। किन्तु कुछ लोगो का विचार ऐसा दिखाई पडता है कि जिससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद मे इस विषय पर उचित विवरण प्राप्त नही है और इस कारण बहुत सी औषधियाँ सदिग्ध पडी हुई है। इस विषय मे हमारा नम्र निवेदन यह है कि इस प्रकार के विचार निराधार व आयुर्वेदिक साहित्य के विशाल उपलब्ध विचार का अनुशीलन किये बगैर ही किया जाता है। कुछ लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि निघटुओ मे जाति, आकृति, वर्ण, गध व रसादि सबधी विवरण उपलब्ध नही है जैसा कि आज के वनस्पति शास्त्र के ग्रन्थो मे मिलता है।

वास्तव मे आयुर्वेद के इस विषय का विवरण एक अपना प्रधान स्थान रखते है। इस विषय के पडितो को निघटुकार के नाम से पुकारा जाता है। इनका विशाल साहित्य इस विषय का निराकरण सुस्पष्ट रूप मे करता है। जो परिश्रम करना नही चाहते या इन ग्रन्थो का अध्ययन नही करते वे ही इस प्रकार की चर्चा करते है। निघटु विज्ञान औषधि द्रव्यो के जाति, आकृति, भेद, उपभेद, वीर्य, रसगुण व आगिक विवरणो को बहुत ही स्पष्ट रूप मे देना है

और इनका औषधि पदार्थों के रूप मे प्रकट करता है। विशेष कर औषधि के उस अग का विशेष विवरण देता है जिनका प्रयोग औषधि मे अधिक होता है। यदि सर्वांग का प्रयोग होता है तो उन सबो का उल्लेख सब अगो का करना होता है। हाँ, इस के लिए सस्कृत का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। निघटुकारो ने वर्णन क्रम मे ऐसे सूक्ष्म किसी भी अग का विवरण नही छोडा है जिनका औषधि मे पाया जाता है। औषधियो का यह वर्णन ग्रथ मे गद्य के रूप मे नही उपलब्ध होता, पद्य मे ही मिलता है। यही एक बडी कठिनाई है जिसमे सबका ध्यान इधर नही जाता। हर एक अग के परिचय के लिये वे भिन्न-भिन्न पर्याय एक या एकाधिक देते हैं और उस विषय को स्पष्ट कर देते है। इस विवरण के देने मे वे सूक्ष्मतम विवरण भी देना नही भूलते। कभी-कभी इस प्रकार के वर्णन से कठिनाई यह हो जाती है कि एक ही पर्याय दो तीन द्रव्य के हो जाते है और अर्थ एकसा ही भान होता है। विद्वान चिकित्सक इस भूल मे नही पडते। इस आधार पर लोगो का कथन होता है कि कई द्रव्य सदिग्ध हो गये है। यह बात कुछ द्रव्यो के पक्ष मे ठीक भी होती है किन्तु अधिक तर विचार न कर पाने के कारण होते हैं। पहले के विद्वानो को भी यह कठिनाई हुई थी। उन्होंने इस के निराकरण की पद्धति भी बताई है। यथा—

धन्वन्तरि निघटुकार का मत है कि एक ही सज्ञाये समान रूप मे कई द्रव्यो के मिलते हैं तथा एक ही द्रव्य के कई पर्याय[1-2] है। किसी व्यक्ति को एक द्रव्य का एक ही नाम ज्ञात है। वह उसी नाम से जान सकता है। दूसरा उसे कई नाम से जानता है। कोई उसे ही पृथक नाम से पहचानता है। देश भेद व भाषा भेद से एक ही द्रव्य के कई नाम होते हैं। उन देशो के लोग उसी नाम से जानते हैं। अत द्रव्य के परिचय मे क्या विधि अपनाई जाय ताकि भ्रम न हो। इसका उपाय यो बतलाया है। द्रव्यो के नाम प्राकृत व

१– एकतुनाम प्रथित बहूनामेकस्य नामानि तथा बहूनि।
नामश्रुत केनचिदेक मेव तेनैव जानाति स भेषजतु।
अन्यस्तथान्येन तु वेत्तिनाम्ना तदेव चान्यो परेण कश्चित।
नामो मेकस्ययथोषधस्य नामा परस्यापि तदेव चोक्तम्।
शास्त्रेषु लोकेषु च यत् प्रसिद्ध न गृह्यतेऽसौ पुनरुक्त दोष।
　　　　　　　　　　धन्व० नि०

२– गोपाल तापसा व्याधा येचान्यै वनचारिणाः। मूलजातिश्च ये तेभ्योभेषज व्यतिरिचते किरात गोपालक तापसाद्या वनेचरास्तत् कुशलास्तथा न्ये।
विन्दति नानाविध भेषजाना प्रमाण वर्णाकृति नाम जाति।
तेभ्य. सकाशादुपलभ्य वैद्य पश्चाच्च शास्त्रेषु विमृश्य बुद्धया।
विकल्पयेद्रव्य रस प्रभावानविपाक वीर्याणि तथा प्रयोगात्।
प्राय जना सति वनेचरास्ते गोपादयः प्राकृत नाम तज्ज्ञो.।
प्रयोजनान्यद्वचन प्रवृत्ति यस्यादत प्राकृत मित्यदोष।

संस्कृत में बहुत हैं अतः उनके ज्ञानार्थ निम्न विधि अपनानी चाहिये।

बहून्यतः प्राकृत संस्कृतानि, नामानि विज्ञाय बहूश्च पृष्ट्वा।
दृष्ट्वा च संस्पृश्य च जाति लिंग विद्यात् भिषग् भेदज मादरेण॥

अर्थात्—द्रव्यों के नाम प्राकृत व संस्कृत में बहुत हैं। देश व भाषादि भेद से बहुतसी संज्ञायें हैं। अतः इन सब नामों को संग्रह करके जानकारी से पूछ कर, द्रव्य की जाति व उनके चिन्हों को पहचान करके विधिवत् स्पर्श करके उनके गुणों को जानकर तब निर्णय करना चाहिये।

प्राकृत संज्ञाओं के जानकार मूल जाति वाले वनचारी, जंगली लोग होते हैं। अतः उनकी संज्ञाओं को जान कर अपभ्रंश नामों के साथ मिलान करने के लिये उनसे पूछ कर मिलाकर समझने की चेष्टा करनी चाहिए। इस निमित्त तथा इसकी पुष्टि के लिये जंगलों के जीवन व्यतीत करने वाले गोपाल, तापस तपस्वी, व्याध व वनचारी अन्य जो परंपरा गत नाम जानते हैं उनसे संज्ञाये संग्रह करके तब जानना चाहिए।

आदिम जाति के वनचारी लोगों से पूछ कर उनकी संज्ञाये संग्रह करना चाहिये। क्योंकि परंपरा के रूप में यह लोग नाम जानते होते हैं। वन में रहने से औषधियों के जाति आकृति के जानकार होते हैं। इन से जानकर शास्त्र से मिलान कर के द्रव्य के रस, गुण, वीर्य का ज्ञान करना चाहिए। जहाँ पर योगों में समान नामवाले द्रव्य आ गये हों उनका ठीक अर्थ प्राप्त करने के लिए—

तुल्याभिधानानि तु यानि शिष्टैं द्रव्याणि योगे विनिवेशितानि।
अर्थाधिकारागम संप्रदायैं विभज्य तर्केण च तानि युज्यात्। ध० नि०

अर्थात् एक ही नामवाले तुल्य संज्ञावाले द्रव्यों को शास्त्रों में जहाँ प्रयोग किया गया है वहाँपर ग्रंथकर्ता के प्रसंग, अभिप्राय, अधिकार व संप्रदाय को देखकर तब निर्णय करना चाहिये।

महर्षि चरक ने भी यही सम्मति दी है। यथा—

अतश्च प्रकृत बुद्ध्वा देशकालान्तराणि च।
तत्रकर्तुरभिप्रायान् उपायाश्चार्थमादिशेत्। च सू २६।३७

यह इतने आधार है जिनके आधार पर औषधि निर्णय को अपनाना चाहिए। यह कोई तात्पर्य कभी भी नहीं रहा है कि केवल गोपालादि से ही पूछकर औषधि का निर्णय करना चाहिये। बल्कि अपने संदेह को मिटाने के लिये व पुष्टि के लिये इनसे भी पूछकर तब निर्णय कर लेना चाहिए।

नरहरि पंडित ने अपने राज निघंटु में स्पष्ट ही औषधियों के पर्याय के व्याज से कई प्रकार से संज्ञाओं का आधार रखा है जो कि उक्त विषय का पोषक है। यथा—

नामानि क्वचिदिह रुढितः स्वभावात् ।
देशोक्त्या क्वचन च लाछनोपमाभ्याम् ।
वीर्येण क्वचिदितराह्व यादि देशात् द्रव्याणामिह सप्तधोदितानि ।

अर्थात—राजनिघटु मे जो पर्याय दिये गये है उनके आधार सात प्रकार के है। यथा-१ द्रव्यो मे रूढि नाम के आधार पर। २ स्वभावत । ३ देशोक्तित । ४ लाछन व ५ उपमा के आधार से। ६ वीर्य के अनुसार। ७ इतरनामो के आधार पर इन सात प्रकारो से पर्याय दिये गये है।

इसके अतिरिक्त रस, गुण, वीर्य विपाक के अनुसार व भाषानुसार भी सज्ञाये प्रयुक्त हुई है। कई सज्ञाये निघटुकार ने नाना देशो के आधार पर सग्रह किया है। कुछ सस्कृत व प्रकृत के आधार पर व अपभ्रश नामो के आधार पर किया है।

यही नही वल्कि वनौषधि के मूल काड, त्वक्, पत्र, पुष्प, फल, वीज, शाखा, क्षीर, क्षार, लोम शुग प्ररोह वध, रस, स्पर्श, कटक प्रवधन, वर्धन, कुड्मल, पराग व पुष्प पर लगने वाले क्रिमि कीट, पतग, भ्रमर आदि ९० आधारो पर पर्याय वनाया है। कई पर्याय च्छेद लेकर, काटकर, काड मूल व आभ्यतर की स्थिति देखकर तव लिखे है। इनका विवरण नीचे दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि वनौषधि के सूक्ष्मतम अग की वनावट को जानकर पर्याय लिखे गये है। यही इसके आधार है। पहले हम एक दो उदाहरण वनौषधि के समग्र अग का देंगे। पीछे प्रधान प्रयोज्य अग के देगे। यथा—

गुडूची का विवरण पर्यायो द्वारा देखिये :-

जाति—वल्ली या लता। अमृतवल्ली, अमृतलता, सोमवल्ली, सोमलतिका। **रोहण सवधी**—पैदा होने के आधार पर छिन्नोद्भवा छिन्नागी, कदोद्भवा, जीवितज्ञा, छिन्ना, तत्रिका, अमृतकदा, वहुरुहा, छिन्नरुजा, कद, रोहणी, अमृता, तत्रिका। इसमे दो प्रकार से गुडूची लगाने का विवरण है। यथा -१ कद लगाकर, २ काड को काट कर। इन दोनो प्रकारो का वर्णन मिलता है। चाहे काड लगाकर या कदवाली को कद लगाकर, ३ **इतिहास के आधार पर** अमृत सभवा, देवनिर्मिता, सुरकृता। भावमिश्र के अनुसार देवताओ के अमृत पीते समय अमृत वूँद गिर जाने से जन्म है।

४ **च्छेद लेकर देखकर**—चक्रागी, चक्र लक्षणा, कुडली द्वारा, मडली। इसके च्छेद लेकर देखने पर चक्र की तरह चिन्ह दिखाई पडता है।

५ **कद सवधी**—पिडामृता

कुटज का विवरण:—

स्थान—कुटज, कौटज, कौट, कलिग, कालिंग, पहाडियो पर होनेवाला व कलिग देश का वर्धन शीलता **वत्सक**—जो वहुत से सतान को देता हो, जो वर्द्धनशील हो।

पुष्प–गिरिमल्लिका मल्लिका पुष्प, महागंध जिसमें मल्लिका या गिरि-मल्लिका का गंध हो। जो पर्वत पर की मल्लिका की तरह सुगंधित हो।

शाखा–चक्रशाखी जिसके कांड गोल हो। च्छेद लेने पर जिसमें चक्राकार बनावट हो।

वृक्ष की स्थिति–वृक्षक, इन्द्र वृक्ष, शक्र वृक्ष, **पांडुरद्रुम**। शक्र पादप। जो वृक्ष की तरह ऊंचा नहीं। छोटे वृक्ष की तरह की साईज वाला पांडुवर्ण का जो हो। देखने में सुन्दर।

बीज–इन्द्रयव, शक्रयव, यवफल, वत्सक बीज, तंडुली। बड़े यव के आकार का

नाम–शक्र व इन्द्र की जितनी संज्ञायें हैं वह सब।

ऋतु प्रावृष्य, प्राविषेण्य, वर्षा ऋतु में होनेवाला।

कर्म–संग्राही। मल को बांधने वाला।

रस–वर तिक्त। अधिक तिक्त रस वाला।

इस प्रकार इन्द्रयव का विवरण मिलता है। सामान्य रूप से इन्द्र यव का विवरण हो जाता है कि यह एक छोटे आकार का वृक्षक जातीय वनौषधि है। जो एक जगह पर झुंड के रूप में होता है।

संज्ञायें–चरक में, कुटज, वत्सक बीज, गिरिमल्लिका, कलिंग, मल्लिका पुष्प शक्र। ध, नि कुटज, कीट, वत्सक, गिरिमल्लिका तंडुली, कलिंग, मल्लिका पुष्प इन्द्र वृक्ष, वृक्षक।

रा० नि०–शक्र शक्रपादप, प्रावृष्य, वरतिक्त यवफल संग्राही, पांडुरद्रुम प्रावृषेण्य, महागंध यह नाम धन्वन्तरि निघंटु के नामों से अधिक है।

भाव प्र०–पूर्वपेक्षा अधिक नाम कालिंग शक्रशाखी, यवफल कुटज, इन्द्रयवफल अमरकोष ने भी इन्हीं नामों को कहा है। सुश्रुत ने कुटज, वत्सक, शक्रशाखी, शक्र, यव इन नामों का प्रयोग किया है। इन संज्ञाओं के आधार पर यह विवरण दिया है। गुण कर्मानुसार बातों आधार पर नहीं। अन्य संज्ञायें भी हो सकती हैं। गुण कर्मानुसार भी रसादि के आधार पर विवरण उपस्थित किया जाता है। वह यहाँ पर नहीं दिया गया है।

एला छोटी का विवरण–

रूढि नाम सूक्ष्मैला, एला।

स्थान–द्राविणी। कोरंगी सूक्ष्म, सागर गामिनी। द्रविड़ देश, कोरंग देश व समुद्र के किनारे।

वर्ण–कपोत वर्णा, चन्द्रवाला, तुत्था, कोरंगी, गौरांगी, उपकुंची। (हरित-पीत, श्वेत वर्ण की)

गंध–बहुल गंधा, गंध फलिका।

पुष्प–चन्द्रवाला। चन्द्रिका।

आकार बल–त्रिपुटा, त्रुटि निष्कुटि वाला, कायस्था पृथ्विका।

मात्रा-बहुला बहुत फल लगनवाली।
गुण-बलवती, हिमा, गर्भादि
इस प्रकार से उनका वर्णन सामान्य रूप से हो जाता है।

राजनिघंटु के अनुसार रूढित प्रसिद्ध कुछ संज्ञायें :—

वाकटी-वस्तात्री या विधारा
कान्तीर-गाटर
टोरली-बृहती
टुन्टुक -स्योनाक
कट्वग - ,,
चपचपा-दार्वी
नीली-नील
महानील-नील
नील-नील
किणिही-अपामार्ग
बला-पटी
क्षीरनर-विटनार
रुदंन-मदन
चीरवृक्ष-क्षीरनर
महापत्रि-दूर्वा
नेजोवृक्ष-तेजिनी
नृपद्रुम । -आरग्वध
राजवृक्ष । - ,,
मूर्वा

ऊपरवाले नाम राजनिघटुकार के काल के है। जो कि स्थानीय नाम, लोक नाम के आधार पर रुढि होकर प्रयुक्त होते है। इनमें से सबका नाम संस्कृत के धातु प्रत्यय के अनुसार ठीक नहीं बनता पर तो भी प्रसिद्ध है। टोरली, वोकडी ये नाम इसी आधार पर ही बला, बल्या, तर वृक्ष चीर वृक्ष गुण के आधार पर है।

स्वभाव से प्रसिद्ध होने के आधार पर निम्न संज्ञाएँ है :-

वाताद : वादाम वातनाशन
भूनिम्ब - चिरायता
तोयवल्लिका -अमृतस्रवा
उपदंश-पास जानेवाले को डसने के कारण बृहती को कहते है।
उदकिका - बला
निद्रारि -किरात
निद्रालु - सुमुख
निद्रक - पिचुमर्द
मंगल्या, सुभद्रा-शमी
मद्यवासिनी - धव

इस प्रकार ये नाम स्वभाव से जैसे प्रसिद्ध है जैसा काम करते थे उसके अनुसार प्रसिद्ध है।

देशोक्त्या प्रसिद्ध नाम जो मिलते हैं —

धन्वयास - धन्व देश का
काम्बोजी - कपास-कावोजदेशकी
कलिंग - इन्द्रयव
वैदेही - पिप्पली
काम्बोजी, मरुज } -खदिर
यावनी - पारसीक यवानी
चीनाक - कर्पूर
चीनाक - चीना धान्य
गोमर्द - दासपुर, परिपलेव-मुस्ता
मलयज - चदन

कैरात – किरात देश ज

कालिंग – शिरीष

नैपाल – निम्ब नैपाली निम्ब

तुरुष्क – पारसीक यमानी

सौराष्ट्री }
सुराष्ट्रजा } – फिटकरी

काश्मीर – कूठ – केशर

गन्धमादन – गंधक

केदारज – पद्मक

ऊपर के नाम सब देश के अनुसार ही यहाँ पर दिये गये है।

लांछन के आधार पर —

चित्रा –मूषाकर्णी

अंशुमती – शालिपर्णी

पञ्चराजिफल –पटोल

उपचित्रा – दन्ती बीज

चित्रक – मूर्वा

उपमा के आधार पर.—

अजकर्ण व वस्तकर्ण. सर्ज

कुंडलिनी गुडूची

स्वर्णलता – ज्योतिष्मती

शरपुंखा – काड पुंखा, }
पुंपुंखा – } सरफोंक

तृणराज –ताल

राजतरु – अमलतास

कर्णिकार –झुमक की तरह पुष्पाकृति

कृतमाल – जिसमें पुष्पमालावत् लगे हों

कर्णाभरणक – पुष्पाकार कर्ण के–आभरण की तरह

मंडूक पर्णी – पत्र मंडूक की तरह

शृंगवेर – वेर के आकार का अंग वाला अदरक

कर्णिका – कर्णिका की तरह अणीदार पत्र

मायूरी – जिसके पुष्प मयूरशिखा की तरह है

शुकनाश – श्योनाक, फल शुक के नाक की तरह

मयूर जंघ } – श्योनाक वृत मयूर की जंघा की तरह
दीर्घ वृत्तका } –श्योनाक

रक्तांग – कमीला

छत्रा – धनिया पुष्प छत्राकार

उपमा के आधार पर तो अधिकांश भाग भरा पड़ा है। जिस औषधि की आकृति जिस प्रकार की है उसके आधार पर नाम है। कुछ उदाहरण और देखिये।

कर्कट शृंगी – केकडे के शृंग की तरह। पिंडालु. – पिंडार।
सर्पांगी व भुजमाक्षी – सर्पगंधा।। परावत पदी – ज्योतिष्मती

वीर्येण—

कटुफला – कटुरस वाले फल की। कासमर्दन. – कसौंदी पटोल
ऊष्णम् – विडंगा। कुष्ठघ्न – पटोल। दिप्यक – अजमोदा
चर्महन्त्री – चन्द्रसूर। नागाराति व नागहन्त्री –कर्कोटकी।
पुत्रदात्री – कर्कोटकी। सहस्रवेधी – हिंगु

वातारि – श्योनाक । दुष्प्रधर्षा – धन्वयास
शीता – बला । कन्तरिपु – शर्मा

इतराह्वा के आधार पर —

काकाह्वा – काकमाची
देवाह्वा – देवदारु
घटाख्य – इन्द्रयव

इस प्रकार के कई नाम है ।

यवाह्वा – इन्द्रयव
अनलनामा – चित्रक

प्राप्तिस्थान के आधार पर —

मृगनाभि व मार्जारी – कस्तूरी
मृगमद – मृगाडज, कस्तूरी
चीडा गंध – श्रीवेष्टक
शबर व शबर पादप – लोध्र
लाक्षा प्रसादन – लोध्र
मरुसभव – मूलक मूली
जतुका – लाक्षा
भृगशृग – लाक्षा
अर्कपत्री – सुवर्चला
सघातपत्रिका – दुरालभा

कृमिजा – लाक्षा
मर्कटिस्थनम् – मर्कटिस्थाष्ट
सूक्ष्म पत्रिका – दुरालभा
गोजिह्वा व धेनुजिह्वा – दार्विका
स्निग्धपत्र – करज
पद्म पत्रम् – पुष्करमूलम्
कटुपर्णी – स्वर्णक्षीरी
खरगाव – भारगी
मडूकपर्णी – मजीठ

पत्रवाचक सज्ञायें—

लेख्यदल – ताल
त्रिपर्णी व भिन्नदला – मूर्वा
लघुपर्णिका व गोकर्णिका – मूर्वा
पृथक पर्णिका – अतर से पत्र देनेवाली ।
कर्कश च्छद – शाक
सूर्प पर्ण – माप
स्वर्ण पत्री – जीवती
वृत्त पत्र – पद्म

भार या मात्रा के आधार पर—

अक्ष व कर्पफल – विभीतक
अक्षफला – विभीतक
कोला – मरिचम्
तिष्य फला – धात्री
तिंदुक – तेद
पिंडी व पिडीतक – मदनफल ।

भार के आधार पर—

आयुर्वेद मे कर्प एक तोले का बोधक है ।
अक्ष –
कोल – दो माशे का
तिंदुक – एक कर्प का

ग्रथी के आधार पर—

शतग्रथी – दूर्वा
षड्ग्रथा – वचा

फल राजि के आधार पर—

पचराजिका – पटोल

बीज के आधार पर—

बीजगर्भ – पटोल

धारा फल – मदन
पत्ररेखा – अभया
पत्रराजिफल – पटोल

कृष्ण बीज – तरबूज
रक्तबीज – तारटी

पुष्प के आधार पर—

लोमशपुष्प | शिरीष
शिरीष |
वृत्त पुष्प |

वाट्यपुष्पी – बला
घटा – अतिबला
पीत पुष्पा – ,,
विषपुष्पक – मदन

श्वेतपुष्पिका | अघ पुष्पी – अँधाहुली
शतपुष्पा |
अहिछत्रा |

रजनी पुष्प | करंज
नक्तमाल |

फल वाचक संज्ञायें।—

पांडुफल – पटोल
अमृतफल , ,,
पत्रराजिफल ,,
स्नेहफला – कटकारी
कटफल – करंज
धाराफल – पटोल
घटोल – शण
गोलफल – ग्रथिफल – मदन

कटफला – जीमूतक
कोषफला – ,,
कटुफला – ,,
वृत्तकोषा – ,,
ज्योतिष्मती
युग्मला – इदीवरी
काकनासा – } काकनासा
काकतुंडा
कटकी फल
बृहती – भटाकी

कांड संबंधीसंज्ञायें –

वस्तात्री–बकरे के आंत के आकार की
मेषात्री–मेष के आंत के आकार की
अजात्री–अजा के आंत के आकार की
कांड कटुका – कटुकी
मुकांडक – कांडीर
देवदंडा – भद्रोदनी
महाकांडा – भद्रोदनी
कालस्कंध – भद्रोदनी

क्षीरकांडक–स्नूही
दीर्घ दंडक–वर्धमान
दृढकांड –कत्तृण
कांडतिल – चिरायता
दीर्घदंडक } एरंड
ब्रह्मदंड } –
रक्त कांडा – मजीठ
मधुयष्टि – मुलहठी

क्षीर निकलने के या पाये जाने के आधार पर संज्ञायें –

क्षीरा – काकोली
क्षीरशुक्ला – क्षीर काकोली
पयस्विनी – ,,
पयस्या – ,,
क्षीरविदारी – विदारीकंद

क्षीरा – स्नूही
तिक्त दुग्धा – मेषशृंगी
पीतदुग्धा – स्वर्णक्षीरी
हेमक्षीरी – स्वर्णक्षीरी

वर्ण के आधार पर पांडु --

पाडु - पटोल
कालिका - काकोली
कृष्णवृन्ता - माषपर्णी
हेमा - जीवन्ती
हेमवती - जीवन्ती
स्वर्णपर्णी - जीवन्ती

स्पर्श के आधार पर -

दुस्पर्शा - यवासा
दुष्प्रधर्षिणी - कटकारी

कटक के आधार पर --

गोक्षुर - गो के लिए छूरे की तरह
क्षुरक - छूरे की तरह
श्वदंष्ट्रा - श्वान के दात की तरह
तीक्ष्ण कटक - बब्बूल
दीर्घ कटक - बबूल
कटालू - बबूल
गोशृग - कथारी
तीक्ष्ण कटका - कथारी
तीक्ष्ण कटका - इगुदी

सार के आधार पर -

बहुसार - खदिर
तिक्तसार -कतृण

गध के आधार पर ---

सुगधा - रुद्र जटा
सुगधा - गधनाकुली
वृष गधा - गध भाड
गधारिका - शतपुष्पा
वृषगधिका - शतपुष्पा
अश्वगधा - हयगधा
हविगधा - शमी
तीक्ष्ण गधा - कथारी
क्रूर गधा - कथारी
काय गधा - विधारा

नोट --गध के आधार पर बहुत सी सज्ञाएँ मिलती है इनका अर्थ सरल है अत हमने इनका अर्थ हर एक के साथ नही दिया है। अश्व की तरह गध देनेवाला, वृष की तरह गध देने वाला, सुन्दर गध देने वाला।

रस के आधार पर संज्ञाएँ :--

मधुरसा - मूर्वा
मधु दला - मूर्वा
मधूलिका - मूर्वा
सुतिक्ता - कोपानकी
कटुतुम्बिनी - कटवी तोवी
कटुफला - जीमूत
बहुरसा - ज्योतिष्मती
कटवी - कटुकी
महातिक्त व महातिक्तात्महानिम्ब
किरातनिक्त - चिरायता
भूनिम्ब - चिरायता

ऊपर के शब्द स्पष्टार्थक है जिसके पत्र मे मधुरता है वह मधु दला जिसमे कटुरस है वह कटुकी- तिक्त रस है वह चिरायता।

स्थान के आधार पर –

अरण्यमुद्ग – जगली मूग
ख वल्ली – आकाश वेल
शैल मूता व गिरिनिरत्र – कैटर्य
वाप्यम् – कुष्ठ

काश्मीरम् – केशर
पुष्करम् – पुष्कर मूल
पौष्करम् – पुष्कर मूल
नेपाली – मन शिला

इस प्रकार स्थान के आधार पर कई सज्ञाये है।

ऐतिहासिक विवरण के आधार पर :

अमृत सभवा – अमृता
यज्ञस्य भूषण – कुश
विसीषण – नल
शाभवी – दूर्वा
कुशिक तरु – अश्व कर्ण

कौशिक – गुग्गुलु
सुषेण – वेतस
अर्जुन – अर्जुन
चाणाक्य– मूली
विष्णुक्षुप्त – मूली

जाति के आधार पर —

अमृ वल्ली
सोमलतिका
दिव्यलता – काकोली
जीव वल्ली –काकोली
कन्द वल्ली सुरलता – स्वर्णलता सोम वल्ली ताम्रवल्ली स्फोटलता। कटुक वल्ली आदि लता जाति के सूचक है।

जिन औषधियो का आकार अच्छा सुन्दर और दर्शनीय है उसके आधार पर निम्न है। भद्रा, मगल्या, जीव सृष्टा, सुपिगला यह जीवती के नाम है।
कपिल्लोम फला – आत्मगुप्ता का नाम है।

आकार के आधार पर :—

माषपर्णी – माष के पत्र की तरह पत्र वाली
मुद्गपर्णी – मूंग के पत्र की तरह पत्र वाली
हय पुच्छिका अश्व पुच्छिका अश्वपुच्छा यह माष पर्णी के शशशिम्बा का जिसके फल शशक की तरह हो
घटाली – घटा की तरह वहुत फल वाली
मृदग फलिनी – कोषातकी
आखु कर्णी – मूसा कन्नी
न्यग्रोधिका – मूसा कन्नी
तुम्बिनी – तुम्बी के आकार की
वेणी – जिसके पुष्प वेणी के आकार के हो।

सूचीमूल – कुश
शखपुष्पी – शख के पुष्प की तरह पुष्पवाली

कर्कटी – ककडी की तरह आकृति की–जीमूत। मेषशृगी – मेढासिगी

मृदगफलिनी – कोपातकी ।　　काकाट – निम्ब
आखुकर्णी – मूसा कन्नी
गवाक्षी पुष्प जिसके गौ के आँख की तरह हो इन्द्रायण
रुद्रजटा – शकर की जटा की तरह पुष्प वाली ।

प्राणियो के ऊपर प्रयोग करके जो हानि या लाभप्रद ज्ञात हुई हो उसके आधार पर

अश्वमार – कनेर　　भूतनाशन – सर्षप
काकघ्नी – महाकरज　　कृमिघ्न – भल्लातक
अहिमारक – इरिमेद　　त्रिमिघ्न – विडग
जतुनाशन – यमानिका

जिन वृक्षो के नाम उनके अगो के वाचक हैं । यथा–

शुक्ल वृक्ष – धवः　　**रोमालुद्रुम** – कुमी द्रुम

इस प्रकार पेडो के नाम मे दिये गये है ।

धनुवृक्ष - धन्वन　　राजवृक्ष – आरग्वध
वल्कद्रुम – भोजपत्र　　पाण्डुरद्रुम – आरग्वध

पराग पुष्प–पराग के आधार पर । मजरी सूचक　पुष्प मजरिका इदीवरी
खर मजरी अपामार्ग

शाखा के अनुसार–शाखोट व शाखाल वेत्र

वल्क के आधार पर–सोम वल्क काश्मरी जिनके वल्कल सफेद रग के हो ।
सोम वल्क – खदिर

वृत के अनुसार–कृष्ण वृता काश्मरी ।　कृष्ण वृता – मुद्ग पर्णी

ग्रथी के अनुसार–षड्ग्रथा वच　।　शतग्रथी – दूर्वा

तैल के आधार पर–सुतैला ज्योतिष्मती । तिल　। गुप्त स्नेहा अकोल

स्नायु के अनुसार–तस्कर स्नायु –काकनासा

कटक के अनुसार–सिहिका व्याघ्री । वज्री – थूहर । गोक्षुर – गोखरु ।
जिह्म – शल्य　खदिर विपकटक – यास । तीक्ष्ण कटका　यवास ।

कोष के रचनानुसार–कोपातकी – तरोइया । जालिनी व कृत छिद्रा– कोपातकी
कोष फला – कोपातकी ।

कद के आधार पर–श्री कदा व सुकदा – वल्याककर्कोटकी ।

ऋतु के आधार पर–वमत दूती – पाटला । प्रावृष्य – कुटज ।
प्रावृषेण्या–कौच ।

आधिक्य के अनुसार–कदम्बा – जीमूत । महागुल्मा – सोमवल्ली ।
रामसेनक' – किरात　जिसके क्षुप राम की सेना की तरह अधिक हो ।
पुत्र श्रेणी–जिसमे अधिक फल लगे हो । शाष्ट्रिका – व्याघ्री
नाडी के अनुसार–नाडी तिक्त　किरात　सिरापत्रक – ताल　। श्रीताल
स्फोट फल–अस्फोटक वल अर्क । स्फोट फल – लता पुष्पी

उदकीर्य—करज । प्रकीर्य व प्रकीरण – करज जिसके फल पकने पर फटकर फैल जाते है । शाखा के परिवर्तित रूप कटक के लिए शाखा कटक – स्नूही, जिसके पत्र परिवर्तित होकर काटे के रूप मे हो गये हो ।

प्रयोग के अनुसार—नेमि वृक्ष, खदिर की, रथ की धुरी बनाने के आधार पर खदिर का नाम नेमि वृक्ष है ।

परिचयार्थ संज्ञाये—अतिविषा – जिसमे विषात्मक असर होता है ।

शुक्ल कंदा—अतिविष श्वेत कदवाली – अतीस को अतिविषा कहते है ।

श्यामकंदा—श्याम कद वाले अतीस को प्रतिविषा कहते हैं ।

चन्द्रमा की ज्योत्सना की तरह श्वेत वर्ण की व श्वेत वचा की तरह श्वेत अतीस होती है । **ताम्र पुष्प** – व महापुष्प – अर्थात् जो लालवर्ण के बडे पुष्पवाला हो वह **कोविदार** है । अन्यथा – अश्मतक है । अम्लपत्र – अश्मतक होता है ।

समंतदुग्धा—स्नूही होता है ।

आमोद के अनुसार—जो वस्तु जिस प्राणी को आनददायक होता है उसे उस नाम मे पुकारते है । यथा

वस्तमोदा—अजमोदा । अजमोदा के नाम मे । षट्पदानदी—मल्लिका

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न नामो के आधार पर बनी औषधियो का नामकरण करके आचार्यो ने वनौषधि को सुज्ञात करने की चेष्टा की है । विभिन्न नामो को देकर उनका स्वरूप परिचय देने की पद्धति को अपनाया गया है। यद्यपि इस प्रकार के बहुत से पर्यायो का उल्लेख निघटुओ मे पाया जाता है पर यहाँ पर उनका उदाहरण मात्र दिया गया है विद्वान वैद्यो का इसके निर्णय करने मे इनसे सहायता मिली है । और सदिग्ध औषधियो को भी विवरण प्राप्त करके कई द्रव्य जहाँ पर एक नाम हो वहाँ पर विभिन्न रस गुण व पत्र पुष्प बलीज व फल सूचक शब्दो का सग्रह करके उनके नाम व रस रसादि का निर्णय कर द्रव्य का निर्णय किया जा सकता है ।

जो लोग इस प्रकार विश्लेषण कर उहापोह नही कर सकते वे ही इस पर सदिग्धता का अधिक दोषारोपण करते है ।

आशा है कि विचारक विद्वान वैद्य व वनस्पति शास्त्री जब आयुर्वेद के अनुसार द्रव्य का निर्णय करने चले तब वे इसी प्रकार का निर्णय करे तो इसके समीप पहुँच सकते है ।

१४. औषधि–प्रतिनिधि तथा संग्रह व संरक्षण

चिकित्सक जब औषधि का निर्णय कर के योग निर्माणार्थ देता है तो उसका सिद्धान्त कई दृष्टिकोण को लेकर चलता है यथा– दोष की स्थिति, रोग की दशा, रोगी की दशा औषधि के कर्म और गुण की स्थिति । अब जब लिखे हुये योग की औषधिया सब नही मिल पाती तो उसे औषधियो के तत्सम गुण युक्त औषधियाँ लेने को बाध्य होना पडता है । यह तत्सम गुण

कारक द्रव्य जो बदले मे किसी औषधि के लेने मे पडते है इसे उस द्रव्य के 'प्रतिनिधि' की सज्ञा प्राप्त होती है। यथा—

कदाचिद्द्रव्य मेक वा योगे यत्र न लभ्यते।
तत्तद्गुण युत द्रव्य, परिवर्त्तेन गृह्यते।।

अत द्रव्याभाव मे तत्सम प्रयोजक साधक द्रव्य का सग्रह कर के कार्य चलाना पडता है इसके निमित्त कई परिस्थितिया उत्पन्न होती है। यथा—

(१) जब कोई द्रव्य अप्राप्य हो,

(२) जब कोई द्रव्य बहुत मूल्यवान हो और रोगी उतना द्रव्य न खर्च करने की स्थिति मे हो।

(३) जब द्रव्य का प्रयोग आवश्यक होता है और उसे उसी रूप मे प्रयुक्त करने पर हानि की सम्भावना होती हो तो उसके प्रतिनिधि को लेने को बाध्य होना पडता है।

यह तो निर्णय सत्य है कि कोई भी प्रतिनिधि औषधि पूर्ण रूपेण गुण कर्म को उसी प्रकार नही पूरा कर सकती अत प्रतिनिधि को चुनने के लिये भी सिद्धान्त बनाना पडता है। उनमे प्रधान नियम निम्न है। यथा—

(१) प्रतिनिधि द्रव्य प्रधान द्रव्य के रस गुण—कर्म की अधिकाश पूर्ति करने की क्षमता रखता हो।

(२) प्रधानद्रव्य के वीर्याधिवास की मर्यादा की पूर्ति कुछ अश मे होती हो।

(३) प्रतिनिधि द्रव्य के सगठन के द्रव्य प्रधान द्रव्य के सगठनात्मक द्रव्यो से, तुलना मे समकक्ष हो।

(४) रस —गुण-भूतद्रव्य समुदायाश्रय समकक्ष हो

(५) प्रतिनिधि द्रव्य प्रधान द्रव्य की तरह पूर्ण लाभप्रद न हो तो कम से कम किसी हानि का कर्त्ता न हो।

(६) कर्मानुमेय सपत्ति प्राय समान हो।

प्रतिनिधि द्रव्य से लाभ कितना होना संभव है—

(१) सर्वदा प्रतिनिधि द्रव्य से मर्यादित लाभ की आशायें रखी जाती है चकि प्रतिनिधि द्रव्यो के द्वारा प्रधान औषधि के कार्य की पूर्ति का अनुमान करके ही द्रव्य चयन होता है अत यह आशा कभी भी नही रखना चाहिए कि प्रधान द्रव्य के सब कार्य इस से पूरे हो जायेंगे। अत मर्यादित लाभ होगा यह समझना आवश्यक होगा। कुष्ठ के बदले मे पुष्कर मूल लेने पर—समान स्थान, समान प्रकृति, समान जातीय द्रव्य होने पर भी पुष्करमूल कूठ की बराबरी नही कर सकता किन्तु अधिकाश रूप मे उसके कार्य की पूर्ति मे सहायक होता है। द्राक्षा के अभाव मे गभारीफल लेने मे कार्य चल सकता है किन्तु द्राक्षा-स्थ सद्गुण उसमे नही होते। इसी तरह मुक्ता के अभाव मे मुक्ताशुक्ति, शख

के अभाव मे कपर्द अथवा प्रवाल के अभाव मे शख इन प्रतिनिधि द्रव्यो मे रचनात्मक द्रव्य समूह की समता अधिकाश मे मिलती हुई भी है। किन्तु वज्राभाव मे वराटिका का प्रयोग जो प्राचीन काल से चलता आ रहा है वह क्यो है यह समझ मे नही आती। हो सकता है वज्र या हीरा के कुछ गुणो की पूर्ति यह करता है किन्तु यह मानी हुई बात है कि प्रतिनिधि द्रव्य मे प्रधान द्रव्य की गुणावली सम कक्ष होना ही चाहिए। प्राचीनकाल के आचार्यो ने प्रतिनिधि द्रव्यो की एक सूची बनाई है। यह इसी आधार पर निर्मित है।

द्रव्यग्रहण व प्रतिनिधि चयन–

पूर्व मे प्रतिनिधि लेने के सिद्धान्त का उल्लेख हो चुका है। अब द्रव्य व उनके प्रतिनिधि का विवरण भिन्न-भिन्न आचार्यो के मत मे निम्न है यथा

१ चित्रक के अभाव मे दती
२ चित्रक के अभाव मे अपामार्गक्षार
३. धन्वयास – दुरालभा
४ मूर्वा – जिंगिनी की त्वचा
५ तगर – कुष्ठ
६ अहिंस्रा – मानकद
७ लक्ष्मणा – मयूर शिखा
८ वकुल – रक्त कुमुदिनी
वकुल – नील कुमुदिनी
वकुल – पद्म (कमल)
९ नीलोत्पल – कुमुद
१० जातीपुष्प – लवग
११ अर्कक्षीर – अर्क पत्ररस
१२, पुष्करमूल –कुष्ठ
१३ लागली – कुष्ठ
१४ स्थौणेयक –कुष्ठ
१५ चविका }
१६ गजपिप्पली } –पिप्पली मूल
१७ सोमराजी – चक्रमर्द फल
१८ दारुहल्दी – हल्दी
१९, रसाजन – दारुहल्दी
२० सौराष्ट्री – स्फुटिका
२१ तालीसपत्र – स्वर्ण तालीस
२२ भार्गी – तालीस
२३ रुचकलवण-कटकारीमूल, पाशुलवण
२४ मधुयष्टि – धातकी
२५, अम्लवेतस – चुक्र
२६ द्राक्षा – काश्मरी फल
२७ द्राक्षा }
गभारीफल } –बधूक पुष्प
२८ नखी – लवग
२९ कस्तूरी – ककोल
३० ककोल – जातीपुष्प
३१ कर्पूर – ग्रथिपर्ण
३२ कुकुम – नवकुसुम्भ पुष्प
३३ श्वेतचदन – कर्पूरम्
३४ चन्दन }
कर्पूर } –रक्त चन्दन
३५ रक्त चन्दन – नया उशीर
३६ अतिविषा – मुस्ता
३७ हरीतकी – आमलक
३८ नागकेशर – पद्म केशर
३९ मेदा – महामेदा – शतावरी
४० जीवक– }
ऋषभक। } विदारी
४१ काकोली – }
क्षीर काकोली } अश्वगधा
४२ ऋद्धि – वाराहीकद
वृद्धि – वाराहीकद

४३ वाराहीकद – चर्मकारालुक
४४ भल्लातक – रक्त चन्दन
४५ भल्लातक – चित्रक
४६ ईक्षु – नल
४७ सुवर्ण – स्वर्ण माक्षिक
४८ रजत – रजतमाक्षिक
४९ माक्षिक – स्वर्ण गैरिकम्
५० स्वर्ण व रौप्य भस्म-कान्तलौह भस्म
५१ कान्ताभावे – तीक्ष्ण लौह
५२ मुक्ता – मुक्ताशुक्ति
५३ मधु – जीर्णगुड
५४ मिश्री – शर्करा
५५ शर्करा – खाड
५६ क्षीर – मुद्गयूष, मसूरयूष

(शालिग्राम निघटु भूषण)

सग्रह व सरक्षण—

संग्रह की विधि—जो द्रव्य अपने काल मे उत्पन्न हुए हो, जिनमे सपूर्ण रस यथावत् आ गये हो। काल-आतप-अग्नि-सलिल-पवन जन्तु से अनुपहत हो, जिनमे गध, वर्ण-रस-स्पर्श प्रमाणवत उपस्थित हो, उनको पूर्व मुख या उत्तर मुख होकर ग्रहण करना चाहिए यथा—चरक ने—इस विषय मे कल्प स्थान के प्रथम अध्याय में कहा है।

१ यानि काल जातानि – जो समय पर उत्पन्न होते है।
२ आगत सपूर्ण रस, – जिनमे पूर्ण रसागम हो गया हो।
३ आगत सपूर्ण प्रमाण, – अपने पूरे आकार प्रकार व मोटाई मे आ गया हो
४ आगत सपूर्ण गधानि – जिसमे सपूर्ण गध आ गये हो
५ कालानुपहत–गध-वर्ण-रस-स्पर्श प्रभावाणि प्रत्यग्राणि
६ आतपानुपहत – ,, ,, ,,
७ अग्न्यनुपहत – ,, ,, ,,
८ सलिलानुपहत – ,, ,, ,,
९ पवनानुपहत – ,, ,, ,,
१० जन्तुभिरनुपहत-,, ,, ,, ,,
११ प्रत्यग्राणि –
१२ उदीच्य दिशि स्थितानि – गृहणीयात्

जिसके गध वर्ण रस व स्पर्शकाल-आतप अग्नि-वृष्टि वायु-जन्तु के द्वारा नष्ट न हो और उसमे से जो उत्तम हो उन्हे लेना चाहिए। और जो उत्तर दिशा मे स्थित हो लेना चाहिए।

अष्टाग हृदयकार ने (क अ–६) च क अ १–इस निमित्त और विचार दिये हैं जो ऊपर के विचार मे मिलते जुलते हैं।

कैसे द्रव्य का औषधार्थ ग्रहण चाहिए –

१ सर्वाणिचार्द्राणि नवौषधानि
सुवीर्यवतीति वदति धीरा ।
सर्वाणि शुष्काणि तु मध्यमानि
शुष्काणि जीर्णानि च निष्फलानि ॥ रा नि ॥

२. नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिल कर्मसु । शा. ॥
३. सर्वाण्येव चाभिनवानि । तेषामसंपत्तावनति क्रान्त सवत्सराणि,
अन्यत्र मधु-घृत-गुड-पिप्पली- विडगेभ्यः ।
विगधेनापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः ।
नवं द्रव्य पुराणं वा ग्राह्यमेवं विनिर्दिशेत् ।।सु०सू०भू० ३९।।
४. शुष्कनवीन द्रव्य तु योज्यं सकलकर्मसु । भा प्र ।

१ ताजे द्रव्य लेने चाहिए । ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि द्रव्य नवीन लेना चाहिए । जो शुष्क प्रयुक्त होते है वह शुष्क व नवीन होने चाहिए ।
२ पुराने द्रव्य भी लेने चाहिए । किन्तु उनकी सख्या गिनी चुनी है। जैसे विडग, पिप्पली-गुड, धान्य, घृत-माक्षिक इत्यादि ।
३ कुछ औषधिया सरस और आर्द्र ही लेनी चाहिए ।

द्रव्यो मे गुणावान विभिन्न प्रकार से होता है ।

केचित्कदे, के ऽ पि मूलेषु केचित पत्रे पुष्पे के ऽ पि केचित फलेषु ।
त्वच्ये वान्ये वल्कले केचिदित्थं द्रव्यस्तोमा भिन्न भिन्न गुणाढ्या । (रा० नि०)

शस्यते भेषजं जात युक्त वर्ण-रसादिभि ।
जन्त्वजग्ध दवादग्धमविदग्धं च वैकृतैं ।।
भूतैश्छायातपाम्बाद्यैर्यथाकाल च सेवितम् ।
अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम् ।।

तात्पर्य यह है कि उन द्रव्यो को ग्रहण करना चाहिए जो उचित ऋतु मे पूरे आयु के हो, जिनका आकार अपनी मात्रा मे पूर्ण हो, जिनका रस, गध पूर्णरूप में आ गया हो, जिनके वर्ण उचित हो। जो स्पर्श मे उचित उल्लिखित प्रमाण मे मिलते हो । जिन पर शीतोष्ण का, आतप का, अग्नि का, जल, वायु व जन्तु आदि का प्रभाव न हो, कीट द्वारा वह भक्षित न हो और ग्राम नगर व देश के उत्तर की दिशा मे स्थित हो उन्हे ग्रहण करना चाहिए । उनके मूल-पत्र-फल-त्वक-पुष्पादि जिनके ग्रहण की आवश्यकता पडे—लेना चाहिए ।

भूमि—[1] जो औषधि सधारण देश मे या जागल देश मे ही उत्पन्न औषधि हो जहाँ की मिट्टी स्निग्ध व मधुर हो और जिसका वर्ण कृष्ण वर्ण, पीतवर्ण, मधुर रस प्राय हो जहाँ जल की अनुकूलता हो जहाँ पर कुश-रोहिष आदि उगते हो, जो अफाल कृष्ट हो और जहाँ बलवान वृक्षो की छाया न हो, जहाँ

१ तत्र देशे साधारणे जागले वा यथाधाकालं शिशिरातप-पवन-सलिल सेविते समे शुचौ प्रदक्षिणोदके—कुशरोहिषास्तीर्णे स्निग्धकृष्णमधुरमृत्तिके वा मृदावफालकृष्टे ऽ न्यैर्बलवत्तरैर्द्रुमैरौषधानि जातानि प्रशस्यन्ते । च क अ १ । ९
२. धन्व साधारणे देशे समसन्मृत्तिके शुचौ। श्मशान चैत्यायतन्-श्चमवल्मीक् वर्जिते। मृदौप्रदक्षिणजले, कुशरौदिष संस्तृते । अफालकृष्टेमाक्रामो पादपैर्बलवत्तरैं । अ हृ क ६

पर की भूमि मे शीत ऋतु, उष्ण ऋतु, वर्षा ऋतु की सम्यक् प्राप्ति हो ऐसे स्थान मे औषधि ग्रहण करना उत्तम होता है। साथ ही जिस भूमि मे श्मशान, चैत्य, देवायतन, वल्मीक आदि न हो ऐसी भूमि मे, उत्पन्न द्रव्य जिसमे पूर्णकाल मे पूर्णरसादि सपत आगये हे। उन द्रव्यो को ग्रहण करना चाहिए। (चरक)

सुश्रुत के मत मे औषधि ग्रहण करने योग्य भूमि की परीक्षा मे निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए। जो शर्करायुक्त विषम अधिक ऊची नीची, व वल्मीक् श्मशान, वध स्थान-देवायतन-रेत मे युक्त न हो, जिसमे ऊसर भूमि न हो, जो टूटती न हो ऐसी भूमि को छोडकर जो स्निग्ध-मृदु-हो जल आसन्न हो, स्थिरसम-कृष्णवर्ण-गौरवर्ण, लोहित वर्ण की हो, जिसमे घास इत्यादि छोटे क्षुपादि लग कर हरित हो ऐसी भूमि को औषधि ग्रहण योग्य भूमि की परीक्षा कर तब द्रव्य ग्रहण करना चाहिए।

ग्रहण योग्य काल—किस काल मे किस प्रकार की औषधि का ग्रहण होना चाहिए। औषधियो के त्वक्, पत्र-काष्ट, मूल-कद-फल-पुष्पादि कब सग्रह करना चाहिए, इस विषय मे भिन्न भिन्न आचार्यो की सम्मति भिन्न भिन्न है—सुश्रुत ने इस विषय की चर्चा भूमि प्रविभागीय अध्याय मे करते हुए कहा है कि—**केचिदाहुराचार्या प्रावृट, वर्षा शरद हेमन्त, वसत, ग्रीष्मेषु यथासंख्य मूल पत्र त्वक् क्षीर-सार फलानि आददीतेति।** कुछ लोगो का कथन है कि प्रावृट ऋतु मे मूल, वर्षा मे पत्र, शरद मे त्वक्, हेमन्त क्षीर, सार व ग्रीष्म मे फल लेना चाहिए।

सुश्रुत—का मत हे कि ऐसा करना उचित नही है। सारा ससार सौम्य व आग्नेय है अत सौम्य वस्तुओ को सौम्य ऋतु मे, आग्नेय द्रव्यो को उष्ण ऋतु मे लेने से उनमे अपने गुण ठीक मिलते है। अत इनका कथन है कि सौम्य औषधिया (मधुर तिक्त कषाय रसवाली) सौम्य ऋतु-वर्षा-शरद-हेमन्त मे ग्रहण करने से मधुर-शीत व स्निग्ध गुणो से युक्त होती है। इसी प्रकार आग्नेय औषधिया (लवणाम्ल कटु) आग्नेय ऋतु, वसत ग्रीष्म प्रावृट मे लेने पर अपने गुणो मे सपन्न होती है। शार्ङ्गधर मत मे सब सरस औषधियो को [1]शरद ऋतु मे ग्रहण करना चाहिए। विरेक व वमन के लिए ग्रीष्म काल ग्रहण करना चाहिए।[2] राज निघटु कार का मत है कि—कद हिमऋतु मे, मूल शिशिर मे, पुष्प वसत मे फल-कोमल पत्र-रूढपत्र को निदाघ मे और पचाग लेना हो तो शरद ऋतु में लेना चाहिए। [3]चरक का मत है कि शाखा व पत्र का सग्रह वर्षा व वसत मे करना चाहिए।

---

१ शरद्यखिल कार्यार्थं ग्राह्य सरसमौषधम्—विरेक वमनार्थे च वसन्तान्ते समाहरेत्।

२ कद हिमर्तो, शिशिरे च मूल, पुष्प वसन्ते, फलद वदति।

३ प्रवाल पत्राणि निदाघकाले—स्यु—पकजादीनि शरत्प्रयोगे।

मूल–ग्रीष्म या वर्षा में मूल–शिशिर में पके हुए रूढ पत्र। शरद में त्वक्, कन्द-क्षीरादि, हेमंत में सार व पुष्प पुष्पकाल में लेना चाहिए।

काल विवेचन–औषधियों के ग्रहण का जो काल विभिन्न मत में बतलाया गया है उसमें अवश्य कुछ विवेचनीय बाते है वह योंही नहीं होकर किसी सिद्धान्त के अनुसार है।

पुष्प–वसन्त ऋतु में लेना चाहिए। पतझड होकर उसके बाद नवपल्लव हरित पत्र आते है। पश्चात् पुष्प आते है अत इस ऋतु में इनका संग्रह करना उचित है। पुष्प अधिकतर बसंत ऋतु में आते है अत इस ऋतु का निर्देश है। किन्तु अन्य ऋतुओं में भी पुष्प आते है। जैसे कुटज का वर्षा ऋतु में, कुद–मोगरा व जाती का ग्रीष्म ऋतु में पुष्प होता है भिन्न भिन्न ऋतु में भिन्न भिन्न जाति के पुष्प आते है करवीर शीतऋतु में, धत्तूर-शीत, अर्क व मदार सर्व ऋतु मे, वसन्त में तिलक, पाटला, अशोक, जाती, वासती, माधवी आदि।

शीत–अगस्त–बब्बुल, तगर,

वर्षा–चम्पक, नागचम्पक, स्वर्णचम्पक, वार्षिकी।

शिशिर–अशोक, अर्जक, बालक, कमल, कुमुदिनी, श्रीकमल, केशर, शखपुष्पी

ग्रीष्म–जाती-मल्लिका, नवमल्लिका, तगर मरुवक, दमनक, कमल, श्यामा-नन मूल

सदापुष्प–कुन्द, अर्क, मदार

अत सामान्यरूप में पुष्पोद्गम काल बसंत होने से वसत मे लेने का नियम है। परन्तु जिस पुष्प का जो ऋतु हो उसमे इसका ग्रहण करना उचित है। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है। कि विभिन्न ऋतु में विभिन्न पुष्प होते है। किन्तु अधिकाश वसत में होते है। अत वसत ऋतु का उल्लेख है। जब पुष्प विकसित हो रहे हो तब ही उनका सग्रह करना चाहिए।

पत्र–नवपल्लव–अचिरप्ररूढ पत्र–वसत में और चिरप्ररूढ पत्र वर्षा ऋतु मे लेने के लिए नियम है प्रौढ पत्र पुष्प लगने से पहले लेना चाहिए पुष्प काल मे औषधि की सारी शक्ति पुष्प पोषण में लगती है। अत पहले प्राचीन पत्र झड जाते है और वसत आते ही नव पल्लव लगते है। इस काल में पेड पत्र रहित रहने पर उनकी त्वचा के द्वारा ही पत्र का भी कार्य सपादन होता है। अत उनमे जो पौष्टिक पोषण अश एकत्र होता है। पलाश व पुष्प के लिए लगता है। पुष्प से पहले पत्र आते है जब वह प्रौढ हो जाते है तब उनका ग्रहण करना चाहिए। पुष्प आने से पूर्व इनका ग्रहण इस लिये है कि वनौषधि शरीर पुष्प के निर्गमकाल में अपनी सारी पोष्य शक्ति का पुष्पार्थ त्याग करता है। इससे पूर्व वय लेना चाहिए। कई वृक्षो में पत्र व पुष्प साथ ही आते है। ऐसे वृक्षो में पल्लव वर्षाऋतु मे प्रौढ बनते है। तब ही सग्रह करना चाहिए। एक वर्षीय पौधो मे पुष्प के लगने से पूर्व पत्र सग्रह होना चाहिए। द्विवर्षीय में दूसरे वर्ष के अन्त में पुष्पकाल से पूर्व बहुवर्षीय में पुष्पकाल से पूर्व या जब प्ररूढ होकर पुष्ट हो तब लेना चाहिए।

किन्तु जिस काल मे जिसके पत्र पुष्ट हो उन्हे तब ही लेना उचित है। कई एक पौधो मे विशेषकर बहुवर्षीय मे पत्र पुराने भी रहते है नये भी उगते है पुष्प भी लगता है ओर फल भी। ऐसे पौधो पर लताओ से प्रौढ पत्र जो कीट दष्ट न हो लेना चाहिए।

शाखा-वनौषधि की शाखा ग्रहण करने का वह समय है जब वह पूर्ण रूप मे हरी भरी हो तब शाखा ग्रहण करना चाहिए। शीत प्रदेशो मे शीत ऋतु शाखायें लेना चाहिए। वहाँ पर पत्र शीत के कारण गिर जाते है और शाखा मात्र ही रह जाती है। तब लेना चाहिए, तेज पत्र की शाखाये शीत ऋतु मे जब सरस रहती है तब लेना चाहिए और इन शाखाओ मे त्वक् निष्काशन मे सुविधा होती है।

सार व कांड-काड जब वृक्ष व लताये पुष्ट व पूर्णायु की होती है तब उनका सग्रह करते है और इनके सग्रह का विशेषकाल वह है जब बीच का सारवान भाग परिपूर्ण हो जाय।

चन्दन, अगर-इनके काड कई वर्ष तक पुष्ट नही होते और जब पुष्ट होते है इनमे से गध आने लगती है जब पूर्ण गध युक्त सारवान हो जाय काड या स्कध का ग्रहण होना चाहिए। चन्दन का वृक्ष २० वर्ष के बाद सारभाग सग्रह करता है और धीरे धीरे भीतरी सारवान् लकडी पुष्ट होकर मोटी होने लगती है। ऐसे ही अगर मे लकडी गाठो की जगह-शाखाओ की जगह व कीष्ट दष्ट भाग पर अधिक सुगधित व गुरु हो जाते जाते है।

गुडूची-वृद्ध दारुक के काड दो वर्ष की कम से कम आयु के बाद लेना चाहिए।

त्वक-सामान्य रूप से पेड की छाल को शरद ऋतु मे लेना चाहिए। शीत के प्रभाव मे वृक्षो की त्वचा अपनी रक्षार्थ विशेष प्रकार का प्रबध अपने शरीर मे करती है। इस काल मे रस-वीर्य व गुण अधिक मात्रा मे रहते है अत शरदकाल मे औषधि की त्वचा को निकाल कर सग्रह करना चाहिए।

फल -जिस ऋतु में जो फल होते है उन्हे उसी ऋतु मे सग्रह करना चाहिए। जो सुखा कर रखे जा सके उन्हे सुखाकर सरक्षण करना चाहिए। जो सरस फल हो उन्हे ताजा लेना चाहिए। अथवा उनका उसी रूप मे सावधानी पूर्वक सरक्षक द्रव्य मे रखकर सरक्षण देना चाहिए।

[1] विशेष-विधि-जिसकी जडे बहुत मोटी हो उनके मूलत्वक् का ग्रहण

---

[1] अति स्थूल जटाया स्यु स्तासाग्राह्यस्त्वचो वुधै। गृह्णीयात सूक्ष्म मूलानिसकलान्यपिवुद्धिमान्। महान्तियेषां मूलानि काष्ठ गर्भाणि सर्वत। तेषावु वल्कलं ग्राह्य ह्रस्व मूलानि सर्वश। न्यग्रोधादे स्त्वचो ग्राह्या सार गृह्णीयातु वीजकात। तालीसादेस्तु पत्राणिफलं स्यात्रिफलादित। धातक्या देस्तु पुष्पाणि स्नूह्यादे क्षीर माहरेत्। भा प्र

करना चाहिए, मूल लेना हो तो पतली जडे लेना चाहिए। बडी और काष्ठगर्भ मूल मे उनकी त्वचा या वल्कल लेना चाहिए। जैसे-वट पिप्पल की त्वचा लेना चाहिए-बीजक-असन शाल-खदिर आदि से उसके काष्ठ के मध्य का सार लेना चाहिए। तालीस-तेजपत्र के पत्र और त्रिफला आदि के फल, धातकी-लवग नागकेशर के पुष्प और स्नूही का क्षीर ग्रहण करना चाहिए।

१५. द्रव्यों के कर्म गुण का क्रमिक विकास

औषधियो मे कर्म व गुण पाये जाते है। किन्तु इनका ज्ञान किस प्रकार हुआ यह एक विचारणीय विषय है। इस विषय मे दो प्रकार के मत है। प्रथम विचार यह है कि इनका ज्ञान एक साथ हुआ। कुछ लोग मानते है कि इनका ज्ञान क्रमश हुआ। जो लोग ब्रह्मा से इसके ज्ञान का प्रसार मानते है वे एक साथ ही ज्ञान का प्रसार मानते है। जो लोग इस विचार को नही मानते वह कहते हैं कि कर्म व गुण का विकास क्रमश हुआ था।

आयुर्वेद के विचारक तो अपना विचार क्रमश के रूप मे मानते है। उनका कथन है कि तीन प्रधान उपाय हैं जिनके आधार पर यह माना जा सकता है कि

१. प्रत्यक्षतोनुमानात् उपदेशतश्च रसानामुपलब्धि । चरक।

विद्वानो का विचार है अर्थात् प्रत्यक्षक्रिया अनुमान व उपदेश से कर्मो का ज्ञान होता है कि इसका ज्ञान चिरकाल चिन्तन-मनन व अनुभव के वाद ही पाया होगा और विशाल साहित्य बन सका होगा। मानव-ज्ञान कोष की वृद्धि इस प्रकार हो पाई।

प्रत्यक्ष के विषय मे चरक का मत है कि प्रत्यक्ष वह है जो कि अपनी ज्ञानेन्द्रियो व आत्मा व मनोर्थ के सयोग होने पर स्वय को ज्ञात होता है। केवल नेत्रो के सामने पडने वाले वस्तु का नाम प्रत्यक्ष नही है। वास्तव मे यह आत्मा मन व इन्द्रियार्थो के सन्निकर्ष से उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की वुद्धि है जो तत्काल मे उत्पन्न होती है।

अत वार वार चरक ने कहा –

प्रत्यक्षं नाम यदात्मना पंचेन्द्रियैश्च स्वयमुपलभ्यते।

च वि अ ७।६।३१

यूनानी चिकित्सक भी इसी को मानते है। उनका कथन है कि –ज्ञान के कोष की वृद्धि तजरिबा (प्रत्यक्ष) और कयास या अनुमान के पथ प्रदर्शन से उत्पन्न होती है। (यू, अवीसीना)

मुल्लानफीस का मत है कि प्रत्यक्ष का अर्थ किसी औषधि-द्रव्य को शरीर मे प्रवेशित करके तज्जन्य कर्म का स्पष्ट अध्ययन किया जाय। इस प्रकार आयुर्वेद व यूनानी के चिकित्सको का मत एक सा ही है।

यह प्रयोग जानबूझकर व अनायास भी हो जाया करते थे और यह मानव के शरीर पर ही सीधे नही होते थे। पहले पशु पक्षी पर प्रयोग होते थे। पश्चात उनका प्रयोग आदमी याने कि मनुष्यो पर भी होना था।

इसके पोषक विचार अन्न रक्षा ध्यान के पढने मे होता है। यह कहने मे अतिश्योक्ति नही है कि सामान्य जीवन की रक्षण की प्रणाली में इन पशु पक्षी गणो का प्रयोग किया जाता था। आहार द्रव्य मे विष का कोई अश है कि नही इसकी परीक्षा नित्य आहार काल मे भारतवर्ष मे प्रचलित थी। वानर शुक मक्खी इत्यादि कई जानवर पाले जाते थ और एतदर्थ उनका प्रयोग होता था। अत चरक ने जब भी प्रसग आया इनका विवरण प्रत्यक्ष की परिभाषा के साथ एक बार नही कई बार किया है। यथा –

१ प्रत्यक्षतु नामखलु तद्यत्स्वयमिन्द्रियैरात्मना चौलभ्यते।

(च वि अ ४)

२. प्रत्यक्ष नाम तद्यत्आत्मना पचेन्द्रियैश्च स्वयमुपलभ्यते।

(च वि अ ७)

३ आत्मेन्द्रिय मनोर्थानासन्निकर्षात् प्रवर्तते।
व्यक्तातदात्वे या बुद्धि प्रत्यक्ष सा निगद्यते॥

(च सू अ १)

अत आगे विचार करने पर दिखाई पडता है कि जन्तु परीक्षा प्रथम होती थी। यथा –

म्रियते मक्षिका प्राश्य काक क्षामस्वरो भवेत्।
उत्क्रोशन्ति च दृष्ट्वैव शुक दात्यूह सारिका॥
हस प्रस्खलतिग्लानि जीवजीवस्य जायते।
चकोरस्याक्षि वैराग्यक्रोचस्यस्यान्मदोदय॥
कपोत परभिद्दक्षचक्रवाका जहत्यसून्।
उद्वेग याति मार्जार शकृन्मुचति वानर।
हृस्येन्मयूरस्तदृष्ट्वामन्द तेजी भवेद्विषम्॥
इत्यन्न विपवद्ज्ञात्वत्यजेदेव प्रयत्नत।
यथा तेन विपद्येरन्नापि न क्षुद्रजतव॥

अ ह्र सू ७ के १४, १५, १६, १७, १८

जब आयुर्वेद क्षुद्र जन्तुवृद्धि के नाश को भी नही सहन नही कर सकता यह किस प्रकार से मानव जाति का सहार चाहता होगा।

ऊपर का विचार स्पष्ट है कि अन्न मे विष के ज्ञानार्थ मक्षिका, काक, शुक, मैना सारिका, हस, जीवजीव, चकोर, क्रोच, कपोत, परभिद्, चक्रवाकमार्जार आदि का प्रयोग नित्य किया जाता था और बाद मे मानव को दिया जाना था।

ऐसे आयुर्वेद विज्ञान मे औषधि की परीक्षा व मात्रामात्रत्व का निर्णय भी पहले होता था। पश्चात् मानव पर किया जाता था।

यह बात सत्य है कि केवल पशु को उसका माध्यम बनाकर अन्तिम निर्णय नहीं होता था क्योंकि मानव प्रकृति पशु प्रकृति व आहार विहार व पाचन मे अन्तर होता है। यथा

धत्तूर के पत्ते व फल मनुष्य को हानि कर होते है। बकरी व खरगोश खाते है। मादक लक्षण उनमे नहीं आता। बेलाडोना का प्रयोग मनुष्य पर हानिकर होता है। जगली खरगोश रोज खाता है, कुछ नही होता। फिर भी मनुष्य व पशु मे निकट सबध है ही अत मानव पर प्रयोग करने से पहले इनपर करने का रिवाज था।

आप सभवत इसको स्वीकार करने मे हिचकते होगे कि यह तो आहार की बात रही। औषधि का भी प्रयोग होता था व पशु पर प्रयोग किये जाते थे कि नही। एक दो उदाहरण देता हूँ, जो कि द्रव्य परक है। यथा –

हयमार या कनेर का विष घोडे का मारक है अत हयमार नाम है। कुचला का नाम श्वयागुन मार कुत्ता मारने वाला है। क्रिमिघ्न-विडग है। गुजा-काकघ्नी है। क्षुद्र-करज काक का मारक है। नागाराति-ककोडा है, घुण-प्रिया अतिविषा है। घुण प्रिया दती है, निशोथ है आदि। अजमोदा बकरी आनद से खाती है आप आनद से नही खा सकते। मत्स्यादनी-हिज्जल है। भूत-वासा या जीवो का अधिक निवास स्थान विभीतक है। आदि आदि।

तो प्रत्यक्ष का ज्ञान केवल आदमी ही नही अपितु विषाक्त पदार्थ रहने पर प्राणि पर भी प्रयोग होते थे। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है। परीक्षा मे विशेष प्रकार का ज्ञान रासायनिक ज्ञान के लिये भी होता था। इसके हजारो उदाहरण है और पगपग पर है। यथा

> व्यजनान्या शुशुष्यतिध्याम क्वायानि तत्र च।
> हीनातिरिक्ता विकृताछाया दृश्येत नैव वा॥
> फेनोर्ध्वराजि सीमत तंतु बुद्‌बुद् सभव।
> विच्छिन्न विरसा रागा षाडवा शाकमामिषम्॥
> नीला राजि रसे ताम्राक्षीरे दधनि दृश्यते।
> श्यावापीतासिता तक्रेघृते पानीय सन्निभा।
> मस्तुनि स्यात कपोताभाराजी कृष्णा॥
> काली पयांभसो क्षौद्रेहरतैरगोपमा॥ आदि

यह सामान्य परीक्षाये है जिनका विवरण मिलता है। विशेष विवरण के लिये इस प्रकरण को देखना चाहिए। सामान्य द्रव्य से लेकर सविशिष्ट द्रव्य तक मे विष के प्रयोग को देखने वाले चिकित्सको की दृष्टि मे यह बच कैसे सकता है।

अत प्रत्यक्षत परीक्षा मे यह सब आते है। अनुमान को आश्रय भी प्रत्यक्ष की तरह ही विशेष रूप मे लिया जाता था। अत आचार्यो की सम्मति थी कि पहले प्रत्यक्ष क्षुद्र प्राणियो पर करके तब इनका प्रयोग अल्प मात्रा मे मनुष्य पर करते थे और उसके विचार को देखकर मात्रामात्रत्व का निर्णय करते थे।

अनुमान का दूसरा स्थान था। अनुमान परीक्षणात्प्रेरक है। अत चरक ने भी परीक्षा मे अनुमान का प्रयोग किया है और द्रव्यगुण को प्रत्यक्ष किया है। अनुमान की परिभाषा निम्न की गई है।

अनुमान खलु तर्को युक्त्यपेक्ष । च वि ४

यह तीन प्रकार का माना है। १ पूर्ववत् २ शेषवत् और ३ सामान्यवत्। यह सब अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक होते हैं अत प्राय सत्य होते है।

आप्तोपदेशत–आप्त पुरुषो के ज्ञान जो ग्रथो में लिखे गये है वह ही हमारे मान्य विषय है यह सब प्रत्यक्ष सिद्ध है और ग्रथ के रूप मे है।

अत प्रत्यक्ष साधना से अप्रत्यक्ष का साधन तर्क व युक्ति पूर्वक होने मे मान्य व सत्य के पास पहुँचता है और अधिक लाभप्रद है। मानव ज्ञान जो प्रत्यक्ष व अनुमान के आधार पर लिखा गया है और सग्रहीत हैं वही आज ग्रथ के रूप मे हैं।

विभिन्न पुरुषो विभिन्न काल में किस प्रकार प्रत्यक्ष व अनुमान के आधार पर अपना विचार देकर हम लोगो को ज्ञानवान बनाने मे सहायक हुए हैं कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है इसके अतिरिक्त अन्य साधन भी जो ज्ञान के सहायक हुए हैं उनका भी सग्रह नीचे किया जा रहा है

सयोग या आकस्मिक घटना महर्षि चरक का कथन है कि **कृत्स्नोहि लोको बुद्धिमतामाचार्य** । लोक की सहस्रो घटनाये आज हमारे पथ की प्रदर्शिका है। आकस्मिक घटनाओ ने द्रव्यगुण के ज्ञान वृद्धि मे बहुत ही सहायता की है। उदाहरण —

कोई रोगी कही गया और उसे कुछ ऐसा खाना मिला जिसका गुण दोष उसे ज्ञात नही था वह उसे खाया। उसको खाकर उसे खूब वमन हुआ या विरेचन हुआ। मूत्र स्वेद अधिक आया और रोगी इससे ठीक हो गया। यद्यपि यह घटना आकस्मिक थी। उसे द्रव्य का ज्ञान हुआ उसने दूसरे से अपनी बात कही और उसने भी प्रयोग किया बात ठीक निकली। इस प्रकार देखकर उसके असली गुण जानने की आवश्यकता हुई और ज्ञान लाभ किया और द्रव्य का गुण ज्ञात हो गया।

यह उदाहरण सयोग आकस्मिक कारण देव सयोग कहा जाता है और ज्ञान वृद्धि मे सहायक होता है।

२ नैराश्य.—बिना किसी प्रेरणा या जिज्ञासा के जीवन से निराश होकर दीर्घ कालीन रुग्णता के बाद यह समझकर कि अब तो मरना ही है- क्यो न पीले मन माना खाले। वह खाता है, या पी जाता है, उपयोग कर लेता है, लाभ उठाता है अपने अनुभव का लाभ होने पर अन्य से कहता है। वह भी प्रयोग करता है। धीरे धीरे लाभान्वित होता है और द्रव्य का ज्ञान होता है। यथा - चरक ने नैराश्य का उदाहरण अच्छा दिया है। अरिष्ट जन्य रोग अतिसार मे सर्पविष।

१. एक रोगी अतिसार मे पीडित था। उसकी शास्त्रीय चिकित्सा हुई। कोई लाभ न हुआ। घर वालो ने उसे त्याग दिया कि कौन इनकी चिकित्सा करे। ग्राम से बाहर उसे कर दिया गया। वह बेहोश पडा था। वर्षा हुई। उस पर पानी गिरा कुछ होश आया। उसने देखा कि वर्षा का जल नर के कपाल मे पडा था एक सर्प उस पर बैठा था। वर्षा का एक बूद उसके फण पर गिरा, गिरते ही उसने क्रोध मे पानी में एक दश मारी। विष पानी मे गया सर्प चला गया। रोगी निराश था। उसने देखा तो कहा चलो पीलो यातना से मुक्ति हो जायगी। नरकपाल के विष मिश्रित जल को पी गया और आँख बद सो रहा कि बस मर जाऊंगा। परन्तु कुछ और हुवा उसका अतिसार बद हो गया। सवेरे घर आया, खाया पिया निरोग हो गया। यह चरक की चिकित्सा कविराज गगाधर ने स्वत लिखा है।

२. मुल्ला नफीस ने एक प्रसग पुन लिखा है यथा - जलोदर से पीडित रोगी जिसका खाना पीना बद था। केवल दूध पर रहता था। वह सब उपद्रवो से युक्त था। उसने गली मे टिड्डी का भुना मास बेचने का आवाज सुना। और यह जानकर कि मरना है वह भर पेट मास खा गया। खाने पर उसे आध्मानादि मे आराम मालूम हुवा। उसने पुन पुन मगाया और खाया। उसका जलोदर ठीक हो गया। उसने पुन दूसरे को बतलाया और उसे भी लाभ हुवा और फिर हकीम लोगो को ज्ञात होने पर प्रयोग हुवा और लाभप्रद निकला कि टिड्डी का मास जलोदर मे लाभप्रद है।

३. वच्छराज जी का इतिहास प्रसिद्ध है, आल्हा ऊदल के पिता थे। जलोदर से पीडित थे। निराश होकर राजपाट छीने जाने पर वह जगल मे भाग गये। जगल मे वह और उनकी रानी थी। एक पेड के नीचे कृष्ण सर्प मरा पडा था। उन्होने कहा कि इसको तेल मे पका कर लगा दो मृत्यु हो जायगी। परन्तु आश्चर्य कि सारा शोथ उतर गया जलोदर कम हो गया फिर इसका प्रयोग किया गया और वह स्वस्थ हो गये। इस प्रकार के कई द्रव्यो के गुण ज्ञात हुवे।

३ शत्रुता व प्राण नाशक प्रयोग—शत्रुता प्राचीन काल मे शत्रु अपने विरोधी को मारने के लिये विष का प्रयोग करते थे। उपदश के

रोगी मे मणिया का प्रयोग शत्रु को मारने के लिये किया। रोगी अच्छा हो गया, जो मर जाता। काम श्वास मे हरताल मैनशिल का प्रयोग किया कि रोगी मर जायगा। पर लाभ हुवा। इसका प्रयोग पुन अन्य पर किया और एक प्रयोग बन गया। विष के दुर्गुण का प्रकाश रोगार्थ हुवा और प्रकाश मे आया।

४. **दुर्भिक्ष युद्ध या यात्रा**--दुर्भिक्ष मे या यात्रा मे खाने को न मिलने पर आदमी जो मिलता है उसमे प्राण की रक्षा करता है। पत्र, मूल, कद, फल जो भी मिलता है खाता है। इस प्रकार कई प्रकार के खाद्य का पता चलता है। विदारी कद, रामकद, वाराहीकद, अरुई, रसोन, प्याज का ज्ञान, टमाटर का ज्ञान इसी प्रकार हुवा।

हारीतसहिता मे दुर्भिक्ष का ज्ञान होने पर एक ऋषि का असमर्थ रह कर न जाना और एक घास खाकर जीवित रहना और ऋषियो के लौटने पर वह रसोन है ज्ञात होना। रसोन कल्प मे विचार किया गया है। इसी प्रकार चाय का ज्ञान, काफी का ज्ञान, चोबचीनी का ज्ञान हुवा। पर्वतीय जो भारत मे रहते थे चाय की पत्ती वेदना मे या सरदी लगने पर पीते थे। लोगो को पता चला वह शर्करा व मधु डालकर पीने लगे लाभ हुवा। अब उसकी वृद्धि कितनी है।

५ **अतर्ज्ञान व देववाणी**—आप्त पुरुषो को आतरिक प्रेरणा से द्रव्य का ज्ञान व उनका प्रयोग शिष्य परम्परा मे ज्ञान होना। आप्त पुरुषो के ज्ञान का लाभ हम सब आज ले ही रहे है।

६ **स्वप्न**--स्वप्न मे कभी कभी रोगी कुछ देखता है और प्रयोग करता है और लाभ हो जाता है। पहले निराश रोगी को मदिर मे सुला दिया जाता था और स्वप्न मे जो उपदेश मिलता था वह देवता का उपदेश मानकर किया जाता था और कभी कभी अद्भुत लाभ होता था। इस प्रकार के प्रयोग यूरोप व भारत मे भी होते है।

७ **पशुओ के द्वारा शिक्षा पाना**--प्राचीन ऋषि जिस मे भी गुण पाते थे उस मे ग्रहण करते थे। श्री दत्तात्रेय जी के २४ गुरु थे यह जीव जतु थे। मनुष्य लाभप्रद बात सदा पशुओ मे भी लेता आया है। न केवल रुग्णावस्था में अपितु निरोगावस्था मे प्रेरणा लेता रहा है। यथा--

> **काकचेष्टा बकोध्यान श्वान निद्रा तथैव च।**
> **अल्पाहारी गृह त्यागी विद्यार्थी पच लक्षणम्।**
>
> --हितोपदेश।

तो भारतीय लोग पशु पक्षी मे भी ज्ञान लेते रहे है। बाहरी बाते भी [illegible]।

१. मुर्गाबी चिडिया का धर्म पिता हिपोक्रेट या बुकरान वस्ती का लगाना एक पक्षी से सीखा था ऐसा जन उस औद्विया के लेखक ने लिखा है। इसका नाम "रसल सार्जर का पक्षी ज्ञान का नाम" दिया है। उसने एक दिन एक समुद्र के किनारे पर पक्षी को देखा कि वह अपने चोंच से अपने गुद प्रदेश में समुद्र का पानी भर रही थी। थोडी देर में उसे साफ पाखाना हुवा और वह उड गयी। इससे समुद्र का पानी वस्ती से दिया और पेट साफ हो गया प्रयोग सफल रहा।

२. सर्प नकुल की लडाई से रासना का ज्ञान व नाकुली कन्द का ज्ञान हुआ।

३. सम्नागार से शीत समाप्ति के बाद निकलने वाले सर्प की दृष्टिमान्द्य हो जाती है वह सौंफ के ऊपर सवेरे चाटना पोटना है फिर दृष्टि ठीक हो जाती है इस प्रकार नेत्र की कमी में सौंफ के प्रयोग का ज्ञान हुवा।

४. लंगूरों का पर्वत पर रहना और शिलाजतु का चाटना व बलवान बनना। और शिलाजतु का प्रयोग किया जाना व बलशाली बनना आदि।

५. सर्प अपनी कांचली में रहने पर धीरे धीरे चलता है। परन्तु जब वह कांचली मुक्त हो जाता है तब तीव्र गति से जाता है। अतः किसी ने मूढ गर्भ में अदाज से उसका प्रयोग किया और लाभप्रद पाया। फिर धीरे धीरे इसका प्रयोग लिखा और धूपन का प्रयोग इसका किया जाता है।

६. चटक को रति कर्म में प्रवृत्त देखकर हम भी इसके अंडे का प्रयोग कालान्तर में वाजीकरण के लिये करते हैं।

७ पित्तरोग में गोरोचन का प्रयोग। पञ्च पित्त भावित रस का शीताग में प्रयोग अनुपान करके ही तो दिया जाता है। गुण वर्द्धन के लिये विशिष्ठ गुण वाले द्रव्य की भावना देकर गुण वृद्धि की जाती है।

इस प्रकार के प्रयोग द्रव्य गुण शास्त्र के रचयिता विशेष रूप से जानते है यह न केवल भारतवर्ष की बात है अपितु अन्य देशों में भी इसका प्रयोग इसी प्रकार होता रहा है और अन्त में इसका ज्ञान संग्रह हुवा और लोक में प्रसिद्धि हुई।

अतः महर्षि चरक ने लिखा कि—

कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्य. शत्रुश्चा बुद्धिमताम्।

बुद्धिपूर्वक की हुई विधि में सदा सहायता मिलती है और ज्ञान कोष बढता है। हर एक से सहायता लेना और ज्ञान प्राप्त करना भारतवर्ष का क्रम रहा है। औषधि परिचय में महान आत्रेय ने ज्ञानार्थ छोटे से छोटे प्राणी का सहारा लेना लिखा है।

१. गोपाल तापस व्याध मालाकार वनेचरान्।

आदि तक का ज्ञान लाभ करने को लिखा है।

नियमित शिक्षा मे तो विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना गुरु मुख से पढना व प्रत्यय करना नियम रहा है।

द्रव्य परीक्षा—मे स्पष्ट है कि प्रायोगिक परीक्षा करके फिर मनुष्य के लिये देते थे।

१६. कल्पनाओ का क्रमिक विकास

(Evolution of kalpnas)

।। इवोल्यूशन आफ कल्पना ।।

नाम व अर्थ कल्पना शब्द क्लृपु सामर्थ्ये इस धातु मे अच् (३ .१ १३३) व घञ् प्रत्यय करने पर कल्प शब्द बनता है। इसका अर्थ सामान्यरूप से होता है कि वह सस्कार जो औषधि मे उचित सामर्थ्य पैदा कर दे उसे कल्प या कल्पना कहते हैं।

मेदिनी कोषकार ने कल्प शास्त्रे विधि न्याये सवर्तेब्रह्मणोदिने।
अन्य विध विधाने। = सस्कार के विधान
अमर सिह कल्पेविधि क्रमौ। = सस्कार विधि

ऊपर के व्याकरण और कोषो को देखने से स्पष्ट है कि कल्प शब्द शास्त्रीयविधि मे सस्कार सबधी क्रम का निर्देश करता है।

चक्रपाणि ने कल्पनम् उपयोगार्थं प्रकल्पनम् सस्करणमिति यावत्। इस अर्थ मे प्रयोग किया है। महर्षि चरक ने इसे इस अर्थ मे ही "बहुतायत्र योगित्व अनेक विध कल्पना" का औषधि पाद मे विचार उपस्थित किया है। इस प्रकार इसका अर्थ निम्न होगा—यद्यपि औषधि सबधी कल्पना शब्द का उपयोग विधि विधान व शास्त्र आदि कई अर्थ मे होता है परन्तु इसका अर्थ सस्कार पूर्वक औषधियो की योग्यता का बढाना ही है।

इतिहास —कल्प का इतिहास यद्यपि हमे वेदो के काल से ही प्राप्त होता है और यह कल्प एक [1]वेदाग समझा जाता है परतु औषधि कल्पना के अर्थ मे यह चिकित्सको के यहाँ विशेषरूप मे औषधि सस्कार के रूप मे प्रयुक्त हुआ है और सहिता काल मे ही यह औषधि सस्कार के रूप मे समझा जाता है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन मे हमे उपलब्ध साहित्य मे कुछ कल्पो का ज्ञान होता है। दाक्षायणीहिरण्य-शखभस्म-धातुभस्म-द्वाक्षी-क्षीर, हव्य, हविष्य, घृत, ओदन, रस आदि का विवरण हमे मिलता है। परन्तु ऐसा होता है कि यदि पूरा साहित्य वेदो का उपलब्ध होता तो सतोषजनक साहित्य मिलता। वेदो की शाखायें बहुत कम मिलती है यथा

[1] वेदागनि षडेतानि शिक्षा व्याकरण तथा।
नि क्तं ज्योतिष कल्प छन्दो विचितिरित्यपि ।।

१–ऋग्वेद की २१ शाखाये थी जिनमे ६ शाखायें मिलती हैं उनमे शाकल वाप्कल्, आश्वलायन, माडूक्य येही मिलती है। यजुर्वेद की १०१ शाखाये थी जिनमे ७ काण्व माध्यदिनीय, वाजसनेयी, कपिष्टल्, काष्ठक, मैत्रेय, तैत्तिरीय मिल्नी है। सामवेद की १०००शाखाये थी जिनमे ३ आप्यायनी, कौथुमी, जैमिनि। अथर्ववेद की ९ शाखायें थी जिनमे २ शौनक, पिप्पलाद मिलती है। यदि सारा साहित्य उपलब्ध होता तो न जाने कितना इस विषय का साहित्य होता फिर भी जो भी साहित्य मिल्ता है वह सतोप जनक विचार देता है।

यह तो निर्विवाद है कि वेदो मे पूर्व का काल वडा कठिन था। आदि मानव ने जीवन निर्वाह के लिए पहले पहल वनस्पतियो के प्रयोग करने मे कठिन प्रयत्न किया होगा। किन्तु धीरे धीरे उसने आहार द्रव्यों की जानकारी की होगी। द्रव्यो के हानिकारक और लाभदायक ज्ञान प्राप्त किया होगा। इस प्रकार ईस्वीय सन् मे कई हजारवर्ष पूर्व उसने द्रव्यो का ज्ञान प्राप्त किया था जब कि सारा ससार अनभिज्ञ था। सर्व प्रथम मानव राज्य का वर्णन यदि कही मिलता है तो वह वैदिक काल का ही इतिहास मिलता है जब कि मानव साम्राज्य अत्यधिक उन्नत हो चुका था। उसमे समाज व्यवस्था थी, राज्य व्यवस्था थी और जाति व वर्ण व्यवस्था के साथ सुशृखल चिकित्सा की व्यवस्था भी परिव्याप्त थी उस समय चिकित्सक समाज का एक प्रधान अग वन चुका था और उसकी मान प्रतिष्ठा समाज मे थी। उसे भिषक शब्द से व्यवहार किया जाता था। यह इतना मानप्रद था कि उस समय उत्तम काम करने वाले व्यक्ति को या देव द्विजाति वगैरह को ऋषि महर्षि को भी भिषक्शब्द का प्रयोग मानप्रद होता था। यह स्पष्ट है कि तत्कालीन चिकित्सक समाज मे श्लाघनीय, पूज्य व प्रतिष्ठित थे। विप्र शब्द भी वैदिक काल मे उत्कृष्ट विद्वान के लिए भिषक[1] शब्द की तरह ही प्रतिष्ठित था।

धीरे धीरे वैदिक काल ने ऋक, यजु, साम व अथर्ववेद के साहित्य को सर्जन किया और भिषक् की इस क्रिया व मर्यादा मे उन्नति होती गई। चार प्रकार की चिकित्सा का वर्णन अथर्ववेद देता है। यथा: [2]आथर्वणी, आगीरसी, दैवी, मनुष्यजा।

भिषक वही कहलाता था जो कि औषधियो की अत्यधिक जानकारी रखता था। ७०० या १००० तक औषधि का ज्ञान आपेक्षित था। इनका परिचय-सस्कार व प्रयोग, सग्रह करना जानना पडता था। औषधियो का वैदिक साहित्य मे उसके गुण धर्म का ज्ञान, रोगो मे उनका प्रयोग, विभिन्न प्रकार के क्रिमि,

---

[1] यत्रौपधी . समासत राजान समिताविव। विप्र.सउच्यते भिषक् रक्षोहामीव चातन '–ऋ० १०–९७६

[2] आथर्वणी आगीरसी दैवीमनुष्यजाउत। वनस्पतय प्रजायते यदात्वप्राग जिन्वसि। ११–४–१६

कीट, पतगो द्वारा रोगोत्पत्ति और उनके परिहार का ज्ञान चिकित्सा का क्रम परिज्ञान था।

ईसवीय सन् से५०००वर्ष पूर्व ससार के इतिहास व साहित्य में ऐसा विवरण ज्ञान सबधी कही भी प्राप्त नही होता। साहित्यावलोकन हमे बतलाता है कि उन्हे वनौषधियो के आगिक सज्ञाओ व प्रयोगो का विस्तृत ज्ञान था। अथर्ववेद के समय तक उन्हे [3]फलिनी, मूलिनी, पुष्पिणी, अपुष्पा, प्रस्तृणती, [4]विशाखा, एक शुगा, कारिनी, पुरुष जीवनी, प्रतन्वती, वैश्वदेवी, स्तविनी इत्यादि कई प्रकार की औषधियो का ज्ञान हो चुका था।

वैदिक युग मे एकौषधियो का प्रयोग ही दृष्टिगोचर होता है। वनस्पतियो के प्रयोग के अतिरिक्त जान्तव व खनिज द्रव्यो का प्रयोग भी मिलता है। शख, मणि, प्रवाल, शृग, दुग्ध, घृत आदि जान्तव द्रव्यो का प्रयोग होता था। खनिज मे दाक्षायणी[5] हिरण्य, नाग, वग, यशद, ताम्र, लोहादि का ज्ञान था। वे लडाइयो मे त्रिस्कध वज्र का प्रयोग करते थे। अश्रुगैस ब्राक्षी शतघ्नी या बन्दूक, कृधुकर्णी या तोप का व तमशास्त्र के प्रयोग करते थे। गैसो की लडाई भी लडते थे। किन्तु पूरे वैदिक साहित्य के न मिलने से इनकी निर्माण की कला का कोई रासायनिक प्रयोगो का विवरण तथा औषधियो के विशिष्ठ रोगो का पता नही चलता। १५० वनौषधियो का विवरण व रोगो मे प्रयोग मिलता है। कई रोगो का और उनमे प्रयुक्त औषधियो का जैसे कुष्ठ, गडमाला, यक्ष्मा, ज्वर, प्रसूत ज्वर, बालग्रह, कास, श्वास, पाण्डु रोग आदि का उल्लेख मिलता है। किन्तु फारमेकोलोजी की दृष्टि से विचार करना चाहे तो केवल एकौषधि का विवरण मात्र मिलता है। द्रव्य परिचय सबधी साहित्य तो पर्याप्त मिलता है। जैसे –कृषि सबधी, रोपण के लिए बीज, भूमि, ऋतु, वपन विधि आदि तथा पत्र, पुष्प, फल, मूल, त्वक निर्यास आदि का भी विवरण मिलता है किन्तु यत्र–तत्र सबद्ध रूप में नही।

सहिता काल—इस प्रकार वैदिक साहित्य के बाद जब हम आगे बढते है तो द्रव्य गुण का इतिहास हमे सुस्पष्ट मिलता है और प्रगति का सूचक है। इसे हम सहिताकाल कह सकते हैं। इस काल मे औषधियो का सागोपाँग सिद्धान्तानुसार ज्ञान प्राप्त होता है। धन्वन्तरि सहिता, आत्रेय सहिता, अग्नि-वेशसहिता, भेलसहिता, जतुकर्ण, पाराशर सहिता, हारीत सहिता आदि का विवरण मिलता है। इनमे से उपलब्ध आज चरक व सुश्रुतसहितायें ही

---

[3] या फलिनीर्योऽफला अपुष्पा याश्चपुष्पिणी। वृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुचत्वहस, ऋ० १०–९७–१५

[4] प्रस्तृणती स्तविनीरेकशुग प्रतन्वती रोपधि शतवदामि—वीरुधो। वैश्वदेवी० अ० ८–७–४

[5] अथर्ववेद देह का० ३ सूक्त–१–२ १–६ तक

मिलती है। भेल, हारीत तथा काश्यप सहिता का भी अश मिलता है। इस के वाद की वाग्भट व अष्टाग सग्रह और शार्ङ्गधर सहिता मिलती है जिनका साहित्यावगाहन करने पर द्रव्यगुण शास्त्र मे कितनी प्रगति हो गई थी उसका आभास मिलता है। ऐसा पता चलता है कि उस समय कई निघटु थे, द्रव्यगुण का विवरण उपस्थित करते थे। कई कोष थे, जिनमे पर्याय रूप मे औषधियो का रूप उपस्थित होता था। अर्थात् द्रव्यगुण का वडा ही परिमार्जित स्वरूप था। परम्परा के रूप मे आज भी इनका स्वरूप ऐसा ही दिखाई पडता है। द्रव्यगुण शास्त्र के तब कई अग थे। वर्तमान सहिताओ के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि तब उसमे से क्रमश —

१ द्रव्य परिचय विज्ञान (Pharmacognosy)
२. द्रव्यगुण व कर्म विज्ञान (Pharmacology)
३. द्रव्य कल्प विज्ञान या सस्कार (Pharmacy)
४ चिकित्सकीय विवरण (Therapeutics)

आदि का पूरा साहित्य मिलता था। यह चार विज्ञान तत्कालीन ज्ञात होते है। इनका विस्तृत व्याख्यान मिलता है जो तत्कालीन चिकित्सा शास्त्र मे द्रव्यगुण विज्ञान का वोध करते है। द्रव्य परीक्षा का विज्ञान चरक के काल मे सुविस्तृत रूप मे और प्रौढ रूप मे था तथा आयुर्वेद का यही आधार स्तभ था। इस आधार पर चरक ने यह कहा कि —

यतश्चआयुष्याणि अनायुष्याणि द्रव्यगुण कर्माणि वेदयत्यतो ऽप्यायुर्वेद'

अर्थात् तब आयुर्वेद के ज्ञान मे आयुष्य और अनायुष्य के विज्ञान के अतिरिक्त द्रव्यगुणशास्त्र का ज्ञान भी अत्यावश्यक था। त्रिस्कध आयुर्वेद मे **'हेतुलिंगौषध ज्ञान'** यह तत्र भी प्रधान स्कध के रूप मे था। द्रव्यो की परीक्षा के सबध मे उनका विचार है कि इसकी परीक्षा मे निम्न वाते होनी ही चाहिए ?

इदमेवं प्रकृति	द्रव्याकृतिविज्ञान (Identification of the Drug)
एवंगुणम्	गुणविज्ञान (Pharmacology)
एवं प्रभावम्	प्रभाव विज्ञान (Emperecal knowledge)
अस्मिनदेशे जातम	देशविज्ञान (Echology)
अस्मिनृतौ एवं गृहीतम् एवंनिहितम्	सग्रह व सरक्षण विज्ञान (Collection & preservation)
एव मुपस्कृतम्	सस्कार विज्ञान कल्पविज्ञान (Pharmacy)
अनयामात्रयायुक्तम्	मात्रमात्रत्व विज्ञान (Posology) (Therapeutics)

ज्ञात होता है कि चरक के काल मे इन प्रमुख द्रव्यो का प्रौढ ज्ञान केवल एकैक द्रव्य के प्रयोग के रूप मे था।

कल्प विज्ञान—(१) मुख्य कल्प (२) अनुकल्प। एक एक औषधियो को औषधि रूप मे प्रयोग करने मे कितनी अधिक कठिनाई का सामना उस समय करना पडा होगा। आज अनुमान करना कठिन है। प्रथम भिषक ने कितनी कठिनाई का सामना किया होगा और तब सिद्धान्त निर्णय किया होगा।

इसके बाद विभिन्न कल्पनाये की गई तथा उनका मानदड निर्धारण हुवा। यही नही—वल्कि इनके मानदड निर्धारण (Standardisation of the Drug) मात्रा विज्ञान (Pasology) और चिकित्सकीय विवरण तैयार करने मे क्रिमि, कीट, पतग व अनेको प्राणियो पर प्रयोग किया। वाग्भट के आहार विधि विशेषविज्ञानीय अध्याय मे उनके प्रयोग—पक्षिका—शुक—शारिका—काक-चकोर—कोयल—मयूर—चक्रवाक—कुत्ता-मार्जार-वदर पर प्रयोग किया जाता था। निघटु निर्माण काल मे काक—शशक—अश्व—अजा—श्वान—गौ—वृषय—भल्लूक—सर्प—वृश्चिक—कर्कोटक पर प्रयोग किये गये थे जिनके उद्धरण आज भी प्राप्त है और औषधियो के नाम उस आधार पर दिये गये हैं।

वेदो मे नकुल—वाराह—सर्प—गधर्व—गौ व अजा—हस—श्येन से जानी गई औषधियोका उल्लेख है। अ० का० ८—सू० ७—२३—२४—२५

हयमार अश्वमार	— करवीर	गजभक्ष्या	—	शल्लकी
		वस्तमोदा	—	अजमोदा
श्वभार	— कुपीलू	घुणप्रिया	—	अतिविषा
वाराहमर्दन	— वाराही	भ्रमरोत्सव	—	माधवी
सर्पादनी	— नाकुली	षट पदानन्दा	—	वेला
क्रिमिघ्न	— विडग	आखु विषहा	—	मूषिका पर्णी
नागाराति	— कर्कोटकी	सर्पादनी नागदमनी	—	नाकुली
वत्सादनी	— गुडूची			
मत्स्यादनी	— जलपिप्पली	अजभक्ष्या	—	धन्वयास
मत्स्यादनी	— आर्तगल	अजगधी	—	अजमोदा
काकघ्नी	— काकणती	अजश्रृगी	—	मेषश्रृगी
वत्सादनी	— एवसिक	अजान्त्री	—	वृद्धदारुक

पचविध कषाय कल्पना—कल्पना शब्द का प्रयोग यहाँ पर औषधियो को भिन्न भिन्न रूप मे सस्कारित करके प्रयोग करने के अर्थ मे किया गया है।

यह तो निर्विवाद है कि पचविध कषाय कल्पना एक दिन मे नही की गई होगी। पहले मानव ने आहार के रूप मे वनस्पतियो का खाना प्रारभ किया होगा। उनके गुण दोष जानकर तब कल्पना की तरफ उन्मुख हुवा होगा। उसने कच्चे द्रव्य का प्रयोग किया उससे जब अर्थ की पूर्ति नही हुई तो पत्तो को कुचल कर प्रयोग किया, जिसका नाम कल्क है, फिर भी इच्छा पूर्ति न होने पर उसका स्वरस प्रयोग किया। जैसे जैसे जिज्ञासा बढती गई

उसने उसकी पूर्ति के लिए सुखा कर चूर्ण वटी वटक आदि शुष्क द्रव्य का प्रयोग किया।

फिर भी जिज्ञासा की पूर्ति न होने पर उसके सक्रिय तत्व को निकालने के लिए उसने उसे शीतल जल में भिगो कर प्रयोग किया। पुन: १२ घंटे पानी में रख कर प्रयोग किया। उसे क्वथित किया, उबाल कर प्रयोग की चेष्टा की। जब उससे भी जिज्ञासा की पूर्ति नहीं हुई तो उसने संतोष जनक गुण प्राप्त करने के लिए अर्द्धशृत, चतुर्थांशावशिष्ट किया होगा। फिर भी जब सन्तोष न हुवा होगा तो रस क्रिया का आश्रय लिया होगा।
अत: आप देख पाते हैं कि मानव ने अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए कच्ची औषधि से ले रसक्रिया तक बनाने में हिचक तक न की। उसके प्रयोग का क्रम निम्न रूप से चलता रहा। ज्ञान पिपासा की पूर्ति के लिए उत्तरोत्तर बढ़ाता ही गया। यथा--
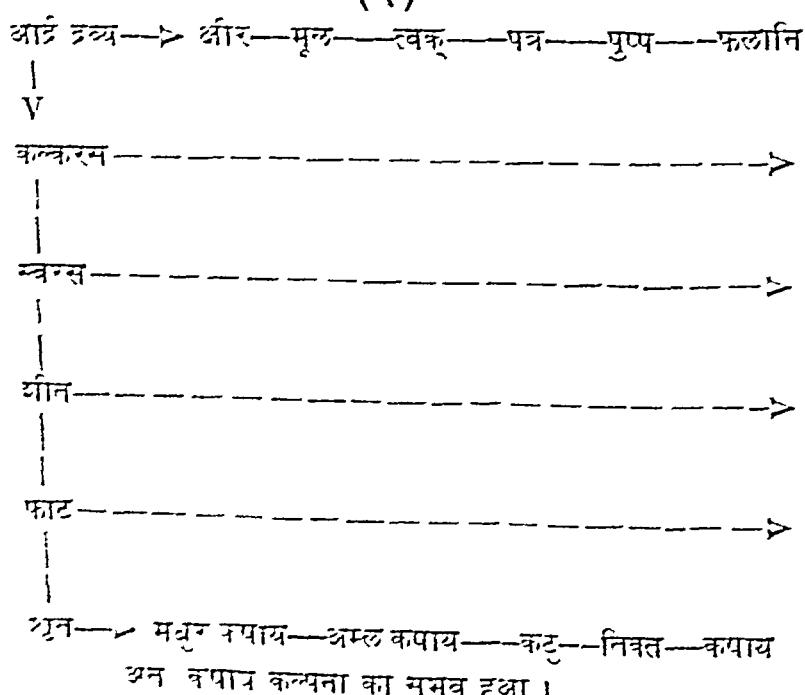
संधान वर्ग के द्रव्य—

शीत व श्रृत के आधार पर कई कल्पनाये की गई। यथा—

शीत——————फाट——————कषाय

आसव——————मद्यान कर्म——————अरिष्ट

सुरा——————

वारुणी

शुक्त

काजिक-गोड-इक्षुशुक्त-मधुशुक्त

तुषोदक

सतुष—निस्तुष

सौवीरक, धान्याम्ल
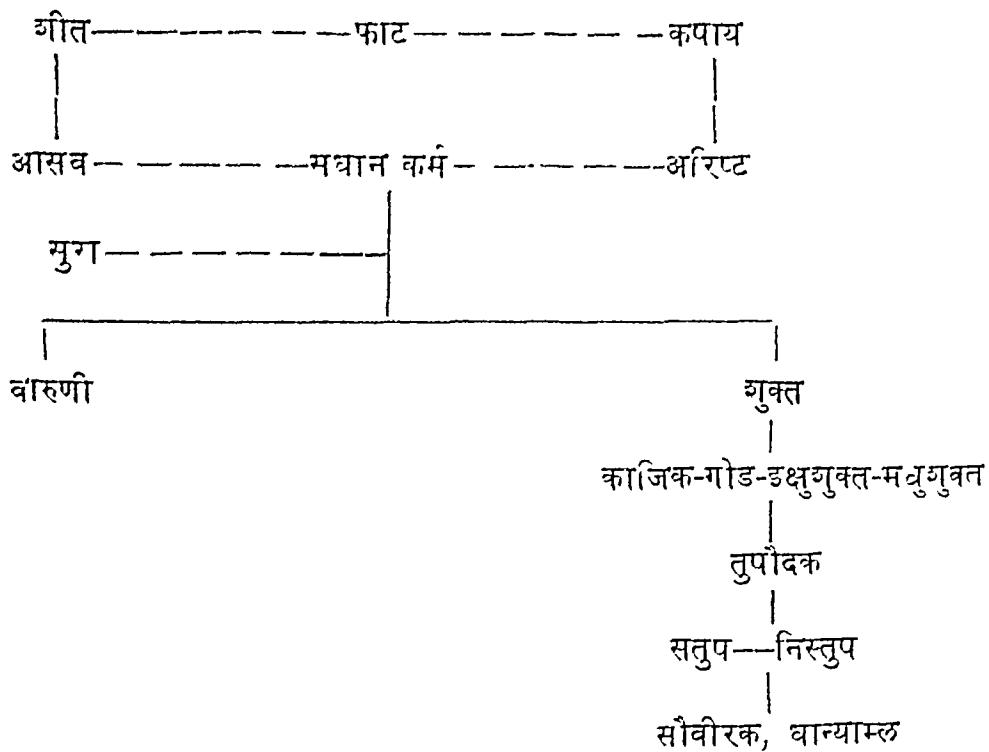
श्रृत संबंधी क्रिया कर्म का अभ्युदय क्रम—
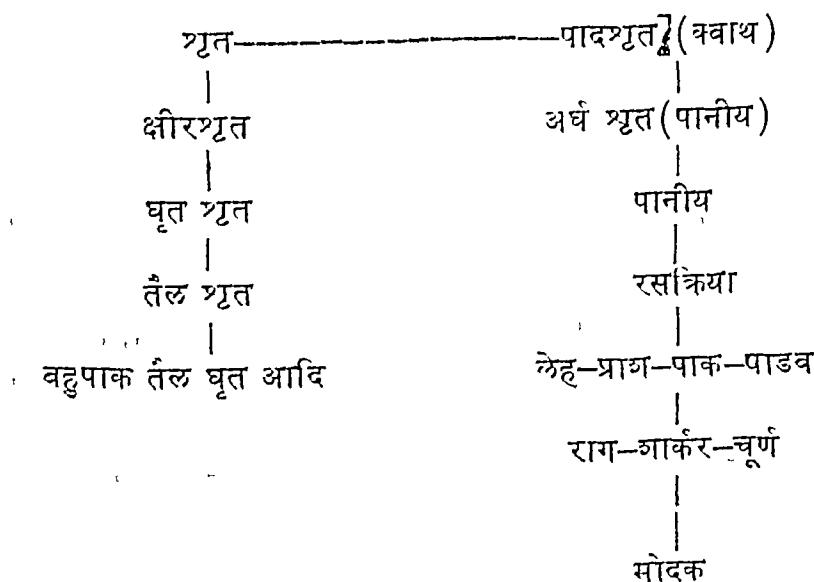
आसव-अरिष्ट व सुरा आदि वर्ग में—

आसव कल्पना में—आसवयोनि की कल्पना की गई। यथा— धान्यासव, फलासव, मूलासव, सारासव, पुष्पासव, काडासव, पत्रासव, त्वगासव, शर्करासव आदि मद्य वर्ग की विभिन्न कल्पनाओ का जन्म हुआ। और ८४ आसवो का निर्माण हुवा जो चिकित्सक जगत मे अनुपम देन है। ससार के किसी भी देश मे अभी तक ऐसा विभाग उपलब्ध नही होता। ईस्वीय सन् से हजार वर्ष पूर्व भारतीय चिकित्सको ने ऐसी कल्पना की थी। आज भी ससार स्तब्ध होकर उसकी तरफ देख रहा है। एक एक कल्पना मे अनेको कल्पनाये की गई और उनके योग आज साक्षी है।

धान्य–फल–मूल–सार–पुष्प–काण्ड–पत्र–त्वचा–शर्करासव–आसवयोनय

ऊपर की विचार धारा को देख कर ऐसा ज्ञात होता है कि यह कल्पनाओ का क्रम था। पहले सर्वौषधि कल्पना चली पश्चात् एक एक द्रव्य पर कल्पनाये की गई। वमन कल्प। मदनफल, धामार्गव, कृतवेधन, कुटज, त्रिवृत, आरग्वध, दन्ती, द्रवन्ती, सप्तला, शखिनी, स्नुही आदि पर कल्प लिखे गये। ये एकौषधि रूप लिखने से विचारिये तो ज्ञान होगा कि उनका प्रयोग हिम फाट कषाय

षाडव, राग, लेह, मोदक उत्कारिका, तर्पण, पानक, मासरसयूप, मद्य,, आसव, सुरामड, घृत, तैल, क्षीर, मद–मदिरा, मस्तु तक्र के क्रम मे चलता रहा। फिर पेय के रूप मे भी चला। अर्थात् एक द्रव्य का प्रयोग भिन्न भिन्न रूप मे इतना तक चला कि पराकाष्ठा तक पहुचा दी गई। वमन के ३५५ व विरेचन के २४५ योग इस प्रकार ६०० योगो की कल्पना कल्पस्थान मे की गई है।

मिश्रक वर्ग––इसके बाद कई औषधियो को मिला कर उनका क्वाथ चूर्ण, प्रलेप, लेह, अवलेह, राग, मोदक, मैरेयक, सुरा, शुक्त आदि के रूप मे चला।

इसके बाद कर्मयुग का प्राबल्य रहा और एक एक प्रकार के कर्म करने वाली औषधियो का ग्रूप बताया गया। चरक मे ५०० औषधियो का नाम पचाशत महा कषाय के नाम मे मिलता है। यथा–– जीवनीय, दीपनीय, सिधानीय, स्तन्य जनन, शुक्र जनन आदि। ९७ गण सुश्रुत ने एक प्रकार के कर्म करने वाले द्रव्यो के गणो का जन्म दिया। यथा––

विदारिगधादि, आरग्वधादि, काकोल्यादि, क्षीर काकोल्यादि।

सक्रिय तत्व की प्राप्ति––औषधियो के सक्रिय तत्वो के अन्वेषण मे विचित्र प्रगति हुई। उनके सक्रिय अगो को पाने के लिये उन्हे जल, क्षीर, घृत तैल मे पकाया गया। यही नही बल्कि उनको आसुत करके मद्य भी निकाला गया। आसव अरिष्ट, सुरा, वारुणी आदि ने जन्म लिया। सुरा शुक्त के गण बने।

चरक ने ८४ आसवयोनियो को सिद्ध किया यथा––

आसवयोनि––८४––

६ धान्यासव
२६ फलासव
११ मूलासव
२० सारासव
१० पुष्पासव
४ काडासव
२ पत्रासव
४ त्वगासव
१ शर्करासव

योग ८४

शुक्त––आरनाल, तुषोदक, मैरेयक, मेदक आदि
सुरा––आसव, अरिष्ट, सुरा, वारुणी आदि।

रसस्कध--प्रवल तक सक्रिय तत्व निर्माण के लिये रसास्कधो का निर्माण करके मधुर स्कध, अम्लस्कध, कटुक स्कध आदि रसात्मक स्कधो की आवश्यकता का भी प्रतिपादन किया गया।

गुण व वीर्य विपाक--औषधियो के गुणो के अध्ययनार्थ २० गुणो का ज्ञान प्राप्त किया गया और उनका अध्ययन करके गुणात्मक वर्ग वनाये गये।

वीर्य--उष्ण व शीत गुणो के आधार पर औषधियो के गुणात्मक सक्रिय तत्व खोज निकाले गये। विपाक के अनुसार त्रिविध आहार तत्वो का परिणमन का ज्ञान प्राप्त किया गया।

औषधि सक्रिय तत्व ज्ञान--इधर जव कि इस प्रकार का अध्ययन चल रहा था हमे एक और विवरण मिलता है कि चिकित्सक वर्ग का मन वनौषधियो की तरफ से जीव जन्य तत्सम तत्वो की तरफ भी गया और उन्होने नई दिशा मे अपना विचार वदल दिया। वह था रोग हरणार्थ। यकृत क्रिया हानि मे यकृत यूप, यकृत चूर्ण का प्रयोग-शुक्र की कमी मे नक्र, रेत, ऋक्षरेत आदि। मासाभाव मे मास रस का सेवन, अडो का सेवन। रक्त का प्रयोग पीने व शिरा प्रयोग मे। आदि आदि।

इस प्रकार उनका सारा का सारा विचार औषधियो के सक्रिय तत्वो के अन्वेषण मे वीता। औषधियो के प्रयोग की पराकाष्ठा हो गई।

ध्यान देने योग्य वात यह है कि यह वार्ता उस काल की है जवकि ईसवीय सन् से २००० या ३००० वर्ष पहले इस प्रकार का द्रव्य वर्गीकरण व कल्पना का युग पराकाष्ठा पर था अन्य देश मोह की निद्रा मे निमग्न थे।

रस कल्पना--जव वनौषधि और जीवौषधियो की तरफ ध्यान जाकर पराकाष्ठा पर पहुच चुका था एक नई पद्धति चिकित्सा मे आविर्भूत हुई। जिसे कि रस कल्पना का युग कहते है।

अव खनिज द्रव्यो पर अन्वेषणात्मक प्रयोग हुये।

कृतान्नवर्ग कल्पना--इससे पूर्व आहार विज्ञान के सवध मे कल्पनाये जो वनी उनका क्षेत्र वडा ही विशाल हुवा। कृतान्न वर्ग की कल्पना ने रस वर्ग की कल्पना के अनुसार हजारो भेदो को स्वरूप धारण किए यथा--

भक्तम्, दालि, कृशरा, तापहरी, परमान्न या खीर, नारिकेल,--खीर, समिता मडक, पोलिका या पूरीलपिस्का। रोटिका और कर्कटी पिष्टिका, वेढमिका पर्पट या पापड, पूरिका, वटक, काजिक वटक, अम्लिका वटक, माष वटिका, मुद्ग वटी, वेसन वटिका।

मांस के प्रकारो में--वेशवार, तक्रमास, हरीसा, शूल्यमास, शृगाटक मास रस या शोरवा।

मिठाइयो में—मठक, मपाव या गुझिया, कपूर नलिका, पेणी, सेविका मोदक, सेवके लड्डू मुक्तामोदक, वेसन मोदक, दुग्ध कूपिका कुडलिनी, शिखरन, वर्फी, पेडा आदि ।

पानक—शर्करोदक, प्रपानक, अम्लिका पानक, निम्बुक पानक, धान्याक पानक, काजिकम्, तक्रम् ।

शुष्क कल्पना—सक्तुः धाना, लाजा, चिपिटा, होलाक कुल्माष, नमकीन, चने आदि आदि इस वर्ग मे कितनी कल्पनाये आज प्रचलित है यह गिनती करना कठिन है ।

रसविज्ञान कल्प—इसी बीच रस शास्त्री भी पिछडे न रहे । उन्होंने खनिज द्रव्यो पर नया आविष्कार करके एक अद्‌भुत कल्पना सचालित की । यथा—

धातु मारण—शोधन, मूर्च्छन, जारण, अमृती करण, यही नही बल्कि उन्होंने तो धातुओ मे पुट देने की विधि मे हजारो पुट तक देकर अभ्रक का सहस्रपुटी भस्म वना डाला । कहा तक कहे धातुओं का सत्व पातन, द्रवीकरण, तक करके औषधोपयोगी वस्तु वना डाली ।

पारद—पारद पर भिडे तो फिर क्या पूछना । कज्जली, पर्पटी, पारद सस्कारकर १८ विधि से जारण, मारण, मूर्च्छन, उत्थापन, नियमन, आदि आदि क्रिया कर के अग्नि स्थायी वनाकर ही छोडा । यही नही पारद से स्वर्ण वनाने की सूझी ।

रस शास्त्र का प्रधान आचार्य नागार्जुन जो रस सस्कार मे अपना सानी नही रखता उसने कहा—

रसे सिद्धे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिद जगत् ।

यहा तक आने के वाद कल्पना का मोड जो कि औषधि वर्ग मे था वह अचानक दूसरी तरफ मुड गया और अन्य कल्पनाये वनना प्रारभ हुई ।

इस प्रकार उनका मोड एक विपरीत दिशा की तरफ चला । अभी भी वहुत सी कल्पनाये वनती है किन्तु उनकी गणना इसमे नही है । ईसवीय से पूर्व की यह वाते है जवकि सारा ससार अज्ञान के वातावरण मे पडा श्वास ले रहा था । भारतवर्ष ने कल्पना की सृष्टि की ।

आधुनिक काल का कल्प विज्ञान

ईसवीय सन् से पूर्व—ईसवीय सन् से पूर्व मिश्र का इतिहास वतलाता है कि १५०० वर्ष पूर्व ये लोग औषधि सवधी विचार मे ओत प्रोत होने लगे थे । थोमास तृतीय ने प्रथम वार सीरिया १५०० वी सी मे औषधियो के सग्रह के लिए एक दल प्रेषित किया था । इस सवध का चित्र करनाक के मदिर मे उसकी दिवालो पर चित्रित किये गये मिलते है ।

इसी काल मे एवर्स पेपिरस नामक ग्रथ लिखा गया था और उसमे एकौषधियो का विवरण मिलता है। तब से लेकर ग्रीको के काल तक कोई साहित्य के विवरण नही मिलता। थियोफ्रास्टस ३७२ से २८७ मे औषधियो का एक सग्रह लिखा गया। इसमे ४५० द्रव्यो का विवरण मिलता है। ४६० से ३७७ बी सी हिपोक्रेटिज ने औषधियो के कर्म और रोगो का विवरण लिखा है, जिसमे ३०० औषधियो का विवरण मिलता है। उसमे धतूरा बेलाडोना, सिनामेंट का विवरण है।

ईसवीय सन् के बाद—सन् ५० मे पेडेनियस डिस्कोरिडीज ने एक वृहत औषधि सग्रह का ग्रथ लिखा। यह रोमन साम्राज्य मे एशिया की फौजो का चिकित्सक था। सभवत यह नीरो राज्य का काल था। उसमे ५०० औष-धियो का विवरण रोग सहित है।

१३० से २०० तक क्लैडियस गैलेन रोम का एक सफल चिकित्सक हुवा। इसने चिकित्सा पर कई ग्रथ लिखे। जो सैकडो वर्षो तक मान्य रहे। उसकी पुस्तको मे ४०० औषधियो का सग्रह ग्रथ भी मिलता है।

सन् ६० मे रोग के औषधि ज्ञाताओ मे प्लाइनी वरिष्ट्व एपुलियस जो ४५० शताब्दी मे हुवा। प्रसिद्ध है। इस समय तक कई औषधियो का क्रमबद्ध ज्ञान हो चुका था। हिपेन् का विशक्त विवरण बेलाडोना का पुतली विस्फारक ज्ञान सामुद्रिक पलाडु का, वनप्याज इन्द्रायण का प्रयोग ज्ञान था।

मध्ययुग—मध्ययुग मे ग्रीको की चिकित्सा प्रणाली ने पुन जन्म लिया विभिन्न विश्वविद्यालयो मे यथा—बोलोग्ना, आक्सफोर्ड, पेडुवा में अध्ययन प्रारभ हुवा।

सन् १४९३ व १५४१ पैरेसेल्सस ने जो बेसले विश्वविद्यालय का प्रोफेसर था उसने जनता के सामने इन पुस्तको की होली इसलिये जला दी कि इनका प्रयोग शीघ्र लाभप्रद न था। वह रस चिकित्सा का हिमायती था। इसने पारद का उपदश मे सर्व प्रथम उल्लेख किया था। १७ वी शताब्दी मे औषधि गुण धर्म पर कई ग्रथ लिखे गये। फ्रासीसी श्रुडलियर ने १६३० मे आट का पता लगाया। १६२८ मे हारवे ने रक्त परिभ्रमण का खोज किया। इस पर राबर्ट व वायली व टिमोथी क्लार्क ने १६६० प्राणियो मे शिरा गत औषधि निक्षेप करना प्रारभ किया। १६७९ ईसवीय मे जानवेफर ने वाटर हेमलाक पर एक साहित्य उपस्थित किया। वेफर आधुनिक फार्मेकालोजी के फादर माने जाते हैं।

१७८५ मे मेंघिनी ने प्राणियो पर कर्पूर का प्रयोग करके अनुभव किया। १७८६ मे पीटर हैरिस ने आख की पुतली पर बेलाडोना का प्रभाव उपस्थित

किया। १७८५ डीजिटेलिस का गुण प्रकट हुवा। यहा तक की काल औषधियो के प्रयोग का ही काल माना जाता है। १९०० शताब्दी ने एक नया मोड उपस्थित किया। द्रव्य के भीतर सक्रिय तत्व ढूंढे जाने लगे। सर टरनर जर्मन विशेषज्ञ ने अफीम मे मारफिया, पेलेटियर फ्रेंच ने कुचले मे स्ट्रिकनीनमैंगेन डाने इपिकाक मे इमेटिन का खोज कर निकाला।

इस प्रकार सक्रिय तत्वो के खोज ने चिकित्सा जगत मे एक नया ही अध्याय शुरू किया। प्रत्येक द्रव्य से सक्रिय तत्व खोजना प्रारभ हुवा।

१९ वी सदी मे एक नये कार्यकर्ता ने इस क्षेत्र मे पदार्पण किया। यह थे ओसवाल्ड स्मिड वरजर। इन्होने एक नया ही रूप दिया और फार्मेकालोजी ने क्षेत्र मे औषधियो को छोडकर प्राणियो के शरीर से औषधि तत्वों का निकालना प्रारम हुवा। सन् १८३८ से १९२१ तक ये और उनके शिष्यो ने बहुत प्रगल्प कार्य प्रारभ किया। इनके शिष्यो मे जैकल एवल प्रथम प्रोफेसर युनाइटेड स्टेट आफ अमेरिका मे नियुक्त हुये।

एडिनवरा के विश्वविद्यालय ने इस दिशा मे उत्तम प्रयत्न किया। थोमास फ्रेजियर ने जो की मैटेरिया मेडिका के प्रोफेसर थे उसने फाइसो स्टिगमाइन और स्ट्रोफेन्थस का हृदय के ऊपर प्रभाव ज्ञात किया। इसने ग्रूम ब्राउन के साथ औषधियो का अल्कलायड के साथ मिश्रण करके उनका भिन्न भिन्न प्रभाव प्राप्त किया। जिनमे स्ट्रिक्नीन, मारफीन, एट्रेपीन कोडीन व इस प्रकार की कई औषधियो का नया योग बना कर प्रयोग किया।

इसके वाद सिंथेटिक औषधियो का तथा सिंथेटिक आर्गेनिक केमिकल्स का प्रयोग किया गया। उन्नीसवी शताब्दी मे अत काल मे एडवर्ड, शारपे, शेफर ने प्राणियो के सक्रिय तत्व निकालने मे वडी सफलता प्राप्त की। उपवृक्क, पियूष ग्रथी से एड्रेनलिन, व पिच्यूट्रीन का पता लगा। जॉन एवेल ने एपीनेक्रीन व इनस्यूलिन ढूंढ निकाला। इसके शिष्य रीड हटर ने परिस्वतत्र नाडी मडल के भीतर से सक्रिय तत्व एसिटिन कोलीन का ज्ञान पाया।

इसके वाद कई कई प्रकार की औषधियो का ज्ञान हुआ। सल्फजा ग्रूप व एटीवायोटिक्स का जन्म हुवा। १९२६ से एडिनवर्ग के प्रोफेसर क्लार्क ने बहुत से फार्मूले वनाये जो शरीर पर कार्य करते थे। फार्मेकालोजी का अव एक साइटिफिक रूप वन गया था।

इसके वाद पाल, एरलिक, हारेस, वेल्स, विलियम, मोरटन, हेनरी डेली ओटोलुई, ए आरकशनी फ्रैडरिक्वेटिंग, एलैक जेडर, फ्लोमिग गेसहार्ड डोमेग, आदि क्रियाशील व्यक्तियो ने वर्तमान फारमेकोलोजी का स्वरूप दिया।

इनके कल्प मे टिंचर एक्सट्रेक्ट, क्वाथ, लोशन, लोजेजेज, इजेक्शन व कई नये कल्प वने।

आधुनिक मेडिसिन के जितने कल्प है सब वने। एन्टीवायोटिक की विधि ने जन्म लिया।

* * *

भाग २

औषधि विज्ञान शास्त्र

भाग २

सैध्दान्तिक विवरण

१. रस विज्ञानीय विवरण

आयुर्वेद मे रस का महत्व सर्वाधिक है। द्रव्य के बाद रस ही प्रधान रुप मे गुणोपलब्धि मे प्रधान है अत चिकित्सको ने रस का जिस दृष्टिकोण से अध्ययन किया है उसे द्रव्यगुण के प्रेमियो के समक्ष उपस्थित किया जाता है –

रस शब्द की अभिव्यक्ति ––

रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमाप: क्षितिस्तथा
निर्वृत्तौ च विशेषे च प्रत्यया खादयस्त्रय । (च० सू० अ० १)

अर्थात्– रसना या जिह्वा के द्वारा जिस विषय का ज्ञान हो उसे रस कहते है। रसोत्पत्ति के प्रधान भौतिक साधन जल व पृथ्वी तत्व है। इसके अतिरिक्त अन्य तेज-वायु और आकाश के संयोग से विभिन्न प्रकार के रसो की अभिव्यक्ति होती है।

यहां पर महर्षि चरक ने जो परिभाषा रस की की है यही प्राय सब ग्रथकार स्वीकार करते है।

चक्रपाणि दत्त ने – 'रस्यत आस्वाद्यत इति रस:' माना है।
कारिकावली मे –'रसस्तुरसनाग्राह्यो मधुरादि रनेकधा' कहा है।
नागार्जुन –'रसो रसनाग्राह्य'। (प्रशस्तपाद)
शिवदास ––'रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्ति गुणत्वावान्तर जाति मत्व रसत्व' कहा है।

सक्षेप में–जिह्वा के द्वारा औषधादि द्रव्यो का स्वादगुण जो बोध होता है उसे रस कहते है। इन ऊपर के विचारो के आधार पर प्रायस: जिह्वेन्द्रिय ग्राह्य विषय ही रस है। द्रव्यगुण विज्ञान मे जिह्वा ग्राह्य रस ही द्रव्यो के गुणो का आधार है।

यूनानी चिकित्सक भी उसी परिभाषा को मानते है, यथा—रस उस गुण का नाम है जिसका ग्रहण रसेन्द्रिय या रसना शक्ति (कुव्वते जाइके) से हो सके। (मुल्लानकीम)

अन्त्यार्थ यद्यपि आयुर्वेदिक साहित्य मे रस शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूप मे कई प्रकार से आता है यथा – रस = रसधातु, शरीर का आद्य परिणामान्त आहार, रस। पारद = रसति भक्षयति सर्वान्यधात्वादि इति रसधातु। पारद सब लौहो का आस्वादन कर जाता है अत रस कहते है।

रस = स्वरस – हरित औषधियो को पीसकर निचोड़ा गया स्वरस भी रस के नाम से प्रसिद्ध है। इतने प्रकार से रस का प्रयोग होने हुये भी द्रव्यो के गुण की अभिव्यक्ति मे रसनाग्राह्य रस का ही प्राधान्य है अत द्रव्यगुण शास्त्र मे सर्वत्र रसनाग्राह्य रसो का ही ग्रहण होता है।

रससख्या – रसास्तावत् षट् – मधुराम्ललवण कटु तिक्त कषाया।
च० वि० अ०-१

रस छ प्रकार के होते है —मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय। आयुर्वेद के प्रत्येक आचार्य इस विषय मे एक मत है –

स्वादुरम्लोऽथ लवण कटुकस्तिक्त एव च।
कषायश्चेति षट्कोऽय रसाना सग्रह. कृत। च० सू० अ० १
रसा स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषण कषायका।
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते च यथा पूर्व बलावहा। अ० सग्रह, अ० हृदय

इन छ रसो को लोक भाषा मे – मीठा —खट्टा – नमकीन—कड़वा – तीखा और कसैला कहते है।

इनके उदाहरण सामान्य ज्ञानार्थ निम्न रूप मे व्यक्त किये जाते है।

यथा-मधुर = शर्करा – द्राक्षा – गुड आदि
अम्ल = इमली – नीबू – जम्बीर आदि
लवण = सैंधव – सामुद्र – विड आदि
कटु = पीपल – मरिच – शुण्ठी
तिक्त = निम्ब – गुडूची – चिरायता
कषाय = हरीतकी – बहेड़ा –बबूल

रस–उत्पत्ति–प्रत्येक रस पाचभौतिक होते है। इन पाचो मे से
अपतत्व – इसकी उत्पादक योनि है
पृथ्वीतत्व – इसका आश्रय है।

यह अप और पृथ्वीतत्व यह दोनो इसके प्रधान द्रव्य कहलाते है। इनके आधार पर शेष तीन भूत – तेज – वायु – अग्नि इनके सयोग से अधिक भौतिक स्थिति के आधार पर रसो की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार वाग्भट भी अष्टाग हृदय मे रस की उत्पादक योनि अम्बु को माना है और उत्पत्ति मे अग्नि–पवन–नभ तत्व का समवायत्व और पृथ्वी का आश्रय होना माना है। प्रत्येक द्रव्य विशेष पृथ्वी का आश्रयत्व कर उत्पन्न होते है और उनके पोषणार्थ अम्बु (जल) की आवश्यकता होती है। जिसे वे अपने मूल या पाद द्वारा प्राप्त कर पादप संज्ञा पाते है। वायु अग्नि-आकाश की सामूहिक सहायक क्रिया द्वारा उनकी वृद्धि–स्थिति और जीवन का क्रम चलता है।[1]

उद्भिज्य की उत्पत्ति में–"ऋतु क्षेत्र अम्बु–बीजाना सयोगात् शस्य सभव" मानते है। खेत मे बीज को उचित ऋतु मे वपन करने पर जल मे सीचने पर किसी वस्तु का अकुर उगता है।

अत. बिना जल सिचन के अकुर की उत्पत्ति और वनौषधि की उत्पत्ति नही होती। अत अम्बु[2] को उसकी योनि और पृथ्वी[3] को आश्रय द्रव्य मानना उद्भिज्ज के विषय मे उचित प्रतीत होता है।

उद्भिज्जों के जीवन चक्र –

जीवित प्राणी की तरह वनस्पतियो, पेड, पौधो का भी एक जीवन चक्र है और यह अपने जीवन की सारी सामग्री पाचभौतिक जगत से लेते है, आधुनिक अन्वेषण इसकी पुष्टि करते है। उनका कथन है कि वनौषधियो का जीवन पृथ्वी मे प्राप्त जल व अन्य खनिज वस्तुओ के सग्रह से जो विभिन्न प्रकार के संयोगज लवण होते है बनता है। इनके अतिरिक्त वनस्पति वायु के सघटक कार्बनद्वि औषित के कार्बन या कज्जल के भाग को ग्रहण करती है। यही इन उद्भिज्जो का मुख्य भोजन है। वनस्पति कज्जल (कार्बन) का ग्रहण और ओक्सीजन का त्याग सूर्य रश्मि योग मे करती है, वनस्पतियो की हरितता इस क्रिया द्वारा होती है और इसे ही वनस्पति का श्वासप्रश्वास कर्म कहते है। इस क्रिया से आप्य जबतक सूर्य रश्मि मिलती है यह कार्य होता रहता है। इस क्रिया से आप्य व पार्थिव अग सगृहीत होकर वनस्पति पोषण करती है। इन रासायनिक सगठनो और पदार्थों के सग्रह मे कई प्रकार के पोषण वस्तु वनस्पति शरीर प्राप्त करता है।

उसमे एक प्रकार का शार्करिक भाग सगृहीत होता है जो वनस्पति का प्रधान पोषक तत्व है। सूर्य रश्मि का प्रपात ही पत्रो और उनके विभिन्न कोष्ठो मे पहुचकर कई अन्य जीवनीय तत्व पैदा करते है। प्रोटीन–वसा–शार्करिक व लवणादि की उत्पत्ति होकर वनस्पति जीवन चलता है। इसमे

---

[1] **रसानार्थो रसस्तस्य द्रव्यभाप क्षितिस्तथा।**
निर्वृत्तौ च विशेषे च प्रत्यया खादयस्त्रयः।

[2]–**अम्बु योन्यग्नि पवन नभसां समवायत। तन्निर्वृत्ति।**

[3]–**क्ष्यामधिष्ठाय जायते॥**

स्पष्ट है कि वनस्पति पृथ्वी मे जल व लवण—सूर्यरश्मि व वायु से कार्बन व अन्य पोषक तत्व प्राप्त कर अपने जीवन को सधारण करती है। यही जीवन तत्व वनस्पति शरीर मे विभिन्न द्रव्यो के रूप मे सगृहीत होते है जिनका पारस्परिक सयोग प्रोटीन—लोह—शर्करा—लवण आदि की सज्ञा प्राप्त कर कई प्रकार के स्वादयुक्त पदार्थ सग्रह करता है। और इनको ही हम रस के रूप मे उनमें सग्रह करते है। इनकी सख्या कई है जिन मे ६ प्रधान है।

प्राचीन आचार्यो का मत है कि रस दो ही प्रकार के है :—

१— व्यक्त रस २— अव्यक्त रस

भौतिक सगठन के वैशेष्य के आधार पर व्यक्त रस बनते है। यदि उक्त जीवनकर्ष न हो तो अव्यक्त रस ही रहता है। अतरिक्ष जल जो आप्य तत्व का प्रथमोद्भूत सगठन है अव्यक्त रस ही होता है। पृथ्वी पर आकर अन्य भौतिक सग्रहो के सयोग मे गुणोपलब्धि पूर्वक वह मधुराम्ललवण कटु-तिक्तादि सज्ञा पाता है।

यथा—सौम्या खल्वापोऽन्तरिक्षप्रभवाः प्रकृतिशीतालघ्व्यश्चाव्यक्तरसाश्च। तास्त्वन्तरिक्षाद्भ्रश्यमाना भ्रष्टाश्च पचमहाभूतविकारगुणसमन्विता जगम स्थावराणा भूताना मूर्तिरभि—प्रीणयन्ति—तासु मूर्तिषु षडभिमूर्च्छन्ति रसा।

अर्थात्—अतरिक्ष मे उत्पन्न दिव्यजल स्वभाव मे ही ठडा सौम्य और अव्यक्त रस वाला होता है। यह अतरिक्ष मे गिरता हुवा मध्य मे आकाशस्थ और भूमि पर गिर कर भूमिस्थ पच महाभूत विकार रूप आकाश—पवन —चद्र—सूर्य और वायुमण्डल मे निरतर उडने वाले भौमत्रसरेणुओ के गुणो मे समन्वित होकर जगम और स्थावर मूर्तियो को उत्पन्न और तृप्त करता है। उन जगम और स्थावर पदार्थों मे इस प्रकार ६ रस प्राप्त होते हैं।

रसोत्पत्ति— रस की सख्या ६ क्यो है ? रस सख्या के सबध मे प्राचीनकाल से ही कई प्रकार के विचार उठे है किन्तु अत मे ६ रस ही है यह माना गया है। पाच महाभूतो मे ६ रस ही क्यो बने कम या अधिक क्यो न बने इस पर प्राचीनकाल के महर्षियो की परिषद का एक बहुत ही रोचक चित्रण[1] है। आधुनिक रस चार है—आज जैसे आधुनिक विद्वान चार ही मूल रस मानते है यथा —मधुर (sweet) अम्ल (sour) लवण (salt) तिक्त— (Bitter)। कषाय और कटु को वे स्वतत्र रस नही मानते। किन्तु उनके इस विचार के विपरीत उनके साहित्य मे हम इन रसो के वर्ग और क्रिया का उल्लेख पाते हैं। द्रव्यगुण (Materia Medica) मे वह कषाय द्रव्य (Astringent) और कटु द्रव्य (Pungent) व तैलो की गणना की गई है। अत क्रियारूप मे वे छ रस ही मानते है। साथ ही उनका और प्राचीन आयुर्वेद के रसोत्पादक सिद्धान्त मे कोई सामजस्य नही है। वे पाच भौतिक सिद्धात नही मानते।

१ च सू अ

उनके तत्व (Element) या एलीमेंट का सगठन क्रम पृथक है। अत उनसे मेल करने का प्रश्न ही नही उठता। तुल्य विचार होने पर तुलना होती है। अत अमुक व्यक्ति ऐसा मानते है अत हम भी माने यह कोई आधार नही बनता। हम अपने दृष्टिकोण मे विचार रखते है। इस विचार मे उनका एक तर्क और है वह यह कि मधुर-अम्ल-लवण और तिक्त का प्रभाव जिह्वास्थित स्वादाकुर (Taste bud) और स्वाद नाडीततुओ पर होता है फिर हमे स्वाद का ज्ञान होता है। कपाय और कटु रस का प्रभाव स्वादग्राही नाडियो के अतिरिक्त ज्ञानवाही नाडियो के (Sympathetic nerve) द्वारा भी होता है अत. स्वादग्राही नाडियो मे प्रभाव न होने के कारण इन्हे गौण माना जाय। यह तर्क अत्यत दुर्बल है। आयुर्वेद का कथन है कि रस का ज्ञान जिह्वा पर द्रव्य के निपात से होता है। चाहे स्वादग्राही नाडी का प्रभाव हो चाहे सावेदनिक नाडी का, ज्ञान तो जिह्वा से होता है और वह एक समान नही होता भिन्न भिन्न होता है और रसाभिव्यक्ति भिन्न होती है अत "रसोनिपाते द्रव्याणा' इस परिभाषा से जितना ज्ञान होता है, वह रस ज्ञान है, नाडिया भिन्न भले हो चाहे रासनी नाडी हो या अन्य चाहे स्वादाकुर जिह्वा के अतिरिक्त तालु गल मूल या अन्य स्थान मे पाये जाय। अत कटु कषाय को गौण मानना और इनका वर्ग और क्रिया का भी वर्णन करना कोई माने नही रखता। अतः आयुर्वेद कहता है कि रस ६ है। इनमे—

मधुर रस— इसका ज्ञान विशेप रूप मे जिह्वाग्र भाग पर होता है यद्यपि मधुर रस ग्राही कोप (Taste buds) जिह्वा पर सर्वत्र पाये जाते है।

तिक्त रस—इसके ग्राहक (स्वादाकुर) जिह्वामूल पर विशेप रूप से अधिक और अन्यत्र कम होते है।

अम्ल रस व लवण रस—इसके अवग्राहक स्वाद कोप जिह्वा के उभय पार्श्विक भागो पर विशेष रूप मे और अन्यत्र कम होते है।

इन स्वादग्राहको मे कुछ तो एक प्रकार के स्वाद का ही ज्ञान कराते है कुछ कई रसो का सामूहिक ज्ञान भी कराते हैं। उनकी रसज्ञान शक्ति एकाधिक रसो की भी होती है। कटु व कपाय के ज्ञान के विषय मे आधुनिक शारीर शास्त्री कोई स्पष्ट सम्मति नही देते। किन्तु यह प्रत्यक्ष सत्य है कि कटु रस के अवग्राहक कोप जिह्वापार्श्व जिह्वाग्र, तालु, मूल मे तथा कषाय रस व ग्राही स्वादाकुर जिह्वामूलीय भाग पर अधिक होते हैं। चरकादि महर्षियो ने कपाय के अवग्राहको का प्रदेश व उनके प्रत्यावर्तित कर्म (Reflex Action) को निम्न रूप से कहा है। **कषाय सेवन रस**—कठ प्रदेश मे व जिह्वामूल मे इसके स्वादाकुर होते है। अधिक कषाय सेवन से इस के कारण आस्यशोप-वाक्यग्रह होता है क्योकि स्थानीय स्वादाकुर व आससन अधिक कपाय रस प्रभाव से सकुचित व

कड़े हो जाते है। इनका प्रत्यावर्तक कर्म– मन्यास्तम्भ–गात्रस्फुरण– नमननायन-आकुचन आक्षेपण और आस्यशोष हत्पीडा तक उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कटु रस के स्वादाकुर जिह्वापार्श्व मे अधिक और जिह्वा पर कम होते है। इनका प्रत्यावर्तिक कर्म गल–तालोष्ठ शोष-दाह–सन्ताप नासा नेत्रादि पैदा करता है नासास्राव नेत्र स्राव–हिक्का यह इसके प्रत्यावर्तन कर्म के सामान्य उदाहरण है। कटुरस का जिह्वापर चिमचिमायन प्रधान लक्षण है।

षड्रसो के ज्ञान का क्रम

रसो के स्वाद लेने पर प्रत्येक मे एक विशेष प्रकार के लक्षण होते है जिनसे उनका ज्ञान हो जाता है। इन ज्ञान की लक्षणावली को रस लक्षण के नाम से पुकारते है। इनको सार्वांगिक ऐन्द्रिक व गुण कर्मानुसार भिन्न-भिन्न रूप से व्यक्त करके पहचाना जा सकता है यथा –

रस	सर्वांगिक लक्षण	ऐन्द्रिकगम्य	गुणानुवाचि
मधुर (सुश्रुत) (सू०४२)	परितोषकर प्रल्हादकर तर्पण जीवन	मुखोपलेपकर	श्लेष्मवर्धक स्नेहन–प्रीणन–मार्दवगुणाधिक्य
अ० सग्रह (सू० १२)	देहप्रल्हादपति	आस्वाद्यमान मुखलिपति इन्द्रियाणिप्रसादयति	षट्पद–पिपीलिकाना इष्टतम
रसवैशेषिक (३–१८)	ल्हादन	कंठतर्पणम्	श्लेष्मजनन
अ० हृदय (सू०अ०१०)	आल्हादन	वक्रमनुलिम्पति अक्षप्रसादन	पिपीलिकाना प्रियतम
चरक (च०सू०अ० २६)	स्नेहनकर प्रीडनकर आल्हादनकर मार्दवकर	मुखस्य लिम्पतीव	
अम्लरस चरक	स्वेदन	दन्तहर्ष मुखस्रावकर मुखबोधनात् कण्ठविदाह	
सुश्रुत	श्रावच–उत्पादयति	दतहर्ष मुखस्राव	
अ०सग्रह	रोमहर्ष	जिह्वाउद्वेजन उर कंठविदहन	

रस	सर्वांगिक लक्षण	ऐन्द्रियगम्य	गुणानुपलब्धि
		मुखस्राव	
		अक्षिभ्रूसकोचन	
		दर्शनहर्ष	
अ० हृदय	हर्षण–	मुखक्षालन्	
	रोमदन्त	अक्षिभ्रूसकोचक	
अ०	हृद्य–प्रक्लेदन	दतहर्ष–प्रास्रावण	
लवण	भुक्तरुचिमुत्पादयति		
	मार्दव चापादयति		
	कफप्रसेक जनयति		
सुश्रुत	क्लेद कर मुखे	मुखविदाह	
	विष्यदकर		
	मार्दवकर		
अ० हृदय	अन्नमरोचयति	मुखविष्यदयति	
		कण्ठ, कपोलविदहति	
रस वै०	उष्णत्वम्	रसप्रसेचन	
कटु		रसनासवेदनम्	
		रसनानुदनम्	
		मुखविदाह	
		नासाअक्षिस्रावी	
सुश्रुत		जिह्वाग्रबाधते	
		उद्वेगजनयति	
		शिरोगृह्णीते	
		नासिकास्रावयति	
अ० सग्रह	विदहतिदेहम्	भृशमुद्वेजयतिजिह्वाम्	
		चिमचिमायतिकठकपोल	
		मुखाक्षिनासिकस्रावयति	
अ० हृदय		उद्वेजयतिजिह्वाग्र	
		चिमचिमायनकरोति	
		स्रावयतिनासास्य	
		कपोल दहतीव	
रस वै०	उद्वेगी	जिह्वाग्राबाध	
		नासास्राव	
		शिरोग्रह	
तिक्त	निपातेन प्रतिहति	प्रल्हादकारक	
	न स्वदते		

रस	सर्वांगिक लक्षण	ऐन्द्रियगम्य	गुणानुपलब्धि
	मुखवैशद्यकर		
	मुखशोष		
सुश्रुत	यो गलेचोपमुत्पादयति	गलचिगापादर्शन	
	मुखवैशद्यजनयति	हर्पम्	
अ०संग्रह	वदनविशदयति		
	कण्ठविशोधयति		
	रसनाप्रतिहन्ति		
अ० हृदय	विशदयत्यास्य		
	रसनाप्रतिहन्ति		
रस वै०	शैत्ययास्यस्य	हर्षणम्	
	गलद्वारशोषण	हरिमना	
कषाय	रसना वैशद्य	विकाशि	
	,, स्तम्भ		
	,, जाड्य		
	कण्ठवध्नाति		
सुश्रुत	वक्रपरिशोपयति		
	कण्ठवध्नाति		
	हृदयकर्पति		
	पीडयति		
अ०संग्रह	जडयतिजिह्वाम्		
	वध्नातिकण्ठम्		
	पीडयतिहृदयम्		
अ०हृदय	जिह्वाजडयति		
	कण्ठस्रोतोविवधकृत		
रस वै०	मुखपरिशोष	श्लेष्मसवृत्ति	
		गौरवम्	
		स्तभश्च	

इन लक्षणो से स्पष्ट है कि रस का ज्ञान जिह्वापर वस्तु के सयोग से होता है और प्रत्येक रस जिह्वापर व उसके आसपास के अगो पर सद्य प्रभाव करते है। इससे स्पष्ट है कि जिह्वा के अतिरिक्त अन्य जिह्वा निवधक अग गलतालु-ओष्ठ—कपोल पर इनका प्रभाव पडता है और सर्वांगपर भी इनको किसी किसी का तात्कालिक प्रभाव पडता है अत जो लोग यह कहते है कि जिह्वा के अतिरिक्त भागो पर भी असर पडता है अत जिह्वा का ही क्यो रसनेन्द्रिय-माने। उन्हे इन उद्धरण को देखकर तथा जिह्वा के रस—बोधन कर्मपर विचार

करना पड़ेगा। प्राचीन आचार्य इस विषय पर बहुत दूरतक विचार किये हैं उन्होंने जिह्वामूल कंठ-कपोल के सभी भागों पर स्वयं रस प्रभाव घोषित किया है किन्तु रस ज्ञान तो जिह्वास्थित अंकुर ही करते हैं यथा–

मधुर रस के सेवन से–समग्रमुख में फैल जाना–माधुर्य फैला देना, सब इन्द्रियों को प्रसन्न करता है, मुख में मृदुता व आल्हाद पैदा करता है। भोजन में आनंद व तृप्ति देता है, कफ को बढ़ाता है। भौंरा और चींटियों का अधिक प्रिय होता है। कंठ को तृप्त करता है, मक्खियां इस पर अधिक बैठती है।

अम्ल– अम्लरस खाते ही मुख में लालास्राव, मुख की शुद्धि, मुख कंठ में जलन, अन्न खाने की रुचि जिह्वा को उत्तेजन–नेत्र–भ्रू का संकोच रोमांच करता है। मुख में क्लेद निकलता है और प्रिय लगता है।

लवण– लवण खाते ही मुख में घुल जाता है–उसे क्लिन्न करता है लालास्राव, मृदुता बढ़ाता है। कुछ अधिक खाने पर गले में विदाह–कंठ व कपोल में जलन, कफ का स्राव कराकर–अन्नरुचि पैदा करता है।

कटु– कटुरस जीभ पर संपर्क करते ही जीभपर उद्वेग–जिह्वाग्र पर चिम-चिमायन–मुख–गल–तालु–ओष्ठ में जलन पैदा करता है तथा अन्नरुचि पैदा करता है।

तिक्त–तिक्तरस जिह्वा पर जाकर उसके रस ग्रहण शक्ति को बाधित करता है। जिह्वामूल तथा कपोल के कंठ के आसपास के भागों पर शोष व खिंचाव पैदा करता है। मुखको साफ करता है रोमहर्ष–अन्नाभिरुचि पैदा करता है।

कषाय– जिह्वापर फैलकर उसके मांससूत्रों को स्तंभ करता है कंठ को सेल सूत्रों को संकुचित कर उन्हें दृढ़ करता है–कंठ की क्रिया बाँधता है मुख शोष और पीड़ा पहुंचाता है–कंठ स्रोतसों का विबंध पैदा करता है उसे कषाय रस कहते हैं।

२. रसषट्त्व का सिद्धान्त

आयुर्वेद पांच भौतिक संगठन पर विश्वास करता है और महाभूतों के विशिष्ठ संगठन के आधार पर ही रस ज्ञानोपलब्धि होती है। अतः प्राचीन दर्शनों और आयुर्वेद की संहिताओं में षड्रस सिद्धान्त का निर्णय निम्न आधार पर हैं–

रस वैशेषिक –"प्रत्यक्षतोऽनुमानादुपदेशतश्च रसानामुपलब्धिः
(र० वै० अ० उ० सू० १०८)

अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान व उपदेश इन तीनों के आधार पर रसोपलब्धि होती है। इसका विवरण पूर्व में किया जा चुका है। इस कथन मात्र से आज

के वैज्ञानिकयुग मे सतुष्ट नही हुवा जा सकता । नागार्जुन का यह सूत्र एक आधार मात्र सिद्ध होगा । अत और आगे बढे और विचार करे ।
सुश्रुत, चरक ने इसका वैज्ञानिक स्वरूप दिया है और वह इस प्रकार है.—

> आकाश–पवन–देहन–तोय–भूमिषु यथा सख्यमेकोत्तर
> परिवृद्धा शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गधा, तस्मादाप्योरस ।
> परस्पर ससर्गात्, परस्परानुग्रहात, परस्परानुप्रवेशाच्च
> सर्वेषु सर्वेषा सान्निध्यमस्ति, उत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम् ।
> न खल्वाप्यो रस शेषभूत ससर्गात् विदग्ध षोढाविभज्यते ।।
> तद्यथा–मधुर, अम्ल, लवणः, कटुक, तिक्त कषाय इति ।
> ते च परस्पर संसर्गात् त्रिषष्टिधा भिद्यन्ते (सु०सू० अ० ४२)

सुश्रुत का कथन है कि–आकाश–पवन–तेज–जल–पृथ्वी इनमे पारस्परिक ससर्ग–अनुग्रह परस्परानुप्रवेश और सान्निध्य से उनके द्वारा बने सगठन मे एक एक गुण क्रमश परिवृद्ध होते है । यथा–आकाश मे शब्दगुण, वायु मे शब्द स्पर्श, अग्नि मे शब्दस्पर्श–रूप जल मे शब्दस्पर्शरूप–रस और पृथ्वी मे शब्द-स्पर्श–रूप–रस–गध यह सब होते हैं । इस प्रकार सब महाभूतो मे सब का सान्निध्य होने से सबगुण सब मे होते पाये जाते है । ये गुण जिस द्रव्य मे जिस महाभूत का उत्कर्ष होता है उसका गुण अधिक होता है । जिसका अपकर्ष होता है उसका गुण कम होता है। चरक मे भी ठीक इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है यथा –

> एवमेषा रसाना षटत्वमुपपन्न न्यूनातिरेक विशेषान्महाभूतानाम्
> (च० सू० अ० २६)

> महाभूतानि स्व वायुरग्निराप क्षितिस्तथा । शब्द स्पर्शश्च रुप च रसोगन्धश्चतद्‌गुणा । तेषामेक गुण पूर्वो गुण वृद्धि, परेपरे । पुर्व पूर्व गुणश्चैव क्रमशोगुणिषुस्मृत । च० सू० अ० १

किन्तु षट्त्व रसो का प्राधान्य नही होता है किन्तु ये वास्तविक ससर्ग ही द्वारा त्रिषष्टिधा भी होते और इनका विकल्प करने पर और भी अधिक और अपिरिमित विभाग हो सकते है । अत पच महाभूतो से प्रधान रस, भूतो के पारस्परिक ससर्ग, सन्निवेश परस्परानुग्रह और सान्निध्य से ६ प्रकार का बनता है ।

रस चूकि द्रव्य मे अभिव्यक्त होते है और द्रव्य का सगठन पाच भौतिक होता है अत :–द्रव्यो मे रस कालसहित भूम्यादि ससर्ग मे पाकावस्था प्राप्तकर षड्‌विध होते है । अत द्रव्यो मे इन महाभूतो का प्रारभिक ससर्ग सयोग और अनुग्रह प्राप्त कर के एक ही द्रव्य मे रसो की स्थिति भिन्न भिन्न होकर

परिणामान्त अवसर पर मधुर–अम्लादि रूप मे व्यक्त होता है। अत पचमहाभूतो मे भी दो महाभूत।

"तस्य द्रव्य माप . क्षितिस्तया।
निर्वृत्तौ च विशेषे च खादय प्रत्ययास्त्रय। च०सू०अ० १"

अप और क्षिति को प्रधानता दी गई है। शेष तीन महाभूत भी भाग लेते है।

अस्तु एक द्रव्य मे मधुरम्लादि रसो की अभिव्यक्ति होती है। वानस्पतिक द्रव्य मे–पृथ्वी का आधार लेकर जल के द्वारा पुष्टि और काल–ऋतु द्वारा अवस्थान्तर–प्राप्त कर विभिन्न काल के विभिन्न भौतिक सगठन को लेकर ही होती है।

और भी स्पष्ट करने के लिये अष्टाग सग्रह ने रस की अभिव्यक्ति का सुन्दर वैज्ञानिक आधार उपस्थित किया है। यथा –

रसः सलिलाप्य. प्रागव्यक्तश्च। स षड्ऋतु कत्वात् कालस्य महाभूत गुणै रूनातिरिक्तै. ससृष्टो विषम––विदग्ध षोढा पृथग्विपरिणमते मधुरादि भेदेन। अ०स०सू०अ० १८।

अर्थात्–प्राय रस अपतत्व प्रधान होते हैं। पहले अव्यक्त रहते है, जिह्वा-स्थित द्रव के सगठन से निपात होने पर यह स्वादाकुरो द्वारा व्यक्त होते है इनकी इस रसोपलब्धि मे षड्ऋतु अनुसार काल कृत स्थिति मे महाभूतो के गुणो के कम या अधिक होने पर–ससर्ग प्राप्ति कर कालान्तर मे विदग्ध होकर ६ प्रकार के ज्ञात होते हैं।

ध्यान पूर्वक देखे तो किसी वनस्पति मे रसोत्पादन उसकी प्रत्येक अवस्था मे एक सा नही होता –एक ही आम्र जब प्रारभिक पुष्पकलिका मे रहता है कटु कषाय रस रहता है। जब बढता है कुछ अम्लत्व का रूप लेता है। पूरा आम्र गुठलीसहित होकर अम्ल होता है और वही परिपक्व होने पर कालान्तर मे मधुर होता है।

अत ऋतु व काल कृत परिणमन–अवस्थान्तर ससर्ग से यह स्वाद प्राप्त होता है।

अत. अष्टाग सग्रह मे सुश्रुत व चरक की बातो को ही एक स्पष्ट अभिव्यक्तरूप मे रखकर वानस्पतिक रसो मे भौतिक स्थिति का स्वरूप व आधार स्पष्ट व्यक्त किया है। और भू जलयोर्बाहुल्या मधुरोरस, भूतेजसोरम्ल, जलतेज सोर्लवण वाय्वाकाशयोस्तिक्त, वायुतेजसो कटुक वायूर्व्यो कषाय। कहा।

षड्रस से त्रिषष्टि विकल्प बनते है अत सख्या अधिक नही होती यह कथन भ्रम मात्र है।

मूल रस छ है या अधिक या कम इस पर विभिन्न विचार हैं। चरक के **आत्रेय भद्रकाप्यीय अध्याय में** इसका सख्या सबधी तर्क वहा ही देखिए ।

आधुनिक विचारको का मत तो रस सग्राहक जिह्वास्थित कोषो की रस ग्राहकता की क्रिया के ऊपर निर्भर करता है जिसे पूर्व मे व्यक्त कर चुके हैं। इसी प्रकार प्राचीनो का भी विचार केवल मात्र भौतिक सगठन ही नही अपितु परिभाषा मे **"रस्यते आस्वाद्यते इति रस"** ऐसी निरुक्ति की है और **'रसो-निपाते द्रव्याणां'** यह स्पष्ट उल्लेख इसलिये है कि तात्विक सगठन युक्त द्रव्य जब जिह्वा के ऊपर निपातन से सबध प्राप्त करते है तब रस ज्ञान होता है। अत कोई भेद नही है। यदि भेद है तो वह षड्रस और चतु रस का है। अस्तु आस्वादन का आधार रस ग्राहकता सबध मात्र के है और द्रव्य सगठनात्मक विचार पाच भौतिक सगठन के है, रस बहुत्व सबधी विचार निम्न है।

रस और पचमहाभूत--जिस प्रकार द्रव्य पाच भौतिक है तदाश्रित रस भी पाच भौतिक है। रस की योनि अपतत्व और आश्रय पृथ्वी होने से यह दोनो समवायी कारण है। आकाश--अग्नि--वायु यह तीन रसाभिव्यक्ति मे सहायक होते हैं। अत वैशिष्ट्य के निमित्त कारण बनते है। इस प्रकार रस पाच भौतिक सगठन से बने हुये हैं। इन भौतिक सगठन के उत्कर्ष के आधार पर पृथक पृथक रसो की अभिव्यक्ति होती है। प्रधान रस और अनुरस की अभि-व्यक्ति होती है। अत भौतिक सिद्धान्त से कोई भी द्रव्य एक रसवाले न होकर बहुरसान्वयी होते हैं। प्रधान रूप मे जो रस स्पष्ट ज्ञात होता है वह **व्यक्तरस** और जो बाद मे अनुभव मे आता है **अनुरस कहलाता है।**

रसाभिव्यक्ति कब होती है--रस की परिभाषा से ही स्पष्ट है कि रस का ज्ञान जिह्वापर द्रव्य के निपात पर सयोग से होता है। द्रव्यगत रस का प्रत्यक्ष ज्ञान द्रव्य का रसनेन्द्रिय के साथ साक्षात सपर्क करने पर होता है। सपर्क होने मात्र से ही रस ज्ञान नही होता जब द्रव्य जिह्वा के सपर्क मे आकर जिह्वा के रस या बोधक श्लेष्म के साथ सपर्क करके द्रव मे घुलकर जिह्वा स्थित रसाकुरो मे स्पर्श करता है तो नाडी क्रिया द्वारा रस का ज्ञान मधुर, अम्ल-लवणादि का होता है। अत रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष ही रसाभिव्यक्ति का हेतु होता है।

कुछ लोगों का तर्क है कि स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा भी रस का ज्ञान होता है। तालु तालुमूल कठ प्रदेश से भी स्वाद का ज्ञान होता है। कटुरस सेवन से मुख के कई स्थान से लाला रस स्राव होता है। चर्म पर मरिच का प्रलेप चरपराहट उत्पन्न करता है। यह कहना तर्क नहीं है कुतर्क हैं क्योंकि रसना की तरह अम्ल लवणादि का ज्ञान त्वचा मे नही मिलता। केवल स्पर्श ज्ञान के गुण प्रदाह-जलन वेदना इत्यादि या शीतल व उष्ण का ज्ञान होता है। यदि कहा

जाय कि रस का ज्ञान होता है तो यह ज्ञानविरहित बात होगी । यदि हम एक जगह चरपरी व एक जगह तिक्त या मधुर-द्रव्य का लेप कर दे तो कोई भी ज्ञानज्ञ या साधारण व्यक्ति रस के भाव अम्ल लवण नही वतला सकेगा—प्रदाह या जलन से चरचरा या कटु कहने वाले को एसिड का प्रलेप करने पर प्रादाहिक स्थिति मे उसे अम्ल के वदले कटु कहना पडेगा अत यह तर्क न्याय सगत न होकर कुतर्क मात्र है । रसाभिव्यक्ति तो जिह्वा मे ही होती है । उसकी तीक्ष्णता मधुरता की क्रिया तो शरीर के विभिन्न स्थान और प्रभाव सर्वांग पर होता है । अत यह कहना कि सव स्थानो पर द्रव्य निपात से रस ज्ञान होना, उचित नही । यहा तो रसाभिव्यक्ति से महत्व है । क्रिया से नही ।

रसाभिव्यक्ति मे सहायक वस्तु

रसना प्रत्यक्ष— **आत्मेन्द्रियमनोऽर्थाना सन्निकर्षात् प्रवर्त्तते ।**
व्यक्ता तदात्वे या बुद्धि प्रत्यक्ष सानिगद्यते । च०

ज्ञानेन्द्रिय प्रत्यक्ष करने के लिये चाहे नेत्र–कर्ण–निद्रा–नासा–त्वचा–प्रत्यक्ष मे इनमे से कोई क्यो न हो तदिन्द्रिय प्रत्यक्ष करने के लिये निम्न वस्तुओ का सहयोग लेना पडता ही है । महर्षि चरक के शब्दो मे—

१ आत्मा, २ इन्द्रि व इन्द्रियार्थ, ३ मन और उसके अर्थ ।

इन तीनो के सयुक्त सन्निकर्ष होने पर ही किसी वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है । अत रसना प्रत्यक्ष करने और रस ज्ञान के लिये हमे निम्न वस्तु का सहयोग करना पडता है तब ज्ञानोपलब्धि रसज्ञान की होती है । यथा—

१ द्रव्य–पाच भौतिक सयोग से सगठित षड्रसात्मक द्रव्य ।

२ आत्मा–द्रव्य के जिह्वापर निपात करने पर ज्ञान प्राप्ति का आधार ।

३ इन्द्रिय–जिह्वा जो अपने स्वादाकुरो की रचना वैशिष्ठ्य के कारण द्रव्य जिह्वा आप्य रस के सयोग से सक्रिय होती है और रस ज्ञान मे सहायक होती है ।

४ मानसक्षेत्र– वह मस्तिष्क का प्रदेश जहाँ पर जिह्वा से ज्ञानात्मक भाव पहुचाया गया और वहा से सावेदनिक अनुभूति की प्रेरणा मिली और जिह्वा मधुरादि रसो के अभिव्यक्ति को अनुभूति सृजन करपाई इसमे सावेदनिक नाडिया उनकी इच्छा (Sensary impulses) सवेदनिक और अनुसावेदनिक (Para Sympathetic pathways) नाडियो के क्षेत्र व उनके सहकारी अग

लसीका ग्रथी–उनकी उद्रेचित रसवाहिनी नलिकाये मुखगह्वर की श्लेष्मल कलाये जिह्वामूल व कठादि प्रदेश यह सव अपनी क्रिया द्वारा मुख मे रस उद्रेचन करती है और द्रव्य का जिह्वा पर इस रस से सपर्क होना है और

रसाभिव्यक्ति की क्रिया सपादित होती है। शरीर क्रिया विज्ञान के पाठक जानते है कि रसज्ञान के आधार स्वाद कोष है। यह स्तन पायी प्राणियो की जिह्वा मे और कुछ जिह्वा के पार्श्वगत कठ गल–तालु प्रदेश के भागो मे होते है। इनकी सख्या ९००० तक होती है। जो जिह्वाश्रित होते हैं। प्रत्येक स्वादकोष कई सूक्ष्म लोमाकृति स्वाद प्ररोह मे विभक्त होते है, उन्हे स्वाद प्ररोह या गेस्टेटरी पोर्स (Gastatory Pores) कहते है। इन सबो के सामूहिक कार्य निष्पन्न होने पर ही स्वाद का ज्ञान होता है।

व्यक्त व अव्यक्त रस

इसकी परिभाषा मे पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि रसनाग्राह्यगुण ही रस कहलाता है। यह रस दो प्रकार मे व्यक्त होते है।

व्यक्तरस—जो रस सर्व प्रथम ज्ञात होता है वह व्यक्त रस कहलाता है यह भी आर्द्र व शुष्क द्रव्यो के भेद से कभी कभी एक ही द्रव्य मे भिन्न-भिन्न रूप मे व्यक्त होता है। किन्तु जो भी रस प्रथम व्यक्त होता है उसे उस समय के द्रव्य को व्यक्त रस मानते है। अत चरक ने स्पष्ट यह लिखा कि शुष्क मे जो प्रथम व्यक्त रस होता है उसे द्रव्यगत रस कहते है। यथा—

व्यक्तः शुष्कस्य चादौ च रसो द्रव्यस्य लक्ष्यते। च सू २६।

क्योकि पिप्पली आर्द्रावस्था मे प्रथम मधुर रस देती है शुष्क होने पर कटु। द्राक्षा आर्द्र रहने पर मधुर शुष्क होने पर ईषदम्ल हो जाता है। हरीतकी आर्द्र होने पर प्रथम कटु रस पश्चात कषाय रस व्यक्त करती है। आर्द्र कुष्ठ प्रथम कटुरस पश्चात् कषाय शुष्क होने पर होता है। आर्द्र आमलक प्रथम कषाय पश्चाद्। अत द्रव्य की शुष्कावस्था मे का व्यक्त रस प्रधान या व्यक्त कहलाता है और वाद मे व्यक्त होनेवाला अनुरस या अव्यक्त किंचिद् व्यक्त रस कहलाता है।

५ चक्रपाणि ने आदि अत मे स्पष्ट होने वाले रस को शुष्क या आर्द्र मे व्यक्त रस माना है।

अव्यक्त रस—अनुरस–व्यक्त रस के वाद जिसकी अभिव्यक्ति होती है अथवा अल्प या ईषद होता है उसे अनुरस कहते हैं। यथा—हरीतकी मे कषायरस के वाद मधुररस का ज्ञान होता है।

प्रधान रस और व्यक्त रस—यह तो ठीक है कि प्रथम जो रस जिह्वा को ज्ञात होता है वह व्यक्त रस है किन्तु व्यक्त रसो मे प्रधान कौन है यह कभी कभी अतर दृष्टि गोचर होता है। प्रथम व्यक्त रस प्रधान नही होता। यथा—कुष्ठ मे प्रथम कषाय रस ज्ञात होकर कटु रस का ज्ञान वाद मे होता है और अत तक कटु ही रहता है। इसका प्रधान रस कटु है। शुष्क आमलक प्रथम अम्ल वाद मे कषाय होता है। अत आदि मध्य या अत मे जो रस

रसनास्थायी देर तक व्यक्त होता है। वह प्रधान और जो अस्थायी होता है वह चाहे आदि मे ही व्यक्त हो उपप्रधान कहलाता है। उपप्रधान कभी ज्ञात होता है कभी ईमद्–व्यक्ति–किंचिन ज्ञात होता है।

१–(१) तत्रव्यक्तो रस.। अनुरसस्तु रसेनाभिभूतत्वादव्यक्तो व्यक्तो वा किंचिदन्ते। अ म मू १७

(२) तत्रव्यक्तो रसः स्मृतः। अव्यक्तोऽनुरस किंचिदन्ते व्यक्तो ऽपिचेष्यते। अ हृ. सू. ९

(३) तत्र यो व्यक्ते रस। यस्तु रसनाभि भूतत्वान्तव्यज्यते वा किंचिदन्ते सोऽनुरसः। यो

अनुरस––(५) शुष्कस्यचेति–चकारादार्द्रस्य च, आदौ चेति चकारादन्ते च, तेन शुष्कस्य वाऽऽर्द्रस्य वा प्रथमजिह्वासंबंधे वाऽऽस्वादान्ते वा यो व्यक्तत्वेन मधुरोऽयमम्लोऽयमित्यादिना विकल्पेन गृह्यते, स व्यक्तः। च सू. अ २६–२८

पंचमहाभूतो से छः रस की उत्पत्ति

प्राचीन आचार्यो ने छै रसो की उत्पत्ति पचमहाभूतो से निम्नप्रकार से वतलाई है––१

सव रस पाचभौतिक होने पर भी प्रधान भौतिक सगठन वतलाते है।

मधुर रस=जल+पृथ्वी (तेज+वायु+आकाश) प्रधान।

अम्लरस=पृथ्वी+अग्नि (अप+वायु+आकाश)=चरक वाग्भट

जल+अग्नि प्रधान=सुश्रुत

लवण रस=जल+अग्नि प्रधान (चरक–वाग्भट=नागार्जुन।)

पृथ्वी+अग्नि–सुश्रुत

कटु =वायु+अग्नि(पृथ्वी+अप+आकाश)

तिक्त =वायु+आकाश (पृथ्वी–तेज+अप)

कषाय =वायु+पृथ्वी (अप+तेज+आकाश

अतः – इस सगठन के सवध मे कई प्रकार के प्रश्न उठते है वह इस प्रकार है यथा––

---

१. एवमेषां रसाना षट्त्वमुपपन्न न्यूनातिरेक विशेषान्महाभूतानां। भूतानामिव स्थावर जंगमानां नाना वर्णाकृति विशेषा। च सू २६

२. तेषां षण्णां रसानां पृथिवी सोम गुणातिरेकान्मधुरोरस, पृथिव्यग्नि भूयिष्ठत्वादम्ल, सलिलाग्नि भूयिष्ठत्वाल्लवण, वायुवग्नि भूयिष्ठत्वात्कटुक। वाय्वाकाशातिरिक्तत्वात्तिक्त, पवनपृथिवीव्यतिरेकात् कषाय इति। च सू २६

परं च––क्ष्मा भोग्नि क्ष्माम्बु तेज' ख वाय्वग्न्यनिल गौ निलैः। द्वयोल्वणै क्रमाद् भूतै मधुरादि रसोद्भव। अ हृ सू अ १०

१ पञ्चमहाभूतों में पञ्च रस के बजाय ६ रस क्यों बने।

२. छे के बदले त्रिदोषवत् ३ ही रस क्यों न बने।

३ इन भौतिक संगठनों से रस द्रव्यों की तरह अधिक रस क्यों न बने।

इसका उत्तर कई प्रकार से प्राचीन आचार्यों ने दिया है यथा -

१ स्वभाववत्[3]—महाभूतों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे आपस में संगठन विशेष में एक विशेष रस की उत्पत्ति करते हैं अधिक की नहीं।

२ एक एक रस की उत्पत्ति में दो दो प्रधान महाभूतों की अधिकता और इतर की कमी का कारण काल और ऋतु है। यह रस विभिन्न ऋतु में भिन्न-भिन्न बनते हैं।

अत नागार्जुन का कथन है कि कुतर्कों के बदले बुद्धि से काम लेना उचित है। रसाभिव्यक्ति में रसक्रिया नहीं लगाना चाहिए। अत. छ. रस हैं यह सिद्ध करने के लिए अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। उनका कथन है कि—

षट्सूत्रकार प्रामाण्यादास्वाद्याच्च। र०वै० ३।

आस्वाद्यमानत्व स्वाद लेने व ज्ञान होने की क्रिया के कारण छे ही रस हैं क्योंकि आस्वादन कर्म जिह्वा का ही है भले ही फिटकरी नेत्रस्राव रोक दे लसीका स्राव रोक दे किन्तु वह कसैला है—अम्ल है यह तो आस्वादन रस नहीं बता सकते, रसानुकूल क्रिया रोधक हैं। अत आस्वादन क्रिया जिह्वा से होती है जिह्वा के अतिरिक्त स्वाद लेने पर ६ रस के अतिरिक्त अधिक रस नहीं मिलते अत छे ही रस हैं जिह्वा पर छे रस ही अभिव्यक्त होते हैं अत छ ही रस हैं। त्वचादि स्वाद को व्यक्त नहीं करते कभी चरपराहट प्रदाहव्यक्त करते हैं। सूत्रकार ऋषिगण छे ही रस मानते हैं। अत ६ ही रस हैं। चरक के सूत्र स्थान अ० २६ में आत्रेय भद्रकाप्यीय अध्याय में इस विषय पर विस्तृत विवेचन है।

रस की सख्या छे क्यो है कम या अधिक क्यो नहीं ?

इस विषय मे विभिन्न मत हैं जो निम्न लिखित है – प्राचीन काल मे एक बार ऐसा ही प्रश्न उठा था कि रस कितने है इस पर भिन्न–भिन्न **सम्मतियां इस प्रकार हैं** —– सौम्या – मधुर तिक्त कषाय

आग्नेया –कट्वम्ल लवणा

---

३ (१) तोयवत् पृथिव्यादयोऽपि किमितिपृथग्रसांतरद न कुर्वन्ति–तथा तोय वातादिसंयोगादिभ्य किमिति रसान्तराणि नोत्पद्यन्त इति–तदपि भूत स्वभावापर्यनुयोगादेव प्रत्युक्तम्। (चक्रपाणीदत्त)

(२) स्वभावाद्दोष एषा भूम्यादीनांसीदश' स्वभावीयतकनषित भूताधिकान व्यवस्थानि भूम्यादीनि। रसान्तरोत्पादन समर्थानि भवन्ति। न सर्वेणेति। अ हृ

महाभूत और रस

किन किन महाभूतो के अधिकाश मे किस रस की उत्पत्ति होती है इसका ज्ञान निम्न सारणी से स्पष्ट हो जायगा। विभिन्न आचार्यों के क्या क्या विचार हैं यह अधोलिखित है–

रस	सुश्रुत	चरक	नागार्जुन	अष्टांगहृदय	अष्टाङ्गसग्रह
मधुर	भूमि+अप	सोम गुणा–तिरेकान्म–धुरोरस	पृ०+अप	पृ०+जल	भू+जल
अम्ल	अप अग्नि (तोयाग्नि)	पृ०+अग्नि	अप+अग्नि	अग्नि+पृ० (अग्नि+स्म)	भू+तेज
लवण	भूमि+अग्नि भूम्यग्नि	अप+अग्नि	अग्नि+अप	अप+तेज	जल+तेज
कटु	वायु+अग्नि वाय्वग्नि	वा०+अग्नि	वा०+अग्नि	आकाश+वायु	वा०+तेज
तिक्त	वायु+आकाश	वा०+आ०	वा०+आ०	आ०+वा०	वा०+आ०
कपाय	पृ०+अनिल	वा०+पृ०	पृ०+वा०	अनिल+पृ०	वायु+पृथिवी

ऊपर की सारणी से स्पष्ट है कि पाच भौतिक द्रव्यो मे रसो की उपलब्धि विशिष्ट महाभूताधिक्य सगठन विशेष से होता है। इसमे सबो की सम्मति एक ही है। केवल सुश्रुत व नागार्जुन अम्ल रस के विषय मे कुछ मत या ऐक्य रखते हैं। चरक–अष्टाग सग्रह–अष्टागहृदयकार अम्ल रसोत्पत्ति पृथ्वी व अग्नि तत्वाधिक्य से मानते है वहा सुश्रुत नागार्जुन अप और अग्नि भूताधिक्य मानते है। इसी प्रकार अष्टाग **हृदयकार कटुरस को आकाश व वायु के महाभूताधिक्य सगठन को मानते हैं जब कि** अन्य **सब आचार्य वायु व अग्नि तत्वाधिक्य से कटुरस की उत्पत्ति मानते** है। **इस प्रकार की मतस्थापना में विशेषता कुछ दृष्टिगोचर नहीं होती। भौतिक संगठन** पारस्परिक सहयोग–ससर्ग और पर-स्परानुप्रवेश मे इनका स्वरूप वदलता और रसाभिव्यक्ति होती है। चरक का मत है कि एवमेषा रसाना षट्त्वमुपपन्न न्यूनातिरेक विशेषान्महाभूतानाम् ॥

सुश्रुत का उत्तर और भी वैज्ञानिक है और वह कहते है कि रसो का षट्त्व तीन प्रधान कारणो मे है। यथा– (सु०सू०अ० ४२)

महाभूतो के– (१) परस्पर ससर्गात् (Coordination)
(२) परस्परानुग्रहात् (Affinity)
(३) परस्परानुप्रवेशाच्च (Union)
(४) सर्वेषा सर्वस्य सानिध्य मस्ति उत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम्

भौतिक परमाणुओ के पारस्परिक संसर्ग मे पारस्परिक मेलक (मैग्नीन) शक्ति से और परस्पर मे एक के परमाणु दूसरे मे प्रवेश से उनके पारस्परिक मेल के उत्कर्ष व अपकर्ष मात्रा की अधिकता व कमी के मेल व प्रतिक्रिया के आधार पर रस छ ही बनते है, अधिक नही।

सुश्रुत के सब मतो का निष्कर्ष चरक ने **'न्यूनातिरेक विशेषात् महाभूतानां'** एक वाक्य मे ही कह दिया है।

द्वितीय हेतु—काल कृत महा भौतिक न्यूनातिरेक विशेष भी रस षट्त्व का एक हेतु है यह **चरक और वाग्भट ने व्यक्त किया है।** यथा—

(१) षड्ऋतुकत्वाच्च कालस्योपपन्नो महाभूताना न्यूनातिरेक विशेष

(च० सू०अ० २६)

(२) स षड्ऋतु कत्वात् कालस्य महाभूत गणैरुनातिरिक्तै संसृष्ठो विषम, विदग्धो—षोढापृथग्विपरिणमते। मधुरादि भेदेन।

(अ० संग्रह सू० अ० १८)

यह दूसरा हेतु कालकृत षड्ऋतु विभागात्मक महाभौतिक संगठन भी न्यूनातिरेक मात्रा मे मिलकर—(संसृष्ट होकर)—विषम भाव मे मिलकर अथवा काल विपरिणाम मे विदग्ध होकर छ प्रकार के रसो की सृष्टि करता है। चूंकि ऋतु षट् होती है। अत रस भी षट् होते है। जिन जिन ऋतुओ मे जिन महाभूतो की अधिकता मे रसो की विशिष्ट उत्पति होती है उसको निम्न रूप मे व्यक्त किया गया है। यथा—इन्दु का मत है—कथ महाभूताना रसाधिक्यम् उच्यते—

कालस्य संवत्सरोस्पस्य षड्ऋतुकत्वाद्रसस्यापि षट्भेदत्वम्। तथा च शिशिरे वाय्वा-काशयोराधिक्याद्र **सस्यतिक्तता, वसन्ते वायु पृथिव्यो कषायता, ग्रीष्मे ऽग्नि वाय्वो कटुता, वर्षास्वग्नि पृथिव्यो ऽम्लता शरदग्नि उदकयोर्ल्लवणता, हेमन्त पृथिव्युदकयोर्मधुरतेति प्राधान्याद्व्यपदेश तेनान्यर्तूद्भवानामपि रसाना यथोक्त महाभूतद्वयाधिक्यमेव कारण विज्ञेयम् (इन्दु)**

अर्थात् निम्नलिखित ऋतुओ मे भूताधिक्य व तरतम भेद मे रसोत्पत्ति होती है।

शिशिर	ऋतु में	वायु+आकाश	महाभूताधिक्य से	तिक्त रस
वसन्त	,,	वायु+पृथिवी	,,	कषाय
ग्रीष्म	,,	वायु+अग्नि	,,	कटु
वर्षा	,,	अग्नि+पृथिवी	,,	अम्ल
शरद	,,	जल+अग्नि	,,	लवण
हेमन्त	,,	पृथ्वी+जल	,,	मधुर

की उत्पत्ति होती है अत चाहे जो भी हेतु हो महाभूतो के न्यूनातिरेक भाग के संगठन मे ही रसोत्पत्ति होती है। कोई कोई यह भी संदेह करते है कि यदि

यही बात मानले तो ऋतुविपरीत भी रसोत्पत्ति होती है। तो इस अर्थ मे महाभूतो का न्यूनातिरेक सबध रस का सगठन करता है अथवा काल कृत महाभौतिक स्थिति रसोत्पत्ति करती है यह प्रश्न उठता है। इस दशा मे कोई नया समाधान न देकर चक्रपाणि दत्त ने उत्तर दिया है कि यद्यपि ऋतु भेद होने पर भी भूतोत्कर्ष विशेष ही रसोत्पत्ति का कारण है फिर भी बीजाकुर कार्यकारण भाववत् ससार के आदि से ही भूतविशेष और ऋतु ही कार्यकारण रूप से रसोत्पत्ति के कारण है। इनमे कौन प्रथम है यह कहना कठिन है। अत महाभूत कृत ऋतु प्रविभाग है अथवा ऋतुओ के कारण भौतिक प्रविभाग होता है यह प्रश्न भी बीजाकुर न्याय से ही हल हो सकता है। बीज प्रधान है या अकुर इन दोनो के कार्य कौन है और कारण कौन है कहना बहुत दुर्घट है।

यह स्पष्ट है कि भौतिक सगठन ही रसोदय का हेतु है। चरक और सुश्रुत या नागार्जुन मे जब भौतिक सगठन से रसो की उत्पत्ति का विवरण है तो यह प्रश्न भी उठता है कि ल.ण रस की उत्पत्ति मे जल व अग्नि विपरीत तत्वो के योग से क्रियाशीलता को उत्पन्न होती है अथवा एक ही द्रव्य मे परस्पर विरोधी रस कैसे उत्पन्न हो जाते है। उनकी क्रिया मे वैपरीत्य क्यो नही. दृष्टिगोचर होता। इन सबो का एक मात्र उत्तर यह है कि यह भौतिक स्वभाव है। स्वभाव के कारण यह परस्पर विरोधी नही होते और न परस्पर विरोधी भौतिक सगठन ही निष्क्रिय होता है।

प्रत्येक महाभूत की क्रियायें भिन्न है। वे जहा भी रहे उसी अनुपात मे अपना कार्य करते है। अत कोई भी स्थिति हो उदर मे जाकर विश्लेषित होकर पारस्परिक सगठन सामान्याधिकार पर उनकी गुणावली यथावत ही रहती है। उनके इस स्वभाव के कारण ही कोई वैपरीत्य दृष्टिगोचर नही होता। वस्तु का स्वभाव ही सर्वोपरि है।

मतभेद– यह कहा जा सकता है कि चरक और सुश्रुत मे रस सगठन मे मतभेद है किन्तु कोई भी सगठन हो यदि अम्ल या लवण रस बनते है तो उनकी क्रिया मे मतभेद किसी मे नही है। अत- भौतिक सगठन कोई भी क्यो न हो अम्ल और लवण की अपनी क्रिया होगी और उसमे भेद नही होगा।

किन्तु मेरी सम्मति मे यह मतभेद प्रिंटिंग की गल्ती से सभव है, छप गया है। यदि अन्य किसी स्थान मे भेद नही तो यहा भी मतभेद सभव नही है। चाहे उत्तर स्वभाव का या किसी का कह कर या कार्यकारण का भेद कह कर दिया जाय उत्तर नही ठीक होता।

महाभूत किसी के प्रिंटिंग की कमी से अपना गुणधर्म नही बदल सकते अत: यदि गलती छप गया तो उसकी पुष्टी मे सिर खपाना और यथार्थ उत्तर न देकर द्रविड प्राणायाम करना न्याय सगत नही है।

रसोपलब्धि या रस ज्ञान– किसी द्रव्य का क्या रस है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्राचीन ऋषियो द्वारा बतलाया हुवा साधन क्रम तीन प्रकार का है। रस-वैशेषिक का कहना है कि हमे रसका ज्ञान–

प्रत्यक्षतोऽनुमानादुपदेशाच्च रसानामुपलब्धि –

अर्थात्–द्रव्यो को जिह्वा पर रखकर उनके मधुर अम्ल इत्यादि रसो का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से करते है। जहा प्रत्यक्ष से नही होता वहा अनुमान व उपदेश से मानते है अनुरस और अव्यक्त रसो का ज्ञान मदा अनुमान मे ही करना पडता है। जैसे स्वर्ण के–

शीत कषाय मधुर: विषघ्न वर्ण्यं च मेधास्मृतिवर्धन च।
रसायनीय लघुरूक्ष मुक्त, कषायतिक्त लघुरूक्षमाहु ।

स्वर्ण के कषाय और मधुर रस का, रजत के कषाय व तिक्त रस का ज्ञान जिह्वा के द्वारा न होकर उनके कर्म देखकर अनुमान मे व आप्तोपदेश मे ही प्राप्त करते है।

चरक ने या सुश्रुत ने तो एक ही उपाय रसोपलब्धि का 'रसोनिपाते द्रव्याणा' बतलाया है। अत प्रत्यक्ष मे रसो की उपलब्धि के बाद अतिरिक्त क्रमो के उनका ज्ञान जो शास्त्रो मे लिखा है इस आप्तोपदेश मे अथवा क्रिया-इत्यादि देखकर अनुमान से करते है।

३. रस की प्रधानता

रस द्रव्य का आश्रय करके रहने वाला वस्तु है। और वस्तु या द्रव्य का द्रव्यत्व इन रसो के अतिरिक्त कुछ नही होता। अत रसवादियोका कथन है कि रस ही द्रव्य मे सर्व प्रधान होता है। बिना रस के द्रव्य नही होता और चिकित्सा मे बिना रस का सहारा लिए चिकित्सा सभव नही। चिकित्सा के मूलस्तर मे रसो की ही दोष शामकता का विवरण चरकादि महर्षियो ने दिये हैं। अत रस ही प्रधान है।

इस सबध मे विभिन्न प्रकार की विचारधारायें है। रसवादी अपनी प्रौढता की प्रतिष्ठापना निम्न उद्धरणो द्वारा व्यक्त करते है—

१. **अधिकारत रस प्रधान है**—शास्त्रो ने रस की महत्ता स्वीकार की है। शास्त्र के द्वारा चिकित्सा व स्वस्थवृत्त मे रसो द्वारा ही चिकित्सा की पद्धति स्वीकार की गई है। इनकी ही प्रधानता मानी गई है। प्राण की चिकित्सा करना, रक्षा करना चिकित्सक का कर्तव्य है। आहार प्राण रक्षा का आधार है और आहार षड्रसाधीन है। तथा वमन विरेचनादि सशोधन व सशमन चिकित्सा भी रसाधीन है। अत अधिकृत होने से–शास्त्रो के द्वारा अधिकार प्राप्त होने मे रस प्रधान है। ऊपर के अधिकार चरक–सुश्रुत–नागार्जुन आदि ने विचार किया है। जिनका भाव ऊपर लिखा हुवा है। उनके वाक्य निम्न है–

१. रसास्तु प्रधान कस्मात् ? आगमात्, आगमोहि शास्त्रमुच्यते,
शास्त्रेहिरसाधिकृता – यथा–रसायत्त आहार इति, तस्त्मिंस्तुप्राण
(सु सू १। सु सू. ५–४०)

२. रसानधिकारात (र वै १ सू. १११)

३. केचिद्रसान् प्रधानान ब्रुवते धिकारात्। ते ह्यधिकृताश्चिकित्सायामिति ।
अथ–षट्स्वेव युक्तं वमनं–षट्सु युक्तं विरेचनम्
षट्सु चास्थापन युक्तं षट्सु सशमन हितम्
इत्यादि यो यास्मिन्नधिकृत स तस्मिन्नेन्वभ्य प्रधानो दृष्ट ।
यथासेनायां सेना पति । मा०

२—उपदेशत रसप्रधान है। यथा—

सुश्रुत–उपदेशाच्च उपदिश्यन्ते हि रसाः यथा मधुराम्ल लवणा
वातं शमयति । (सु सू ४२)

नागार्जुन–उपदेशात् (र वै सू ११४)

आयुर्वेद मे रसो के द्वारा ही दोष शमन की विधि का निर्देश किया गया है यथा—मधुर, अम्ल, लवण वात का शमन करते है।

१. अनुमानाच्च, रसेनह्यनुमीयते द्रव्य यथा मधुरमिति। (सु सू ४०)

२ अनुमानात् (रस वै ११५)

अनुमान से भी रस का ज्ञान होता है। यथा—मधुर होने से यह द्रव्य बल्य–श्लेष्म वर्धक और वातहर होगा ऐसा अनुमान करते है। मधुर का विपाक मधुर और वीर्य शीत होना इत्यादि।

४—(१) आगमाच्च (र वै सू १८०)

(२) ऋषि वचनाच्च, ऋषिवचन वेद, यथा किंचिदिज्यार्थ मधुरमा
हरेदिति। तस्माद्रसा प्रधानम्। (सु सू ४०)

शास्त्रो मे भी रस को प्रधान स्थान दिया गया है। द्रव्यो का निर्देश ऋषियो के द्वारा रसवाचक शब्दो के प्रयोग का दिखाई पडता है। यथा–यज्ञ के लिए कुछ मधुर द्रव्य लावो।

५ (१) तेनोपसंहारात् (र वै सू ११२)

(२) यथा विदारि गंधादीन् द्रव्यगणान् उक्त्वा यानि यान्येव
प्रकाराणि मधुरस्कध परिसख्य यामि भवन्ति (भाव प्र)

अनायास ऋषियो द्वारा यत्र–तत्र उपहारक रहते समय मधुरादि द्रव्यो का नाम लेकर उपसहार करते है। यथा–मधुरस्कध के द्रव्यो की सीमित नामावली लेकर इस प्रकार निर्देश किया जाता है कि इसी प्रकार इस स्कध मे अन्य मधुर द्रव्यो को भी लेना चाहिए।

६ (१) अपदेशात् (र वै सू ११५)

(२) **अपदेशोनाम अन्येनान्योपदिश्यते उपमारुपेण – – – – प्रधानेन – – – – – –मधुर गांधर्व–मधुरावाणी, कटुक वाणीति (भा०)**

रस द्रव्य की विशेपता वा निदर्शक होता है। द्रव्यातिरिक्त मे भी मधुरावाणी–कटुका वाणी इस तरह का निर्देश मिलता है। अत रस की प्रधानता है।

७ व्यापत्ति निमित्तता के कारण भी रस प्रधान है।

(१) **तद्व्यापत्तौ शेष व्यापते** । र वै सू ११३

(२) **रसव्यापत्तिनिमित्त शेषाण्य द्रव्यादीना व्यापत्ते यथा— क्षीरस्य रसे दुष्टे क्षीर न गृह्यते, तद्विपाकादयश्च विपन्ना इति (भा०)**

विकृति के आधार पर भी रस प्रधान होता है। यथा—द्रव्य के रस के विकृति होने पर उसके विपाकादि की विकृति की आशका मे विकृति दुग्ध का उपयोग नही होता।

८ **बहु विषयत्व**—रस अनेक द्रव्यो मे विषभूत होकर निवास करता है। एक रस के कई कई द्रव्य हैं इस प्रकार द्रव्यो के समूह को स्कध व गण की सज्ञा दी गई है। अनेक द्रव्यो का आधारभूत होता है। यथा—इक्षु–क्षीर–शर्करा–गुड खण्डादि। अत बहु विपय वाले द्रव्य प्रधान होते हैं और उनकी विशेषता आ जाती है। यथा—मन व चक्रवर्ती राजा। नागार्जुन एव भावमिश्र दोनो के ऐसे विचार हैं। यथा—

(१) **नानाविषय त्वात्** । (र वै सू ११७)

(२) **अनेकाधारत्वादिति, मधुरस्य तावदिक्षु क्षीर–शर्करा, खण्डादय, एव मन्येषा च। यद बहु विषय तत् प्रधान वृष्टं, यथा–मन अथवा चक्रवर्ती राजा (भावप्र)**

इन प्रधान हेतुओ के अतिरिक्त विचार करे तो ज्ञात होगा कि कुछ और भी विशेपता रसो मे है जिनके आधार पर इन्हे प्रधान कह सकते है। इन मे भी प्रधान निम्न हैं —

८ (१) **गुणवैशेष्य व्यपदेशात्**—रस की गणना विना विपाक वीर्य–प्रभाव की महत्ता अल्प हो जाती है। विपाक के निर्धारण ये भी तीन रस परिणामान्न रहते हैं। वीर्य निर्धारण मे भी सौम्य रस और आग्नेय रसो का विचार करना पडता है। रसाधीन गुण भी है क्योकि महर्पि लोग मधुर रस मे माधुर्य से अतिरिक्त गुरु, शीत, स्निग्धादि गुणो का निवास भी उसमे मानते

हैं। और इनके आधार पर वीर्य के प्रभाव का भी ज्ञान होता है। प्रभाव का विचार भी रस साम्य या वैषम्य के आधार पर ही होता है। उष्ण वीर्य–शीत वीर्य इत्यादि इसके अनुसार ही गिना जाता है। अत विशिष्ट गुण रस मे होने से यह प्रधान माना जाता है।

(२) आशुकारीत्व––भाव प्रकाश इस गुण का प्रभाव विशेष रूप से रस मे मानते हैं। कटु रस के सेवन से उद्वेजन–हिक्का–उर्ध्वप्राणत्व अथवा आधुनिक विचार मे प्राण केन्द्र के ऊपर वायु प्रभाव मानते हैं। मधुर का तृप्ति–तिक्त का मुखवैशद्यवलेखन, अम्ल का मुख क्षालनादि इस प्रभाव से ही होता है।

(३) आहारद्रव्य प्राधान्यत्व— आहार जो जीवन का मुख्य आधार है नित्यंषड्रसाभ्यास के आधार पर ही निर्दिष्ट है। एक रसाभ्यास से जीवन सुगम न होकर बहुरसाभ्यास के आधार पर निर्धारित है। षड्रसाभ्यास रुचि उत्पादक है तथा आहार सेवन मे प्रवृत्ति उत्पन्न करता है अत जीवन के मुख्य साधन आहार का यह आधारभूत–रुचिवर्धक तथा प्रवृत्ति उत्पादक होता है। इस प्रकार कई प्रधान हेतु हैं जो कि रस की प्राधान्यता घोषित करते हैं। रस ही द्रव्य का एक प्रधान आधार है जो द्रव्य मे एक साथ कई रस करके भिन्न-भिन्न कार्य का आधार होता है। एक ही द्रव्य कषाय भी होता है, कटु भी होता है, तिक्त भी होता है, मधुर भी होता है और इन रसो के अनुसार द्रव्य के कई कर्म पृथक पृथक होते हैं। और किसी मे यह विशेषता नही है। एक ही हरीतकी–कषाय होने से ग्राही–मधुर व कटु होने से अनुलोमक–दीपन व पाचक भी होती है। हृद्य भी होती है।

अत रस की प्राधान्यता को सब शास्त्र स्वीकार करते है।

४. रसों का अन्यथागमनत्व व परिणामी रस

द्रव्यो के स्थिर रस की प्रतीति वही मानी जाती है जो शुष्क द्रव्य मे अभिव्यक्त हो किन्तु इससे पूर्व कि किसी द्रव्य मे कोई स्थिर रस उत्पन्न हो उद्भिज्ज मे प्रारभ मे लेकर अत तक कई रसो की उपस्थिति होती है और परिवर्तन होता है और तब अतिम रस स्थायित्व प्राप्त करता है। इस प्रकार क्रमश बदलाव को नागार्जुन रसो का अन्यथा गमनत्व कहते है। इस प्रकार के परिवर्तन के कई हेतु प्रतिपादन करते है। इनके अतिरिक्त किसी विशिष्ट द्रव्य को रखने पर कुछ काल बाद रस का परिवर्तन हो जाता है यह भी **अन्यथा गमनत्व** है। यथा—

अन्यथा गमन के विभिन्न हेतु—

१ सयोगत अग्ने पाकात्—अग्नि के पाक के द्वारा द्रव्यो मे रसान्तर होता है। पाकात् यथा–इमली (चिंचा)—आर्द्र होने पर अम्ल होती है। अग्नि मे सस्कारित करने पर मधुर अम्ल हो जाती है।

२ जम्बूफल कषाय मधुर, पकाने और धूप मे सुखा देने पर मधुर हो जाते है।

३ सूखे मेथी के शाक को भूनने पर तिक्त हो जाता है।

सयोग से—चूने के चूर्ण मे इमली का फल लपेट देने पर चूर्ण सयोग मे मधुर हो जाती है।

आतप—धूप के लगने पर भी रसान्तर दृष्टिगोचर होता है। यथा—

१—तुम्बुरु के कसैले फल धूप मे सुखाने पर मधुर हो जाते हैं।

२—पिप्पली आर्द्र मधुर रस की होनी है सूखने पर कटु होती है।

३—आमलक आर्द्र रहने पर तिक्त प्रथम—फिर अम्ल लगता है सूखने पर अम्ल व कषाय हो जाता है।

४—अम्ल आम्र फल आतप पाक से मीठे हो जाते है।

भावना—भावना देने पर कई द्रव्य रसान्तर प्राप्त करते है। यथा—
तिल—कषाय—तिक्त—मधुरतिल—मधुयष्टि भावना मे मधुर हो जाती है।

देशत —विभिन्न देश के द्रव्यो मे एक ही द्रव्य मे विभिन्न रस पाये जाते हैं। यथा—(१) आँवले—काशी के मधुराम्ल रसवाले, काशीपुर नैनीताल के मधुर रस वाले—अन्य स्थान के कसैले। जगली आमलक कटु कषाय रस वाले होते है।

(२) सेव—काश्मीर के मधुर और चौपाटी नैनीताल के अम्ल होते है।

(३) वदर—वनारस व वरेली के वेर मीठे विशेष प्रकार के होते हैं जगली व ग्राम्य अम्ल मधुर रस वाले होते है।

काल—समयानुसार द्रव्यो मे रसो का परिवर्तन हो जाता है यथा—

(१) कदलीफल (केला) तैयार होकर कसैले रस का होता है रखने पर कालान्तर मे मीठा हो जाता है।

(२) आम्र तैयार—अम्लरस वाले कालान्तर मे या आतप सयोग पर अग्नि पाक से मीठे होते है।

परिणामतः—कुछ द्रव्यो का पाक होने पर उसका परिणाम रसान्तर उत्पन्न करता है। यथा—

(१) दुग्ध रखने पर फट कर मधुर से अम्ल हो जाता है। दधि अम्ल वनती है।

(२) अम्ल अरिष्ट—खट्टे हो जाते है।

(३) शुक्त—जो गुण या इक्षुरस कुछ समय रखे जाते है खट्टे हो जाते हैं।

(४) पनस—पका हुआ कटहल खट्टा हो जाता है।

(५) ताडफल—मधुर ताड का पका फल अत मे खट्टा हो जाता है।

उपसर्गत.—क्रिमिकीट के लगने से भी रूपान्तर होता है। यथा—ईख मे कीट लगने पर उस स्थान की ईख अम्ल व कटु हो जाती है।

विकृति से—द्रव्यो को बार बार स्पर्श करने व सपर्क मे उनमे विकृत रस हो जाते है। यथा—

तालफल—दग्ध कर मिट्टी मे रखने पर तिक्त हो जाता है।

कटहल—पके कटहल को बार बार हाथ से मथने पर खट्टा हो जाता है।

निम्बू-नीबू काट कर रखने पर तिक्त हो जाता है।

भात—तैयार भात को हाथ लगने से क्लिन्न व कालान्तर मे अम्ल हो जाता है।

भाजन—पात्र मे रखने पर रसान्तर द्रव्य का होता है। यथा—

(१) कांस्यपात्र या पीतल के पात्र मे दही रखने से कटु तिक्त होता है।

(२) कास्य-पीतल-ताम्र पात्र मे कोई अम्ल रस की चटनी कटु तिक्त कषाय हो जाती है।

कालान्तर—कुछ काल तक रखने पर द्रव्य का रसान्तर हो जाता है। यथा—भात मधुर होता है-कुछ कालान्तर मे अम्ल हो जाता है। इस प्रकार वैशेषिक ने रसो के अन्यथा गमनत्व का उदाहरण दिया है। यही नही प्रत्येक द्रव्य कालान्तर प्राप्त कर भिन्न-भिन्न रसो मे परिवर्तित होकर तब अतिम परिणामी रस को प्राप्त होते है। यथा—आम्र का फल जब छोटा होता है कषाय और कटु रस का होता है और बढने पर आम्र का छोटा फल खट्टा रहता है और पकने पर मीठा होता है। जामुन का फल आदि मे अत्यत कटु और अत मे मधुराम्ल होता है। नीबू का फल अत्यत छोटा होने पर कटु और परिवृद्ध होने पर मधुर और बढने पर अम्ल होता है।

सेव—छोटा रहने पर कटुतिक्त, कुछ बढने पर अम्ल और पक्व मधुर होता है। ऐसे ही प्रत्येक द्रव्य का फल प्रारम्भ मे कुछ अम्लरस युक्त होता है धीरे धीरे उसमे परिवर्तन होता है तब अन्य रस रहता है और परिपक्व होने पर मधुराम्लादि रसयुक्त हो जाता है। अत रस का निर्धारण परिपक्व फल या प्रयोगार्ह शाक सब्जी काण्ड इत्यादि के प्रयोगार्ह स्थित मे भिन्न रस रहते हैं। वास्तव मे फलो मे विभिन्न स्थितियो के रसो की स्थिति प्रकृतित उत्पन्न होती है।

पुष्पावस्था मे प्रत्येक पुष्प की गर्भ थैली मे बीजपोषक अमृत रस (नेकटर) मधुर रस का आता है। मधुर रस मे बीज की पुष्टि होकर फल की कली का रूप धारण करने पर उसे पक्षी व कीट न खा जॉय अत उनमे परिवर्तन होकर कटु तिक्त-कषाय रस मे परिवर्तन हो जाता है। जब फल बढने लगते हैं उनमे फल पेशी बनने लगते है उनका एक निश्चित रस या अम्ल मधुर कषाय होता है। अत मे जब कालान्तर मे वनस्पति पर स्थिर रस व आतप के प्रभाव से वे पक्व होते है उनका रस मधुर अधिक होता है। कुछ मे अम्ल-कटु-कषाय या तिक्त होता है। यथा—वे फल कच्चा रहने पर कषाय-कटु-पकने पर या अग्नि मे पकाने पर मधुर आम्र-खट्टा या ईषद मधुर-पकने पर मधुराम्ल
पपीता-कच्चा कटु पकने पर मधुर
अमरुद-कच्चा-कसैला पकने पर मधुर
बेर-कच्ची-मीठी-कषैली-पकने पर अम्ल या मधुर
नीबू-कटु परिपक्व पकने पर अम्ल
सेव-कटु या अम्ल-पक्व मधुर।
मधुर रसवाले फल अधिकतर अम्ल रहते है पक कर मधुर होते हैं। आर्द्रक-कटु-पिप्पली मधुर, मिर्च-कटु इत्यादि रसवाले होते है।

अत द्रव्य मे परिणाम मे जो रस होता है वह ही द्रव्य का असली रस माना जाता है इसमे प्रधान हेतु द्रव्य मे वनस्पति द्वारा सगृहीत पाच भौतिक स्थितिओ का सगठन और उनमे निष्पन्न रस ही प्रधान हेतु है। क्योकि द्रव्य पाच भौतिक होने पर परिणाम मे जितने भौतिक तत्वो का सगठन करता हे उसके आधार पर द्रव्य का रस बनता है।

५. जिह्वा के अतिरिक्त अन्य साधन

रस रसनाग्राह्य है ऐसा विचार शास्त्र का है। परन्तु कुछ ऐसे साधन है जिनके द्वारा रस का ज्ञान होता है। वे हैं घ्राणेन्द्रिय व चक्षुरिन्द्रिय **घ्राणेन्द्रिय**-नासिका के द्वारा-मधुराम्ल कटुतिक्त कषाय का ज्ञान विभिन्न रूप मे होता है।

मधुर रस-अग्नि शर्करा व गुड डालने पर एक विशिष्ट गध आती है। वह दूसरे द्रव्य के डालने पर नही होती। घृत मे पूडी-अपूप क्षीर या हलुवा पकाने पर एक विशिष्ट गध उठती है। यह गध घ्राणेन्द्रिय गम्य है।

घृत या तैल मे-वे द्रव्य जिन मे मधुराश होता है चाहे वे किसी स्वाद के हों मधुर या मधुगधी गध आने लगता है यथा अश्वगधा-पुष्करमूल-सालम-मिश्री या इस प्रकार के द्रव्य घृत मे या तैल मे पकाने पर गध उठता है और

दूर से कहा जा सकता है कि मधुर रस का पाक हो रहा है। अग्नि मे घृत या दुग्ध गिरकर जल जाने मे एक विशिष्ट गध उठती है। और दूर से कहा जाता है कि अमुक वस्तु जल रही है। अधिक मीठे आम तरबूज सूघकर नित्य खरीदे जाते है।

कटु रस—कटुरस अग्नि मे पडते ही एक विशिष्ट तीव्र गध वायु मे बिखरती है और छीके आने लगती है। विना अग्नि मेयथा—लालमिर्च—काली मिर्च। सूघने पर कटु रस तम्वाकू, कट फल मरिच का गध ज्ञात होता है।

अम्ल रस— अम्ल रस वाले द्रव्य के सूघने से एक विशिष्ट गध आती है। यथा नीवू—जम्बीर—अम्लिका। तिक्त व कटु रस—सुगधित द्रव्य जिनमे अधिक गध होती है प्रायः तिक्त व कटु होते हैं। मरिच, पिप्पली, शुठी, कटुरस वाले—जीरक— गण्डीर— उशीर— लामज्जक तिक्त रस वाले। मसालो की तरह (Aromalic odour) गधवाले अधिक तर तिक्त व कटु होते है। चदन—केशर— कस्तूरी गोरोचन— अम्बर का स्वाद तिक्त व कटु तथा विशिष्ट गध युक्त होते है।

लवण व क्षार— इनमे विशिष्ट गध होती है। जहा क्षार पकाते या सुखाते है या लवण सुखाते हैं वहा एक विशिष्ट गध आती है।

यह ठीक है कि जिनकी घ्राणेन्द्रिय उन रसो से अनुभवित हो जाती है तथा दूर से उन रसो को समझ लेते हैं। इक्षु के काटने पर—धान्य के काटने पर, शर या कुश कास के हरे काटने पर, चौलाई व पालक के काटने पर विशिष्ट गध ज्ञात हो गई। कषाय रस—हरित अवस्था मे कषाय रस का गध हरे शाक की तरह हरिऔध होता है कपित्थ कुलत्थ माष आदि का गध एक विशिष्ट होता है।

कई द्रव्यो के गध सर्वज्ञात है यथा— गुग्गुलु, देवदार - जटामासी— वोल—लोहवान—केशर—कस्तूरी आदि।

अत : घ्राणेन्द्रिय भी द्रव्य के रस ज्ञान मे सहायक है किन्तु निर्णायक यह माध्यम नही है, ज्ञान का हेतु है। अत परीक्षात्मक ज्ञान आनुभविक होता है क्रियात्मक नही और नि सन्देह कई द्रव्य गध से कह जा सकते है। किन्तु इनका प्रायोगिक उपयोग क्या होगा कहना कठिन है। अत यह सहायक माध्यम है। लेवोरेटरी गम्य नही है कि टेस्टटचूव मे इसका प्रयोग हो सके।

नेत्रेन्द्रिय.—नेत्र से देखकर ज्ञात द्रव्यो के रस का ज्ञान होता है। यह प्रत्यक्ष गम्य है। दुग्ध-शर्करा-घृत-लवण-फिटकरी-नवसार- आदि को तथा रोटी-चावल-हल्वा—पूडी—जलेवी—शर्वत देखकर रसज्ञात हो जाता है। पक्वान्न को देखकर उनके रस का ज्ञान होता है अस्तु नेत्रेन्द्रिय भी अपने रस ज्ञान मे सहायक है। द्रव्यो के रूप को देखकर पता चलता है कि अमुक रस इस मे होगा इस आधार पर वर्गी-करण कर एक क्रम निकल सकता है।

वर्ण :—नेत्र से वर्ण देखकर द्रव्य का ज्ञान होता।

शतपुष्पा— धनिया—	मधुर
अग्निवर्ण कलिहारीपुष्प—	कटु
गुलाब का पुष्प—	मधुर

गोल्डमोहर का रक्त पीत पुष्प–अम्ल मधुर
कालीमिर्च–लालमिर्च का लालवर्ण–कटु
चिरायता का वर्ण कृष्णावर्ण– तिक्त
सिवुवार का नील वर्ण– तिक्त
पीतरक्ताभ आम– मधुर
कालिन्द हरित्कृष्ण मधुर
बादाम का रक्त मधुर
मूगफली का रक्त मधुर
अमलतास पुष्प पीत मधुर तिक्त

यह सही है कि कुछ द्रव्यो का वर्ण गध का व रस का ज्ञान कराता है परतु वह प्रायोगिक होने पर भी आनुभविक ज्ञान है। निर्णायक क्रम नही हो सकता।

पुनश्च– जिन द्रव्यो के रस का ज्ञान पूर्व कथित किसी विधि से प्राप्त नही होता उनका प्रयोग करके उसके परिणाम को देखकर के तब निर्णय करते है। स्वर्णरजतादि के प्रयोग करने पर तदनुकूल फल मिलने पर उसे रस वाला मानते है। यह अतिम नियम है।

अन्य प्रयोग - यदि टेस्टट्यूब मे ही प्रयोग कर के उसे जानना ही अतिम ध्येय है तो उसका भी उपाय है।

मधुर रस हम जल घृत-तैल व कई तृण जातियो मे मानते है किन्तु उनमे शर्करा की प्राप्ति नही होती किन्तु स्वाद मधुर होता है। जिह्वा उसका ज्ञान देती है।

अत निम्न उपाय माने जा सकते है।

१– मधुर वे सब द्रव्य है जिनमे लिटमस पेपर रग नही बदलता।
२– मधुर जिनमे फेहलिग ए० व बी के प्रयोग से रग पीला होता है।
३– अम्ल जिनमे लिटमस के डालने पर रग बदलता है नीला होता है।
४– कटु व क्षार जिनमे डालने पर लिटमस का रग भूरा होता है।

६. प्रायोगिक रसविज्ञान

१ जैसा कि पूर्व मे कहा जा चुका है—आयुर्वेद मे रस का ज्ञान रसना के द्वारा होता है और यही इस ज्ञान का आधार है।

२ रसना के अतिरिक्त अन्य अगो पर भी प्रभाव पडता है और उसका परिवर्तक कर्म देखा जाता है। जैसे—

३ कई द्रव्य रसना पर रखने पर भी कोई रस नही बतलाते क्योकि वे बोधक श्लेष्म मे जो मुख से निकलता है घुलनशील नही होते। ऐसी दशा मे उनके घुलने के माध्यम मे घोलकर स्वाद लेते है। यथा–गुगुलु–सर्जरस

यह घृत तैल मे घुल जाते है और इनके घुलने पर फिर स्वाद लेने से रसाभिव्यक्ति हो जाती है।

४ कई वस्तु किसी वस्तु मे घुलती नही–यथा–स्वर्ण, रजत आदि तो उनके प्रायोगिक कर्म को देखकर उनकी क्रिया का अदाजा लगाते है।

५ इनके अतिरिक्त प्राणी द्वारा भी पता चलता है किन्तु यह सर्व रसो के लिये सभव नही है। यथा–मधुर रस के लिये–पिपीलिका–मक्षिका का आगमन अत इसका रासायनिक क्रम भी ढूढना पडता है। कुछ रसो का ज्ञान आधुनिक प्रयोगशालाओ मे किया जाता है। यथा–मधुर रस का ज्ञान परन्तु यह सब स्वाद के लिए सरल नही है।

रसज्ञान का प्रायोगिक उपयोग

१ एक रस वाले द्रव्य को एक साथ कई व्यक्तियो को देना चाहिए व स्वाद लेना चाहिए। इसमे व्यक्त व अव्यक्त रस का ज्ञान होता है।

हमारे यहा यह नित्य क्रियात्मक प्रायोगिक क्रम अपनाये जाते है और उनका रेकार्ड होता है। प्रत्येक प्रायोगिक द्रव्य का स्वाद एक साथ २५ व्यक्तियो को दिया जाता है। स्वाद लेकर वह व्यक्त रस की अभिव्यक्ति एक पत्रक पर करते है और उनके परिणाम को नोट किया जाता है। इस प्रकार निम्न कई द्रव्यो के रस का प्रायोगिक विवरण दिया जा रहा है।

१ – द्रव्य	प्रधानरस	अनुरस
एला	कटु	तिक्त
गुजा	तिक्त	कटु कषाय
कुपीलु	तिक्त	—
ज्योतिष्मती	तिक्त	कटु
एरण्ड बीज	मधुर	कषाय
गधप्रियगु	कषाय	तिक्त
पिप्पली	कटु	तिक्त
मदनफल	कषाय	मधुर अम्ल
जातीपत्र	कटु	तिक्त
इशबगोल	मधुर	—
स्थूलैला	कटु	मधुर तिक्त
द्राक्षा	मधुर	अम्ल
कुबेराक्ष	मधुर	कषाय
विडग	कषाय	तिक्त
धतूरबीज	कटु	तिक्त मधुर

द्रव्य	प्रधानरस	अनुरस
इन्द्रवारुणी	तिक्त	कटु
माजूफल	कषाय	—
कर्कट श्रृंग	कषाय	तिक्त
आरग्वध	मधुर	कषाय
गुडूची	तिक्त	कषाय
कृष्ण सारीवा	तिक्त	कषाय
सुधा	कटु	तिक्त कषाय
नागकेशर	मधुर	कषाय
मजिष्ठा	मधुर	कषाय–तिक्त
वृद्धदारुक	कषाय	—
यष्टी मधु	मधुर	तिक्त
लवंग	कटु	तिक्त
केशर	तिक्त	—
पिपरमेंट	कटु	तिक्त
हरिद्रा	तिक्त	कटु
गवपलाशी	तिक्त	कटु
कटुकी	तिक्त	—
कर्पूर	तिक्त	कटु
जटामासी	तिक्त	—
जेल्प	कटु	कषाय
हिरण्यतुत्थ	तिक्त	कटु
शतावरी	तिक्त	मधुर
अशोक	कषाय	—
अर्जुन	कषाय	—
लोध्र	कषाय	तिक्त
उदुम्बर	कषाय	मधुर
पाटला	तिक्त	कषाय
श्योनाक	तिक्त	कषाय
बकुल	कषाय	तिक्त
वरुण	तिक्त	—
काचनार	कषाय	तिक्त
उशीर	तिक्त	—
आतारकरभ	कटु	लवण
लांगली	कटु	कषाय

द्रव्य	प्रधानरस	अनुरस
पुनर्नवामूल	कटु	तिक्त कषाय
त्रिवृत	कटु	कषाय
मरगधा	तिक्त	—
हिंगु	तिक्त	कटु
मोचरस	कषाय	मधुर
गुग्गुलु	तिक्त	कटु
खदिर	कषाय	मधुर

इस प्रकार रसो का निर्णय जिह्वा द्वारा किया जाता है।

आयुर्वेद मे जिन रसो का उल्लेख है वह यान्त्रिक क्रिया द्वारा ज्ञात नही हो सकते। यथा——जल मधुर है। घृत तेल–वसा मज्जा मधुर है। इनमे रासायनिक परीक्षा मे मधुर रस नही पाया जा सकता।

——०——

गुणो के कर्म

	अवमाद	२५	दाहहर	४८	पाककर
१.	उपलेप	२६	सयोजन	४९	पित्तकर
३	वलकृत	२७	मार्दव	५०	शोषण
४	कफकृत	२८	क्लिन्नताकर	५१	व्यवायि
५	तृप्तिकृत	२९	वृष्य	५२	सारक
६	पुष्टिकृत	३०	कफहृत	५३	पाचक
७	वातहर	३१	स्थौल्यकर	५४	मूर्च्छाकर
८	उत्साहकृत	३२	स्रोतसापरोधकर	५५.	स्वेदकर
९	स्फूर्तिकृत	३३	प्रसादक	५६	तृषाकर
१०	लक्षय	३४	स्रावहर	५७	अवृष्य
११	अतृप्ति	३५	पाकहर	५८	रौक्ष्य
१२	दौर्वल्यकर	३६	शैथिल्यकर	५९	काठिन्य
१३	कृशताकर	३७	मलकर	६०	खर
१४	रोपण	३८	मूत्रकर	६१	आर्द्रकृत
१५	लघुत्वकर	३९	स्वेदस्तभ	६२	द्रववृद्धिकृत
१६	वातकर	४०	चिरस्थायी	६३	सरणशील
१७	मर्दक्रिया	४१	सूक्ष्म स्रोतम् गम्य	६४	दार्ढ्यकर
१८	शैथिल्यकृत	४२	दु खकर	६५	अनुलोमन
१९	ग्रामक	४३	वलहृत	६६	गौरव
२०	सुखप्रद	४४	अमघातकर	६७	जीवन
२१	स्तभन	४५	लेखन	६८	अवसाद
२२	मूर्छाहर	४६	छेदन	६९	वृहण
२३	तृष्णाहर	४७	दाहकर	७०	यात्राकर
२४	स्वेदहर				

गुण विकाश

गुण का विकाश और ज्ञान किस प्रकार हुवा यदि इसका प्रारंभिक इतिहास ढूढे तो पता चलेगा कि सृष्टि के ज्ञानार्थ परमाणुवाद का सिद्धान्त जब से प्रचलित हुवा उससे भी पूर्व गुणो का ज्ञान ज्ञात था। सृष्टि उत्पादक आदि कारणभूत द्रव्यो की उत्पत्ति मे पूर्व भी हमे त्रिगुणात्मिका प्रकृति का ज्ञान होता है–जिसमे सत्व–रज-तम[1] यह तीन गुण प्रारभ से ही मौजूद थे और इन गुणो ने–पारस्परिक सहयोग के आधार पर लोकोत्पत्ति की। रजोगुण जो शक्ति प्रधानगुण था सात्विक गुण के साथ मिलकर कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय का विकाश कर सका और रजोगुण तमोगुण मे पचतन्मात्रा और महाभूत तथा अन्य तत्व बने। अत शक्तिविकाश की शृखलात्मिका शक्ति को लेकर सब की उत्पत्ति हुई और सब मे यह मौजूद था।

पचमहाभूतो मे उसके अपने अपने गुणो का विकाश शब्द-स्पर्श--रूप-रस-गध के रूप मे हुवा और इन गुणो को लेकर पाच भौतिक सगठन मे ससार का प्रत्येक कण बना। विचारको ने विचारा, देखा, और किया। इन पाचभौतिक पच इन्द्रियानुभूतिक पचगुण युक्त वस्तुओ मे इनके गुणो ने पाच भौतिक सिद्धान्त का उदाहरण देकर "सर्व द्रव्य पाच भौतिकम्" का सिंहनाद किया। कुछ और बढे और लोक के द्रव्यो की असरयना देखकर उन्होने इनका और भी श्रेणीविन्यासाक्रिया और इनमे नये लक्षण खोजे और द्रव्य परिचयार्थ पाच गुणो से १७ गुणो का सन्नियमन किया। इसके वाद दार्शनिको के स्थूल लोक द्रव्य के वाद चिकित्साविकृत द्रव्य औषधि व पिण्ड की परिपुष्टि के लिये कई प्रकार के नवीन गुणो का ज्ञान बढा और उनकी सख्या बढने लगी और बढ भी गई। इस प्रकार त्रिगुण से लेकर ४१ गुण और इसके वाद भी आशु व्यवायी विकाशी इत्यादि को चिकित्सको ने अपनाया।

इस प्रकार के क्रमश विकाश मे गुणो का यह क्रम इतना क्यो बढा और इनकी अभिव्यक्ति होने पर भी चिकित्सको मे अभी सतोष नही है वह इस से बढी वस्तुए जानने की चेष्टा मे हैं अत प्रश्न यह उठता है कि प्राकृतिक गुणों से पाच-भौतिक गुण और इसके वाद भी शारीरिक व उसमे द्रव्य कालिक गूणो का विकाश किस सिद्धात शृखला की अनुशीलन पूर्वक चल रहा है। इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि दार्शनिको का मुख्य लक्ष ब्रम्हाड की उत्पत्ति का विवरण देना था। ब्रह्माड के वाद पिण्ड का भी विवरण देना

---

[1]-स त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति।

[2]–तत्रवैकारिकादहकारा त्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते, तद्यथा–श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति,

[3]–भूतादेरपि तैजससहायातल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते-शब्दतन्मात्रं।

सु० शा० अ०–१

पडा। इसमे दार्शनिको की परिभापा प्रारम्भ मे कुछ और थी। आणविक सयोग से समार की उद्भवस्थिति वतलाने वाले कणादने सर्व प्रथम एक परिभापा इस प्रकार की—

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुण
(वै० द० अ० १, श्रा० १ सू० १६)

अर्थात्–जो द्रव्य मे आश्रय करनेवाला गुण या गुणान्तर रहित से और सयोग विभाग के कारण न हो अर्थात् निष्क्रिय हो उसे गुण कहते हैं।

इस प्रकार की परिभापा करने पर गुण द्रव्य मे निष्क्रिय होकर रहता हुवा भी कुछ के मन मे गुण और कर्म असमवायी कारण है यह उपस्थित किया इसके वाद सतोपप्रद होने के लिये वाद मे कारिकावली कार ने—

अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणा
(का० गुण ग्रथ)

इसमे भी सतोप न होने पर क्योकि यह भी ऊपर के अर्थ का प्रतिपादन करता है इससे भी गुण की परिभापा मे विशेप अतर न आया। अत –भदन्त नागार्जुन ने–"विश्व लक्षणा गुणा." ऐसी परिभाषा की क्योकि यदि गुण व व कर्मरहित्य हो और द्रव्याश्रयी गुण हो तो फिर–सार्था गुर्वादयो वुद्धि प्रयत्नान्तापरादय –गुणा प्रोक्ता --की पूर्ति न होती और यह सब लक्षण--९ द्रव्यो मे ही रहते।

"खादीन्यात्मा मान कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रह।

और सृष्टि के अनत द्रव्यो का जिन्हे औषधि मे द्रव्य के रूप मे प्रयोग करना पडता उनमे आधान नही होता अत सर्व द्रव्य समूह के लिये चरक ने द्रव्य की परिभाषा विशाल की और गुण का व कर्म का पृथक् अस्तित्व माना यथा —

यत्राश्रिता कर्म गुणा कारण समवायि यत्।
तद्रव्य–समवायी तु निश्चेष्ट कारण गुण ।।

इस परिभापा मे द्रव्य की परिभाषा विशाल हो गई और उसके आश्रयभूत कर्मगुण का भी क्षेत्र विशाल हो गया। वैशेषिक प्रधान चरक को–सर्वद्रव्य पाच भौतिकम्–मानने को वाध्य होना पडा जो साख्य की विचारधारा का एक महान उत्पादन है। और इस द्रव्य लक्षण के वाद द्रव्य को त्रिविध भेद करके औपधिभूत द्रव्य के अर्थ मे व्यवहृत किया। यथा —

किंचिद्दोषप्रशमन किंचिद्धातु प्रदूषणम्।
स्वस्थवृत्तौ मत किंचित्त्रिविध द्रव्यमुच्यते ।।
तत्पुनस्त्रिविध प्रोक्त जगमौद्भिदपार्थिवम् ।।

करना पडा। क्योकि आयुर्वेद मे द्रव्य यदि नव ही रहते तो चिकित्सासौकर्य न हो पाता यहाँतक तो गुण के विपय मे कठिनाई वोध न हुई। किन्तु इस व्याकरण मे एक नई उलझन सामने आई वह थी नव द्रव्यो के गुण का द्रव्य व

शरीर मे प्रयोग और कर्मोत्पत्ति द्वारा धातुसाम्य। यहाँ पर इसे हल करने के लिए चरक को शारीर स्थान प्रथमाध्याय मे इनके गुणो को स्पष्ट करना पडा –

महाभूतानि ख वायुरग्नि राप क्षितिस्तथा।
शव्द स्पर्शश्च रूप च रसोगंधश्च तद्‌गुणाः।
तेषामेक गुण पूर्वो गुणवृद्धि परे परे।
पूर्व पूर्वगुणश्चैव क्रमशो गुणिषु स्मृत ॥

इनके होने के वाद भी जव गुण की परिभाषा मे काम न चला तो रस वैशेषिक के और वौद्ध दर्शन के अन्यो के लक्षणो को लेकर आगे वढने की कोशिश हुई और गुण की परिभाषा कुछ लक्षणो के सयुक्त समवाय को मानना पडा। यथा –

विश्व लक्षणा गुणा। र० वै० शै० पि०
लक्षण कूटोगुण। वौद्ध

इसको मानकर चलने पर लक्षणावली विशिष्ट सन्निकर्षात्मक गुण परिभाषा ने चरक को अन्यविचार करने का अवसर दिया और महाभूतो के असाधारण लक्षणो को गुणार्थ मे लिया गया –

खरद्रवचलोष्णत्व भूजलानिलतेजसाम्।
आकाशस्याप्रतीघातो दृष्ट लिङ्गं यथाक्रमम्।
लघु गुरु स्तयास्निग्धो रूक्ष स्तीक्ष्ण इति क्रमात्।
नभोभूवारि वाताना वह्ने रेतेगुणाः स्मृता। भा० व०

अत शव्द स्पर्श रूप रस गध और सतोप होनेपर भावमिश्र ने भी कहा कि साथ मे खरत्व द्रवत्व-चलत्व–उष्णत्व और अप्रतिघात या असघात लघु–गुरु–स्निग्ध–रूक्ष-तीक्ष्ण–यह लक्षण या चिह्न भी गुण की श्रेणी मे आयें।

द्रव्यो के भौतिक गुण–लक्षण या मूर्त्त गुण

प्रकृति ने हर एक द्रव्य को भिन्न प्रकार का वनाया है। जिस प्राकृतिक स्वरूप और लक्षण के आधार पर उन्हे एक दूसरे से पृथक किया जा सकता है उन्हे ही उस द्रव्य का परिचय मूलक, भिन्नतासूचक या विशेष लक्षण की सज्ञा दी जाती है। यह सज्ञाये गुण वोधक होती है क्योकि प्रत्येक द्रव्य पाचभौतिक होकर सगठनात्मक मूर्त स्वरूप पाते है अत उनमे मूर्त्तगुण होना ही चाहिए।

यह हो सकता है कि एक द्रव्य दूसरे मे मिलता जुलता हो किन्तु फिर भी उनमे एकदम साम्यता नही होती। द्रव्य सव पाच भौतिक है यह सर्वविदित है किन्तु उनके भौतिक गुणो की उपलब्धि पच ज्ञानेन्द्रियो से होती है और यही पच ज्ञानेन्द्रिय इन द्रव्यो के लक्षणो को पचविध ज्ञान के भावो के द्वारा उनकी विशेषता द्योतित करती है। इनको पचेन्द्रियार्थ "रूप, रस, गध, स्पर्श, शव्द" कहते है। द्रव्यो की–भिन्नता द्योतित करने मे इनकी विशेषता ज्ञात करते है प्रत्येक द्रव्य मे कोई न कोई स्वाद होता है, गध होती है, उसकी आकृति और उनका स्पर्श होता है और यह–भिन्न भिन्न होते है। आकार–प्रकार–वर्ण–स्वाद–गध–भार यह एक एक द्रव्य का उनके विशेष अर्थो के आधार पर उनकी

पृथकता सूचित करते हैं। आकार एकसा दिखाई पडने पर भी कुछ भिन्नता होगी–गंध एक प्रकार की होने पर भी मात्रा भिन्न होगी–स्वाद एक ही होने पर भी कम या अधिक होगी–इनके आधार पर द्रव्य के भौतिक लक्षणो को एक से दूसरे के विभेद दर्शनार्थ प्रयुक्त करते है।

अत. यह सर्व तत्र सिद्धान्त है कि जो दो पदार्थ लक्षणो द्वारा भिन्न दृष्टि-गोचर होते हैं उन दोनो का जातिगत स्वरूप, सयोगज उपादान या सगठन और गुण भी एक दूसरे से भिन्न होते है। इसको भारतीय दार्शनिक भौतिक गुणो के [1]उत्कर्षापकर्ष द्वारा ही होना मानते है। इस आधार पर द्रव्यो को भौतिक सगठन और उनके सयोगज गुणो के आधार पर पाच प्रधान वर्गो मे विभक्त करते हैं और यह विभक्ति सगठन के उत्कर्ष या आधिक्य पर ही निर्धारित है। यथा–पार्थिव द्रव्य, आप्यद्रव्य, तैजस द्रव्य, वायव्य द्रव्य और आकाशीय द्रव्य।

इस प्रकार की पचविध विभक्ति मे जो लक्षण होते है वे एक वर्ग के द्रव्य मे भी न्यूनाधिक परिवर्तित होते हैं अत एक जातीय द्रव्य मे भी जातिगत स्वरूप के साधनो द्वारा इनके वाह्याभ्यन्तरिक विशेष गुण और लक्षण होते है और यह एक जातीय द्रव्यो मे भी पार्थक्य सूचक वनते हैं।

गुण और उनका श्रेणीविभाजन

आचार्य प्रशस्त पाद ने गुण पदार्थ निरूपण करते समय सामान्य प्रकरण मे इन गुणो का श्रेणी विभाजन किया है और कहा है –

रूपरसगन्धस्पर्श परत्वापरत्व गुरुत्वद्रवत्व स्नेहवेगा मूर्तगुणा ।

अर्थात्–मूर्त्तगुण जो द्रव्यो मे मिलते है वे रूप रस गध स्पर्श परत्व, अपरत्व गुरुत्व द्रवत्व, स्नेह व वेग ये मूर्त्तगुण है।

अमूर्त्तगुणो के लिए :—

बुद्धि सुख दु ख ईच्छाद्वेष प्रयत्न धर्माधर्म भावनाशब्द अमूर्त्तगुणा ।

अर्थात्–वुद्धि–मुख–दु ख–इच्छा, द्वेष, प्रयत्न धर्माधर्म, भावना शब्द ये अमूर्त्तगुण है।

मूर्त्तामूर्त्तगुण के रूप मे–सख्या, परिमाण, पृथकत्व–सयोग विभागा उभयगुणा । इनको वतलाया है।

पुन इन गुणो का सामान्य व विशेष भेद से दो भेद किये हैं। यथा—

विशेषगुण—रूप, रस, गध, स्पर्श, स्नेहसांसिद्धिक, द्रवत्व, वुद्धि--सुख दु ख इच्छा द्वेष, प्रयत्न धर्म–अधर्म–भावना शब्द ये विशेष गुण है।

सामान्यगुण—सख्या परिमाण, पृथकत्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्ववेगा यह सामान्य गुण है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि गुण पदार्थ की व्याख्या मे वे लक्षण जो मूर्त्त मे मिलते है और वे जो अमूर्त्त मे मिलते हैं पृथक् पृथक् लक्षणवाले होते

[1]–उत्कर्षत्व मभिव्यंजको भवति।

है। द्रव्याश्रित जो बीस गुण है उसमे भी बहुत से मूर्त द्रव्यो मे पाये जाते है और बहुत से नही मिलते। साथही वैशेषिक के गुणो के अतिरिक्त, आयुर्वेद के गुण और कहा से आ गये यह भी एक प्रश्न है जिसका व्याकरण आगे करेगे।

गुणा शरीरे गुणिना निर्दिष्टाश्चिह्नमेव च।
अर्था शब्दादयो ज्ञेया गोचरा विषया गुणा ॥ च शा. १।३१

ज्ञात होता है पतजलि भगवान चरक का प्रतिसस्कार करते समय इस निष्कर्ष पर पहुचे कि यदि चिह्न या लक्षणो को गुण नही मानते तो भौतिक सगठन से युक्त शरीर मे अन्य कार्मुक गुणो का प्रतिपादन कष्टप्रद होगा। अत गुणियो के चिन्ह ही गुण रूप मे निर्दिष्ट हुवे। इसका प्रधान कारण यह था कि चिकित्सा-शास्त्र मे द्रव्योपयोग द्वारा शरीर की रुग्णता की चिकित्सा करनी थी और केवल सत्वरजतम मात्रा त्रिगुण की गुण वृत्ति मे शरीरके रोगहारक द्रव्य गुणो पर प्रभाव न पडता अत कहना पडा--

रजस्तमोभ्या युक्तस्य सयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्या निराकृताभ्या तु सत्ववृद्धया निवर्तते ॥
अत्र कर्म फल चात्र ज्ञान चात्र प्रतिष्ठितम्।
अत्र मोह सुख दु ख, जीवित मरण स्वता ॥
एव यो वेद तत्वेन स वेद प्रलयोदयौ।
पारपर्य चिकित्सा च ज्ञातव्य यच्च किंचन। च शा अ १

अत शरीर के दोपधातु मल मूल द्रव्य की विकृति मे द्रव्यौपधि द्वारा धातुसाम्य क्रिया को प्रधानता देने के लिये द्रव्य के गुणो की बहुविधता का सग्रह करके चरक ने कहा—

सार्था गुर्वादयो बुद्धि प्रयत्नान्ता परादय। गुणा प्रोक्ता ॥
(च सू अ १-४९)

इस प्रकार सामूहिक रूप मे गुणो की ४१ सख्या लेकर ही आगे बढना निश्चित हुआ। यथा—–

इन्द्रियार्थ–शब्द–स्पर्श-रूप–रस–गध

गुर्वादयो—गुरू-लघु, शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, मन्द-तीक्ष्ण, स्थिर-सर, मृदु-कठिन, विशद-पिच्छिल, श्लक्षण–खर, स्थूल–सूक्ष्म, सान्द्र द्रव।

बुद्धि—ज्ञानम्–स्मृतिर्चुचन, घृति, अहकारादि, बुद्धि विशेप का ग्रहण।

प्रयत्नान्त—इच्छा, द्वेप, सुख दु ख, प्रयत्न

परादय–पर–अपरत्व–युक्ति–सख्या–सयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, सस्कार, अभ्यास।

इस प्रकार ५+२०+१+५+१०=४१ गुणो के समाहार को लेकर शारीरशास्त्र मे चलना पडा।

किन्तु कणाद ने तो– केवल १७ ही गुण माने थे। यथा—

रूपरसगंधस्पर्शा संख्या परिमाणानि, पृथक्त्वं सयोगविभागौ, परत्वा-परत्वे बुद्धय सुख दु खेच्छा-द्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणा । वै द १-१-६
रस वैशेपिक कार नागार्जुन ने-कर्म गुणो मे गुर्वादि वीस के स्थान पर दश ही माना है ।

शीतोष्ण-स्निग्ध-रूक्ष-विशद-पिच्छिल-गुरु-लघु-मृदु-तीक्ष्ण-गुणा कर्मण्या
(र वै अ ३ सू १११)
औपधियो मे इन गुणो को विशेप रूप मे मानकर दश कर्मण्य गुण नागार्जुन ने माना और द्रव्य के गुणो के लिये चरक को भी इनका निर्देशन करना पडा । यथा—
तस्य (द्रव्यस्य) गुणा शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ता
(च सू अ २६)
अत सूत्रस्थान अध्याय प्रथम के वाद गुण को सव द्रव्यो के गुण के नाम से कहना पडा तो चरक को सूझा और उसे उपर्युक्त गुणो को जो विशतिगुणो को दश के स्थान पर २० को कहना ही पडा कि ये कार्मुक गुण है । इसमे पूर्व २५ अध्याय मे वीस गुणो को उन्हे आहार द्रव्य के गुणो के नाम पर कहना पडा था । यथा—
स आहार (विंशति गुणः) । च सू अ. २५ । इसमे पाचभौतिक औपधि द्रव्यो के द्वारा शरीर मे विभिन्न कार्मुक गुणो के रूप मे पाये जाने वाले विंशतिगुणो को द्रव्य का गुण सुधार कर २६ वे अध्याय मे लिखना पडा था साथ ही द्विविध द्रव्य का भेद भी करना पडा । यथा—

सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकमस्मिन्नर्थे-तच्चेतनावदचेतन च
तस्य गुणा शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ताः ॥

और इसके वाद इन्ही विशतिगुणो को पाच भौतिक द्रव्य गुणो मे पार्थिवाप्यादि करके विभाग करना पडा । अचेतन द्रव्यो से ही सवध रखता था । इस प्रकार पाच भौतिक सृष्टि मे त्रिगुण से ४१ गुणो तक की पराकाष्ठा तक पहुचने के वाद कई चिकित्सको को गुण सख्या मे कमी ज्ञात हुई और उन्होने- व्यवायी-विकाशी-सुगध-दुर्गन्ध-आशुकारी-प्रसन्न, शुचि-विमल-विस्र-अच्छ इन सज्ञाओ का और समावेश किया । और आगे ये और भी वढ सकेगे । जो अनियत सख्यावादी है वे इन वीस या ४१ सख्याओ को उपलक्षण मान्य माना था । उनका कथन है कि चिन्ह समवाय ही यदि गुण है तो गुण असख्य हो सकेगे । अत शिवदास को यह वात ठीक न जची । डल्हण ने भी नियत सख्या पर प्रहार किया और कहा कि यह गुण आविष्कृततम है और भी सख्याये हो सकती है ।

आधुनिक कुछ विद्वान गुणो को भौतिक गुण (Physical Property) ही मानते हैं और इन्हे औपध कर्म (Pharmacological) कहते है । सुश्रुत ने भी इनको कर्मानुमेय ही माना है ।

कर्मभिस्त्वनुमीयते नाना द्रव्याश्रया गुणा । सु. सू. अ ४६

किन्तु यह वीस सव भौतिक गुण है यह मानना समव नही है। जहा तक औषधि कर्म कहना है वहाँ तक तो ठीक है किन्तु केवल भौतिक गुण कहना आयुर्वेद मे नही खपता। यह भौतिक और कार्मुक द्विविध होते है। यथा–उष्ण क्रिया से शरीर मे गर्मी उत्पन्न करना तथा उष्णजलवत्–उष्णता का स्पर्श मे ज्ञान होना दोनो प्रकार के अर्थ निकलते है।

अस्तु गुणो का त्रिगुणात्मक स्वरूप जो प्रकृति गुण के साथ द्रव्य मे आया वह वहुविध उन्मुख होकर इस प्रकार शारीरिक कार्मुक गुणो के रूप मे प्रतिफलित हुआ। इसमे स्पष्ट यो समझना चाहिए कि जैसे पचमहाभूत से त्रिदोप की उत्पत्ति हुई और मूर्त भूतगुण से शारीरिक द्रव्य के रूप मे यह वदल गये ऐसे ही असख्य औपवि द्रव्यो के मूर्त गुणो से उनका स्वरूप शरीर के कार्मुक रूप मे वदलता गया। ये द्रव्य मे और शरीर मे विशेप रूप से मिलते हैं। इन को विशति गुण विवरण मे स्पष्ट भौतिकमूर्त गुण व कार्मुक गुण के रूप मे लिखा गया है।

द्रव्यो में गुण परिज्ञान

उत्कर्ष के आधार पर द्रव्यो की सज्ञा पचविध होती है। उन पाचो मे से किस मे क्या गुण होते हैं विचारणीय है। अत निम्नलिखित विचार शास्त्रीय है।

पार्थिवम्–	**सुश्रुत**	**चरक**	
तत्र–	स्थूल	गुरु	(१) **गंधबहुलमीषकषायप्रायशो**
	सान्द्र	खर	**मधुर मितिपार्थिवम्** । सु०
	मद	कठिन	(२) **गध गुण बहुलानि पार्थिवानि च** । च०
	स्थिर	मद	खर (च०)
	गुरु	स्थिर	
	कठिन	विशद	
		सान्द्र	
		स्थूल	
आप्यम्–	शीत	द्रव	
	स्तिमित	स्निग्ध	(१) **रसबहुलमीषकषायाम्ल लवणं**
	स्निग्ध	स्निग्व	**मधुरप्रायमाप्यम्** । सु ।
	मद	मद	(२) **रसगुणबहुलानि आप्यानि** ।च.
	गुरु	मृदु	सु–गुरु सार सान्द्र

	सुश्रुत	चरक	
आप्यम्	सर	पिच्छिल च–द्रव	
	सान्द्र		
	मृदु		
	पिच्छिलम्		
तैजस–	उष्ण	उष्ण	(१) रूपबहुलमीषदम्लवणं कटुरस प्रायं विशेषतश्चोर्ध्वगतिस्वभावम्
	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण	
	सूक्ष्म	सूक्ष्म	(२) रूपगुणबहुलानि
	रूक्ष	रूक्ष	
	खर	लघु	
	लघु	विशद	
	विशद		
वायव्यम्–	सूक्ष्म	लघु	
	रूक्ष	शीत	(१) स्पर्शबहुल मीषतिक्तम्
	खर	रूक्ष	
	शिशिर	खर	
	लघु	विशद	(२) स्पर्शगुण बहुलानि
	विशदम्	सूक्ष्म	
नाभस–	श्लक्ष्ण	मृदु	
	सूक्ष्म	लघु	(१) अव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयं
	मृदु	सूक्ष्म	
	व्यवायि	श्लक्ष्ण	(२) शब्दगुण बहुलानि
	विशद		च०–लघु
	विविक्तम्		विशद–सु०
			विविक्त–सु०

७: अन्यान्य भौतिक गुण और उनके परिचायक साधन

पूर्वोक्त पचविध ज्ञान (शब्द–स्पर्श-रूप-रस–गध) के अतिरिक्त भी बहुत से साधन है जिनको लक्षणार्थ ग्रहण करके द्रव्य के स्वरूप–या परिचयार्थ उपयोग कर सकते हैं। यथा–द्रव्य का–वाष्पीभवन, ज्वलनशीलता–द्रवता सान्द्रत्व (जमना), क्लेदत्व (क्लिन्नहोना–पसीजना), शुष्कता (सूखना), विलीनता (किसी द्रव्य से मिलकर विलीन होना), परिवर्तन (द्रव्यो वा वायु–जल–अग्नि–सयोग से खिल जाना) या स्फटिकीकरण (दानेदार आकार ग्रहण करना) इत्यादि।

रूप—जब हम किसी वस्तु का परिचय प्राप्त करना चाहते है तो सर्वप्रथम उस द्रव्य के आकार प्रकार को देखना पडता है। इसमे उसकी आकृति किस प्रकार की है ज्ञान करते है। किसीका आकार गोल, किसी का लम्बा, चतुष्कोण, टकोण, त्रिकोणकार–अर्धवृत्त–शक्वाकार–लट्वाकार इत्यादि होता

है। इसी रूप के अंतर्गत उसका वर्ण–आयाम–विस्तार–मोटाई को भी परिगणन करते हैं -शुष्क या आर्द्र है।

(१) वर्ण–श्वेत–कृष्ण, गौरपीत, हरित नील–रक्त–धूम्र–मेचक आदि (वर्ण Colour) या मिश्रित वर्ण प्रथम उसे देखते हैं।

(२) आकार–प्रकार–(Shape) इसमे उसकी आकृति किस प्रकार की है उसे नोट करते हैं–फल यदि है तो गोल होगा–लम्बा–मोटा –छोटा–बड़ा कैसा है। पश्चात् उसकी लम्बाई, मोटाई, चौड़ाई मे भी पार्थक्य होगा–यथा–विभीतक का–मृगलिण्ड का–हरिण की मेंगनी की तरह।

(३) भार–(Weight) प्रत्येक द्रव्य का भार एक निश्चित होता है जिन्हे कर्ष–पल छटाक–सेर मे जानते है। आमलकी–हरीतकी– कर्ष भार से कम के न होने से कर्ष फल कहलाते है।

स्पर्श-द्रव्यो का स्पर्श भी भिन्न भिन्न लक्षणो को बतलाता है। उसमे श्लक्षण–मृदु–रूक्ष-खर–कर्कश–शीत व उष्ण–सान्द्र, पिच्छिल, कठिन, स्पर्शानुमेय है।

(१) श्लक्षण–जो द्रव्य स्पर्श मे चिकना हो उसे श्लक्षण कहते है। यथा– शीशे–शृग–शख के निर्मित द्रव्य। आम के केले के ऊपर का छिलका–इत्यादि।

२ मृदु—जो स्पर्श मे अंगुलियो को कोमल प्रतीत हो उसे मृदु कहते हैं।

३. रूक्ष व खर—स्पर्श मे जो द्रव्य खुरदरे प्रतीत हो–जिस पर धारिया होती हैं–छोटे मोटे उभार होते है वह खुर खुरे या खर कहलाते है। यथा– चित्रक–पुष्करमूल–स्निग्ध के विपरीत लक्षण को रूक्ष कहते है जिनके ऊपर की खाल–फटी सी होती है उन्हे रूक्ष कहते है या ऊपर की त्वचा विषम– ऊची–नीची हो उन्हे भी रूक्ष कहते है।

कर्कश व परुष–जिन द्रव्यो के ऊपर तीक्ष्ण रोम हो उन्हे कर्कश कहते हैं। यह स्पर्श करने पर हाथ मे लगते हैं और सुखद् स्पर्श नही देते। इसको खर के बदले मे कर्कश सुश्रुत ने व परुष अष्टाग सग्रह ने प्रयोग किया है।

शीत व उष्ण–यह त्वचा की क्रिया द्वारा गर्म और शीतल प्रतीत होने से होते हैं।

सान्द्र–जो द्रव्य स्पर्श करने पर गीला प्रतीत हो–दबाने पर सरलता से अंगुलियो के बीच दब जाय उसे सान्द्र कहते हैं। यथा–घन–रसक्रिया–पाक– अवलेह–मोदक–निर्यास इत्यादि श्रीवेष्टक–गुग्गुलु–हीग इत्यादि। द्रव के विपरीत घन व कठिन भी कोई कोई सान्द्र शब्द के प्रयोग मे मानते हैं।

पिच्छिल–जो द्रव्य कम घन हो–दो अंगुलियो से स्पर्श करने मे–उनके सचालन मे चिपचिपे हो–उनमे तार सा बध जाता हो या दोनो अंगुलि चिपकती हो तो उन्हे पिच्छिल कहते हैं।

यथा–लिसोढा के फलका रस–घुले गोंद, घुला-गुगुल इत्यादि।

द्रव–जो जल की तरह बहने योग्य हो उसे द्रव कहते हैं। यथा–फलो के स्वरस।

स्फटिकीकरण–जो द्रव्य सूक्ष्म दानेदार आकार बनाते हो उन्हे स्फटिकाकार दानेदार या कणाकार कहते है। यह दाने कई प्रकार के होते है, भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्य का भिन्न-भिन्न कणाकार होता है।

कठिन–प्रत्येक द्रव्य जो शुष्क होने है वह काठिन्य का बोधक कहाते है किन्तु कुछ अधिक कठिन होते है कुछ कम–जो द्रव्य दवाने पर न दवे उन्हे कठिन कहते है। वहुत से द्रव्य ऊपर से तो कठिन होते है लेकिन अन्दर से कुछ कम। जो द्रव्य दवाने पर न दवें–उन्हे कठिन कहते हैं। वहुत से द्रव्य ऊपर से तो कठिन दिखाई पडते हैं किन्तु दवाने पर वे वडी सरलता से पिस जाते है उन्हे कठिन नहीं कहते जो दवाने पर किसी विकार को प्राप्त न हो उसे कठिन कहते है यथा–चंदन–पद्मकाष्ठ इत्यादि।

भगुर–जो द्रव्य हल्के हो व अगुलियो से दवाते ही टूट जाते है उन्हे भगुर कहते है। यथा–वशलोचन या खटिका, लाजा।

घन–सघातयुक्त पदार्थ घन कहलाते है।

घनः सान्द्र दृढ़ दार्ढ्यें विस्तारे मुद्गरेऽम्बुदे।
सघे मुस्ते घन मध्येनृत्यवाद्य भेदयो । मेदिनी।

गुरु व लघु–भारवान द्रव्यो मे जो अधिक भारी प्रतीत होते है उन्हे गुरु और जो हल्के प्रतीत होते हैं उन्हे लघु कहते हे।

स्निग्ध-जो द्रव्य स्पर्श मे चिकने हो किन्तु दो अगुलियो से वह दवाने पर उनमे तार न वधता हो साथ ही जो उत्ताप देकर पिघल जाते हो उन्हे स्निग्ध कहते है। यथा–घृत–मोम–मज्जा–वसा–तैल।

रस–प्रत्येक द्रव्य मे अपना एक निश्चित रस व स्वाद होता है। उसके द्वारा उसकी पहचान होती है। यह मधुर–अम्ल–लवण–कटु–तिक्त–कषाय के प्रकार के होते हैं।

गध–प्रत्येक द्रव्य मे कुछ न कुछ गध होती है यह गध किसी मे कम किसी मे अधिक होती है। किसी की गध सुगध, किसी की दुर्गंध–किसी की उग्र होता है।

स्वभाव–कई द्रव्य विशेष स्वभाव के होते है। कोई गर्मी पाकर–पिघल जाता है या जम जाता है। कोई गध अधिक छोडता है, कोई उडने लगता है। यह द्रव्य के अपने स्वभाव कहे जाते है। यथा–घृत–मोम–उष्णता पाकर पिघल जाते हैं। अडे का प्रोटीन जम जाता है कर्पूर–गध छोडता। पारद–सखिया कर्पूर–गर्मी पाकर उडने लगते है यह द्रव्यो के विशेष स्वभाव कहे जाते है– पारद–सखिया–सुगधित–द्रव्य–वाष्प रूप मे उडने लगते है। कोई शीघ्र ही जलने लगता है। कुछ द्रव्य वाहर हवा मे रखने पर फूल जाते है सफेद हो जाते है। यथा–टकण, तुत्थ–वशलोचन आदि।

घुलनशील—जो द्रव्य सरलता से जल मे घुल जाते है उन्हे घुलनशील कहते है।

शब्द—कुछ स्वाभाविक द्रव्य हिलाने पर उनमे शब्द होता है यथा—करज, शण इत्यादि ।

इस प्रकार द्रव्यो के भौतिक गुणो का ज्ञान देख कर स्पर्श कर स्वाद लेकर-सूंघकर और सामान्य स्वभावो को देखकर पहचानते है ।

इनमे प्रधान निम्न लिखित आग्लभाषा की सज्ञा मे द्योतित होते है —

गुरु Heavy	भार	भारीपन Gravitation	
लघु Light	हल्का	हल्कापन Lightness	
द्रव Liquid	पतला वहने योग्य सान्द्र Liquidity	घन Samiliquid	
स्थिर Dense	गाढा	—	Static
कठिन Hard	सख्त	—	Hardness
रूक्ष Dryness	रूखा	—	Friction
खर Roughness	—	खुरदरा	,,
मृदु Softness	—	मुलायम	
पिच्छिल Slimy	—	चिपचिपा Pasty	
स्निग्ध Unctuous	—	चिकना Viscosity	
शीत Cold	—	ठडा	
उष्ण Hot	—	गर्म	
श्लक्ष्ण Smooth	—	चिकना किन्तु कठिन Smoothness	
भगुर Britle	—	टूटनेवाला	
घुलनशील Soleble	—	घुलनेवाला	
उडनशील Volatile	—	साधारण गर्मी से उडनेवाला	
कण्वीकार Granular	—	दानेदार	
कर्कश	—	करकरा	
शुष्क Dry	—	खुश्क	
आर्द्र Green	—	गीला	
स्थूल Bulkiness	—	मोटा	

सामान्य रूप से—भौतिक सगठनो मे बने द्रव्यो मे ऊपर के गुण होते है किन्तु महाभूतो के असाधारण गुण निम्न होते है । भाव प्रकाश के मत से

तत्व—	नभ	भू	वारि	वायु	अग्नि
गुण—	लघु	गुरु	स्निग्ध	रूक्ष	तीक्ष्ण

लघुर्गुरुस्तथास्निग्धो रूक्ष स्तीक्ष्ण इति क्रमात्
नभो भू वारि वातानां वह्नेरेते गुणा स्मृताः ॥ (भा पू.)

अत प्रत्येक पाच भौतिक द्रव्य मे यह असाधारण गुण प्राप्त होते हैं । कोई कम, कोई अधिक । अत जिस गुण की अधिक अनुभूति भौतिक सगठन के आधार पर होती है उन्हे तदनुकूल ही विशिष्ठ गुण बोधक सज्ञा प्राप्त होती

है। प्रत्येक द्रव्य मात्राओं पर हल्का–भारी–चिकना–रूखा–और तेज या तीक्ष्ण होता है।

यह सब गुण भौतिक द्रव्यों में इनके मूर्त पदार्थों में पाये जाते हैं इन्हें ही अतः भौतिक गुण या मूर्त गुण कहते हैं।

कर्मण्यानुरूप गुण

कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नानाद्रव्याश्रयाः गुणा

आयुर्वेद के वर्णित २० गुण द्रव्यों के प्रयोग करने पर कर्म के रूप में प्रतीत होते हैं। यह निम्न हैं –

१.	गुरु	लघु	६	सान्द्र	द्रव
२	मंद	तीक्ष्ण	७	कठिन	मृदु
३.	हिम	उष्ण	८	स्थिरः	सर
४	स्निग्ध	रूक्ष	९.	स्थूल	सूक्ष्म
५.	श्लक्ष्ण	खर	१०	पिच्छिल	विशद

गुणवाचक शब्दों का प्रयोग सर्वत्र समान नही होता

बीस गुणों का उल्लेख आयुर्वेद मे प्रधान रूप से मिलता है। इनका व्यवहार किस रूप मे होता है और द्रव्यो मे ये किस प्रकार पाये जाते है यह एक विचारणीय विषय है। क्योंकि गुण शब्द का प्रयोग केवल पारिभाषिक गुण शब्द के रूप मे ही सदा नही होता यथा —

१–समवायी तु निश्चेष्ट कारण गुण । च०सू० १

२–द्रव्याश्रय्य–गुणवान्–संयोग विभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्। (वै० द० अ० १, आ० १ सू० १६)

३–अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणा । कारिका

अर्थात्–जो द्रव्य मे रहने वाला (आश्रित रूप से)हो, (निष्क्रिय हो अथवा चेष्टादि कर्म से भिन्न) गुण रहित हो और कर्मादि की उत्पत्ति मे कारण हो उसे गुण कहते है। ऊपर के लक्षण मे स्पष्ट है कि गुण किसी एक लक्षण मे वह नही होता वह रस–वीर्य-विपाक प्रभाव की तरह एक लक्षण मे समाश्रित नही है। वह द्रव्य मे रहने वाला, चेष्टारहित और क्रिया की उत्पत्ति मे कारण होता है। जैसे रस रसनेन्द्रियग्राह्य है -वीर्य कर्म का लक्षण है- विपाक परिणाम का लक्षण है इसी प्रकार गुण किसी एक मे समाश्रित नही है। क्योकि शीत उष्ण यह स्पर्शनेन्द्रियग्राह्य है स्निग्ध रूक्ष यह चक्षुग्राह्य स्पर्शनेन्द्रिय ग्राह्य है, मन्द-सहायि-कर्मानुमेय है अत गुण अपना विशेष लक्षण रखता है। अत भदन्त नागार्जुनने इसकी परिभाषा मे विश्वलक्षणा गुणा अर्थात् भिन्न-भिन्न लक्षण वाला गुण होता है ऐसा कहा और यह ठीक भी है।

सार्था गुर्वादयो बुद्धि-प्रयत्नान्ता परादय गुणा प्रोक्ता च०सू०अ०–१ इन्द्रियार्थ-रूप-रस-शब्द-स्पर्श-गंध-वह भी गुण माना है और आत्मगुण इच्छाद्वेष-सुखदु ख प्रयत्न-चेतना भी है। परादि मे परत्व-अपरत्व-युक्ति-संख्या-सयोग-

विभाग-पृथकत्व परिमाण-सस्कार अभ्यास इनको भी चरक ने गुण माना है। मनोर्थ मे-चिन्त्य-विचार्य-उह्यम् को भी जो कर्म है गुण माना है। कणाद स्वय भी गुण को वीस सख्या से अधिक मानते है —

रूप रस-गध-स्पर्शा, संख्या परिमाणानि पृथक्त्व-सयोग विभागो-
परत्वापरत्वे वुद्धय सुख-दु खे-इच्छा द्वेषो-प्रयत्नाश्चगुणा ॥

त्र० द० १-१-६

इस प्रकार गुणो की सख्या धीरे धीरे अधिक होती जाती है अत यदि एक अर्थ मात्र मे इसकी परिभाषा करे तो गुण शब्द की विशेषता नष्ट हो जाती है। अत विश्व लक्षणा गुणा ही ठीक लक्षण है। यथा —

सुश्रुत द्रव्यो मे व्यवायी विकाशी वीस गुणो मे पृथक् मानते है।

चरक ने भी अतिरिक्त '--स्वादुशीत मृदु स्निग्ध वहलश्लक्ष्ण पिच्छिलम् गुरु मद प्रसन्न च गव्य दश गुण पय ।

कषाय कफ पित्तघ्न किंचित्तिक्त स रुचिप्रदम्। हृद्यं सुगधि विशदं, लवली फल मुच्यते। सुश्रुत

पुनः-पित्त सस्नेह तीक्ष्णोष्णं लघु विस्र सर द्रवम्--सुश्रुत। शीत शुचि शिवमृष्ट विमल लघु षड्गुणम् प्रकृत्यादिव्यमुदक भ्रष्ट पाकमपेक्षते। द्रव्यादि सु०

तो वीस के अतिरिक्त--व्यवायी-विकाशी, आशुकारि-प्रसन्न शुचि-सुगध दुर्गंध-विस्र आदि गुणवाचक शब्द कई नये दिखाई पडते है ऐसे और भी हो सकते है। अत द्रव्यमे आश्रित, निश्चेष्ट-कारण का गुण मानना इस लक्षण पर वीस के वदले सैकडो गुण वन जाते हैं। हेमाद्रि ने इसे कई गुणो मे अतर्भूत करके उनका समाधान करने की चेष्टा की है किन्तु वह समीचीन नही दृष्टिगोचर होता।

इन कठिनाइयो के कारण ही नागार्जुन ने गुणो का विभाजन इस प्रकार किया है--यथा:—

कर्मण्य गुणा--शीत-उष्ण-रूक्ष-विशद-पिच्छिल-गुरु-लघु--मृदु--तीक्ष्ण--गुणा कर्मण्या (र० वै० अ० उ० सू० १११)

यही चिकित्सा कर्म मे विशेष योग्यता रखने वाले है अत इनका एक वर्गीकरण कर डाला।

चरक और सुश्रुत ने वीसगुणो को औषधि द्रव्यो मे माना। अत इनके लक्षणो को छोडकर केवल कर्मण्य गुण हम ११ माने तो शेष ९ को भी तो कर्म के रूप मे ही पाते है उन्हे क्यो न कर्मण्य गुण माने। क्योकि गुण कर्मानुमेय ही सुश्रुत मानते है —

कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नाना द्रव्याश्रया गुणा ।

और हरएक गुण की कर्म मे किस प्रकार की शक्ति प्रकट होती है इसका पृथक् पृथक् विवरण भी दिया है। यथा—

गुरु-लघु-शीत-उष्ण इत्यादि

कर्म ज्ञान —शरीर मे प्रयोग करने पर द्रव्य किस प्रकार अपना कार्य करते है इसका यथालब्ध साहित्य और क्रियात्मक विवरण जो प्राचीन व

आधुनिक साहित्य मे मिलता है। उल्लेख किया गया है। किन्तु इनको जीवित प्राणियो पर प्रयोग करके स्वत. देखना शेष है : साधन की कमी होने से इन्हे प्रत्यक्ष नही किया जा सका है। उनका ज्ञान यथावसर आगे दिया जायगा।

गुण—गुण की परिभाषा से स्पष्ट है कि गुर्वादि बीस गुण द्रव्य मे आश्रित होकर निष्क्रिय रूप से रहते है। उनमे स्वय कर्तृत्व नही होता है। यह वमन-विरेचनादि कर्मों के साधक होते हैं। इस प्रकार कर्ता तो द्रव्य ही माना जाता है किन्तु द्रव्याश्रित होकर उपकरण के रूप मे अप्रधान और गौण रूप मे यह कार्मुक माने जाते है। अत. अन्याश्रित होने और उपकरण रूप होने से इनकी सज्ञा गुण होती है।

गुण और आयुर्वेद इनका प्रयोजन—

चरक या सुश्रुत शरीर को इन्द्रिय—सत्व व आत्मा का सयोग रूप मानते हैं अत गुण के वर्णन मे वह केवल औषधि द्रव्याश्रित गुर्वादि बीस गुण ही नही होते बल्कि द्रव्यातिरिक्त इन्द्रियो के गुण पचक (इन्द्रिय ग्राह्य वैशेषिक गुण) तथा आत्मा के गुण बुद्धि-इच्छा-द्वेष प्रयत्न-सुख-दु ख को तथा शरीर के महाभूत व अन्य द्रव्यो के सामान्य दश गुणो को भी गुण की सख्या मे चरक परिगणित करते है यथा—

पर अपरत्व-युक्ति-सख्या-सयोग-विभाग-पृथकत्व-परिमाण-सस्कार-अभ्यास यह शरीर व शरीरेतर द्रव्यो मे सामान्य रूप मे मिलते हैं। गुर्वादि बीस गुणो का शरीरारम्भ पचमहाभूत शरीर तथा शरीर या प्रयुक्त होने वाले आहार और औषध द्रव्यो के साथ विशेष सबध होने से इनको शारीरगुण कहते है। द्रव्यगुण शास्त्र मे इन गुर्वादि बीस गुणो का तथा पाच इन्द्रियार्थो का अधिक विवेचन किया गया है। वैशेपिक दर्शन वालो ने केवल चौबीस गुण ही माने हैं यथा—

रूप, रस, गध, स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथकत्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, सस्कार, अदृष्ट और शब्द इत्यादि। इनमे भौतिक—मानसिक और आयुर्वेदोक्त गुणो का समावेश है। वैशेपिक दर्शन का उद्देश्य लोगो को पदार्थो का ज्ञान मात्र कराना था अत चौबीस ही गुण माने। परन्तु आयुर्वेद के पुजारियो का उद्देश्य इन पदार्थो के अतिरिक्त चिकित्सा सबधी गुणो को प्रकाश मे लाना भी था अत उन्होंने नाना द्रव्याश्रित गुणो को कर्मानुभव के रूप मे बताकर गुरु लघु आदि गुणो से युक्त द्रव्यो के कर्म को शरीर पर अनुभव करके लिखे है। साथ ही वैशेपिक विशेपता यह प्रतीत होती है कि उन्होंने किस गुण वाले द्रव्य मे कौन से महाभूतो का अधिक सगठन है इसको भी प्रतिपादित किया है। विशेष रूप मे गुर्वादि बीस गुणो को ही द्रव्याश्रित गुण मानकर द्रव्यगुण शास्त्र मे अधिक प्रयोग किया है। इनका वर्णन आगे दिया गया है। कुछ अन्य गुणो का भी उल्लेख किया गया दिखाई पडने मे उनका भी बीस गुणो के साथ ही सग्रह है।

विशेषता—गुण के लिये प्रयुक्त सज्ञाओ के अर्थ मे मत भेद होना स्वाभाविक है प्रथम यह सज्ञाये दर्शनो मे प्रयुक्त हुई हैं और वास्तव मे मूर्त्त द्रव्यो

के अर्थ मे लिखी गई थी। आयुर्वेद के पडितो ने इनका ही उपयोग शारीरिक क्रिया के अर्थ मे किया और कर्मानुमेय गुणो के अर्थ मे प्रयुक्त किया अत निर्जीव द्रव्यो के बदले प्रयुक्त सज्ञाये सजीव शरीर की क्रिया के रूप मे प्रयुक्त हुई अत अन्तर तो स्पष्ट हो जाता है। यथा —

मूर्त्त–गुरु शब्द–गुरुत्व जल भूम्यो पतनकर्म कारम्। प्र० पा० भा०

अर्थात् जल व भूमि महाभूत प्रधान द्रव्य भारी होते है इन्हे ऊपर छोडा जाय तो पृथ्वीपर गिरते है। अत भार से जो नीचे गिरे उसे गुरु कहते है।

कार्मुक गुण--यस्य द्रव्यस्य वृहण कर्मणि शक्ति स गुरु । हे०। गुरु . चिरकालात् पर्यात्।

अर्थात् जिस द्रव्य का शरीर मे जाने पर धातु वृहण की शक्ति होती है उसे गुरु कहते है। गुरु द्रव्य देर मे पचते है।

इन दोनो गुरु शब्दो के अर्थ मे बडा अन्तर है अत हमने इनको पृथक् पृथक् मूर्तगुण (Physical Property) और कार्मुक गुण (Pharmecological action) को पृथक् पृथक् लिखा है। जिस अर्थ मे अन्तर न आये इस विषय को और स्पष्ट करने निमित्त एक विवरणात्मक विचार पृथक् दिया गया है।

द्रव्यो के भौतिक गुण–लक्षण या मूर्त गुण

प्रकृति ने हर एक द्रव्य को भिन्न प्रकार का बनाया है। जिस प्राकृतिक स्वरूप और लक्षण के आधार पर उन्हे एक दूसरे से पृथक् किया जा सकता है इन्हे ही उस द्रव्य का परिचय मूलक, भिन्नतासूचक या विशेष लक्षण की सज्ञा दी जाती है। यह सज्ञाये गुण वोधक होती है क्योकि द्रव्य पाँचभौतिक होकर सगठनात्मक मूर्त स्वरूप पाते है अत उनमे मूर्त होना ही चाहिए।

यह हो सकता है कि एक द्रव्य दूसरे से मिलता जुलता है किन्तु फिर भी उनमे एकदम साम्यता नही होती। द्रव्य पाच भौतिक है यह सर्वविदित है। किन्तु उनके भौतिक गुणो की उपलब्धि पच ज्ञानेन्द्रियो से होती है और यही पच ज्ञानेन्द्रिय इन द्रव्यो के लक्षणो को पचविध ज्ञान के भावो के द्वारा उनकी विशेपता द्योतित करती है। इनको पचेन्द्रियार्थ रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द कहते हैं।

द्रव्यो की भिन्नता द्योतित करने मे इनकी विशेषता ज्ञात करते है। प्रत्येक द्रव्य मे कोई न कोई स्वाद होता है, गध होती है। उसकी आकृति और उसका स्पर्श होता है और यह भिन्न होते हैं। आकार–प्रकार–वर्ण–स्वाद–गध–भार यह एक एक द्रव्य को उनके विशेष अर्थो के आधार पर उनकी पृथकता सूचित करते है। आकार एकसा दिखाई पडने पर भी कुछ भिन्नता होगी–गध एक प्रकार की होने पर भी मात्रा भिन्न होगी–स्वाद एक ही होने पर भी कम या अधिक होगी–इनके आधार पर द्रव्य के भौतिक लक्षणो को एक से दूसरे के विभद दर्शनार्थ प्रयुक्त करते है।

अत यह सर्व तन्त्र सिद्वान्त है कि जो पदार्थ लक्षणो द्वारा भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं उन दोनो को जातिगत स्वरूप, सयोगज उपादान या सगठन और

गुण भी एक दूसरे से भिन्न होते है। इसको भारतीय दार्शनिक भौतिक गुणो को [1]उत्कर्षापकर्ष द्वारा ही होना मानते है। इस आधार पर द्रव्यो को भौतिक सगठन और उनके सयोगज गुणो के आधार पर पाच प्रधान वर्गो मे विभक्त करते है और यह विभक्ति भौतिक सगठन के उत्कर्ष या आधिक्य पर ही निर्धारित हैं यथा– पार्थिव द्रव्य, आप्य द्रव्य, तैजस द्रव्य, वायव्य द्रव्य और आकाशीय द्रव्य।

इस प्रकार की पचविध विभक्ति मे जो लक्षण होते है वे एक वर्ग के द्रव्य मे भी न्यूनाधिक परिवर्तित होते है अत एक जातीय द्रव्य मे भी जातिगत स्वरूप के साधनो द्वारा इनके बाह्याभ्यन्तरिक विषेश गुण और लक्षण होते है और यही एक जातीय द्रव्यो मे भी पार्थक्य सूचक बनते हैं।

गुण और उनका श्रेणी विभाजन

आचार्य प्रशस्तपादने गुण पदार्थ निरूपण करते समय साधर्म्य प्रकरण मे इन गुणो का श्रेणी विभाजन किया है और कहा है—

रूप रस गन्ध स्पर्श परत्वापरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह वेगामूर्तगुणाः

अर्थात्—मूर्तगुण जो द्रव्यो मे मिलते है वे रूप रम गध स्पर्श।

परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह व योग यह मूर्तगुण है अमूर्तगुणो के लिए—

बुद्धि सुख दु ख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्माधर्म भावना शव्द-अमूर्तगुणाः।

अर्थात्— बुद्धि–सुख–दु ख–इच्छा–द्वेष–प्रयत्न धर्माधर्म भावना शब्द यह अमूर्तगुण हैं।

मूर्तामूर्त गुण के रूप मे–सख्या–परिमाण, पृथकत्व सयोग विभाग उभय गुणाः इनको बतलाया है।

पुन इन गुणो का सामान्य विशेष भेद से दो भेद किये है यथा–

विशेषगुण–रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सासिद्धिक, द्रवत्व, बुद्धि, सुख दु ख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न धर्म–अधर्म-भावना शब्द ये विशेष गुण है।

सामान्य गुण—सख्या, परिमाण, पृथकत्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्व वेगा यह सामान्य गुण है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि गुण पदार्थ की व्याख्या मे वे लक्षण जो मूर्त मे मिलते है और वे जो अमूर्त मे मिलते हैं पृथक् पृथक् लक्षण वाले होते हैं। और द्रव्याश्रित जो बीस गुण है उनमे भी बहुत से मूर्तद्रव्यो मे पाये जाते है और बहुत से नही मिलते। साथ ही वैशेषिक के गुणो के अतिरिक्त आयुर्वेद के गुण और कहा से आ गये यह भी एक प्रश्न है जिनका व्याकरण आगे करेगे।

गुण के स्थान

गुण की परिभाषा से स्पष्ट विदित है कि गुण का प्राकटच तदाश्रय भूत द्रव्य का ही कर्म होता है। गुण के विषय मे इतना ही विशेष जानना उचित है

१–उत्कर्षस्त्वभिव्यजको भवति।

कि गुण, कर्म की उत्पत्ति मे कारण भूत होता है। गुण गुण मे नही होता वल्कि द्रव्याश्रित होता है अत द्रव्याश्रित रसादि के गुणो के गुण को वास्तव मे तदाश्रित द्रव्य का गुण समझना चाहिए। कर्म भी गुण मे नही रहते वस्तुत वे गुणयुक्त द्रव्य के प्रयोग से शरीर मे क्रिया के रूप मे प्रकट होते है अत गुण से कर्म व गुण के आश्रित भूत द्रव्य का ही गुण समझने हैं। साथ ही तत्तदगुण युक्त द्रव्यो को ही गुरु या लघु कहकर व्यक्त किया जाता है। अत गुणो से कर्म की उत्पत्ति का इतना ही तात्पर्य समझना चाहिए की वे शरीर के धातु–दोष व मलो मे जाकर स्वसमान गुणान्तर की उत्पत्ति करते है और कर्म को प्रेरित करते हैं। कर्म हमेशा अन्य द्रव्यो के परमाणु विभजन जन्य क्रिया के आधार पर उनके भौतिक सगठन की विभक्ति और तत्तद जातीय भौतिक परमाण सगठन जन्यवर्ग विभक्ति और सगृहीत होकर उनके गुणानुकूल कार्य करते हैं यह विशेष कर सयोग और विभाग की क्रिया के विना ही हो सकते। यही कारण है कि चरक ने—

गुणा गुणाश्रया नोक्तास्तस्माद्रसगुणान् भिषक्।
विद्याद्द्रव्य गुणान् – – – – – – – (च० सू० २६)

तात्पर्य यह है कि गुरु या लघु द्रव्य जब शरीर मे जाते हैं तो उनका सयोग शरीर के विभिन्न गुण युक्त पाचक रसो के साथ होता है। वे उनके सपर्क व अगो की क्रिया के द्वारा सूक्ष्म खण्ड और परमाणु मे विभक्त होते हैं। मधुर रस के परमाणु मधुर मे, अम्ल के अम्ल से, कटु के कटु से मिलते या विभक्त होते है। इनके आधार भूत उत्पादक महाभूत-पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु अपने अपने वर्ग से मिलते व पृथक होकर सयोग–विभाग की क्रिया करके–अपने भौतिक गुणो के आधार पर देर मे पाचन व शोषणकर रस रक्त की उत्पत्ति करते है।

इस उत्पत्ति मे द्रव्यो का अणुत्व रूप मे विभजन-पारस्परिक मिलन और अगो की प्रस्पन्दात्मक क्रियाओ द्वारा कथित-प्रचालित-प्रताडित होकर विशेष सगठन प्राप्त कर मधुराख्य भाव- अम्लाख्यभाव कटुकाख्यभाव मे परिवर्तित होना और शारीरोपयोगी होने के लिए रस स्वरूप धारण करना और तव वृंहण-लेखन-दीपन-पाचन-विरेचन वमनादि क्रिया करने के रूप मे व्यक्त होना होता है। साथ ही इसको शक्ति प्राप्ति-बलावान-क्षय या दौर्बल्य के रूप मे अभिव्यक्त करते है। पार्थिव आप्य द्रव्य गुरुत्व परमाणुगुण व वायव्य-तजस-नाभस द्रव्य लघुत्व गुण मे पारस्परिक प्रस्पंदन उद्वहन-पूरण-धारण-विवेकादि क्रिया के रूप मे शक्ति की उत्पत्ति करते हैं। इन शक्तियो के कार्मुक होने पर ही कर्मोत्पादक अभिव्यक्ति होती है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान के पडित इन द्रव्यो के आणविक विभजन और वैद्युतिक शक्ति की निष्पति एलेक्ट्रोन प्रोटो-नादि की आणविक शक्ति सम्पन्नता के आधार पर मानते है। यह सब तव ही निष्पन्न होते हैं जब कि द्रव्य सूक्ष्म परमाणु मे विभक्त और सयोग को प्राप्तकर शरीर पोषक शक्ति रूप वस्तु को परिवर्तित करके देते है। अत यह उचित ही है कि इन गुणो को द्रव्याश्रित गुण होने के कारण द्रव्य का गुण व कर्म

समझा जाय । इस रूपमे चरक की उक्ति ठीक ही है कि गुणा 'गुणाश्रयानोक्ता'-इत्यादि और इस रूप मे भौतिक सगठन से बने द्रव्यो के भौतिक-परमाणु शक्ति रूप मे अथवा भौतिक गुणो के रूप मे माना जाय । यह भौतिक सगठन एक द्रव्य की उत्पत्ति करते हैं अत इन्हे द्रव्याश्रित गुण ही मानना उचित ज्ञात होता है और इनकी उत्पत्ति का आधार भौतिक सगठन ही है । अत मूल रूप से गुणो की प्राप्ति भौतिक सगठन की सृष्टि पर निर्भर है और इस लिए है कि गुणो के साथ उनके भौतिक सगठन की उपलब्ध साहित्य सूची भी दी गई है ।

अत गुण की परिभाषा मे-गुण का लक्षण वैशेषिक दर्शन ने "द्रव्याश्रय्य-गुणवान सयोग विभागेष्वकारण मनपेक्ष इति गुण लक्षणम्" (वैशेषिक दर्शन) माना है । और इससे भी स्पष्ट लक्षण नागार्जुन ने रसवैशेषिक मे विश्वलक्षणा-गुणा के रूप मे और स्पष्ट लिखा है । इन रसो का स्पष्ट तात्पर्य है कि गुण जिन पदार्थो मे अनेकविध लक्षण मिलते है उन्हे गुण कहते है इन लक्षणो के समूह को जव आयुर्वेदज्ञो ने शारीरिक गुणो का रूप प्रदान किया तो कार्मुक गुण या कर्मानुमेयगुण यह सज्ञा दी और स्पष्ट कहा कि—

कर्मानुमेया गुणा । सु०

अर्थात्--कर्मो के द्वारा गुणो का अनुमान शरीर मे होता है इस अर्थ मे गुर्वादि २० गुणो को ही द्रव्यगुण शास्त्र मे विशेष रूप से गुणो द्वारा अभिव्यक्त किया है ।

८. गुरु गुण

परिभाषा--जिस द्रव्य के सेवन से पाक देर मे होता है । और जिसकी शक्ति बृहण कर्म की होती है उसे गुरु कहते है ।

गुण का ग्रहण--गुण का ग्रहण आयूर्वेद मे दो प्रकार का होता है । एक मूर्त्त गुण व दूसरा कार्मुक गुण ।

भौतिक गुण--द्रव्य मे पाये जाने वाले जो परिचय ज्ञापक गुण उसके शरीर मे पाये जाते है उनको भौतिक या मूर्त गुण कहते हैं । यथा गुरु गुण मे भारीपन कठोरता, मृदुत्व, स्निग्धत्व, लाल पीलापन आदि ।

कार्मुक गुण--जो गुण शरीर मे सेवन करने के बाद पाये जाते है ।

भौतिक गुण--पृथ्वी व अप तत्व मे गुरुत्व विशेष भार होना स्वाभाविक लक्षण है यथा

गुरुत्व जल भूम्यो: पतन कर्म कारक । प्र० भा ।।

अत--गुरु गुण मे भौतिक व आप्य मूत का विशेष भाव होता है । यह इसका भौतिक (physical) गुण है ।

कार्मुक गुण--जो द्रव्य शरीर मे जम कर कई प्रकार के निम्न गुण करते हैं उन्हे गुरु गुण का कर्म मानते है । यथा .

१ **अवसाद करत्व**–जिस के सेवन से शरीर की क्रिया में ह्रास होता है। शरीर मे ग्लानि होती है। अग ग्लानि होती है।

२ **उपलेप**–शरीर मे मल वृद्धि, स्निग्धता लाना।

३ **बलकृत**–बल लाने वाला, बल वर्द्धक, श्लेष्म का वर्द्धक।

४ **तृप्ति कृत**–शरीर मे तृप्ति देने वाला। तर्पण व तृप्ति जनक, सतोष प्रद।

५ **शरीर पुष्टि कृत**–शरीर के धातुओ का वर्द्धक। धातु वृद्धि कृत। मास बृहण कृत।

६ **कफ कृत**–कफ की मात्रा बढाने वाला।

७ **वातहृत**–वात की नाडियो की क्रिया वृद्धि को रोकने वाला व सामान्य स्थिति दायक।

८ **देर मे पचने वाला**–इनके सेवन से अग्नि सधुक्षण नही होता। अग्नि साद कर होते है।

भौतिक सगठन—पृथ्वी व आप्य भूत विशिष्ठ होते है। यथा—

पृथ्वी सोम गुण बहुलानि। द्रव्य पिष्ट इक्षु विकृति माष, आनूपमास व जल, इक्षु, क्षीरविकृति यथा दधि, दूध, घृत, नवनीत कूर्चिका, किलाट, शूकर-गव्य महिष मास व मधुर रस वाले द्रव्य ॥ अन्य मूसली, शतावरी, सित पाटला, क्लीतनक त्रपुस, विदारी, आरग्वध, बिम्बी, स्नूही। रास्ना, रागेरुकी एरड, हपुषा आदि।

लघु व लघुत्व

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जा कर लघुता उत्पन्न करता हो उसे लघु कहते है। यह द्रव्य शरीर मे जमा कर शीघ्र पच जाते है और शरीर की क्रिया मे तीव्रता उत्पन्न करते हैं।

लौकिक सज्ञा–लोक भाषा मे इसे हल्कापन व कम भारी व लघुता की सज्ञा देते हैं। सामान्य रूप मे गुरुत्व का अभाव ही लघुत्व है। जो द्रव्य भार मे एक दूसरे से भार मे कम होता है वह ही लघु की सज्ञा प्राप्त करता है।

---

१ सादकृत।

२. पिंडी भावात् गुरुत्व तु मूर्त रूपेपि जायते। आ० श० सू० पृ० १४०

३. सादापलेप बल कृत गुरु बृहणी तर्पणम्। सु०।

४ यस्य द्रव्यस्य बृहणे शक्ति स गुरु। हे०

५ गुर्वातहर पुष्टि बल कृत चिर पाकि च। भाव०। स्निग्ध वात हर श्लेष्मकारिवृष्य लतावहम्

६ गुरुणि पुन नाग्नि सधुक्षण स्वभावानि यतश्चाति दोषवति। च०सू०अ०१

७ पिष्ठेक्षु क्षीर विकृति माषानूपोदक पिशितादीन्याहार द्रव्याणिप्रकृति-गुरुणि भवति।

८ गौरव पार्थिवमाप्य च। र० वै० सू० ३ ११६

भौतिक संगठन–लघु द्रव्य वायु, अग्नि व आकाश के सगठन वाले होते है।

यथा : **पृथिव्युदकाभ्यां मन्यतेऽस्मात् भूत समूहात् वायव्याकाशाग्नि लक्षणात् भवतीति तेषां त्रयाणां भूतानां लघुत्वादिति। र० वै०।**

कार्मुक गुण–लघु द्रव्य शरीर मे जाकर निम्न कार्य करते है। यथा

१ **उत्साह**–कार्य करने की क्षमता।

२ **स्फूर्ति**–शरीर मे लघुता आकर काम करने मे शीघ्रता का होना।

३ **मल का क्षय**–कम मल बनना।

४. **अतृप्ति**– खाये हुवे द्रव्य से तृप्ति न होना अर्थात् पुन खाने की इच्छा बनी रहना।

५ **दुर्बलता**–अधिक सेवन से दुर्बलता का ज्ञान होना या बल की कमी।

६ **कृशता कर**–लघु द्रव्य कम धातु पोषक होते हैं। पोषक तत्व इनमे कम बनते हैं।

७ **कफघ्न**–वात कर यह द्रव्य कफ को कम करते हैं और वात की वृद्धि करते हैं।

८ **शीघ्र पाकी**–यह शीघ्र पचने वाला होता है। यह पथ्य है यथा लघु पथ्य पर प्रोक्त कफघ्न शीघ्र पाकि च।

९ **व्रण रोपण**–व्रण को भरने मे लघु गुण वाले द्रव्य शीघ्रता करते हैं।

१० **लघुत्व**–शीघ्र पचने वाले दीपन व शरीर भार को कम करने वाले होते हैं। गुरुत्व के विपरीत लघु होता है ऐसा वैशेषिक दर्शन मानता है अर्थात् गुरुत्वाभाव को ही लघुत्व माना है।

द्रव्य–शालि षष्ठिक, मुद्ग, लाव, कपिजल, शश, शरभ, शवर के मास प्रकृति से ही लघु होते हैं। कैडर्य, किरात, शटी पृश्नि पर्णी, श्योनाक फल, भगा, विभीतक, आमलक, विशाला, शतावरी, अकुर, सैंधव, सौवर्चल, एला, नागपुष्प, त्वक चव्य, पिप्पली, जटामासी, गौर सर्षप, चित्रक, मदन फल, जीमूतक, कुटज, कृतवेधन, वामार्गव, इक्ष्वाकु आदि लघु क्रिया वाले द्रव्य है।

रस– अम्ल, कटु व तिक्त रस वाले द्रव्य प्राय लघु होते है।

गुण–उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रूक्ष, खर, लघु, विशद गुण वाले द्रव्य प्राय लघु होते हैं।

शीत गुण के कर्म

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे प्रयोग करने पर शीतल, स्निग्ध, गुरुत्व पिच्छिल क्रिया करके मन को प्रसन्न रखने वाला व दाहादि कर्म का रोधक हो उसे शीत द्रव्य कहते हैं।

---

१. १०–लघने लघु हे०।

२. **लघुस्तद्विपरीत स्यात्लेखनो रोपणस्तथा। सु० सू० अ० ४६ लघु पथ्य परं प्रोक्त कफघ्न शीघ्र पाकि च। भाव०।**

३ **लघने लघुः। लाघवमन्यदीयम्।**

भौतिक सगठन–आप्य तत्वाधिक द्रव्य शीतल होते है। यथा

शीत स्निग्ध गुरुपिच्छिलास्तत्राप्या । र० वै० ३. १२

२ द्रव्याणि शीत गुण बहुलानि आप्यानि। च० सू० अ० २६।

मूर्त्त गुण–जो वस्तु स्पर्श मे शीतल हो वह शीत है। यह स्पर्शानुमेय गुण है।

कार्मुक गुण–जो द्रव्य निम्न लिखित कार्य करता हो उसे शीत कहते है।

१ **आह्लादन**–जो द्रव्य मन को प्रसन्न करने वाला हो।

२ **शीतल**–जो शरीर मे शीतल क्रिया करने वाला हो और शरीर ताप को कम करे।

३ **स्तभन**–जो द्रव्य रक्त मूत्र पुरीष व स्वेद का अवरोधक हो वह शीतल है।

४ **मूर्च्छा जित**–मूर्च्छा को दूर करने वाला।

५ **तृषा जित**–जो प्यास को कम कर देवे।

६ **स्वेद जित**–जो पसीना निकलना बद कर दे।

७ **दाह जित**–जो शरीर के दाह को कम कर देवे।

८ **स्निग्ध**–शरीर मे स्निग्धता पैदा करने वाला हो।

९ **पिच्छिल**–जो स्वय चिकना हो व शरीर मे भी चिकनाई पैदा करता हो। ततुमत् शारीर द्रव्य प्रोटीन आदि का वर्द्धक हो।

१० **गुरु**–पाक मे जो देर मे पचता हो।

११ **मृदु**–शरीर मे जो मृदुता उत्पन्न करता हो।

नोट–वैशेषिक दर्शन की सम्मति मे यह स्पर्शानुमेय गण हैं।

१२ **पित्तघ्न**–जो पित्त को कम करता हो।

१३ **वात श्लेष्मघ्न**–जो वायु व श्लेष्म का वर्द्धक हो।

१४ **जीवन**–जो द्रव्य जीवनी शक्ति को बढाता हो।

१५ **क्लेदन**–शरीर मे जो क्लेद पैदा करे।

द्रव्य–पिच्छिल व स्निग्ध गुण वाले तथा मृदु व गुरु गुण वाले द्रव्य। चन्दन,कुचन्दन, खस, मजिष्ठा, बिदारी, शतावरी, उत्पल, कमल, पद्म, बीजखर्जूर, नारियल आदि। शालि षष्ठिक यव गोधूम मूद्ग मकुष्ठ चणक मसूर तडूलीयक-काकडी त्रपुष आदि। गुण रस मे मधुर कषाय, गुण मे स्निग्ध शीत पिच्छिल विशद गुण वाले द्रव्य शीत होते हैं।

---

१. तेषा मृदु तीक्ष्ण उष्ण शीत स्पर्श ग्राह्या। सु० सू० अ० ४२

२ ह्लादन स्तमन शीत मूर्च्छातृड् दाह स्वेद जित्। सु० सू० ४६

३. स्तभने हिम हे०। शीतस्तु ह्लादन स्तभी मूर्च्छा तृड् दाह स्वेद-जित्। भाव०।

४ द्रव्याणि शीत गुण बहुलानि आप्यानि।

उष्ण गुण व उसकी क्रिया

व्युत्पत्ति—उष रुजायाम् । इस धातु से बना होने के कारण उष्ण शब्द का अर्थ रुजा करने वाला द्रव्य होता है। दूसरा अर्थ उष्णत्व शीघ्रकारित्वम् होता है। अर्थात् जो शीघ्र क्रिया करने वाला हो।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर के उष्णता करे, शीत निवारक हो, स्वाद मे तीक्ष्ण व कटु रसवाला हो तथा सारक, पाचक, तृषाकर, दाहकर; स्वेदकर हो उसको उष्ण द्रव्य कहते है।

भौतिक सगठन—आग्नेय या तैजस तत्व वाले महाभूत द्रव्य उष्ण होते है। यथा—

तैजस औष्ण्यं च । र० वै० ३–१३ ।

द्रव्याणि उष्ण गुण वहुलानि आग्नेयानि । च० सू० अ० २६ ।

मूर्त गुण—शीत व उष्ण यह दोनो स्पर्शानुमेय है। अत बाहर स्पर्श मे जो द्रव्य गरम ज्ञात हो वह उष्ण है।

कार्मुक गुण—उष्ण द्रव्य शरीर मे जाकर उष्णता उत्पन्न करते हैं। यथा—

१ **सारक**—उष्ण द्रव्य शरीर मे जाकर कोष्ठ व स्रोतसो मे जाकर सरण शीलता उत्पन्न करते है तथा इसकी क्रिया की तीव्रता देते है, मल का सरण भी कराते है।

२ **पाचक**—यह द्रव्य उष्ण गुण के कारण व्रण पाचक भी होते है। तीव्र उष्णता मे धातु पाक कर भी होते हैं।

३ **दाहकर**—यह द्रव्य शरीर मे दाहकर होते है। जलन पैदा करते है।

४ **मूर्च्छाकर**—अधिक मात्रा मे सेवन करने पर मूर्च्छा पैदा करते है।

५. **तृषाकर**—यह प्यास की वृद्धि करते हैं। भ्रम कर व स्वेद कर।

६. **स्वेदकर**—पसीना लाने वाले होते हैं।

७ **वातघ्न**—यह वात नाशक होते है।

८ **शीघ्र कारित्व**—उष्ण द्रव्य शरीर की क्रिया को तीव्र कर देते हैं। क्रिया मे उग्रता लाते है। पाचन क्रिया प्रधान होते है। अत वमन विरेचन कर भी होते है।

नोट—वैशेषिक दर्शन मे शीत व उष्ण को स्वतत्र गुण नही माना गया है। स्पर्श गुण के भेद मान कर सापेक्ष गुण उष्ण व शीत माना है। इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति के स्पर्श गुण व शक्ति पर माना जाता है। अत शरीर मे उष्णता पैदा करना ही इसका विशेष गुण माना गया है। **उष्णत्वं शीघ्र कारित्वम्** । **दाह जनकत्वमुष्णत्वम्** ।

द्रव्य—जो द्रव्य रस मे कटु व तिक्त होते है वे ही उष्ण होते हैं।

मरिच, गजपीपल, चव्य, चित्रक, शुठी, भल्लातक, करज, कार्पास बीज,

निशोथ, जयपाल, दन्ती, इन्द्रवारुणी, मेषश्रृंगी, अवल्गुज,कूठ आदि द्रव्य। रास्ना कर्पूर, देवदारु, अगुरु, गुग्गुल, हरिद्रा, पीलू।

९ विशद व तीक्ष्ण गुण वाले द्रव्य उष्ण होने से क्लेदाचूषण, विरक्षण, सग्राही, आचूषण व ग्राही कर्म वाले होते हैं।

१० यह द्रव्य कफ का प्रशमन करते हैं।

विशेष—यहा पर सामान्य रूप मे द्रव्य का गुण कर्म लिखा गया है विशेष विवरण गुण विज्ञान नामक पुस्तक मे देखिये।

स्निग्ध गुण

(Oncchuousness) (Soothingness)

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर मृदुता उत्पन्न करते हैं व शरीर मे स्निग्धता, कान्ति उत्पन्न करते हैं और वल प्रदान करते हैं वे स्निग्ध गुण वाले कहलाते हैं।

भौतिक सगठन—स्निग्ध द्रव्य अप तत्व प्रधान होते हैं यथा—

स्नेहोऽपां विशेष गुणः सग्रह मृजादि हेतुः। र० वै०

भौतिक गुण—जो स्पर्श मे मृदु और स्पर्शनेन्द्रिय को चिकना वनाता है वह स्निग्ध गुण होता है।

पहचान—अगुष्ठ और तर्जनी मे रगडने पर जो चिकनाई पैदा करता है और ततु नही दिखाई देते वह स्निग्ध होते हैं। पिच्छिल मे ततु दिखाई पडते हैं। यथा—तैल व घृत।

कार्मुक गुण—स्निग्ध द्रव्य मे आपस मे मिला देने की शक्ति होती है। यथा—चूर्ण समूह मृत्तिका मे पानी डालने पर सव एक भाव हो जाते हैं। पिंड वन जाते हैं इसी प्रकार शरीर मे जमकर ये द्रव्य कई प्रकार के सग्रहादि कार्य विभिन्न रूप मे किया करते हैं यथा—

१. **धातु सग्रह**—शरीर के रस रक्तादि धातुओ मे वृद्धि करना, स्निग्धता लाना आदि।

२ **मार्दव**—शरीर मे मृदुता उत्पन्न करना। चिकनाई लाना।

३ **क्लिन्नता**—शरीर मे कई विभिन्न भागो मे क्लेदक तत्व पैदा कर के उन्हे आर्द्र रखना।

४ **वल व वर्ण कर**—शरीर मे वल प्रदान करना व त्वचा की कान्ति वढाना।

---

१ **स्निग्ध वातहर श्लेष्मकारि वृष्य वलावहम्** ।भाव०

२ **स्नेह मार्दव कृत स्नेहोवल वर्ण करस्तथा**। सुश्रुत०

३ **क्लेदने स्निग्ध** । हेम०।

४. **सग्रह. परस्परयुक्ताना सत्वादीना पिंडीभाव प्राप्ति हेतु** ।
विशेष. न्याय कदली।

५ **स्नेह वर्धन**—शरीर मे वसा मज्जा व स्निग्धता की वृद्धि करना।

६ **अभिष्यंदन कर्म**—शरीर के विभिन्न भागो से रस निकाल कर उन्हे क्लिन्न करना व आर्द्र रखना।

७. **वृष्यकर**—शरीर के शुक्र धातु की वृद्धि करके वल प्रदान करना व शुक्र बढाना।

८. **वातहर**—वायु की विकृति को दूर करना।

९. **श्लेष्मकृत**—शरीरस्थ कफ को बढाना।

द्रव्य—जो द्रव्य चाहे वनस्पति के हो या प्राणिजन्य हो स्नेह उत्पन्न करते है वह सब स्निग्ध कहलाते है। यथा—तैल योनि के द्रव्य। वसा, मज्जा व अन्य द्रव्य।

तिल, प्रियाल, एरड, मधूक कुसुम, अलसी, करज, शिग्रु। घृत, दधि, दुग्ध। आमिष, वसा, मज्जा, पित्त।

नोट—आयुर्वेद मे स्निग्ध गुण की क्रिया विशेष रूप मे बतलाई गयी है। वमन विरेचन के पूर्व स्नेहन करना, आस्थापन वस्ति मे स्नेह प्रदान करना। स्निग्ध कर्म से बहुत से रोग दूर हो जाते है।

रूक्षः रूक्षत्वम्

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर द्रव शोषण करने वाले, रूक्षता उत्पन्न करने वाले तथा शरीर को दृढ करने वाले, बल – वर्ण का ह्रास करने वाले, स्तभन व खरत्व पैदा करने वाले होते है उन्हे रूक्ष वाला कहते हैं।

भौतिक सगठन—रूक्ष गुण वाले द्रव्य आग्नेय व वायव्य गुण प्रधान होते हैं। चरक। रौक्ष्य गुण वाले द्रव्य पार्थिव वायव्य गुण वाले होते है। नागार्जुन। यथा—

रौक्ष्य वैशद्ये पार्थिव वायव्ये । र०वै० ३। ज्ञ १४।

मूर्तगुण—जो द्रव्य अगुलियो के स्पर्श मे रूखे मालूम होते है रूक्ष कहलाते हैं। यह स्पर्शनेन्द्रिय लब्ध गुण है।

कार्मुक गुण—जो द्रव्य शरीर मे जाकर स्निग्ध गुण के विपरीत क्रिया करते हैं उन्हे रूक्ष कहते है। यथा—

१ **दार्ढ्य**—शरीर के धातुओ की स्निग्धता को कम करके उनमे रूक्षता उत्पन्न, करना शरीर के मास सूत्रो मे कठिनता उत्पन्न करना।

२ **खरता**—शरीर मे खरत्व पैदा करना। ऊपर की त्वचा मे खरखराहट पैदा करना।

---

१. **शोषणे रूक्षः। रूक्षस्तद्विपरीत स्यात्। विशेष स्तभन खर।**

२ **शोषणे रूक्ष।**

३. **रूक्ष समीरणकरम् परं कफ हरं मतम्।** सु सू- ४६।

४ **द्रव्याणि रूक्ष गुण बहुलानि आग्नेय वायव्यानि।** च सू २६

३. **स्तंभन**—शरीर के मास सूत्रो मे मार्दव का अभाव कर के उन्हे कठिन व अनमनशील वनाना, क्रिया मे हानि उत्पन्न करना।

४. **अक्लिन्न करत्व**—शरीर के विभिन्न भागो की क्लेदन क्रिया मे कमी करना।

५. **वलहानिकरत्व**—शरीर के वल को कम करना।

६. **वर्ण हानिकरत्व**—शरीर के स्वाभाविक वर्ण को कम करना।

७ **स्निग्धता नाशन**—शरीर की चिकनाई को कम करना।

८ **अवृष्यकर**—वल व शुक्र को कम करना।

९ **समीरणकर**—शरीर मे वात की क्रिया को वढाना।

१० **कफ हरत्व**—शरीर के कफ की मात्रा को कम करना।

११. **शोषण की क्रिया वढाना**—अभिष्यदन की क्रिया कम करके शरीर मे शुष्कता उत्पन्न करना व दृढता और कठिनता लाना।

द्रव्य—श्यामाक, कोद्रव, नीवार, सतीनक। हायनक, कगुनी, वाजरा तुवरी, कलाय, यव, त्रिपुट, गुडुची, भद्रमुस्ता, त्रिफला, सोभाजन, कुटज, वग, करीर, अपामार्ग, पिप्पली, शिलाजतु, गुग्गुलु, गोमूत्र, रसाजन, आसव, अरिष्ट, सुरा, वारुणी।

श्लक्ष्ण गुण

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे प्रयोग करने के वाद पिच्छिल गुण की तरह कार्य जीवन वल्य सधानकर श्लेष्मल व वातहर होते है वह पिच्छिल माने जाते हैं। इनमे विशेष कर व्रण रोपण का कार्य विशेष पाया जाता है।

भौतिक सगठन—तैजस भूत प्रधान सगठन के श्लक्ष्ण द्रव्य होते है। चरक आकाश गुण प्रधान मानते हैं।

मूर्त गुण—यह स्पर्शानुमेय गुण है। अत स्पर्श मे कठिन परतु मणिवत मसृण व स्पर्श सुखद हो तो इसे श्लक्ष्ण मानते हैं।

१ **जीवन**—जीवनीय शक्ति देने वाला होता है।

२ **वल्य**—वलकारक माना जाता है।

३ **सधानकर**—भग्न स्थानो मे सधान कर सूत्र की वृद्धि करके सयोजन का कार्य करता है।

४ **श्लेष्मल**—यह श्लेष्म वर्धक है।

५ **वातहर**—वात दोष का हारक है।

६ **विरोपिण**—यह व्रण का विशेष रूप मे रोपण करनेवाला है।

---

१. **श्लक्ष्ण. पिच्छिल वत् ज्ञेय**।
२. **सुमसृण मणीनामिव स्पर्श**। र० वै० भाष्य।
३ **रोपणे श्लक्ष्ण**। हेम०
४. **तैजस श्लक्ष्णत्वं नाम**। रस० वै० २। ५२
५. **द्रव्याणि श्लक्ष्ण गुण वहुलानि आकाशात्मकानि**। च० सू० अ० २६
६. **श्लक्ष्ण स्नेह विनापि स्यात्**। भाव०।

द्रव्य--अभ्रक, वज्र, वैक्रान्त मणि, माणिक्य, मुक्ता, शख, शुक्ति, प्रवाल, दुग्धपाषाण ।

नोट--स्निग्धता न होने पर भी तथा कठिन होने पर भी श्लक्षणता रहती है ।

खरः कर्कशः

परिभाषा--जो द्रव्य शरीर मे प्रयोग करने पर विशदवत् कार्य करता है वह खर या कर्कश माना जाता है । इसका विशेष कार्य लेखन होना है ।

भौतिक संगठन--सुश्रुत के मत से खर गुण तैजस व वायवीय गुण प्रधान माना जाता है । यथा—

खरं तैजसं वायवीयम । सु० सू० अ० ४१ ।

चरक के मत से पार्थिव व वायव्य माना है । यथा--

द्रव्याणि खर गुण बहुलानि पार्थिवानि वायव्यानि । च सू अ. २६

रस वैशेषिक कर्कशत्व वायवीयम् । र. वै ६०

वायु तत्व प्रधान ही मानता है ।

मूर्तगुण--जो द्रव्य स्पर्श मे खुरदरे व दु खद् स्पर्श वाले होते है उन्हे खर कहते है ।

कार्मुक गुण--खर द्रव्य लेखन गुण विशेष होने से लेखन कर्म करते है ।

इसके अतिरिक्त विशद वत् यह दु खद, बल ह्रारक, असघातकर, कफ हृत, वातकृत, लघु इत्यादि कार्य कर होते हैं । विशेष कर्म धातु ह्रासकर, मल शोषण होता है ।

द्रव्य--कषाय, कटु, तिक्त रसवाले द्रव्य खर होते है ।

गुण मे जो द्रव्य रूक्ष लघु तीक्ष्ण उष्ण स्थिर विशद व अन्य गुण से युक्त होते है उन्हे खर मानते हैं । मणि मुक्ता प्रवाल शख शुक्ति आदि ।

स्थिर स्थिरत्व

परिभाषा--जो द्रव्य शरीर मे जाकर धातुओ को स्थिर करते है और मात्रा मे कम नही होने देते वह स्थिर द्रव्य कहलाते है ।

भौतिक सगठन--स्थिर गुण वाले द्रव्य पार्थिव भूत विशिष्ठ होते है ।

मूर्त गुण--स्थिर गुण मूर्त नही है कर्मानुमेय है ।

कुछ लोगो का विचार है कि वह एक स्थान पर रखने पर स्थिर रहने वाले क्रम को स्थिर माने, पर यह ठीक नही हैं ।

---

१. **कर्कशो विशदो यथा** । सु० ४६
२. **कर्कशत्वं वायव्यम्** । रस वै २ । ६०
३. **द्रव्याणि खर गुण बहुलानि पार्थिवानि वायव्यानि** । च सू अ २६
४. **खरं तैजसं वायवीयम्** । सु सू अ. ४१
५. **लेखने खर** । हेम.

कार्मुक स्वरूप--यह द्रव्य निम्न कार्य करते है।

१ धातु स्थैर्य कृत--शारीरिक धातुओ को उनकी मात्रा मे रखकर मात्रा स्थिर रखना।

२ वातमल स्तभी--यह वात व मल को रोकते है।

३ गति शैथिल्य कृत--वात जन्य क्रिया को यह द्रव्य कम करते है।

द्रव्य--रस मे जो द्रव्य मधुर अम्ल व कषाय होते है।

सुधा, प्रवाल, खदिर व प्राय सब निर्यास अश्वगध, शतावरी, बला, अतिबला।

सर व सरत्व

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर आत्र की क्रिया आकुचन व प्रसारण गति बढाते है और वात व मल मूत्र की प्रवृत्ति बढाते है तथा शारीरिक विभिन्न क्रियाओ को गति प्रदान करते है उन्हे सर कहते है।

भौतिक सगठन–सर गुण वाले द्रव्य आप्य तत्वाधिक होते है।

मूर्त्त गुण–द्रव पदार्थों के परिसर्पण शील क्रिया जो दर्शन गम्य है सर मानते है।

कार्मुक क्रम–इस गुण से निम्न क्रियाये सपन्न होती है। यथा

१ **अनुलोमन**-दोष धातु व मल का अपने अपने मार्ग मे गमन

२ **प्रेरण**–आत्र व अन्य अग मे क्रिया शीलता उत्पन्न करना। यह शरीर इन्द्रिय व मन की गति से सबध रखता है।

३ **प्रवर्तक**–मल मूत्र का अपने मार्ग मे प्रवर्तन।

४ **श्लेष्म वर्द्धन**–श्लेष्म की मात्रा को बढाना।

द्रव्य–हरीतकी, आमला, विभीतक, आरग्वध, कटुकी, कस्तूरी, केशर, गोरोचन, त्रिवृत, सप्तला, शखिनी आदि।

गुगुलु, रसोन, अर्क, लागली, प्रसारिणी अपामार्ग, पलास, सप्त पर्ण, इन्द्रायण, वृद्ध दारुक।

रसाधिष्ठान–मधुर अम्ल लवण व क्वचित कटु व तिक्त भी

---

१ धारणे स्थिर। हेम०

२ स्थिरोवात मल स्तभी। भाव०

३. द्रव्याणि स्थिर गुण बहुलानि पार्थिवानि। च० सू० अ० २६

४. स्थिर द्रव्य केश श्मश्रु लोमास्थिनखदंतसिरास्नायु धमनी रेत प्रभृतीनि स्थिराणि। सु० शारीर ३।

१ यस्य प्रेरणे शक्ति स सर। हेम०

२ सरोऽनुलोमनो प्रोक्त। सु०सू०अ ४६

३. सर आप्यम्। सु०सू० अ० ४५

४ सरस्तेषा प्रवर्तक।

५. सलिल वृत्ति। आ० दर्पण

विशद

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर दोष धातु व मलो को शुचित्व व विमलत्व प्रदान करते हैं वह विशद कहलाते हैं। ये द्रव्य आभ्यतर धातुओ मे मल निष्कासन व बाह्य धातु त्वचा आदि मे विमलत्व प्रदान करना इस द्रव्य का कार्य है यथा सुश्रुत की हेमाद्रि टीका मे लिखा है कि —

शुचि विमलौ तु विशद विशेषौ अदृष्टाना हि मलानां क्षालने शक्ति' शुचित्वं दृष्टानां विमलत्व ॥

नोट—शतलृ शातने धातु मे टक् प्रत्यय करके विसर्ग पूर्वक विशद शब्द का अर्थ सशोधन करना व शुद्ध बनाना है।

भौतिक सगठन—चरक विशद गुण वाले द्रव्य पृथ्वी–वायु–तेज–भूत प्रधान होते है।

सुश्रुत—आकाशीय गुण प्रधान विशद होते हैं।

रसवैशेषिक- वायु गुण प्रधान द्रव्य मे विशद गुण होता है। यथा

१. द्रव्याणि विशद गुण बहुलानि पार्थिवानि आग्नेयानि वायव्यानि।
च० सू० अ० २६

२ **विशदाकाशीयम्**। सु० सू० ४१

३. **रौक्ष्य वैशद्ये पार्थिव वायव्ये**। रस० ३। ११२

मूर्त गुण—आकाश तत्व प्रधान द्रव्य विशद होकर लघुत्व प्रदान करता है। चरक के सगठन वाले द्रव मे गुरु रूक्ष तीक्ष्ण व लघु गुण होना चाहिये। बाह्य गुण मे स्वच्छता शीतता प्रधान गुण होना चाहिये।

कार्मुक १—अजीवन शरीर के जो जीवक तत्वो को कम करता है। दु ख कर होता है।

२—**बल हारक** शरीर के बल को कम करता है।

३—**असधान** सधान कर मास सूत्र का विघटक है।

४. **क्लेदाचूषण**—शरीरस्थ क्लेद का आचूषण करता है।

५ **शोषण**—शरीरस्थ द्रव धातु का शोषण है।

६ **व्रणरोपण**—व्रण का रोहण करने वाला है।

नोट—आयुर्वेद को छोडकर दर्शनो मे विशद गुण स्वीकार नही किया है। अनार्ष दर्शनो मे भी वाक् स्वच्छता, विचार स्वच्छता के अर्थ मे विशद को माना है। पारदर्शक शुभ्र व श्वेत वस्तु विवरण मे विशद का प्रयोग मिलता है। आयुर्वेद मे ऊपर के गुण माने गये हैं और शेष धातु-मल व शरीर का शोधक माना गया है।

१—**पिच्छिलो जीवनोवल्य संधानश्लेष्मलोगुरु। तद्विपरीत विशद। भाव विशद-अजीवनो, अश्लेषी तथा असधानः कार्श्य कृत्। हाराण**

७ अनुपलेपकर—शरीरवर्द्धक धातुओ का ह्रासकर है।

८ क्षालन—शरीर के दोषो का निष्काशन करता है।

९ कफहृत—कफ दोष को कम करता है।

१० वातकृत—वायु का वर्द्धक है।

११ लघुत्वकृत—शरीर को लघु वनाता हे।

द्रव्यम्—तैल-मद्य-लवकीफल-मुद्ग, गृहकपोत-मास-शशक मास, केलूट, कदम्ब नदी भाष-जल-तक्रपिड।

पिच्छिल गुण (Sliminess)

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर शीतता स्निग्धता व गुरुगुणप्रदान कर जीवन व वल्य होते हैं। तथा श्लेष्म वर्द्धक व भग्न सधान कर होते है वह पिच्छिल द्रव्य कहलाते हैं।

भौतिक सगठन—यह द्रव्य आप्य महाभूत अश प्रधान होते है। यथा

शीत स्निग्ध गुरु पिच्छिलास्तत्राप्या । रस वै० ३ । ११२

मूर्त्त गुण आप्य तत्वाधिक होने से पिच्छिल द्रव्य चिकने चिपकनेवाले-भारी होते हैं। शरीर मे लगाने पर लेप की तरह चिपक जाते है। अगुलियो पर रगड कर अलग करने पर तार जैसे दिखाई पडते है। यह इनका भौतिक गुण है।

भेद—स्निग्ध और पिच्छिल द्रव्य मे भेद यह है कि दोनो चिकने होने पर भी स्निग्ध अगुलियो मे रगड कर अलग करने पर ततु नही देता। पिच्छिल ततु देते हैं। चिकना अवश्य होता है। पिच्छिल मे स्निग्धता व चिक्कणता दोनो पाये जाते हैं। यथा तैल का अगुष्ठ व मध्यमा से रगड कर अलग करे तो चिकना तो रहता है परतु वह तार नही देता। निर्यास के द्रव मे या स्वय उस मे अगुलि पर रगड कर अलग करने पर तार निकलता है।

फार्मुक लक्षण—पिच्छिल द्रव्य शरीर मे पैच्छिल्य स्निग्धता मार्दव पैदा करते है अत उनका गुण कर्म के रूप मे निम्न रूप मे दिखाई पडता है।

१ **जीवन**—शरीर के प्रत्येक सेल मे जीवन की शक्ति प्रदान करता है।

२ **वल्य**—शरीर मे वल प्रदान करता है।

३ **सधान कर** शरीर की सधियो मे अस्थि व पेशी सव मे सधान कर्म करता है।

४ **उपलेप कर**—शरीर के धातुओ की वृद्धि करता है।

५ शरीर मे स्निग्धता प्रदान करता है।

६ **शीत**—शरीर की क्रिया मे शीतलता रखता है।

---

१ पिच्छिलो जीविनो वल्य सधान श्लेष्मलो गुरु। भा० प्र०

२ लेपने पिच्छिल। हेम०

७ **गुरुत्व**—शरीर के धातु की वृद्धि करके शरीर मे गुरुता प्रदान करता है।

८ **कफ कर**—शरीर के दोषो मे कफ की वृद्धि करता है उदक कर्म की स्थिरता रखता है।

९ **वात हर**—शरीर मे स्निग्धता की स्थिति को ठीक रख कर वह वात की क्रिया को कम करता है।

१०. **उपलेप कर**—शरीर के धातुओ की कलाओ की वृद्धि करके उनका आवरण करता है। द्रव्य-क्षीर, फाणित, गुड, शर्करा, बबूल निर्यास व अन्य निर्यास श्लेष्मान्तक, ईसव गोल, माष द्विदल, भक्त, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, मूसली, इक्षुरक, सेमल, मूसली चिलचिम मत्स्य आदि। यथा

क्षीरम्—मधुरं पिच्छिलं शीत स्निग्ध श्लक्ष्ण सरं। सर्व प्राण भृतां तस्मात सात्म्यं क्षीरमिहोच्यते। भाव०

आनूपज मास आनूपा मधुरा स्निग्धा गुरवो वह्नि सादना
श्लेष्मला पिच्छिला श्चापिमांस पुष्टिप्रदा भृशम्।

स्थूल व स्थूलत्व

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जमकर शरीर को स्थूल व सूक्ष्म स्रोतसो का मार्ग अवरोध करता है वह स्थूल कहलाता है।

भौतिक सगठन—स्थूल गुण वाले द्रव्य पार्थिवाश विशिष्ट होते हैं।

मूर्त्त गुण—जो द्रव्य मोटे हो वह तथा कठिन द्रव्य स्थूल माने जाते हैं।

कार्मुक स्वरूप—स्थूल गुण वाले द्रव्य शरीर मे जाकर निम्न क्रिया करते हैं।

१ **स्थूलता**—शरीर के मास व मेद की वृद्धि करके शरीर को मोटा बनाते है।

२ **स्रोतसावरोध कृत**—सूक्ष्म स्रोतसो मे भरकर अवकाश कम करते है।

३ **संधिदार्ढ्य कृत**—सधियो को दृढ करते है।

४ **गुरु पाकी**—देर मे पचते है।

५ **संवरण शक्ति**—यह द्रव्य मास सूत्र व अन्य पेशियो मे कठिनता पैदा करते हैं। सकोचन की शक्ति अधिक पैदा करते है। कोई कोई सवरण का अर्थ सकोच भी मानते है।

६ **श्लेष्म वर्द्धक**—यह कफ की मात्रा को बढाता है।

द्रव्य—पिष्ठ पिण्याक, कूर्चिका, पेडा घृतपूर, श्री खड आदि

---

१. **स्थूल स्थौल्य कर देहे स्रोतसामरोधकृत। भाव०। प्रसृतावयवत्व स्थूलत्व।** आ० द०

२. **स्थूल स्यादवधकारक।** सु०सू०अ० ४६

३ **द्रव्याणि स्थूल गुण बहुलानि पार्थिवानि।** च० सू० २६। **तत्र स्थूल मधुरम् पार्थिम्।**

४. **संवरणे स्थूल।** हेम

५. **यस्य सवरणे शक्ति सस्थूल।**

सूक्ष्म व सूक्ष्मत्व

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर के सूक्ष्म अगो मे भी प्रविष्ट होकर अपनी क्रिया करता है वह सूक्ष्म माना जाता है।

भौतिक सगठन—आकाश व वायु गुण प्रधान द्रव्य सूक्ष्म होते है। मृदु व सूक्ष्म गुणवाले आकाशात्मक होते हैं चरक। सुश्रुत तैजस मानते है।

मूर्तगुण—जो वस्तु सूक्ष्मता के कारण नही दिखाई देते वह सूक्ष्म माने जाते है।

कार्मुक स्वरूप—इस गुणवाले द्रव्य निम्न कार्य करते है।

१ **सूक्ष्म स्रोतस प्रवेश** –जो द्रव्य अपने कर्म से सूक्ष्म स्रोतस मे प्रविष्ट होकर कार्य करते हैं वह सूक्ष्म है।

२ सुश्रुत के मत मे जो द्रव्य स्रोतसो के भीतर की मर्यादा कम करते है वह सूक्ष्म है। अर्थात् स्रोतस सकोच कृत। यथा—

सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मस्तु सूक्ष्मेषुस्रोत स्वनुसर स्मृतः। सु सू ४६
देहस्य सूक्ष्म छिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्म मुच्यते। भाव
यस्य विवरणे शक्ति स सूक्ष्म । हेम

विवरण सकोच के भी व प्रसरण के दोनो अर्थ मे आता है।

३ सूक्ष्मत्व कृत सूक्ष्म ततु व स्रोतस मे जाने की शक्ति।

द्रव्य—रस मे जो मधुर अम्ल व कटु होते है व वीर्य मे जो तीक्ष्ण व उष्ण होते हैं वह सूक्ष्म गुण वाले होते है। लवण, पारद, शिलाजीत, कस्तूरी, केशर, सुरा, वारुणी, गुग्गुलु दशमूल, तिल, मधु माक्षिक, मूत्रगधक।

तीक्ष्ण व तीक्ष्णत्व

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर अपना कार्य शीघ्र करते हैं वह तीक्ष्ण कहलाते है। यह द्रव्य दाह, पाक, स्रावण, लेखन व पित्त तथा कफ वातहर होते है।

---

१ **अवयवाना सकोच सूक्ष्मत्व।** सुश्रुत।
२. **सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मस्तु सूक्ष्मेषु स्रोत स्वनुसर स्मृत।** सुश्रुत ४६
३ **यस्य विवरणे शक्ति स सूक्ष्म ।** हेम
४ **देहस्यसूक्ष्म च्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्म मुच्यते।** भाव प्र
५. **स्रोतस प्राणोदकान्नरसरुधिरमासमेदोऽस्थि मज्जशुक्रमूत्र पुरीषस्वेद वहानि वातपित्तश्लेष्मणां पुन सर्व शरीर चराणास्रोतांस्ययन भूतानि।** चरक विमान।
६ **अनिलाम्बर तमोवृत्ति·।** आ द।
उष्ण सूक्ष्म बहुलानि आग्नेयानि। लघुसूक्ष्म वायव्यानि। मृदुसूक्ष्म-बहुला न्याकाशात्मकानि। च सू २६
उष्ण सूक्ष्म तैजसम्। सुश्रुत। **सूक्ष्म वायवीयम्।** सुश्रुत।

व्युत्पत्ति—तीक्ष्ण शब्द का अर्थ शीघ्रकारित्व होता है।

भौतिक सगठन—तैजस तत्वाधिक द्रव्य तीक्ष्ण क्रिया करने वाले होते है। यथा—

तैजस औष्ण्यम् तैक्ष्ण्यं च। र वै ३ । ११३

मूर्त गुण—तीक्ष्ण गुण मूर्त गुण की श्रेणी मे नही पाया जाता। यह कर्मानुमेय गुण है। जो त्वचा पर दाहकर होते है वह शीघ्र क्रिया करते है।

कार्मुक गुण—तीक्ष्ण द्रव्य मे निम्न कार्य करने की शक्ति होती है।

१. **शोधन**—शरीर मे प्रयोग करने पर शोधक होते है। यह दोष धातु व मल शोधक होते है।

२ यह मल व मूत्र के विशेष प्रकार के शोधक होते है।

३. **दाहकर**—यह द्रव्य शरीर से सपर्क मे त्वचा पर दाह करते है और शरीर मे जाने पर यह अपने पहुचने के स्थान पर जलन पैदा करते हैं।

४. **पाककर**—शीत होने पर इनके प्रयोग से व्रण का पाक हो जाता है।

५. **लेखन**—कोष्ठ से प्रयोग करने पर यह द्रव्य दोष धातु व मल का लेखन करते हैं।

६. **कफ वातहर**—यह द्रव्य प्रयुक्त होने पर कफ व वात दोष को कम कर देते है।

७ **उष्ण**—यह शरीर मे जाकर उष्णता पैदा करते हैं।

८ यह द्रव्य शीघ्र क्रिया करते है।

द्रव्य—मरिच, पिप्पली, शिलाजतु, चव्य, चित्रक, शुंठी, गधक, जयपाल, आरग्वध, त्रिवृत्त।

भेद—यह द्रव्य कई प्रकार के होते है।

१ **दाहक (Rubifacients)**—जो द्रव्य त्वचा पर दाह अधिक करते है उन्हे आधुनिक भाषा मे रुबीफेसियेट कहते है। यथा—

राजिका, भल्लातक, लवग, पुष्कर मूल, कूठ।

२ **तीक्ष्ण दाहक या स्फोटकर (Vasecants) or Postulants**—जो शरीर पर छाला डाल देते है। स्नूहीक्षीर, अर्क क्षीर।

३ **तीव्र प्रदाहक**—जो शरीर मे जाकर तीव्र प्रदाह करते है अथवा भीतर भी प्रदाह करते हैं। जैसे अजवायन का सत्व। पीपरमेट, जयपाल का तैल, अर्क दुग्ध।

४ **धातु नाशक (Revaltives or Derivatves)**—जो प्रयोग करने पर मास धातु को गला देते है। यथा— क्षार व अम्ल, तूतिया, सोमल, यवक्षार हरिताल, मैनशिल।

---

१. **शोधने तीक्ष्ण** । हे । २. **दाह पाक कर तीक्ष्ण स्रावण** । सु ।

३ **यस्य शोधने शक्ति स तीक्ष्ण ॥ तीक्ष्ण पित्त करं प्रायो लेखनं कफ वात हृत्** । भा प्र ।

मन्द व मन्दत्व

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर अपना कार्य धीरे धीरे करते है वह मन्द द्रव्य कहलाते है। इस अर्थ मे अल्प कार्य, मन्द कार्य व शिथिल कार्य का भी समावेश है।

यह दोष शामक व पित्त नाशक भी माने जाते है।

भौतिक सगठन—यह द्रव्य पार्थिव व आप्य महाभूत के अधिक सगठन से बने होते है।

मूर्तगुण—यह लक्षणो मे मूर्त रूप मे नही पाया जाता। यह कर्मानुमेय गुण है। कुछ लोग प्रवाही द्रव्य के धीरे धीरे प्रवहन को मन्द का मूर्त रूप मानते है। यह उचित नही जान पडता क्योकि मन्द सकल कार्येषु शिथिलोऽल्पो हि कथ्यते। यह विचार है। अत क्रिया मे शिथिल, अल्प व मन्द होना इसका अर्थ मानना उचित जान पडता है।

कार्मुक गुण—मन्द द्रव्य का प्रधान गुण कर्म का शमन करना है। यथा—शमने मन्द ॥

१ **शमन**—यह द्रव्य कर्म का शमन करते है।

२ **कम गति करना**—यह द्रव्य क्रियात्मक रूप मे शिथिल क्रिया कर या गति यात्रा को कम करते हैं। मन्दो यात्रा कर स्मृत ।

३ **मन्द क्रियता**—शरीर के सब कार्य मन्द या शिथिल होते हैं या अल्प होते है। वह विशेष कार्य मन्द का है।

द्रव्य--अहिफेन, गुडुची सत्व, अति विषा, वत्सनाभ, शृगीक, कुटजघन।

नोट—आज कल के कार्य मे मन्द क्रिया वाला द्रव्य साद कर व अवसाद-कर द्रव्य माने जाते है। इनके कई भेद हैं। यथा—अवसादक (Sidetives) २ डिप्रेसेट (Dipressents)

इस अर्थ मे जो भी द्रव्य क्रिया को मन्द कर देते हैं वह सब मन्द माने जा सकते है।

The drugs which are lessening the action of the organs or Producing dullness in the body are known as Manda

सान्द्र व शुष्क गुण

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जमकर धातु वृद्धि स्थौल्य व सघात उत्पन्न करके दृढता उत्पन्न करे उसे सान्द्र या शुष्क गुणवाला द्रव्य कहते हैं।

भौतिक सगठन—सान्द्र द्रव्य पार्थिव भूत प्रधान होते हैं। यथा— तत्र सान्द्र पार्थिवम्। इसमे कोई कोई वायु व तेज भूताधिक्यता भी मानते हैं।

---

१. मन्द सकल कार्येषु शिथिलोऽल्पो हि कथ्यते। भाव प्रकाश।
२. द्रव्याणि मन्द गुण बहुलानि पार्थिवानि आप्यानि। च सू. अ २६
३ शमने मन्द । मन्दो यात्राकर स्मृत । सु सू अ ४६

मूर्त्त गुण—भौतिक स्वरूप मे जो द्रव्य गाढे घने व दृढ होते है वह सान्द्र माने जाते है।

कार्मुक स्वरूप—सान्द्र द्रव्य निम्न गुण करते है।

१ **वृंहण**—शरीर धातुओं को जो बढावे उसे बृहण कहते है।

२ **बंधनकृत**—शरीर के बधक धातुओ को बढाकर जो सधिवद्धन आदि को दृढ करे।

३ **प्रसादन**—शरीर के धातुओ की वृद्धि कर जो उनकी मात्रा बढावे। धातु गति व शारीर क्रिया गति को जो प्रसादन या वर्द्धन करते है उनको सान्द्र कहते है।

दोषाधिष्ठान—यह गुण कफ दोष मे होता है।

धात्वधिष्ठान—यह पार्थिव व आप्य होने से शरीर के प्रत्येक धातु मे रहता है। रस व रक्त मे कम परतु अन्य मे अधिक व्याप्त होता है।

मलाधिष्ठान—मल पुरीष मे यह गुण अधिक होता है।

द्रव्य—पौष्टिक व बल्य जितने भी द्रव्य हैं वह सब इस गुण से युक्त होते हैं। विशेष कर बला, अतिबला, सालम, अष्ट वर्ग के द्रव्य। काकोल्यादि गण।

नोट—प्राय शुष्क द्रव्य ही काम मे आते है। यह सब कठिन व सान्द्र होते हैं। यह शरीर मे जाकर जो धातु वर्द्धन करते है वह सब सान्द्र हैं।

द्रव व द्रवत्व

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर सूक्ष्म स्रोतसो को मृदु आर्द्र करते है तथा शारीर द्रवो को बढाते हैं उसे द्रव द्रव्य कहते है।

भौतिक सगठन—द्रवगुण वाले द्रव्य आप्य तत्व प्रधान होते है।

मूर्त्त गुण—द्रव गुण दो प्रकार का पाया जाता है। एक प्राकृतिक २ रा नैमित्तिक।

प्राकृतिक—इसे सासिद्धिक या स्वाभाविक मानते है। यथा दुग्ध, इक्षुरस फल रस पारद।

नैमित्तिक—जो अग्नि सयोग या द्रव में मिल कर द्रवत्व प्राप्त करते है। यथा नाग, वग, शीसक्षार, लवण, शर्करा, अम्ल आदि।

कार्मुक गुण—शरीर मे जाकर द्रव्य निम्न कार्य करते हैं। यथा

---

१ सान्द्र स्याद् बध कारक। सु सू अ ४६

२. यस्य प्रसादने शक्ति स सान्द्र। हेम

३. न तत्र सान्द्र पार्थिवम्। अ स सू १७। सु. सू. ४१।३

४ वृहत्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तद्धि बृहणम्। च सू २२

१ स्यदन कर्म—यह द्रव द्रव्य भीतर जाकर कलाओ ग्रथियो व विभिन्न अगो से किसी प्रकार का द्रव का स्यदन कराते है। यथा पाचक रस, श्लेष्म कला मे स्राव या अन्य स्यदन कर्म।

२ द्रव वस्तु वृद्धि—शरीर उदक की कमी मे शारीर द्रव की वृद्धि कराते है या रस वाहिनी से रस का स्यदन कराकर लसीका सग्रह व वृद्धि कराते है।

३ प्रक्लेदन—शरीर मे आये हुवे आहार को क्लिन्न करके उसको पचनार्थ गति देते है। यथा महा स्रोतस की कलाये।

४ व्याप्ति—शरीर मे रस के साथ मिल कर रस-रक्त या अन्य धातु को शरीर मे फैलाते हैं व एक स्थान से अन्य स्थान पर पहुचाने मे समर्थ होते हैं।

५ विलोडन—जो द्रव्य द्रव के साथ मिल कर आहार द्रव्य या इस प्रकार के अन्य द्रव्य को विलोडन करते हैं, मथ देते है और आगे जाने देते हैं। आमाशयिक द्रवद्रव्य आत्र गत गति से द्रव सहित विलोडित होते है और महास्रोतस मे जाते है।

नोट—द्रव द्रव्य शरीर मे औषधि व अन्य वस्तु को अपने अंगो के द्रव्य मे मिल कर उसे सक्रिय बनाकर रस का स्यदन व प्रवहन कराते है या कर ते है वह सब इसके भीतर आते है।

द्रव्य—दुग्ध दधि नवनीत शर्करा लवण इक्षुरस नरसार स्फुटिका तुत्थ पारद व अन्य। औषधिया यथा अभ्रक, रस, भस्म जो शरीर मे जाकर आगिक रसो की वृद्धि करते हैं और शरीर की क्रिया को बढाते है या रस स्यदन करते या कराते हैं।

कठिन व कठिनत्व

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर शरीर मे दृढता उत्पन्न करे व शक्ति प्रद हो वह कठिन कहा जाता है।

भौतिक सगठन—कठिन द्रव्य पार्थिव तत्वाधिक होते हैं। यथा

कठिनत्व पार्थिवम्। रस० २। ५८

मूर्त गुण—स्पर्श मे जो द्रव्य कठिन दृढ प्रतीत होते है उन्हे कठिन मानते हैं।

कार्मुक स्वरूप—ये द्रव्य शरीर मे जाकर निम्न कार्य करते हैं यथा .

---

१ द्रव्याणि द्रवगुण बहुलानि आप्यानि। सु० सू० अ० ४६

२ द्रवत्व स्यदन कर्म कारकम्।

३ द्रवत्व स्यदन हेतु। निमित्त संग्रहे तु तत्। कारिका०

४ द्रव प्रक्लेदन। सु०सू०अ० ४६। द्रव क्लेद करो व्यापि। भाव प्रकाश।

६. द्रव विलोडने द्रवः हेम

७ सासिद्धिक द्रवत्वं स्यात्नैमित्तिक मथापरम्। सासिद्धिकं तु सलिलाद्वितीयं क्षितितेजसा। नैमित्तिक वह्नि योगोत्तपनीय घृतादिषु। कारि०

१. दृढत्व कर–शरीर मे दृढता लाना ।

२ दृढत्व–शरीर के धातुओ मे कठिनत्व, दृढत्व पैदा करना ।

३ वात कर–शरीर मे वात दोष की वृद्धि करना ।

४ **मूत्र पुरीष शोषण**–यह द्रव्य मूत्र व पुरीष को गाढा करते है।

सामान्य रूप से यह द्रव्य मास पेशी मे दृढता, कठिनत्व व मास धातु का सचय करते हैं। कडरा शिरात्वक स्नायु व अस्थि मे दृढत्व लाना इनका काम है।

द्रव्य–प्रवाल मुक्ता शख शुक्ति, केलशियम प्रधान व दुग्ध दधि घृत नवनीत काकोल्यादि वर्ग । अश्वगधा, शतावरी, अष्ट वर्ग आदि ।

मृदु व मृदुत्व (Emollient)

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर मास धातु को श्लथ या शिथिल बनाते हैं वह मृदु कहलाते है । यह दाह पाक व स्राव को भी दूर करते है ।

भौतिक सगठन–यह द्रव्य अंतरिक्ष व आप्य भूत प्रधान होते है ।

मूर्त्त गुण–शरीर की कोमलता व मृदुता या द्रव्य मे मृदुता या कोमलता से इस का अभिप्राय हैं ।

कार्मुक स्वरूप–यह द्रव्य शरीर मे निम्न कार्य करते है ।

१. **कोमलता करना**–शरीर के धातु सूत्रो को कोमल करना ।

२ **मृदुता**–शरीर के धातुओ मे मृदुता पैदा करना । यह कार्य दोनो प्रकार मे होता हैं । कलाओ की रूक्षता मे इनका प्रयोग मार्दव पैदा करता हैं । पुन स्निग्ध द्रव्य भीतर जाकर कला त्वचा या मास सूत्र को मृदु बनाते है।

३ **मृदु क्रियत्व**–शरीर के धातुओ मे मृदुता उत्पन्न कर के स्रोतस की क्रिया को तीक्ष्णता से मृदु करते हैं, नियमित बनाते है ।

४ **श्लथन**–मास धातु को ढीला करना ।

५ **अपचन**–पाक न होने देना ।

६ **दाहहर**–दाह को कम करना ।

७ **स्राव नाशन**–स्राव को कम करना ।

८ **कफ कृत**–कफ को बढाना ।

नोट-जिन रोगो मे दृढता आ जाती है उन को दूर करना ।

द्रव्य-गोधूम व्रीही, शालि, षष्ठिक, द्विदल, तैल, घृत, वसा, मज्जा, नवनीत आदि । अन्य गुण भी हैं यथा

---

१. यस्य दृढी करणे शक्ति सः कठिन. । हेम

२ कठिनत्व पार्थिवम् । रसवै० २ । ५८

३. संघातोऽवयवाना काठिन्यम् । आतंक दर्पण ।

४. तत्र द्रव्याणि कठिन गुण बहुलानि पार्थिवानि । च०सू० २६ । ११

नोट–मृदु व कठिन का युग्म चरक का है ।

१ श्लथने मृदु॰ । हेम०

२ यस्य श्लथने शक्ति स मृदु॰ ।

३. मार्दव आंतरिक्ष माप्यं च । रस वै० ३ । ११५

४ मृदुर न्यथा । दाहपाकशमन स्तंभनश्च । सु० सू० ४६

१ आशुकारी--जो द्रव्य शरीर मे शीघ्र ही फैल जाते है उन्हे आशुकारी कहते है। यथा--

आशुकारी तथा शुत्वात्धावत्यभसितैल वत्। सुश्रुत।

आशुराशुकरोदेहेधावत्यभसितैल वत्। भाव प्र०

अर्थात् जो द्रव्य द्रवद्रव्य मे शीघ्रता मे फैल जाते है वह आशुकारी है।

इस प्रकार के द्रव्य यद्यपि सूक्ष्म के भीतर आ जाते है परन्तु यह उसमे भी तीव्र कार्य करते है और द्रव धातु मे शीघ्र विकास पाते है। मरफेन टेशन वनाने वाले द्रव्य की गणना मे आते हैं। द्रव्य यथा--मद्य, सुरा, आसव, वारुणी, अहिफेन, भगा व क्षीरीवृक्ष के क्षीर।

विकाशी--विकाशी विकसन्नेवधानु वधान्विकाशयेत्। सु०

सधिवधास्तु शिथिलान् करोति स विकाशि तत्।

विश्लिष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुक कोद्रवा। शार्ङ्गधर।

परिभाषा--जो द्रव्य शरीर मे विकाश पाते ही ओज का विश्लेषण करके सधि वध को शिथिल कर देते है वह विकाशी माने जाते हैं। कार्य शैथिल्य कर प्रधान व पश्चात् मारक गुण भी होते है।

भौतिक सगठन--वायव्य गुण भूत प्रधान सगठन है।

द्रव्य--सुरा आसव व मद्य, विप व मादक द्रव्य।

व्यवायी- व्यवायिचाखिल देहेव्याप्य पाकाय कल्पते। सु सू ८९

पूर्वं व्याप्याखिल देह तत पाक च गच्छति। व्यवायि तद्यया भगा फेनं चाहिसमुद्भवम्। शा स. पू ख ४

अर्थात्--जो द्रव्य शरीर मे अपना कार्य प्रथम कर के तव पचता है वह व्यवायि है। यथा--अहिफेन, भगा।

भौतिक सगठन--वायु महाभूत की अधिकता से होता है।

सुगध--सुखानुवधी सूक्ष्मच सुगध रोचनो मृदु

सुगध द्रव्य वह है जो कि सुखप्रद सूक्ष्म स्रोतस मे पहुचने वाले व रुचिकारक व मृदु होते है। यथा--ममाले वाले, उटन शील तैल वाले व गध द्रव्य आदि।

दुर्गंध--जो द्रव्य हृलास कर, अरुचिकर व सूंघने मे अप्रिय गध वाले होते है वह हैं।

इस प्रकार कई गुण भी वढ गये है।

९. वीर्य विज्ञान

परिभाषा-- जिस वस्तु के द्वारा कम सम्पादन करने मे द्रव्य समर्थ होता है उसे वीर्य कहते है। द्रव्यस्थित शक्ति ही वीर्य है।

१. येन कुर्वंति तद्वीर्यम् (च सू. अ २६)

नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वा वीर्य कृता हि सा।

२ येन कुर्वंति तद्वीर्यम् (सु सू अ ४१)

३. कर्म लक्षण वीर्यम् (ग. वै सू अ १–सू १६९)

४. रस–विपाक–प्रभावातिरिक्ते प्रभूत कार्यकारिणी गुणे वीर्यम् इति सज्ञा। चक्रपाणि

५ वीर्य द्रव्यस्य तज्ज्ञेयं यद्योगात् क्रियते क्रिया।
ना वीर्यं कुरुते किंचित्सर्वावीर्यकृता हि सा। अ. स

ऊपर के विभिन्न मतो के आधार पर वीर्य की परिभापा स्पप्ट यही सिद्ध होती है कि जिस वस्तु के सयोग मे द्रव्य कार्य करने मे समर्थ होता है उसे ही वीर्य कहते है।

इस परिभापा के द्वारा वीर्य कोई एक वस्तु नही अपितु कार्मुक शक्ति-प्रदायक (गुण) तत्व होता है। कोई रस से, कोई–गुण से, कोई वीर्य से, कोई विपाक मे अपनी क्रिया करते है अत जहा पर जो आधार त व कार्य सम्पादन कराते है उन सबो की वीर्य सज्ञा होती है। चक्रपाणि ने वीर्य की विशेषता की रक्षा के लिये—रस–विपाक–प्रभाव–के अतिरिक्त द्रव्य स्थित प्रभूत कार्य करने वाली शक्ति को ही वीर्य माना है।

कुछ लोगो ने कहा कि वीर्य द्रव्य स्थित एक शक्ति है यथा—

शक्तिमात्र तु वीर्यस्यादिति केचिद्वुधाविदु।
तन्मते द्रव्य रसयो:, पाकस्य च गुणस्य च
मृद्वादे स्वक्रियोत्पादे शक्तिवीर्यमिति स्थिति।

इस वीर्य की पृथक् सत्ता मानने के लिये ही रसगुण–विपाकादि मे वीर्य प्रधान है और पृथक वस्तु है अत वीर्य को शक्ति स्वरूप माना है।

वीर्य के शाब्दिक अर्थ

वीर्य शब्द—वीर विक्रान्ते इस धातु से निष्पन्न होता है अत वीरयते, विक्रान्त:, कर्म समर्थो भवति अनेन इति वीर्यम्। अत कर्म करने मे समर्थ होने के रूप पराक्रम या विक्रम को वीर्य मानते है अत कोपकारो ने इसे–उत्साह, अध्यवसाय, अति शक्ति, तेज व प्रभाव को वीर्य माना है। यथा—शुक्र की भी वीर्य सज्ञा है।

"उत्साहो ध्यवसाय स्यात्, सवीर्यातिशक्तिभाक्" (अमरकोश)
वीर्यं तेजप्रभावयो। शुक्रे शक्तौ च शुक्रं तेजोरेतसी च वीर्य-वीर्येन्द्रियानि च।

अत इन सामान्य अर्थों मे ले तो भी–शक्ति–अतिशक्ति–अध्यवसाय व पराक्रम सूचक होता है।

द्रव्य मे कर्म करने की विशिप्ट शक्ति को वीर्य कहते है। अत चरकादि अनुमत अष्टाग सग्रह की परिभापा—

"वीर्यं द्रव्यस्य तज्ज्ञेय यद्योगात् क्रियते क्रिया।"

इस सार्वभौम सिद्धान्त से परिभाषा होती है। इसमे शक्ति आदि सब का समावेश हो जाता है। यदि ऐसा न मानें तो द्विविध सम्प्रदाय की कल्पना कर सकते है। यथा—

१. शक्तिरूप वीर्य वादी २ पारिभाषिक वीर्यवादी
पारिभाषिक वीर्यवादियों के हिसाब से दो भेद होते हैं—
१ द्विविध वीर्य वादी २ अष्टविध वीर्यवादी
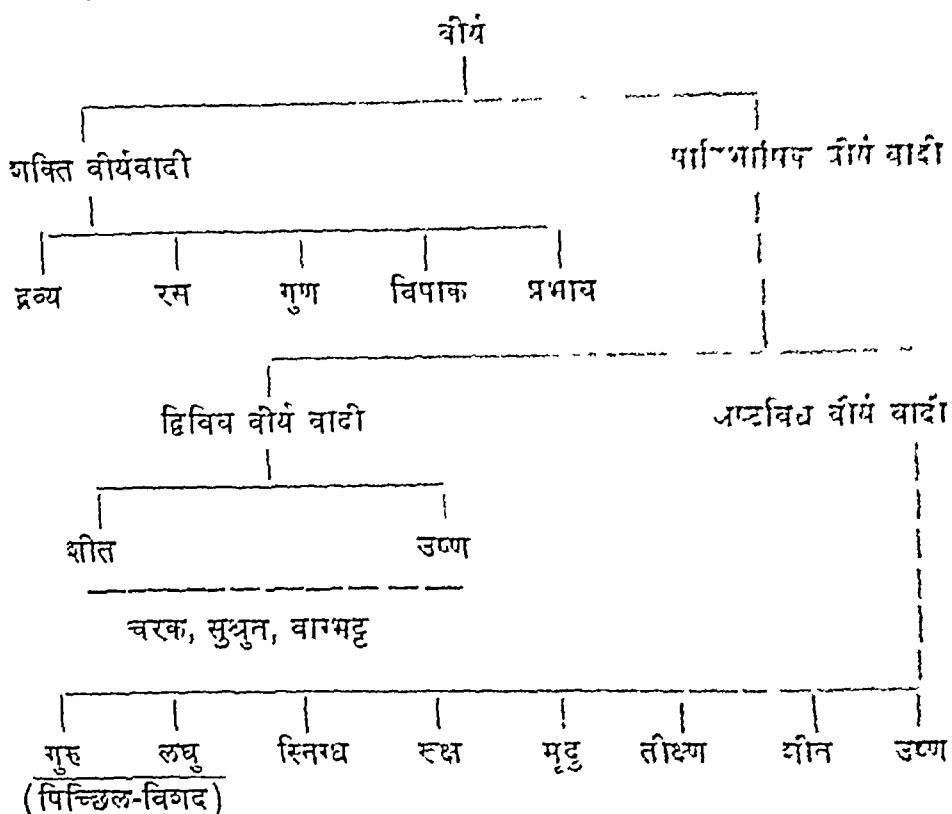
कुछ का विचार निम्न है। यथा—

१ पारिभाषिक वीर्यवादी २ गुण वीर्य वादी ३ शक्त्युत्कर्षवीर्य वादी ४ बहुविध वीर्य वादी (कर्म पक्ष)

नागार्जुन ने जो कर्म लक्षण वीर्य मे माना है वह उसे प्रेरणा सुश्रुत से मिली है। सुश्रुत ने प्रभूतकार्य कारिणिगुण मे वीर्य सज्ञा देकर—कर्म को ही वीर्य माना है। यथा——सुश्रुत मे वीर्य निरुपण मे निम्न प्रकार से लिखा है

वीर्यं प्रधानमिति। कस्यात्-तद्वशेनौषध कर्म निष्पत्ते । इहौषध - कर्माणि उर्ध्वाधोभागोभयभाग सशोधन-सशमन-सांग्राहिकाग्निदीपन-पीड़न, लेखन-बृहण-वाजीकरण-श्वयथुकर-विलयन,दहन-दारण मादन-प्राणघ्न-विषप्रशमनानि वीर्य प्राधान्याद्भवन्ति । सु० सू० अ० ४०

अत नागार्जुन ने सुश्रुत के विचार "तद्वशेनौषधकर्मनिष्पत्ते ." को लेकर जो उदाहरण सुश्रुत ने दिया उसी प्रकार का कर्म अन्य भी निरूपण कर-"कर्म लक्षण वीर्यम् परिभाषा माना है।

शक्तिरूप वीर्य—द्रव्यगुण सग्रह टीका मे—वीर्य को शक्ति माना है

यथा—"वीर्य शक्ति । सा च पृथिव्यादीना भूताना य सारः भाग तदतिशय रूपाबोध्या। चिन्त्याचिन्त्य क्रिया हेतुत्वेन ।"

चिन्त्य तत्र चिन्त्यक्रिया हेतुर्या द्रव्य रसादीना स्व स्व कर्मणि स्वभाव-सिद्धा शक्ति ।

अचिन्त्य –अचिन्त्यक्रिया हेतुश्च प्रभावापपर्याया द्रव्याणा
रसाद्यनुरूपा कार्यकारण शक्तिः ।

इस प्रकार की परिभाषा करने पर चक्रपाणि का विचार है कि वीर्य शब्द जो पारिभाषिक वीर्य शब्द है इसका इस वीर्य से ग्रहण नही होता वह तो शक्ति मात्र ही रहता है। यदि ऐसा ही माने तो सब ही द्रव्य रसादि द्वारा या प्रभाव से अपना अपना कार्य करते हैं। इस दशा मे सब की सज्ञा शक्तिरूप वीर्य मानना पडेगा।

अष्टाग सग्रहकार-गुणोत्कर्ष को ही वीर्य मानते है–

"उष्णशीत गुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं द्विधास्मृतम् ।"

(अ० स० सू० अ० १– अ०हृ०सू०अ० १)

शक्ति के अतिरिक्त गुणोत्कर्ष को वीर्य माना पडेगा। अष्टाग सग्रह का विचार है कि गुर्वादिगुण शक्ति मत है अत वीर्य मानना चाहिए–यथा –

गुर्वाद्या वीर्यमुच्यन्ते शक्तिमन्तोऽन्यथा गुणा
परसामर्थ्य हीनत्वात् गुणएवेतरे गुणा ।

अत –शक्ति रूप वीर्य–गुणोत्कर्ष रूप वीर्य, पारिभाषिक वीर्य इस प्रकार वीर्य की परिभाषा कर्म सम्पादन सामर्थ्यमान कर ही चलता है।

अत –भिन्न-भिन्न रूप से वीर्य की परिभाषा होती है यथा–चरक–सुश्रुत–द्रव्य के जिस तत्व के द्वारा कार्य निष्पन्न होता है उसे ही वीर्य कहते हैं इस प्रकार द्रव्यरूप, गुणरूप, कर्मरूप वस्तु जो कर्म निष्पन्न करते है वीर्य माने जाते है।

वाग्भट्ट अष्टाग सग्रह	गुणोत्कर्ष ही वीर्य होता है। अत उत्कृष्ट शक्ति सपन्न गुण को वीर्य मानते हैं।

नागार्जुन–- कर्मलक्षण ही वीर्य मानते है। इनपर क्रमश विचार उपस्थित करते हैं।

गुण शब्द का प्रयोग–-गुण शब्द का प्रयोग दो प्रकार का है।

(१) लौकिक (२) शास्त्रीय

लौकिक अर्थ—-लौकिक अर्थ मे चक्रपाणी ने चरक के **"वीर्यं तु क्रियते येन या क्रियानावीर्य कुरुते किंचित् सर्वावीर्यकृता हि सा"** (च सू २६) टीका मे स्पष्ट लिखा है कि यहा वीर्य का प्रयोग लौकिक है। यथा—-

अय च वीर्य शब्दः पारिभाषिक वीर्य वचनो न भवति। किन्तु शक्तिमात्र वचन तेन प्रभाव रसादय सर्वं एव स्वकार्यं कुर्वन्त शक्तिपर्यायरूप वीर्यं वाच्या इति ज्ञेया। ऐसे ही अष्टाग सग्रह मे **"गुवाद्यावीर्यमुच्यन्ते–शक्तिमन्तोऽ-न्यथा गुणा"**। की टीका मे **गुर्वादीनां वीर्य संज्ञाविशिष्टाम्नायविहितार्थ लौकिकीति समुद्भाव्यते।** ऐसी दशा मे वीर्य का अर्थ बलवान–अधिक शक्ति सपन्न (अ स सू १७) होता है।

शास्त्रीय-येन कुर्वन्ति तद्वीर्य उस रूप में चाहे रस हो, गुण हो-प्रभाव या द्रव्य हो सब वीर्य मानता होते हैं।

द्रव्यवीर्य वाद—धन्वन्तरि व शिवदास

पंचमहाभूतात्मक द्रव्यों में पंचमहाभूतों के "सारातिशयरूप अंश" को शक्ति मानकर उसे वीर्य संज्ञा प्रदान की गई है यथा—शिवदास "वीर्य शक्ति. सा च पृथिव्यादीनां भूतानां य सारभागस्तद्वति शयरूपा बोध्या। सा च द्विविधा-चिन्त्याचिन्त्यक्रिया हेतुत्वेन तत्र चिन्त्य क्रिया हेतुर्या द्रव्य रसादीनां स्वस्वकर्मणि स्वभावसिद्धा शक्ति, अचिन्त्यक्रिया हेतुश्च प्रभावापर पर्याया द्रव्याणां रसाद्यनु रूपा कार्यकारण शक्ति उक्त च—

भूतप्रसादातिशयो द्रव्येपाके रसेस्थित ।
चिन्त्याचिन्त्य क्रियाहेतु वीर्य धन्वन्तरेमतम् ।

अत द्रव्य में पाचभौतिक अतिशय संघटनात्मक जो तत्व द्रव्य-रस या पाक में स्थित हो वीर्य कहलाते हैं। चरक ने द्रव्य की परीक्षा में सामान्य रूप से द्रव्य के विशिष्ट कार्यकर्तृत्व रूप तत्व विशेष को स्पष्ट रूप में वीर्य कहा है—

"येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्"

यहा स्पष्टार्थ है कि द्रव्य जिस तत्वांश विशेष के द्वारा कार्य करता है उसे ही वीर्य कहते हैं। इस अर्थ में आधुनिक एक्टिव तत्व (Active Principle) को वीर्य मानने में सुगमता होती है। ऊपर का द्रव्य के रस-पाक व द्रव्य में भूतप्रसादातिशयात्मक सक्रिय तत्व ही वीर्य है चाहे उस की क्रियात्मक गति चिन्त्य हो या अचिन्त्य हो।

आचार्य बालकृष्ण अमरजी पाठक ने जो (Active Principle) को ही वीर्य मानने को कहा है वह सर्वसम्मत शास्त्रीय विचार नहीं अपितु व्यक्तिगत विचार है और वीर्य के एकांगी अर्थ का बोधक है। आयुर्वेद द्रव्य के भीतर के, गुणसार, शक्त्युत्कर्ष, भूतप्रसादातिशयतत्व आदि सब को वीर्य मानता है। एक्टिव प्रिंसिपल द्रव्यगत क्षेत्र मात्र में सीमित है। गुणसार-शक्युत्कर्ष, भूत-प्रसादातिशयतत्व सब में नहीं।

गुण वीर्य वाद—

यह दो प्रकार का माना गया है (१) शास्त्रीय या पारिभाषिक, दूसरा लौकिक।

१ चरक सुश्रुत यह दोनों द्रव्यस्थित कर्म कर्तृत्व उत्कृष्ट शक्ति को वीर्य मानते हैं। चरक ने **ना वीर्यं क्रियते किंचित्सर्वावीर्य कृता हि सा** (च सू २६) में लिखा है।

चक्रपाणी दत्त इसकी टीकामें कहा है कि वीर्य शब्द को पारिभाषिक वीर्य नहीं मानते किन्तु शक्ति मात्र वचन मानते है। इसमें प्रभाव रस आदि अपने अपने कार्य को करते हुवे शक्ति पर्याय रूप वीर्य मानते हैं।

शक्तिमात्र तु वीर्यं स्यादिति केचिद्बुधाविदु ।
तन्मते द्रव्यरसयो पाकस्य च गुणस्य च ।
मुद्गादेः स्व क्रियोत्पादे शक्ति. वीर्यमिति स्थिति ।

अत द्रव्य स्थित प्रवल कार्य कर्तृत्व शक्ति जिसमे हो उसी मे (रसादि मे) शक्ति का अधिष्ठान मानते है ।

२ सुश्रुत वाग्भट्ट उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न गुणो को वीर्य मानते है । जब गुर्वादि मे से ८ विशिष्ट शक्ति उत्कर्ष से सम्पन्न होते है तो उनकी सज्ञा वीर्य होती है । इस प्रकार गुण वीर्यवादी की दो शाखाये हैं--

१ शक्तिमात्र वीर्यवाद-(शास्त्रीय)

२ पारिभाषिक वीर्यवाद-(लौकिक गुणवीर्य वाद) लोक प्रसिद्ध होने से लौकिक मानते हैं-वृद्ध वाग्भट्ट अष्टाग हृदय का यह तर्क है कि

वीर्य पुनर्वदन्त्येके गुरुस्निग्धहिम मृदु ।
लघुरूक्षोष्ण तीक्ष्णं च तदेवमतमष्टधा ।

चरकस्त्वाह वीर्य तद्येन या कियते क्रिया । नावीर्य कुरुते किंचित् सर्वावीर्य कृता हि सा । गुर्वादिष्वेव वीर्याख्या तेनान्वेर्थेति वर्ण्यते । समग्रगुण-सारेषु, शक्त्युत्कर्ष विवर्तिषु व्यवहाराय मुख्यत्वात्, वह्वग्र ग्रहणादपि । अतश्च विपरीतत्वा (त्सम्भ) त्सम्भवत्यपि नैवं सा । विवक्ष्यते रसाद्येषु वीर्यं गुर्वादयोह्यत
अष्ट सू अ ९

गुणवीर्य वाद--पूर्वोक्त अष्टागहृदय के विचार व सुश्रुत के विचार के ८ गुण समुदाय मे विशेष गुण सारता, शक्त्युत्कर्ष, व्यवहार मुख्यता, बहुलता, उपयोगिता व प्रवलता के गुणो से युक्त है अत उन्हे ही वीर्य मानना चाहिए । शेष १२ को सामान्य गुण-यथा--

१ **समग्र गुण सारता**--वीस गुणो मे से ८ ही (गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष व मृदु तीक्ष्ण) अधिक सारवान है । जठराग्नि के सयोग होने के वाद भी चिरकाल तक वने रहते है स्वरूप व गुण मे परिवर्तन नही होता अत इनमे गुण सारता अधिक देखी जाती है ।

२. **शक्त्युत्कर्ष**--रस व अन्य गुणो की अपेक्षा इनमे शक्ति का उत्कर्ष अधिक होता है ।

३. **व्यवहार मुख्यता**--व्यवहार मे भी इन आठ का ही विशेष विवरण मिलता है अन्य का नही ।

४. **बह्वग्रग्रहणात्**--बाहुल्यता । -द्रव्य समूह मे वीस गुणो मे से ये आठ ही अधिक मिलते हैं ।

५. **उपयोगिता**--शारीरक्रिया मे इन आठो की ही उपयोगिता है ।

६. **बल प्राबल्य**--अपनी शक्ति व प्रवलता के कारण ये आठ रसादि के कर्मो को अभिभूत कर देते है । किसी मधुर रसवाले द्रव्य मे यदि तीक्ष्ण गुण हो तो वहा मधुर रस का उपलेपादि कार्य नही हो पाता ।

इन उपर्युक्त विशेषताओ के आधार पर गुणो मे से आठ को वीर्य मानना पडता है। यदि इसे न भी माने तो द्विविध गुण को तो सब ही मानते है। यथा—शीत व उष्ण। यहा पर भी शीत व उष्ण ये द्विविध वीर्य गुणो से ही बनते है।

ये समग्र ससार के–अग्नि व सौमीय होने के आधार पर द्विविधवीर्य विभाजन है यथा—

१ उष्ण शीत गुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं द्विधा स्मृतम्। अ स अ १
नानात्मकमपिद्रव्य अग्निषोमौ महाबलौ।
व्यक्ताव्यक्त जगदिव, नातिक्रामति जातुचित्। अ हृ सू. अ ९

अत जब कि—

गुर्वाद्या वीर्यमुच्यन्ते शक्तिमन्तोऽन्यथा गुणा
पर सामर्थ्य हीनत्वात् गुणाएवेतरे गुणा.। अ स. सू अ ११

तो दो प्रकार के वीर्य शीत और उष्ण भी गुण समुदाय से प्रधान रूप मे वीर्यवत् मान्य होते है। यथा—

वीर्यं शीतोष्णमिति द्विविधम् चरक सू अ २६
उष्णशीत गुणोत्कर्षात्। तत्रवीर्यं द्विधा स्मृतम्। अ स सू अ १
नानात्मकमपि द्रव्यमग्नि षोमौ महाबलौ। अ हृ सू अ. ९
व्यक्ताव्यक्तं जगदिव, नातिक्रामति जातुचित्। अ हृ सू अ ९

सुश्रुत ने गुण वीर्यवाद पर अपना विचार निम्नरूप मे दिया है यथा—
तत्र उष्ण स्निग्धौ–वातघ्नौ
शीतमृदुपिच्छला – पित्तघ्ना
तीक्ष्णरूक्ष विशदाः – श्लेष्मघ्ना। सु सू ४१–११

इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये गये है। यथा—

सैंधव	लवणरस	मृदुशीतवीर्य	सपित्तशामक
काकमाची	तिक्त रस	उष्णवीर्य	पित्तवर्धक
मत्स्य	मधुर रस	उष्णवीर्य	पित्तवर्धक
मूलक	कटु रस	स्निग्ध वीर्य	कफवर्धक
कपित्थ	अम्ल रस	रूक्ष वीर्य	कफशामक
मधु	मधुर	रूक्ष वीर्य	कफशामक

ये वीर्य रसो के अनुकूल कार्य न होने देकर अपने बल से उपर्युक्त गुण करते है अत वातशामक रसो मे यदि रौक्ष्य लाघव व शैत्य हो तो वे वातहर नही हो सकते जो पित्तशामक रस है उनमे यदि तैक्ष्ण्य–और लघुता हो तो वे पित्तशामक नही होते इसी प्रकार श्लेष्म शामक रसो मे यदि स्नेह गौरव शैत्य ये वीर्य हो तो वे श्लेष्मशामक नही हो सकते। यथा—

गत पृष्ठ का कोटेशन

१. समग्रगुणसारेषु शक्त्युत्कर्षविवर्तिषु। व्यवहाराय मुख्यत्वाद्बह्वग्रग्रहणादपि। अतश्च विपरीतत्वात्, सम्भवत्यैपिनैव सा। विवक्षते रसाद्येषु वीर्यंगुर्वादयो ह्यत। अ हृ सू अ ९

ये रसा वातशमना भवति यदि तेषु वै ।
रौक्ष्यलाघवशैत्यानि, न ते हन्यु समीरणम् ।
ये रसा पित्तशमना भवति यदि तेषु वै ।
तैक्ष्ण्यौष्ण्य लघुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिण: ।
ये रसा श्लेष्मशमना भवति यदि तेषु वै ।
स्नेहगौरवशैत्यानि न ते तत्कर्मकारिण ।

सु सू अ ४०-६-७-८-९

इसी प्रकार वीर्य को प्रधान मान करके सुश्रुत ने भी कई वीर्य माने है । यद्यपि अष्टविध का उल्लेख किया है ।

सख्या	वीर्य	भूतोत्कर्ष
१	शीत	पृथ्वी + जल
२	उष्ण	अग्नि
३	स्निग्ध	जल
४	रूक्ष	वायु
५	गुरु	पृथ्वी + जल
६	लघु	अग्नि + वायु + आकाश
७	मृदु	जल – आकाश
८	तीक्ष्ण	अग्नि

गुणात्मक वीर्यो की निष्पत्ति इस प्रकार भूतो द्वारा सुश्रुत मानते है ।

सु. सू अ ४२।११

सुश्रुत व वीर्य निरूपण

सुश्रुत ने वीर्य का निरूपण विभिन्न प्रकार से किया है ।

वीर्य--रस गुणादि से विशिष्ट इसलिये है कि प्रथम सामान्य प्रकार द्वितीय विशेष प्रकार ।

सामान्य--सूत्रस्थान के ४१ अध्याय के ५ वे सूत्र मे सुश्रुत ने जिस वीर्य का वर्णन किया है वह चरक की तरह सामान्यार्थ वाचक है । यथा—

अनेन निदर्शने नानौषधिभूत जगति किंचिद्द्रव्यमतीति कृत्वा त त युक्ति विशेषमर्थं चाभिसमीक्ष्य स्ववीर्य गुणयुक्तानि द्रव्याणि कार्मुकाणि भवन्ति । तानि यदा कुर्वन्ति स काल, यत् कुर्वन्ति तत्कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वीर्य--यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, यथा कुर्वन्ति स उपाय । यन्निष्पादयन्ति तत्फलम् इति । (सु सू ४१-४५) यहा **येन कुर्वंति तद्वीर्यम्** यह वाक्य सामान्यार्थ वाचक है । अर्थात् द्रव्य जिस द्रव्याश विशेष के द्वारा कार्य करता है वह वीर्य कहलाता है ।

विशेष—सूत्र स्थान ४० में—

१. वीर्यसंज्ञा गुणा येऽष्टौ तेऽपि द्रव्याश्रया स्मृता । सु सू अ.४०-१७

केचिदष्टविधमाहुः शीतमुष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदुतीक्ष्ण.

सुश्रुत ने वीर्य को पृथक मानकर स्पष्ट उदाहरण दिया है कि वीर्य प्रधानम्—कस्मात् तद्वशेनौषधकर्म निष्पत्ते ।

अर्थात् द्रव्य अपने वीर्य के कारण संशोधन—संशमन*

*साग्राहिक, अग्निदीपन, पीडन, लेखन विषप्रशम आदि अपने वीर्य से करती है ।

ये वीर्य स्वबलगुणोत्कर्षाद्समभि भूयात्मकर्म कुर्वन्ति ।

अपने बल व गुणोत्कर्ष से रस को दबाकर अपना कार्य करते है। अत वीर्य रस से पृथक द्रव्य हैं । उदाहरण मे स्पष्ट यह कहा है कि—

महत्पञ्चमूल का रस कषाय तिक्तानुरस होते हुये भी उष्ण होने से वातशामक है ऐसे ही—

कुलत्थ	कषाय होने से	स्निग्धवीर्य	वातशामक
पलाण्डु	कटुक	,, ,,	,,
इक्षुरस	मधुर	शीतवीर्य	वातकारक
पिप्पली	कटु	मृदुशीतवीर्य	पित्तशामक
आमलक	अम्ल	,, ,,	,,

निमिविदेह के विचार कर्मानुमेय वीर्यवादी है । यथा—

अधोभाग= अब्जभूमिज

उर्ध्वगम्= तेजो वायुज

उभयतोभाग= मही—अग्नि-अनिल

साग्राहिकम्= पृथिव्यनिल सभवम्

संशमनम्= वायुसोम मही जात द्रव्य संशमन विदु ।

दीपनम्= पृथिव्यनिल बाहुल्याद्दीपन परिचक्ष्महे ।

जीवनीय= पृथिव्यपा गुणैर्युक्त जीवनीयमिति स्थिति ।

प्राणघ्न-मदनम्=वाश्वतल स्वभावाच्च प्राणघ्न मदन मतम् प्राणघ्न तीव्रभावात्तु दोषधातव प्रकोपणम् । मदनचलधातुत्वाद्दोष कोपन मेवतु ।

शीतवीर्य= अपा गुणबहुत्वात्तु शीतीकरणमिष्यते ।

शोफकृत= भूम्यब्ज शोफकृत विद्वि

शोफघ्न= शोफघ्न ख वायुजम् ।

पाचनम् अग्नेस्तु गुणबाहुल्यात् पाचन परिचक्ष्महे ।

दारणम्= क्षरणमारुताग्नेयम्

रोपणम्= भूजलानिलम् ।

दशपंच च कर्माणि गुणानां पांच भौतिकात्
द्रव्येष्वेव विजातीयात् कर्माणि दशपच च ।

इस प्रकार यद्यपि कर्म कहकर निमि ने १५ प्रकार के कर्मों का उल्लेख किया है किन्तु रसवैशेषिक के भाष्यकार इन्हें कर्म लक्षण वीर्य कहते है और अपने पक्ष मे इनका प्रयोग किया है ।

कर्मलक्षणं वीर्यम् (र वै सू अ १, सू १६६)

कर्मलक्षण वीर्य-नागार्जुन

	रस	गुण	भौतिक
साग्राहिक वीर्य	लवण	तीक्ष्ण-उष्ण	पार्थिव-वायव्य
दीपनीयवीर्य	कटुकाम्ललवण	तीक्ष्ण-उष्ण-लघु	आग्नेय
मदनीय वीर्य	षड्रस	तीक्ष्ण-उष्ण-लघु विशद-रूक्ष	आग्नेय-वायव्य
प्राणघ्न वीर्य	,,	शीघ्नय-शौपिर्य-व्यवायित्व-विकाशीत्व	आग्नेयम्
प्रदरण वीर्य	कटुकाम्ल-लवण	उष्ण-तीक्ष्ण-लघु	पार्थिव-आग्नेय
श्वयथुजनन वीर्य	लवण-अम्ल-कटु-तिक्त	तीक्ष्ण-उष्ण-रूक्ष	आग्नेय-वायव्य
विलयन वीर्य	षड्रस	शीत-मृदु-पिच्छिल	सौम्य-पार्थिव
प्रशमन वीर्य	विपरीत रस	विपरीत गुणयुक्त	वायु-सोम-महीजात
पित्त निग्रहण वीर्य	मधुरतिक्त-कषाय	शीत-मृदु-गुरु-पिच्छिल	पार्थिव-
श्लेष्म निग्रहणवीर्य	कटुकाम्ल-लवण	रौक्ष्य-वैशद्य	पार्थिव
दीपनीय	कटुअम्ल-लवण	लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण	आग्नेय
सर्वप्रकोपण	प्राणघ्न-मदन	प्रदरण द्रव्य	सर्वप्रकोपण होते है
वातपित्तप्रकोपण	श्वयथुजनन-विलयन-प्रशमनम् वीर्य		
मेध्यम्	मेधाय हितम्		
आयुष्यम्	आयुषेहितम्		
वर्चस्यम्	वर्च से प्रमायैहित वर्णायहित वर्चस्यम्		
वृष्यम्=	वृष्यायहितम् । अचिन्त्य वीर्य वाली परिभाषाये है		
वयस्थम=	वयसे हितम्		
रक्षोघ्न=	रक्षासि अपहृति वीर्येण		
पुसवनम्=			

सौभाग्यम् = इनको-कर्माणानुमेयासपत्ति (पृ०-६) कहकर नागार्जुन ने वीर्यो को कर्मानुमेय वतलाया है।

विशल्यम् =

विमोक्षयम् =

उन्मादनम् =

क्लैव्यम् =

वशीकरणम् =

विद्वेपणम् =

प्रवासन

आकर्पण =

अतर्वानिक =

पौष्ठिक

राजद्वारिक = राजवश्यकरम्

नागार्जुन का अतिम हैतु है आगम[1] मे वर्णित होना अर्थात आयुर्वेद के शास्त्रो मे वीर्य को पृथक माना है व प्रधानता द्योतित की है। यथा—

वीर्यंत कर्म सामर्थ्यं द्रव्याणा भिषजोविदु ।

अत नागार्जुन वीर्य को प्रवान उसकी कर्मानुमेया मपत्ति होने के कारण कर्तृत्व रूप को ही वीर्य मानते है। यथा--

कर्मानुमेया सपत्ति । (र वै मू ३०)

अत मुश्रुत की तरह इतने तर्क देने के वाद उनका कथन है कि जितने भी कर्म रूप मे उपपादित कर्म होते है वे सत्व वीर्य है। और अलग अलग उदाहरण देते है। यथा--

वीर्याणि पुन श्छर्दनीयानुलोमनीयोभयतो भाग प्रशमनीय संग्रहणदीपनीय-प्राणघ्न, मदन-विदारण-श्वयथुकरणविलयनानि (र वै. अ ४-१)

इस प्रकार विभिन्न कर्मो को नागार्जुन कर्म स्वरूप वीर्य प्रतिपादन करते है। गुणवीर्य वाद का यह खण्डन करते हैं जैसा कि पूर्व मे विशिष्ठ शक्ति मपन्न गुण ही वीर्य है कहा गया है यह इस विचार से सहमत नही है। अत उनका वीर्य एक नही अनेक है। यह विस्तारपूर्वक और सहेतुक वर्णन है-जो उत्कृष्ट कार्यकर तत्व (Active principle) को वीर्य मानते है उनके पक्ष मे विचार सहेतुक दृष्टिगोचर होता है। यथा-[2]छर्दनीय वीर्य-सर्व रसाश्रय लेकर होता है इसका तात्विक मगठन आग्नेय वायव्य है।

अनुलोमनीय वीर्य-[3] सर्वरसाश्रित परन्तु पार्थिवाक्य भौतिक सगठव प्रधान

१- **आगमाच्च** (र वै १-१८०)

२ **सर्वान् रसानाश्रित्य छर्दनीयम्** (र०वै०अ०-४ मू०२)

३ **तथानुलोमनीयम्** (मू०४)

होना है। छर्दनीयानुलोमनीय–[४] वमनविरेचनात्मक वीर्य वातवर्धकरस, कटुतिक्त-कषाय व पित्तजनक गुण तीक्ष्ण-उष्ण-लघु गुण युक्त होता है। इनका भौतिक सगठन पार्थिव-आप्य तैजस व वायव्य होता है।

प्रशमन–[५] छर्दन व विरेचन का शमन विपरीतगुण वाले रस व गुणाधान से होता है। यथा–मधुराम्ल लवण रस व गुरु-उष्ण-स्निग्ध-पिच्छिल गुण वातप्रशमन। इसी प्रकार अन्य किसी भी कर्म का प्रशमन तत्प्रत्यनीक गुणवाले द्रव्यो मे होता है।

नागार्जुन का कर्म वीर्यवाद

परिभाषा–नागार्जुन का विचार है कि द्रव्यो मे वीर्य प्रधान तत्व होते है अत वीर्यवान् द्रव्य कार्यशील और निर्वीर्य त्याज्य होते है। अत कार्यकरत्व ही प्रधान हेतु है जो वीर्य द्वारा निष्पन्न होते है। चरक ने "येन क्रियते तद्वीर्यम्" कहा था उसे ही नागार्जुन दूसरे शब्दो मे कहते है –

तेन कर्म करणात् (र०वै०अ० १–१३१)

औषधि स्थित वीर्य के द्वारा ही कर्म होता है और उसका साधक वीर्य है देवराक्षस-गंधर्व-यक्षादि कृतरोग भी वीर्यवान औषध द्वारा सुचिकित्स्य होते है यथा–

वर्जयंति यथारण्यं ससिंह मृगपक्षिणः।
वर्जयति ग्रहास्तद्वत् सौषधं सूतिकागृहम्।

अत वीर्य ही प्रधान माना जाता है। नागार्जुन का कथन है कि वीर्यवान औषधि की क्रिया चिन्त्य ही नही अचिन्त्य[१] भी होती है और स्थावर जगम विष भी वीर्यवान[२] द्रव्य द्वारा चिकित्सित होते है। दुंदुभी स्वनीय अध्याय मे नगाडे[३] के ध्वनि द्वारा भी विष निर्वीर्य होते है तथा अगद के दर्शन मे भी विषनाश होते है पताका तोरण भी अगद युक्त होने पर दर्शन मात्र से विष को प्रभाव हीन करता है। नागार्जुन की युक्ति है कि द्रव्यो मे रसो का कार्य समान गुणवाला[४] हो ती भी क्रिया विशिष्ट प्रकार की हो जाती है। यथा –

४–यथाप्रत्यनीक प्रशमनम् (सू०८)

५–तत्पार्थिवमाप्य च। वातलांश्चरसान्पित्तलाश्च गुणानुभयतो भागम् (सू०६)

६ देव प्रतिघातात् (र०वै० १–१३३) –वीर्य विषयेचानधिकारात्तेषाम्– (र०वै० १–३४)

१–अचिन्त्यत्वात् (र०वै०१–१३८), रसगुण व्यतिरेकेण चोपलब्धे कर्मणस्तस्य (र०वै० १–३५)

२–विषप्रतिघातात् (र०वै० १–१३४)

३–दर्शनात्श्रवणादपि (र०वै० १–१३५)

४–तुल्येषु रस–गुणेषु विशेषात् (र०वै०१–१३६)

१–पिचुमन्दतिक्त रस होने से कुष्ठनाशक है और तिक्तरस का श्यौनाक अग्निमान्द्यघ्न है। अत वीर्य ही प्रधान है रस नही।

२–कभी कभी द्रव्यो के सयोग[५] मे उन द्रव्यो की शक्ति के विपरीत कार्य होता है यह विशेष शक्ति द्वारा ही होना है। यथा मधु घृत + जीवन बृहण तर्पण के बदले विषवत प्राणनाशक होता है।

३–कभी औषधियो के योग मे बने द्रव्य की क्रिया अद्‌भुत होती है। यथा–

पारद सस्कार से–अग्नि मे न जलना, खेचरत्वहोना या अदृश्य होना इत्यादि। अत रसगुण विपाकातिरिक्त प्रभूत कार्य कारिणि गुणे वीर्य सज्ञा ऐसी वस्तुस्थिति मान ले तो–द्रव्यातिशयस्थितासे वस्तु (उत्कृष्टाश) Active Principle) को वीर्य मानकर इस प्रकार कह सकते है।

शक्ति–(Energy) Power Energy, Potency

यह शब्द आधुनिक कह सकते है परिभाषा एनर्जी भी निम्न है –

The energy of the body is its Capacity for doing work and measure of energy is work

इसका अर्थ–

वीर्यं द्रव्यस्य तज्ज्ञेय क्रियते येन या क्रिया
नावीर्य कुरुते किंचित् सर्वा वीर्यकृता हिसा

अत वीर्याधान औषधि मे करने के लिए–

(१) औषधि के विशिष्ट अग को प्रयोग करते है

(२) विभिन्न ऋतु मे सग्रह करते है

(३) विभिन्न प्रकार के सस्कार करते है

(४) इस की रक्षा के लिए सरक्षण करते है

(५) सयोग का नित्य ध्यान मे रखते है आदि। क्योकि––

वीर्यतः कर्म सामर्थ्यं द्रव्याणा भिषजो विदु ।

अर्थात्–शरीर की शक्ति कार्य कर्तृत्व की शक्ति को कहते है और इसकी माप कार्य क्षमता से होती है। इसी अर्थ मे वीर्य शब्द का प्रयोग किया गया है यथा–**कर्म वीर्य वाद**–

नागार्जुन गुणवीर्य वाद को अनुचित मानते है उनके मत मे रस गुण आदि वीर्य नही माने जा सकते क्योकि तुल्य रस व गुण होने पर भी कर्म विशेष दिखाई पडता है। अत वह कर्म लक्षण शक्ति को वीर्य मानते है। उनका मत है कि रसगुण आदि रहने पर भी कार्य हो जाता है। अत वीर्य रसादि पदार्थो मे एव गुणो मे पृथक् ज्ञात होता है अत कर्मात्मक वीर्य स्वरूप मानना इनका अभिप्राय है।

५–संयोगास्तनिवृत्ते (१–१३८)

६–दर्शनाचाद्‌भुतादीना कर्मणाम् (र०वै० १–१३९)

यदि ऐसा न माने और गनित सम्पन्न गुणोत्कर्ष को ही वीर्य मानें तो इससे गुण से वीर्य सिद्ध नही होता-उत्कृष्टता व हीनता से वस्तु का स्वरूप नही बदलता। उत्कृष्ट गुण गुण ही रहेंगे। यथा-

नील, नीलता-नीलतम से नीलत्व को ही मात्र है। अत गुण गुणोत्कर्ष के नाम पर गुण से पृथक वस्तु नहीं बन सकते और वीर्य नही कहे जा सकते। अत कर्म रूप वीर्य मानकर बहुविधत्व वीर्यो का सम्पन्न होना है यथा-

कर्म मात्र लक्षणं वीर्यम, (र०वै० १-१७६)

तुल्य-रस गुणे विशेपभावात्
रसगुण व्यतिरेकेण चोपलब्धे कर्मणस्तस्य
मधुरंमंस्निग्धं शीत च यष्टिमधुकं मदधाति,
क्षीरं च तादृगेव स्रंसयतीति विशेष
अस्यकर्म विशेषस्य दर्शनादेस्तस्मात् रसगुणाख्यात् कारणमन्यद् विद्यते।
अस्य विशेषस्य साधक तद् वीर्यमिति जानीम ।

अत नागार्जुन व निमि ने छर्दनीय-भेदनीय-अनुलोमनीय इस प्रकार कार्मुकत्व तत्वगण को वीर्य माना है। यथा-

संक्षेप मे सुश्रुत ने तीन श्लोको मे भौतिक संगठन शील द्रव्यो का विवरण दिया है उसमे कोई भी विवेचन किया जा सकता है। यथा-

(१) १-[1]भूतेज-वारि तत्व प्रधान द्रव्यों मे वायु का शमन होता है।
२-भूमि + अम्बु + वायु ,, ,, पित्त शान्त होता है।
३-ख-तेज + अनिल ,, ,, श्लेष्म शान्त होता है।

(२) पुनश्च-वियत + पवन ,, ,, वात की वृद्धि होती है।
आग्नेय ,, ,, पित्तोदीरण होता है।
वसुधा + जल ,, ,, श्लेष्म बढता है।

इस प्रकार विचार रखने के बाद सुश्रुत ने गुणात्मक वीर्यो की कार्मुकता का ही उल्लेख किया है। यथा-

(१) १-उष्णस्निग्धौ वातघ्नौ (२)-१-गुरुपाको-वातपितघ्न
२-शीतमृदुपिच्छिला पितघ्ना (२)-लघुपाक -श्लेष्मघ्नः
३-तीक्ष्णरूक्षविशदाः श्लेष्मघ्ना

(३) तत्र तुल्य गुणेषुभूतेषु रस विशेषमुपलक्षयेत।
१-मधुरो गुरुश्च-पार्थिव
२-मधुर स्निग्धश्च-आप्य सु०सू० ४१-११

इस प्रकार चेष्टा की है कि कुछ निराकरण करे किन्तु विविध अष्टविध की खिचडी पकाई सी दिखाई है।

---

(१) भूतेजोवारिजैर्द्रव्यै शम याति समीरण ।
भूम्यम्बुवायुजैपित्तंक्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम् ।
खतेजोऽनिलजै श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ।

(२) वियत्पवनजाताभ्या वृद्धिमाप्नोति मारुत । आग्नेयमेव यद्द्रव्य तेनपित्तमुदीर्यते। वसुधाजल जाताभ्यां बलास परिवर्द्धते। सु०सू० ४१-७-८-९

अष्टविध वीर्य वादियो के मत मे उनका कार्य--

शीत १	उष्ण २	स्निग्ध ३	रूक्ष ४	गुरु ५	लघु ६	मृदु ७	तीक्ष्ण ८
प्रल्हादन	दहन	स्नेहन	सग्रहण	उपलेप	लेखन	रक्तप्रसा-दन	सग्रह
विष्यदन	पाचन	बृंहण	पीडन	बृंहण	[illegible]	मासप्रसा-दन	आचूषण
स्थिरी-करण	मूर्च्छन	सतर्पण	विरूक्षण	[illegible]	रोपण	सुस्पर्श	अवदारण
प्रमादन	स्वेदन	वाजीकरण	उपरोपण	वाजीकरण	[illegible]		स्रावण
क्लेदन	वमन	वय स्थापन		[illegible]	[illegible]		
जीवन	विरेचन						
स्तभन	विलयन						
वल्य	भ्रमकर						
गुरु	तृष्णाकर						
वृष्य	ग्लानिजनम्						
	लघु						
	अवृष्य						
पित्तशमन	पित्तकर	वातहर	वातकर				
कफकर	कफहर		कफहर	वातहर	कफहर	पित्तहर	कफहर
वातकर	वातप्रशमन						

१ तत्र कर्मण्युष्णस्य दहनपाचनमूर्च्छन, स्वेदन वमनविरेचनानि--उष्ण-स्निग्धौ वातघ्नौ (सु सू ८)
तत्रोष्ण--विलयनातिलकफशमनाति करोति (अ न मू १७)
तत्रोष्ण भ्रम तृडग्लानि स्वेद दाहाशुपाकिता। शम च वातकफयो. करोति अ हृ मू ९।

२. शीतस्य प्रह्लादन--विष्यदन--स्थिरीकरण--प्रसादन--क्लेदन--जीवनानि (सु सू ४१) आ सु मू १७ व द्रव्यगुण सग्रह

३ स्निग्धस्य स्नेहन--बृंहण--सतर्पण--वाजीकरण वय स्थापनानि (सु सू ४१) उष्णस्निग्धौ वातघ्नौ।

४ रूक्षस्य-अनिलवृद्धि सग्रहण--पीडन--विरूक्षणोपरोपणानि (सु सू ४१) तीक्ष्ण रूक्षविशदा श्लेष्मघ्ना

५ रूक्ष गुरु लघवो विरूक्षणोपलेप लेखनादिना। (सु सू ४१)
गुरुष्ण स्निग्धा वातघ्नाः। (सु सू ४१)

६ लघु तीक्ष्ण रूक्षा श्लेष्मघ्ना (सु सू ४१)

७ मृदोरक्तमासप्रसादन सुस्पर्शनानि। शीतमृदुपिच्छिला पित्तघ्ना। (सु सू ४१)

८. तीक्ष्णस्य सग्रहाचूषणावदारण स्रावणानि। (सु सू ४१)

उपलब्धि प्रकार—वीर्य का ज्ञान प्रत्यक्ष व अनुमान दोनो विधियो से होता है इसके तीन प्रकार होते है। इसमे चरक का विचार है कि

वीर्यं यावदधीवासा न्निपाताच्चोपलभ्यते। च. सू २६

अर्थात् कुछ द्रव्यो का वीर्य जिह्वा पर द्रव्य के निपात मे ही हो जाता है। यह जिह्वा प्रत्यक्ष कहलाते है त्वचा के सपर्क मे भी यही ज्ञान होता है। विशेषकर तीक्ष्ण वीर्य व कुछ उष्ण वीर्य द्रव्य—यथा काली मिर्च। कुछ द्रव्यो का वीर्य उनके शरीरान्तर्गत अधिवास से उत्पन्न कर्मो के द्वारा अनुमान करके किया जाता है। कुछ का सपर्क व अधिवास दोनो के द्वारा ज्ञात किया जाता है। अत उपलब्धि के तीन प्रकार होते है यथा--(१) निपात (सपर्क) प्रत्यक्ष

(२) अधिवास (अनुमान)
(३) अधिवास व सपर्क (प्रत्यक्ष+अनुमान)

अत. [1]चक्रपाणी दत्त ने चरक की टीका मे अपना विचार निम्न रूप मे प्रकट किया है—

कुछ द्रव्यो का वीर्य अधिवास से ज्ञात होता है यथा--अनूपदेश के प्राणियो के मास उष्ण होते है। कुछ के निपात मे ही ज्ञात होता है यथा वीर्य का तीक्ष्णत्वादि। कुछ निपात व अधिवास के द्वारा ज्ञात होते है मरिचादि के। अत रस प्रत्यक्ष रूप मे, विपाक नित्यपरोक्ष होने से तर्क से अनुमान करते है। वीर्य किंचिदनुमान से ही ज्ञात होते है यथा सैंधव शीत शैत्य आनूप मासगत औष्ण्य, कुछ वीर्य प्रत्यक्ष से भी ज्ञात होते है। यथा—राजिका गत तीक्ष्ण घ्राण मात्र से ही, पिच्छिल विशद—स्निग्ध रूक्षादि चक्षु—स्पर्श द्वारा निर्णीत होते है (च द च सू अ. २६)

[2]सुश्रुत मे अष्टविध वीर्यो को स्पष्ट कहा है कि इन मे कुछ स्पर्शग्राह्य है यथा--

मृदुशीत—उष्ण, चक्षु व स्पर्श से, पिच्छिल व विशद तथा स्निग्धरूक्ष चक्षु द्वारा व तीक्ष्ण मुख मे दु खोत्पादन द्वारा।

---

१. किंचिद्वीर्यमधिवासादुपलभ्यते, यथा आनूपमासादेरूष्णत्व, किंचिच्च-निपातादेव लभ्यते यथा मरिचादीना तीक्ष्णत्वादि, किंचिच्चनिपाताधिवासाभ्या यथा मरिचादी तामेव। एतेन रस. प्रत्यक्षेणैव विपाकस्तुनित्य परोक्ष तत्कार्येण्यनुमीयते. वीर्यं तु किंचिदनुमानेन, यथा सैंधवगत शैत्यम् आनूप मासगत मौष्ण्य:, किंचिद्वीर्यप्रत्यक्षेणैव, यथा—राजिकागत तैक्ष्ण्य घ्राणेन, पिच्छिल-विशदस्निग्ध रूक्षादय चक्षु स्पर्शनाभ्या निश्चीयन्त इति वाक्यार्थ। च० ६

२. तेषा मृदुशीतोष्णा स्पर्शग्राह्या, पिच्छिलविशदौ चक्षु स्पर्शाभ्या, स्निग्ध रुक्षौ चक्षुषा, तीक्ष्णोमुखे दु खात्पादनात् (सु० सू० ४१)

२ अधिवासात् – अधिवास सहायस्थानम्। यावदधिवासादिति यावच्छरीर निवासात्—एतच्च विपाकात्पूर्व मिवच्चोर्ध्वं ज्ञेयम्।
निवाताच्चेति—शरीरसंयोगमावात्
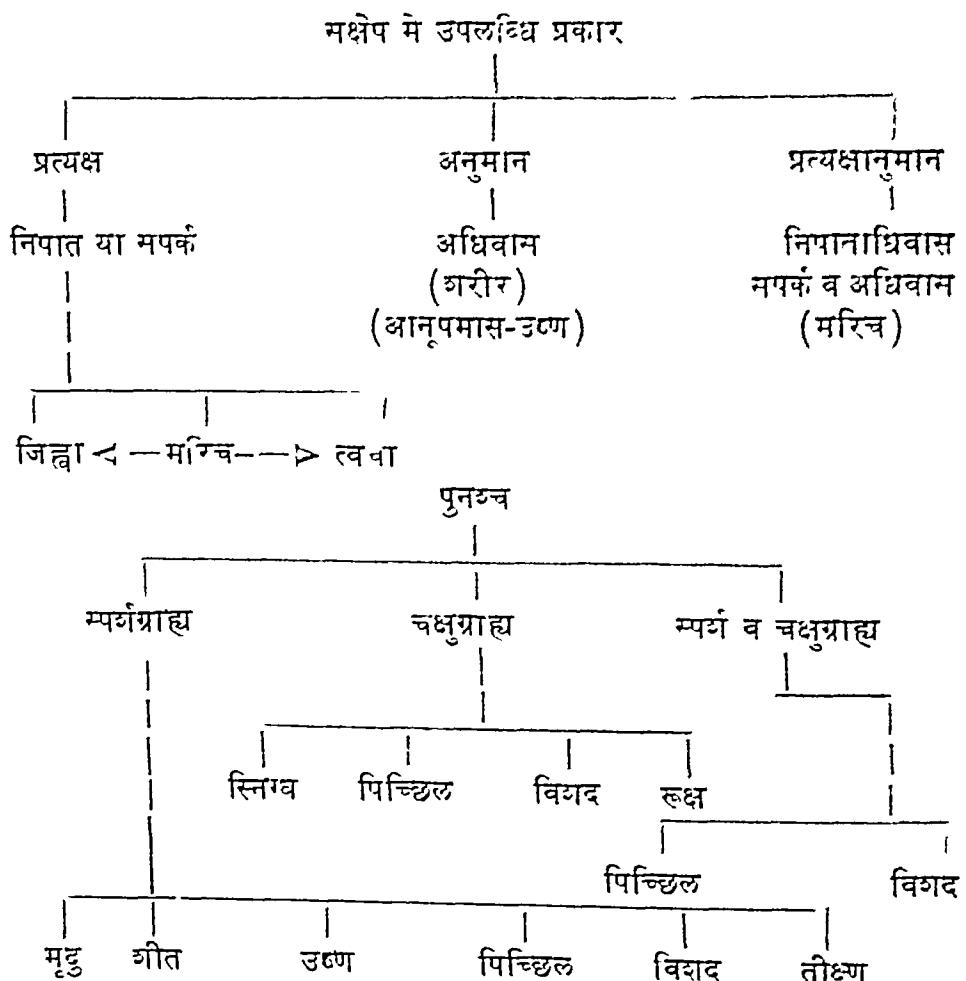
वीर्य निर्धारण

चरक का विचार है कि जो द्रव्य रस व विपाक[1] में मधुर होते हैं वह शीत वीर्य, तथा अम्लरस व विपाक तथा कटुरस व विपाक वाले द्रव्य उष्ण वीर्य होते हैं। यथा–दुग्ध–घृत–चव्य व चित्रक।

चरक ने कुछ इसके अपवाद[2] भी बतलाये हैं। उनका अभिप्राय है कि मधुर भी कभी उष्ण वीर्य हो जाता है ऐसे ही कषाय व तिक्त रस वाले भी उष्ण वीर्य हो जाते हैं। यथा–

१–शीत वीर्येण यद्द्रव्यं मधुर रसपाकयो
तयोरम्ल यदुष्ण च यद्द्रव्य कटुकं तयो । च०सू० २६–४५
तेषा रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्रह ।
यथापयो यथासर्पिर्यथा वा चव्यचित्रकौ । ४६

२–मधुरं किंचिदुष्ण स्यात् कषायं तिक्तमेव च ।
यथामहत्पञ्चमूलं यथाऽब्जानूप माभिषम् । ४७
लवण सैंधव नोष्णमम्लमामलक तथा ।
अर्काऽगुरु गुडूचीना तिक्तानामुष्ण मुच्यते । च०सू० २६–४२–४९

रस	द्रव्य	वीर्य
मधुर	आनूपमास	उष्ण
कषाय–तिक्त	बृ० पचमूल	उष्ण
लवण	सैंधव	उष्ण
अम्ल	आमलक	उष्ण
तिक्त	अर्क –अगुरु–गुडूची	उष्ण
कषाय	धातकी	शीत
कषाय	हरीतकी	उष्ण

किन्तु इस प्रकार के अपवाद अत्यल्प है सामान्य रूप से रस व विपाक के द्वारा इनका निर्धारण उचित होता है। और विशेष रूप मे अधिक मात्रा मे होता है।

सामान्य वीर्य द्रव्यो में वीर्याधानार्थ विशेष उपक्रम

वीर्याधानार्थ–निम्न वातोपर विचार करना पडता है:–

तानि तु द्रव्याणि–देश–काल–गुण–भाजन, सपद्वीवीर्यवलावानात् क्रिया समर्थतमानि भवन्ति। च०क०अ० १–७

अर्थात्–औषधि द्रव्य–देशसपत–कालसपद, गुण सपद व भाजन सपद से वीर्याधान करती है।

देश – जांगल	आनूप	साधारण
भूमि। (१) पर्याकाश भूयिष्ठ। (२) तनुखर परुप सिकताशर्करा वहुल	सरित्समुद्र पर्यन्त प्राय शिशिर पवन वहुल सरिद्भि रुपगत भूमिभाग क्षितिधर निकुजोपशोभित पवन कफ प्राय	दोनो का मिश्रित रूप
दोप––वातपित्त वहुल स्थिर कठिन मनुष्य प्राय	सुकुमार पुरुप	स्थिर सुकुमार वलवर्ण सहनतो पवना साधारण गुणयुक्त पुरुष
जल		
वायु		

औपधि–(१) यथाकालं शिशिरातप पवन सलिल सेविते समेशुचौ प्रदक्षिणोदके

(२) श्मशान चैत्यदेव यजनागार–समाश्चप्राराम–वल्मीकोषराविरहिते–कुशरोहिषास्तीर्णे

(३) स्निग्ध कृष्ण मधुर मृत्तिके–सुवर्ण वर्ण मधुर मृत्तिके वा मृदाव–फालकृष्टे

(४) अनुपहतेऽन्यै वलवत्तरैर्द्रुमै रोषधावन जातानि प्रकाश्यते च०अ० १

काल –उचितकाल पर उत्पन्न–पूर्ण रसगध, वीर्य मयुक्त, किसी प्रकार के धूप–अग्नि–जल–पवन या जन्तु के द्वारा हानि रहित गव, वर्ण–रस–स्पर्श–से युक्त पूर्व या–उत्तर दिशा मे स्थित अचिर प्ररुढ शाखा पलाश–वर्षा वसत मे ग्रहण करना चाहिए ।

मूल	–ग्रीष्म
शीर्ण प्ररुढ पत्र	–शिशिर मे
त्वक् कद क्षीर	–शरद ऋतु मे
सार	–शरद हेमन्त मे
फल–पुष्प	–यथायोग्य ऋतुओ मे उत्पन्या

सस्कार-उचित द्रव्य को लेकर प्रयोगोपयोगी बताने के लिए उनको सस्कारित कर विभिन्न कल्पना के रूप मे उपस्थित करते है ।

१–यथा सुरा –
सौवीरक –
तुषोदक – इत्यादि कल्पनाओ को
मैरेयक – वातप्रधान दोष मे देते है ।
भेदक –
धान्याम्ल –
फलाम्ल –
दध्यम्ल –

२–मृद्वीका, आमलक, मधु, मधुक, परूपक, फाणित व क्षीरादि के द्वारा पित्त प्रधान दोष मे देते है । मधु, मूत्र–कषाय इत्यादि के द्वारा श्लेष्म विकार मे देते है ।

अवस्थानुकूल–सस्कार द्वारा-स्वरस–कल्क–कषाय, शीत–फाट, आसव, अरिष्ट–तैल, घृत आदि की कल्पनाओ का भी प्रयोग करते है ।

सरक्षण–पूर्ण-वीर्यवान बनाने के लिए औषधियो को भिन्न भिन्न प्रकार से सक्षिप्त करके रखते हैं ताकि पूर्ण वीर्य बना रहे और औषधि ठीक प्रकार एव सपद युक्त रहे ।

शुद्ध द्रव्य–मृदभाण्ड, लौहपात्र–शीशक पात्र के स्वर्ण–रजत–ताम्रादि पात्र मे रखते है जो रसदार हरी होती है उन्हे छिक्का मे रखते है। तैयार को विभिन्न पात्रो मे रखकर उनके गुण की रक्षा व वीर्ययुक्त रखने की कोशिश करते हैं । एक सुदृढ आगार मे–शीत–उष्ण सपद् युक्त बनाकर इन द्रव्यो व उनकी कल्पना को रखने का प्रबध करते है इस प्रकार औषधि उचित गुण व वीर्य युक्त रहती है । यथा–मदनफल–को- वसत व ग्रीष्मऋतु मे सग्रह करना चाहिए नक्षत्र-पुष्य,अश्विनी,मृगशिरा-भरणी इत्यादि शुभ नक्षत्र युक्त काल मे सग्रह करना चाहिए। यह क्रिमि आदि द्वारा भक्षित न हो-सडेगले न हो । इन्हे साफ करके कुश

के पुट मे बाधकर गोबर लपेट कर, यव–तुप, माप शालि कुलत्थ भूमि राशि मे आठ दिन रखना चाहिए, जब यह कोमल हो जाय और इनमे उपयुक्त गंध व वर्ण आजाय तो शोषित करके उनका छिल्का हटाकर फल पिप्पली को, घृत–दधि, मधु पललसे आर्द्र कर पुन शुष्क करके एक उत्तम शुष्क घर मे जो धूलि रहित हो भरकर ढक्कन डाल दे और बंदकर के शिक्को पर टाग देवे। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य के रखने की भिन्न-भिन्न विधि है–त्रिवृत–स्नूही–तिल्वक–जीमूत–कृतवेधनादि को भिन्न भिन्न प्रकार से औषधि स्वरसादि से भावित कर सुखाकर रखते है। तब वह पूर्ण वीर्य बनता है।

यथा त्रिवृत्त–गुणवत्या तयोर्भूमौ जात मूल समुद्धरेत्। च०क०

उपोष्य प्रयत शुक्ले शुक्ल वासा समाहित।
गम्भीरानुगत श्लक्ष्णमतितिर्यग्विसृतं च यत्।
तद्विपाट्योद्धरेद् गर्भं त्वच शुष्का निधापयेत्।

आरग्वध– फलकाले फलं तस्य ग्राह्य परिणत च यत्।
तेषां गुणवता भार सिकतासु निधापयेत्।
सप्तरात्रात् समुद्धृत्य शोषयेदातपे भिषक्।
ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ भाण्डे निधापयेत्।

तिल्वक– तस्यमूलत्वच शुष्कामन्तर्वत्कलवर्जिताम्।
चूर्णयेत्तु त्रिधा कृत्वा द्वौ भागौ श्चोतयेत्तत
लोध्रस्यैव कषायेण तृतीय तेन भावयेत्।
भागं तं दशमूलस्य पुन क्वाथेनभावयेत्
शुष्क चूर्णपुन कृत्वा तत उर्ध्वं प्रयो जयेत्

दन्तीद्रवन्ती– तयोर्मूलानि सगृह्य स्थिराणि बहलानि च।
हस्तिदतप्रकाराणि श्यावताम्राणि बुद्धिमान्।
पिप्पलीमधुलिप्तानि स्वेदयेन्मृत्कु शान्तरे।
शोषयेदातपेऽग्न्यार्कौ हतो ह्येषा विकासिताम्। इत्यादि

प्रयोग व नियम–पूर्ण वीर्य युक्त द्रव्य को विभिन्न द्रव्यो के योग से प्रयोग करना यह चरक के कल्पस्थान मे चूर्ण–क्वाथ–अवलेह–मोदक–आसव अरिष्ट घृतादि के साथ मिलाकर देने से पूर्ण लाभ होता है।

भावमिश्र ने–

वीर्यत कर्म सामर्थ्यं द्रव्याणां भिषजो विदु। भाव०

१०. विपाक विज्ञानम्

आयुर्वेद मे षड्रसो के गुण और कर्मो का उल्लेख किया जा चुका है। इनका फल किस प्रकार होता है इसके ज्ञानार्थ ही विपाक विज्ञान की आवश्यकता है। क्यो कि किसी द्रव्य के रस की क्रिया बिना विपाक हुवे नही हो पाती अत आवश्यकता इसकी प्रतीत होती है।

परिभाषा—विपाक–अन्नपाक की विशेषक्रिया को जो शरीर मे अन्नादि के जाने के बाद रसो का रूपान्तर होकर परिणामान्त रस या स्थिति उत्पन्न होकर शरीर के द्रव्यो के रूप मे परिणत होना होता है यह समग्र क्रिया विपाक

कहलाती है। इस बात के द्योतनार्थ भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत मे भिन्न-भिन्न परिभाषाये विपाक की दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु सबो का साराश एक ही प्रतीत होता है। यथा—

वाग्भट्ट—जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् ।
रसाना परिणामान्ते स विपाक इति स्मृत ॥ वा सू अ. ९

रसवैशेषिक—परिणाम लक्षणो विपाकः । र वै १ सूत्र १७०

भाष्यकार ने इसकी निरुक्ति यो की है—

विशिष्टः—जरण निष्टा काले रस विशेषस्य पाक प्रादुर्भाव विपाकः ।

अरुण दत्त ने वाग्भट्ट की टीका मे—यो विचार उपस्थित किया है—

रसाना परीणामान्ते जरण निष्टाकाले यद्रसान्तरम् रस विशेषः उदेति उत्पद्यते स विपाकः ॥

चरक टीकाकार गगाधरने इसे और स्पष्ट किया है—

विपाक इति—पाक. पचन, द्रव्याणां स्वरूप रसयो परावृत्ति, सा च स्वरूपान्तरत्वेन रसान्तरत्वेन च परिणति । तस्या विशेषो विपाक ।

गगाधर का विचार है कि पचन काल मे द्रव्यो के स्वरुप व रस इन दोनो मे परिवर्तन होता है इसकी विशेष क्रिया विपाक है।

स्वरूप परिवर्तन—जाठराग्नियोगेन भुक्ताना द्रव्याणा जायमाने किट्ट सारम् रूपेण पृथक्त्वे य सार भागो द्रव्यस्य आद्योरसाख्यो धातु, किट्ट भागश्च मूत्र पुरीष रूपो मल धातु, तद्रसमल धातु भूत रसान्तरवद् द्रव्यान्तरत्वेन भुक्तानां परिणति विशेषोऽत्र विपाक

रसपरिवर्तन—रसान्तरत्वेन कस्य रसस्य,किं रसान्तरत्वेनऽ उदय परिणाम स्यादिति अत आह कटुतिक्तादि ।

गगाधर ने तो स्पष्ट—स्वरूपान्तर व रसान्तर का विवरण दिया है।

स्वरूपान्तर मे सार व किट्ट के रूप मे पृथक होकर रस धातु की उत्पत्ति होती है। सारभाग रस और किट्ट भाग मूत्र पुरीष की उत्पत्ति।

रसान्तरत्व में —षड्रसो मे से किसी किसी रस का क्या रसान्तरत्व उत्पन्न होता है इसकी उत्पत्ति।

शेष लोगो ने इसको ही वार वार दुहराया है। यथा—

शिवदास कहते हैं—"**अवस्था पाका पेक्षया विशिष्ट पाक., विपाक**"

अर्थात्—अवस्था पाक जिसमे रस छ रसो से तीन रसो मे परिणत होता है और विशेष प्रकार के पाक निष्ठापाक के रूप मे परिणत होकर मधुरादि रसो के गुणो का शरीर मे ज्ञान कराता है मानते हैं वैपिरसशेरकका । सुश्रुत के पदचिन्हो का अनुसरण करके यह भी कहते हैं। इनका लक्षण परिणाम लक्षणो-विपाक है और विशेष रूप से पाचकाग्नि द्वारा जरण होकर निष्ठाकाल मे

रसविशेष के रूप में पाक के प्रादुर्भाव को रस वैशेषिक भाष्यकार प्रशस्तपाद विपाक कहते है । अत यह स्पष्ट है कि चरक व सुश्रुत के साहित्य मे स्पष्ट विपाक की परिभाषा न होने से उनके पश्चात् के टीकाकार या उनके अनुयायी विपाक की परिभाषा का इस प्रकार स्व विचारानुकूल प्रतिपादन किये है ।

चरक ने लक्षण की प्रतिज्ञा की प्रतिष्ठापना की किन्तु परिभाषा जो वह लिखा वह रूपान्तर ही प्रकट किया । अवस्थापाक व निष्ठापाक शब्द का उल्लेख नही किया । टीकाकारो ने इसे अवस्थापाक व निष्ठापाक इन शब्दो मे विशे रूप में प्रतिपादन किया है । यथा—

पर धातो विपाकाना लक्षण सप्रवक्ष्यते ।

कटुतिक्तकषायाणां विपाक प्रायश कटु ।

अम्लोऽम्लं पच्यते, स्वादुर्मधुर लवणस्तथा

ऊपरके विवरण स्पष्ट रूप मे विपाक के लक्षण करने के वाद कोई परिभाषा नही प्रकट करता । विपाक का शाब्दिक अर्थ करे तो–विशिष्ट पाकः विपाक. ऐसा होता है ।

सुश्रुत ने विपाक की स्वत. तो कोई परिभाषा का निरूपण नही किया किन्तु विषय की समीक्षा बहुत की है यथा–रसपाक–पचविधपाक, त्रिविध-पाक सब का खण्डन करके द्विविध विपाक की प्रतिष्ठापना की है । अत रस वैशेषिक की अथवा वाग्भट्ट की परिभाषा के आधार पर परिभाषा निर्दोष यही होती है कि—

विशिष्ट. जारणनिष्ठाकाले रस विशेषस्य पाक

प्रादुर्भाव. विपाकः । प्रशस्तपाद

(१) अर्थात्—पाचन क्रिया के अन्त मे उत्पन्न जो विशिष्ट पाक होकर सात्मीकरण होता है उसे रस का विपाक कहते है । जिसका ज्ञान कर्म व्यक्ति के रूप मे होता है,। पाचन के निष्ठाकाल, अतिमकाल अथवा परिणामकाल मे रसो का परिणमन होने से इसे निष्ठापाक भी कहना चाहिए । अथवा

(२) **गंगाधर के शब्दो में**—पचनकाल मे द्रव्यो के स्वरूप व रस मे जो कुछ परिवर्तन होता है और रसविशेष की उत्पत्ति त्रिविध या द्विविध होती है उसे विपाक कहते हैं ।

अत आहार द्रव्यो का पाक (प्रपाक) या पाचन व्यापार को अवस्थापाक और रस निर्माण के निष्ठा या अतिम रूपान्तर के बाद क्रिया व्यापार को निष्ठापाक कहते है और दोनो का सयुक्त स्वरूप विपाक कहलाता है । जिसका ज्ञान अत मे कर्म द्वारा होता है—विपाक कर्मनिष्ठया । इसको आधुनिक सज्ञा मे मेटावोलिज्म कह सकते है । यथा—

इसमे सब से कम अश कारबोहाइड्रेट का दिखाई पडता है जो Glycogen के रूप मे यकृत, मासपेशी तथा अल्प मात्रा मे शरीर के अन्य भागो मे रहता

है। मास शरीर का सर्वाधिक भाग ज्ञापक धातु है ४२ प्रतिशत मास का भाग शरीर मे होता है (७५ प्रतिशत जल, २१ प्रतिशत प्रोटीन) इस प्रकार शरीर का आधा अग इस मास मे प्रोटीन व जल के रूप मे रहता है। ऊपर के विवरण से शरीर के निर्माण मे षड्रसो का जो हाथ होता है वह विशेष कर मधुर रस (Corbohidrate Protien & fat) और अल्प रूप मे अम्ल-लवण-कटुकषाय रसो का होता है और हर एक रस का होना आवश्यक है। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ससार का कोई भी आहार मधुर रस प्रधान ही होता है। और इनका ही विपाक खाने के बाद होकर शरीर की शक्ति (प्राण) (Energy) के रूप मे उद्भूत होता है। इसका ह्रास महास्रोत-मूत्राशय फुफ्फुस व चर्म के द्वारा होता है। श्वास प्रश्वास, मल, मूत्र—स्वेदादि के रूप मे होता है।

आहार के रूप मे हम अन्न ग्रहण करते है चरक मे इसे बहुत ही स्पष्ट रूप मे कहा है। यथा—"विविधपीतमशित लीढ खादितम् जन्तोर्हितमंतरग्नि सधुक्षित बलेन यथा-स्वेनोष्मणे साम्यग्निपच्यमान कालवदनवस्थित सर्व धातुपाक मनुपहत् सर्व धातूष्मारुत स्रोत केवल शरीरमुपचय बलवर्ण सुखायुषायोजयति, शरीर धातूनूर्जयति (च) धातवो हि धात्वाहारा प्रकृतिमनुवर्तन्ते।

तत्राहार प्रसादाख्यो रस किट्टं च मलाख्यमभिनिवर्तते। किट्टात्स्वेद मूत्रपुरीषवातपित्तश्लेष्माण कर्णाक्षिनासिकास्य लोमकूप प्रजनन मलाः केशश्म-श्रुनखादय श्चावयवा पुष्यन्ति स्वमानातिरिक्ता श्चोत्सर्गिण, शीतोष्ण पर्याय गुणैश्चोपचर्यमाणा शरीर धातुसाम्य करा' समुपलभ्यते। तेषा तु मल प्रसादाख्याना धातूना स्रोता स्ययनमुखानि। च सू. अ २

हलि बर्टन ने भी अन्न द्वारा उसी का अच्छा वर्णन किया है यथा—

Metabolism—In general metabolism we consider that total energy exchange which is going in the body under varying conditions or the some total of the chemical exchange that accur in the living tissue

Handbook of Physiology Haleberton

विपाक के द्वारा आहार का पचन होकर धातुवृद्धिरूप शक्ति और शरीरोष्मा बल के रूप मे प्रकट होकर उर्जा प्रदान करता है। अत आहार के पाचन मे लेकर उसका सात्म्यीकरण होकर शरीर मे ऊर्जा बल प्राप्त होता है और उष्मा मिलती है।

चरक ने निष्ठापाक का क्यों लिखा है —

परिणामतस्त्वाहारस्यगुणाः शरीरगुण भावमापद्यन्ते। च० शा० ६

Consiquently the properties of food are transfered to the tissues of the body.
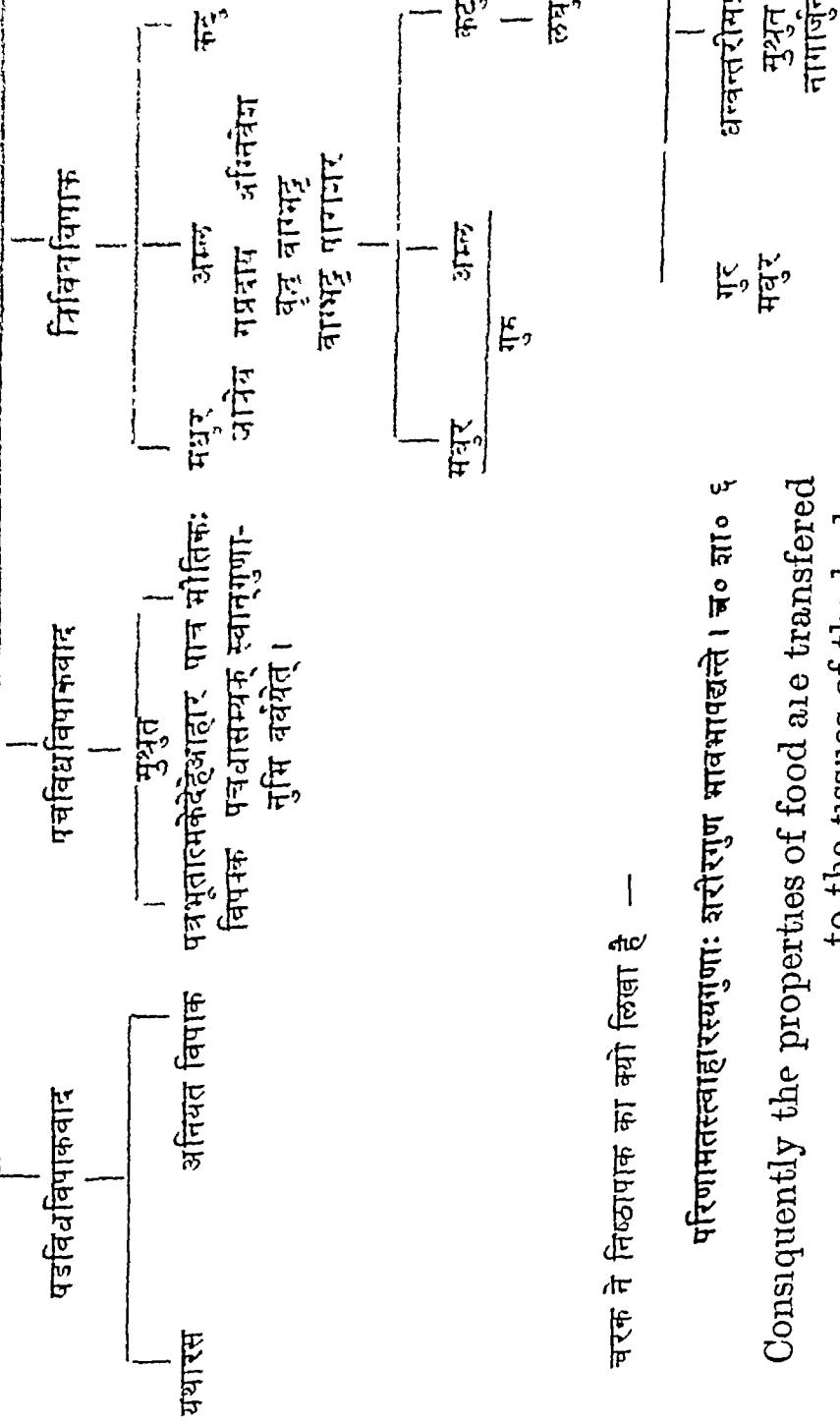
विपाक प्रकार--आयुर्वेद मे आहार परिणाम का विपाक के कई भेद है। भिन्न-भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत है। विशेष भेद तो आत्रेय सम्प्रदाय और धन्वन्तरि सम्प्रदाय का है। किन्तु इनके अतिरिक्त और भी कई विचारक है। विशेषकर चार सिद्धान्त प्रसिद्ध है।

यथा--१ षड्विधविपाक=कुछ विचारक

२ पञ्चविधविपाक= ,,

३ त्रिविधविपाक=आत्रेय सम्प्रदाय

४ द्विविधविपाक - धन्वन्तरि सम्प्रदाय

षड्विधविपाक—इस मत के विचारको के मत मे दो विचार है एक यथारस विपाक वादी व अनियत विपाक वादी।

यथा रसविपाक वाद—इसका उल्लेख सुश्रुत ने सू० अ० ४० मे तथा–अष्टाग सग्रह सू० १७ मे तथा रसवैशेषिक ने अध्याय चार सूत्र ३१ मे उल्लेख किया है। योगीन्द्रनाथ सेन ने भी इसका विचार उठाया है।

इस विपाक के वाद मे छ प्रकार का विपाक होता है। इस सम्प्रदाय मे मधुर अम्लादि छ रसो का विपाक छ प्रकार का अर्थात् मधुर का मधुर, अम्ल का अम्ल, लवण का लवण, कटु का कटु, तिक्त का तिक्त व कषाय का कषाय होता है।

युक्ति—जिस प्रकार क्षीर का स्वाद मधुर होता है, बहुविध पकाने पर भी उसका स्वाद नही बदलता, यो ही यव मुद्ग इत्यादि भी पकने पर मधुर ही रहते है अपने स्वाद व स्वभाव नहीं छोडते। अत मधुर का विपाक मधुर, अम्लादि का अम्लादि ही होता है। यह विश्वास शिवदास व योगीन्द्रनाथ दोनो देते है।

समीक्षा--इन द्विविध सप्रदायो के विचार के प्रतिकूल सुश्रुत—नागार्जुन विचार उपस्थित करते है। उनका कथन है कि यथारस विपाक व अनियत-विपाक वाद का आधार ठीक नही है। यह ठीक है कि कुछ द्रव्यो मे मधुरका मधुर विपाक होता है किन्तु चावल का रस मधुर होने पर भी विपाक अम्ल होता है। कटुरसवाली पिप्पली का मधुर विपाक, मधुररस तैल का कटु विपाक, अम्लरसा आमलकी का मधुर विपाक, तिक्तरस पटोल का मधुर विपाक और कषाय रसा कुलत्थ का अम्ल विपाक, कषायरस हरीतकी का मधुर विपाक होता है–पाते है। इससे प्रतिरस विपाक सिद्ध नही होता। यथा—

प्रतिरस पाक इति केचित् अस्य अयमाशय –यथा स्थाली स्थ तावत् क्षीर पच्यमान मधुरमेवस्यात्, यथा वा शालियव मुद्गादय प्रकीर्णः स्वस्वभावनपरित्यजति। अथतिशालि यव मुद्गादि बीजेभ्य. शालि यव मुद्गाद्यकुरा. उत्पद्यन्ते, तद्वमधुरादय। जठराग्नि पक्वा स्व स्वं रूप मधुरादिकं त्यजति। मधुरामधुरासेव पच्यते, अम्लो अम्लमेव मन्ये च तेन षण्णां रसाना षड्विपाका भवति। (यो०)

यथारसं जगुः पाकान षट्केचिदसांप्रतम् ।
यत्स्वादुर्व्रीहिरम्लत्व, न चाम्लमपि दाड़िमम् ।
यातितैल च कटुता, कटुकापि न पिप्पली ।
यथारसत्वे पाकाना नस्या देवं विपर्यय । अ म. सू १७

सुश्रुत ने तो

तत्राहुरन्ये–प्रतिरस पाक इति । केचित्त्रिविधमिच्छन्ति–मधुरमम्लकटुकं चेति । तत्तु न सम्यक् भूतगुणादागमाच्चान्योऽम्लो विपाको नास्ति, पित्त हि विदग्धमम्लतां-मुपैत्यग्नेर्मन्दत्वात् । यद्येव लवणोऽप्यन्य पाको भविष्यति, श्लेष्मा हि विदग्धो लवणतामुपैति इति ॥

इस प्रकार नागार्जुन ने पृथक अपना विचार दिया है। उनका कथन है कि रस और विपाक के लक्षण भिन्न है अत इस प्रकार का विचार मान्य ही है। रसाभिव्यक्ति आस्वादन से होती है अत प्रत्यक्षगम्य है और विपाक पचन के परिणाम काल मे ज्ञात होता है अत कर्मनिष्ठा द्वारा ही ज्ञातव्य है। अस्तु यदि दोनो एक हो तो पृथक् पृथक् विवरण अमान्य हो सकता है। यथा–

यथारसविपाक मन्ये ब्रुवते–न भिन्नलक्षणत्वात् । र वै ४ सू ३१–५

भाष्यकार इसके कहते है कि **नाय साधु पक्ष कत, भिन्न लक्षणत्वात् आस्वाद्यग्राह्यो रस', परिणाम लक्षणोविपाक इति । विपाकस्यमधुरत्वम् कथमास्वाद्यते ? यद्यास्वाद्येन् कथं भवता मधुरं पच्यते, इत्युपलब्ध मित्युक्त भवति ।**

अनियत विपाक मे तो–विपाक का कोई सिद्धान्त होने पर ही मान्य हो सकता है। यदि यह सिद्धान्त अनवस्थित है तो अनवस्था महान दोष है। विपाक वाद मे दूषण आता है। यह शिवदत्त व चक्रपाणि भी मानते हैं यथा–––

रसवैशेषिककार—नागार्जुन ने भी इसका प्रसग उठाया है और खण्डन किया है।

यथारस विपाकमेके ब्रुवते (र० वै० ४ सू० ३१)
तत्तु न भिन्न लक्षणत्वात् (र० वै० ४ सू० ३२)

किस कारण से इस विचार का खण्डन सुश्रुत व नागार्जुन इन दोनो ने किया है आगे विवरण उपस्थित करेगे।

अनियतविपाक वाद—इस सप्रदाय का विचार है कि विपाक छ रसो का छ प्रकार का ही होता है। किन्तु युक्ति पृथक् है–यथा—

किं च प्रतिरस रससदृश' प्राकस्तथा बलवत्पराधीनता च पाकस्यरसद्वारा-प्रतिपाद्यमान कार्यकारणवल्लभ्यते, तेनतत् पक्षद्वयमपि न निष्ठाकालेचिन्तनीयं रसस्वरूपनिरूपणजवहेत्वर्थत्वात् । शिवदास ।

केचित्तु पुनरबलवन्तो बलवता वशमायान्ति, तस्मादनवस्थितः पाक. अन्येतु ब्रुवते–रसा द्विविधा बलवन्तो बलवन्तश्च, सु सू ४०। बलवत्त्व च व्यक्तित्वेन मात्रा बाहुल्येन वा, अबलवत्वं पुनरेतद्विपर्ययेण। तत्राल्पतया बलवन्तो रसा बलवता वशमायान्ति, तेन निष्ठापाके बलवता रसेन दुर्बल रसाभिभवान् न रस-प्रतिनियमेन मधुरस्य मधुर एव, पाकोऽम्लस्य चाम्ल मेवत्यादि। प्रतिनियमाभावाच्चानवस्थितः पाक इति। अनियतत्व पक्षेऽपि षट्कत्वमेव, कदाचित् कस्यचित् सभवात् इति। उक्त च

बहवोऽभिभवन्त्यल्पान् बहि मिश्रीकृता रसा।
तेना निश्चित मेवैके, पाक माहु मनीषिण। शिवदास।

चरक ने भी यही विचार उपस्थित किया है—

विरुद्ध गुणसन्निपाते भूयसाल्प ह्यव जीयते।

अर्थात्—कई प्रकार के द्रव्यो के सयोग मे जो बलवान रस होता है वह अबल का अतिक्रमण करता है अत इसमे द्रव्य के विपाक के विषय मे अनियत क्रम है। वह आहार द्रव्य व तत्रस्थित रस बाहुल्य पर निर्भर करता है। इसका खण्डन सुश्रुत–नागार्जुन, शिवदास योगिन्द्रनाथ गगाधर इत्यादि सबने किया है।

पचविध विपाक—सुश्रुत ने सूत्रस्थान अध्याय ४६ मे इसका विवेचन किया है यथा—

पचभूतात्मके देहे आहार पाचभौतिक
विपक्व पचधासम्यक् स्वान्गुणानभिवर्धयेत्। सु० सू० अ० ४६

इस सप्रदाय मे द्रव्य पाच भौतिक होते है और इन पचविध द्रव्यो का विपाक भी पाच प्रकार का होता है। इस मत का उल्लेख शिवदास व चक्रपाणि ने भी अपनी चरक की टीका मे की है।

किन्तु इन दोनो विपाक वादो का खण्डन सुश्रुत व नागार्जुन दोनो करते है। इनका कथन है कि पचविध द्रव्यो मे पार्थिव व आप्य का गुरुगुण और तैजस वायव्य व नाभस द्रव्य लघुगुण वाले होते है। अत गुरु व लघु द्विविध विपाक के हैं अथवा पाचभौतिक भेद माने तो कोई अतर नही दिखाई पडता।

यथा— तत्रपृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशाना द्वैविध्य भवति,
गुण साधर्म्याद् गुरुता लघुता च, पृथिव्यापश्च गुर्व्य
शेषाणि लघूनि। तस्माद्विविध एव पाक इति। सु सू ४०

इसी प्रकार नागार्जुन भी यही इसका सामजस्य उपस्थित करते है।

अत – यह द्विविध विपाक पचविध विपाक का ही भिन्न रूप है।

यथा— द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बु–पृथिवीगुणा।
निर्वर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते।
तेजोऽनिलाकाशगुणा पच्यमानेषु येषु तु।
निर्वर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः कटुक उच्यते। सु सू अ ४०

त्रिविध विपाक—आत्रेय सम्प्रदाय त्रिविध विपाक मानता है इसमे अग्निवेश, वृद्धवाग्भट्ट वाग्भट्ट, पाराशर इत्यादि है। यह चरक के त्रिविधविपाक का ही अनुसरण करते है। इनका विचार है—

कटुतिक्तकषायाणां विपाक प्रायश कटु ।

अम्लोऽम्लं पच्यते, स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा ।च सू. २६

अर्थात्—मधुर, अम्ल और कटु यह तीन प्रकार का विपाक मानते हैं। यह त्रिविध विपाक प्रायश होते है। इस प्रकार चरक ने अपवादो से बचने के लिये प्रायश शब्द का प्रयोग किया है। इसके टीकाकार योगीन्द्रनाथ ने

प्रायशः ग्रहणाद् क्वचिन्नैवविधोऽपि । यथा--

शुण्ठी पिप्पल्यादीनां कटूना मधुरोविपाकः । कषायस्य कुलत्थस्य अम्ल , कषायाहरीतकी—अम्लंमामलकं च मधुर पच्यते । मधुरो व्रीहि श्चाम्लं तथा विधतैलपुन· कटुकम् इति ।

ऐसा बचाव भी करते हैं। यही गगाधर—चक्रपाणि और अन्य आचार्य भी स्वीकार करते है।

शिवदास ने अपनी टीका मे त्रिदोप द्वारा त्रिविध विपाक की मान्यता का पक्ष उपस्थित किया है। यथा---

अन्येतु वातादीभ्यो दोषेभ्य एवं त्रीन पाकानिच्छतिकफात्
वातकफाच्च मधुर, कफपित्तादम्ल·, वातातपित्तात्वात-
पिताच्च कटुक इति । यदुक्तं—
वाताद्वातकफात् स्वादु, रम्ल पित्त कफोद्भव ,
दोषैस्त्रयोऽनिलात पित्तात्, वातपित्तात् कटुर्भव । शिव

इस विषय का सिद्धान्त कहा का है स्पष्ट नही किन्तु पोपण मे त्रिविध विपाक के दिया गया है। शिवदास इसे प्रत्युपस्थित कर खण्डन भी करते है। यथा---दोपावस्थाजन्यश्च पाक उपपादक हेत्वभावादागम शून्यत्वाच्च प्रेक्षा-वद्भिरुपेक्षणीय । शि व

इस प्रकार रस व दोष के सयोग के बाद ही विपाक के द्वारा दोषो की वृद्धि व क्षय का होना सभव होने मे मान्य नही है क्यो कि विपाक दोपावस्था का कारण है कार्य नही अत त्रिविध हेतु त्रिविध विपाक पाक परिणमन का स्वरूप है।

द्विविध विपाक—सुश्रुत ने षड्रसो का द्विविध विपाक स्वीकार किया है। उसका कथन है—

आगमे हि द्विविध एव पाको मधुरः कटुकश्च । तयोर्मधुराख्यो गुरुः, कटुकाख्यो लघुरिति । तत्रपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां द्वैविध्य भवति, गुण-साधर्म्याद् गुरुता लघुता च । पृथिव्यापश्च गुर्व्यः शेषाणि लघूनि । तस्माद्विविध एव पाक इति । सु सू. अ ४०

द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बु पृथिवीगुणा ।
निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते ।
तेजोऽनिलाकाशगुणा पच्यमानेषु येषु तु ।
निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाक कटुक उच्यते । सु मू अ ४०, १४-१५

सुश्रुत ने दो प्रकार के विपाक मधुर व कटु स्वीकार किया है और षड्रस-विपाकवाद, पचविध विपाक व त्रिविध विपाक का खण्डन किया है। सुश्रुत का मत है कि अम्लविपाक नही होता और अम्लविपाक माने तो लवण भी मानना पडेगा ।

केचित्त्रिविधमिच्छन्ति-मधुरम्ल कटुकं चेति। तत्तु न सम्यक्, भूतगणादागमाच्यान्योऽम्लो विपाको नास्ति, पित्त हि विदग्धमम्लतामुपैत्यग्नेर्मन्दत्वात्, यद्येव लवणोऽप्यन्य पाको भविष्यति, श्लेष्माहि विदग्धो लवणतामुपैति इति ।

इससे स्पष्ट है कि अम्ल विपाक सुश्रुत को अभिप्रेत नही अत द्विविध पाक ही मानते है। उनके इस तर्क मे कोई सार नही कि विदग्ध होकर पित्त अम्ल होता है और श्लेष्म विदग्ध होकर लवण होता है अत अम्लपाक मानने पर श्लेष्मपाक भी मानना पडेगा ।

नागार्जुन सुश्रुत के मत को मानते है उनका कथन है कि कालक्रम से भी त्रित्व नही होता यथा–"**कालतो गुण तो रसतश्चानुपत्ति. त्रित्वस्य**" भाष्यकार भी कहते है "**नोपपद्यते गुरुभूत जनिता लघुभूत जनिता**" ।

इति गुण द्वैविध्यात् इति। कालतस्त्रित्व नोपपद्येत चिराचिरकाल व्यतिरिक्त स्याभावात्। रसतश्चत्रित्वस्यानुपत्ति, कटुतिक्त कषायास्तु लघव, गुरव परे इति द्विविध. – भेदाविरोधात (भाष्यकार)

सुश्रुत के मत को बहुत सुन्दर प्रौढ उदाहरण देकर रसवैशेषिककार अपना विचार उपस्थित करते हैं। उनका विचार है कि काल, गुण व रस इन तीनो के भी ऊपर विचार करने पर त्रित्व नही उपलब्ध होता अत दो ही विपाक हैं। जैसा ऊपर विचार दिया गया है–

काल के अनुसार त्रित्व नही होता––

विपाक का काल के आधार पर विचार करने पर दो ही काल मिलते है। चिरकाल मे पचनेवाले आहार द्रव्य और अचिरकाल मे पचनेवाला आहार द्रव्य। चिरकाल मे पचनेवाला गुरु विपाक, अचिरकाल मे पचनेवाला लघु-विपाक–तीसरा कोई भेद नही होता ।

गुण की दृष्टि से—गुण की दृष्टि से नागार्जुन गुरुपाक लघुपाक दो ही मानते है तीसरा नही ।

रस के दृष्टि से—रस की दृष्टि से विचार किया जाय तो मधुर और कटु दो ही विपाक सिद्ध होते हैं तीसरा नही। त्रिदोष वाद लेकर चले तो पचमहाभूत वाद लेकर चले तो भी दोही विपाक होने है। यथा—वातपित्त दोनो का रस

कटु और कफ का रस मधुर होता है अत सुश्रुत ने जो विचार लिखा वह कटु विपाक से वातपित्त की वृद्धि और मधुर से कफ की वृद्धि होती है। इसके विपरीत मधुर वात पित्तशामक व कटु श्लेष्मशामक होता है। पाच भौतिक सयोग पर भी पृथ्वी-अप तत्वसयोग से मधुर रस व वायु, अग्नि आकाश से कटु विपाक माना जाता है। मधुर विपाक गुरु व कटु विपाक लघु होता है। यही सुश्रुत व नागार्जुन मानते है।
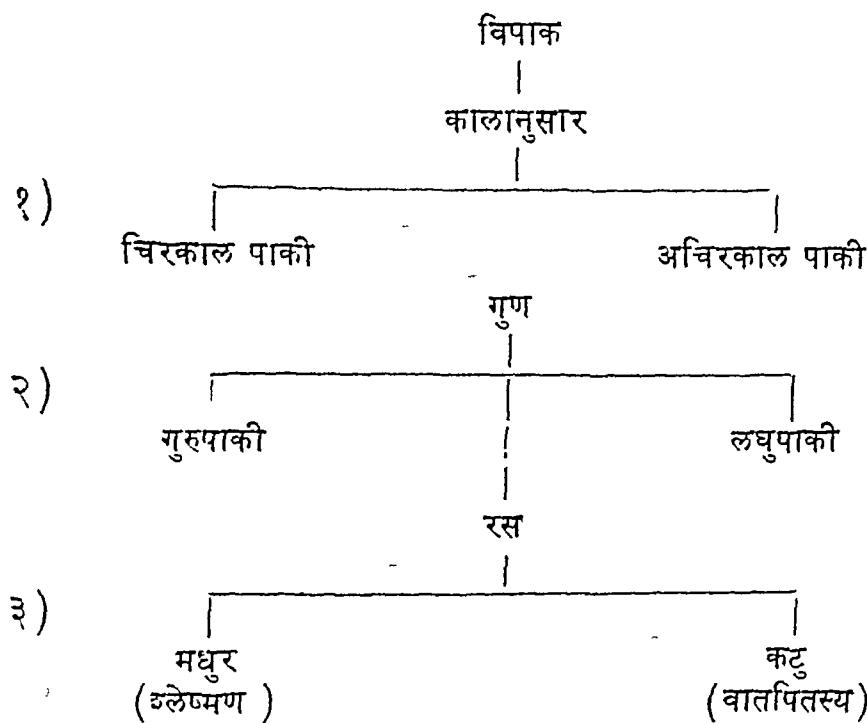
पाचन-अवस्थापाक—पाचनक्रिया के लिए इस त्रिविध पाकावस्था मे गुजरना पडता है तव वह शोपण को प्राप्त होने योग्य होता है। चरक के मत से यह इस प्रकार है—

नियंत्रण—प्राण व समान वायु द्वारा होता हैं। प्राण वायु की क्रिया से अन्न के पाचन कर्म मे चर्वण, अन्न का आदान (निगलन) और समान वायु की क्रिया से पाचन होकर अन्न यथासमय पचकर आयुवर्धन के योग्य होता है—यथा

अन्नमादानकर्मा तुप्राण कोष्ठं प्रकर्षति।
तैद्द्रवैर्भिन्नसघात, स्नेहेन मृदुता गतम्।
समानेनावधूतोऽग्निरुदर्य पवनेन तु।
काले भुक्त समं सम्यक्पचत्यायुर्विवृद्धये ।। च० चि० अ० १५।

इस कर्म की सुविधा मे अन्न के परिणामकर भावोमे उष्मा-वायु क्लेद स्नेह काल का समयोग प्रधान है। अन्न के पाचन मे उदराग्नि, निगलन आहरण, भिन्नसघात कर कार्य के लिये वायु, अन्न को क्लेदित करने के लिये आम-पक्वाशयिक पाचक पित्ताश व क्लेदक व वोधक श्लेष्म उचित काल तक अर्थात्

आमाशय से पक्वाशय तक पार करने मे १४ से १८ घटे का काल व अन्य श्लेष्म के अशो द्वारा स्निग्धता को प्राप्त कर अन्न पचता है। एतदर्थ उसे त्रिविध विपाकावस्था मे जाना पडता है–इसे प्रपाक कहते हैं–

मधुराख्यभाव (१) अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकत
मधुरात्, प्राक् कफोभावात् फेनभूत उदीर्यते।
अम्लाख्यभाव (२) पर तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्ल भावत।
आशयाच्च्यवमानस्य, पित्तमच्छ मुदीर्यते।
कटुकाख्यभाव (३) पक्वाशय तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना।
परिपिण्डित पक्वस्य, वायु स्यात् कटुभावत। च० चि १५

प्रपाककर्म मे–अन्न का मधुराख्यभाव कफ की क्रिया से होता है, अम्लाख्य-भाव मे पित्त व कटुकाख्य भाव वायु की क्रिया द्वारा होकर अन्न का प्रपाक हो जाता है। जो निम्न प्रकार मे स्पष्ट है। अन्न (षड्रसात्मक+जल) का मधुराख्य **भाव मधुर**–

मधुर | मधुराख्यभाव=षड्रस+बोधक श्लेष्म
लवण | मधुर=पिष्टमय पदार्थ व शर्करा
अम्ल | द्विदल पदार्थ
कटु | स्नेह मय पदार्थ
तिक्त | १–पिष्टमय=कार्बोहाइड्रेट+स्टार्च+शर्करा
कषाय | +बोधक=शर्करा+शार्करेय

२–द्विदलमय=प्रोटीन+बोधक श्लेष्म द्विदलेय शर्करा
३–स्नेहमय=घृतादि स्नेह+बोधक श्लेष्म स्नैहिक माधुर्य

अत मधुराख्य भाव मे=मधुर रसात्मक कार्य ही दृष्टिगोचर है बोधक श्लेष्म के कार्य से पिष्टमय पदार्थों (Starch and Carbohydrates) के ऊपर प्रभाव पडता है जो निम्न है–इसे आधुनिक क्रम मे निम्न रूप मे प्रकट कर सकते हैं।

ऊपर के विवरण मे स्पष्ट है कि बोधक श्लेष्म का मधुराख्यभाव पिष्टमय पदार्थों पर होता है और विशेपकर धान्यवर्ग के पिष्ट (Starch) पर अधिक होता है। इसके बाद द्विदलीय पिष्ट पर क्रिया प्राय नही होती। क्योकि बोधक श्लेष्मा मे लालीय किण्व (Ptylinogen) जनक तथा श्लेष्म जनक (Mucinogen) रहते हैं–इसमे प्रथम तत्व शर्करीकरण क्रियाये और द्वितीय स्निग्धता वर्धक होकर अन्न के साथ कार्य करता है।

विपाक–पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है कि विपाक का क्षेत्र व्यापक है और प्रपाक तथा उसका परिणाम या सात्मीकरण तक सीमित है। आहार द्रव्य आयुर्वेद मे षड्रसात्मक व चतुर्विध होता है अत मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त कषाय रसो मे से जो द्रव्य आहार के लिये प्रयुक्त होते है वह अधिकाश मधुर रस प्राय होते है क्योकि मनुष्य आहार मे जो वस्तु लेता है वह धान्यवर्ग के व द्विदल वर्ग के अधिक लेता है। यथा चावल रोटी, दाल, दूध, घी दधि, शाक इत्यादि। ये सब मधुर स्वाद के होते हैं। इनको कुछ नमक व मसालो का सयोग करके भोजनार्थ बनाया जाता है। सक्षेप मे कहा जाय तो त्रिविध पदार्थ भोज्य वस्तुओ में प्रधान है। यथा–

(१) पिष्ठमय पदार्थ व शर्करा (Corbohydrates)
(२) द्विदलीय पदार्थ (Protein)
(३) स्नेहमय पदार्थ (Faty sobstanee)

इनको रसो के रूप मे प्रकट करना होतो इस प्रकार कह सकते हैं।

(१) मधुर रसात्मक द्रव्य–धान्य, द्विदल, स्नेह, शाक
(२) अम्लरसात्मक=खटाई, तक्र-काजी इत्यादि
(३) लवण रसात्मक=सैंधव–कृष्ण–लवण
(४) कटुतिक्त कषाय–मसाले–जीरक, धान्यक, मिर्च, पीपल, आमला आदि

परिणाम–इन षड्रसात्मक चतुर्विध अन्न का परिणाम द्विविध होता है। प्रथम में यह सम्यक् प्रकार से पचता है और द्वितीय मे पचने के बाद शरीर धातु व उष्मादि के रूप में बलवर्ण सुख व आयु के प्रकर्ष के लिए होता है। धातुओ को बल प्रदान करता है चरक के शब्दो मे इसे ऐसे ही स्पष्ट किया जा सकता है यथा–

"विविधमशित, पीत लीढ खादित जन्तोर्हितमन्तरग्नि संधुक्षित बलेन यथाऽवेनोष्मणा, सम्यग्विपच्यमान, कालवदनवस्थित सर्व धातुपाक–मनुपहत, सर्व धातूष्मस्रोत केवलं शरीरमुपचयबलवर्ण सुखायुषायोजयति शरीर धातूनूर्जयति।"

अत इसका विवरण द्विविधरूप मे उपस्थित करते हैं–

पाचन=अंतरग्नि संधुक्षित बलेन यथाऽवेनोष्मण सम्यग्विपच्यमान शरीरधातूनूर्जयति। **सात्मीकरण**=सर्व धातुपाक मनुपहत सर्वधातूस्मस्रोत -बलवर्णसुखायुषायोजयति।

अम्लाख्यभाव –पर तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्लभावत
आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते ।

पिष्टमय पदार्थो के सिवा अन्य पर बोधक श्लेष्म की क्रिया नही होती अत द्विदलीय व आमिष जातीय द्रव्य व स्नेह के पाचनार्थ अम्लाख्य भाव की अवस्था होती है। आमाशय की क्रिया मे आमाशयिक पाचक रस मे अम्लद्रव अधिक उत्पन्न होता है। इसकी क्रिया पिष्टमय पदार्थो पर अल्प किन्तु द्विदलीय-आमिषजातीय द्रव्यो पर व स्नेह पर पर्याप्त होती है।

मधुरस–पिष्टमय पदार्थो पर कुछ क्रिया हो चुकती है } मधुराख्यभाव
द्विदलीय आमिष जातीय
स्नेहमय पदार्थ

मधुराख्य भाव + अच्छ अम्ल = ।
मधुराख्यभाव = कुछ क्रिया नही होती। } अम्लाख्य भाव
द्विदलीय अमिष जातीय द्रव्य + अम्ल =
स्नेह जातीय द्रव्य + अम्ल = सामान्य क्रिया

आधुनिक विचार से मधुर रस ($C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O = C_6H_{12}C_6 + C_6H_{12}O_6$)
(इक्षुशर्करा + श्लेष्मद्रव = द्राक्षशर्करा + वत्मावर्त्तकशर्करा)
(Dextrose & Levulose)

"मधुररस द्विदलीय आमिषतत्व + अम्ल) = (Protein + H Cl)

आम्लिक मास तत्व (Acid metaprotein पाचकपित्त (Pepsin)

अम्लाख्य आमाशयिक पाचकरस	विलेयमास तत्वौज (Proteose) **द्वितीयकमासतत्वौज** (Secondary peptone)	**अविलेयमासतत्वौज** Primaryproteose **द्वितीयक मांसतत्वौज** Secondarypep (proteosis)	**पक्वाशयिक ग्रहणी की क्रिया**

स्नेह मधुर + अम्ल = स्निग्धतत्व + स्नेहाम्ल (Glycerin & Faty acid)

अम्लरम + अम्ल = सामान्यक्रिया = अपरिवर्तनीय
कटुतिक्तकपाय + अम्ल = मामान्य क्रिया = अपरिवर्त्तनीय
मधुराख्यभाव = आमावस्था (आमाशय के उर्ध्वांश तक अविदग्ध कफ
अम्लाख्यभाव = विदग्धावस्था आमाशय के दक्षिणाश) विदग्ध पित्तम्
कटुकाख्यभाव = परिपक्वावस्था (पक्वाशय तक)

(सम्यग्विपक्व)
माधूर्यमन्न गतमाममन्न,
विदग्धसन्न गतमम्लभावम्
किंचिद्विपक्व, भृशतोदशूल
विष्टब्धमानाद्ध विरुद्धवातम् सु०सू०अ० ४६ । ५०२
परिपक्व =
अविदग्ध कफ, पित विदग्ध , पवन पुन
सम्यग्विपक्वो, निस्सार आहार परिबृंहयेत् ।
सु०सू०अ० ४६।५३४

टीकाकारा कथयन्ति —

१–अविदग्धो मधुराहार कफ परिबृंहयेत् , अतिशयेन वर्धयेदित्यर्थ

२–पित्त विदग्धोऽम्लीभूत आहार परिबृंहयेत् ।

३–पवनं पुन सम्यग्विपक्व आहार निसारो, निर्गतसार.
रोक्ष्येण परिबृंहयेदित्यर्थ ।
पचभूतात्मके देहे आहारःपाचभौतिक
विपक्व पचधा सम्यग्गुणान् स्वानभिवर्धयेत् । सु०सू० ४६।५३३

कटुकाख्यभाव·–पक्वाशयं तु प्राप्तस्य पच्यमानस्य वह्निना ।
परिपिण्डितपक्वस्य वायु स्यात्कटुभावत ।

कटुभाव मे पाचकपित्त के=यकृतस्थ पित्तरस + अग्निरस + आत्रिकरस । की सामूहिक क्रिया होती है । इसमे–मधुर रस । (पिष्टमय पदार्थ–) + अम्लरस
(द्विदलीय पदार्थ) भाव
(स्नेह पदार्थ)
= (षड्रस + अम्लाख्य भाव मापन्न तत्व) + कटुरस
= (पित्त + अग्निरस + आत्रिकरस) = द्रव्यपरिवर्तन + रसपरिवर्तन

आधुनिक मत से–द्विदलीय आमिषतत्व की क्रियाविशेष
+ स्नेह परिपाक (स्नेह का विशेष परिपाक)

मधुरस + कटुकाख्यपाचक रस = पिष्टमय तत्वो का शारीरिक परिवर्तन
+ द्विदलीय मासमय तत्वो का मासतत्ववर्तन
+ स्नेहतत्वोका–स्नेहावर्तन

इस कटुभाव मे पिष्टमय, द्विदल–स्नेह व लवणादि सब का पाचन हो जाता है । इसमे अग्निपित्त + अग्निरस + आत्रिकरस मिल जाता है ।

पित्तरस	अग्निरस	आत्रिकरस
तिक्तप्रधान (क्षारीय)	कटुरसप्रधान (क्षारीय पाचकतत्व + श्लेष्मल पदार्थ अल्ब्यूमिन + ग्लोब्यूलिन + किण्व) १८ प्रतिशत	कटुरसप्रधान (क्षारीय)

किण्व तत्व–(Enzyms)+Tripsin+
Pıteolytic)
पिष्ठमयपाचक (Amilase)
वसापाचक (Lıpage)
दुग्धपाचक (Milk curding)

कटुकाख्य भाव मे=शर्करा पर व पिष्टमय पदार्थो व स्नेहमय द्रव्यो पर क्रिया हो जाती है।

शर्कराख्य द्रव्य व मासतत्वो के परिवर्त्तन की क्रिया कह चुके है।

इस प्रकार मधुराख्य भाव, अम्लाख्यभाव और कटुकाख्य भाव की तीन अवस्थाओ मे आहार परिपक्व हो जाता है।

पाचन की क्रिया–विभजनीकरण व शोपण है। अत परिपक्व होकर वह शोषण योग्य हो जाता है। यहा तक की क्रिया परिपाक की कहलाती है या प्रपाक की। विवेचयति–(किट्टमन्न विभजते)

तमादृष्टहेतुकेन विशेषेण पक्वामाशय मध्यस्थ पित्त चतुर्विधमन्नपानं पचति, विवेचयति च दोषरसमूत्र पुरीषाणि

द्वितीय–शोषण क्रिया होकर रस व किट्ट का विभजन होता है। अच्छ रस-रसायनियो द्वारा शोषित होकर आगे चला जाता है और किट्ट बृहदंत्र मे जाता है और पुन शोषित होता है।

शोषण (Absorption)—षड्रसात्मक आहार द्रव्य प्रपाक को पाकर शोषण योग्य हो जाता है और भिन्न–भिन्न रूप मे शोषण होता है। उनका शोषण क्रम निम्न है—

जल–क्षुद्रांत्र मे अधिक होता है बृहदंत्र मे भी कुछ जल शोषण होता है।

लवण–निरीन्द्रिय लवण का शोषण आमाशय मे होता है। कुछ क्षुद्रान्त्र मे होता है।

इनके चार वर्ग है प्रथम वर्ग आसानी से शोषित होता है। इसमे (१) सोडियम क्लोराइड, ब्रोमाइड आयोडाइड–एसिसेट है। द्वितीय श्रेणी के लवण कुछ देर लेते है प्रधान इनमे एथिल सल्फेट, नाइट्रेट, सैलिसिलेट, लैक्टेट है।

तृतीय श्रेणी मे–बहुत धीरे धीरे शोषित होते हैं। इनमे सल्फेट, फास्फेट, साइट्रेट है।

चौथी श्रेणी मे–धीरे धीरे होता है। इनमे प्रधान आक्जलेट–क्लोराइड है।

स्नेह का–क्षुद्रान्त्र मे–स्नेहाम्ल+ग्लिसरिन। फिर फेनक के रूप–मे विलेय अविलेय मेद मे। विलेय क्षुद्रान्त्र मे शोषित होते हैं। कुछ पित्त की उपस्थिति मे शोषित होते है। शोषण इनका रसाकुरिका के द्वारा होता है। विलेयफेनक ग्लिसरीन-

रसाकुल्यिका के आवरक स्नेहाकार कोषाणु में शेष उदासीन स्नेहकण-लसीकाणुओं द्वारा गृहीत होकर रसाकुल्यिका के केन्द्रीय पयस्विनी में चले जाते हैं।

पिष्टमय पदार्थ-क्षुद्रआन्त्र में दुग्धशर्करा सत्वशर्करा व फल शर्करा का शीघ्र शोषण होता है। इनका शोषण रक्तवह स्रोतों के द्वारा होता है।

आमिषतत्व-क्षुद्रान्त्र में शोषण होता है। कुछ बृहदन्त्र में इस प्रकार षड्रसात्मक आहार का शोषण होकर शरीर में उनका सात्म्मीकरण होता है।

निष्ठापाक या परिणमन-खाये हुये आहार का परिणाम महर्षि चरक ने निम्न रूप में प्रकट किया है। प्रथम परिपाक का परिणाम निम्न होता है।—

तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य
षड्रसोपेतस्य, द्विविधवीर्यस्य अष्टविध वीर्यस्यस्य वा
अनेक गुणोपयुक्तस्य आहारस्य सम्यक् परिणतस्य
यस्तेजोभूत सार परमसूक्ष्म स रस इत्युच्यते। सु०सू० १४-२

इनका नियन्त्रण—अन्नमादानकर्मा तु प्राण कोष्ठं प्रकर्षति
तद्द्रवै भिन्नसघात स्नेहेन मृदुता गतम्
समानेनावधूतोऽग्निरुदर्य पवनोद्वह
काले भुक्तं सम सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये।
एवं रसमलायान्नमाशयस्थ मध स्थित
पचत्यग्निर्यथा स्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम् (च०)

परिवर्तन जो अग्निकर्म में होता है वह स्पष्ट ज्ञात नही होता अत रसपरिवर्तन को सूक्ष्म कहकर विवेचन नहीं किया है। यथा—

जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचक।
सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तु नैव शक्यते। सु० सू० ३५-३२

कोई कोई रस प्रपाक या अवस्थापाक को निम्न रूप से प्रकट करते है। चक्रपाणि ने च०चि०अ० १५-९-११ पर लिखा है—

मधुरो हृदयादूर्ध्वं रस॰ कोष्ठे व्यवस्थित
तत सवर्धतेश्लेष्मा शरीरबलवर्धन।
नाभी हृदय मध्येच रसस्त्वम्लो व्यवस्थित
स्वभावेन मनुष्याणां, तत पित्त विवर्धते।
अधो नाभेस्तु खल्वेक कटुकोऽवस्थितो रस
प्राय श्रेष्ठतमस्तत्र प्राणिना वर्धतेऽनिल।
तस्माद्विपाकस्त्रिविधो रसानां नात्र सशय।
च०चि० १५-९-११

इस प्रकार सारा कार्य प्रपाकावस्था में शोषित होकर रस बन जाता है।

कटुभाव में—पिष्टमय व शाकमय द्रव्यों का पाचन होकर शोषण हो जाते समय क्षुद्रान्त्र में विशेष परिवर्तन होता है—

रसात्मक किण्वीकरण के बाद–जीवाणुज किण्वीकरण के द्वारा दो प्रकार के द्रव्य उत्पन्न होते है। सविष व निर्विष–

निर्विष उत्पन्न द्रव्य––मद्यसार, (किण्व) दुग्धाम्ल, पिपीलिकाम्ल, सितकाम्ल, वेंजोइक अम्ल, ब्यूटरिक अम्ल, कार्बनद्विओषित, मिथेन, उदजन–

शाक कोष्ठावरण–सत्वशर्करा, लैप्टिक अम्ल।

स्नेह से–व्यूटिरिकाम्ल व वेलेरिकाम्ल बनकर अत मे कार्बनद्विओषित + जल बनता है।

मास तत्व से जीवाणुज क्रिया द्वारा बृहदन्त्र मे क्रिया होती है इण्डोल–स्फेरोल–विषात्मक फेनोल–पैराक्रेसोल।

उडनशील नत्रजनीय कटुपदार्थ बनते है। इनमे प्रायःभाग दो विशेष कटुस्वाद के होते है और दुर्गंधित होते है।

मासतत्व में–हाइड्रोजन सल्फेट की तत्कालीन क्रिया द्वारा–एथिल हाइड्रोजन एथिल मरकेप्टन, कार्बन द्विओषित, मिथेन, हाइड्रोजन।

इण्डोल स्केटोल–फेनोल विषात्मक है और यकृत की क्रिया मे निर्विष होकर इण्डोलनील के रग मे फेनोल सेन्द्रिय सल्फेट के रूप मे मूत्र मे निकलते है।

रासायनिक सगठन जो आहार द्रव्यो के शरीर मे पाये जाते है।

आहार शोषण–से पूर्व आहार द्रव्यो मे रूप परिवर्तन व रसपरिवर्तन होता है। सामान्य रूप से उनका विवरण निम्न है। पिष्टमय पदार्थ (Coi bohy drates) यह पिष्टमय आहार द्रव्य वनस्पतियो द्वारा मिलते है। वनस्पतियो मे से कार्वन द्विओषित के रूप मे होते है। जल के साथ मिलकर यह पिष्टमय द्रव्य (श्वेतसार) निर्माण करते है। इनमे मधुरस प्रधान द्रव्य श्वेतसार, दुग्धशर्करा (Lactose) फल शर्करा (Fiuctose दुग्धशर्करा (Lactose) प्रधान माने गये है। पचनकाल मे रासायनिक क्रम मे शर्करादि का सबध अलकोहल से होता है और ओपजनीकरण पर इसके एलडीहाइड और पुन क्रिया होकर (ओपजनीकरण) अम्ल उत्पन्न होते है। यथा–

शर्करा–एथाइल अलकोहल व एसिटैलि हाइड (($CH_3\ CH_2, oH + O = CH_3, CHo, + H_2$

अम्ल–एसिटिक एसिड = ($CH_3, CHO, + O = CH_3\ COOH$)

इनकी तीन श्रेणियाँ–१–एक शार्करिद (Mono sachharide)

२–द्विशार्करिद (Di Sachharide)

३–बहुशार्करिद (Poly sachharides)

एकशार्करिद	द्विशार्करिद	वहुशार्करिद
($C6-H_{12}-O6$)	($C_{12}-H_{22}-O_{11}$)	($C6.H_{10}$ $O5)n$
द्राक्षशर्करा (glucose)	ईक्षुशर्करा (sucrose)	श्वेतसार (starch)
फलशर्करा (Fructose)	दुग्धशर्करा (Lactose)	(शर्कराजनक (Glycogen)
	यवशर्करा (Mallose)	द्राक्षीन (Dextrin)
		इन्यूलिन (Inuline)
		कोष्ठावरण (Cellulose)

यह शरीरोष्मा उत्पत्ति मे सहायक है।

स्नेह का (Fat) रासायनिक परिवर्तन। वनस्पतियो के श्वेतसार का कुछ अश निरोषजनी कृत होकर स्नेह की उत्पत्ति होती है–

($3C6, H_{12}, O_6-SO= C_{18}, H_{66}O_2$)
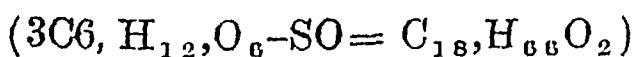
स्नेह शरीर मे विभिन्न स्थानो मे मज्जा–मेदोधातु के रूप मे सचित रहता है।

शरीरगत स्नेहो मे पामीटिन)
स्टियरीन) प्रधान है
ओलीन)

उपस्नेह–यह नाडी तन्तु मे पाये जाते है शरीर क्रिया की दृष्टि मे सर्व प्रधान उपस्नेह कोलेस्टेरोल ($C_{27}-H_{45}-OH$) है जो धातुओ मे स्वतत्र और स्नेहाम्लो मे पाया जाता है।

अभिष तत्व (Protein) आहार के द्विदल व आमिष तत्वो से मासतत्व वनता है। यह तीन प्रकार का होता है –

१–सामान्य (Simple) | प्रोटेमिन
हिस्टोन, अल्व्यूमेन, ग्लोव्यूलीन
गुटेलिन, प्रोलेमिन, स्क्लीरोप्रोटीन
फास्फोप्रोटीन

२–सयुक्त (Conjugated) = | ग्लुकोप्रोटीन
न्यूक्लियोप्रोटीन
क्रोमो प्रोटीन

३–उद्भुत (Derived) = | मेटा प्रोटीन,
प्रोटीओज (मास तत्वीज)
पेपटोन (मास तत्वसार)
पोलीपोटाइड (वहु पाश्रित मास तत्व)

निष्ठापाक–सात्मीकरण (Metabolism & Absorption of Carbohydrates)

पिष्टमय (starch)
|
(Dextrin) द्राक्षिन
|
(Maltose) शूकधान्य शार्करेय
|
शर्करा (Cane Sugar) का विभजन व शोषण–
|
द्राक्षशर्करा — फलशर्करा + (आन्त्रिकरस Succus entericus)

(दुग्धशर्करा (Lactose) Glucose + Galectose)

इस प्रकार रासायनिक परिवर्तन होकर शोषण हो जाता है। चरक–सुश्रुत मत से विपाक वैभिन्न्य तथा समन्वय

विपाक की परिभाषा को विभिन्न मतो से उपस्थापित करने के बाद त्रिविध विपाक है अथवा द्विविध इस पर विचार करना आवश्यक है। इस निमित्त यह देखना है कि विपाक का अंतिम लक्ष्य क्या है यदि अंतिम लक्ष्य की सिद्धि मे दोनो से काम चल जाता हो तो दो व तीन का भेद नगण्य हो जायगा। अत मूल उद्देश्यपर विचार करना आवश्यक है। चरक का कथन है कि–

"विपाक कर्मनिष्ठया (च०सू०अ० २६)"

अर्थात् विपाक का ज्ञान कर्म की उपलब्धि मे होती है। यह उपलब्धि दोषधातु व मल क्षय वृद्धि पर ज्ञात होता है यथा–

चरक कहता है कि–शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो विपाको वातल कटुः।
मधुर सृष्टविण्मूत्रो, विपाक कफशुक्रल
पितकृत् सृष्टविण्मूत्र पाकोऽम्ल शुक्रनाशन।
तेषागुरुस्यात् मधुर कटुकावाम्लावतोऽ यथा।

अर्थात्–कटुपाक –	वातल,	शुक्रहा –	बद्धविण्मूत्र
मधुरपाक –	कफकर,	शुक्रल	सृष्टविण्मूत्र
अम्ल·पाक –	पित्तकृत,	शुक्रनाशन	सृष्टविण्मूत्र

निष्कर्ष–मधुरपाक गुरु होता है।
कटुव अम्ल–लघु होते है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि विपाक–दोनो की क्षयवृद्धि धातुओ की क्षय वृद्धि मलो का सृष्ट व बद्ध करने वाले होते है।

(निष्ठापाक)–विपाक के ऊपर चरक का पर्यवेक्षण सर्वांगीण है वह इतने से ही नही रुक् जाते गुण के आधार पर भी इसका विवेचन करते है। यथा–

मधुरो लवणाम्लौ च स्निग्धभावास्त्रयो रसा
वातमूत्रपुरीषाणां प्रायो मोक्षे सुखा मता ।
कटुतिक्त कषायास्तु, रुक्षभावात्त्रयो रसा
दु खाय मोक्षे दृश्यन्ते वातविण्मूत्ररेतसाम् ।

मधुर, अम्ल–लवण यह तीनो स्निग्ध होते है अत वात मूत्र पुरीप को सुख मोक्ष करते है । कटुतिक्त कषाया प्राय रुक्ष होते है अत वातमूत्र पुरीष का ठीक प्रकार मोक्ष नही करते । अल्प करते है ।

सुश्रुत के मत से–गुरुपाको – वातापित्तघ्न ।
लघुपाक – श्लेष्मघ्न ।
गुरुपाक सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशने च
लघुर्वद्ध विण्मूत्रतया मारुतकोपेन च । सु०सू०अ० ४१

सुश्रुत का भी विचार दोष और मलमूत्रादि पर प्रभाव से मानते हैं । चाहे वह गुरु लघु कहकर हो या मधुर और कटु विपाक कह के हो दोषादि के क्षय वृद्धि के आधार पर ही है अत चरक का कथन "विपाक "कर्मनिष्ठया" का सिद्धान्त सुश्रुत भी स्वीकार करता है ।

मतभेद–चरक का विपाक तीन है, सुश्रुत का दो ।
मधुर–अम्ल–कटु । मधुर–कटु

अतर यह है तो यहअम्ल विपाक का सुश्रुत नही मानते । उनका तर्क है कि अम्ल विपाक नहीं होता । किन्तु अम्ल विपाक चरक मानते है । विपाक के परिणाम मे वीर्य दो ही प्रकार के दोनो मानते है । शीत व उष्ण चरक अम्लविपाक को उष्ण वीर्य मानते है यथा–

शीतं वीर्येण यद् द्रव्य मधुरं रसपाकयो
तयोरम्लं यदुष्णं च, यद्द्रव्य कटुकं तयो । च०सू० २६

अत वीर्य के परिणाम मे कोई अतर नही पडता । सुश्रुत का तर्क यहांपर अम्ल पाक के विरोध मे बहुत दुर्वल है । पित्त मे कटुता होती है वह विदग्ध होकर अम्ल होता है, ऐसे ही श्लेष्म मे मधुरता होती है और विदग्व होकर लवण होता है । अत यदि अम्ल विपाक मानें तो लवण विपाक भी माना जाना चाहिए ।

१–यह तर्क बहुत दुर्वल इस लिये है कि–पित्त व श्लेष्म विदग्ध होकर अम्ल लवण हुवा करे, विपाकार्थ तो षड्रस आते है अत अम्ल रस जो आहार मे होता है वह विपाक के वाद अम्ल ही रहता है चाहे पित्त विदग्ध हो या न हो । चाहे सुश्रुत पित्त मे चरक की तरह अम्लरस माने या न माने । श्लेष्म व पित्त की विदग्धता का क्या प्रभाव षड्रस आहार पर पडता है ।

सुश्रुत ने लिखा है कि–

आगमे द्विविध एव पाको मधुर कटुकश्च। तयोर्मधुराख्योगुरु, कटुकाख्यो लघुरिति। तत्र पृथिव्यापश्चगुर्व्य, शेषाणि लघूनि तस्माद्द्विविध एव पाक.। पुन "आगमो हि शास्त्र मुच्यते (सु सू० अ० ४०–३) तोशास्त्र आत्रेयसहिता काश्यप सहिता, अग्निवेशसहिता चरकादि सहिता भी तो शास्त्र है। हा यह हो सकता है कि शास्त्र वे अपने धान्वन्तरीय सप्रदाय की पुस्तको को मानते हो। अत दोष धातु–मल की क्षय वृद्धि और वीर्य के शीतोष्ण रूप मे दोनो मे कोई अतर नही दृष्टिगोचर होती। इस आधार पर द्रव्यगुण सग्रह मे इनका समन्वयात्मक ही विचार दिया गया है यथा–

कटुविपाक शुक्रघ्नो बद्धविड्वातलोलघु ।
स्वादुर्गुरु सृष्टमलो विपाक कफशुक्ल ।
पाकोऽम्ल सृष्टविण्मूत्रो पित्तकृच्छुक्रनुल्लघु ।

अत विपाक का गुणकर्म निम्नप्रकार होते हैं–

	दोषपाक	गुण	दोषकर्म	धातुकर्म	मलकर्म
चरक	मधुर	स्निग्धगु -	कफवर्धन	शुक्रवर्धन	मृष्टविण्मूत्र
	अम्ल	स्निग्ध– लघु	पित्तवर्धन	शुक्रनाशन	,,
	कटु	रुक्षलघु	वातवर्धक	,,	बद्धविण्मूत्र
सुश्रुत	मधुर (गुरु)		कफ-वर्धक	–	मृष्टविण्मूत्र
	कटु (लघु)		वातपित्तहर कफहर	–	बद्धविण्मूत्र

इन विपाकीय रसो की उत्पत्ति मे चरक ने अवस्था पाक मे विपाक प्रायश कटु ऐसा-कहा हैं अत यह निश्चित नही माना कि सर्वत्र यह मधुर अम्ल और कटु होगे। बल्कि उसने रसो के सन्निपात होने पर उनकी स्थिति के अनुसार प्रवर मध्यम और अधम स्थिति का निर्देशकर सूक्ष्म विवेचन किया है-। यथा–

विपाक लक्षणस्याल्प मध्यभूयिष्ठतां प्रति
द्रव्याणा गुणवैशेष्यात्तत्र तत्रोपलक्षयेत्। च० सू० २६–६३

इसका प्रधान कारण यह है कि उन्होने देखा कि आहार के ही अवस्था-पाक व निष्ठापाक का विवेचन कर के विपाक माना जाय तो एक एक औषधियो के विपाक के प्रति क्या स्थिति होगी अत विपाक की स्थिति मे अल्प मध्य व भूयिष्ठत्व को भी ध्यान मे रख कर विपाक का विचार किया ताकि अवशिष्ट कुछ न रह जाय।

इस विचार मे चरक का मत सर्वतोभावेन पर्यवेक्षित, प्रौढ और उत्तम प्रतीत होता है। अत यदि विपाक की उपलब्धि शारीरिक क्रियाओ के आधार पर

ही हो तो फिर विपाक से अवस्था पाक और प्रपाक, परिपाक या पाक मात्र के शब्द मे अभिलक्षित नही होता । चक्रपाणि के शब्दो मे अवस्थापाक के बाद की धात्वग्निपाक सबधी क्रिया ही विपाक[1] है । यह भी चरक के मत से द्विविध परिणाम-कर होता है ।

यह भी चरक के मत मे द्विविध परिणामकर होता है –किट्ट व प्रसाद भाग–

सप्तभिर्देहधातारो धातवो द्विविध पुन

यथास्वमग्निभि पाक यान्ति किट्टप्रसादवत् । च०चि० अ० १५

अत किट्ट प्रसाद द्विविध निप्पत्ति अवस्थापाक के बाद से प्रारभ होकर सप्तान्तधातु शुक्र के पास पहुचकर समाप्त होती है । यह निप्पत्ति अतिमक्रिया निष्ठा पाकपर निर्भर है । अवस्था पाक के बाद भी पुन स्वस्व धात्वग्नि से पाक होकर उत्तरोत्तर धातुनिर्माण होता है । और हरएक धातु के किट्ट व प्रसाद भाग होते है । अत विपाक का अर्थ विशिष्टपाक नही है अथवा विशिष्ट जरण निष्ठाकाले रसविशेषस्यपाक प्रादुर्भाव विपाक रसवैशेषिक के भाष्यकार की– पाचनकाल रसविशेषका जो विशिष्ट पाक होकर रसान्तर होता है वह विपाक है । अत रस का रसान्तर छे रस को तीन रस मे होना मात्र विपाक तो यह विपाक चरक सुश्रुत को अभिप्रेत न था ।

उन्हे तो रसान्तर होकर क्रिया करके धातुनिर्माण व मलादि की परिणमन दोषादिक्षय वृद्धि से मतलब था ।

नागार्जुन के तर्कशैली का ग्रहण करे तो तर्क स्वत नागार्जुन के विचार के विपरीत पडते हैं यथा–परिणाम लक्षणो विपाक यदि माने तो काल का जो त्रित्व बाधार्थतर्क है खण्डित हो जाते है क्योकि आहार का पाक चिरकाल या अचिरकाल मे अवस्थापाक मे ही होता है निष्ठा या परिणाम मे नही । अत विपाक को परिणाम लक्षण माने तो देर या अल्पदेर मे पाचन अवस्थापाक तक ही सीमित रहता है । मूल विपाक या निष्ठा पाक अथवा धातुपाक पर कोई प्रभाव नही डालता क्योकि भाष्यकार स्वय इस को निम्न रूप मे मानते हैं **"परिणामोऽर्थान्तर भाव जीर्यति रित्यर्थ एव विदाहानामपि पाकावयवत्व युज्यते "** (भा०)

अर्थात परिणाम का अर्थ पचना होता है । इस प्रकार विदग्ध आहार मे भी पाक का अर्थ आता है ।

इसके विपरीत आत्रेय सम्प्रदाय वाले परिणामान्त पाक को विपाक मानते हैं ।

रसनापरिणामान्ते सविपाक इति स्मृतः । अ हृ

अत नागार्जुन की या धन्वन्तरि सम्प्रदाय की बाते यहा खरी नही उतरती ।

---

१ उक्त च–जाठरेणाग्निना पूर्वकृते सधातभेदे पश्चाद्भूताग्नय पचस्व स्वं द्रव्य पचन्ति । अय च भूताग्निव्यापारो धातुष्वप्यस्ति । तत्रापि धात्वग्नि व्यापारो भूताग्निव्यापारश्च जाठराग्नि क्रमेणै वोक्तो ज्ञेय । च० चि० १५।

आगम यदि शास्त्र माने तो भी त्रिविधविपाक आयुर्वेद शास्त्र की कई सहिताओ मे है यह भी शास्त्र ही है यदि उन लोगो का मत है कि धन्वन्तरि सप्रदाय के ग्रथ ही शास्त्र है अन्य के नही तो यह विचार भी एकागिक होता है।

साथ ही चरक का मत मधुर व अम्ल को गुरु और कटु विपाक का लघु मानने पर तर्क ही समाप्त हो जाता है जो गुण के आधार पर है अम्ल को विपाक न मानता और हेतु पित्त का विदग्ध होने पर अम्ल होगा कहना भी प्रवल उदाहरण नही होता। अवस्थापाक मे प्रत्यक्ष दृष्ट आमाशयिक पाचक पित्त अम्लस्वाद का होता है। आधुनिक प्रत्यक्ष उदाहरण भी आमाशय मे अम्ल की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं अत• अम्ल विपाक नहीं माने यह कोई महत्वपूर्ण बात नही दृष्टि गोचर होती।

अत निष्ठाकाल मे धातुओ के परिणामान्त प्रदर्शन धातुक्षय वृद्धिकर होते है यह सर्व सम्मत है। जहा पर आवस्थित रसाधार पर अल्प मध्य भूयिष्टता के अनुसार पाक होता है वहा चरक ने वहुत सुन्दर विचार उपस्थित किया है और चिकित्सको के लिए विचार व वीर्य निर्धारण की शैली तर्क पद्धति या सूत्र प्रदर्शन किया है और सबका समाधान है जिसके आधार पर कुछ उदाहरण देकर अन्य पक्ष खण्डन करता है उनका कथन है कि—

रौक्ष्यात् कषयोरुक्षाणांमुत्तमो मध्यम कटु ।
तिक्तोऽवरस्तयोष्णाना मुष्णत्वाल्लवण पर
मध्योऽमूल कटुकश्चान्त्य. स्निग्धाना मधुर पर
मध्योऽम्लो लवणश्चान्त्यो रस स्नेहान्निरुच्यते।
मध्योत्कृष्टवरा शैत्यात् कषाय स्वादु तिक्तका
स्वादुगुरुत्वादधिक कषायाल्लवणोऽवर
अम्लात कटुरस स्तिक्तो लघुत्वादुत्तमोत्तम
केचिल्लघुनामवरमिच्छन्ति लवण रसम्
गौरवे लाघवे चैव सोऽवरस्तुभयोरपि।

ऊपर के विचार से स्पष्ट है कि—

रुक्षता मे कषाय उत्तम	—	अत रुक्षतम होगा
कटु मध्यम	—	,, रुक्षतर होगा
तिक्त अवर	—	,, रुक्ष
ऊष्ण मे लवण	—	,, ऊष्णतम
अम्ल मध्य	—	,, ऊष्णतर
कटु अन्य	—	,, ऊष्ण
स्निग्धगुण मे—मधुर उत्तम	—	स्निग्धतम
अम्लमध्य	—	स्निग्धतर
लवण अल्प	—	स्निग्ध

शैत्य मे	मधुर उत्कृष्ट	—	शीततम
	कषाय मध्य	—	शीततर
	तिक्त अवर	—	शीत
गुरुत्व	स्वादु अधिक	—	गुरुतम
	कषाय मध्य	—	गुरुतर
	लवण अवर	—	गुरु
लघु	अम्ल अवर	—	लघु (क्वचित लवण भी लघु)
	कटु मध्य	—	लघुतर
	तिक्त उत्तम	—	लघुतम्

इसी प्रकार रसो मे भी रुक्षता–उष्णता–स्निग्धता, शीतता, गुरुत्व व लघुत्व इन गुणो के आधार पर इन तरतम भेद बनते है अत जहा पर जो प्रवर होगा वहां विपाक मे उसकी प्रवरता होगी मध्यम का मध्यम व अवर का अवर अत' विपाक की दृष्टि से विचार करने पर इन गुणो के आधार पर अल्प मध्य व भूयिष्ठता के आधार पर द्रव्यो के गुणो की विशेषता का ज्ञान होता है। अत चरक ने–

विपाक लक्षणस्याल्प मध्य भूयिष्ठता प्रति
द्रव्याणां गुणवैशेष्यात्तत्र तत्रोपलक्षयेत्।

इस आधार को भी सामने रखा था। इस प्रकार आहार द्रव्य और औषधि द्रव्य मे विपाक भेद उपस्थित होने पर इस दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए।

रसाधार मात्र ही मानकर विचार न किया जाय अत द्रव्य के गुण को समझने के लिये भिन्न दृष्टिकोण रखा है। और कहा है कि द्रव्यो के रस समान होने पर भी गुणान्तर इस उपर्युक्त आधार पर सभव है –

तस्माद्रसोपदेशेन न सर्व द्रव्यमादिशेत्
दृष्टं तुल्यरसे प्येव द्रव्ये द्रव्ये गुणान्तरम्।

इनके अतिरिक्त इनके प्रभाव मे अन्तर और भी कई दृष्टिकोणो मे सभव है जो प्रत्येक व्यक्ति के कोष्ट की क्रूरता–मध्यता लघुता और मृदुता पर निर्भर होती है।

योग मासा तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयो भिषगुत्तम। च सू अ १–१२३

अत. रसानुसार विपाक के काल मे इनका भी विचार रखना आवश्यक है।

रस और उनकी क्रिया––

पाचनकाल मे रसो का अथवा षड्रसयुक्त आहार द्रव्य का परिणमन भिन्न भिन्न रूप मे होता है। इसको निम्न रूपो मे विभक्त कर सकते हैं।

१ प्रपाकीय परिणमन = प्रथम पाक

२ पाचन कालीन ,, = पचने पर विशिष्ट पाचक रसो के प्रभाव मे परिणमन

३ निष्ठाकालीन ,, = शोषण होने के बाद शरीर सात्मीकरण के रूप मे परिणमन।

प्रपाक व पाचन यह प्रथम दो अवस्था पाक के रूप मे माने जाते हैं और आहार रसो को सूक्ष्म विभागो मे परिणत करके पाचभौतिक द्रव्यो के सगठनात्मक तत्व को अधिक सहायता करते हैं।

निष्ठाकालीन परिणमन—इसमे आहार पचकर शोषित हो जाता है और विभिन्न जातीय आहार द्रव्य को लेकर रस मे व रक्त मे पहुचाते हैं। जितना ही अधिक ये स्रोतसो के मार्ग को तय करते हैं उतना ही उनको सक्रियता रुपान्तरत्व और विशेषता आती जाती है इनका क्रमश विवरण देते हैं—

स्नेहद्रव्य— मधुर रस प्रधान द्रव्य

यह दो स्वरूप में आहार के साथ जाते है— (१) घृ-तैल-वसा-मज्जा-मक्खन (२) मास इत्यादि के साथ सूक्ष्माणु रूप मे कला आवरण से युक्त

प्रपाक व पाचन—आमाशयस्थ पाचनपित्त से यह कुछ पककर छोटे अणुओ मे विभक्त हो जाता है (ग्लिसरिन+स्नेहाम्ल) आमाशय की क्रिया+ताप+गति मे वह पयसीभूत हो जाता है। आन्त्र के भीतर के पाचक रस (पित्तादि) योग द्वारा सात्मीकरण होता है पित्तरस+अग्नि रस+आन्त्रिक रस—सफेनीकरण शोषण यह सब क्रियायें आन्त्र में होती हैं।

परिणमन—या सात्म्यीकरण—यह शरीर मे विभिन्न प्रकार से प्राप्त होता है।

१ आहारस्थ स्नेह द्वारा

२. मास या मासजातीय द्रव्य द्वारा धातु पाक मे परिवर्तन मास जातीय सत्व प्रोटीन ग्लूकोज मे और वह स्नेह के रूप मे परिणमन हो जाता है एमीनो एसिड का २० प्रतिशत मान द्राक्षशर्करा में परिणत होता है शेष स्नेहवत रह कर मेद सचय करता है।

३ पिष्ठ जातीय द्रव्य कार्बोहाईड्रेट द्वारा

(क) कार्बोहाइड्रेट का किण्वीकरण होकर ग्लिसरोल की उत्पत्ति होती है ग्लायकोजेन—ग्लिसरेल्डीहाइड—ग्लिसरोल बनता है।

(ख) कार्बोहाइड्रेट का किण्वीकरण होकर पिरुविक एसिड, इसके विश्लेषण से एसीटेल्डीहाइड और यह स्नेहाम्ल ने और स्नेहामल स्नेह में। इस प्रकार परिणमित होता है।

मधुर रस का परिणमन

मधुर रस शरीर मे—य परितोषमुत्पादयति, प्रह्लादयति, तर्पयति, जीवयति मुखोपलेप जनयति, श्लेष्माण वर्चयति। (स सू अ ४२)

चरक सुश्रुतादि के मत मे मधुर रस का प्रधान कार्य—

चरक–(१)शरीर सात्म्याद्रस रुधिर-मांस-मेदोऽस्थि मज्जौज शुक्राभिवर्धन
(२) पित्तविष मारुतघ्न
(३) बलकर वर्णकर बल्य जीवन तर्पण, स्थैर्यकर

अतिप्रयुक्त––स्थौल्यकर–आलस्य, गौरव–अनन्नाभिलाष जनयति

सुश्रुत––शोणित रस प्रसादन, बलकृत्

स्नेहस्थ मधुर रसः बलकृत––(१) स्नेह का कुछ भाग शर्करा मे परिवर्तित होता है। शक्ति प्रदान करता है (२) सचित स्नेह का जलीय विश्लेपण होता है और अतर धात्वग्नि (अत कोपाणवीय) किण्व तत्वो के द्वारा ओषजनीकरण होकर उससे शक्ति प्राप्त होना।

मांसतत्व–पिष्ट जातीय द्रव्य व शर्करा–से

(१) शर्करा का प्रयोग शरीर मे जाकर यकृत मे सगृहीत होते है– यह प्रतिहारिणी शिरा के रक्त मे २ से ४ तक और सस्थानिक रक्त प्रवाह मे १ प्रतिशत। इस प्रकार रक्त का एकाश होकर शर्करा शरीर मे बल्य होती है।

(२) मासपेशियो मे ·५ से १ प्रतिशत प्राप्त होकर उनको स्वस्थ रखता है।

(३) यकृत सचित शर्करा के द्वारा शरीर की रक्षा करता है। यह (Amino Acid) तथा वसाम्ल से भी ग्लाइकोजन (Glicogen) पैदा करता है और इसकी शक्ति को नव शर्कराजनकोत्पत्ति (Glycogenesis) कहते है।

शर्कराजनक (Glycogen)

पिष्टजातीय द्रव्य कार्बोहाइड्रेटस् एक शर्करीय द्रव्य से इसकी उत्पत्ति होती है। द्राक्षशर्करा–फलशर्करा–इक्षुशर्करा से मधुर रस मिलता है।

मांसजातीय––(१) कुछ मास जातीय द्रव्य शर्करायुक्त होते है इससे शर्कराजनक बनता है। (२) आमिषाम्ल से भी ग्लाइकोजेन बन जाता है।

स्नेहजातीय––इसकी अधिक मात्रा मे शर्करा की रक्षा होती है, अल्प व्यय होता है। इस प्रकार शर्करा की प्राप्ति होकर रक्त व मास में होकर बलावान करता है। रक्त मे शरीर के सब धातुओ मे पहुचकर उनका पोषण करता है।

निष्ठापाक–अतिम परिणमन––(१) स्नेह का शर्करा मे परिवर्तन होकर और शक्ति का सरक्षण करना। (२) मेद सचय–जो भाग शीघ्र काम में नही आता वह शरीर के मेद में परिवर्तित होकर मेदोधरा कला मे सचय होता है। अत अधिक सेवन से मेद सचय हो जाता है।

(३) सचित स्नेह का जलीय विश्लेपण होकर धातुस्रोत तक जाता है। वहा शर्करा की तरह अत कोपाणवीय किण्वो के द्वारा उनका ओषजनीकरण

(ज्वलन) होकर शक्ति उत्पन्न करता है और वह कार्बनद्विओषित और जल मे परिणत होगा। पूर्ण ज्वलन न होने से व्युटिरिक अम्ल व आक्सीव्यूटिरिक अम्ल बनाता है।

(४) स्नेह का कुछ भाग स्फुर (फास्फोरस) युक्त स्नेह मे परिवर्तित होता है। यथा–लेसिथिन।

(५) उत्सर्ग–स्नेहाम्ल व उदासीन स्नेह जो अधिक परिमाण मे लिया जाता है पुरीष के साथ निकल जाता है।

कार्य––(१) उष्णता को उत्पन्न करना।

(२) शरीर मे सरलता से सचित होना और सचित कोष का काम करना

(३) स्नेह से ए डी विटामिन की प्राप्ति होकर अस्थि निर्माण करना

१ रस––सु सू. १४ कार्य––

(१) अनेक गुण युक्तस्य आहारस्य सम्यक् परिणतस्य यस्तेजोभूत सारः परमसूक्ष्म स रस इत्युच्यते।

(२) स्थान–तस्य हृदय स्थानम्

(३) स हृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रविश्य–उर्ध्वगा दश अधोगा दश–चतस्र तिर्यगा
कृत्स्न शरीर महरहस्तर्पयति, वर्धयति, धारयति, यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा

(४) तस्मिन् सर्वशरीरावयव दोषधातु मलाशयानुसारिणि रसे जिज्ञासा-किमयं सौम्यस्तैजस इति ?

(५) अत्रोच्यते-स खलु द्रवानुसारी स्नेहन-जीवन तर्पण धारणादिभिर्विशेषै सौम्य इति अवगम्यते। सु सू १४

इस प्रकार परिणमन शास्त्रो मे वतलाया गया है।

० ० ०

११. प्रभाव विज्ञान

परिभाषा—रस, वीर्य, विपाकादि के समान रहने पर भी द्रव्य की विशिष्ट-प्रकार की कार्यकर्तृत्व शक्ति को प्रभाव कहते है। अर्थात् द्रव्यो के विशिष्ट कार्य कर्तृत्व शक्ति को प्रभाव कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि द्रव्य का जो अपना स्वभाव है वही प्रभाव है। यथा –

१. रस वीर्य विपाकादि गुणाति शयवान्नयम्।
द्रव्यस्वभावोनिर्दिष्टो य प्रभाव स कीर्तित । अरुण दत्त ।

२. रसवीर्य विपाकाना सामान्य यत्र लक्ष्यते ।
विशेष' कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृत । च सू २६–६७

३. रसादि साम्ये यत्कर्म विशिष्ट तत्प्रभावजम् । अ हृ. सू ९

४. सर्वातिशयी द्रव्यस्वभाव सप्रभाव । अ स सू १७

ऊपर के उदाहरणो मे स्पष्ट है कि रसादि के समान रहने पर भी जहा कर्म मे विशेपता प्रतीत होती है उमका कोई विशिष्ट कारण होता है और वह द्रव्यगत विशेप शक्ति मानी जाती है। इस विशेष शक्ति को प्रभाव, द्रव्यस्वभाव, सर्वातिशयी द्रव्य स्वभाव अथवा (Potency) कहते हैं। इसके शाब्दिक निरुक्ति पर ध्यान दें तो ऐसा ज्ञात होता है।

प्रभवति सामर्थ्यविशिष्ट भवति द्रव्यमनेन इति प्रभावः।

अथवा–प्रकृष्टो भाव प्रभावः अर्थात् द्रव्य के उत्कृष्ट कार्य कर्तृत्व भाव को प्रभाव कहते है जिमके द्वारा वह शरीर मे विशिष्ट प्रकार के कर्म को करने मे समर्थ होता है।

समीक्षा—यह परिभापाये सब आत्रेय सप्रदाय की है। धन्वन्तरि सप्रदाय प्रभाव नाम से कोई वस्तु नही मानता। सुश्रुत मे प्रभाव का वर्णन नही किया है अत रस गुण वीर्य विपाकान्त वस्तु की प्रतिज्ञा की है प्रभाव की नही। उसने दो प्रकार के द्रव्य का वर्णन किया है (१) चिन्त्य (२) अचिन्त्य। अचिन्त्य प्रभाव के रूप मे माना जा सकता है। यह द्रव्य का अभिमास्य कर्म है।

इसी प्रकार रस वैशेपिक ने वीर्य की अचिन्त्य अनवधारणीय शब्द मे प्रयोग किया है। यथा—

रसगुण भूत समुदायाश्रय. एषामनवधारणीय तथा रस भूत
समुदायान्तमन्ये वा अन्यथा वीर्यत्वात्।

प्रभाव व प्रयोग—(१) प्रभाव शब्द का प्रयोग द्विविध आयुर्वेद मे प्रतिपादित है—

१ सामान्य अर्थ मे २ विशिष्ट अर्थ मे।

सामान्य अर्थ में प्रयोग—जहा कही कार्य कर्तृत्व द्रव्य का आता है वहा पर प्रभाव शब्द का सामान्य रूप से प्रयोग मिलता है यथा—

(१) न तु केवल गुणप्रभावादेव द्रव्याणि कार्मुकाणि भवन्ति, द्रव्याणि हि द्रव्य प्रभावात् गुण प्रभावात्, द्रव्यगुण प्रभावाच्च तस्मिन्तस्मिन् काले तत्तदधिकरण मासाद्य यत् कुर्वन्ति तत्कर्म – –। च सू २६

विशिष्ट अर्थ मे––१ रसादि सात्म्ये यत्कर्म विशिष्ट तत्प्रभावजम्।

२. रसेन वीर्येण गुणैश्च कर्म द्रव्य विपाकेन च यद्विदध्यात्।
सद्योऽन्यथा तत्कुरुते प्रभावात् हेतोरतस्तत्र न गोचरोऽस्ति।

३ पूर्व के प्रभाव परिभाषा के प्रभाव शब्दादि–इसमे प्रभाव की परिभाषा विशिष्ट रूप मे प्रयुक्त प्रभाव की ही समझना चाहिए। अन्यत्र भी यह शब्द व्यवहृत है। यथा––

चरक में––१. किंचिद्रसेनकुरुते कर्म वीर्येण चापरम्
द्रव्य गुणेन पाकेन, प्रभावेण च किंचन।
२ रस विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तानपोहति।
बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिक बलम्। च सू २६
३ रसवीर्य विपाकाना सामान्य यत्र लक्ष्यते।
विशेष कर्मणा चैव प्रभावस्तस्य स स्मृत ।
४. कटुक कटुक पाके वीर्योष्णश्चित्रको मत ।
तद्वद्दन्ती प्रभावात्तु विरेचयति मानवम्।
५ विष विषघ्नमुक्त यत् प्रभावस्तत्र कारणम्।
६ उर्ध्वानुलोमिक यच्च तत्प्रभावप्रभावितम्।
७ मणीनां धारणीयानां कर्म यद्विविधात्मकम्।
तत् प्रभाव कृत तेषा प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते॥ च सू २६

अ सग्रह–अष्टाग हृदय––१ कुर्वन्ति यवकाद्याश्च तत्प्रभाव विजृम्भितम्
२. मात्रादि प्राप्य तत्तच्च तत्प्रपचेन वर्णितम्।
तच्चप्रभावज सर्वमतोऽचिन्त्य स उच्यते। अ स सू १७
३ रसेन वीर्येण गुणैश्चकर्म द्रव्य विपाकेन च यद्विदध्यात्।
सद्योऽन्यथा तत्कुरुते प्रभावात् हेतोरतस्तत्र न गोचरोऽस्ति। अ स सू १७

इस प्रकार सामान्य व विशेष रूप मे प्रभाव शब्द का प्रयोग हुआ है।
प्रभाव के ऊपर विवेचन करने के लिए चरक वाग्भट्ट अष्टाग सग्रह ने ही लिखा है। अत उनके टीकाकार भी उसी रूप मे व्याख्या करते है।
कविराज गगाधर ने निम्नरूप मे प्रभाव पर विचार किया है।
प्रभवनप्रभाव, सामर्थ्यम्

१ स्वस्वारभक द्रव्य सयोगे समवेताना तेषा, द्रव्यगुण–कर्मणां द्रव्यगुणयो, सजातीयारभकत्वात् तत्र द्रव्यात् सजातीय द्रव्यान्तरं जायते।

२. गुणात् सजातीय गुणान्तर जायते।

३. कर्मणां तु सजातीय कर्मारंभकत्वनियमात्रत्वात् कर्मसाध्य कर्मा-भावाच्च, यत्र विजातीय कर्म तदारंभक द्रव्याणा कर्माण्यारभते, तद्विजातीय कर्म खल्वचिन्त्यम् । स प्रभाव उच्यते । कार्यद्रव्य दन्त्यादिक तत्कर्म विशेषेण स्वीयेन प्रभावेण विरेचनादि कर्म करोति । गगाधर

ऊपर के सदर्भ से यह ज्ञात होता है कि गगाधर जी का कथन है कि द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनो मे द्रव्य मे सजातीय द्रव्य की उत्पत्ति साध्य है । सजातीय गुण से सजातीय गुण भी साध्य है किन्तु कर्म से सजातीय कर्म का होना नियम नही है और कर्म कर्म साध्य है भी नहीं । अत जहा–द्रव्यगुण कर्म तीनो सजातीय हो वहा वीर्य जन्य कार्य होता है और जहा कर्म विजातीय होता है वहा कर्म प्रभावजन्य माना जाता है अत वह प्रभाव को अचिन्त्य वीर्य या द्रव्य का कर्म मानते है ।

> रसवीर्य प्रभृतयो भूतोत्कर्षापकर्षत
> एकरूपा विरूपा वा द्रव्य समधिशेरते
> माधुर्य–शैत्य–पैच्छिल्य–स्नेह–गौरव–मन्दता ।
> सहवृत्या स्थिताः क्षीरे नत्वानूपौदकामिषे । अ स सू अ १७
> विरुद्धा ह्यपि चान्योन्यं रसाद्या कर्म साधते
> नावश्यं स्युर्विघाताय गुण दोषा मिथो यथा । अ स सू १७

अत जब उनका तर्क है कि कर्म साध्य नही तो अचित्य कर्म साध्य कैसे माना जा सकता है और वह प्रभाव से विरेचनादि कर्म कैसे करने मे समर्थ होगा । अतः अचिन्त्य कर्म प्रभाव नही माना जा सकता । बल्कि प्रभाव द्रव्य की विशेष शक्ति मान सकते है ऐसा परिभाषा मे कहा जा चुका है ।

वाग्भट्ट ने द्रव्य के दो प्रधान भेद बतलाये हैं समानप्रत्ययारब्ध व विचित्र प्रत्ययारब्ध । इसी प्रकार चरक प्रकृति सम समवेत–विकृति विषम समवेत यह दो भेद मानते हैं ।

जहा द्रव्य अपने रसक्रिया आदि के अनुकूल कार्य करता है वहा वह–समान प्रत्ययारब्ध या प्रकृति सम समवेत है जहा अनुकूल कार्य नही करता विचित्र प्रत्ययारब्ध या विकृति विषम समवेत होता है । गगाधर जी का तर्क इसी प्रकार प्रभावार्थ मे विकृति विषम समवेत या विचित्र प्रत्ययारब्ध से मेल खाता है । प्रभाव से नही । यदि हम इसे अचिन्त्य कह कर चरक का मत मानले तो ।

प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते च०सू० २६

इसी से सीधा अर्थ कर सकते है इतने द्रविण प्राणा याम की आवश्यकता नही है ।

अचिन्त्य या प्रभाव के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है । वास्तव मे प्रभाव द्रव्य का अपना स्वभाव माना जाता है अत प्रभाव को श्रेष्ठ मानते हैं । प्रभाव

की श्रेष्ठता मे कई उदाहरण व तर्क दिये जाते है। अष्टाग सग्रहकार ने अचिन्त्य कहकर प्रभाव का स्पष्ट वर्णन किया है, विशिष्टता भी द्योतित की है यथा –

द्रव्य रस–विपाक–वीर्यादि अप्रधान रूप से रहते है प्रभाव प्रधान रूप से रहता है अत द्रव्य सर्वों से प्रधान है।

प्रभाव प्रधान्य–तद्द्रव्यमात्मना किंचित् किंचिद्वीर्येण सेवितम्
किंचिद्रसविपाकाभ्या दोष हन्ति करोति वा। सु०सू०अ० ४०

पूर्व मे कहा जा चुका है कि सुश्रुत व नागार्जुन प्रभाव नही मानते, वे वीर्य तक ही सीमित रहते है और उन से ही कार्य कर्तृत्व मानते है तथा वीर्य की व्याख्या मे सुश्रुत स्पष्ट कहते है कि द्रव्यगत कार्य कारिणी शक्ति ही वीर्य है वह दो प्रकार की है (१) चिन्त्य (२) अचिन्त्य

(१) अमीमास्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावत ।
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणै । सु०सू० अ० ४०

(२) पृथक्त्वदर्शिनामेव वादिना वाद सग्रहः
चतुर्णामपि सामग्र्यमिच्छन्ति अत्र विपश्चित ।
तद्द्रव्यमात्मनाकिंचित् किंचिद्वीर्येण सेवितम् ।
किंचिद्रसविपाकाभ्या दोष हन्ति करोति वा। सु०सू०अ० ४०

ऊपर के शब्दो से स्पष्ट है कि विद्वान लोग द्रव्य–रस–विपाक व वीर्य इन चारो का अपने अपने विषय मे प्रधान मानते है और वीर्य ही चिन्त्य अचिन्त्य दो प्रकार का है। अष्टाग सग्रह व अष्टाग हृदय मे यह अचिन्त्य प्रभाव के लिये इसके आधार पर माना गया है अथवा चरक के अचिन्त्य को प्रभाव माना गया है। किन्तु उदाहरण सब द्रव्य के हैं और अत मे प्रभाव माना गया है।

द्रव्य	रस	पाक	वीर्य	प्रभाव
चित्रक[1]	कटुक	कटुक	उष्ण	दीपनम्
दन्ती	,,	,,	,,	रेचनम्
विष (जगम)	ऊर्ध्व	गमन	शीत	विषहरत्व
विष (स्थावर)	अधोगमन	शील		विषहरत्व
मणि आदि धारणम्	धारणत्व			व्याधिहरत्व

१–कटुक कटुक पाके वीर्योष्ण चित्रकोमत । तद्वद्दन्तीप्रभावात्तु विरेचयति मानवम् । च०सु० २६–६८

विष विषघ्नमुक्तं यत् प्रभावस्तत्र कारणम् । ऊर्ध्वानुलोमिक यच्च तत् प्रभाव प्रभावितम् । मणीना धारणीयाना कर्म यद्विविधात्मकम् । तत्प्रभावकृतं तेषा प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते । च० सू० २६

इस प्रकार प्रभाव का उदाहरण देते हुवे चरक ने प्रभाव का विशेष कर्तृत्व उल्लेख किया है और प्रभाव को वीर्य से पृथक् मानने के लिए यह उद्धृत किया है— किंचिद्रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम् ।

द्रव्यं गुणेन पाकेन, प्रभावेण च किंचन । च०सू० २६–७२

रस विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तानपोहति ।

बल साम्ये रसादीनामिति नैसर्गिक बलम् । ७२

पुनश्च—-यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्वेन वर्तते ।

अभिभूयेतरास्तत्तत्कारणत्वं प्रपद्यते ।। वृ० वाग्भट्ट

इस प्रकार से रसादि की तरह प्रभाव का पृथक अस्तित्व स्वीकार किया है और प्रभाव–रस–विपाक व वीर्य के प्रभाव को भी दमन करता है यह स्पष्ट उल्लेख है ।

अष्टांग संग्रह ने दूसरा उदाहरण दिया है:–

रस–विपाक–वीर्य के समानगुण कर्म होने पर भी जो विशिष्ट क्रिया किसी की हो जाती है उसे प्रभाव कहते हैं यथा–

द्रव्य	रस	विपाक	वीर्य	प्रभाव
दन्ती	कटुक	कटुक	उष्ण	विरेचन प्रभाव
चित्रक	,,	,	,,	दीपन
मधुक	मधुर	मधुर	शीत	बल्य
मृद्वीका	,,	,,	,,	विरेचन
क्षीर	,,	,,	स्निग्ध	बल्य-स्रसन-दीपनादि
घृत	,,	,,	स्निग्धपिच्छिल	दीपन
लशुन	कटु	कटु	स्निग्ध-गुरुवीर्य	कफवातजित (वर्धक नही)
आमलकी	अम्ल	अम्ल	स्निग्ध-शीत-वीर्य	त्रिदोषजित्
रक्तशालि	मधुर	मधुर	स्निग्धगुरु	श्लेष्मकरत्व (वातजितहोने पर भी)
यवक	मधुर	मधुर	स्निग्धगुरु	त्रिदोषकृत
शिरीष	–	–	–	विषघ्न
निद्रा	–	–	–	विषवर्धन
अगद दर्शन	–	–	–	विषहरण
वृष्य	–	–	–	आशु शुक्र कृत व शुक्रविरेक कृत
रसायन	–	–	–	आशुबलकृत
मदनफल	–	–	–	वामक
त्रिवृत	–	–	–	विरेचक

यह औषधिया अपने प्रभाव से उचित मात्रा मे देने पर अपना प्रभाव कार्य करती है । अ० स० सू० अ० १७

अष्टाग संग्रह सूत्र अध्याय—१७

रसादि साम्ये यत्कर्म विशिष्ट तत्प्रभावजम् ।
दतिरसाद्यैस्तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ।
मधुकस्य मृद्विका, घृत क्षीरस्य दीपनम् । गुरुपाकरसस्निग्ध-गुरुत्वं-कफवात जित् ।
लशुनो वात कफकृत्तु तैरेव यद्गुणै ।
मियो विरुद्धो वातादीन् लोहिताद्याजयन्तितत् ।
कुर्वन्ति यवकाद्याश्च तत् प्रभाव विजृम्भितम् ।
शिरीषादि विषहन्ति सप्नाद्य त द्विवृद्धये ।
मणिमत्रौषधादीना यत् कर्मविविधात्मकम् ।
शल्याहरण—पुजन्म—रक्षायुर्धी—वशादिकम् ।
दर्शनाद्यैरपिविष यन्नियच्छति चागद । विरेचयति यद्द्रव्यमाशुशुक्रं करोति वा ।
उर्ध्वाधो भागिकैयच्च द्रव्य यच्छमनादिकम् ।
मात्रादि प्राप्य तत्तच्च प्रत्ययपंचेन वर्णितम् ।
तच्चप्रभावज सर्वमतोऽचिन्त्य स उच्यते ।
रसेनवीर्येण गुणैश्चकर्म द्रव्यं विपाके न च यद्विदध्यात् ।
मद्योऽन्ययात् कुरुते प्रभावात् हेतोरतस्तत्र न गोचरोऽस्ति ।। अ० स० सू १७ ।

कुछ और उदाहरण

	द्रव्य	गुण—रस—विपाक	समान प्रत्ययारब्ध	विचित्र प्रत्ययारब्ध	प्रभावज कर्म
	गोधूम	स्वाद—गुरु	+	—	वातजित
	यव	,, ,,	—	+	वातकृत
	दुग्ध	,, शीत	+	—	शीतवीर्य
	मत्स्य	,, ,,	—	+	उष्णवीर्य
अष्टाग-संग्रह	शूकर	,, ,,	—	+	अग्निदीपन
	वसा	,, उष्ण	—	+	अग्निसादिनी
	मुद्ग	कटुविपाक	—	+	पित्तघ्न
	माष	मधुरविपाक	—	+	पित्तल
	फाणितम्	मधुरस्निग्ध—मधुरपाक	—	+	उष्णम्
	दधि	मधुर—गुरु	—	+	वह्नि कुरुते (दीपन)
	पारावत	मधुर—गुरु	—	+	अदीपन
	कपित्थम्	अम्ल	—	+	ग्राही
	दाडिम	अम्ल	—	+	ग्राही
	आमलकी	अम्ल	+	—	स्रंसनम्
	धातकी	कषाया—शीता	+	—	ग्राही
	हरीतकी	,, उष्णवीर्य	—	+	रेचनी
चरक	शूकरमांस	स्निग्ध—गुरु	+	—	मधुरपाकी
	सिंहमांस	,, ,	—	+	कटुपाकी

नोट.—यस्मदृष्ट यवः स्वादुर्गुरुरप्यनिल प्रद ।
दीपन शीतमप्याज्य वसोष्णा व्यग्नि सादिनी ।
कटुपाकोऽपि पितघ्नो मुद्‌गो, माषस्तु पित्तत्व ।
स्वादुपाको पित्तलकृत स्निग्धोष्ण गुरुफाणितम् ।
कुरुते दधि गुर्वव वाह्न, पारावत न नु ।
कपित्य दाडिम ग्राही साम्लं, नामलकी फलम् ।
कषायाग्राहिणी शीता घातकी न हरीतकी ।
अप्रधाना पृथक्तस्मात् रसाद्या सश्रितास्तु ते ।
प्रभावश्चयतो द्रव्ये, द्रव्यं श्रेष्ठमतो मतम्। अ० स० सू० १७ ।

इस प्रकार देखने मे आता है कि प्रभाव भी रसगुण—वीर्य विपाक की तरह एक द्रव्यस्थ एक विशिष्ट तत्व है। और रस—गुण—विपाक वीर्यादि जव सामान्यात्मक कार्य करते है प्रभाव इन सवो को प्रघर्षित करके कार्य करता है।

औषधि चिकित्सा क्यों करना चाहिए

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा।
स्थान—वृद्धि—क्षयास्तस्माद् देहिना द्रव्यहेतुका ।। सु०सू० ४१
पुनश्च—गुणा द्रव्येषु ये चोक्तास्तानेव ततु—दोषयो
स्थिति—वृद्धि—क्षयास्तस्मात्तेषा हि द्रव्यहेतुका । अ० स०सू० १७

० ० ०

भाग ३

औषधि विज्ञान शास्त्र

भाग ३

सामान्य परिभाषा व विशिष्ठ परिभाषा

औषधि शास्त्र का परिभाषा खंड

मंगला चरण--

गुरुवर्य धर्मदास सत्यनारायण तथा
जगन्नाथ वैद्यवर्यप्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
नासत्यो भिषजा श्रेष्ठो नत्वा धन्वन्तरिं तथा ।
परिभाषां प्रवक्ष्यामि भिषजां ज्ञान वृद्धये ।
सुभद्रा मातर पुण्यां सर्वदाल्हाद वर्यिनिम् ।
विद्रवत् पूज्य महाभागपितरम् राजकिशोरकम् ।
शास्त्रेषूवतयत्रतत्र टीका कृद्धिश्च वर्णिता ।
अस्फुटा सति यास्ताश्चपरिभाषाऽत्र गुफिता ।
अव्यक्तानुक्त लेशोक्तसदिग्धार्थादि बोधिका
परितो भाषणाद्धि परिभाषा निरुच्यते ।
वर्गी कृत्य प्रवक्ष्यामि या प्रायोपयोगिकी ।
प्राच्य प्रतीच्य सारेण युक्त गुण वहानि या ।

२. सामान्य विशेष परिभाषा सूची

(१) शोधन–विशोधन–संशोधन

१ वमन
२ विरेचन
३ उभयतोभागहरम्
४ वस्ति
५ शिरोविरेचन
६ आर्तवशोधन
७ स्तन्यशोधन
८ स्रोतोविशोधन
९ हृद्विशोधन
१० कोष्ठविशोधन
११ उद्गारशोधन
१२ गर्भाशयशोधन
१३. योनिविशोधन
१४ हनुविशोधन
१५ आस्यविशोधन
१६ व्रणशोधन
१७ कंठशोधन
१८ वस्तिशोधन
१९ मूत्रशोधन
२०. उर विशोधन
२१ दोषविशोधन
२२ असृग्विशोधन
२३ शुक्रशोधन
२४ रेतोमार्ग विशोधन
२५ स्वरविशोधन
२६ वक्त्रक्लेदविशोधन
२७ देहविशोधन
२८ योनिविशोधन
२९ पक्वाशयविशोधन
३० उद्गार शोधन

(२) अवसादन

१ कोष्ठावसादन
२ वातावसादन
३ पित्तावसादन । सादयेति ।
च० सू० अ०–२६
४ श्लेष्मावसादन
५ मांसावसादन
व्रणावसादन (कटुरस) च सू २६
६ अग्निसाद कृत
७. बलवर्णाग्निसाद कृत

(३) संशमन-प्रशमन-शमन-दोषप्रशमन

१ वात संशमन
२ शाखावातशमन
३ पित्तप्रशमन–सर्वपित्तानियोगा-प्रशमन
४ श्लेष्मसंशमन
५ आमोपशामक
६ ग्रहणीदोष प्रशमन
७ मद प्रशमन
८ मूर्च्छा प्रशमन
९ शर्करा शमन
१० असृग् प्रशमन
११ तृष्णा प्रशमन
१२ उदर्द प्रशमन
१३. विषप्रशमन
१४ अत्यग्नि प्रशमन
१५ कृमि प्रशमन
१६ स्थौल्यप्रशमन
१७ ज्वर प्रशमन
१८ तन्द्रा प्रशमन–निद्रा प्रशमन
१९ दाह प्रशमन
२० शूल प्रशमन
२१ आलस्य प्रशमन
२२ प्रसेक प्रशमन
२३ बल प्रशमन
२४ कण्डू प्रशमन
२५ शीत प्रशमन
२६ हिक्का शातकर
२७ कास प्रशान्तये
२८ हृद्ग्रह प्रशमन
२९ क्रोध प्रशमन

(४) स्यंदनम्

१ मुखस्यन्दनम्

२. अग्निसंदनम्
३ प्राणन्वावक्रम
(५) संग्राही–ग्राही–सग्राहिकम्
१. पुरीष सग्राही–वर्चोग्रह
२ पित्तसग्राही
३ श्लेष्म सग्राही
४. स्तन सग्राहक
५. मूत्रग्राही
(६) विरजनीय–रजन
१ पुरीषविरजनीय
२. मूत्र विरजनीय
३. केश रंजन
(७) लेखनम्–सलेखन–विलेखन
१. जिह्वाविलेखन
२. मासविलेखनम्
(८) उपग
१ स्नेहोपग
२ स्वेदोपग
३. वमनो पग
४. विरेचनोपग
५. आस्थापनोपग
६. अनुवासनोपग
७ शिरोविरेचनोपग
(९) अनुलोमन
१. वातानुलोमन
२ वर्चोनुलोमन
३. कफानुलोमन
४. दोषानुलोमन
५ गर्भानुलोमन
(१०) कोपन–कोपनम्
१. वात प्रकोपण
२ पित्त प्रकोपण
३. श्लेष्म प्रकोपण
(११) दूषण
१ पित्त दूषण
२ पित्तासृग्दूषण
३ ग्रहणी दूषण
४ शोणित प्रदूषण
५ दृष्टि प्रदूषण
६. वस्तिदूषण

(१२) प्रसादन
१ वात प्रसादन
२ पित्त प्रसादन
३ मन प्रसादन
४ दृष्टि प्रसादन
५ रस प्रसादन
६ रक्त प्रसादन
७ मास प्रसादन
८ वल प्रसादन
९ त्वग्प्रसादन
१० वर्ण प्रसादन
(१३) निग्रहण
१ वात निग्रहण
२ छर्दि निग्रहण
३ पिपासा निग्रहण
४ हिक्का निग्रहण
५. निद्रा निग्रहण
(१४) शोषणम्
१ पित्त विशोषण
२ श्लेष्म विशोषण
३ मेद शोषण
४ पूय शोषण
५ मज्जा शोषण
६ अस्थि शोषण
७ मूत्र शोषण
८ स्वेद शोषण
९ पुरीष शोषण
१० गर्भशोषण
११ शुक्रोपशोषण
१२ क्लेदोपशोषण
१३ मुक्त शोषण
१४ रसोपशोषण
१५ रक्तोपशोषण
१६. मास विशोषण
१७ वसोपशोषण
(१५) भेदन
१ शर्करा भेदन
२ अश्मरी भेदन
३ आनाह भेदन
४ रक्त विभेदन–शोणित सघात भेदन

५ विड्भेदी
६ गुल्म भेदन
७ सन्धिभेदन
८ पक्वशोथ भेदन

(१६) क्लेदन-प्रक्लेदन
१ क्लेदन
२ कफोत् क्लेदन
३ व्रणक्लेदन

(१७) स्थापन
१ शोणित स्थापन
२ वेदना स्थापन
३ सज्ञा स्थापन
४ गर्भ स्थापन
५ व्यय स्थापन
६. प्रजा स्थापन

(१८) प्रबोधन
१ इन्द्रियबोधन
२ स्वर प्रबोधन
३ बुद्धि प्रबोधन

(१९) तर्पण
१ शिरस्तर्पण
२ अक्षितर्पण
३ कर्ण तर्पण

(२०) प्रवर्त्तन
१ रज प्रवर्त्तन
२ वर्च प्रवर्त्तन
३ विष प्रवर्त्तन
४ विषवेग प्रवर्त्तन

(२१) करकृत्
१ अनिलकर
२ परवात कर
३ पूनिपासत कर
४ कफ कर
५ पित्त कर
६ आध्मान कर
७ पुष्यकृत
८ स्तन्यवृद्धिकर
९ ओजस्कर
१० स्रोतसमार्दव कर
११ अवकाश कर
१२ मन सात्वनकृत
१३ वर्त्तिकर
१४ छर्दिकर
१५ वातुशोपकर
१६ मदकर
१७ भ्रमकर
१८ इन्द्रियोपतापकर
१९ दोपकृत
२० दोपमार्दवकृत
२१ रक्तकृत
२२ प्रभूत मासकृत
२३ मास दार्ढ्यकृत
२४ अस्थि स्थैर्यकृत
२५ मेदो वृद्धिकर
२६. शुक्रकृत
२७. घ्राण स्राव कृत
२८. श्रुतिदार्ढ्यकृत
२९. विष्टम्भकर
३०. त्वक्स्थिरीकर
३१. तृष्णाकर
३२. भेदकर
३३. पूतिमारुतकृत
३४. वातकर-परवातकर
३५. श्लेष्मजनन
३६. कण्डूकर
३७. कृमिकर
३८. रुजाकर
३९. पीडाकर
४० ज्वरकृत
४१ सुप्तिकृत
४२ दाहकर
४३ शूलकर
४४. श्वयथुकर
४५. अग्निकर
४६ वाक्कर
४७ आयुकृत
४८ उर्जास्कृत
४९. कार्श्यकृत
५० जडताकृत
५१ चेष्ठाकर

५२. धीकृत
५३. स्मृतिकर
५४. बुद्धिकर
५५. पाककर
५६. पैच्छिल्यकर
५७. बन्धनकर
५८. मंगलकर
५९. रुधिकर
६०. लावण्यकर
६१. विक्षेपकर
६२. आक्षेपकर
६३. ऐश्वर्यकर
६४ स्वप्नकृत
६५. क्षीणक्षतसधानकर
६६. हृल्लासकर
६७ मूर्च्छाकर

मार्दव कृत

६८. दोष मार्दवकृत
६९. केश मार्दव कृत
७०. धातुमार्दवकृत

(२२) जनन

१. लाला प्रसेक जनन
२. तन्द्रा जनन
३ पैच्छिल्यजनन
४. स्वप्न जनन
५. पुरीष जनन
६. मूत्र जनन
७. उदावर्तजनन
८. उर सधान जनन
९. दोषजनन
१०. नेत्रदोषजनन
११. स्तभजनन
१२. विसर्ज जनन
१३. आस्वासजनन
१४. आनद जनन
१५. उत्क्लेदजनन
१६ सौमनस्यजनन
१७. मोह जनन
१८. आवीजनन
१९. ज्वर जनन

(२३) बलप्रद

१. मासबलप्रद
२. शुक्रबलप्रद
३. हृन्योर्बलप्रद

(२४) आपादन

१. शिर शूलमापादन
२. अर्दित मापादन
३. मुखपादमृत्पादन
४. पुस्त्वोपघातमापादन

(२५) पाचन

१. दोष पाचन
२. पित्तपाचन

(२६) वर्धन

१. पवनवर्धन
२. पित्तवर्धन
३. श्लेष्मवर्धन
४. स्तन्यवर्धन
५. ओजवर्धन
६. धातुवर्धन
७. शोणितवर्धन
८. मासवर्धन
९. मेदो वर्धन
१०. अस्थिवर्धन
११. मज्जा वर्धन
१२. शुक्र वर्धन
१३. बलवर्धन
१४. अग्निवर्धन
१५. ज्वरवेग वर्धन

(२७) उपचयकृत

१. रक्तोपचयकृत
२. मासोपचयकृत

(२८) विच्छेदन

१. कफविच्छेदन
२. श्लेष्मविच्छेदन

(२९) बोधन

१. इन्द्रियबोधन
२. स्वरबोधन

(३०) नाशन–घ्न–हर हरण–आपह

१. शुक्रनाशन
२. दोषनाशन
३. व्याधिनाशन
४. नेत्रशुक्रनाशन

यह सक्षेप मे बहुत है और दोष धातु मल व रोग तथा रोग लक्षण के अत मे लग कर आती है।

(३१) **कर्षण–अपकर्षण**

१ पित्तकर्षण
२. श्लेष्मकर्षण
३. पूतिमलापकर्षण
४ स्थौल्यापकर्षण
५ मूत्रकर्षण

(३२) **घाती**

१ पाकघाती
२ व्याधि घाती

(३३) **विदाही**

१ कोष्ठ विदाही
२ उदर विदाही

(३४) **प्रल्हादन**

१ जिह्वाप्रल्हादन
२ ओष्ठ प्रल्हादन

(३५) **बद्ध**

१ बद्ध मूत्रम्
२ बद्ध पुरीषम्
३ प्रबद्धमूत्रम्

(३६) **भेदन**

१ भिन्नमूत्रम्
२ भिन्न पुरीषम्
३ अश्वमित
४ गुल्म भेदन
५ मल भेदन कृत

(३७) **ईरण**

१ दोष समीरण
२ वात समीरण

(३८) **नाशन एव तदभिप्रेत सज्ञावर्ग घ्न–नाशन–हर–सूदन–आपह–हा–जित**

१ अनिलनाशन (अनिलघ्न–अनिलहा, वातहन्ता–अनिलहार–वातजित–अनिपसूदन
२. पित्तघ्न (पित्तहन्ता–पित्तावह–पित्तघ्न – पित्तनाशन – पित्तहर–पित्तजित–पित्तघ्न।
३ श्लेष्मनाशन (श्लेष्मघ्न–कफहर–कफापह–कासजित–कफनिवारण–कफरोधन)
४. वातव्याधि नाशन–(हर·हन्ता–जित-हा–)
५ पित्तामयापह–पित्तामयहर
६ कफव्याधिविनाशन
७ आनाहघ्न–(आनाह नाशन–आनाह विमोक्षण)

(३९) **आपह** –वातगुल्मापह, वातज्वरापह, वक्त्रक्लेदमलापह–यक्ष्मापह उदरविषापह, कामलापह–अचरणापहम्–विप्लुतापह–कासापह–श्वासापह हिक्कापह–शुक्रामयापह–शुक्रविषापह दृष्टिदोषापह–तृष्णापह–मूत्रकृच्छ्रापह अग्निदाहरुजापह – अभिहतरुजापह आषुविषापह उपदशव्रणापह, दौर्बल्यापहतिमिरापह–प्लीहापह।

(४०) **घ्न**-कर्णशूलघ्न–कण्डूघ्न-तृष्णाघ्न-कठघ्न-कृमिघ्न-जतुघ्न-कुष्ठघ्न वषघ्न-श्वयथुघ्न–अर्शोघ्न–तृप्तिघ्न ज्वरघ्न–शोथघ्न–देह दंतरोगघ्न–मूत्रविकारघ्न–अतिसारघ्न–स्वेदघ्न अनलसादघ्न – खलितघ्न– भ्रमघ्न व्यगघ्न-पार्श्वरुहाघ्न-दाहघ्न–निलिकाघ्न–प्राणघ्न– शूलघ्न – शोषघ्न ग्लानिघ्न–अक्षिशूलघ्न-नयनामयघ्न

(४१) **हर**––कर्णपीडाहर – श्वयथुहर श्वित्रहर–वरहर–श्रमहर– नाभिपाक मूत्रवातहर–मूत्रदोषहर–अभिष्यदहर ओष्ठवातहर-उर्ध्वजत्रुगेगहर–दाहहर नाडीव्रणहर– स्मृतिहर – हृल्लासहर स्तन्यदोषहर – रजसामयहर– वाता-

सृग्हर–वीहर-कोष्ठवातहर–मेदोदोषहर-अश्रुहर–कर्णकण्डूहर–कर्णनादहर – कर्णस्रावहर – पूतिगंधहर– पूतिकर्णहर–मुखपाकहर–दंतशर्कराहर, दन्तशूलहर– दंतक्रिमिहर – त्वगामयहर – मूत्रविकारहर कासहर

(४२) **हर**—क्षुद्ररोगहर, उदावर्तहर, मुखरोगहर, पीनसहर, अश्मरीहर, वातसृग्हर, रजसाभयहर, संधिशूलहर, हनुशूलहर, चक्षुबलहृत, अग्निमांद्यहर, उन्मादहर, काचहर, गुल्महर, गंडमालाहर, हिक्काहर, उत्क्लेदहर, घृनिहर, दौर्गन्ध्यहर, नाडीव्रणहर

(४३) **नाशन**— उदावर्तनाशन, आस्यवैरस्यनाशन, मुखरोगविनाशन, कोशविनाशन, आध्माननाशन, भगदरनाशन, स्तमनाशन, सिध्मनाशन, पाँडुनाशन, पीनसनाशन, वृद्धिनाशन, परिपचननाशन, अग्निविषनाशन, ग्लानिविनाशन, शोकनाशन, गुल्मनाशन, स्तन्यनाशन, अनिलनाशन, अर्दितनाशन, हृदाजितप्रनाशिनी, पार्श्वशूलनाशन, गण्डमालानाशन

(४४) **जित**–कम्पजित, योनिवेदनाजित, वातविबंधजित, उरःशूलजित, मूत्रविबंधजित, पुरीषग्रहजित, शकृद्विबंधजित, अतिस्थौल्यजित, विसर्गजित, व्रणशूलजित, पत्युशूलजित, शोपजित, अगावसादजित, त्वग्रोगजित, पार्श्वशूलजित, विषमज्वरजित, तिमिरजित

(४५) **नुत**–सुप्तिनुत–अपस्मारनुत–मूत्रविबंधनुत–शकृद्विबंधनुत–ज्वरदाहार्तिनुत–तृप्तिनुत

(४६) **निवारण**—गलामयनिवारण

(४७) **स्तंभन**—मलस्तभन, मूत्रस्तभन, शुक्रस्तभन

(४८) **निवर्हण**—सर्वव्याधिनिवर्हण, कुष्ठनिवर्हण

४९ **उत्तेजक**—आन्त्रोत्तेजक, रक्ताभिसरणोत्तेजक, आमाशयोत्तेजक, त्वगुत्तेजक, नेत्रोत्तेजक, व्रणशोथोत्तेजक, हृदयोत्तेजक, यकृदुत्तेजक

विशेष संज्ञायें

१ दीपनम्, दीपनीयम्, अग्निसंदीपनम्
२ वर्ण्यम्
३ बल्यम्
४. कण्ठ्यम्
५ हृद्यम्
६ चक्षुष्यम्
७ केश्यम्
८ मेध्यम्
९ ओजस्यम्
१० दन्त्यम्
११ चक्षुस्यम्
१२ त्वच्य
१३ स्वेदल–स्वेदन
१४. स्वरकृत
१५ जिह्वाजाड्यकृत
१६ दंतदार्ढ्यकृत
१७ केशकृष्णताकर
१८ केशस्निग्धताकृत
१९ पैच्छिल्यकर
२० बंधनकर
२१ विक्षेपकर
२२ आक्षेपकर
२३ वैशद्यकर
२४ जीवन
२५ बृंहण
२६ आवीजनन

२७ स्फोटकर
२८. लघन
२९ स्नेहन
३० लक्षण
३१ रसायन
३२ वाजीकरण
३३ व्यवायी
३४ विकाशी
३५ प्रमाथी
३६ अभिष्यदी
३७. आशुकारी
३८. स्रोणवाही
३९ सूक्ष्मम्
४० निघातन
४१ पूरण
४२ वधन
४३ व्यूहण
४४ वर्तन
४५ चालन
४६ विवर्त्तन
४७ विवरण
४८. पीडन
४९ एषण
५० दारण
५१ ऋजुकरण
५२ प्रघर्षण
५३ उन्मथन
५४. उन्वधन
५५ प्रमार्जन
५६ विम्लायन
५७ प्रपीडन
५८ रोपण
५९ उत्पादन
६० अवसादन
६१ पाचनम्
६२ सधानीयम्
६३ विकर्षण
६४ उन्नमन
६५ विनमन
६६ आछन
६७. छेदन
६८ लेखन
६९ वेधन
७० विस्रावण
७१ सीवण
७२ उपनाहन
७३ कुथन
७४ मथन
७५ आशुकारी
७६ अपतर्पण
७७. अवृष्य
७८. आर्तवजनन
७९ अतिआर्तवहर
८० क्रिमिघ्न (उदर)
८१ क्रिमिघ्न—विरेचक
८२ आध्मानहर
८३ आनाहहर
८४ कण्डूघ्न
८५ कोष्ठघ्न

—o—

३. कर्म परिभाषा व्याकरणीय स्कंध

ज्ञातव्य—वृहत्रयी व निघटुओ के साहित्यावगाहन करने पर कर्म सवधी दो सहस्र मे ऊपर सज्ञाये प्राप्त होती हैं। जिनमे कई सामान्यार्थवाचक है और कई विशेपार्थ वाचक है। इन सज्ञाओ को हम यदि दोप धातु, उपधातु व मल विशेप कर्मवाचक वर्गो मे विभाजित करे तो उपर्युक्त सख्या मे विभाजित हो जाती है। इनमे से कुछ सामान्य अर्थवाचक हैं कुछ विशेष अर्थ मे प्रयुक्त होती दिखाई पडती हैं। इस आधार पर कर्मपरिभापिक सज्ञाओ को एक विशेष प्रकार की सरणी मे सयुक्त कर उनकी परिभाषाए व्यक्त की जा रही है।

जितनी परिभापाए चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, शार्ङ्गधर आदि आचार्यो ने लिखी हैं उन्हे उसी रूप मे व्यक्त किया गया है। जिनके सबध मे कोई परिभाषा नही है उनका प्राचीन परपरा के अनुसार साहित्य व कोष के आधार पर तैयार किया गया है।

यथोपलब्ध आधुनिक सज्ञाओ का यदि वे तत्सम है तो उनका उल्लेख किया गया है यदि वे मेल नही खाती या तत्सम नही होती तो उनको उनकी भाषा

में ही व्यक्त किया गया है ताकि भेद व भाव वना रहे और पुन. विचार करने की सुविवा मिलती रहे।

चिकित्सा—चिकित्सा की भिन्न-भिन्न सज्ञाये व्यक्त की हुई मिलती है। यही परिभापा लिखने की परिपाटी थी। अतः प्रत्येक आचार्य ने अपने दृष्टिकोण से उनका विचार कर सज्ञाये प्रयुक्त की है। यथा——

[1]**व्याधि निग्रह हेतु**—रोगो के निग्रहार्थ सुश्रुत ने 'व्यावि-निग्रह हेतु' इस शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि वे द्रव्य या युक्तिया जो शारीरिक और मानसिक व्याधियो को दूर करती थी उन्हे व्याविनिग्रह हेतु कहते थे।

दोषावजयन—चरक ने इसे ही दोषावजयन कहा है। अत उनकी परिभापा मे जो द्रव्य शारीरिक व मानसिक व्याधियो को दूर कर सके और शरीर मे धातुसाम्य की स्थिति उत्पन्न कर दे उन्हे **दोषावजयन** कहते है। इसे ही दोष प्रशमन या व्याधि प्रशमन भी कहते है।

भेपज के अर्थ मे इन दोनो सज्ञाओ को व्याधि निग्रह हेतु व दोषावजयन को प्रयोग किया गया है इसे ही चिकित्सा कहते हैं जिसका अर्थ **भेष रोगजयति इति भेषजम्** अर्थात् रोग पर जो विजय प्राप्त करे उसे भेषज कहते है। इस प्रकार जिन जिन उपकरणो का अथवा औषधियो को चिकित्सक धातुसाम्य क्रिया के लिए प्रयोग करते है उन्हे [2]भेपज या चिकित्सा कहते है। इसके दो प्रवान भेद है——

१–दैव [3]व्यपाश्रयम्, २–युक्ति [4]व्यपाश्रयम्।

दैव व्यपाश्रय—यह वह चिकित्सा है जिसमे मत्र, वलि, मणि, मगल या होम, नियम, उपहार क्रम के द्वारा चिकित्सा की जाती है।

युक्ति व्यपाश्रय—यह वह चिकित्सा है जिसमे सशोधन सशमन द्रव्य या अन्य युक्ति प्रयुक्त होकर व्याधि का प्रशमन होता है। इसके पुन दो भेद है यथा–**१–ओजस्कर**–जो स्वस्थ व्यक्ति के लिये वलदायक व व्याधिप्रतिषेधक हो।

२–व्याधिनुत—जो व्याधि को दूर करती हो।

पुन इसके चार भेद किये गये है। यथा——

१–सशोधन, २–सशमन, ३–आहार, ४–आचार

१–तद्दु ख संयोगा व्याधयः उच्यते। ते चतुर्विधा शारीरा आगन्तव मानसा स्वाभाविकाश्चेति एते शरीर मन. अधिष्ठाना। तेषां सशोधन संशमनाहाराचारा. सम्यक्प्रयुक्ता निग्रह हेतव। सुश्रुत सूत्र अ० १

२–भेषजनाम तद्यदुपकरणायोपकल्प्यतेभिपज। धातुसाम्याभिनिवृत्तौप्रयतमानस्यविशेष तश्चोपायान्तेभ्य।

३–दैव व्यपाश्रयम्–मन्त्रौषधि मणिमंगल बल्युपहार होम नियम प्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपात गमनादि।

४–युक्ति व्यपाश्रय सशोधन संशमन चेष्ठाश्च दृष्ट फल। चरक

इस प्रकार भेषज के प्रधान भेद सशोधन, सशमन व आहार इन तीन वर्गों का विवरण द्रव्यगुण शास्त्र देता है। अत इस प्रकार प्रयुक्त होनेवाली सज्ञाये भी इन तीन प्रकार के भेदो मे विभक्त हो जाती हैं। यथा—

१–सशमन चिकित्सा, २–सशोधन चिकित्सा, ३–आहार चिकित्सा।

इनमे से प्रारभिक दो चिकित्साये व इनके द्रव्य पुन दो भागो मे विभक्त हो जाती हैं। यथा—

१–अत परिमार्जन २–बहि परिमार्जन

अत परिमार्जन[1]—जो द्रव्य शरीर के भीतर प्रयुक्त होकर रोगो को नष्ट करते है उन्हे अत परिमार्जन कहते हैं।

बहि परिमार्जन[2]—जो द्रव्य शरीर के बाहरी भागो पर प्रयुक्त होकर रोग की शाति करते हैं उन्हे बहि परिमार्जन कहते हैं।

आहार द्रव्य भी शरीर के भीतर जाकर शरीर धातु साम्य कर होते है। इस प्रकार समस्त सज्ञाओ को भिन्न–भिन्न रूप मे वर्गीकरण कर के सशोधन सशमन व आहार द्रव्यो के रूप मे रखा गया है।

कर्म प्रविभागीय विवरण

सुश्रुत ने क्रिया कर्म को चार प्रधान भागो मे विभाजित किया है। महर्षि चरक भी इसी बात की परिपुष्टि करते है। वाग्भट्ट भी इनका ही अनुसरण करते है। अत जब चरक सुश्रुत व वाग्भट्ट मे मिलने वाली कार्मुक सज्ञाये जो १७०० या १८०० करीब पडती हैं उनका विभाजन करे तो उनका विभाजन चार प्रधान भागो मे निम्न रूप मे हो जाता है। यथा—

१–सशोधन—इसके अतर्गत शरीर के दोषो को निकाल कर शुद्ध करते हैं।

२–सशमन—इसमे शरीर की क्रियाओ को घटा कर या बढाकर धातुसाम्य की क्रिया को करते है और शोधन नही करना पडता।

३–आहार—इसमे रोगी या स्वस्थ के आहार का विवेचन करना व पथ्य का प्रबध होता है।

४–आचार—विभिन्न प्रकार के आचार जो रोग प्रशमनार्थ करना पडता है। इनमे से प्रथम दो का सबध चिकित्सा कर्म से तीसरे का पथ्यापथ्य से और चौथा आचार सबधी है। चरक व वाग्भट्ट ने प्रथम दो को ही चिकित्सा मे प्रधानता दी है। अत क्रिया कर्मवाली सज्ञाओ को दो प्रधान भेदो मे विभाजन करे तो निम्न स्वरूप बन जाता है। यथा—

१–सशोधन वर्ग—	**२–सशमन वर्ग—**
वमन	जीवनीय
विरेचन	बृहणीय
लेखनीय	सधानीय

१–अत परिमार्जन यदन्त शरीरमनुप्रविश्यौषधमाहार जात व्याधीन् प्रमार्ष्टि। चक्रपाणि

२–बहि परिमार्जन यत्पुन बहि स्पर्शनमाश्रित्य अभ्यग स्वेद प्रदेह परिषेकान् मर्दनादिभि आमयान् प्रमार्ष्टि। चरक

१—सशोधन वर्ग—

भेदनीय
स्नेहोपग
स्वेदोपग
वमनोपग
विरेचनोपग
आस्थापनोपग
शिरोविरेचनोपग
शिरोविरेचन
शुक्र शोधन
रक्त शोधन
स्तन्य शोधन
मूत्र विरेचनीय
आस्थापन
अनुवासन
दत शोधन
मुख शोधन
मुख शोधन लघन
रूक्षण
स्नेहन
स्वेदन
अपतर्पतण
शोषण
शोधन
प्रपीडन
पाचन
दारुण
अपरा पातन आदि

२—सशमन वर्ग—

दीपनीय
पाचनीय
बल्य
वर्ण्य
कठ्य
हृद्य
तृप्तिघ्न
छर्दिनिग्रहण
हिक्का निग्रहण
पुरीष सग्रहणीय
शुक्रजन
स्तन्य जनन
विषघ्न
क्रिमिघ्न
कडूघ्न
कुष्ठघ्न
अर्शोघ्न
मूत्र सग्रहणीय
कासहर
श्वासहर
श्वयथुहर
ज्वरहर
श्रमहर
दाहप्रशमन
शीत प्रशमन
उदर्द प्रशमन
अग मर्दप्रशमन
शूल प्रशमन
शोणितस्थापन
वेदनास्थापन
सज्ञास्थापन
प्रजास्थापन
वय स्थापन
बृहण
निद्राजनन
निद्राशमन
सज्ञा प्रबोधन
तर्पण
वात सशमन

२–**सशमन वर्ग**— पित्त सशमन, श्लेष्म सशमन, रक्षोघ्न
रसायन, केश रजन वाजीकरण
विषघ्न चक्षुष्य

आहार –आहार के विषय मे चरक व सुश्रुत इनके भिन्न–भिन्न गण हैं यथा –

चारकीय –शूक धान्य, शमी धान्य, मास वर्ग शाक, वर्ग, फल वर्ग, हरितक वर्ग, वारि वर्ग, इक्षुवर्ग, कृतान्न वर्ग तथा आहारोपयोगी वर्ग आदि।

सौश्रुतीय–द्रव द्रव्य वर्ग, जल वर्ग, क्षीर वर्ग, दधिवर्ग, तक्रवर्ग, तैल वर्ग, मद्यवर्ग, मूत्र वर्ग।

अन्नद्रव्य –शालिवर्ग, कुधान्य वर्ग, द्विदलवर्ग, मासवर्ग, फलवर्ग, लवण अर्कक्षारवर्ग, धातु वर्ग, रत्न वर्ग, कृतान्न वर्ग आदि।

आचार ? भिन्न भिन्न रोगो मे भिन्न–भिन्न प्रकार के जो आचार क्रम होते हैं उनका ग्रहण है।

इस प्रकार चार प्रधान भेद व दो सामान्य भेद और यदि सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया जाय तो कई भेद इन औषधियो के बन जाते है। इनका विवरण वर्गनिर्धारण पूर्वक आगे दिया गया है।

सामान्य व विशिष्ट संज्ञायें।

क्रियात्मक सज्ञाये दो प्रकार के भेदो मे विभक्त की जा सकती है यथा –

सामान्य संज्ञायें –जो सज्ञाये समान रूप से कई पाई जाती है उनको सामान्य सज्ञा के नाम से पुकारते है। यथा —

१–सशमन प्रशमन –वात सशमन, पित्त सशमन, श्लेष्म प्रशमन, आदि। इस अर्थको प्रकट करने वाली सज्ञाओ मे कई प्रकार के धातु रूपो से बने शब्दो का प्रयोग होता दिखाई पडता है। हन, हन्ता, हर, जित, निवारण, नुत, नाशन, विनाशन से मिली जितनी सज्ञाये हैं वह सब की सब सशमन क्रिया की पोषिका है। इनके भेद प्रभेद अलग किये गये हैं। सामान्य रूप से वातघ्न, वातहर, वातापह, वातसशमन, वात विनाशन, पित्त जित, पित्तनाशन, मूत्र विकारघ्न तृष्णापनयन, आनाह आदि-सज्ञायें इसकी है।

२–अवसादक–वातावसादक, कोष्ठावसादक, अग्निसाद कृत, वल वर्णाग्नि साद कृत, अग्नि साद कृत,

३–प्रकोपण कोपन–वात प्रकोपण, पित्त प्रकोपण, कोष्ठ वात प्रकोपिणी। इस प्रकार की क्रियायें और भी हैं जो विकृत आपादन व जननके साथ मिलती है। यथा –वात कृत, पित्त जनन, दोषापादन आदि।

४–वर्द्धन प्रवर्द्धन –इस प्रकरण मे उन सारी क्रियओ का सम्मिश्रण है जो कि आवह न, ल, कृत विवर्धन नाम से पायी जाती हैं। यथा –मारुतावह, पित्तवर्द्धन, शोणित वर्वन, मास वर्धन, शुक्रल, वान कृत।

५–क्षोभन —वात क्षोभी, पवन क्षोभी

६–अनुलोमन –वातानुलोमन, पित्तानुलोमन, श्लेष्मानुलोमन

७–निग्रहण, निरोधक अवरोधक–मारुत निग्रह, पित्तावरोधी-छर्दिनिग्रहण। कफ निरोधन

८–प्रसादन–वातप्रसादन, अनल प्रसादन, त्वक प्रसादन, वर्ण प्रसादन, हृत् प्रसादन

९–कर्षी, कर्षण–पित्तकर्षी, श्लेष्म कर्षण, पूति गधापकर्षण

१०–शोषण –पित्त शोषण, गर्भ शोषण

११–सग्राहक ग्राही –पित्त सग्राहक, श्लेष्म सग्राहक, मूत्र ग्राही, दत ग्राहिता

१२–दूषण –पित्त दूषण, शोणित दूष्ण, वस्ति दूषण

१३–पाचन –पित्त पाचन, दोष पाचन

१४–जनन –क प्रसेक जनन, उत्क्लेशजनन, मूत्र जनन। भ्रम जनन, हृत पीडा जनन। मन्यास्तभ जनन।

१५–विष्यदन –श्लेष्म विष्यदन, मुख स्यदन

१६–क्लेदन –कफोत्क्लेदन।

१७–च्छेदन –श्लेष्म विच्छदी।

१८–विलयन –कफ विलयन

१९–विरेचन –श्लेष्म विरेचन, चक्षु विरेचन, मल विरेचन

२०–ईरण –दोष समीरण, विष मुदीरण।

२१–सशोधन–विशोधन व शोधन

२२–दोष विशोधन –स्रोतो विशोधन, उद्गार शोधन, हृत विशोधन, दत शोधन, उर विशोधन, शुक्र शोधन, स्तन्य शोधन आदि।

२३–स्थापन –शोणित स्थापन, प्रजा स्थापन, व वेदना स्थापन।

२४–बल्य या बल प्रद –मास बल प्रद, शुक्र बल प्रद, हृवी बल प्रद, इस मे बल्य, जोड कर सज्ञायें होती हैं।

२५–दाढ्र्यकृत –मास दाढ्र्य कृत, अग्नि दाढ्र्य कृत, इन्द्रिय दाढर्यकृत

२६–भेदन व भिन्न –भिन्न मूत्र, भिन्न पुरीषम्, अश्म पित्त, मल भेदन, गुल्म भेद कृत।

२७–बद्ध –बद्ध मूत्र, बद्ध पुरीष, प्रबद्ध मूत्र

२८–रजन –मूत्र विरजन, पुरीष विरजन, केश रजन।

२९–सतर्पण –नेत्र तर्पण, कर्ण तर्पण, अक्षि तर्पण, इन्द्रिय तर्पण।

३०–घाती –पाक घाती, व्याधि घाती

३१–नाशन –शुक्र नाशन, नेत्र शुक्र नाशन, व्याधि नाशन, दोष नाशन

३२–प्रह्लादन –जिह्वाप्रह्लादन, ओष्ठ प्रह्लादन, इन्द्रिय प्रह्लादन

३३–बोधन –इन्द्रिय बोधन, स्वर बोधन

३४–**विदाही** –कोष्ठ विदाही, उदर विदाही

३५–**उपचय** –मासोपचय, रक्तोपचय

इस प्रकार हम देखते है कि सामान्य सज्ञाये कई प्रकार की मिलती है।

विशेष सज्ञायें –यह सज्ञाये है जो कि समान रूप से नही मिलती बल्कि विशेष क्रिया के लिये ही प्रयुक्त होती है। यथा–

१–दीपन २–जीवन ३–बृहण ४–व्यवायी विकाशी मादक आदि

अत इस मे पाई जाने वाली औषधियो की क्रिया को इन दो भागो मे विभाजित करके आगे उनका वर्णन किया गया है। उपर निर्दिष्ट क्रम के अनुसार बहुत सी सज्ञायें बन जाती है परन्तु उन सब को एक स्थान पर रहने से बहुत बडा स्थान घिर जायगा। अत सक्षेप मे उनका निदर्शन करके विवरण देने का विचार है। यथा –

कर्म सबधी पारिभाषिक शब्दो का वर्गीकरण

दोष सबधी–दोष सबधी सज्ञाये १३ प्रकार के भेदो मे विभाजित की गई है। यथा—

१–ईरण, २–वर्द्धन, ३–जनन, ४–हनन, ५–शोधन, ६–शमन, ७–मार्दव, कृत, ८–विम्लापन, ९–पाचन, १०–अनुलोमन, ११–विष्यदन, १२–रेचन, १३–उत्क्लेश कृत, १४–वध कृत, १५–दोष प्रसादन,

इनके आधार पर विभिन्न प्रकार के शब्द मिलते है जिनके आधार पर से यह गिनी गई है।

१–ईरण १ दोष समीरण च० सि० ११।६

२–वर्द्धन १ दोषल अ० सू० ६।२४

३–जनन दोष जनन अ० सू० ५।६५

४–हनन—दोष हरण सु० उ० ६४।४ , अ० सू० ६।१०२

हरण ३ त्रिदोषघ्न अ०सू० ६।७ ४ दोष क्षय कर च० क० १२।४

५–विशोधन १ दोष विशोधन अ० चि०१७। २०

६–शमन दोष प्रशमन सु० सू० १८।७ दोष शान्ति कृत सु० उ० ३।५५

७–विम्लापन १ दोष विम्लापन च० क० ५।४

८–दोष मार्दव कृत १ दोष मार्दव कृत सु० सू० ३९।१०७

९–पाचन :१· दोष पाचन सु०सू० ४६।३८

१०–अनुलोमन · दोषानुलोमन अ० चि० १।३१

११–विष्यदन १ दोष विष्यदन अ० चि० ७।८

१२–रेचन · दोष विरेचन सु० चि० ७।३३

१३–वध १ दोष वध कृत अ० चि० १५।१३१

१४–उत्क्लेशन दोषोत्क्लेशकर अ० सू० ६।१०७

१५–शोभन–यह सज्ञाये हरएक दोष से सबधित न होकर भिन्न–भिन्न दोपो के साथ सबधित हैं। दोप परक सज्ञाओ के वर्गीकरण मे इनका स्वरूप स्पष्ट प्रकट हो जाता है। अत इनका उनके साथ ही लिखा है।

अत वात के विभिन्न भेदपित्त व श्लेप्म के विभिन्न भेदो से सबधित सज्ञाओ को पृथक पृथक दिया गया है। हो सकता है कि इस प्रकार की वहुत सी सज्ञाये छूट भी गई हो परन्तु यथालब्ध सज्ञाओ को यहा प्रस्तुत करते हुए हर्ष होता है।

वात वर्गीय संज्ञा श्रेणी विभाजन

वात सबधी सज्ञाओ का यदि उनका श्रेणी विभाजन करे तो कई भेद मिलते है। इनको निम्न भा ो मे पाते है। यथा.–

१–वात सशमन : शमन

२–वातवसादन-अवसादक ·

३– वात सादन–

४–वात हनन–इस मे जिन शब्दो के अन्त मे हनन, नाशन, सूदन, हा, घ्न, आदि युक्त शब्द आते है वे सबके सब इस वर्ग मे लेने योग्य है।

५–प्रकोषण

६–वर्द्धन–इसमे वहन, आवह, कृत, ला शब्द आते है वह सब के सब इस मे आ सकते हैं।

७–क्षोभण–

८–अनुलोमन–

९–निग्रहण इनमे निग्रहण व निरोधन अवग्राहण आदि सम्मिलित है।

१०. **वात जनन**

११. **पूति मारुतकृत**

१२. **वात कृत**—यह वात दोप न होकर के वायव्य या गेसवृद्धि का परिचायक है।

१३. **वात व्याधिकर**—इस मे कई सज्ञाये आती है यथा—

१. आक्षेपजनन	५ विष्टभकर
२ विक्षेप जनन	६ शूल मापादन
३ आध्मान कर -	७ उदावर्त जनन
४. अर्दित मापादन	

१४. वात व्याधि कर—यह सब रोग कृत सज्ञाओ मे से है। वैकृतिक मानी जाती है। इनका विवरण आगे दिया गया है।

आयुर्वेदिक साहित्य का अवगाहन करे तो ऊपर कहे हुये वर्ग की वहुत सी सज्ञाये मिलती है जिनके आधार पर हम इनकी स्थिति को मानते हैं। विशद इसका विवरण आगे को दे रहे हैं।

इनमे से वात व्याधि जनन व हरण विशेप वडे वडे सज्ञा युक्त वर्ग है। शमन व हनन भी इसी प्रकार के हैं।

निघटुओ मे पाई जानेवाली सज्ञाओ का इस मे कोई समावेश नही है। वह तो वहुत ही विशाल सज्ञा समूह है।

यदि परिभाषा की दृष्टि से विचार करे तो कुछ पारिभाषिक शब्द ऐसे भी है कि जिनका समावेश वात वर्ग के अतरगत आ सकता है। यथा—

१ सज्ञा स्थापन
२. निद्रा जनन
३ निद्रा प्रशमन
४ मेध्य
५ मादक
६ वेदना स्थापन
७ व्यवायी
८. विकाशी

इनका सवध विशेष कर वात सस्थानीय क्रियाओ मे या मस्तिष्क मवधी क्रियाओ से सवधित है।

वात सवधी जितनी सज्ञाये यहा आयुर्वेद साहित्य मे मिलती है उनका यदि क्रमश श्रेणी विभाजन करे तो स्थान सहित इतनी सज्ञाये मिल सकती हैं।

१—**वातसशमन**—वातप्रशमन सु० सू० ४६।८, वातप्रशमनी च०सू० अ० २७।२३७ वातसशमन सु० उ० ३८।४०,—वातशमन सु० उ० ४०,—वातो पशमन सु० सू० ४६।८८

२—**वातावसादन**—,—सादकृत सु० सू० ४६—५१८,—अवसादन अ० उ० २५।४८, —सादनम्, —वलवर्णाग्निसादनम्

३—**वातप्रसादन**—,—सु० सू० अ० ४२।६२

४—**वात निग्रहण**—१—पवन निग्रहण सु०सू० ४२।, —मारुत निग्रह· च०सू०१६।८, —वातावग्राहक च० सू० २६,—वायोनिग्रह· च० सू० २६

५—**वातानुलोमन**—मारुतानुलोमन च० सू० १६।६, —अधो वातानुलोमन च० सू० २७।३०२, —वातानुलोमनी च० सू० अ० २७।२५०, —वातानुलोमन च० सू० अ० १२, —मारुताद्यनुलोमनी सु० सू० ३९।१३२

६—**वातप्रकोपण**—वातप्रकोपिणी च० सू० १२।६, अ० सू० २७।३२, —मारुत प्रकोपण च० क० १२, —वातप्रकोपण सु० सू० ४५ २९२, —वात प्रकोपण सु० सू० ४६।८

७—**वात नाशन**—अनिल नाशन सु० सू० ३८।३६, अ०४६।९७, —वात हन्ता सु० सू० ४६।४३, —वातघ्न सु० उ० अ० ३८।५९, —अनिलापहम् च० सू०अ० २७।७८ —वातहर च० सू० २७।६४

८—**वातवर्द्धन** १—अतिवातल सु० सू० ४६।८ २—अल्प वातकरम् सु० सू०१५।७ ३—वातलम् सु० सू० ४५।१२ ४—वातल च० सू० २७।१६, २७।१६२ व १६३

९—**वात क्षोभण**—१—वातक्षोभण पवनक्षोभी च० सि० अ० ११।८

वातरोग जनन—इस वर्ग मे विभिन्न प्रकार के वात वैकृतिक लक्षण जननात्मक कर्म का समावेश है।

१०–वात जनन–१–आक्षेप जनन, आक्षेपण जनयति सु० सू० ४२ २–आक्षेपमापादन सु० सू० ३८ ३–विक्षेपण जनन, विक्षेप करम् च० सू० चि० १।३० ४–आध्मान कर अ० सू० ७।२२, आध्मानकारक च० सू०२५ ५–उदावर्तजनन अ० चि० १।८० ६–शूल मापादन सु०सू०४१।२१, ७–विष्टम्भकर सु० सू० २२।११ ८–मन्या स्तभ जनन सु० सू० ४२।२० ९–अ स्वप्न जनन च०सू० २५ १०–भ्रमजनन च०सू०२५ ११–प्रबोधन अ० चि० १९।६० १२–चन्त्राककर अ० सू०७।२४ १३–मौसिर्य कर सु० सू० ४१।६

११–वात व्याधि हर गण–इस वर्ग मे वात के रोगो को हरने वाली सज्ञाओ का सग्रह है। यथा—

१–वातव्याधि नाशन अ० चि० २१।८१ २–सविशूल हर सु०सू० ३९।१४२ ३–आनाह भेदी सु०सू० ३८।३० ४-आढ्य मारुतघ्न अ० चि० ३।८३ ५–सुप्तिनुत सु० चि० २७।६० ६–वातशूल विनाशन सु० सू० ४२।१३ ७–वातविवधनुत अ० चि० १।११४ ८–उदावर्त नाशन सु० सू० ३८।२९

इनके अतिरिक्त अन्य भी क्रियाये हैं जिनके सबध ज्ञानवह नाडी मडल या मस्तिष्क से है। यथा —

१२–संज्ञास्थापन १३–निद्राजनन १४–निद्रा प्रशमन १५–मेध्य १६–मादक १७–वेदना स्थापक १८–व्यवायी १९–विकाशी इस प्रकार की अन्य भी सज्ञाये है जिनका ज्ञान होने पर योग किया जा सकता है।

पित्त संबंधी संज्ञायें

पित्त वर्ग की सज्ञाये बहुत प्रकार की उपलब्ध होती है। उन्हे कम से कम १५ भेदो मे और अधिक से अधिक बहुत सी सज्ञाओ मे बाट सकते है। पहले कम से कम का विवरण निम्न है——

१. पित्त संशमन	७. पित्त कर्षण	१३ पित्तावरोधन
२. पित्तावसादन	८ पित्त सशोषण	१४ पित्त पाचन
३. पित्त प्रसादन	९ पित्त सग्रहण	१५. पित्त शोधन
४. पित्तघ्न	१० पित्तवर्द्धन	१६. पित्तजनन
५. पित्त प्रकोपण	११ पित्त प्रदूषण	१७. पित्तकाष्ठघ्न
६ पित्तमुत्क्लेश	१२ पित्तानुलोमन	१८. पित्त व्याधि कर

इस प्रकार की क्रिया के अतिरिक्त पित्त सबधी क्रियाओ के शमन से सबध रखने वाली कई सज्ञाये है जो कि निम्नप्रकार की हैं——

१ पिपासा निग्रह	५ पित्त विरेचक	९. स्वेदहर
२ ताप प्रशमन	६ पित्त सारक	१० स्वेदोपहर
३ ताप हर	७. अनलदीपन	११. अनल सादक
४ मूत्रल	८ स्वेदोपग	

१२–**पित्त प्रदूषण**–पित्त दूषण–सु० सू० ४।३५, अ० सू० ६।२४
पित्त प्रदूषण–अ० चि० १०।४

१३–**पित्तानुलोमन**–सु०सू० ४५।१०९

१४–**पित्तावरोधन**–पित्तावरोधिन सु०सू० ४६।२२३, च० सू० २७।१८४, अ० सू० ६।११७

१५–**पित्त पाचन**–सु० उ० ४०।६२

१६–**पित्त शोधन**–

१७–**पित्त जनन**–अ० सू० १०।३४

१८–**पित्त कोष्ठघ्न**–पित्त व्याधि कर इस गण मे पित्त सबधी बहुत सी सज्ञायें है जिनके अत मे हर हन्ता आदि लगे होते है। यथा —

अ० उ० १३।५३ — पित्तामयापह–अ० सू० ५।२६

पित्तामय हर–च० सि० १२ — पित्तज्वर हर–अ० उ० ३६।८८

पित्त व्याधि प्रशमन–च० सि० १२ — पित्तगुल्मजित–अ०चि० १६।३५

पित्तानिमार नाशन आदि।

पित्त संशमन विज्ञान

पित्त सशमन वर्ग–इस वर्ग मे कई प्रकार की क्रियाओ का समावेश है यह स्पष्ट ज्ञात होता है। फिर भी सशमन प्रतिपादन के लिए दो प्रधान भेदो का ज्ञान सुज्ञात था ऐसा जान पडता है। यथा —

१–पित्त प्रशमन। २–पित्त विनाशन

इन दोनो सज्ञाओ के भीतर कई शब्दो का समावेश है यथा —

पित्त प्रशमन में–पित्तातियोग प्रशमन, पित्तोपशमन सर्वपित्तातियोग प्रशमन, पित्त प्रसादन

पित्त विनाशन–पित्तनाशन, पित्तविनाशन, पित्तहर, पित्तापह, पित्तहन्ता, पित्तनुत व पित्तघ्न आदि

१–**प्रशमन**–ऊपर के शब्दो से पित्त की प्रशमन क्रिया मे प्रधान पित्त पाचक की सशमन क्रिया मे दो भेद

१–पित्त प्रशमन २–पित्तातियोग प्रशमन यह द्विविध विचार ज्ञात होते है।

दूसरे भेद में ३–सर्वपित्तातियोग प्रशमन यह विचार मिलता है।

२–**पित्तविनाशन**–इस प्रकार की क्रिया मे नाशन, हरण, हन्ता विनाशन यह शब्द मिलते है। इसमे नाशन व विनाशन शब्द सामान्य पाचक पित्त की सामान्य क्रिया द्वारा नाशन और विनाशन विशिष्ट क्रिया द्वारा नाशन बतलाता है। साथ ही सर्वपित्तातियोग प्रशमन सर्व प्रकार के अतियोग प्रशमन का विचार उपस्थित करता है। अत इसके दो प्रकार के भेद बन जाते है —

१–शमन २–विनाशन

पित्त प्रशमन–सशमन क्रिया के अतर्गत दो क्रम दृष्टिगोचर होते हैं। यदि उन शब्दो को ध्यान मे रखे तो प्रसादन व अवसादन क्रिया का ज्ञान मिलता है। अत निम्न भेद स्वत बन जाते है।

१–संशमन– १ पित्त सशमन प्रसादन २–पित्त प्रगमन अवसादन

२–विनाशन १ पित्तहर सामान्य २ पित्तहर विशेष। अत निम्न विचार स्पष्ट दिखाई पडते है।

इस प्रकार पित्त सगमन के विगिष्ट रूप दृष्टिगोचर होते है।
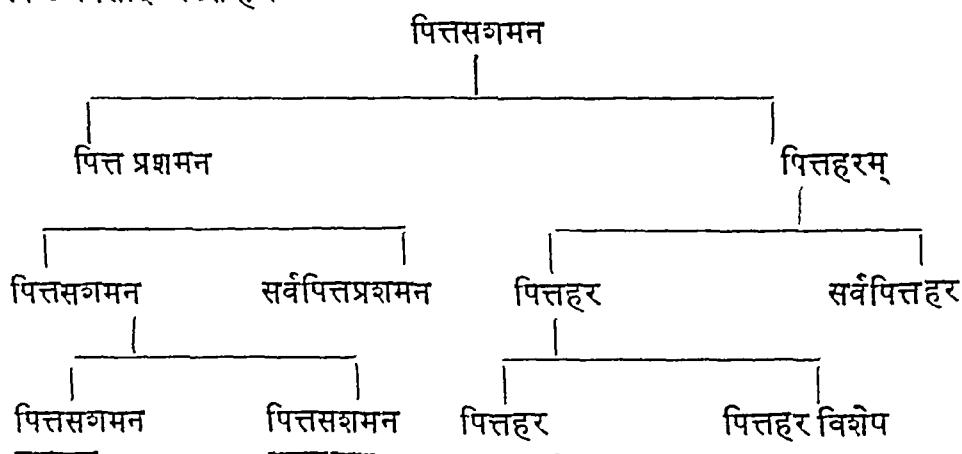
श्लेष्म संबंधी संज्ञायें

पूर्व की भाँति श्लेष्म सवधी सज्ञाये भी १४ भाग मे विभक्त हैं। यथा–

१–गमन २–कोपन ३–वर्धन ४–हनन ५–विष्यदन ६–क्लेदन ७–कर्षण ८–गोषण ९–विच्छेदी १०–सग्राहक ११–विलयन १२–निरोधन १३–अनुलोमन १४–विरेचन १५–श्लेष्म व्याधि १६ श्लेष्म रोग हर आदि।

इन सज्ञाओ पर विवेचन करे तो निम्न स्थान इनके विवरण के मिलते हैं। यथा –

१–सशमन व शमन–१-श्लेष्म सगमन सु०सू० ३८ २–श्लेष्म सशमन च सू १ ३–श्लेष्मोपशान्ति कृत सु० उ० ४०।५६

२–प्रकोपण–च० वि०

३–श्लेष्म वर्धन–१–कफविवर्धन च० सू० २७।२३३, च० सू० २०।९० २– श्लेष्माभि वर्धन–अ०सू० ६।१४७ –३–मलाग वर्धन–सु० सू० ४२।६५ श्लेष्म कृत–अ०सू० ५।३० श्लेष्मल अ०सू० ६।११२ श्लेष्म कर–अ० सू० ६।२९

४–(कफ प्रसेक) जनन–कफ प्रमेक जनन–सु० सू० ४२।१२ कफकर–अ० सू० ५।४१

५–हनन–इस वर्ग मे कई प्रकार की विभक्तियो का सग्रह होकर के सज्ञाये बनी है।

१–कफघ्न–अ० सू ६।२०। कफहा–अ० सू० ६।१०५

२–श्लेष्म हर–अ० सू० ५।५१। श्लेष्मघ्न–सु० सू० ४७।२९

३–कफ निवारण–सु० सू० ३८।८। बलासघ्न–सु० सू० ४२।७२

४–कफनागन–सु० सू० ३८।१६। कफापह–सु० सू० ३८।७७

६–विष्यंदन–कफविष्यदन–च० सू० २७।२६

७–कफ उत्क्लेदन–कफोत्क्लेदी–च० सू० २७

८–कर्षण–कफ कर्षण–च० चि० १।२८, श्लेष्मापकर्षण-सु० सू० ३८।१६

९–शोषण–कफोपशोषण–च०सू० २५, श्लेष्मोपशोषण– सु उ. २९।२५३, कफ विशोषण–सु० सू० ३८।१२

१०–च्छेदन–श्लेष्म विच्छेदी। कफ विच्छेदी–सु० सू० उ० ३९।१११

११–सग्रहण–श्लेष्म सग्राहक–च० सू० २४

१२–विलयन–कफ विलयन–सु० सू० ४२।४९, श्लेष्म विलयन–अ०क० २।५२

१३–निरोधन–कफ निरोधन–सु० चि० २४।३०

१४–अनुलोमन–कफानुलोमन–अ० चि० ८।२३

१५–विरेचन–श्लेष्म विरेचन–सु० सू० ४४।१९

१६–उत्क्लेद जनन–सु० सू० १२।११

१७–श्लेष्म व्याधि समीरण–च०चि० २३।१२७, कफ व्याधि विनाशन–च० चि० ३।६३

धातु सम्वन्धी सामान्य संज्ञायें

१	धातुवर्धन	२	धातु साम्यकर
३	धातु शोषण	४	धातु क्षोभन
५	धातु साम्यगति	६	धातुप्रत्यनीक

१ वर्धन––धातुवर्धन अ० सू० ५–२०, धातुविवर्धन सु० चि० २४–३९, धातुपुष्टिजनक सु० चि० २४–३०, अ० सू० ६–२७

२ साम्यकर––धातु साम्यकर सु० चि० २४–३०, अ० सू० ६–२७

३. शोषण––धातु शोषकर सु० उ० ४०–५४

४ क्षोभन––धातु क्षोभकर सु० उ० ३९–८

५ साम्यगति––धातु साम्यगति अ० सू० ११–२

६. प्रत्यनीक––धातु प्रत्यनीक च० सू० २५

रसधातु सबधी–केवल तीन सज्ञाये मिलती है। यथा ––

१––रस प्रसादन-च०सू०अ० २६, २––रसवर्धन––सु०सू० ३८।७८। च०सू० २५

३––रसोपशोषण। च० सू० २६।

रक्त धातु संबंधी

इस विषय मे बहुत सी सज्ञाये प्राप्त होती है यथा––

१–प्रसादन, वर्द्धन, नाशन, शमन, शोधन, कोपण, दूषण, भेदन, मोक्षण, अवसेचन, ग्रहण, स्थापन, शोषण, वहन, रक्त व्याधि नाशन आदि कई प्रकार की क्रियाये पाई जाती है। इनका विवरण यो हैं। ––

१ प्रसादन, असृक प्रसादन––सु०सू० ४५।१६१। रक्त प्रसादन सु० चि० २।५८, शोणित प्रसादन––सु० सू० ४२

वर्द्धन--रक्त वर्द्धन--सु०सू० ३८। रुविर वर्धन। च०सू० २५ प्रभूतासृक् कर--च०सू० २७।२३१। रक्त कृत--अ० हृ० सू० ५।३० असृक कृत--अ० सू० ५।९६। ६।१५९। शोणित वर्धन--अ० चि० ३।८९ अस्रद--अ०हृ० सू० ६।२०।

नाशन--रक्तघ्न- अ० हृ० चि० २।४५, रक्त नुत-- अ० चि १०।५० अस्रनुत--अ० सू०५।५९, अस्रघ्न--अ ९ सू० ५।४३, ६।३ शोणित जित--अ० चि० २।३३, रक्त नाशन--सु०उ० ४०।११०

शमन--असृक प्रशमन--च०सू० २५ शोणितातियोग प्रशमन--च० सू० २६ शोणित प्रशमन--च० सू० २५, असृक शमनी--सु० सू० ४६।५९

शोधन--रक्तशोधन--सु०सू० ४६।१६७, असृक शोधन--अ०हृ०सू० ११०।२०

कोपण--शोणित कोपी--सु० सू० २१।२४

दूषण--शोणित प्रदूषण--रक्तदूषण--सु० सू० ४६।९६, रक्तदूषणम्

भेदन--रक्त विभेदन--सु०उ० ४२।२०, शोणित संघात भेदन--च०सू० २६।४४

मोक्षण--शोणित मोक्षण--सु० उ० १२।४५, रक्त मोक्षण--च० सू० ८।३५

अवशेक--शोणितावशेक--च० सू० २७

संग्रहण--रक्त संग्रहण--च० सू० २७, रक्त संग्राहिक--च० चि० २७

स्थापन--शोणितास्थापन--सु० चि० १, च० सू० ४, रक्तस्थापन--अ० हृ० उ० ३४।४५

शोषण--रुधिरोपशोषण--च० सू० २६, रक्तोपशोषण-- सु०उ० ३९।२५३

वहन--असृकवहन--अ० हृ० सू० ५।६९

रक्तव्याधि नाशन--रक्त दोषहर--अ०सू० १५।११, असृग्दोषघ्न--अ० हृ० क० ३४।३९, असृग्दोष विनाशन--च०चि० १९।११८, रक्त पित्तघ्नी-अ० हृ० क० ५।२५, रक्त पित्त हर- सु० सू० ३८।७२, रक्त पित्त प्रशमन--च० सू० २५

मांस सम्बन्धी संज्ञाएं

१--मांसवर्धन २--मांस दार्ढ्यकृत ३--मांस पुष्टि कृत ४-मांस स्थिरीकरण ५--मांस विलेखन ६--शोषण ७--प्रसादन ८--बलप्रद

१--**वर्द्धन**--मांसवर्धन--सु० सू० ४२।१०, मधुररस--अ० सू० ६२
मांस विवर्धन--अ० क० ४--४० (वस्तिविशेष द्रव्य)
मांस शोणित वर्धन--च० चि०
मांस कर वर्धन--च० सू० २६।४३
मांसप्रद--च० चि० १--३८, अ० क० १३।६२
मांसद--अ० चि० ३--१०५
(गोक्षुरादिघृत)
मात्रा--प्रभूत मांसकर च० सू० २७--२३८

परिभाषा--वे द्रव्य जो मास को बढाते है मास वर्द्धन कहलाते हैं।

२--दार्ढ्यकृत--मासदार्ढ्यकृत--सु० सू० ४६-९९,

त्वक्दार्ढ्यकृत--अ० सू० २-८

त्वक् पीनगडत्वकृत--सु० चि० २३-६५

३--पुष्टि कृत--मास पुष्टि कृत--सु० सू० ४६।१७०

४--स्थिरीकरण--मासस्थिरीकरण--च० सू० २६।४३ (५) तिक्त

५--विलेखन--मासविलेखन--च० सू० २६, ४३।५

६--शोषण--मासोपशोषण--च० सू० २६।४३

७--प्रसादन--मासप्रसादन--च० सू० २६-४१

मांस रक्त प्रसादन-- सु० सू० १८।८

८--बलप्रद--मासबलप्रद--अ० चि० ३-११०

मेद संबंधी संज्ञायें

१वर्धन-- २--शोषण ३--नाशन ४--जनन

१--वर्धन--मेदो वर्धनम्--सु० सू० ४२, मेदवर्धक--च० सू० २६ मेदो विवर्धनम्--च० सू० २७-२३१, मेदपुष्टिद--सु० सू० ४६-२५८ मेदोवृद्धिकर--अ० हृ० सू० ५-६७

२--शोषण--मेदोपशोषण--सु० सू० ४२-४२

३--नाशन--मेदोविलापनम्--सु० चि० २४-५। अ० हृ० सू० २-१५ मेदोघ्नम्--सु० सू० ३८-३९--च० सू० २७-१८, मेदोनाशनम्--सु०सू० ३८-१९ मेदो निवारणम्--सु० सू० ३८।१८, मेदोहरम्--अ०हृ०सू० १५-२७, २९-३२ मेदोपहम्--सु० सू० ४६-२५८, अ० हृ० सू० १५-२३, चि० ३-१०९ मेदोपहन्ता--सु० सू० ४२, मेदोविनाशिनी-- सु० सू० ३८।५७ मेदोजित्--अ० हृ० सु० सू० ६-१५९

क्षय--मेदस--क्षय--अ० हृ०सू० २-१०, मेदोदोषहर--अ०हृ०सू० १५-२०, मेदोपह--अ०हृ० सू० ५-६७

४--जनन--मेदजननम्--सु० सू० ३९-५३, मेदुरम्--मेद्यम्--मेदकृत--अ० हृ० सू० ५-३०

अस्थि सम्बन्धी संज्ञायें

१--वर्धन २--पूरण ३--शोषण

१--वर्धन--अस्थिवर्धनम्--च० सू० २४, अस्थिवर्धक--सु० सू० ४५ अस्थिपुष्टि--सु० सू० १५-५

२--पूरण--अस्थिपूरण--सु० सू० १५-५, अस्थिस्थैर्यकृत--अ०हृ०क० २७-४१

३--शोषण--अस्थिशोषणम--च० सू० २६-४२

मज्जा सम्बन्धी संज्ञायें

१—वर्धन २—शोषण

१-वर्धनम्-मज्जाविवर्धनम्-च० सू० २६-४१, मज्जावर्धन-सु०सू०४२-१८

मात्रा-प्रभूत मज्जाकर--च० सू० २७-२३१

२-शोषण-मज्जाशोपक-अ०सू० १०-१५, मज्जोपशोपण--च०सू० २६-४५

शुक्र सम्बन्धी संज्ञायें

१--शुक्र वर्धन	७--शुक्र रोग सम्बन्धी (शुक्रामयहर)
२ शुक्र हरम्	८--शुक्र जनन
३--शुक्र शोपण	९--पुस्त्वप्रद
४--शुक्र सशोधन	१०--शुक्र स्त्रुतिकर
५--शुक्र अवग्राह	११--शुक्र स्त्रुति वृद्धिकर
६--शुक्र अवरोधक	च० चि० २—वाजीकरणपाद ४।५०-प्र, टीका

१--वर्धन--शुक्रल सु० सू० ४५-४६, शुक्रशस्त अ० सू० ५-३७ शुक्रप्रदम् च० चि० १-२८, अ० सू० ६-६६ शुक्रवर्धनम् च०सू० २५, अ०क० ४-६२, सु०सू० ४२ शुक्रजननम् च०सू० ४, शुक्र प्रदान अ०सू०४०-८ शुक्र विवर्धन अ० सू० ६-२९, शुक्रकृत अ० सू० ६-६१ शुक्रकर अ० सू० ५-४१, शुक्रवृद्धिकर अ० सू०, शुक्रवलप्रद अ० चि० ३-१०९ पुस्त्ववर्धन सु० चि० २४-५८, पुस्त्वप्रद सु० सू० ४२-९० वाजीकर अ० उ० ४०-४५

मात्रा--वहुशुक्र करम् अ सू ६।१९ वहुशुक्रल अ० सू० ४९।२९९

२-हरम्--शुक्रघ्न अ० सू० ६-१९, च० सू० २० शुक्रोपहन्ता सु० सू० ४२।८३ शुक्रहरम् अ० सू० ६-२४, च०सू० २० शुक्रनिषदनम् सु०सू० ४६-३७ शुक्रनाशन सु०सू० ४६-७१, अ०सू० २२-४५ शुक्रवलापदम् सु० सू० ४६-११८ शक्रकफापह सु० सू० ४५ शुक्रजित् अ० सू० १५-३२ शुक्रक्षयकर अ० सू० १०-१९ शुक्रापह अ०सू० ५-५९ पुसत्वोपघातमापदयति सु०सू० ४२-१० (३) पुस्त्वनाशन सु० सू० ४६-३२

३--शोषण--शुक्रोपशोषण--च० सू० २६

४--सशोधन--शुक्र सशोधन च० सू० ४ रेतोमार्गविशोधन सु सू ३९-२३४

५--अवग्राहक--रेतसोवग्राहक च० सू० २६

६--अवरोधक--वीर्यावरोधक च० सू० २६-३६

७--शुक्रामयहर--शुक्रमूत्रविवधघ्न अ० सू० ६-१२३ शुक्रविपापहम् अ० सू० -६२९, शुक्रामयहरम् अ० क० ४-६२

८ शुक्रजनन--शुक्र जननम् च० मू० ४ वाजीकर अ० उ० ४०-४५
वृष्य अ० मू० २-६

९ पुंस्त्वप्रद -अ० मू० २-६

उपधातु सम्बन्धी संज्ञायें

रज--

१ रज प्रवर्तनम्   २ रज वर्धन
३ रज अवरोधन   ४. रज शोधन
५ रज आमयहर

१ प्रवर्तन--रजप्रवर्तनम् च० चि० ३०-२७ आर्तवप्रवर्तनम् च० चि० ३०
आर्तवजनन

२ वर्धन--आर्तव करम् च० चि० ३०, पुष्पकृत च० चि० ३०

३ अवरोधन--आर्तवारोधकरणम् च० मू० २७

४ शोधन--आर्तवशोधनम् च० चि० ३० आर्तव शुद्धिकरम् च० चि० ३०

५ आमयहर--रजमामयहरम् अ० क० ४-६२

स्तन्य सम्बन्धी संज्ञायें

१ वर्धन   २ क्षपण
३ शोधन   ४. जीवन
५ आमयहर

१ वर्धन--स्तन्यवर्धन सु० सू० २२ स्तन्यजनन च० सू० ४
स्तन्यवृद्धिकरम् सु० सू० ४६-३०९ स्तन्यकर अ० सू० ५-२२,
सु० सू० ४६-३४

२ क्षपण--स्तन्योपहन्ता सु०सू० ४२

३ शोधन--स्तन्य शोधन च० सू० ४
स्तन्य विशोधन सु० सू० ३८।१९, स्तन्यशोधक अ० मू० १०।१६

४ जीवन--स्तन्यजीवनीयानि च० चि० १९-१५

५ आमयहर-- स्तन्यरोगहर अ०सू० १५-४०
स्तन्य दोपहर अ० सू० १५-३०

सिरा सम्बन्धी संज्ञायें

१ मोक्षण

१ मोक्षण--सिरा मोक्षण सु० उ० ११-३
सिरामुख विविक्तीकरण सु० चि० २४-५१ सिराव्यधन च०सि० २१-६३

त्वक् सम्बन्धी संज्ञायें

१ त्वक् प्रसादन   २ त्वक् शोधन
३ त्वक् स्थिरीकरण   ४ त्वक् वर्ण्य-(त्वक् कान्तिकृत)
५ त्वक् दोषापनयन   ६ त्वक् कण्डूघ्न
७ कोठ विनाशन

१ **प्रसादन**--त्वक् प्रसादन अ० सू० १०-२१, त्वच्य च० मू० २६
त्वक् प्रसादकर अ० सू० २-१५

२ **शोधन**--त्वक् शुद्धिकर अ० उ०२५।६१

३. **स्थिरीकरण**—त्वक् स्थिरीकरणम् च० चि० २५।८६

४ **वर्ण्य**—सवर्णकर अ० उ० १५।६२, च० चि० २५
वर्णदम् अ० सू० २४।२४, वर्ण प्रसादन अ० सू० १५।४४
वर्णकर अ० सू० ४६।५, वर्ण्यकर सु० मू० ४५।२११
अलक्ष्मीनुत् सु० उ० ३९।२३२, कान्ति शस्लम् अ० उ० ५।३८
वर्णकृत अ० सू० ५।३३, सु० सू० ४६।४२, वर्णप्रद अ० चि० ५।८१
वर्ण्य अ० चि० ६।५८, वर्णवर्धन अ० सू० ४।१३१
उज्ज्वलताकृत सु० सू० २४।६६, कान्तिप्रद अ० उ० ६।३१
लावण्यकर सु० उ० १३।५४

५ **दोषापनयन**—त्वक् दोषापनयन च० सू० २६,
त्वगामयहर सु० सू० ३८।६६ त्वग्रोगजित अ० मू० ६।१५६

६ **कण्डूघ्न**—कण्डूशमन सु०सू० ४५।२१, कण्डूघ्न च० सू० २६
कण्डूप्रशमन सु० सू० ४२।२१, कण्डूहर सु० सू० ३६।१६
कण्ड्वापहम सु० सू० १५।३१, कण्डूजित अ० सू० २।१६
कण्डूकर अ० सू० ७।१९

७ **कोठ विनाशन**—कोठ विनाशन च० सू० २७, कोठ प्रशमन
उदर्द प्रशमन च० सू० ४

मल सम्बधी संज्ञायें

मूत्र—

१	मूत्र विरेचन	२	मूत्रवर्धन (जनन)
३	मूत्र कर्षी	४	भिन्न मूत्रम्
५	मूत्र सग्रहणीय	६	वद्धमूत्र
७	मूत्र विरजनीय	८.	मूत्र शोषण
९	मूत्र दोष निवारण	१०	मूत्र कृच्छ्हर
११	मूत्र आघात हर	९२	मूत्र विवन्धहर
१३	मूत्र शोधन		

१ **विरेचनम्**--मूत्र विरेचनीय च० चि० ११।२८
अतिमूत्रल सु० सू० ४६।३००, आ० सू० ६।८९

२ **वर्धन-जनन**--मूत्र विवर्धन सु० सू० ४६, मूत्र जनन च० सू० २६,
मूत्रकृत अ० सू० ५।४१, मूत्रकर अ० सू० ६।२०,
सृष्टमूत्र अ० सू० ५।७४

मात्रा-बहुमूत्रता च० सू० २७,
,, बहुमूत्रल च० सू० २७।१५, अ० सू० ६।११
,, स्वल्पमूत्रकर च० सू० २७।६८,
,, अल्पमूत्रकर सु० सू० ४६।३८, अ० सू० ६।७
मूत्रल सु० सू० ४६।५, अ० सू० ६।४

३. **कर्षो**—मूत्रकर्षी च० सि० १।२८
४. **भिन्नमूत्रम**--भिन्नमूत्रम् मु० सू० ४६।३४
५. **ग्राही**--मूत्रावग्राहक च० सू० २६, मूत्रसंग्रहणीय च० सू० ७
६ **वद्धमूत्र**--वद्धमूत्र च० मू० २६, मु० मू० ४६।२६१ प्रवद्ध मूत्र
७. **रजन**—मूत्रविरजनीयम् च० सू० ४
८ **शोषण**—मूत्रोपशोषण च० मू० २६, सु० सू० ४२।२०
९ **दोषनिवारण**—मूत्रविकारहर सु० सू० ३८।७६
मूत्रदोष निवारण मु० सू० ३९।३६, मूत्रदोपहर,
मूत्रविकारघ्न सु० सू० २६।४५, मूत्रामयापह अ० चि० ३ १०१
मूत्रमलवातहर अ० मू० १५।१३
१०. **कृच्छ्रहर**—मूत्रकृच्छ्रहर अ० मू० १५।१३, सु० मू० ३८।३९, च०सू० २५
मूत्रकृच्छ्रापह अ० चि० ३।१०५
११. **मूत्राघातहर**—अ० सू० १५।२५ मूत्राघातनिवारण मु० सू० ३८।३४
१२. **विबन्धजित**—मूत्रविबधजित अ० चि० ११।१४,
मूत्रविबन्धनुत् अ० चि० ८।६४
१३. **शोधन**—मूत्रशोधन सु० ३४०।१०७, शोधन अ० सू० १०।१५

स्वेद सम्बन्धी संज्ञायें

१	स्वेदजनन–कर	२	स्वेदोपग
२	स्वेद शोषण	४:	स्वेदहर

१. **जनन**—स्वेदजननम् च० मू० २०।२४८,
स्वेदकरम् च० चि० २३।१५८, अ० सू० ७।२९
स्वेदोपपादकम् च० मू० १४।५,
स्वेदजननी सु० सू० ४६।२५७, च० मू० २६
स्वेदनम् च० सू० १४।५६, अ० सू० ८।१५
प्रस्वेदनम् सु० मू० २०।४, स्वेदनी च० सू० २८
स्वेदी अ० मू० ६।२८, स्वेदल अ० सू० ६।१२१
२ **स्वेदोपग**--च० सू० ४
३ **शोषण**--स्वेदोपशोषण
४ **हर**—स्वेदघ्न सु० चि० २४।६३, स्वेदजित् अ० सू० २।१६

मल सम्बन्धी संज्ञायें

१	पुरीष जनन	२	पुरीष सग्रहण
३	पुरीष शोधन	४	पुरीष विरेचन
५	पुरीष भेदन	६	पुरीष स्रसन
७	पुरीष स्तभन	८	पुरीष सर
९	अनुलोमन	१०	विष्टम्भ (रोग सूचक)

१ **जनन**--पुरीष जनन सु० सू० ४०।१३५, च० सू० २५
विड्कृत अ० सू० ६।१३
मात्रा—वहुपुरीषकर अ० मू० ६।२१, अ० सू० २७, वहुमल च० सू० २७,
वर्चोविवर्धन सु० सू० ४२।७४

वहुवर्च सु० सू० ४६।४२, अ० सू० २७।२५८,
अल्पवर्चस्क सु० सू० ४६।५, अल्पमल सु० सू० ४६।३७
पुरी, वर्चस्या सु०सू० ४६।११९

२. **सग्रहण**—पुरीप सग्रहणीय च० सू० ४, वर्चोग्रह च० चि० २३।१०
पुरीषावग्राहक च० सू० २६, वद्धवर्च च० सू० २९।९३, सु० सू० ४६।८
वद्धविटक सु० सू० ४६।२६१
सग्राही च० चि० २७।१९, सु० सू० ३९।७, अ० सू० ५।३६
ग्राही च० चि० २८, अ० सू० ६।२९, चि० ५।६०
ग्राहिणी च० सू० ८, अ० सू० ६।२९, वद्धपुरीष च० सू० २६
विवद्धवर्च अ. चि. १०।३०, सग्रहणीय च. सू १५,
शकृत्सग्राही अ सू ६।१२८, सग्राहिक च चि. ६।६०, अ चि.९।७
सग्राहिकी च सू ५, विष्टम्भि च सू २७।१०७,
शकृत्शोषक अ सू १०।१५

३ **शोधन**—पुरीप शोधन सु सू २६ विट्उपशोषण सु सू ४२।२१
विष्टम्भकरणम् च सू २६, सु सू २२।११, अ सू १०।२१
विशोधन अ. चि ३।१७९, च. सि. ६।११
सशोधन अ चि ११।३५, च. सू. १३।९९, सु. सू. ३८।३९
सशोधनवर्ति च. चि. ३०।६०, च. सू १३।८९, सु सू ३८।३९
पक्वाशय विशोधन च सि १०,
स्रोतोविशोधन अ सू ५।६४, सु सू ४५।११४
शोधन अ सू १।२४, सु सू ४२।९३
स्रोतोविशोधिनी अ चि १०।५, सु सू ४६।२३२
स्रोतोशोधी अ. सू ५।३५, च चि १६

४. **विरेचन**—विरेचन च क १।२, सु. उ. ४।१६,
विरेचनोपग च सू ४, रुक्ष विरेचन च क १२।८०
रेचन सु. सू ४२।२१, अ. चि १९।२०,
रेचन सुकुमाराणा सु सू ४४।१६, स्नेह विरेचन च क १२।८०
उदर विरेचन सु उ ३८।२७, तीक्ष्ण विरेचन सु उ ३३।८१
निरपाय विरेचन सु. सू ४७।१८ पितघ्न विरेचन सु सु ४७।१८
सुखविरेचन च क ७।२८, वर्पासुविरेचनम् च क १।५१
ग्रीष्मकाले विरेचनम् च सू ७।५४,
जलदात्यये विरेचनम् च क ७।५३
ईश्वराणा विरेचनम् च. क १२।३०
सुकुमारेषु विरेचनम् सु सू ४४।१७, च. उ. १२।३०

५ **भेदन**—भेदी च सू २६, अ सू ५।७९,
भेदनम् च सू. ३, अ सू ६।९८,
भेदिनी च सू २७।९०, अ सू ६।९२ विटभिन्नकर सु. सू ४६।५४
भिन्नपुरीष सु. सू. ४६।३४, विट्भेदी सु उ. ३८

विट् सघभेदन अ.मू ४।२५
वर्च असहृतम् अ.मू. १६।३१, भिन्नवर्चस च सू. २७।२५६
भिन्नशकृत च.मू २७।२७७, भेदकृत सु.मू ४२।२१

६ स्रसन—वर्च प्रवर्तनम् च चि २९।२३७
स्रसन अ.चि १।१२६, च मू. १२।६६
स्रमी च. सू. २०।२७८, ससर्जन च.सू १६

७. स्तम्भन—स्तम्भनम् सु सू. ७०।६२, च.सि. १।९०
स्तम्भकृत च.चि. १।६, स्तम्भनिग्रह च मू. १४
स्तम्भकल्प च चि १५।१८०, स्तम्भजनन च.सू. ७
स्तम्भनीय च मू २५

८. सर—सर च मू. २२, अ मू ५।१५
सरणम् सु मू. ७५।१०४, सारक च० सू ५
सृष्टमल अ. मू ६।१७३, सृष्टविट् अ.मू. ६।११८
पुरीष ग्रहजित् अ चि. ९।७८, शकृत् विबन्धनुत् अ चि ८।६०
शकृद्वि वन्धजित् अ.चि ११।१४

९. अनुलोमन—वर्चोनुलोमिनी च. क. १।५२
अनुलोमन च सि. ८।२६, अ सू ४।४०, सु चि. १४।३३
आनुलोमिक च.सू. २५
वर्चानुलोमन अ चि ८।५४, च. क १।५२
१० विष्टम्भ—विष्टम्भि च मू २७।१०७, अ.सू ५।४१

दन्त सम्बन्धी संज्ञायें

१ दन्त वलकर २ दन्त शोधन
३ दन्त ग्राही ४ दन्त हर्ष
५ दन्त रोगहर

१. वल—दन्तवलकरम् च.मू. २५ दन्त्यम् च सू. ४६।३९
दन्तदाढ्र्यकृत सु.सू. ४५।३९
२ शोधन—दन्तशोधन सु चि. २४।९, दन्तविशोधन च सू. २६
३ ग्राही—दन्तग्राहिता सु.सू ४४।१२, दन्तग्राही अ.सू. ५।७
४. हर्ष—दन्तहर्षप्रद सु चि २१।३४, दन्तहर्षण सु.सू. ४१।४२
५ रोगहर–दन्तकृमिहर अ उ २२।२०, दन्तरूजापह अ उ. २१।३२२
दन्तरोगहर अ उ १८।३०, दन्तविपापह अ.उ २८।४०
दन्तशर्कराहर अ. उ. २२।१७, दन्तहर्षहर अ. उ. २२।१८
दन्तशूलहर अ.उ २२।२०, दन्तोपद्रववातरोगान् हन्ति अ उ. ९।४१

केश सम्बन्धी संज्ञायें

१	केश जनन	२	केश नाशन
३.	केश प्रसादन	४.	केश मार्दवकृत
५	केश व्याकरण	६	केश स्निग्धकर
७	केश वर्धन	८	केश रजन

१. **जनन**--लोम सजनन च सू. २७, लोम रोहण च चि २५।४०

२ **नाशन**--केशनाशन सु सू. ४६।१९३, केशघ्न अ सू ६।१३० लोमनिवारण च चि २५।२७३ लोम शातन

३ **प्रसादन**--केश्यम् सु सू ४२, अ सू. ५।६० केशस्निग्धताकर सु चि २४।२५

४ **मार्दव**--केशमार्दवकृत सु चि २४।२५ केश दैर्घ्यकृत सु चि. २४।२५

५ **व्याकरण**--केश व्याकरण सु चि. २४।२५ केश बहुलकरण सु चि २४।२५

६ **स्निग्ध**--केशस्निग्धकर सु चि २४।२५ केश बलकृत अ सू. २।२७

७ **वर्धन**--केश सवर्धन अ उ २४।४९

८ **रजन**--केशरजन अ.उ. २४।४०, सु चि. २५।२६ केशकृष्णताकरणम् सु.चि २४।२५

ओज सम्बन्धी सज्ञायें

१. ओजवर्धन	२. ओजनाशन
३. ओज प्रसादन	

१ **वर्धन**--ओजवर्धक सु.सू ४२, ओजवर्धक च सू ११।५५ ओजस्कर च.सू ११।५५, ओजस्य सू चि २४।६०

ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी संज्ञायें

चक्षु सम्बन्धी सज्ञायें--

१.	हित	२	तर्पण
३	पूरण	४	प्रसादन
५.	रेचन	६	रोगघ्न
७.	पाकघाती	८	नाशन
९	दूषण	१०	रोगजनन
११	अश्रु.	१२	अजन

१ **हित**--चक्षुष्यम् सु० सू० ३८।५९, आ० सू० ५।५१ अतिचक्षुष्यम् सु० सू० ४६।८४ चक्षुशस्तम् आ० सू० ५।३८ नेत्रहितम् सु चि २४।२१ नेत्र्यम् अ सू १३।३७ अक्ष्णोहितम् अ. सू २।५ आ चक्षुष्यम् सु सू ४२।४९ दर्शक कर अ सू १२।२

२. **तर्पण**--अक्षितर्पण च. मू २६, सु. उ १८।५ अक्षिसतर्पण .
३. **पूरण**--अक्षिपूरण सु सू. ४५।१०७
४. **प्रसादन**--दृग्प्रसादिनी च चि २६।२३८ दृष्टि प्रसादन सु सू ४६।३५९
दृष्टि प्रसादकृत अ. सू. २।८
५ **रेचन**--चक्षुविरेचन च मू २६ चक्षु प्रसेचन सु उ १६।७८
दृष्टि क्लेदापहम् सु. उ. २४।१८
६ **रोगघ्न**--अक्षिशूलघ्न सु सू ४५।६ दृष्टि रुजापह सु उ ३४।१८
नेत्रपीडाहर अ सू १६।६ अक्षिरोगनुत् च सू. २६।११४, अ सू ५।२६
नयनामयघ्न मु मू ४२।३५ शुक्रनाशनम् सु उ १२।३०
शुक्रवैवर्ण्यनाशन सु. उ १२।३१ अभिष्यदघ्न अ चि ४।३७
अभिष्यन्दी अ सू ५।२८ तिमिरापह अ उ १३।४०५
सर्वनेत्राभिघातजित अ उ २६।२८ अभिष्यन्दहर अ चि. ४।२४
७. **पाकघाती**--ईक्षणपाकघाती सु चि १२।४५ आश्च्योतन च सू ५,
अ सू ११।२ परिषेचन च सि ११।२४ ईक्षणाजन सु उ ३९।१२९
८ **नाशन**--दृष्टिघ्न च सू २६ दृष्टिक्षयकर सु सू ४६।२१४
अचक्षुष्यम् सु सू ४५।७२ दृष्टिवलापह सु सू ४५।११८
चक्षुरोधन अ मू ७।२३
चक्षुवलहृत अ सू २।१७ दृग्नाशन अ. सू ५।७४ दृग्हृत अ मू ६।२४
दृग्घ्न अ. सू ६। ३४
९ **दूषण**--दृष्टि दूषण अ सू ६।४०, सु सू ४६।५९
१०. **रोगजनन**--नेत्ररोग प्रजनन सु चि २४।१९ नेत्र विष्यन्दकर सु उ ४।१४
अक्षिस्रावयति अ सू १०।५ अक्षिभ्रुवनिकोचन अ सू. १०।३
११ **अश्रु**--अश्रुहर अ क १६।४९ अश्रुजित अ क. १६।३७
१२. **अंजन**--अभ्यजन सु उ. १२।६ प्रसादाजन सु उ. १६।९६
लेखनाजन सु उ ३८।४० चूर्णांजन च. चि २६।२४०
गुटिकाजन सु उ. ९।१६

घ्राण संबंधी संज्ञायें

१--प्रह्लादन २--स्रावण ३--नस्य ४--रोगघ्न

१. **प्रह्लादन**--घ्राणप्रह्लादन च सू. २६
२ **स्रावण**--घ्राणस्रावकर च सू २६ घ्राणस्रवा अ सू १६।३१
३ **नस्य**--अवधमन च सू २७ अवपीडन च. सि ९।९०, सु. सू ३६
नावन च सि ९।२३ नस्तकर्म च सू ७।४६
४ **रोगघ्न**--घ्राणरोगजित् अ उ १३।९ घ्राणावसेक सु. चि ५

कर्ण सम्बन्धी संज्ञायें

१—कर्णतर्पण २—कर्ण दृढ ३—कर्ण रोगघ्न ४—कर्ण वर्धन ५—कर्ण शोधन
६—कर्ण गन्धहर ७—कर्ण क्लेदन ८—कर्ण शोषण

१ **तर्पण**—कर्णतर्पण सु सू १३ कर्णपूरण सु उ २०।२५
२ दृढ—श्रुतिदार्ढ्यकृत श्रोत्रदार्ढ्यकृत सु सू ४६।६५
३ **रोगघ्न**—कर्णशूलघ्न सु सू ४५।११२ कर्ण शूलनिवर्हण सु उ २०।२५
कर्णशूलशान्तिकर सु उ २०।२५ कर्णकण्डूहर अ उ १८।३४
कर्णनादहर अ उ ३८।२५ कर्णपीडाहर अ उ. १८।३४
कर्ण रूजाहितम् अ उ १८।२५ कर्णरोगजित् अ उ १३।९
कर्णरोगहर अ सू १६।११ कर्ण स्रावहर अ उ १८।२१
४ **वर्धन**—कर्ण वर्धन अ उ १८।५४
५ **शोधन**—प्रमार्जन सु सू ४।२७ प्रक्षालन सु सू ४।४७, अ उ २५।६६
६ **गन्धहर**—पूतिगन्धहर च सू २७।१६४ पूतिकरणहर अ उ १८।३५
पूतिगन्धापकर्षण अ उ ३४।५९
७ **क्लेदन**—प्रक्लेदन सु चि २२।५६
८ **शोषण**—श्रवणोपशोषण सु सू ४१

जिह्वा सम्बन्धी संज्ञायें

१—जिह्वा प्रह्लादन २—जिह्वा शोधन ३—जिह्वा निर्लेखन ४—जिह्वा उद्वेजन
५—जिह्वा जाड्यकृत ६—जिह्वा कवल

१ **प्रह्लादन**—जिह्वा प्रह्लादन सु सू २७
२ **शोधन**—जिह्वा विशोधन
३ **निर्लेखन**—जिह्वा निर्लेखन
४ **उद्वेजन**—जिह्वाग्रमुद्वेजयति अ सू १०।५
५ **जाड्यकृत**—जिह्वाजडयति अ सू १०।६ जिह्वाजाड्यकृत अ सू. ७।२१
अल्पवाचकर सु चि १५।७ वाक्शुद्धि क अ उ १।४९
६ **कवल**—कवलग्रह सु उ १० कवलधारण सु उ २०।५३

सर्वेन्द्रिय सम्बन्धी संज्ञायें

१—दृढ २— शोधन ३—हनन ४—तर्पण

१ **दृढ**—इन्द्रियदृढीकर च. सू २६ इन्द्रियप्रतिबोधन सु उ ३९।१२९
इन्द्रिय स्फुटितकर च सू १२।८
३ **हनन**—इन्द्रियोपहननम् च सू १२।८ इन्द्रियोपतापकर सु सू ३९
४ **तर्पण**—इन्द्रियतर्पण सु सू १७।२६ इन्द्रियसतर्पण सु २४।३६

मन सम्बन्धी संज्ञायें

मानम सज्ञाओ का सग्रह यहा पर मनके विविध कर्म, धी धृति, स्मृति, चिन्ता, शोकादि होते है, उनके आधार पर विविध प्रकार की सज्ञायें नीचे दी गयी है —

१– मन प्रसादन २–मन वर्धन ३–मन सात्वन ४–वुद्धिकर ५–मेधा ६–धी ७–स्मृति ८–ग्लानि ९–तन्द्रा १०–शोक ११–भ्रम नाशन १२–भ्रम जनन १३–वोधन १४–हर्षण

१ **प्रसादन**--मन प्रसादनकर च सि १।३० मन प्रसादन सु. उ. ३९।२३५

२ **वर्धन**--सत्वकृत अ सू २।८ मनस्कार च सू ३६ सत्वप्रद च चि १

३ **सात्वन**--मन सात्वनकर सु उ ३९।२६५

४ **बुद्धि**--वुद्धिप्रद अ सू ६।१५४ वुद्धिकर अ सू. १४।२८
वुद्धिकृत अ उ १।४५ वुद्धिदा अ उ ३९।४३ वुद्धि प्रवोधन अ सू· ५।१

५. **मेधा**--मेध्य सु सू ४२ मेधावर्धन सु सू ४६ अ उ १।८
मेघाकर अ. सू ६।२३, मेघादा अ उ ४३।३३९ मेधाकृत अ. सू ६।५६
मेधाप्रद अ सू ७।७५, मेधागस्त अ सू ३७

६ **धी**--धीप्रद अ उ २६।६१ धी शस्तम् अ सू. ५।३७
धीकर अ सू ११।४३ धीहर च सि ९।९५

७ **स्मृति**--स्मृतिकर अ सू १४।२८ स्मृतिदा अ उ ३९।१२
स्मृतिप्रद अ चि ३।११४ स्मृतिशस्तम् अ सू ५।३७

८ **ग्लानि**--ग्लानिकर च. सि १।१४, अ सू ९।९ ग्लपन च सू २६
ग्लानिहारी सु सू ४६।३४२ ग्लानिविनाशिनी च सू ७।२४६
ग्लान्यापह अ सू ६।२८

९ **तन्द्रा**--तन्द्राजित अ सू २।१६ तन्द्रानाशन अ चि १।११०
तन्द्राप्रशमन सु सू ४५।१२ तन्द्राकर अ सू ७।२४

१० **शोक**--शोकनाशनम् सु उ ४०।१५९ शोकनाशनी सु उ ४०।१५९

११ **भ्रमनाशन**--भ्रमघ्नति अ चि ३।८३ भ्रमहर अ सू ५।२२

१२ **भ्रमजनन**--भ्रमप्रद अ सू ५।३३ भ्रमकर अ सू ७।२२
भ्रमजनन च सू १८।८

१३. **बोधन**--बोधन सु उ ५७।१७ प्रवोधन अ चि १९।६०

१४ **हर्षण**--प्रहर्षण च सू. ११ प्रकाशकर अ सू ९।८, प्रभाकर अ सू ११।३,
सु सू ४१।५ प्रागल्भ्यप्रद च सू २७।१८४, प्रह्लादकर अ सू ९।७
प्रह्लादयति सु सू ४२।१२, स्वप्नजनन च सू. २५ आनन्दजनन सु सू ५।२६

शरीरावयव सम्बन्धी संज्ञायें

हृदय--१ हित २ अहित ३ रोगघ्न ४ शोधन ५ आह्लादन ६ प्रसादन ७ रूजाकर

१ **हित**--हृद्यम् च सू २७।१७७, च चि २।१०

२ **अहित**--अहृद्यम् सु सू ४६।७७

३ **रोग**--हृद्रोगनुत च सि ८।१९, अ चि ३।१०५ हृत्शूलजित हृद्ग्रहशान्तये अ चि ७।२६ हृद्वेदनाहर अ चि ४।४५ हृदार्ति प्रणाशिनी अ चि ३।२१ हृदामयापह अ चि ३।१०१ हृद्रुजघ्नन्ति अ चि ३।८३ हृद्रुजाहर अ सू १५।४५ हृद्रोगजित अ चि ३।६४ हृद्रोगहर अ सू १४।२०

४--**शोधन**--हृदयशोधन अ सू ७ २३ हृद्विशोधन अ सू ५।२७

५ **अह्लादन**--ह्लादन अ सू ९।१९ हृल्लादी अ क ५।१

६ **प्रसादन**--हृत्प्रसादन सु चि २२।२९ हृदयप्रिय सु सू २२।२९

७ **रूजाकर**--हृदयावपीडक च सू २६ हृद्रुजाकर अ सू १०।२१ हृत्पीडाजनन, हृद्विरुद्धम् च सू २७।१०२

गर्भाशय सम्बन्धी सज्ञायें

१ गर्भवल्य २ रूजाहर ३ शोषण

१ **वल्य**--गर्भदम् सु उ ६२।२८ गर्भोत्पाद अ सु ११।४ प्रजास्थापन च सू ४ अपत्यसन्तानकर अ सु ४०८ अपत्यप्रद अ सू ४०।८ पुत्रदम् अ चि ३।१०१ सुतप्रदम् अ चि ३।९

२ **रूजाहर**--रुजापहम् अ शा ३।५८

३ **शोषण**--गर्भशोषण

बस्ति सम्बन्धी संज्ञायें

१ अश्मरी २ शर्करा ३ प्रमेह ४. शूल ५ शोधन ६ दूषण ७ पूरण

१ **अश्मरी**--अश्मरीभेदन सु उ ५५।२६, च सू २६।६० अश्मभित अश्मरीनाशन सु उ ५६।२७ अश्मरी निषूदन सु सू ४६।३९ अश्मनाशन सु उ ३२।१६ अश्मघ्न अ सू ६।१९ अश्मभेदन अ चि ११।२१ अश्मरी पातन अ चि ११।३१

२ **शर्करा**--शर्करानाशन सु चि ७।११ शर्करा भेदन सु चि ७।१८ शर्करा हर अ सू १५।२५ शर्करा शमन सु चि ७।१७

३ **प्रमेह**--प्रमेहनुत् सु सू ७६।१८६ प्रमेहहर अ. उ ६।२९ प्रमेहघ्न अ सू १५।१८ प्रमेह हर अ क ४।२४

४ **शूल**–मेहन शूलनुत् अ क ४।२४ वस्तिशूलनुत् अ सू ५।७९
५ **शोधन**–बस्ति शोधन सु सू ४६।५४, अ सू. ५।१६ बस्तिशुद्धिकर अ सू ४।२०६
६ **दूषण**–बस्तिदूषण सु सू ४६।१६९
७ **पूरण**–बस्तिपूरण सु सू ४६।६

शिर संबंधी सं ायें

१ शिरो विरेचन २ शिरो शोधन ३ शिरो तर्पण ४ शिरो पूरण
५ शिरो वस्ति ६ शिरो रोगघ्न ७ रोग जनन

१ **विरेचन**–शिरोविरेचन च चि २६।१११, सु चि १ शीर्ष विरेचन च सू २५ मूर्ध विरेचन च चि २६।१२६, अ सू १५।४ शिरोविरेचनोपग च सू ४
२ **शोधन**–शिरो विशोधन सु उ १५।५
३ **तर्पण**–शिरस्तर्पण च सि ९।९४ शिरस्तृप्तिकर सु चि २४।२६
४ **पूरण**–शिरस. परिपूरण सु चि २४।२६ शिरोबस्ति च चि ९।९२, सु उ ९।४
५ **बस्ति** -शिरोवस्ति च चि ९।१२, सु उ ९।४
६ **रोगघ्न** -शिरोरोगहा अ सू २६।११ शिरोशूलहा अ सू १५।२२
शिरो रोगहर अ चि १।१२५ शिरशूलघ्न अ चि ५।२०
शिर कम्पजित् अ चि ३।९ शिर शूलापहम् सु उ ३९।२२५
७ **रोग जनन**–शिर शूलमापादयति सु सू. ४२

योनि संबंधी संज्ञायें

१ योनि शोधन २ योनिदोषघ्न (दोष) ३ योनि रोगघ्न

१ **शोधन**-योनि विशोधन च चि ३०।७०
२ **दोष**–योनि दोषहर च सू १५।२७
३ **रोग**-अचरणापहम् च चि ३०।१०४ विप्लतापहम् च चि ३०
योनिरोगहर अ उ १५।४० योनिविकारघ्न अ उ ३०।३९
योनिवेदनाजित अ चि ३।९ योन्यामयापहम् अ चि ३।१०१

वक्ष एव उरस–फुपफुस संबधी संज्ञायें

१. कासहर २ श्वासहर ३ हिक्काहर ४ शोधन ५ शूल ६. सधान
७ श्वास

१ **कासहर** कासघ्न च. सू १६, अ सू ४।३७ कासहृत अ चि ३।६
कासविनाशन च सू २५, अ· चि ५।३४
कासनाशन च चि १८ कासनिवर्हणम् च चि ५
कासशान्तये अ. चि ४।९६ कासहर च सू ४, अ सू ६।१००
कासघ्नन्ति अ चि ३।८३ कासापहम् सु सू ४६।३५९, अ चि ३।७५
कासनुत् सु सू ४६।११०, अ चि. ३।१०१

२ श्वास–श्वासघ्न अ सू ६।१९ श्वासजित् अ चि ३।६७
श्वासहा च चि १७ श्वासघ्नन्ति अ चि ३।८३
श्वासापहम् सु सू ४६।३८३ श्वासनुत अ चि ३।१०१
श्वासहर च सू ४ श्वासनाशन अ चि ५।७४, सु सू ४६।७१
श्वास प्रणाशिनी अ चि २।१० श्वासामय विनाशन सु उ ५१।२४

३ हिक्का–हिक्काघ्न च चि २३।१७, अ चि ४।३७
हिक्कापह सु सू ४६।३७, अ चि ४।२३ हिक्काहर च सू २५
हिक्कातिग्रहण च सू ४ हिक्कानुत् अ चि ३।१०१
हिक्काप्रणाशिनी अ चि ३।२२ हिक्काप्रशान्तये अ चि ४।२६

४ शोधन–उरविशोधन च चि २६

५ शूल–उर शूलजित् अ क ४।३०

६ सधान–उर सधानजनन अ चि ३।१७

७ उच्छ्वास–उच्छ्वासकर

हनु संबधी सज्ञायें

१ शोधन २ शूलघ्न ३ वलप्रद ४ स्तम्भ

१ शोधन–हनुविशोधन सु चि २४।२२

२ शूल–हनुशूलघ्न सु चि २४

३ वल-हन्वो वलप्रदम् च सू २७

४ स्तम्भ–हनुस्तम्भ अ सू ७।२१

मन्या सम्बन्धी संज्ञायें

१ स्तम्भ जनन २ शूलघ्न

१ स्तम्भजनन–मन्यास्तम्भजनन सु सू ४२

२ शूलघ्न–मन्याशूलघ्न

तालु सम्बन्धी

१ तालु दाहकृत २ तृष्णाघ्न ३ तृष्णाजनन

१ दाह–तालुदाहकृत सु सू ४३ तृष्णाप्रशमन सु २६।४१ (चरक)

२ तृष्णाघ्न–तृष्णविनाशिनी च सू २३ तृष्णाप्रशमनी च सू २७ १२१।१२२
द्राक्षा। तृष्णार्तिनुत च सू २७।१०८ त्रपुष।
तृष्णातियोगप्रशमन च सू २५।३९ तृष्णाघ्न अ सू ५।५७
तृष्णाघ्नी अ सू ६।२९ तृष्णानाशन अ चि १।४७
तृष्णानुत् अ चि ३।१०१ तृष्णापहा अ सू ६।५
तृड्घ्न अ सू १।१६ तृड्जित अ सू २।१६
तृड्नाशन अ चि १।११० तृडपहम अ चि १।१६
तृड्हर अ सू ६।३५ तृषाहर अ सू ५।२२

तृष्णाघ्न सु सू ३८।४९ तृष्णापनयन सु उ ४०।१८५
तृडच्छिदम् सु उ ३९।१०७ तृष्णाशमन सु उ ४०।१८५
पिपासाघ्न सु सू ३८।३९, आ चि ३३।८३ पिपासाहर सु सू ३८
पिपासाप्रशमन सु सू ४५ पिपासाच्छेदनम् सु सू २८।४६
पिपासानाशन सु सू ४६।३४ पिपासापह च सू २७।२१२
पिपासानिग्रह च सू २८ तृष्णानिग्रहण च सू ४

३ **तृष्णाजनन**–तृष्णाकर अ सू १०।१९ तृष्णाकृत च चि २३।१८६

ओष्ठ सम्बन्धी संज्ञायें

१ प्रह्लादन २ शोषण

१ **प्रह्लादन**–ओष्ठप्रह्लादन च सू ११।५५
२ **शोष**–ओष्ठ शोपकृत सु सू ४२।२१

मुख सम्बन्धी संज्ञायें

१ मुख शोधन २ मुख रोगनाशन ३ मुख शोभाकर ४ मुख प्रिय ५ मुख विशद ६ मख जनन ७ मुख दुर्गन्धकर ८ मुख स्पन्दन ९ मुख क्षालन १० मुख धावक

१ **शोधन**–वक्त्रकण्डूविशोधन सु सू ४५।२७९
वक्त्रक्लेदविशोधन सु सू ४५।२८० आस्यविशोधन सु सू ४६।२५८
मुख शोधन च सू २७।१६८ वक्त्र शोधन च सू २६

२ **नाशन**–वक्त्रमल विनाशन सु सू ४५।२८०
वक्त्र दौर्गन्ध्य नाशन सु सू ४६।२०३ मुखरोग विनाशन सु चि २२।७१
आस्यरोगजित् अ उ १४।९ मुखरोगहर अ उ १८।३०
मुखपाक हर अ उ २२।१०४ आस्यवैरस्य नाशन अ चि १।४७

३ **शोभा**–मुखकान्तिकरम् सु सू २४।२२ मुखसौष्ठकरम् सु सू २४।२२
आनन्द दार्ढ्यकृत सु चि २४।६९ मुखोपचयकर अ उ. ३२।३०

४ **प्रिय**–मुखप्रिय च सु २७।२७१

५ **विशद**–मुखवैशद्यकारक सु चि २४।२२ मुख विशदयति अ सू १०।४

६ **जनन**–आष्यशोष जनयति सु सू ३८।४२
आस्यवैरस्यमापादयति सु सू ३८।४२ मुखपाकमापादयति सु सू ४२।२१

७ **दुर्गन्धकर**–

८ **स्यन्दन**–मुखस्यन्दयति अ सू १०।३

९ **क्षालन**–मुख क्षालयति अ सू १०।३

१० **धावन**–मुखधावन च चि २६।१९२

११ **लाला**–लालास्रावकर अ उ ३९।१०४

कठ सम्बन्धी सज्ञायें

१ हितम् २ आह्लादन ३ शोधन ४ कण्ठनाशन ५ दाह ६ वर्धन
७ वोधन ८ दृढता ९ वहम्

१ **हितम्**–कण्ठयम् च सू २७।२५, अ सू ५।१६६ स्वर्य सु सू ४६।१८३,
अ सू ६।७४

२ **आह्लादन**–कण्ठप्रह्लादन च सू २६

३ **शोधन**–कण्ठशोधक अ सू १०।२५ कण्ठशोधन सु सू ४६।२३७
स्वरविशोधन च सू २७।६४

४ **दाह**–कण्ठदहन च सू २७।२६ गलदाहकृत सु सू ४२

५ **कण्ठनाशन**–कण्ठविनाशन च सू २७ कण्ठकर्षण च सू ७।५
कण्ठक्षिणोति च क ७ कण्ठघ्न अ सू ६।१२१
स्वरभ्रंशघ्नन्ति अ चि ३।८३ स्वरभ्रंशजित अ चि ५।२७
कण्ठरोगविनाशन च चि २६।१८८ कण्ठस्रोतो विवन्धनुत् अ सू १०।६
गलामय निवारण सु चि २४।२२

६ **वर्धन**–स्वरवर्धन अ उ ३९।४५ स्वरकृत सु सू ४६।४९

७ **वोधन**–स्वरवोधन च सू २७।१८०, अ चि ५।१९

८ **दृढ़ता**–स्वरदार्ढ्यकृत सु सू ४६।६५

९ **वहं**–स्वरावहम् सु सू ४६।६५

उदर सम्बन्धी संज्ञायें

१ आनाह २ आध्मान ३ उदावर्तहर ४ रोगघ्न

१ **आनाह**–आनाह भेदन च चि १२, अ चि १५।३८
आनाहनाशन अ क ३।१४ आनाह विमोक्षण च चि ५।६८
आनाहभेदी सु सू ३८।३० आनाहापहम् सु सू ३६।३८,
आनाहप्रशम च सू २५

२ **आध्मान कर**–आध्मानकरम् च सू २५, अ सू ७।२२
आध्मानकारकम् सु सू ४६।३ आध्मान जनयति सु सू ४२
नाशन–आध्मान नाशन अ चि २२।३२

३ **उदावर्तहर**–उदावर्तहर च सू २५ उदावर्तहरीक्रिया सु सू ४२
जनन–उदावर्त जनन अ चि ११९७

४ **रोगघ्न**–उदरामयघ्न सु सू ४०।९८ उदरभेदी सु सू ३८।२७
उदरनाशन सु सू ४५।१८५ उदरनुत् अ चि १५।२६
उदरविपापहम् अ उ ३८।२३

कोष्ठ आन्त्रसंबंधी संज्ञायें

१ शमन २ शोधन ३ रोगहर ४ कोपन ५ अवसादन ६ दहन

१ **शमन**–अतिसारशान्ति कृत अ उ ४०।५६ कोष्ठप्रशमन सु सू ३९।२२

२ **शोधन**–कोष्ठविशोधन सु सू ४२ कोष्ठशुद्धि सु सू १८।२६

३ **रोगहर**–कोष्ठवातहर अ चि १०।१४ शूलानाह हर सु सू

४ **कोपन**–कोष्ठवातकोपिनी च सू २७।३०

५. **अवसादन**–कोष्ठावसादन च सू २६

६ **दहन**-कोष्ठविदाही सु सू ४२

आमाशय सम्बन्धी संज्ञायें

१ शोधन
२ दीपन
३ छर्दिघ्न
४ हरण
५ उपशमन
६ जारण
७ पाचन
८ स्तम्भन
९ रोचन

१. **शोधन**–उद्गारशोधी च सू २७ उद्गार शोधन अ सू ६।२४५ कोष्ठविशोधन सु सू ४२।१८

२ **दीपन**–दीपन च सू २५ दीपनीय च सू ८ दीपनी अ सू ६।९ दीपयति च सू २६

३ **छर्दिघ्न**–छर्दिघ्नन्ति अ चि ३।८३ छर्दिघ्न अ सू ५।५० छर्दिनिग्रहण च सू ४ छर्दिहर च सू २९, अ उ २।५८ छर्दिनिवारण सु उ. ३१९।३४९ छर्दिजित् अ चि ३।१०६ छर्दिघ्नी अ चि १।३४ छर्दिनुत् अ चि ५।६० छर्दिहा अ उ २।५८

४ **हरणम्**-हृल्लासहरम् सु सू ३८।५० आमहर अ चि १०।८

५ **उपशमन**–आमोपशामक सु उ ४०।७९

६ **जारण**–आमजारण सु सू २४।८७

७. **पाचन**–आमपाचन सु उ १०।४५

८ **स्तम्भन**–आमस्तम्भन अ सू १०।२१

९ **रोचन**–रूचि अ. उ ११।११६ रूचिकर अ सू ५।७६, रूचिकारक अ चि १।७२ रोचन च सू ५, रूचिष्या सु सू १६।२९५ रोचिष्णु सु सू ४५

प्लीहा सम्बन्धी संज्ञायें

१ प्लीहा नाशन
२ प्लीह शूलजित्

१ **नाशन**––प्लीहापह च चि ६, प्लीहनाशन सु उ ४०।८१ प्लीहजित अ चि ३।९, प्लीहहर अ चि ३।१६६ प्लीहनुत् अ चि ५।६०, प्लीहातिघ्नन्ति अ चि ३।८३

२. **शूलजित्**—प्लीहशूलजित् सु सू ४२।३०

पित्ताशय सम्बन्धी संज्ञायें

१ कर्षण
२ रोगघ्न
३ रेचन

१ **कर्षण**—पित्तकर्षी च सि १।२८
२ **रोग**—पित्तव्याधिहर च सि १२, कामलापह च चि ५
३. **रेचन**--पित्त विरेचन

ग्रहणी सम्बन्धी संज्ञायें

१	रोगघ्न	२	शमन
३	दूषण	४	दीपन
५	वर्धन		

१ **रोगघ्न**--ग्रहणी रोगनुत् अ चि ३।२६, ग्रहणीहर अ चि ३।६
ग्रहणी दोपनुत् च चि २५, ग्रहणीरोगघ्न च चि ३
२ **शमन**--ग्रहणी विकारघ्नी सु सू ४६।२७३
ग्रहणीदोष प्रशमन च सू ३९
३ **दूषण**—ग्रहणी दूषण च सू २९
४ **दीपन**—ग्रहणी दीपन अ उ २।३९
५ **वर्धन**—ग्रहणी वलवर्धन च चि १५

आयु रसायन सम्बन्धी संज्ञायें

१	आयुष्य	२	आरोग्य
३	जरा	४.	उर्जस्कर

१ **आयुष्य**--आयुष्य च सू २६ आयुःप्रकर्षकरम् च सि ११।१४
आयुष्यकृत च सि २।२६, आयुकर अ चि ३।११९
आयुर्दा अ उ ३९।४३, आयु प्रकर्षीय सु सू ३७
वय स्थापन अ सू ५।३७, वयप्रद अ उ ३९।६३
२ **आरोग्य**—आरोग्यप्रद अ सू ७।७५, आरोग्यकृत अ सू ५।६३
३ **जरा**—अजरवय तिष्ठति च चि १।७४, जरानिवर्हण च चि १
४ **उर्जस्कर**—अ उ ४०।३

वल सम्बन्धी संज्ञायें

१	वल वर्धन	२	वल प्रसादन
३	वल हित	४	वल नाशन
५	वल स्थिर	६	वल वह

१ **वर्धन**—वलोपचयवर्धन च सू २७।२६४, वलवर्धन च सू २७
वलकृत च सू २७, अ सू ५।३०, वलकर सु सू ४१।३
वलसजनन च सि ११।२६, वलप्रद अ चि १।९५
वलवर्धन अ चि ३।१३१
२ **प्रसादन**—वलप्रसादन च सू २७।२६४, वलप्रसादकर च सू २७
३ **हित**—वल्य अ सू ५।२२, सु सू ४२, वलशस्तम् अ सू ५।३७

४ **नाशन**—वलसक्षयकर अ सू ७।२४, वलक्षयकर अ सू १०।१९
वलापह सु सू ४६।४, वलविघातकृत सु सू ४२।४९
५ **स्थिर**—वलस्थैर्यकृत सु सू १५।४
६ **वह**—वलावह अ सू २।१६

अंग बृहण सम्बन्धी संज्ञायें

१ स्थिरत्व २ बृहण

१ **स्थिरत्व**—अगस्थिरीकरम् सु चि. २४।५२, अगपुष्टिकरम् सु सू ४१
उपचयकर सु. सू. ४२।३, अ सू ९।६, उपचयवर्धन अ सू ६।४१
अगवर्धन अ उ ६।३८, पुष्टिकर अ चि ३।११९
पुष्टिद अ सू ५।६४, पुष्टिप्रद अ सू ७।७५
२ **बृहण**—वृहण अ सू ५।४२, वृहणीय च चि १०।११
वृहण च सि १०।११, वृहत्वकृत अ सू ६।६६
सघात अ सू ९।६, सह सघातकर च सि १
पौष्टिक च चि १

फुपफुस–प्राण सम्बन्धी संज्ञायें

१ हितकर २ प्राणघ्न

१ **हितकर**—प्राणरक्षण अ सू ३।३५, प्राणानामवलम्बनम् अ चि १।१३
प्राणाहितम् अ चि १५।९४, प्राणकर सु सू ४५।६६
२ **प्राणघन्**—प्राणघ्न सु सू ४५।६६, प्राणोपरोधकर च सू १२।८

विष सम्बन्धी संज्ञायें

१ नाशन २ वर्धन

१ **नाशन**—आखुविषविनाशन अ उ ३८।२९
आखुविषनुत् च चि २३।१००, अविषीकरण च चि १।७७
अगदकर सु उ ४०।७३, अलिविषनाशिनी अ उ ३७।४२
नखदन्तविषापहम् च चि २३।११० विषघ्न च सि १०।११
विषप्रशमन सु उ ३८।४०, च चि १
विषापह च चि २३।२०८, विषसूदन सु सू ४६।३२६
विपहर सु सू ४२।९६, अ सू ५।५४,
विषोपगमन सु उ ३८।३९, अ सू ६।१३
कीटविपहर सु सू २३, लूताविषापह सु सू २३
उरगरविषनुत् च चि ८३
२ **वर्धन**—विषमुदीरण च सु २६, विपवेग प्रवर्तन च सू २६

शारीरिक–श्रम सम्बन्धी सज्ञायें

१ **नाशन**—श्रमहर अ सू ५।१२, श्रमहा अ सू २।८
श्रमजित अ सू २।१६, श्रमविनोद अ सू ७।७३
वलमार्तिनुत् च सू २७

प्रशमन सम्बन्धी संज्ञायें

उपशमनीय च सू १५।६, प्रशमन अ चि ६।१४
आलस्य प्रशमन सु चि ४३।३०, प्रसेक प्रशमन सु चि २४।२३

ग्रहण सम्बन्धी संज्ञायें

सग्रहण अ चि ९।४ सग्राही अ सू ५।३६
सग्रहात्मक अ सू ६।५८

गन्ध सम्बन्धी संज्ञायें

१ हर---दौर्गन्ध्यापकर्षण सु चि २४।९ दौर्गन्ध्यहर च सू २७
सौगन्ध च सू १

मेद सम्बन्धी संज्ञायें

१ मेदकर २ मेद नाशन

१ **मेदकर**---स्थौल्यकर अ उ १०।९
२ **नाशन**---स्थौल्यजित् अ सू ६।१३४
स्थौल्यापकर्षण सु चि २४।३२

अग्नि सम्बन्धी संज्ञायें

१ अग्नि प्रसादन
२ अग्नि वर्धन
३ अग्निहित
४ अग्नि सादघ्न
५ अग्नि दीपन
६ अग्नि अवसादक
७ अग्नि दृढकृत
८ अग्निधारण
९ वैषम्यकर
१० क्षुधाघ्न
११ क्षुधाकर
१२ नाशक
१३ शोषण
१४ पाचन

१ **प्रसादन**---अनलप्रसादन सु चि २४।३१,
२ **वर्धन**---अग्निवर्धन च सू २५, अ चि १०।५१
अग्निकर अ चि ७।४१, अग्निकृत अ सू ५।३०
उष्मकृत सु सू १५।८, अग्निजनन अ सू ६।८१
अग्नि विवर्धन सु चि २४।६८, अ चि १०।२७
अग्निप्रद च सि १।३७
३ **हित**---अग्निशस्तम् अ सू. ५।६८, अत्यग्निभ्योहितम् च सू २
४ **सादघ्न**---अनलसादघ्न सु सू ४६।२४५, अग्निमांद्यनुत् सु उ ३९।२३२
अग्निमांद्यहर अ सू ६।१३५
५. **दीपन**---अग्निसरक्षण च. सू २५,
अग्निदीपन सु उ ३८।४०, अ सू ६।२९,
अनलदीपनी सु सू ४६।२९५, अग्निदीप्तिकर अ. सू १०।९
अग्नितेजन सु. चि २४।५२, वह्नि विधमन सु सू. ४२।७९

६ **अवसादक**–अग्निसादन सु उ ४१।६६
बलवर्णाग्निसादक सु. उ ३९।३२३, अग्निसादकृत अ सू. ५।४८
अग्निशमन अ सू ६।१३४, वह्निनाशन सु सू ४२।४

७ **दृढ**–अग्निदार्ढ्यकृत सु सू ४६।६५,

८ **धारण**–अग्निधारण सु सू १५।६

९. **वैषम्यकर**–च सू २५

१० **क्षुधाघ्न**-क्षुधाहन्यु च सू. २, क्षुद्विनाशी च सू २०

११. **क्षुधाकर**–क्षुधाकर च सू २०

१२ **नाशन**–पक्तिनाशन सु सू. ४२

१३ **शोषण**–मुक्त शोषण च सू २६

१४ **पाचन**–मुक्त पाचन च सू २७।१६२

शल्यशास्त्र सम्बन्धी संज्ञायें

आहरण सु सू ७।२७, आच्छन सु सू ७।३७
आचूषण सु सू ७।२७, अपकर्षण सु चि. २८।५
अवघर्षण . सु सू १४।३५, अनुलेपन सु सू. १८।६
आलेपन सु सू १८।६, अवसेचन सु सू ५
आशुपाकी अ सू ९।१८, अवपीडन सु सू १४।३६
अवचूर्णन सु उ १४।३, अवलेखन सु उ २२।२२
अवकृन्तन सु सू १४।१६ उन्नमन सु सू ७।१७
उन्मथन सु सू ७।१७ उद्वहन सु. सू ७।१७
उपनाह सु सू ९।१६, च सू १४
उन्मर्दन अ चि १७।३५, उत्पादन च सू ११।५५
उत्सादन सु सू ३६।३०, उद्वर्तन सु सू. १६।२२
एषण सु सू ५, अवसादन
आश्वासन अ चि ९।१२३, आपादन सु सू २२।११
आश्वासजनन सु सू ४५ अकम्पन . सु सू १७।२
च्यावन च सू २६, छेदन सु सू ४२।२१, अ उ ३७।२१
छेदकृत अ सू. १०।१३ चूषण च चि. २३।१५
तोदन सु सू ११।४९ ताडन सु सू २२।११
दारण सु उ ६२।६ प्रच्छन सु उ ४२।५०
प्रसेचन सु उ १६।७९ प्रविम्लापन सु उ २०।५६
पाटन च चि ५।४५ प्रपीडन सु सू ३५।१०
परिषेचन सु सू २६।७ प्रक्षालन अ उ २५।६६
प्रतिवाप सु सू २२।१३ भेदन च सू ३, सु. सू. ५
मन्थन सु सू १२।५ रोपण सु सू ३६।२२

रक्तमोक्षण सु सू १४　　　रक्षोघ्न अ उ २।४३
विस्रावन सु चि २२।१९　　　विदारण सु सू २२।२२
निर्वापण सु सू ४५।१८　　　पक्वशोफविदारण अ उ २५।३७
वन्धच्छेदन च सू २६　　　पूयोपशोपण सु सू ४२
पाचन सु सू ३५।८　　　पाककर अ सु ११।२
भग्नसन्धानकर अ सू १६।११　　　भग्नसधानकृत अ सू ६।१२
प्रक्लेदन सु उ २०।५६　　　परिपाचन सु चि १
पूरण सु सू ७।२८　　　प्रतिसारण सु सू १२।१३
परिपाचन च सू २७।२५५,　　　विलोडन . च सि १।४०
लेखन सु सू ३८।४०　　　विम्लापन अ चि १३।२३
स्रावण सु सू ४६।५१८　　　सलेखन सू. चि ११।३४
सीवन सू सू ५　　　सधिविश्लेषक अ उ २५।५४
सेचन च चि २८।५८　　　सरोहण अ उ २५।५४
व्यसिराधन च चि २३।६३　　　विलयन अ चि ११।११
सरोपण सु उ १५।३

गुणकर्म सम्बन्धी सज्ञायें

१–**रूक्ष**–रूक्षणम् च सू १३, अ चि ८।९६,　　　रौक्ष्यकर अ सू १०।१९
२–**कर्षण**–कर्षण च सू २६
३–**व्यवायी**–व्यवायी च क १।३
४–**आशु**–आशुकारी च सि ११।१४,　　　आशुकर, आशुशौषिक च सू २६
५–**सान्द्र**–कठिन च सू १०।५,　　　घनकराणि च सू १०।५
　सान्द्रकृत सु सू ४६,
६ **परूष**–परूष सु सू २०।२६
७ **स्तम्भन**–सस्तम्भन सु उ ४०।६५　　　गात्रस्तम्भन अ सू १०।२१
　गात्रस्तम्भनकर सु सू ४२　　　स्तम्भन च सि १।९०
　स्तम्भकर अ सू ९।१९　　　आमस्तम्भन
८–**गुरु** गौरवकर अ सू ९।६, सु सू ४१।३
　गौरवहर अ चि ११।२५　　　गुरुकराणि च सू १२
९–**निग्रह**–गौरवनिग्रह च सू १४
१० **तीक्ष्ण**–तीक्ष्णम् सु सू. ११।२ तीक्ष्णधूम सु. उ ३३।८१
　तीक्ष्ण शोधन सु. उ. ३३।८१
११. **मृदु**–अतिमार्दवकर सु सू. ४६।१८ शरीरावयव मृदुकृत च सू. २७
　मार्दवकृत सु उ. ३९।१०१ मार्दवकर च. सू. २६
　मार्दवकारी सू सू ४१।४ शरीरधातु मृदुकर च. सू २४
　स्रोतासिमार्दवकर अ सू ६।२८

१२. **लघु**–लाघवकर च चि. २२।१६ लाघवकारक सु. उ. ३९।१०४
१३. **सुषिर**–सुषिरकराणि च सू. १२।७
१४. **स्निग्ध**–स्नेहन सु. सू ४१।३ स्निग्धकर अ. सू. ११।३
स्नेहोपयाघ्न च सू. १४।५७
१५. **स्थिर**–स्थैर्यकर सु. सू. ४५।५८ स्थैर्यकृत सु. सू. ४६।५२
स्थिरीकरणदन्ताना सु सू ४६।१९९ स्थिरीकरण अ. सू २।१५
स्थिरकर अ सू ११।३
१६ **श्लक्ष्ण**–श्लक्ष्ण च सू. १२।७
१७. **दारुण**–दारुण सु. सू. ३८।४०, अ. उ. २५।२६
१८. **विष्यन्द**–विष्यन्दन सु. चि ४।२१ विष्यन्दनकर सु, उ ४८।७
१९ **विकाशी**–विकाशी सु. सू. ४५।११२
२०. **विशद**–वैशद्यकारक च. चि. ३ विशदकर अ सू ९।९
विशद सु. चि २४।९
२१. **पिच्छिल**–पैच्छिल्यकर सु. सू. ४६।१२

पंचकर्म सम्बन्धी संज्ञायें

पचकर्म सवन्धी सज्ञाओ से कुछ का उल्लेख पूर्व मे मल सज्ञाओ मे, शिरसवधी सज्ञाओ मे तथा स्वेदन सज्ञाओ मे किया जा चुका है। अवशिष्ट सज्ञाओ का सग्रह यहा करेगे,–

१ स्नेहन २. स्वेदन ३ वमन ४. विरेचन ५ बस्ति ६ नस्य ७ रक्त मोक्षण

१. **स्नेहन**–स्नेहव्यापत्ति प्रशमन सु. सू. ४२।८४ स्नेहोपग च. सू. ४
स्नेहोपपादन च. सू. १४।५७ स्नेहन अ सू. १०।१३
दोष नाशन–घृतव्यापत्ति नाशन च. सि १२ घृतव्यापत्ति प्रशमन च. सू २५
स्नेहशोधन अ. सू १०।१७
२. **स्वेदन**– स्वेदन की स्वतत्र सज्ञाओ मे पूर्व मे दिया गया है, विशेष यह है–
स्वेदोपग च. सू. ४ स्वेदोपपादन च. सू. १४।५
३. **वमन**–वमन सु. उ ३४९।७ अ सू. ८। २७ वमनोपग च. सू ४
उल्लेखन च सू. १३
४ **विरेचन**–मलसज्ञाओ मे वर्णित है, विशिष्ट निम्न है–विरेचनोपग च सू. ४
५. **बस्ति**–आस्थापनोपग च सू. २५ आस्थापन च. सू १२।२
अनुवासनोपग च सू २५, अनुवासन च. चि ३
निरूहणोपग अ सू १५।३, निरूहण च सि. ८।४२
उत्तर वस्ति सु. चि. १
६. **नस्य**–शिर सम्बन्धी सज्ञायें वर्णन किया जा चुका है।
७ **रक्तमोक्षण**–रक्तमोक्षण च सि ८।३४ सिरामोक्षण सु. उ ११।३
शिराव्यधन च सि २६।६३ शोणित मोक्षण सु उ. १२।४५

रोगों पर प्रभाव सूचक सञ्ज्ञायें

१ **अतिसार**–अतिसारघ्न च सू. २६।२३० अतिसारशान्तिकृत सु उ. ४०।५६
अतिसार शमन च. सू २६ पक्वातिसार नाशन सु. सू. ३८।३९
आमातिसार शमन सु सू ३८।२८ आमातिसारजित अ चि. ३।१७५

२. **निद्रा**–अनिद्राप्रदम् सु. सू. ४२।९१ अतिनिद्राहितम् अ. सू. ५।६४

३. **रूजा**–अभिहतरूजापहम् सु चि. २४।३१ अर्तिनुत् अ चि. २२।११
अर्तिनाशन अ. चि ९।४३ अतिरुजाहर अ. उ. २६।११

४ **अपस्मार**–अपस्मारनुत सु उ. ३९।२३२ अपस्मारापहम् अ चि. ३।१०९
अपस्मार हर अ. उ ६।२९ अपस्मारनुत् सु उ. ३९।२३२

५. **अभिष्यन्द**–अभिष्यन्दघ्न अ चि. ४।३७ अभिष्यन्दहर अ क. ४।२४

६. **अरूचि**–अरुचिजित् अ. उ. १३।९, अरूचिहा अ सू. १५।३१
अरूचिहर अ. चि. १।१३, अरोचकहर (नाशक) सु सू ३८।५१
अरोचक नाशक सु सू ३८।३४, अन्नाभिरुचिकर सु. चि. २४।१०
अरुचिनुत् अ. चि. ५।६०

७. **अर्श**–अर्शोघ्न अ सू ६।१९ अर्शोहर अ चि ५।५५
अर्शनाशन सु. सू ३२।१६ गुदकीलोपहम् च. सू. २८

८. **अक्षिरोग**–अक्षिरोगजित् अ. सू. ५।२६ अक्षिरोगनुत् च चि २६।११४
अर्महर अ उ १३।३५ काचहर अ. उ. १३।५

९. **आक्षेपक**–आक्षेपकमापादयति सु सू ४२ आक्षेपण जनयति सु सू ४६।२०

१०. **उन्माद**–उन्मादनिवारण सु उ. ४२।४१ उन्मादहर अ उ २।५७

११ **उर्ध्वजत्रूरोग**–उर्ध्वजत्रूरोगहर अ उ. १३।५३
उर्ध्वगदापह च चि २६।११८

१२. **कुष्ठ**–कुष्ठघ्न च सू २६ कुष्ठप्रशमन सु सू ४२।२१
कुष्ठहरम् सु सू ३८ कुष्ठजननम् सु चि. २४।१०९
कुष्ठनिवर्हण अ. चि १७।५१ कुष्ठप्रणुत् अ सू ५।६०
कुष्ठसदन अ चि १९।३० कुष्ठाहा अ सू १०।१५
कुष्ठापह अ. चि १८।१८ कुष्ठजित अ चि १९।८३
कुष्ठनुत् अ चि १९।२१

१३ **कृमि**–कृमिघ्न सु उ ४० जन्तुघ्न सु सू ४६।२५२
रक्षोघ्न अ उ. १।४३ कृमिघ्नी सु उ ४०।१८०,
कृमि नाशन अ सू ५।६२ कृमिसूदन सु सू ३८।१६,
कृमि प्रशमन सु सू ३८।१६ कृमिनुत् अ सू ७।८६,
कृमिहा अ क ४।२४ कृमिकर सु सू ४२,
कृमिल सु सू ४५।१९०

१४ **खलित**–खलितघ्न सु चि २५।३६ पलितघ्न सु चि २५।३१
पलितनाशन अ चि ११।२६

१५ **गण्डमाला**–गण्डमालाहर सु. उ ३९ गुल्मनिपूदन सु सू ४६।३०

१६ **गुल्म**–गुल्मनुत अ चि, अ चि ३।६ गुल्महृत सु उ ४२।३०
गुल्मघ्न अ नू १५।२३ गुल्महर अ सू १५।२२
गुल्मरुजापह अ चि. १४।१२२ गुल्मनाशन अ. चि १४।१००
गुल्म भेदन अ चि. १८।३१ गुल्मजित अ चि. ३।६१
गुल्महृत अ चि ३।६१

१७. **ग्रहणी**–ग्रहणीदोप प्रशमन च चि १५ ग्रहणीदोषनुत् च चि २६
ग्रहणी रोगघ्न च चि ३ ग्रहणी विकार शमनी सु सू ४६।२७३
ग्रहणी हर अ चि. ४।५५ ग्रहणी रोगनुत् अ. चि. ३।६

१८ **गर**–गरहा अ सू ६।१०८ गरहर अ. सू ३८।५९

१९. **ज्वर**–ज्वरकृत च. चि २३।१८६ ज्वरघ्न सु सू ३९।१०२, अ सू १५।२४
ज्वरप्रशमन सु सू ४८।२१ ज्वरवेगापायकृत सु सू ३९
ज्वरदाहार्तिनुत् च. चि. २९।१२० ज्वरहन्ता च. चि २३।५८
ज्वरदाहविनाशन सु उ ३९।१४६ ज्वरवेगाभिवर्धन सु उ ३९।१४६
ज्वरापह सु सू ४६।१५ ज्वरान्तकृत सु उ ३९।२५३
ज्वरोपशमन सु. उ ३८।३९
जीर्णज्वरापह सु उ ३८।२५८ ज्वरहर च सू ४, अ सू १५।१५
सन्तापकृत सु सू ४२।२१ ज्वरकासहा अ चि. १।८९
ज्वरघ्नन्ति अ चि ३।८३ ज्वरजित अ चि १।५९
ज्वरनाशन अ चि १।४७ ज्वरनुत् अ चि १।११५
ज्वरवर्धन अ चि १।९७ ज्वरोपद्रववृद्धिकृत अ चि १।८३
विपमज्वरनाशन च चि ३।१५९

२०. **दाह**–दाहघ्न च चि १०।२३, अ सू ५।५०
दाहनिर्वापण च सू २५ दाहनाशन सु. सू ४५।३१४, अ. चि १।११०
दाहहरम् सु सू ३२।५०, अ सू ६।११६ दाहापहम् च सु २७।२८६
दाहप्रशमन सु सू सू ४१।४५ दाहरागनूत् च चि. २९
दाहविनाशन सु उ ३८।२२२
दाहार्तिनुत् च सू २७।१०८ दाहनुत् अ चि २२।२९

२१. **नाडीव्रण**–नाडीव्रणापहम् सु चि ८।४२ नाडीव्रणहर अ उ ३०।२७

२२ **पाण्डुरोग**–पाण्डुरोगघ्न च चि ५ पाण्डुरोगनाशन सु सू ३२।१९

२३ **पार्श्वशूल**–पार्श्वशूलनुत् सु सू ३८।३९
पार्श्वशूल विनाशी च सू २७।१६४ पार्श्वार्तिजित अ चि ३।१४४
पार्श्वार्तिप्रणाशिनी अ चि ३।२१ पार्श्वार्तिशान्तये अ चि ४।२६
पार्श्वरुग्नाशन अ चि ४।३४, पार्श्ववेदनाहर, अ चि ४।४५
पार्श्वरुग्घ्न अ चि ३।८३, पार्श्वशूलध्न अ चि ५।२०

पार्श्वरुजघ्नन्ति अ चि ३।८३, पार्श्वशूलजित अ चि ५।२६
पार्श्वशूलनुत् अ चि ५।६०

२४ **पीनस**–पीनसजित अ चि. ३।५२, पीनसहर अ सू १६।१६५
पीनसनुत् सु सू ४६।३९६, पीनसनाशन सु सू ४६।८७
पीनसहारी सु सू ४६।३७

२५ **पक्वशोथ**–पक्वशोथप्रभेदन च चि २५।५७
पक्वशोथविदारण अ उ २५।३७

२६ **वायुशूल**–वायुशूलजित अ क ४।३०

२७ **मद**–मदकृत सु सू ४२।२१, मदप्रशमन सु सू ४५
मदविनाशी सु उ ४६, मदावह सु सू ४५।२०३
मदघ्नी अ सू ६।६३, मदघ्न अ सू ६।८४
मदघ्नन्ति अ चि ३।८३

२८ **मूर्च्छा**–मूर्च्छा प्रशमन सु सू ४२।२१, च सू २६
मूर्च्छाकृत च चि २३।१४६, मूर्च्छाकर अ सू ७।२०
मूर्च्छाघ्नन्ति अ चि ३।८३, मूर्च्छापह अ चि ३।१०१
मूर्च्छाहर अ सू १०।१५

२९ **यक्ष्मा**–यक्ष्मविकारहरी सु उ ४१।५९, यक्ष्मापह सु चि २।१०९

३० **भगन्दर**–भगन्दरविनाशन सु सू ४६

३१ **वमन**–वमिनाशन सु सू ४६।६६,
वमिहर सु उ ३८।५०, अ सू १५।१५ वमथुहर अ उ १।६३
वमिघ्न अ सू ६।८०, वमिकर अ सू ७।२३

३२ **विद्रधि**–विद्रधिजित् अ उ १३।९, विद्रधिहा अ सू १५।२२

३३ **विसर्प**-विसर्पजित अ उ १३।९, विसर्पजनन सु चि २४।१००

३४ **व्रण**–व्रणशूलजित अ क ४।३०, व्रणरोपण सु उ ३८।४६
व्रणशोधन च चि २५।२३, व्रणलेपन सु सू ४६।३९
व्रणधूपन सू चि १

३५. **त्वग्रोग**–व्यगघ्न सु चि २५।४१, नीलिकाघ्न सु चि २५।४१
सिध्मनाशनम् अ चि १९।७५, सिध्मापह १९।७६

३६ **सञ्ज्ञा**–सञ्ज्ञाप्रबोधन सु उ ३९।१२९, सञ्ज्ञास्थापन च सू ४

३७ **सर्वरोग**–सर्वरोगहर सु सू ३९, सर्वरोग प्रकोपण च सू. २०।२
सकलामयनाशन अ उ २८।३९, सर्वगदप्रमाथी अ क ४।३
सर्वव्याधिनिवर्हण अ क २।६०, सर्वांगरोगजित अ चि ३।९

३८ **शूल**–शूलघ्न अ सू ६।१५२, शूलप्रशमन च सू २०
शूलशान्तिकृत सु उ ४०।५६, शूलमापादयति सु सू ४१।२१
शूलजनन अ चि २२।३०, शूलकर अ सू ७।१९
शूलजित अ चि १।६१, शूलनाशिनी अ क ३।१४

शूलनिवारण अ. चि २२।२३, शूलनुत् अ चि ३।१०५
शूलहर अ चि ११।३, उ १३।२३, २६

३९ **शोफ**—शोफकृत अ सू ५।३०, शोफघ्न अ उ ३८।२०
शोफजित अ चि १।११४, शोफनाशन अ चि १।११५
शोफ निर्वापण अ उ २५।२९, शोफनुत् अ चि १।११५
शोफविषापहम् अ सू ६।२१, शोफहर अ सू ६।९८
शोफहा अ सू ६।१०८, शोफघ्नन्ति अ चि. ८।८३
श्वयथुनाशन सु सू ४२, शोफापह सु चि १२।२२२
श्वयथुहर च सू ४, शोफनिवारण च चि २५।४४
शोथहर च सू ४ शोफजित च सू २२।२२
शोफजनयति च सू २६, श्वयथु विलयन सु. सू ४२।११
श्वयथुकर सु सू ४०

४० **शोष**—शोषजित अ चि ३।१६६, शोषापह अ चि ३।१०५
शोषघ्न सु सू ४२, शोषकारी च चि २३।१५६
शोषापह च सू २७, सु उ ४६।४०,
शोषविनाशन सु सू ३८।७८, क्षयहितम् च सू २७।२३०
क्षताहितम् च सू २७।२३०, क्षतसधान कर च सू २६

४१ **श्लीपद**—श्लीपदहा अ सू ६।१६५

४२ **श्वित्र**—श्वित्रहर अ चि १९।१६४

नोट—पूर्व शिर वस्ति आदि अगो के साथ सकलित रोग सवधी सज्ञाओ के वर्गीकरण के अतिरिक्त प्राप्त होने वाली विशिप्ट सज्ञाओ का वर्गीकरण ऊपर दिया गया है।

सामान्य कर्म सम्बन्धी संज्ञायें

अभिष्यन्दी च सू २६।१८७, सु. सू ४२।६०, अ सू ५।१८
अवगाहन च सू ७।७
अभ्यग च सू ७।७, अवसादन सु सू ३७।३२
अभिष्यन्दी सु सू ४२।६०, अमृतोपम् सु चि १४।१९
अविशोषित अ सू १।२२, उत्तेजन अ चि ७।७३
उत्थापन अ चि २१।२२, उपवासन च सू १५।४५
ग्रहनुत् सु उ ३८।२३१,
प्रसादन उ चि २२।४५, सु सू ४२।४६, च चि २७। ११८
जीवनीय च सि २।२०, अ सू ५।२१ तर्पण च क १२
धारण सु चि १४।४, अ सू ११।४
प्रीणन अ सू ६।६३, सु सू ४५।११२, च सू २७।३११
लघन च सू २९, अ. सू ४।२६, ८।२१

व्यवायी च क. १।३, सु गू ४५।११२
वर्धन सू च. ४५।४९, रसायन च सू २६।२७
यशस्य अ उ ४३।४, च नि १, मगलकर अ उ ६।३१
सशमन अ चि. १।८६, सु सू ९।१०४
मशोधन अ चि ११।३५, च सू १३।९९
विकीकरण सु सू २२।११, विक्षेपण सु सू २२।११
भेदन अ सू ६।९९, च सू ३, क्षातन अ उ २५।४२
क्षेपन च चि २७।२३, सप्रवर्तन अ चि ९।५
पिच्छानिवर्हण सु सू ४६, शौर्यकर अ सू ११।३
शीत दैन्यापह सु उ ३९।२७६

परिभाषा सूची

सामान्य परिभाषा
विशिष्ठ परिभाषा
सामान्य परिभाषा मे

१. शोधन २ वमन
३ विरेचन ४ वस्ति
५ शिरोविरेचन

६ शोधन—आर्तव शोधन, स्तन्य शोधन, स्रोतोविशोधन, हृदविशोधन, कोष्ठविशोधन, उद्गार शोधी, योनि विशोधन, हनु विशोधन, आस्य विशोधन, व्रण विशोधन, कठ शोधन, वस्ति शोधन, मूत्रशोधन, शुक्र शोधन, रेतो मार्ग विशोधन, उर शोधन, दोषविशोधन, असृग शोधन, दन्त शोधन, स्वर शोधन, वक्त्र शोधन, पक्वाशय शोधन।

७ अवसादक—वातावसादक, कोष्ठावसादक, पित्तावसादक, लेश्ष्मावसादक, मासावसादक, ।

८ शमन सशमन—दोष प्रशमन, वात सशमन, पित्त सशमन, श्लेष्मसशमन, आमोपशामक ग्रहणी दोष प्रशमन, मद प्रशमन, मूर्च्छा प्रशमन, शर्करा प्रशमन, दाह प्रशमन, अग्नि प्रशमन, अत्यग्नि शमन, कृमि शमन, रक्त पित्त प्रशमन, विष प्रशमन, स्थौल्य प्रशमन, ज्वर प्रशमन, तन्द्रा प्रशमन, निद्रा प्रशमन, आलस्य प्रशमन, प्रमेक प्रशमन, पाप्मा प्रशमन, अलक्ष्मी प्रशमन, कटू प्रशमन, वल प्रशमन, हिक्का प्रशमन, कास शान्ति, पार्श्वर्ति शमन, हृद ग्रह शमन, कोथ प्रशमन।

९ स्यदन—मुख स्यदन, अक्षि स्यदन।
१० सग्राही—पित्त सग्राहक, श्लेष्म सग्राहक, पुरीषाव ग्राहक, रक्त सग्राहक।
११ विरजनीय—पुरीष विरजनीय, मूत्र विरजनीय।
१२ लेखनम्—जिह्वा निलेखन, मान विलेखन।
१३ संधानम् १४ दीपनम

१५ वर्ण्यम्—वर्णयम्, कण्ठ्यम् हृद्यम्, चक्षुष्यम्, केश्यम्, मेध्यम्, ओजस्यम्, दन्त्यम्, यशस्यम् ।

१६. उपग—स्नेहोपग, स्वेदोपग, वमनोपग, विरेचनोपग, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग, शिरोविरेचनोपग ।

१७ अनुलोमनम्—वातानुलोमनम्, वर्चोनुलोमनम्, दोषानुलोमनम्, गर्भानुलोमनम् ।

१८ कोपनम्—वातकोपनम् । पित्तकोपनम् । कफकोपनम् ।

१९ दूषण—शोणित दूषण, दृष्टि दूषण, ग्रहणी दूषण, पित्त प्रदूषण, वह्नि दूषण ।

२०. प्रसादन—दृष्टि प्रसादन, वात प्रसादन- मनः प्रसादन, रक्त प्रसादन, मांस प्रसादन, वक्त्र प्रसादन, वर्ण प्रसादन, त्वक् प्रसादन, पित्त प्रसादन ।

२१. निग्रहण—वायोर्निग्रहण, छर्दिनिग्रहण, तृष्णा निग्रहण, हिक्का निग्रहण, निद्रा निग्रहण ।

२२ शोषण—मेद शोषण, मज्ज शोषण, पूय शोषण, अस्थि शोषण, स्वेदशोषण, वह्नि शोषण, पुरीष शोषण, मूत्र शोषण, कफ शोषण, रसोपशोषण, रक्तोपशोषण, मांस शोषण, क्लेदोपशोषण, वसोप शोषण, लसीकोपशोषण, शुक्रोपशोषण ।

२३ भेदन—आनाह भेदन, विड् भेदी, गुल्म भेदन, मधि भेदन, शोथ भेदन, शर्करा भेदन ।

२४ क्लेदन—कफोत्क्लेदन

२५ स्थापन—शोणित स्थापन, वेदना स्थापन, संज्ञा स्थापन, प्रजा स्थापन, वय स्थापन ।

२६ प्रबोधन—संज्ञा प्रबोधन, स्वर प्रबोधन, कृमि प्रबोधन

२७ संतर्पण—इन्द्रिय तर्पण, शिरोतर्पण, अक्षितर्पण, कर्ण तर्पण ।

२८ प्रवर्तन—वर्च प्रवर्तन, विष वेग प्रवर्तन ।

२९ कर एवं जनन—अनिल कर, कफ कर, पूति मास कर, पित्तकर, आध्मानकर, पुष्पकृत, स्तन्य वृद्धिकर, ओजस्कर, अवकाशकर, हृल्लासकर, छर्दि कर, धातु शोष'कर, मदकर, उपतापकर, दोष मार्दव कर, प्रभूत मेदोकर, अस्थि स्थैर्य कर, शुक्र कर, विष्टम्भकर, त्वक् स्थिरीकर, धातुसाम्यकर, धातु मृदु कर, धातु क्षोभ कर, गलदाहकर, दार्ढ्यकर, तृष्णाकर, ओष्ठ शोध कृत, आदकर, पूति मारुत कर, पर्ववातकर, केश मार्दव कर, केश बहुल कर, केश कृष्णता कर, कडूकर, अल्प मूत्र कर, अति रूजाकर, कृमिकर, मन्यास्तभ कर, मूर्च्छाकर, सुप्तिकर, ज्वरकर, दाहकर, शान्तिकर, श्वयथुकर, अग्निकर, अभिष्यदी कर, प्रीतिकर, सतानकर, अल्पवाक्कर, आयुश्कृत उर्जस्कर जडताकर, तन्द्राकर, मेधाकर, बन्धन कर, मगलकर, रुचिकर, लावण्यकर, विक्षेपकर, वैशद्यकर, विष्यदन कर शौर्यकर, स्थैल्यकर, स्मृतिकर, क्षुधाकर, क्षत सधान कर, क्षीण सधानकर ।

जनन--पुरीप जनन, मूत्र जनन, उदावर्त जनन, उर: गधान जनन, दोप जनन, नेत्र रोग जनन, आम्य शोप जनन, स्तभ जनन, विसर्पजनन, आनद जनन ।

३० आपादन--अर्दितापादन, शिर शूलमापादन, मुख पाकमापादन पुस्तत्रापघात जनन, आवी जनन, स्फोट जनन ।

३१. वर्द्धन--पवनवर्द्धन, कफ वर्द्धन, पित्तवर्द्धन, स्तन्य विवर्द्धन, ग्रहणी वल वर्द्धन, शोणित वर्द्धन, मास विवर्द्धन, अस्थि वर्द्धन, शुक्र वर्द्धन, वल वर्द्धन, अग्नि वर्द्धन, दोप वर्द्धन ।

३२ घ्न, हन, हन्ता, आपह, नाशन, हर ।

यह सज्ञाये सख्या मे अतीवाधिक है । यथा—वातघ्न, पित्तघ्न, श्लेष्मघ्न । पित्तामयापह, ज्वरापह, मलापह, स्तन्य हन्ता । नाशन–सिध्म नाशन, भगदर नाशन, आध्मान नाशन, ग्लानि विनाशन ।

परिभाषा प्रकरण

प्रत्येक विषय मे उनकी परिभापा का विशेष महत्व है । विना परिभापा के वस्तु स्थिति का स्पष्ट अर्थ नही हो पाता । परिभापा नियम कारिणी होती है तथा अनुक्त लेशोक्त व अव्यक्त तथा सदिग्ध अर्थ का वोधक होती है । अत आयुर्वेद मे इसका वडा महत्व है । अच्छी तरह से निश्चित अर्थ की आवश्यकता द्रव्य गुण शास्त्र मे अत्यावश्यक होने के कारण इसकी आवश्यकता अतीव उपयोगी मानी जाती है ।

आयुर्वेद के साहित्य मे इस प्रकार वहुत से शब्द आते है जिसकी परिभापा चाहिये । किन्तु मिलता नही या शाब्दिक अर्थ करने मे उसमे अन्तर पड जाता है । अत परिभाषा के क्रम मे शास्त्रीय विवरण चरक सुश्रुत वाग्भट व अन्य ग्रथो मे मिलती है । सहिताओ के वाद जव जव आवश्यकता हुई है शास्त्र लेखको ने परिभाषा वनाई . शार्ङ्गधर, भावमिश्र भैषज्यरत्नावली आदि मे ये पाये जाते हैं जिनका स्पष्ट विवरण सहिताओ मे नही मिलता ।

चरक सुश्रुत व वाग्भट्ट के पारिभाषिक शब्दो के सग्रह करने व वर्गीकरण करने पर यह दिखाई पडता है कि अनेको शब्द रह गये है जिनका स्पष्ट अर्थ परिभापा नही है यदि शाब्दिक अर्थ कर दिया जाय तो कभी कभी महान अर्थ विभ्रश हो जाता है । अत यहा पर परिभापाओ के वर्गीकरण के वाद उनकी परिभापा जो शास्त्र मे है उनका सकलन यथारूप मे किया गया है और जहा पर परिभापा स्पष्ट नही है उनकी परिभापा वना दी गई है जो प्रयुक्त शब्दार्थानुकूल है ।

द्रव्य गुण शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसकी परिभापा मे थोडा भी परिवर्तन हो जाय तो कठिनाई हो जाती है अत: यहा पर उनका प्रकाशन स्पष्ट रूप मे कर के छात्र व अध्येता दोनो के लिये सरलता उत्पन्न हो ऐसी व्यवस्था की गई है । इस मे जो यथावत् नही है वह टीकाकारो ने वनाई है

उनमे भेद रह गया है तो उनका भी सशोधन किया गया है। कही कही तो मूल शब्द का ही सुधार कर उनका स्पष्टीकरण किया गया है।

भेद व विभाजन—

परिभाषायें प्राय. दो प्रकार की है। यथा– १. सामान्य २ विशेष

सामान्य परिभाषा---सामान्य परिभाषायें वह है जिनका उपयोग सामान्य रूप से कर्मो के लिये हुवा है। जो एक ही अर्थ मे विभिन्न शब्द के योग से बन जाती है। यथा--- शोधन या शमन। दोष धातु या मल के साथ इनका योग होने पर उनकी परिभाषा समान रूप में बन जाती है। यथा---

वात सशमन, पित्त सशमन, श्लेष्म सशमन,। वात शोधन, पित्त शोधन, श्लेष्म सशोधन जैसे कई सज्ञाये हैं। शोधन, शमन, अवसादन प्रसादन, निर्वहण, कर्षण, वर्द्धन, क्षपण, जनन, दूषण, कोपन आदि। स्थापन, आपादन, हनन, हरण घ्न आदि।

विशिष्ठ सज्ञायें----वह मानी जाती है जिनका उपयोग एक ही कार्य विशेष के लिये होता है। यथा- --जीवनीय, बृहणीय, रसायन, वाजी करण, वृष्य, व्यवायी, विकाशी, प्रीणन, प्रमाथी, दीपन, पाचन आदि आदि।

इन परिभाषाओ का विभाग बहुत विस्तार का है। ३००० शब्दो को सग्रह करके उनको फिर अकारादि क्रम से बनाकर फिर उनका वर्गीकरण करके यह परिभाषायें लिखी गई है जिनको क्रमश पाठको के सामने रखने का प्रयास किया गया है।

उनके ज्ञानार्थ यथा स्थान उनकी व्युत्पत्ति शाब्दिक अर्थ, यत्र-तत्र उनके द्रव्यो के भौतिक सगठन व कर्मकारक द्रव्य को भी साथ ही दिया गया हैं। सर्व प्रथम उनका क्रमान्वित अर्थ यथा—सशोधन के वर्ग मे जितने भी सशोधन हैं वह एक साथ आ जाते हैं। फिर सशमन तो जितने भी शमन वाचक परिभाषा विस्तार है वह सब दिया गया है।

इन परिभाषाओ का भी क्रियात्मक रूप अन्य खड मे पृथक दिया गया है। यथा—

दीपन---दीपन की परिभाषा शास्त्रीय विभिन्न मत से, फिर उनके द्रव्य, उनका सग्रह व उनका कर्म शरीर पर किस प्रकार होता है वह सब दिया गया है।

कहा से यह शब्द सग्रह व क्रम बद्ध है उनका भी एक सूचि बद्ध क्रम स्थान नाम अध्याय व स्थान श्लोक के रूप मे दिया है। बहुत से हमारे भाई यह समझते है कि आधुनिक शब्दो को लेकर बनाये गया है उन भाईयो के ज्ञानार्थ यह शब्दसग्रह नाम स्थान पूर्वक दिये गये । हमारे विचार से तो इतनी सज्ञायें आधुनिक शास्त्र मे भी नहीं है और कुछ तो ऐसी है जो आधुनिक विज्ञान को आयुर्वेद मे लेना ही होगा।

यथा---रक्त सघात भेदक यह परिभाषा आधुनिक फारमेकोलोजी मे नही है। ऐसे अनेक शब्द है अत परिभाषा का विषय यहा पर आपके सन्मुख रखते है।

सशोधन

पर्याय–शोधनम्, देह सशोधनम्, सशोधन, विशोधन, उभयतो भाग हरण।

व्युत्पत्ति---शुध शौचे धातु ण्यन्ताल्लुट इससे लुट प्रत्यय लग कर शोधन शब्द बनता है। जिसका अर्थ शुद्धि करना मात्र है।

इस अर्थ मे शरीर की शोधन सबधी सब सज्ञाये आ जाती है। चाहे वह विरेचन हो या वमन या अन्य। आयुर्वेद का साहित्य कई प्रकार की सज्ञाये इस सबध मे देता है। यथा---वमन, विरेचन, वस्ति, शिरो विरेचन, आर्तव शोधन, स्तन्य शोधन, स्रोतो विशोधन, हृद् विशोधन, शुक्र शोधन, गर्भाशय शोधन, योनि विशोधन, दोष विशोधन, मूत्र विशोधन, आस्य विशोधन, असृग्वि-शोधन, रेतोमार्ग विशोधन आदि आदि।

इसकी परिभाषा जो आज शास्त्र मे मिलती है वह तो इतनी विशाल नही है जो कि इनका पूरा अर्थ करती हो। अत उनपर विचार करेगे।

शास्त्रीय परिभाषा---

१ **यदीरयेद् वहिर्दोषान्पचधा शोधनञ्च तत्।** अ हृ सू १४

२ **स्थानाद्वहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसचयम्।**
देहसशोधन तत्स्याद्देवदालीफल यथा। शा०

अर्थ---प्रथम परिभाषा मे वाग्भट्ट का कथन यह है कि जो द्रव्य शरीर से दोष को बाहर निकाल दे वह सशोधन कहलाता है। उसके पाच प्रकार हैं। वमन, विरेचन, शिरो विरेचन, रक्त मोक्षण व उपवास। इससे ऊपर की सब सज्ञाये नही आ जाती। शुक्र शोधन, स्तन्य शोधन या अन्य। शार्ङ्गधर की परिभाषा मे ऊर्ध्व व अध विरेचन ही है या आढमल्ल के अनुसार बहि या आभ्यतर शोधन ही आता है। शारीर शास्त्र की परिभाषा मे—

स्वयमेव विदीर्णंवा शस्त्रेण वा भेदित व्रणम्।
यानि द्रव्याणि शोधयति तानि सशोधनानि उच्यते। डल्हण

यह आठ प्रकार के हैं। कषाय, वर्ति, कल्क, घृत, तैल, रसक्रिया, चूर्ण, धूपन, भेदन आदि। इससे भी पूरी परिभाषा अन्य सज्ञाओ की नही बनती।

चरक व सुश्रुत ने जो लिखा है वह है।

दोष हरणमूर्ध्वभागिकं वमनसंज्ञक अधोभाग विरेचनसज्ञकम्।
उभय वा शरीर दोष विरेचनाद्विरेचनसज्ञा लभते। च क १

अत सार्वभौम परिभाषा के लिये अष्टाग हृदय के विचार के अनुसार निम्न परिभाषा कुछ सशोधन के साथ हो सकती है। वह यह है। यथा---

यदीरयेद् वहिर्दोषान् शोधन तच्च सस्मृतम्।
सर्वांगेऽव्यय चैकस्मिन् दोष धातु मलेषु च। विश्व।

इस परिभाषा मे सर्वांग या एकाग या दोष धातु मल मे से कही से दोष निकालने वाली औषधि सशोधन का अर्थ पा जाती है। चाहे वह स्तन्य ही

शुक्र हो या मल हो। और कोई अर्थ भी बदलना नही पडता। इनके भेदो का विवरण आगे दिया गया है।

संशोधन–पूर्व मे संशोधन के कई विभाग कहे गये हैं। इनमे प्रधान वमन विरेचन, शिरो विरेचन, वस्ति आदि है उनका क्रमश. विवरण परिभाषा क्रम मे निम्न हैं।

वमन

पर्याय–वमन उर्ध्वभाग संशोधन, उर्ध्व भागहर, छर्दनीयम्।

परिभाषा—अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्।

वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फल यथा। शा०

अर्थात्–जो द्रव्य अपक्व पित्त व श्लेष्म को बल पूर्वक ऊपर के मार्ग मुख से निकाल फेंक देते है उन्हे वमन द्रव्य कहते है।

चरक व सुश्रुत का भी विचार इसी प्रकार का है। यथा—

दोष हरण मूर्ध्व भागिक, वमन संज्ञकम्। च० क० १।

गुणोन् कर्षात् व्रजत्यूर्ध्वमपक्व वमन पुन। सु० चि० ३३

ऊपर के उद्धरण मे स्पष्ट है कि वमन द्रव्य अपने बल प्रभाव से दोष को ऊपर के मार्ग मे बाहर निकाल देते है, वही वमन संज्ञक होते है।

भौतिक संगठन–**वमन द्रव्याणि अग्नि वायु गुण बहुलानि। अग्नि वायु हि लघु लघुत्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठति। तस्माद् वमनमूर्ध्व गुण भूयिष्ठम्**

॥ सु. सू. ४१

२–वमन द्व्याणि तु वायु अग्न्यो शीघ्र लघु गुणयो गुण भूयिष्ठानि। अत शीघ्र गत्वादपक्वानि यत्रलघुत्वाद् उर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति तदाग्नेय वायव्यम्।

र० वै० ४।३०

तेजो वायुजमूर्ध्वजम्। र० वै० ४। ३

अर्थात्–वमन द्रव्य वायु अग्नि गुण बहुल होते है।

द्रव्य–मदनफल, जीमूतक, इक्ष्वाकू, कृत वेधन, मधुक, कुटज।

नोट–आढ मल्ल ने शार्ङ्गधर की टीका करते समय लिखा है कि

यद् द्रव्यमपक्वम् पाकमगच्छन्त पित्त श्लेष्माण व्यस्त मिश्रित वा बलात् हठात् कारेणोर्ध्व नयेत् मुखेन कृत्वा वामयेत् इत्यभिप्राय। तद् वमन ज्ञेयम्। यथा मदन फलस्य। बलादिति प्रभाव सूचक शब्द। ननु कफस्य वमन पित्तस्य विरेचन प्रशस्तमिति प्रसिद्धि तत् कथम् पित्तस्य वमनमिति। उच्यते–अपक्व पित्तस्य वमनादेव निर्हरण बोद्धव्यम्। तच्च दृश्यते हि कटु तिक्त हरित पीताम्ल वमनेन यत पित्त विदग्धमम्लतामुपैति। अतएव पित्त चिकित्सायामादौ वमनमित्यदोष। आढमल्ल।

ऊपर के इस वचन से अपक्व पित्त के निर्हरण के लिये चिकित्सा मे वमन का कथन ठीक है–यह ठीक है कि सामान्य रूप से पित्त के लिये विरेचन की उक्ति है परतु अपक्व पित्त के लिये वमन का विचार ठीक ही है।

(२) संशमन–

पर्याय–शमनम्, प्रशमनम्, सशमनम् (Sedatives Depressents)

परिभाषा– न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।
समीकरोति विषमान् शमन तच्च सप्तधा ।। अ० हृ० सू० अ० १४

२– न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषास्तथोद्धतान् ।
समी करोति विषमाञ्शमनं तद्यथाऽमृता । शा० स०

३– न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।
समी करोति च क्रुद्धास्तत् सशमनमुच्यते ।

परिभाषा–जो द्रव्य दोषो का सशोधन नही करते और जो सम होते हैं उनको वढाते नही और कुछ दोषो से हुई क्रिया को सम करते है उन्हे शमन कहते है।

इस परिभाषा पर ध्यान देकर देखे तो ज्ञात होता है कि शमन शब्द का जो अर्थ 'शमु उपशमे' धातु से भाव मे ल्युट प्रत्यय करने पर शमन शब्द बनता है और उसका अर्थ शात हो जाना होता है वह ही इस परिभाषा मे भी लागू होता दिखाई देता है। और विशेष रूप मे जैसे कि शरीर की स्थिति मे जब कुछ दोष कुपित होते हैं और कुछ कुपित नही होते तव जो द्रव्य औरो को छेडे बिना ही बढी हुई क्रिया को कम कर देते हैं और लक्षणो को शात कर देते हैं वे ही शमन कहलाते है।

इस अर्थ मे ध्यान दें तो आधुनिक सिडेटिव या डिप्रेसेंट कहे जाने वाले द्रव्य इस क्षेत्र मे आते दिखाई पडते है यथा–

आधुनिक परिभाषा–

(1) Sedatives–Agent that exert soothing effect by lowering functional activities or Drugs-which quiet the nervous system without actually producing sleep As Aconite Gugulu etc.

(2) Depressents are medicines which depress action of the (i) Nervous system as aconite (ii) the circulatory system as aconite (iii) The spinal card as calabar beens.

classification--General (Arterial), cardiac Nervine Pulmonary or resperatory Gastric-urinary uterus etc

(3) Depressents–are drugs that retards or depress the physiological action of an organ

अत सशमन के रूप को स्पष्ट करने के लिये परिभाषा ठीक रह सकती है। यथा–

दोषान्दूष्यान्समान कृत्वा काये नान्यं प्रकोपयेत् ।
विषमान् समतां लाति दोष-प्रशमन हि तत् ।। विश्व :

दोष सशमने चास्य वहुभेदाप्रकीर्तिता: । वात पित्त प्रशमनं श्लेष्म प्रशमन तथा । व्याधि प्रशमन तत्तु वहुधाकृति दृश्यते । शूल प्रशमन कडूदाह प्रशमनादिकम् । ग्रहणी दोष शमनं शमन क्षयशोषयो: । मदप्रशमनं चैषामग्रे स्याद् विवृत्ति स्फुटा।

(३) अवसादक (Depressents)–

अवसादन–सत्लृ शातने धातु से अव उपसर्ग पूर्वक अवसादन शब्द बनता है । अत अर्थ कमी करना होता है । शमन मे जो क्रम 'समी करोति विषमान' कहा गया है वह अवसादन मे ठीक घटता है । यह भी सामान्य परिभाषा के क्रम मे आता है यथा—

अवसादन–सु सू ३७।३२ — पित्तअवसादक
मासावसादन–सु चि १।८३ — श्लेष्मावसादक
अग्नि सादन–सु उ ४१।६६ — अनलावसादक
वल वर्णाग्नि सादक सु उ ३९।३२३

इससे शरीर के विभिन्न प्रकार के कार्य की कमी का वोध होता है । अत परिभापा निम्न वन सकती है । क्योकि कोई शास्त्रीय परिभापा नही है । यथा——

**द्रव्याणि शान्तिं प्रणयति काये कृत्वा च ह्रासं मनस· क्रियाणाम् ।
सादेन वा तद् अवसादनेन कर्मविसादात्मक तद् वदंति ।। विश्व
कर्मावसादात्मकमत्र वैद्या सादावसादाभिधमेतदाहु ।
सादावसादात्मतया सुवैद्यैरुक्तानि वै तान्यवसादकानि ।**

अर्थात्–जो द्रव्य मनो वह नाडी की क्रिया को कम करके शारीरिक क्रिया को कम करते है वह अवसादन क्रिया के नाम से कहलाती है ।

**अथवा–चलात्मक कार्यमुदस्य वायो कर्माणि सपादयतीह यत्तु ।
सादात्मक तत् प्रतिभाति काये ह्यङ्ग क्रियाया शिथिली करत्वम् । विश्व**

भिन्न–भिन्न क्रिया के अवसादन मे यह भिन्न–भिन्न अर्थ मे व्यवहृत होता है किंतु सर्वत्र कार्य की कमी का वोध होता है ।

सादन कर्म–गुरु गुण की क्रिया अवसादन का निरूपण किया गया है । (सादकृत) अत क्रिया की कमी स्पष्ट ज्ञात होती है ।

मांसावसादन——जो द्रव्य अपनी क्रिया से मास का लेखन कर कम करते है या समान करते है । यथा–**तुत्य, काशीश, गोरोचन, क्षार आदि ।**

अग्निसादन–जो द्रव्य अग्नि को कम कर देते हैं । यथा–अपामार्ग वीज–महिष दधि ।

पित्तावसादन–जो द्रव्य पित्त की क्रिया को कम कर देते है वे पित्ताव-सादन है । यथा–उशीर, इन्द्रयव ।

श्लेष्मावसादन–जो द्रव्य श्लेष्मा की क्रिया को व मात्रा को कम कर देते है वह श्लेष्मावसादन है यथा–तीक्ष्ण–तदुला–पिप्पली, मिर्च, शुठी

(४) प्रसादनम्–(Stimulants)

व्युत्पत्ति–सद्लृ विशरणादौ धातु से भ्वा० तु० प० अ० मे गत्यर्थं इतिवत प्रत्यय करके प्रसाद शब्द बनता है। अर्थ क्रिया का गति शील करना

२–प्रसादस्तु प्रसन्नता। अमर

पर्याय–प्रसादोऽनुग्रह स्वास्थ्य प्रसवितपु। काव्ये गुणे। हेम.

परिभाषा–स्वं स्व कार्यं विदध्याद्यद् गति स्वास्थ्य हिताय च।
अनुग्रह प्रदानेन प्रसादन मिति स्मृतम्॥ विश्व

अर्थात्–जो द्रव्य शरीर के भिन्न–भिन्न अगो के स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये गतिमान कर के अनुग्रह पूर्वक गतिशील बनाते है वह तत्तत् अग–कर्म प्रसादन कहलाते हैं। यथा–हृत प्रसादन,

Stimulants:—

(1) Agents exciting eventually the normal activity or depressed functions or organic actions of any part of the system or the process of the economy.

(2) Substances that increase the vital energy and force of action of heart and circulatory system.

Acceleration or Augmentation:--

That in encreases the tone and render the movements more active.

विभिन्न भेद–प्रसादन कर्म के कई प्रकार मिलते हैं। अत जहा पर प्रसादन विशेषण हो वहां पर उसका प्रसादन या क्रिया की वृद्धि समझना चाहिये। अवसादन व प्रसादन कर्म समान रूप से सर्वत्र देखने को मिलते है। शमन मे क्रिया की कमी व प्रसादन मे क्रिया की वृद्धि से अभिप्राय दिखाई पडता है। इन दोनो की क्रिया का विवरण आगे पृथक पृथक किया गया है। सज्ञाये यथा–

१–मन प्रसादन — मन को प्रसन्न करने वाले द्रव्य
२–दृष्टि प्रसादन — नेत्र की शक्ति बढानेवाले द्रव्य
३–रस प्रसादन — रस की वृद्धि करनेवाले द्रव्य
४–रक्त प्रसादन — रक्त ,, ,, ,,
५–मास प्रसादन — माँस को बढानेवाले द्रव्य
६–बल प्रसादन — बल की वृद्धि करनेवाले द्रव्य
७–त्वक प्रसादन — त्वचा की काति व बल बढानेवाले द्रव्य
८–वर्ण प्रसादन — वर्ण को बढानेवाले द्रव्य

स्वास्थ्यमाधातुमङ्गेषु कृत्वा तद्गत्यनुग्रहम्।
स्वभावे स्थापयेत् तद्धि प्रसादनमिति स्मृतम्।

(५) निग्रहणम्–बलान्निरोधयेद्यस्तु, वेदनादीन् गति क्रमान्।
विद्यान्निग्रहण वैद्यो, यत्रतत्रोदितान् क्रियान्। विश्व

अर्थात्–जो द्रव्य बल पूर्वक शरीर के दोप धातु की क्रिया को रोक देते हैं उन्हे उन कर्मों का निग्रहण कहते है। यथा–

१–वायु निग्रहण, छर्दि निग्रहण, तृष्णा निग्रहण, मल निग्रहण आदि।

निष्पत्ति–रुधिरावरणे धातु से घञ् व ग्रह उपादाने से अप प्रत्यय कर के नि पूर्वक निग्रहण शब्द बनता है। अत इस का अर्थ निरोध या रोकना होता है। यथा–निग्रहस्तु निरोध स्यात्। अमर

अत –जिस जिस क्रिया का अवरोध या रुकावट होती है उस उस कर्म का निरोध समझना चाहिये।

(६) **शोषणम्**–

परिभाषा–जो द्रव्य दोष धातु व मल का शोषण करते है वे शोषण कहे जाते है। यथा—

१–पित्त शोषण, मल शोषण, मेद शोषण, पूय शोषण, मज्जाशोषण, अस्थि शोषण।

(७) **कर्षण परिभाषा**–जो द्रव्य दोष धातु या मल को बाहर निकाल देते है वह उस के कर्षण कहलाते है। यथा–

१–पित्त कर्षी। २–मल कर्षी आदि।

(८) **प्रवर्द्धन या वर्द्धन**–

परिभाषा–जो द्रव्य दोष धातु या मल को बढा देते है उन्हे उनका वर्द्धन, वर्द्धक या उपचय कर कहते है।

पर्याय–वर्द्धन के अर्थ मे कई प्रकार की क्रियाये शास्त्रो मे वर्णित है। अत जिन शब्दो के आगे आवह ल या ला कृत शब्द आते है वह प्राय उस के बढ़ाने के अर्थ मे प्रयुक्त समझना चाहिये। यथा–

वर्द्धन–वात वर्द्धन, पित्त–वर्द्धन, श्लेष्म वर्द्धन, रक्तवर्द्धन, मास वर्द्धन।

आवह–मारुतावह। मलावह।

ल ला–वातल, पित्तल, श्लेष्मल, शुक्रला आदि।

कृत–वात कृत, पित्त कृत, श्लेष्म कृत।

(९) **क्षोभन या क्षोभण**–(Irritants)

परिभाषा–जो द्रव्य किसी दोष धातु या मल मे क्षोभ उत्पन्न करते है क्षोभन कहलाते है। यह क्रिया द्रव्य की अपनी निज की शक्ति के द्वारा होती है अत वे द्रव्य जो अपनी सीधी क्रिया के द्वारा क्षोभ उत्पन्न करते है क्षोभन होते है। यथा — पवन क्षोभी। वात क्षोभी।

(१०) **भेदन**–

परिभाषा–जो द्रव्य अपने प्रभाव द्वारा दोष सघात व मल सघात का भेदन करके उन्हे बाहर निकाल देते है। उन्हे भेदन कहते है। यथा–

१–दोष सघात भेदन। मल सघात भेदन। अन्न सघात भेदन। रक्त सघात भेदन। विशेष यह शब्द मल विरेचन से पृथक है। यहा पर भेदन जो मलादि के गाढे होने से थक्के बन जाते है उन का यह सघात तोड कर जो द्रव्य उन्हे ढीला बनाकर स्व स्व मार्ग मे जाने योग्य बना देते हैं उस भिन्नता या छोटे छोटे टुकडे मे विभाजन करना विशेष अर्थ का द्योतक समझना चाहिये।

(११) निवर्हण—

निरुक्ति—वर्ह हिंसायाम् धातु से व वृह वृद्धौ धातु से वर्हण शब्द बनता है। अत दोषादि का नाश करने के अर्थ मे अथवा वृद्धि के अर्थ मे अर्थ करना हो तो निर्गत है वृद्धि जिस क्रिया से, उसे निवर्हण कह सकते है।

परिभाषा—जो द्रव्य दोषो को नष्ट कर देते है अथवा दोषो की वृद्धि रोक देते हैं उन्हे उसका निवर्हण कहते है। यथा—

१—पित्त निवर्हण। २ वात निवर्हण।

(१२) ईरण निरुक्ति—

इण गतौ धातु से ईरण बनता है अत. परिभाषा निम्न हो सकती है। यथा—

परिभाषा—वे द्रव्य जो दोषो को गति शील या सक्रिय बनाते हैं उस को ईरण कहते हैं।

१—दोष समीरण—दोषो को गति शील बनाने वाले। च सि अ ११।६

२—वात समीरण—वात की क्रिया को गति शील करने वाले।

(१३) जनन—

परिभाषा—वे द्रव्य जो दोष धातु या मल की क्रिया को उत्पन्न करते है उसके जनन कहलाते है।

> **जनयति हि कार्याणि द्रव्याणि यानि तानितु।**
> **तत्तज्जनन भेदेन बहु संज्ञा कराणि हि। विश्व।**

यथा—कफ प्रसेक जनन। मूत्र जनन। श्रम जनन। हृत्पीड़ा जनन।

(१४) च्छेदन—

परिभाषा—जो द्रव्य दोष धातु सघात बद्ध नष्ट करके उन्हे स्व मार्ग मे प्रवृत्त करते हैं या शरीर से निकाल देते है उसका च्छेदन कहलाते हैं। यथा—

१—श्लेष्म च्छेदी।

(१५) स्थापन—

परिभाषा—जो द्रव्य दोष धातु या मल की विकृति से उत्पन्न स्थिति या क्रिया की विकृतावस्था को दूर करके प्राकृत रूप मे ला देते हैं वे उस का स्थापन कहलाते है। यथा—१ रक्त स्थापन।

२— प्रजा स्थापन। वेदना स्थापन। सज्ञा स्थापन आदि।

(१६) स्यंदन .—

परिभाषा—वे द्रव्य जो शरीर की कलाओ, खडो या ग्रथियो से किसी प्रकार के स्राव को निकालते है या रसस्राव कराते हैं उसके स्यंदन कहलाते हैं।

> **गात्रस्य कोष्ठ ग्रंथीनामथवा वा कलादिभि।**
> **रसस्य स्यदनं स्राव कथ्यते स्यंदन हि तत्।**
> **अभिस्यदेयथा वर्त्मकलादश्रु समागम.**
> **अश्रु ग्रंथि गतात् सीतात्वर्त्म स्थाने समागत**
> **कटुकस्तीक्ष्ण द्रव्याणि स्यंदनानि यथा कणा।** विश्व

(१७) **दूषण**–परिभापा–वे द्रव्य जो दोप धातु या मल को दूषित करते है उनके दूपण कहलाते हैं।

दोष धातु मलादीनां यानि दूषण कारिण ।
तान्येव दूषणानि स्यु यथा धातु प्रदूषणम् । विश्व

यथा–वात दूपण, पित्त दूपण, रक्त दूपण

(१८) **पाचन परिभाषा** (Digestants)

परिभाषा जो द्रव्य दोष, धातु, मल या आम का पाचन करते है उन्हे उनका पाचन कहते हैं। **यथा**-पित्त पाचन। दोष पाचन। आम पाचन।

दोष धातु मलादीना पाचकस्तद्धि पाचनम् । विश्व

अत आम पाचन—

पचत्यामं न वह्नि च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् । शा० स०

आम पाचन के अर्थ मे शार्ङ्गधर की परिभाषा उचित हो जाती है। शास्त्रो मे विभिन्न स्थानो पर कई प्रकार के पाचन विशेषण से युक्त अर्थ वाले शब्द मिलते है अत इस परिभाषा से वे ठीक अपने अर्थ मे लग जाते है। अत यह परिभाषा बनाई गयी है।

(१९) **ग्राही संग्राही व अवग्राही** (Astringents)

परिभाषा जो द्रव्य किसी द्रव वस्तु को सुखाकर गाढा कर दे उसे उसका ग्राही कहते है। अधिक या सम्यक् रूप से द्रव शोषण को सग्राही या अवग्राही कहते है।

यथा–१ पित्तग्राही। पित्त सग्राहकम्। २ श्लेष्मावग्राहक। ३ मलग्राही। मल सग्राहकम्। रक्त सग्राही। रक्त सग्राहक। ४ मूत्रावग्राही। मूत्र सग्रहणीय आदि।

अत मलग्राही के अर्थ मे—

दीपनं पाचन यत्स्यात् उष्णत्वाद् द्रव शोषकम् ।
ग्राही तच्च यथा शुंठी जीरक गजपिप्पली । शा० स०

मलग्राही के अर्थ मे यह ठीक बैठता है। अन्य अर्थो मे नही।

(२०) **विरजनीय**–परिभापा जो द्रव्य किसी शरीर वस्तु का रजन करते है उन्हे विरजनीय कहते हैं। यथा—मूत्र विरजनीय, पुरीष विरजनीय।

(२१) **उपचय कर**—परिभापा जो द्रव्य किसी दोष धातु या मल के वृद्धिकारक होते है उन्हे उसका उपचय कर कहते हैं। यथा—मासोपचय कृत रक्तोपचय कृत।

(२२) **उत्क्लेशन**—परिभापा जो द्रव्य किसी शरीर दोष की वृद्धि करते है उन्हे उसका उत्क्लेशन कहते है। यथा—१. पित्तोत्क्लेशन, कफोत्क्लेशन।

(२३) **क्लेदन**—परिभाषा जो द्रव्य किसी शारीर धातुओ मे द्रवाश बढा देते हैं अथवा द्रव वृद्धि कर क्लिन्न कर देते हैं। उन्हे क्लेदन कहते हैं। यथा—व्रणोत्क्लेदन।

(२४) **दार्ढ्यकृत**—जो द्रव्य धातुओ व उपधातुओ मे दृढता प्रदान करते है। उन्हे दार्ढ्य कृत कहते है। यथा—मास दार्ढ्य कृत, दन्तमास दार्ढ्य कृत।

(२५) **बद्धकृत**—परिभाषा जो द्रव्य मल व मूत्र की तरलता को कम करके उसको गाढा बनाते है उन्हे बद्धकृत कहते हैं। यथा—मल बद्ध कृत व मूत्र बद्धकृत।

(२६) **नाशन**—परिभाषा जो द्रव्य दोष धातु मल या व्याधि का नाशन करते है वह उसके नाशन कहलाते है। यथा—वात नाशन, पित्त नाशन अर्दित नाशन, अतिसार नाशन।

(२७) **प्रह्लादन**—परिभाषा जो द्रव्य मन या इन्द्रिय को प्रसन्न करते है वह प्रह्लादन कहलाते है। यथा—मनो प्रह्लादन, इन्द्रिय प्रह्लादन।

(२८) **बोधन—प्रबोधन**—परिभाषा जो द्रव्य मन व इन्द्रिय को स्वाभाविक दशा मे लाते है वह बोधन कहलाते हैं। यथा—जो द्रव्य मन व इन्द्रियो के कार्य को नियमित करके मस्तिष्क की क्रिया को चैतन्य बनाते हैं वह बोधन कहलाते है। यथा—मनोबोधन, इन्द्रिय प्रबोधन।

(२९) **उपग**—परिभाषा जो द्रव्य किसी द्रव्य की क्रिया को तदनुकूल ही सहायता करके बढा देते है वह उसके उपग या सहकारी कहलाते है। यथा—

१ स्नेहोपग जो स्नेह की क्रिया को बढा देते है।

२ स्वेदोपग जो स्वेद लाने की क्रिया को बढा देते है।

३ वमनोपग जो वमन की क्रिया को बढा देते है।

ऐसे ही आस्थापनोपग, विरेचनोपग, अनुवासनोपग, शिरोविरेचनोपग।

(३०) **मार्दवकृत** (Emollients) परिभाषा जो द्रव्य दोष धातु या मल को मृदु बना देते है वे उसके मार्दव कृत कहलाते है। यथा—दोष मार्दवकृत, केश मार्दवकृत, धातु मार्दवकृत।

(३१) **आपादन**—परिभाषा जो द्रव्य किसी क्रिया को उत्पन्न कर देते हैं वे उसके आपादन कहलाते है। यथा—शिर शूलमापादन। अर्दित मापादन, मुखपाकमापादन आदि।

कुछ क्रियाये एक ही अर्थ मे भिन्न-भिन्न रूप मे विभिन्न धातु प्रत्ययो के साथ लग कर बनती है और उनका अर्थ सामान्य रूप से एकसा अर्थ करता दिखाई पडता है। यथा—नाशन, हर, हन्ता, आपह घ्न, जित आदि लगकर बनते है। इनके उदाहरण निम्न हैं।

(३२) **नाशन**—जो किसी का नाश करते हो यथा—
आध्मान नाशन, भगदर नाशन, सिध्म नाशन, वृद्धि नाशन, शोक नाशन, गुल्म नाशन, पाडु नाशन, कोश विनाशन।

(३३) **हर**—जो किसी रोग व्याधि या दोष धातु का नाश करते है यथा—क्षुद्ररोग हर, अश्मरी हर, गुल्म हर, हिक्का हर, गडमाला हर, धृतिहर, वात हर।

हन्ता यथा—वात हन्ता, पित्त हन्ता, ज्वर हन्ता।

(३४) **आपह**—नाशन के अर्थ मे ही जाना जाता है। यक्ष्मापह, उदर विषापह, तिमिरापह, श्वासापह, वातज्वरापह, कामलापह, आखुविषापह, दौर्बल्यापह आदि।

(३५) **घ्न**—नाश करने के अर्थ मे। यथा—कर्ण शूलघ्न, कडूघ्न, कठघ्न, श्वयथुघ्न, अतिसारघ्न, स्वेदघ्न, शोषघ्न, अक्षि शूलघ्न।

(३६) **जित**—यह भी जीतने या पराजित करने के अर्थ मे व्यवहृत होता है। यथा—शिर कम्पजित, योनि वेदनाजित, वायु शूलजित, शोषजित, व्रण शूलजित, वायु शूलजित, विसर्पजित, शकृद् विबधजित, त्वगरोग जित, पुरीष ग्रहजित आदि।

(३७) **नुत्**—यह भी हरने या दूर करने के अर्थ मे व्यवहृत होता है। यथा—सुप्ति नुत, अपस्मार नुत, मूत्र विबध नुत, तृप्ति नुत, ज्वर दाहार्ति नुत।

अस्तु इस प्रकार के शब्दो का अर्थ तदनुकूल होने से पृथक परिभाषा बनाने की आवश्यकता नही होती।

(३८) **निवारण–निवर्हण**—जो द्रव्य किसी व्याधि का निवारण करते हैं वे उसके निवारण या निवर्हण कहलाते हैं। यथा—गलामय निवारण, व्याधि निवारण, सर्व व्याधि निवर्हण, कुष्ठ निवर्हण।

(३९) **उत्तेजक**—परिभाषा—वे द्रव्य जो शरीर के किसी अग की क्रिया या दोष की क्रिया को उत्तेजित कर देते हैं उत्तेजक कहलाते हैं। यथा—

आन्त्रोत्तेजक आंत की क्रिया को उत्तेजित करने वाले।
रक्ताभिसरणोत्तेजक रक्ताभिसरण की क्रिया को तीव्र करने वाले।
आमाशयोत्तेजक आमाशय को उत्तेजित करने वाले।
त्वगुत्तेजक : त्वचा पर उत्तेजना लाने वाले।
नेत्रोत्तेजक नेत्र मे उत्तेजना लाने वाले।
व्रण शोथोत्तेजक व्रण के शोथ को उत्तेजित करने वाले।
हृदयोत्तेजक . हृदय की क्रिया के उत्तेजक।
यकृदुत्तेजक यकृत की क्रिया के उत्तेजक आदि बहुत सी क्रियाये मिलती हैं।

(४०) **क्षपण**—परिभाषा जो द्रव्य किसी दोष या धातु की क्रिया को कम करते हैं वे उसका क्षपण कहलाते हैं। यथा—दोष क्षपण, व्याधि क्षपण।

(४१) **सतर्पण**—परिभाषा जो द्रव्य तृप्ति करने के या तर्पणकर्म करने के अर्थ मे व्यवहृत होते है वह उसके तर्पण कहलाते हैं। यथा—कर्ण तर्पण, नेत्र तर्पण, इन्द्रिय तर्पण, अक्षितर्पण।

(४२) **घाती (Antiseptics)**—परिभाषा . जो द्रव्य किसी कर्म को नष्ट करते है वह उसके नाशक या घाती कहलाते हैं। यथा—

पाकघाती पचने की क्रिया को रोकने वाले या नष्ट करने वाले।
व्याधिघाती व्याधि को नष्ट करनें वाले।
ईक्षण पाक घाती। नेत्र के पाक को रोकने वाले।

४३ व्याधि हर---जो द्रव्य किसी व्याधि को नष्ट करते हैं वह उसके नाशक या हर कहलाते हैं। यथा–अर्शो हर, अर्श नाशन, कास हर, श्वास हर, हिक्का हर, शूल हर। ऐसी अनेक सज्ञायें हैं जिनके साथ यह शब्द लगकर हर या नाशक अर्थ करते हैं।

इसी प्रकार नाशन, हर, व्याधि नाशन आदि कई विशेषण है जो इनका अर्थ करते हैं। उन्हें यथा स्थान समझना चाहिये।

विरेचन---पर्याय---रेचन, विरेचनम्, अधोभागहर, अनुलोमनीयम्।

परिभाषा–१ 'विपक्वं यदपक्व वा मलादि द्रवता नयेत्।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेय रेचन त्रिवृता यथा' (शा प्र स अ. ४)

२ दोषहरणमधोभाग विरेचनसज्ञकम्। (च क १)
अधो गुदेन दोष निर्हरण भजत इत्यधोभागम् (च. द)

३ यद्द्रव्य विपक्वमपक्व वा, मलादि दोषादिक, द्रवता नयेत् द्रवभाव करोतीत्यर्थ न केवल द्रवता नयेत् रेचयत्यपि च, तद्रेचन ज्ञेय; यथा–त्रिवृता। मलादिमिति आदिग्रहणाद् दूष्यादीना अत्र सग्रह। XXXX (आ) (शा प्र ख अ ४–पर आढ.)

विरेचन विधि---"तत्रोष्ण–तीक्ष्ण–सूक्ष्म–व्यवायि–विकाशीन्यौषधानि स्ववीर्येण हृदयमुपेत्य, (सौक्ष्म्याद व्यवायित्वाच्च वृ वा) धमनीरनुसृत्य, स्थूलाणुस्रोतोभ्य केवलं शरीरगत दोषसघातमाग्नेयत्वाद्विष्यन्दयन्ति, तैक्ष्ण्याद् विच्छिन्दन्ति, स विच्छिन्न परिप्लवन् स्नेहभाविते काये स्नेहाक्तभाजनस्यमिव क्षौद्रमसज्जन्नणुप्रवण भावादामाशयमागम्य XXXXX सलिल पृथिव्यात्मकत्वादधोभाग प्रभावाच्चौषधस्यापान प्रणुन्नोऽध प्रवर्तते।" (च० क० १)

भौतिक सगठन---विरेचन द्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुण भूयिष्ठानि, पृथिव्यापो गुर्व्यस्ता गुरुत्वादधो गच्छन्ति, तस्माद्विरेचनमधोगुण भूयिष्ठमनुमानात्।
(सु० सू० ४१)

अर्थात् विरेचन–द्रव्य–पृथ्वी व अप तत्व विशिष्ट होते हैं। पृथ्वी व अप दोनो गुरु गुण वाले है अत अधोगामी होते हैं।

"तत्पार्थिवमाप्य च"। र वै ४।४५)
अब्भूमिजमधोभागम्। (र वै ४।३० पर भाष्य)
पृथिवी गुरुत्वादेवाधो गच्छति, आपो द्रवत्वात् सरणमुप जनयन्तीति। (भा०)

उदाहरण– "त्रिवृता त्रिफला दन्तीं नीलिनीं सप्तलावचाम्।
कम्पिल्लक गवाक्षीं च क्षीरिणीमुदकीर्यकाम्॥
पीलून्यारग्वध द्राक्षा द्रवन्तीं निचुलानि च॥
पक्वाशय गते दोषे विरेकार्थं प्रयोजयेत।"
(च० सू० २–९, १०)

उभयतोभागहरम्—परिभाषा जो द्रव्य पक्व-अपक्व मलादि को ऊर्ध्व तथा अध. दोनो मार्गों से बाहर निकालते है, उन्हे उभयतो भागहर कहते हैं।

'उभयतश्च ऊर्ध्वमधश्च क्षिप्यत इत्यर्थ ।'

भौतिक संगठन— उभयगामी द्रव्य-अग्नि-वायु व पृथ्वी अपगुण युक्त होते हैं। यथा-

१ उभय गुणत्वादिति अग्निवाय्वात्मकत्वात्।
सलिलपृथिव्यात्मकत्वादूर्ध्वाधोभाग प्रभावाच्चेत्यर्थ ।
(च क १।५-च द)

२. 'ऊर्ध्वाऽधोभागत दोषं द्रव्याणि पातयन्ति च।
उभयभागहरा ह्येते शास्त्रेषु प्रथितानि हि।'
यथा-जीमूत तुम्बिनी (विश्वनाथ)

३. 'उभय गुण भूयिष्ठमुभयतो भागम्।' (सु सू ४१)
उभय गुण भूयिष्ठमिति वमनविरेचन निर्दिष्ट भूत चतुष्टय गुणभूयिष्ठमित्यर्थ । (डल्हण)

४. वातलान् रसान् पित्तलांश्च गुणानुभयतोभागम् तत् पार्थिवाप्य तैजसवायव्यम्। (र वै ४।६।९)
वातलान् वातजननात् कटुतिक्तकषायान् रसान् पित्तलान् पित्त-जननान् तीक्ष्णोष्णलघुगुणान् आश्रितमुभयतोभागम् तदुभयतो-भागं पृथिव्युदकाभ्या गुरुभ्यामग्निवायुभ्या लघुभ्या च निर्वर्तते। उभयतोभाग वमनविरेचनकरम्। (भा०)

बस्ति-परिभाषा-विट्श्लेष्म पित्तादिमलोच्चयानाम्,
विक्षेप सहार करो हि वायु । तमभिभूत्य संशम्य च स बस्ति मलादीन् वहिर्नयेदधोमुखेन।

नोट-निरुहण वस्ति ही शोधन कार्य को प्रयुक्त होती है अत निरुहण की परिभाषा नीचे दी जाती है।

परिभाषा—अर्थात् जो वात को अभिभूत करके या शमन करके मल दोषादि को गुदमार्ग से बाहर निकालती है, उसे वस्ति कहते है।

पाटलां चाग्निमन्थं च बिल्वं श्योनाकमेव च।
काश्मर्यं शालपर्णी च पृश्निपर्णी निदिग्धिकाम्॥
बलां श्वदंष्ट्रा बृहतीमेरण्डं स पुनर्नवम्।
यवान् कुलत्थान् कोलानि गुडूचीं मदनानि च।
पलाशं कत्तृण चैव स्नेहाश्च लवणानि च।
उदावर्ते विबन्धेषु युञ्ज्यादास्थापनेषु च॥
अत एवौषधगणात् सकल्प्यमनुवासनम्।
(च० सू० २।११, १३½)

शिरोविरेचन-पर्याय—शिरो विरेचन, मूर्धविरेचन, शीर्षविरेचन, शिरोविशोधन।

परिभाषा—दोषादि के द्वारा दुष्ट हुए शिर को जो द्रव्य शोधन करे उन्हे शिरोविशोधन कहते है। शिरोविशोधन विधि-

द्रव्य उदाहरण—अपामार्गस्य बीजानि पिप्पलीर्मरिचानि च ।
विडङ्गान्यथ शिग्रूणि सर्षपास्तुम्बुरूणि च ॥
अजाजीं चाजगन्धां च पीलून्येलां हरेणुकाम् ।
पृथ्वीका सुरसा श्वेता कुठेरकफणिज्झकौ ॥
शिरीषबीज लशुन हरिद्रे लवणद्वयम् ।
ज्योतिष्मतीं नागर च दद्याच्छीर्षविरेचने ॥ (च सू २।३।५)

नोट—सुश्रुत तथा वाग्भट के आधार पर रक्तमोक्षण को भी पचकर्म या पचशोधन विधि मे लिया है, अत रक्तमोक्षण का निर्देश करते है ।

पर्याय—रक्तमोक्षण, शोणितमोक्षण ।

परिभाषा—वातादि दोषो मे दुष्ट रक्त को बाहर निकालकर रक्त के शोधन करने को रक्तमोक्षण कहते है ।

उदाहरण—अलाबू, शृग, जलौका, प्रच्छन्, सिरावेध आदि ।

सशोधन सबधी व्यापक सज्ञायें—आर्तवशोधन, स्तन्यशोधन, स्तन्यविशोधन, स्तन्यशोधक, स्रोतोविशोधन, स्रोतोविशोधिनी, मार्गविशोधक, स्रोतोशोधी, हृद्विशोधन, कोष्ठविशोधन, उद्गारशोधी, गर्भाशयशोधन, योनिविशोधन, हनुविशोधन, आस्यविशोधन, व्रणशोधन, कण्ठशोधन, वस्तिशोधन, मूत्रशोधन उर विशोधन, दोषविशोधन, असृग्शोधन, शुक्रसशोधन, स्रोतोमार्गविशोधन, वक्त्रकण्ठशोधन, वक्त्रक्लेदविशोधन, स्वरविशोधन, दन्तविशोधन, दन्तशोधन, पक्वाशयविशोधन, वक्त्रमलशोधन ।

शोधन—यह बहुत बडी व व्यापक सज्ञा है अत इसका क्षेत्र बहुत बडा हो जाता है । ऊपर की सज्ञाये इसकी पोषिका है । अत दोष धातु, उपधातु उनके मार्ग व उत्पादक द्रव्य सब मे समान रूप से व्यापक है । क्रमश उनकी परिभाषायें दी जाती हैं ।

आर्तव शोधन—

परिभाषा **'दोषदूषित आर्तव शोधयतीति आर्तव शोधनम् ।**

अर्थात्—जो द्रव्य दोष दूषित आर्तव की शुद्धि करते है उन्हे आर्तव शोधन कहते है । यथा—अशोक, उलट-कम्बल इत्यादि ।

स्तन्य शोधन पर्याय—स्तन्य शोधन, स्तन्य विशोधन, स्तन्य शोधक ।

परिभाषा **'दोषदूषितं स्तन्य शोधयतीति स्तन्य शोधनम् ।**

अर्थात्—दोष दूषित स्त्रियो के स्तन्य को शुद्ध करने वाले द्रव्यो को स्तन्य शोधन कहते हैं । यथा—**"पाठा—महौषध—सुरदारु—मुस्तमूर्वा—गुडुची—वत्सकफल—किराततिक्तक—रोहिणी—सारिवा इति दशेमानि स्तन्य शोधनानि ।"**

(च० सू० अ० ४)

"तिक्तरस वचादि—हरिद्रादि मुस्तादि ।" (सु० सू० ३८)

स्रोतो विशोधन पर्याय—स्रोतो विशोधन, स्रोतो विशोधनी, मार्ग विशोधक, स्रोतो शोधी ।

परिभाषा **दोषादि दुष्टं स्रोतासि शोधयति इति स्रोतो विशोधन।**

अर्थात्–जो द्रव्य दोपादि कारण दुष्ट हुए स्रोतो का शोधन करे उसे 'स्रोतो विशोधन' कहते है। यथा–**दीपन पाचन मद्य–रूक्ष सूक्ष्म स्रोतोविशोधन।**

नोट—मद्य के अतिरिक्त अन्य वमन विरेचन द्रव्य भी स्रोतो शोधी होते है।

हृद्विशोधन—परिभाषा हृदय अर्थात् आमाशय की जो द्रव्य शुद्धि करे उन्हे हृद्विशोधन कहते हैं। यथा–ताम्ररज, मदन फल (च० चि० २३।२३९)

कोष्ठविशोधन—परिभाषा जो द्रव्य कोष्ठगत दुष्टि को निर्हरणार्थ कोष्ठ का शोधन करते है, उन्हे कोष्ठ विशोधक कहते है। विभिन्न कोष्ठो के शोधक द्रव्य भी भिन्न–भिन्न होते है। यथा–पक्वाशय शोधक–त्रिवृत, दन्ती, जयपाल

उद्गार शोधी—परिभाषा जो द्रव्य दुष्ट उद्गार का शोधन करते है, उन्हे उद्गार शोधी कहते हैं। यथा–सौवर्चल लवण।

गर्भाशय शोधन—परिभाषा जो द्रव्य दोषादि से दुष्ट गर्भाशय का शोधन करते है, उन्हे गर्भाशय शोधन कहते है। यथा–अशोक, तिलतैल, दशमूल इत्यादि।

योनि विशोधन—परिभाषा **"श्लेष्मादि दोषदुष्टा योनिं विशोधनमिति योनिविशोधनम्।"** (स्व)

अर्थात्–श्लेष्मादि से दुष्ट योनि का जो द्रव्य शोधन करते है, उन्हे योनि-विशोधन कहते है। यथा–सशोधनवर्ति (च० चि० ३०।७०)

हनुविशोधन—परिभाषा **'दोषादि दुष्टं हनु शोधयतीति हनुविशोधनम्।'** अर्थात् जो द्रव्य दोषादि से दुष्ट हनु का शोधन करते हैं, उन्हे हनुविशोधन कहते है।

यथा– **कर्पूर जाती कक्कोल लवंग कटुकाह्वयं।**
सचूर्णपूगं सहितं पत्र ताम्बूलज शुभम्॥ (सु चि २४।२१)

आस्यविशोधन या मुखविशोधन—परिभाषा **'वातादि दोष दुष्टमास्य शोधयति इति आस्यविशोधनम्।'**

अर्थात्–जो द्रव्य दोपादि से दूषित मुख की शुद्धि करते है, उन्हे मुखशोधन कहते है। यथा—

जातीकटुकपूगानां लवंगस्य फलानि च।
कक्कोलस्य फलं पत्रं ताम्बूलस्य शुभं तथा॥
तथा कर्पूर निर्यासः सूक्ष्मैलाया फलानि च॥ (च० सू० ५।७७)

व्रण शोधन—परिभाषा **'वातादि दोषपूयजुष्ट व्रण यानि द्रव्याणि शोधयन्तीति व्रणशोधन।**

अर्थात्–जो द्रव्य वातादि दोपो से दूषित पूय युक्त दुष्ट व्रणो का शोधन करते है, उन्हे व्रण शोधन कहते है। यथा–मधु, कुटज।

कण्ठशोधन—परिभाषा **'दोष दुष्ट कण्ठं शोधयतीति कण्ठशोधन।**

अर्थात्–जो द्रव्य दोपादि से दुष्ट कण्ठ का शोधन करते हैं, उन्हे कण्ठ शोधन कहते हैं। यथा–कासमर्द, तिक्तरस (सु० सू० ४६।२३६)

वस्ति शोधन—परिभाषा **दोषादि दुष्टा बस्ति शोधयतीति बस्तिशोधन।**

अर्थात्–जो द्रव्य दोषादि से दुष्ट वस्ति का शोधन करते है, उन्हे वस्ति शोधन कहते हैं। यथा–गोक्षरू, दर्भ, कुश, काश आदि

मूत्रशोधन––परिभाषा जो मूत्रगत अशुद्धियो–दुष्टियो का हरण करते हैं, उन्हे मूत्रशोधन कहते है। यथा–तृणपचमूल, पाषाण भेद।

(सु० सू० ३८।७५)

शुक्र शोधन––परिभाषा **'दोष दूषित शुक्र शोधयतीति शुक्रशोधनम्।'**

अर्थात्–जो द्रव्य वातादि दोषो से दुष्ट शुक्र का शोधन करते हैं, उन्हे शुक्र शोधन कहते हैं। यथा–

'कुष्ठैलवालुक–कट्फल – समुद्रफेन –कदम्बनिर्यासेक्षुकाण्डेक्षिवक्षुरक–वसुकोशीराणीति दशेमानि शुक्रशोधनानि भवन्ति।' (च सू ४।१२ (२०))

रेतोमार्ग विशोधन––परिभाषा जो द्रव्य वातादि से अवरूद्ध या दुष्ट रेतस के मार्ग की शुद्धि करते है, उन्हे रेतोमार्गविशोधन कहते है। यथा–विडङ्ग, मुस्ता, मजिष्ठा, अनारादि मे सिद्धघृत।

उरः शोधन––परिभाषा जो द्रव्य उर स्थित कफादि दोषो का निर्हरण करके उसकी शुद्धि करते है। उर विशोधन कहते हैं। यथा–नरसार, टंकण, तुगाक्षीरी लवग, जातीपत्र।

दोषविशोधन––परिभाषा जो द्रव्य मिथ्याहारविहार आदि के कारण दुष्ट दोषो की शुद्धि करके उन्हे अपनी प्राकृत दशा मे लाते है, उन्हे दोषविशोधन कहते है यथा––

पटोलमूलत्रिफला विशाला पृथक् त्रिभागापचिता विशाणाः।
स्युस्त्रायमाणा कटुरोहिणी च भागार्धके नागरपाद युक्ते।
एतत्फल जर्जरित विपक्वे जले पिवेद्दोषविशोधनाय॥

असृग्शोधन––परिभाषा जो द्रव्य वातादि दोषो से दुष्ट असृक् को शुद्ध करते है, उन्हे असृग्शोधन कहते है। यथा–कषाय रस।

दन्त शोधन––परिभाषा **वातादि दोष दुष्टान् दन्तान् शोधयतीति दन्त विशोधन।**

अर्थात्–जो द्रव्य वातादि दोषो से दुष्ट दातो का शोधन करते हैं, उन्हे दन्त शोधन कहते है। यथा–

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासना।
शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवविधा द्रुमा॥ च सू ५।७३

स्वर विशोधन––परिभाषा जो द्रव्य वातादि दोषो से दुष्ट स्वर का सशोधन करते हैं, उन्हे स्वर विशोधन कहते है। यथा–कुलञ्जन, मधुयष्टि।

वक्त्रकण्डू–मल–क्लेद–दौर्गन्ध्य विशोधन––परिभाषा जो द्रव्य वक्त्रस्थित कण्डू मलादि का निर्हरण करके वक्त्र की शुद्धि करते है, उन्हे वक्त्रकण्डू–क्लेद–मल–दौर्गन्ध्य विशोधन कहते हैं। यथा–ताम्बूल पत्र (सु सू ४६।२७९)

पक्वाशय विशोधन––परिभाषा जो द्रव्य पक्वाशयस्थित दोषमलादिक का निर्हरण करके बाहर निकाल देते हैं, उन्हे पक्वाशय विशोधन कहते हैं। यथा–फलवस्ति, निरूहण वस्ति।

अवसादक—

पर्याय—अवसादक, अवसादन,

व्युत्पत्ति—सत्लृ—सातने धातु से अव उपसर्ग लगाने पर अवसादन शब्द बनता है। जिसका अभिप्राय कम करना होता है।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर के एकाग या सर्वांग की क्रिया मे कमी उत्पन्न कर देते है, उन्हे अवसादक कहते हैं।

इस परिभापा के आवार पर अवसादन की क्रिया को दो भागो मे समझा जाता है—१—प्रत्यक्ष। २—अप्रत्यक्ष।

प्रत्यक्ष क्रियाए—जहाँ पर वात, पित्त और कफ की क्रियाओ की हानि पायी जाय। यथा—वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न।

अप्रत्यक्ष क्रियाए—जहाँ पर सीधे वात, पित्त, कफ की क्रियाओ की हानि न पायी जाय किन्तु तज्जन्य विकारो की हानि करके अप्रत्यक्ष रूप से वात-पित्त-कफ की क्रियाओ की हानि की जाय।

यथा—ज्वरघ्न। यहाँ पर पित्त की क्रिया की हानि अप्रत्यक्ष रूप से होती है। प्रशमन के अन्दर भी अवसादन को लिया है। जहाँ अवसादन का विवरण है कि सारक रेचक आदि से धातु साम्य कर रूप क्रिया करके उग्रता को कम किया जाय। यह भी अप्रत्यक्ष क्रिया ही है।

उदाहरण अवसादक व्यापक सज्ञाए—अवसादन पूर्वक चिकित्सा करने मे विभिन्न क्रियाओ के लिए विभिन्न प्रकार की औषधिया प्राप्त होती है। यथा—

वातावसादक——गुग्गुलु, रास्ना
पित्तावसादक——उशीर
श्लेष्मावसादक——तीक्ष्ण तण्डुला—पिप्पली
मासावसादक——तुत्थ
अपस्मारघ्न——जटामासी
उन्मादघ्न ——सर्पगन्धा
कोष्ठावसादक——धुस्तुर

वातावसादक—इस प्रकार वात की चलनात्मक क्रिया को कम करने वाले, शान्त करने वाले, निग्रह करने वाले, नाश करने वाले द्रव्यो को वातावसादक कहते हैं। इसी प्रकार पित्त या श्लेष्मा की क्रिया को कम करनेवाले, रोकनेवाले, नाशकरनेवाले द्रव्यो को पित्तावसादक और श्लेष्मावसादक कहते है।

बढते मास को रोकनेवाले द्रव्यो को मासावसादक कहते है। अपस्मार की उग्रता को रोकनेवाले द्रव्यो को अपस्मार हर तथा उन्माद की उग्रता को कम करनेवाले द्रव्यो को उन्मादघ्न, कोष्ठ की क्रिया को कम करनेवाले या निग्रह करनेवाले द्रव्य को कोष्ठावसादक कहते हैं। यथा—धुस्तुर।

क्रियावसादन का कार्य पूर्व चिकित्सको को ज्ञात था जिसमे वातावसादक क्रियाए अधिक ज्ञात थी। जिसकी व्याख्या निम्न रूप मे की जा सकती है—

चलात्मक कार्यं निरस्य वायो कर्माणि सम्पादयतीह योऽत्र ।
सादात्मक तत्प्रतिभातिरूपे, अग क्रियाया शिथिलीकरत्वम् । विश्व
पुनश्च—द्रव्याणि शान्ति प्रणयति काये, कृत्वा च ह्रास मनसः क्रियाणाम् ।
सादेनवातादव सादनेन कर्मावसादात्मक तद्वदन्ति ।। विश्व ।

एतिहासिक विवरण—ईस्वीय सन् से कई सौ वर्ष पूर्व अवसादन की परिभाषा भारतीय चिकित्सा साहित्य मे प्राप्त होती है। चरक व सुश्रुत मे ये शब्द और इनकी क्रियाओ का विवरण प्राप्त होता है। यथा—वातावसादन आदि। जिसका पूर्ण विवरण ऊपर दिया है कि वे वातावसादन को किस रूप मे लेते थे।

आधुनिक जगत मे १९ वी शताब्दी मे इसका स्पष्ट रूप मे ज्ञान प्राप्त हुआ। जिसका क्रमिक विकास विवरण नीचे उद्धृत कर रहे है—

१८२८ में प्रथम बार बालार्ड (Balard) ने समुद्रजल (maditaiian sea water) मे ब्रोमाइड (Bromide) को पृथक् किया। १८४२ मे ग्लोअर (Glower) ने भी Sedatille action कुत्तो और शशको पर दिखाया। १८६४ मे प्रथम बार बेहरेण्ड ने Hypnotic action का वर्णन किया।

अवसादन—सर चार्ल्स लोकाक (Sir Charls Locock) को प्रथम बार औषध की तरह १८५७ मे अपस्मार मे Potasium Bromide का प्रयोग करने का श्रेय मिला।

यह Bromide Epilepsy के १४ केसो मे लाभप्रद सिद्ध हुआ किन्तु Locock ने इसे काम-ह्रासक समझकर प्रयोग किया, क्योंकि इसका कारण हस्त मैथुन समझा जाता था। १९०६ मे यह प्रथमबार Sallaman's Text-Book of Pharmacology मे प्रसिद्ध हुआ।

Sedation emplies less profound activity than Hypnosis and is the result of an elevation of the threshold, of irritability of the central nervous system of a lesser degree than that required to produce sleep

The difference between sedative action and Hypnotic or soponific action is merely quantitative since relative drugs also have the capacity to produce less of consceousness and death as a consi-quence of central depression of sufficiently larger doses are admissable

अन्य अवसादन सम्बन्धी संज्ञाएं

कोष्ठावसादक—परिभाषा—जो द्रव्य कोष्ठ की क्रिया को शान्त करनेवाले, कम करनेवाले या निग्रह करनेवाले हो, उन्हे कोष्ठावसादक कहते हैं।

उदाहरण—धुस्तूर, अहिफेन।

वातावसादक—

परिभाषा—जो द्रव्य वातजनित चेष्टाओ को कम या शान्त करते हैं, उन्हे वातावसादक कहते हैं। यथा—रास्ना, गुग्गुलु।

पित्तावसादक—

परिभाषा—जो द्रव्य पित्त की क्रियाओ को कम या शान्त करते हैं उन्हे पित्तावसादन कहते है।

यथा—उशीर, चन्दन आदि।

श्लेष्मावसादन—

परिभाषा—जो द्रव्य श्लेष्मा की बढी हुई क्रियाओ को कम या शान्त करते है, उन्हे श्लेष्मावसादन कहते है। यथा—त्रिकटु।

मांसावसादन—

परिभाषा—जो द्रव्य बढे हुए मास को घटाकर कम कर देते हैं, उन्हे मासावसादन कहते है। यथा—तुत्थ।

शमन—

पर्याय—सशमन, प्रशमन, शमन।

व्युत्पत्ति—'शमु उपशमे' भावे ल्युट्—शमनम्—शान्त हो जाना।

परिभाषा—१—न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा॥
पाचनं दीपनं क्षुत्तुड्-व्यायामातप-मारुता।
बृहण शमन त्वेव वायो पित्तानिलस्य च॥ (अ हृ सू १४)

२— न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषास्तथोद्धतान्।
समीकरोति विषमाञ्शमन तद्यथाऽमृता॥" (शा प्र ख ४)

३—केचित्त—न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समीकरोति च क्रुद्धास्तत् संशमनमुच्यते॥

सशमन—सम्यक् शमयतीति सशमन, सम्यग्दुष्ट दोषस्यानिर्हरणपूर्वक शमनमदुष्टस्यानुदीरण च। व्याधिशमने तु प्रस्तुत व्याधि शमनम्प्रस्तुत व्याधेरनुदीरणमिति (आ.)

यत्किंचित् पीत-लीढाशितमनिर्हृत्य दोप सशमयति तत् संशमनम्। एतेन किमुक्त ? यद्द्रव्य न वामयति न विरेचयति किंतु व्याधिना सह एकीभूय तत्स्थमेव व्याधिमुपशमयति तत्सशमनमिति भावः। दोष शब्दोऽत्र दोषेषु, दोषकार्येषु व्याधिष्वपि वर्तते, कार्येकारणोपचारात्। असम समं करोतीति समीकरोति। यथा—गुडूची।

पाचभौतिक संगठन—(शमन द्रव्यों का पाचभौतिक सगठन)—
आकाशगुण भूयिष्ठं सशमन्। (सु. सू ४१)
वायु-सोम-महीजात तथा सशमन विदु। (र वैं पृष्ठ १८७)

अर्थात्–वे द्रव्य जो दोषो का शोधन नही करते व सम दोषो को उदीर्ण नही करते बढाते नही और कुछ दोषो का सम करते है, उन्हे सशमन कहते है।

Sedatives-Agents that exert soothing effects by lowering functional activity or drug which quite the nervous System without actually producing sleep. (As Aconite gugull)

Depresents-Sedative or drepresents are medicines which depress actions of the

(1) nervous system .

शमन सम्बन्धी व्यापक संज्ञाएं––

वातशमन, शाखावातशमन, आनाहप्रशमन, वात सशमन, वातोपशमन, वातशमनी, वातशामक, वातव्याधि प्रशमन, पित्तशमन, पित्त सशमन, पित्त-प्रशमन, पित्तातियोग प्रशमन, सर्वपित्तातियोगप्रशमन, पित्तोपशमन, पित्तव्याधि-प्रशमन, श्लेष्मसशमन, श्लेष्मशमन, आमोपशामक, ग्रहणीदोपप्रशमन, ग्रहणी विकारशमनी, मदप्रशमन, मूर्च्छाविशमन, शर्कराशमन, दोपप्रशमन, असृग्प्रशमन, शोणितप्रशमन, असृक्शमनी, तृष्णाशमनी, तृष्णातियोगप्रशमन, तृष्णाशमन, पिप सात्रशमन, उदर्दप्रशमन, विषप्रशमन, अत्यग्निशमन, कृमिप्रशमन, मद-प्रशमन, मूर्च्छाप्रशमन, रक्तपित्तप्रशमन, विपोपशमन, स्थौल्यप्रशमन, ज्वर-प्रशमन, ज्वरोपशमन, तन्द्राप्रशमन, तन्द्रोपशमन, दाहप्रशमन, शूलप्रशमन, अग्निशमन, आलस्यशमन, वलमप्रशमन, प्रसेकप्रशमन, पामोपशमन, कण्डू प्रशमन।

दोषप्रशमन–वे द्रव्य जो दोपो को शान्त करते है दोष प्रशमन कहलाते है।

वात शमन––

पर्याय–वातशमन, शाखावातप्रशमन, वातसशमन, वातोपशमन, वातशमनी, वातशामक, वातव्याधि प्रशमन

परिभाषा–जो द्रव्य बढे हुए या दुष्टवात को अपनी प्राकृत दशा मे लाते है, उन्हे वातप्रशमन कहते है।

उदाहरण–देवदारु, हरिद्रा, कुष्ठ, वरुण, मेषशृगी, वला, अतिवला, आर्तगल, कपिकच्छु, शल्लकी, कुवेराक्ष, वीरतरु, सैरेयक, अग्निमथ, गुडूची, एरण्ड, पाषाणभेद, अर्क, अलर्क, वृश्चिकाली, रक्तचन्दन, वदर, यव, कोल, कुलत्थ, विदारी गन्धादिगण, दशमूल। (सु सू ३९)

पित्तसंशमन––

पर्याय–पित्तशमन, पित्तप्रशमन पित्तसशमन, पित्ततियोग प्रशमन, सर्व पित्ता तियोग प्रशमन, पित्तोपशमन, पित्तव्याधिप्रशमन।

परिभाषा–जो द्रव्य कुपित या वढे हुए पित्त को समान दशा मे लाते हैं उन्हे पित्तसशमन कहते हैं।

उदाहरण–चन्दन, रक्तचन्दन, ह्रीवेर, उशीर, मजिष्ठा, क्षीरकाकोली, विदारी, शतावरी, गुन्द्रा, सैवाल, रक्तोत्पल कुमुद, नीलोत्पल, कदली, गोवर, दूर्वा, मूर्वा, काकोल्यादि, सारिवादि, अजनादि, उत्पलादि, न्यग्रोधादि, तृण-पचमूल, (सु सू ३९)

श्लेष्मप्रशमन, श्लेष्मसंशमन—

परिभाषा–जो द्रव्य कुपित कफ को अपनी प्राकृत दशा मे स्थापित रखते हैं, उन्हे श्लेष्मसशमन कहते है।

उदाहरण–कालेयक, अगुरु, तिलपर्णी, कुष्ठ, हरिद्रा, कर्पूर, शतपुष्पा, त्रिवृत, रास्ना, लताकरज, चिर विल्व, इगुदी, जाती, हिंस्रा, लागली, हस्तिकर्ण, पलाश, मुजातक, लामज्जक, वल्लीपचमूल, कटकपचमूल, पिपल्यादि,-बृहत्यादि,-मुष्ककादि, वचादि, सुरसादि, आरग्वधादि गण। (सु सू ३९-९)

आमोपशामक—

परिभाषा–जो द्रव्य उत्पन्न आम को शान्त करते है, उन्हे आमोपशामक कहते हैं।

उदाहरण–हरीतकी, हिङ्गु, सौवर्चल, वचा आदि।

ग्रहणीदोष प्रशमन–ग्रहणी विकार शमनी

परिभाषा–जो द्रव्य दुष्ट ग्रहणी दोष को शान्त करके प्राकृत दशा मे लाती है, उसे ग्रहणीदोषप्रशमन कहते है। **उदाहरण**–चागेरी, कुटज।

मदप्रशमन—

परिभाषा–जो द्रव्य मदरोग को शान्त करते है, उन्हे मदप्रशमन कहा जाता है। **उदाहरण**–पुराणघृत, सर्पगन्धा।

मूर्च्छाविशमन–मूर्च्छाप्रशमन—

परिभाषा–जो द्रव्य मूर्च्छा को शान्त करते है, उन्हे मूर्च्छाप्रशमन कहते है।

यथा–क्षीरघृत, पुराणघृत, मधुररस।

शर्कराशमन—

परिभाषा–जो द्रव्य शर्करा रोग की शान्ति करते है उन्हे शर्कराप्रशमन कहते हैं। **उदाहरण**–करीर, अकोल, निर्मलीफल,

"पिचुकाङ्कोलकतकशाकेन्दीवरजं फलं ॥
चूर्णितं सगुड तोय शर्कराशमनं पिबेत् ॥ (सु चि. ७।१७)

शीतप्रशमन—

परिभाषा–'शीत प्रशमयतीति शीतप्रशमनम्' (योग)

अर्थात्–जो द्रव्य शीत को कम करे या शान्त करे उसे **शीत प्रशमन** कहते है।

उदाहरण– 'तगरागुरु धान्यक शृगवेरभूतीकवचाकण्टकार्यग्निमन्थश्योनाक-पिप्पल्य इति दशेमानि शीतप्रशमनानि ।" च. सू ४।१७

'रास्नागुरुणी शीतापनयन प्रलेपनानाम्।" (च. सू २५-४०)

दाहप्रशमन—

परिभाषा—'दाह प्रशमयतीति दाहप्रशमनम्' (योग)

अर्थात्—जो द्रव्य दाह की शान्ति करते है, उन्हे दाहप्रशमन कहते हैं।

उदाहरण—"लाजा—चन्दन— काश्मर्यफल—मधूक—शर्करा — नीलोत्पलशीर—सारिवा—गुडूची—ह्रीवेराणाति दशेमानि दाहप्रशमनानि भवन्ति" (च सू ४)

अग्निशमनं—अत्यग्निशमनम्—

परिभाषा—जो बढी हुई अग्नि को शान्त करते है, उन्हे अग्निशमन कहते है।

उदाहरण—स्वाद्वम्ल शीतमुष्ण च द्विधा पालेवत गुरु च्यमत्यग्निशमनम्" (अ. सू ६—१३५)

कृमिशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य कृमि रोग को शान्त करते हैं, उन्हे कृमिप्रशमन कहते है। उदाहरण—तिक्तरस, विडङ्ग, अजमोदा।

रक्तपित्त प्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य रक्तपित्त रोग की शान्ति करते हैं, उन्हे रक्तपित्त प्रशमन कहते है। उदाहरण—कषायरस, वासा, उशीर, पद्मकाष्ठ, चन्दन आदि।

विषप्रशमन—विषोपशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीरस्थित विष की क्रिया को शान्त करते है, उन्हे विषशमन कहते है। उदाहरण—अगद, महागद, सुवर्ण।

स्थौल्य प्रशमन—

परिभाषा—जो शरीरगत स्थूलता को शान्त करते है या कम करते हैं, उन्हे स्थौल्य प्रशमन कहते हैं। यथा—शिलाजतु, गुग्गुलु, मधु।

ज्वरप्रशमन—ज्वरोपशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य ज्वर रोग को शान्त करते है, उन्हे ज्वर प्रशमन कहते है। यथा—वत्सनाभ, स्फटिक, गोदन्ती, पचतिक्त कषाय, गुडूच्यादिक्वाथ।

तन्द्राप्रशमन—तन्द्रोपशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य तन्द्रा की शान्ति करते है, उन्हे तन्द्रा प्रशमन कहते हैं। यथा—शालयन्न, क्षीर, चाय, काफी।

निद्राप्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य निद्राविक्य की शान्ति करते है, उन्हे निद्राप्रशमन कहते हैं। यथा—वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, चिन्ता, क्रोधादि। (च सू २१)

आलस्यप्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य आलस्य को शान्त करते है, उन्हे आलस्यप्रशमन कहते हैं। यथा—अभ्यग व्यायाम, वमन आदि।

प्रसेक शमन—

परिभाषा—जो द्रव्य मुखगत प्रसेर ष्ठीवन को शान्त करते है, उन्हे प्रसेक शमन कहते हैं। यथा—कर्पूर, जातीफल, शीतलचीनी, लवग, कटुक द्रव्य, चूना—सुपारी—पान आदि।

पाप्मोपशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य पाप की शान्ति करते है, उन्हे पाप्मोपशमन कहते हैं। यथा—घृत।

अलक्ष्मी प्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य अलक्ष्मी का शान्त करते है, उन्हे अलक्ष्मीशमन कहते है। यथा—घृत।

कण्डूप्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य कण्डू आदि रोगो को शान्त करत है, उन्हे कण्डूप्रशमन कहते हैं। यथा—निरतग्न, खदिर।

वलप्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य बल को कम करते है बलप्रशमन कहलाते है। यथा—धान्याम्ल, पानक, श्रमहरगण।

हिक्काप्रशान्तिकर—

परिभाषा—जो द्रव्य हिक्का रोग को प्रशान्त करते है, उन्हे हिक्का प्रशान्तिकर कहते है। यथा—मयूरचन्द्रिकाभस्म, विभीतकमज्जा, कुलथी क्वाथ।

कास प्रशान्तिकर—

परिभाषा—जो द्रव्य वढे हुए कास रोग को शान्त करते है, उन्हे कास-प्रशान्तिकर कहते है। यथा—शृगभस्म, मधुयष्टी, वासा, त्रिकटु, टकण आदि।

पार्श्वार्तिशान्तिकर—

परिभाषा—जो द्रव्य पार्श्व-पसलियो मे होनेवाली पीडा को शान्त करते हैं, उन्हे पार्श्वार्तिशान्तिकर कहते हैं। यथा—दशमूलक्वाथ।

हृद्ग्रहशान्तये—

परिभाषा—हृद्ग्रह या हृद्रोग को शान्त करनेवाले द्रव्यो को 'हृद्ग्रहशान्तिकर' कहते है। यथा—अर्जुन, स्वर्णभस्म, रजतभस्म, अकीकभस्म।

कोथप्रशमन—

परिभाषा—जो द्रव्य सूक्ष्म जन्तुओ की वृद्धि का नाश करते है और उन जन्तुओ की वृद्धि से पैदा होनेवाली सडनकोथ की क्रिया को रोक देते हैं, उन्हे "कोथप्रशमन कहते है। यथा—लवग का तैल, सुहागा पुदीना का सत्त्व, पारा।

स्यन्दनम्—

व्युत्पत्ति—स्यदु विस्रवणे धातु से यह शब्द बनता है जिसका अर्थ शरीर के किसी भाग कला—त्वचा-ग्रंथि इत्यादि से द्रव का निकलना होता है।

परिभाषा–गात्रस्य कोष्ठ ग्रन्थीनामथवा वा कलादिभि ।
रसस्य स्यन्दन स्राव कथ्यते स्यन्दनं हि तत् ॥
अभिष्यन्दे यथा वर्त्मकलादश्रुसमागम. ।
अश्रुग्रन्थि गतात्स्रोतात् वर्त्मस्थाने समागत ।
कटुकतीक्ष्ण द्रव्याणि स्यन्दनानि यथाकणा ॥ (विश्व)

अर्थात् वे द्रव्य जो शरीर की कलाओ या ग्रन्थियो मे किसी प्रकार के रस का स्राव कराते है उसे स्यन्दन द्रव्य कहते है। यथा–कटु, तीक्ष्ण द्रव्य

व्यापक सज्ञाए यथा–मुखस्यन्दन, अक्षिस्यन्दन ।

मुखस्यन्दन—

परिभाषा–जो द्रव्य मुख मे जाकर स्राव पैदा करे उसे मुखस्यन्दन कहते हैं। यथा–लवणरस, कटुतीक्ष्ण द्रव्य ।

अक्षिस्यन्दन—

परिभाषा–जो द्रव्य नेत्र मे जाकर स्राव पैदा करे उसे अक्षिस्यन्दन कहते है। यथा–कटुतीक्ष्ण द्रव्य, रसोत आदि स्थानिक प्रयोग करने पर ।

संग्राही—

पर्याय–सग्राही, सग्राहिकम्, ग्राहि ।

व्युत्पत्ति–जो द्रव्य किसी द्रव वस्तु को गाढा करे उसे सग्राहक कहते हैं।

परिभाषा–दीपन पाचन यत् स्यादुष्णत्वादद्रवशोषकृत ।
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरक गजपिप्पली ॥

यद्द्रव्य दीपन अग्निकर, पाचन आमादीनां द्रवशोषकमिति द्रवस्वरूपाणा दोष धातु मलादीनां शोषकमित्यर्थ उष्णत्वात् उष्णवीर्यत्वात् द्रवशोषकमिति योज्यं, दीपनादि कार्यकरत्वेनो पदक्षितमितिभाव तद् ग्राहि विज्ञेयम् । (आ)

२–पुरीष संग्रहण पुरीषस्य स्तम्भन तस्मै हितम् (ग)

३–पुरीषस्यातिसरत सग्रहणम् संग्रह तत्र हित पुरीषसग्रहणीय । (यो)

यथा–प्रियङ्ग्वनन्ताम्रास्थि कट्वङ्ग लोध्रमोचरस समङ्गाधातकी – पुष्पपद्मापद्मकेशराणीति दशेमानि पुरीषसग्रहणीयानि भवन्ति । (च सू ४)

भौतिक संगठन—

१–सग्राहिकमनिल गुणभूयिष्ठ अनिलस्य शोषणात्मकत्वात् ।(सु सू ४१)

२–साग्राहिक विजानीयात् पृथिव्यनिलसम्भवम् (र वै १।८७)

३–लवण तीक्ष्णोष्णेभ्योऽन्यत् साग्राहिक तत पार्थिव वायव्यम् ।
(र वै ४।९)

४–द्वयोर्निग्रहणम् साग्राहिकम, (र वै. ४।२३)

द्वयोरित्युक्त विशेषितम्, तथा पित्त श्लेष्मणोरिति गम्यते पार्थिव वायव्यत्वादस्य वीर्यस्य, आश्रय च लवण तीक्ष्णोष्णेभ्योऽन्यत्वात् पित्तनिग्रहे समर्थ पार्थिववायव्यत्वात् रौक्ष्य वैशद्याभ्यां श्लेमनिग्रहे समर्थम् (भा.)

व्यापक संज्ञायें—

पित्तसंग्राहक, श्लेष्मसंग्राहक, रक्तसंग्राहिक, वर्चोग्रह, पुरीषावग्राहक, मूत्रावग्राहक।

१—पित्तसंग्राहक—

परिभाषा—जो द्रव्य द्रव पित्त के द्रव भाग का शोषण करे, उन्हे पित्तसंग्राहक, कहते हैं।

यथा—कुटजत्वक, काश्मर्यफल, उत्पल, पद्मकिंजल्क, कुमुद, अनन्ता, कषाय रस।

श्लेष्मसंग्राहक—

परिभाषा—जो द्रव्य कफ में द्रव भाग का शोषण करे, उसे श्लेष्मसंग्राहिक कहते हैं। यथा कषायरस, अमृता, कुटजत्वक्।

मूत्रावग्राहक—

परिभाषा—जो मूत्र को गाढा करते है उन्हे मूत्रावग्राहक कहते है।

यथा—तिक्तरस, कषायरस, धातकी, जम्बू—आम्र—प्लक्ष—वट—आम्रातक—उदुम्बर—अश्वत्थ—भल्लातक—अश्मन्तक—सोमवल्क।

वर्चोग्रह—पुरीषावग्राहक—

परिभाषा—जो द्रव्य दीपन पाचन होकर पुरीष के द्रवभाग को शोषण करके उसे गाढा करते है, उन्हे पुरीषावग्राहक कहते हैं।

यथा—प्रियङ्गु, अनन्ता—आम्रास्थि, कट्वङ्ग, लोध्रमोचरस समगा धातकी-पुष्प पद्मा पद्मकेसर।

रक्तसंग्राहिक—

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त के द्रव भाग का शोषण करके उसे गाढा बनाते हैं, उन्हे रक्तसंग्राहिक कहते हैं।

यथा—रोध्रमधुक प्रियगु पतग, गैरिक, सर्जरस रसाजन, शाल्मलीपुष्प, शख—शुक्ति माषयव गोधूम चूर्ण।

विरजनीय—

परिभाषा—जो द्रव्य किसी शरीर वस्तु का रजन करते हैं उन्हे विरजनीय कहते हैं।

व्यापक सज्ञायें—पुरीषविरजनीय, मूत्रविरजनीय

पुरीषविरजनीय—

परिभाषा—१ पुरीषस्य विरजन दोषसम्बन्धि निरास करोतीति पुरीषविरजनीयम्। (च द.)

२—दोषसम्बद्धस्य पुरीषस्य दोषसम्बन्धाद्विगतेन रजन राग, तस्मै हित पुरीषविरजनीयम् (ग)

३—पुरीषस्य विरजन दोषसंबन्धविगतेन रजन तस्मै हितम्। (यो)

अर्थात् जो द्रव्य दोष दूषित मल की दुष्टि का परिहरण करके मल का रजन करते है, उन्हे पुरीष विरजनीय कहते हैं।

यथा—"जम्बू शल्लकीत्वक्कच्छुरा—मधुक—शाल्मली—श्रीवेष्टक—भृष्टमृत्पय-स्योत्पल—तिलकणा इति दशेमानि पुरीष विरजनीयानि भवन्ति ।" (च सू ४)

मूत्रविरजनीय—

परिभाषा—१—मूत्र विरजयति दोषसबन्धनिराम कृत्वा प्रकृतौ स्थापयतीति मूत्रविरजनीयम् । (च द)

२—दोषसबद्धस्य मूत्रस्य दोषसबन्धाद् विगतेन रजन राग, तस्मै हित मूत्रविरजनीयम् । (यो)

अर्थात् दोषादि के द्वारा दूषित मूत्र के दोषो का निर्हरण करके जो द्रव्य मूत्र को रगते है, उन्हे मूत्र विरजनीय कहते है ।

यथा—पद्मोत्पलनलिनकुमुद सौगन्धिक पुण्डरीकशतपत्र—मधुकप्रियङ्गुधातकी पुष्पाणीति दशेमानि मूत्रविरजनीयानि भवन्ति । (च सू ४)

लेखनम्—

पर्याय—लेखनम्, लेखनीयम्, सलेखन, अवलेखन ।

परिभाषा—१—धातून मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ।
लेखन तद्यथा क्षौद्र नीरमष्ण वचा यवा ।। (शा प्र ख अ ४)

२—यद द्रव्य धातून रसादीन् मलान् वा विशोष्य शुष्कान् कृत्वा, लेखयेवत् स्थूलस्य कृशता कारयेत् तल्लेखनम् । (आ)

३—"लेखन पतली करणम् ।।(सु सू ४०।५ पर डल्हण) औषधकर्मणि ।

४—लेखनमीषच्चर्मविदरण घर्षणेन, तस्मै हित लेखनीयम् ।
(ग) शस्त्रकर्मणि)

५—लेखनं कर्शन, तस्मै हित लेखनीयम् । (यो.)

६—लेखन देहे उपलेपादिकान् भावान् विच्छिनत्ति । (इ.)

अर्थात्—१ औषधिकर्म से पतला करना या कृशता करना औषधिकर्म मे लेखन है ।

२—शस्त्रकर्म मे घर्षण करके ऊपर के दोष मास या त्वक् को कम कर देना लेखन है ।

यथा—"मुस्तकुष्ठ हरिद्रादारुहरिद्रावचातिविषा कटुरोहिणीचित्रकचिर-बिल्व हैमवत्य इति दशेमानि लेखनीयानि भवन्ति ।" (च सू ४)

शल्यतन्त्रे कठिनोत्सन्नमासाना व्रणाना शस्त्रेण क्षौमादिभिर्वा घर्षण लेखनमित्युच्यते । 'क्षौम प्लोत पिचु फेन यावशूक ससैन्धवम् कर्कशानि च पत्राणि लेखनार्थे प्रदापयेत् ।।' (सु चि. अ १)

भौतिक सगठन—"लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम्" (सु सू ४१)

व्यापक सज्ञायें—

१—जिह्वानिर्लेखन—परिभाषा—जो द्रव्य जिह्वास्थित मल को दूर करते है, उन्हे जिह्वानिर्लेखन कहते है । यथा—आकारकरभ, वचा, लवग ।

२–मांस विलेखन—

परिभाषा–जो द्रव्य बढे हुए मास का लेखन करते है, उन्हे मासविलेखन कहते है। यथा–तुत्थ, रक्त, चित्रक, कटुरस।

संन्धानम् (विशेष)

पर्याय–सन्धानम्, सन्धानीयम्।

व्युत्पत्ति १–सधानीय सग्रहण सामान्येन मधुसदधातीति विश्लिष्टानि त्वग्मासानि सश्लेपयति।

२–"सन्धानाय भग्न सयोजनाय हित सन्धानीयम्॥ (यो ग)

३–सन्धानक शरीरेऽन्त महतिकर भावानाम्। (इन्दु)

४–सन्धानीय भग्नसन्धानकारकम्। (ड)

अर्थात्–जो द्रव्य शरीर के कटे-टूटे हुए त्वक् मासादि को भर देते है, उन्हे सन्धानकर या सन्धानीय कहते है।

यथा–१–मधुकमधुपर्णीपृश्निपर्ण्यम्बष्ठकी समङ्गामोचरसधातकी लोध्रप्रियङ्गुकट्फलानीति दशेमानि सन्धानीयानि भवन्ति" (च सू. ४)

२–मधु (च. सू. २६)

दीपनम् (विशेष)—

पर्याय–दीपनीय, दीपन, अग्निदीपनम्।

परिभाषा–१–"पचेन्नाम वह्निकृच्च दीपन तद्यथा मिसि।' (शा)

२–'दीपनीय वह्नेरुद्दीपनाय हितम्।' (ग)

३–"दीपनमन्तरग्ने. सधुक्षण, तस्मै हित दीपनीयम्।" (यो)

४ यदग्निकृत्पचेन्नाम दीपन तद्यथा घृतम्।''तत्रान्तरे।

५–दीपनीय ह्यग्निकृत्वाम कदाचित् पाचयेन्नवा॥ (अरुण)

अर्थात्–जो द्रव्य भूख लगानेवाले होते है तथा आमरस को नही पचाते, उन्हे दीपन कहते है।

यथा–१–"पिप्पलीपिप्पलीमूल चव्यचित्रक शृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिंगुनिर्यासा इति दशमानि दीपनीयानि भवन्ति।"(च सू ४)

२– द्राक्षासव।

भौतिक संगठन—

१–"पित्तलान् रसान् गुणाश्च दीपनीयं, तदाग्नेयम् (र वै. ४।१०)

२–"दीपनमग्निगुणभूयिष्ठ, तत्समानत्वात्"। (सु. सू. ४१)

३–"पृथिव्यनिलबाहुल्याद्दीपन परिचक्ष्महे"। (र वै ४।३० पर भाष्य)

बल्यम्—

पर्याय–बल्यम्, बलजननम्

परिभाषा–बलाय हित

अर्थात्–जो द्रव्य बल देनेवाले होते है, उन्हे बल्य कहते है ।

यथा–१ 'ऐन्द्रवृषभ्यतिरसर्ष्यप्रोक्ता-पयस्याश्वगन्धास्थिरारोहिणीबला-तिबला इति दशेमानि बल्यानि भवन्ति ।" (च सू ४)

२–बृहण द्रव्याणि बल्यानि । (सु सू)

३–चतु स्नेह (च सू १।८७)

४–लघुपचमूल बल्यम् (सु सू. ३८)

वर्ण्यम् (विशेष)––

पर्याय–वर्ण्यम्, वर्णजननम्, यर्णकरम्, वर्चस्यम् ।

परिभाषा–१–वर्णायहित वर्ण्यम् । (ग यो.]

जो द्रव्य शरीर की कान्ति या वर्ण को हितकर हो वे वर्ण्य कहलाते है ।

२. "वर्चसे प्रभायै–वर्णाय हित वर्चस्यम् ।" (र वै पृ १८१)

यथा––"चन्दनतुङ्गपद्मकोशीर मधुक मञ्जिष्ठा पयस्यासारिवासितालता इति दशेमानि वर्ण्यानि भवन्ति ।" (च सू ४)

२. चतु स्नेह (च सू १।८७)

३ लोध्रादि, एलादिगण (सु सू ३७)

कण्ठ्यम् (विशेष)

पर्याय––कण्ठ्यम्, स्वर्यम्, कण्ठजननम् ।

परिभाषा––१ "कण्ठाय हित कण्ठ्यम् ।" (यो)

२ कण्ठस्थितस्वराय हित कण्ठ्यम् (ग)

अर्थात्––जो द्रव्य कण्ठ के लिए व स्वर के लिए हितकर होते है, उन्हे कण्ठ्यम् कहते है ।

यथा––१ सारिवेक्षुमूल–मधुक–पिप्पली–द्राक्षा–विदारी–कैडर्य–हसपादी–बृहती–कण्टकारिका इति दशेमानि कण्ठ्यानि भवन्ति । (च सू ४)

२ शृगवेर (सु सू ४६)

हृद्यम् (विशेष)

परिभाषा–– 'हृदयाय मनसे हित हृद्यम् ।' (ग यो)

अर्थात्–जो द्रव्य हृदय को हितकारक हो उन्हे हृद्य कहते है ।

यथा – आम्राम्रातकलिकुचरीकमर्द वृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलवदर दाडिम-मातुलुङ्गानीति दशेमानि हृद्यानि भवन्ति । (च सू ४)

चक्षुष्यम् (विशेष)

पर्याय––चक्षुष्यम्, नेत्र्यम्, अतिचक्षुष्यम्, आचक्षुष्यम् ।

परिभाषा––"चक्षुषे हित चक्षुष्यम् ।"

अर्थात्–जो द्रव्य चक्षुओ के लिए हितकारी होता है उसे चक्षुष्य कहते हैं

यथा––१ "मधुक चक्षुष्यवृष्यकेश्य कण्ठ्यवर्ण्य विरजनीयानाम् ।" (च सू २५)

२ 'त्रिफला चक्षुष्या ।' (सु सू ४५)

३ 'चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पि. ॥' (सु सू ४५)

केश्यम् (विशेष)

परिभाषा—'केशेभ्यो हितं केश्यम् ।'

अर्थात् जो द्रव्य केशो के लिए हितकारी हो उसे केश्य कहते हैं ।

यथा—१ 'केश्य रसायनं मेध्य काश्मर्य फलमुच्यते ।' (सु सू ४६)

२. भृगराज

मेध्यम् (विशेष)

परिभाषा—'मेधायै हितं मेध्यम् ।'

जो द्रव्य मेधा के लिए हितकर होता है उसे मेध्य कहते है ।

यथा—मण्डूकपर्ण्याः स्वरस प्रयोज्य क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।

रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्या, कल्क प्रयोज्य खलु शङ्खपुष्प्या ॥

मेध्यानि चैतानि रसायनानि, मेध्या विशेषेण च शङखपुष्पी ॥

(च सू अ १ पा ३)

ओजस्यम् (विशेष)

परिभाषा—जो द्रव्य ओज के लिए हितकर होते है, उन्हे ओजस्य कहते है ।

यथा—रक्षोघ्नमथ चौजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ।
सुमनोम्बररत्नाना धारण प्रीतिवर्द्धनम् । (सु चि २४।६४)

दन्त्यम्

परिभाषा—'दन्ताय हितं दन्त्यम् ।'

जो द्रव्य दान्तो के लिए हितकारी होते है, वे दन्त्य कहलाते है ।

यथा—तिल, गडूष, मजन आदि ।

यशस्यम् (विशेष)

परिभाषा—'यशसे हित यशस्यम् ।'

जो यश के लिए हितकारी होता है, उसे यशस्य कहते है ।

यथा—ब्रह्मचर्य ।

स्नेहोपग

परिभाषा—१. स्नेहमुपगच्छति स्नेहक्रियाया सहायीभवति इति स्नेहोपगम् । (यो)

२ स्नेहोपग इति स्नेहविधौ उपगन्तु पानाहारादिषु शील यस्य तत्तथा (ग)

३ स्नेहस्य सर्पिरादे. स्नेहक्रियाया सहायत्वेनोपगच्छतीति स्नेहोपगम् । मृद्विकादिस्नेहोपगयुक्तस्य सर्पिरादे स्नेहने प्रकर्षवती शक्तिर्भवतीत्यर्थः ।(च. द)

अर्थात्—जो द्रव्य स्नेहन क्रिया मे सहायक होती है, उन्हे स्नेहोपग कहते है।

यथा—मृद्वीकामधुकमधुपर्णीमेदा विदारीकाकोली क्षीरकाकोली जीवक, जीवन्तीशालपर्ण्य इति दशेमानि स्नेहोपगानि भवन्ति। (च० सू० ४)

स्वेदोपगम्

परिभाषा—१ स्वेदनद्रव्यस्य अग्न्यादे स्वेदनक्रियायां सहायत्वेनोपगच्छतीति स्वेदोपगम्। (च० द०।

२ स्वेदनमुपगच्छति स्वेदनक्रियाया सहायीभवतीति स्वेदोपगम्। (यो०)

३ स्वेदोपग-इति स्वेदविधौ उपगन्तु शीलं यस्य तत्तथा स्वेदोपगम्।

अर्थात्—वे सभी द्रव्य जो स्वेदन क्रिया मे सहायक होते है, उन्हे स्वेदोपग कहते हैं।

यथा—'शोभाञ्जनकैरण्डार्कवृश्चीर पुनर्नवायव तिल कुलत्थमाषबदराणीति दशेमानि स्वेदोपगानि भवन्ति।' च० सू० ४

भौतिक सगठन—स्वेदन द्रव्यस्य अग्न्यादे

वमनोपग

परिभाषा—१. वमन द्रव्यस्य मदनफलादेर्वमन क्रियाया सहायत्वेनोपगच्छतीति वमनोपगम्। च० द०

२ वमनोपग इति वमनविधौ उपगन्तु शीलं यस्य तत्तथा वमनोपग।

३. वमनमुपगच्छति वमनक्रियायां सहायी भवति इति वमनोपग। यो

अर्थात्—जो द्रव्य मदनफल आदि वामकद्रव्यो के सहायक रूप मे प्रयुक्त करने पर उनकी शक्ति मे वृद्धि करते है, उन्हे वमनोपग कहते है।

यथा—मधुमधुककोविदार कर्बुदारनीपविदुलविम्बीशणपुष्पी सदापुष्पाप्रत्यक्पुष्पा इति दशेमानि वमनोपगानि भवन्ति। च० सू० ४

विरेचनोपग

परिभाषा—१ विरेचन द्रव्यस्य त्रिवृदादेर्विरेचन क्रियायां सहायत्वेनोपगच्छतीति विरेचनोपग। च०द०

२. विरेचनोपग इति विरेचनविधौ उपगन्तु शील यस्य तत्तथा। (ग)

३ विरेचनमुपगच्छति विरेचन क्रियाया सहायी भवति इति विरेचनोपग। (यो०)

अर्थात्—जो द्रव्य निशोथ आदि विरेचक द्रव्यो के साथ सहायक रूप मे प्रयोग करने पर उनकी शक्ति की वृद्धि करते है, उन्हे विरेचनोपग कहते है।

यथा—द्राक्षाकाश्मर्यफलपरूषकाभयामलक बिभीतककुवलबदर कर्कन्धु पीलूनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति। च० सू० ४

आस्थापनोपग

परिभाषा—१ आस्थापन द्रव्याणां पाटलादीनामास्थापन क्रियाया सहायत्वेनोपगच्छतीति आस्थापनोपगम् । च० द०

२. आस्थापनमुपगच्छतीति आस्थापन क्रियाया सहायी भवतीति आस्थापनोपगम् । (यो०)

३ आस्थापनोपग इति आस्थापनविधौ उपगन्तुं शील यस्य तत्तथा । (ग)

अर्थात्—जो द्रव्य पाटलादि आस्थापन द्रव्यो के साथ सहायक रूप मे प्रयोग करने पर उनकी शक्ति मे वृद्धि करते हैं, उन्हे आस्थापनोपग कहते है ।

यथा—त्रिवृद्बिल्वपिप्पलीकुष्ठ सर्षपवचा वत्सकफल शतपुष्पामधुक मदन फलानीति दशेमान्यास्थापनोपगानि भवन्ति । च० सू० ४

अनुवासनोपग

परिभाषा—१. 'अनुवासन द्रव्यस्य तैलादेरनुवासन क्रियायां सहायत्वेनोपगच्छतीत्यनुवासनोपगम् । च० द०

२. अनुवासनमुपगच्छति अनुवासन क्रियाया सहायी भवति इति अनुवासनोपग । (यो०)

३. अनुवासनोपग—अनुवासन विधौ उपगन्तु शील यस्य तत्तथा अनुवासनोपग । (ग)

अर्थात् —जो द्रव्य अनुवासन द्रव्य तैलादि के साथ सहायक रूप मे प्रयोग करने पर उसकी शक्ति की वृद्धि करते हैं, उन्हे 'अनुवामनोपग' कहते है ।

यथा—रास्नासुरदारु बिल्वमदन शतपुष्पा वृश्चीर पुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थश्योनाका इति दशेमानि अनुवासनोपगानि भवन्ति । च० सू० ४

शिरोविरेचनोपग

परिभाषा—१. शिरोविरेचनोपगे तु शिरोविरेचन प्रधानान्येव द्रव्याणि वोद्धव्यानि । च० द०

२ शिरोविरेचनमुपगच्छति शिरोविरेचन क्रियाया सहायी भवति इति शिरोविरेचनोपगम् । यो०

३ शिरोविरेचनविधौ उपगन्तु शीलं यस्य तत्तथा शिरोविरेचनोपगम् । ग

अर्थात्—शिरोविरेचन प्रधान या उस क्रिया मे सहायक द्रव्यो को 'शिरोविरेचनोपग' कहते है ।

यथा— ज्योतिष्मती क्षवक मरिच पिप्पलीविडङ्ग शिग्रुसर्षपापामार्गतण्डुल श्वेतामहाश्वेता इति दशेमानि शिरोविरेचनोपगानि भवन्ति ।' च० सू० ४

अनुलोमन—सरम्

परिभाषा—१ कृत्वापाक मलानां यद्भित्त्वा बन्धमधो नयेत् ।
तच्चानुलोमन ज्ञेय यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥

शा पू. ख ४

२. यद् द्रव्य मलाना दोषाणां पाक कोपशान्ति कृत्वा, बन्ध विबन्धं च भित्त्वा भिन्नतां नीत्वा, अधोनयेत् अध करोति 'वातादिकम्' इति शेष ; तेन प्रतिलोमादनुलोम करोतीत्यर्थ , तच्चानुलोमनं ज्ञेयम् । अनुलोमन वातादीनामधः प्रवर्तन, सरगुणत्वात्, यथा हरीतकी । सैवानुलोमनी प्रसिद्धैव । बन्धमिति दोषाणा परस्परग्रथितत्वम्, एके वात-मूत्र पुरीषादीनामप्रवृतिरूप विबन्धमाहुः । आ०

३. 'अनुलोमनो वातमलप्रवर्तन ।' डल्हण

४. 'सरोऽनुलोमन प्रोक्त ।' सु सू ४६

५ यद् द्रव्यमपरिपच्यमानाना मलाना पाक कृत्वा, बन्ध च भित्त्वा अधो नयेत् कोष्ठादध पातयेत् तदनुलोमन ज्ञेयम् । का०

अर्थात्--जो द्रव्य मलादि तथा दोषो का पाक करके उनके सघात का भेदन करके उस स्थान से या अधोभाग मे निकाल देने मे सहायक होते है, उन्हे अनुलोमन कहते हैं ।

यथा--हरीतकी, आमलकी, त्रायमाण, गन्धक, यष्टिमधु ।

भौतिक संगठन

अनुलोमनीय तत् पार्थिवाप्यं च । र० वै०४।४५

नोट--अनुलोमन यह व्यापक सामान्य सज्ञा है। इसका अर्थ दोषादि जो अपने मार्ग मे उर्ध्वाध हो गये होते हैं उनको स्वमार्ग मे लाना होता है।

अनुलोमन की व्यापक सज्ञाएं

१ वातानुलोमन

पर्याय--ऊर्ध्ववातानुलोमन, अधोवातानुलोमन, मारुतानुलोमन, पवनानुलोमन, मारुताद्यनुलोमनी, वातानुलोमनी, वातानुलोमनीय ।

परिभाषा--जो द्रव्य उन्मार्गगामी वात को अपने मार्ग मे लाकर वाहर निकालते हैं, उन्हे वातानुलोमन कहते है ।

यथा--हिङ्गु, हरीतकी, पचलवण, वृ पचमूल ।

२ वर्चोऽनुलोमन

पर्याय--वर्चोऽनुलोमन, वर्चोऽनुलोमनी, मलानुलोमन ।

परिभाषा--जो द्रव्य मल सघात को भिन्न करके मल को उसके मार्ग मे प्रवृत्त कराकर वाहर निकालते हैं, उन्हे वर्चोऽनुलोमन कहते है ।

यथा--हरीतकी, तिल्वक, आरग्वध ।

३. कफानुलोमन

परिभाषा--जो द्रव्य कफ का प्रसादन करके उसे वाहर निकाले उसे कफानुलोमन कहते है । यथा--मधुयष्टि, मृद्विका, अञ्जीर ।

४. दोषानुलोमन

परिभाषा--जो द्रव्य अवरुद्ध दोषो को अपने मार्ग मे प्रवृत्त कर शरीर मे वाहर निकाल देते है, उन्हे दोषानुलोमन कहते है ।

यथा--वृ पचमूल, पिप्पली, आमलक युक्त यवपेया ।

५. गर्भानुलोमन

परिभाषा—जो द्रव्य गर्भ को अनुकूल मार्ग मे लाकर बाहर निकालते हैं, उन्हे गर्भानुलोमन कहते है।

यथा—कुष्ठैला, लागली, वचा, चित्रक, चिरविल्व चूर्ण मूर्ज, शिशपा धूम।

कोपनम्

व्युत्पत्ति—कुप्क्रोधे-दि प से धातु मे घञ् प्रत्यय करके कोपन बनता है।

पर्याय—कोपक्रोधामर्षरोष । कोपस्तु उन्मार्गगामिता । चरक

परिभाषा—दोषान् विवर्धयेद्यस्तु पश्चादुन्मार्गता नयेत् ।

वर्धयेत् ह्रासयेत् हिस्याज्ज्ञेय तत्प्रकोपणम् । विश्व०

अर्थात्—जो द्रव्य दोषो को बढाकर अपने स्थान से चलायमान करके शरीर की क्रिया को बढा दे अथवा घटादे या क्रिया हानि करदे उसे '**प्रकोपण**' कहते है।

कोपक की व्यापक संज्ञाएं

वातप्रकोपिणी, मारुत प्रकोपण, नातिवात प्रकोपण, वातपित्त प्रकोपण, वात कोपन, अनिलकोपन, पित्तप्रकोपी, पित्तकोपी, पित्तप्रकोपण, श्लेष्म प्रकोपण, कफ मास प्रकोपण,

१. वात कोपन

पर्याय—वात प्रकोपिणी, मारुत प्रकोपण, नातिवात प्रकोपण, वातकोपन, अनिल कोपन, वात प्रकोपक, अनिलप्रकोपक।

परिभाषा—जो द्रव्य वात को बढाकर अपने स्थान से चलायमान करके शरीर की क्रिया को बढाकर या घटाकर क्रिया हानि करते है, उन्हे '**वात-प्रकोपक**' कहते है। यथा—तिक्तकटुकषाय, रूक्षलघुशीत, विष्टम्भि, तृणधान्य, कलाय, चणक, कलिङ्ग।

२. पित्तकोपन

पर्याय—पित्त प्रकोपी, पित्तकोपी, पित्त प्रकोपण।

परिभाषा—जो द्रव्य पित्त को बढाकर अपने स्थान से चलायमान करके शरीर की क्रिया को बढाकर या घटाकर क्रिया हानि करते है उन्हे '**पित्तप्रकोपक**' कहते हैं। यथा—कटुअम्ललवण, क्षारोष्ण, तीक्ष्ण विदाही, शुक्त, शिण्डाकी, मद्य, मूत्र, मस्तु, दधि, धान्याम्ल, लकुच, कुलत्थ, माष, निष्पाव, तिलान्न।

३ कफप्रकोपक

पर्याय—श्लेष्म प्रकोपण, कफ प्रकोपण।

परिभाषा—जो द्रव्य कफ को बढाकर अपने स्थान से चलायमान करके शरीर की क्रिया को बढाकर या घटाकर क्रिया हानि करते हैं, उन्हे '**कफ प्रकोपक**' कहते हैं।

यथा—मधुर अम्ल लवण, स्निग्ध गुरु पिच्छिल अभिष्यन्दि नवान्न, पिष्ट पृथुक स्थूल मक्ष्य क्षीर किलाट कूर्चिका, अन्य दुग्ध—इक्षु विकार।

दूषण सम्बन्धी संज्ञाएं

पित्तदूषण, पित्तप्रदूषण

परिभाषा––जो द्रव्य पित्त की वृद्धि करके पित्त को दूपित करते है, उन्हे '**पित्तदूषण**' कहते हैं ।

यथा––कुलत्थ, अलसी, हरिनशाक, गोधामास, मत्स्य मास आदि ।

पित्तासृग्दूषण, रक्तपित्तप्रदूषण

परिभाषा––जिन द्रव्यो के सेवन से पित्त तथा रक्त दोनो की दुष्टि होती है, उन्हे '**पित्तासृग्दूषण**' कहते है ।

यथा–सुरा, कूर्चिका, कटु अम्ल उष्ण तीक्ष्ण पदार्थ ।

ग्रहणी दूषण

परिभाषा––जिन द्रव्यो के सेवन मे ग्रहणी की दुष्टि होती है उन्हे '**ग्रहणी दूषण**' कहते है । यथा––कटु, तिक्त कषाय, अतिरूक्ष सदुष्ट पदार्थो का सेवन ।

शोणित प्रदूषण

परिभाषा––जो द्रव्य शोणित की दुष्टि करते है, उन्हे '**शोणित प्रदूषण**' कहते हैं । यथा––लवणाम्ल कटु क्षार उष्ण पदार्थो का सेवन, पिण्याक कुलत्थ, दधि, आरनाल, सौवीर, शुक्त, सुरासव आदि ।

दृष्टिदूषण

परिभाषा––दृष्टि को दूषित करने वाले द्रव्यो को '**दृष्टिदूषण**' कहते है ।

यथा––तिलपिण्याक, शुष्कशाक ।

वस्तिदूषक

परिभाषा––जो द्रव्य वस्ति को विकृत या दूषित करते है, उन्हे वस्ति दूषण कहते हैं । यथा––लवणाम्ल तीक्ष्ण पदार्थों का अति सेवन ।

प्रसादन (Stimullants)

व्युत्पत्ति––सद्लृ विशरणादौ–भ्वा तु प अ–गत्यर्थ इतिक्त । प्रसादस्तु–प्रसन्नता

पर्याय––प्रसादोऽनुग्रह स्वास्थ्य

परिभाषा––**स्व स्व कार्येविदध्याद्य गति स्वास्थ्यहिता य वै ।**
अनुग्रह प्रदानेन प्रसादनमिति स्मृत ।। विश्वनाथ

अर्थात्––वे द्रव्य जो शरीर के विभिन्न अगो की गति को स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए अनुग्रह करके वढा देते हैं, उन्हे '**प्रसादन**' द्रव्य कहते हैं ।

व्यापक संज्ञाएं

दृष्टिप्रसादन, वातप्रसादन, मन प्रसादन, रसप्रसादन, रक्तप्रसादन, मांस-प्रसादन, वलप्रसादन, वर्णप्रसादन, दृग्प्रसादन, त्वग्प्रसादन, पित्तप्रसादन असृग्प्रसादन, शोणितप्रसादन ।

दृष्टि प्रसादन

पर्याय—दृग्प्रमादन, दृष्टि प्रसादकृत दृष्टि प्रसादन।

परिभाषा—जो द्रव्य क्षीण हुई दृष्टि शक्ति को बढाते हैं, उन्हे 'दृष्टिप्रसादन' कहते हैं। यथा—अभ्यंग, अजन, तेलसिद्ध मास आदि।

वातप्रसादन

परिभाषा—जो द्रव्य क्षीण या विकृत वात को स्वास्थ्य हेतु उसके कार्य को बढाकर प्राकृत रूप मे लाते है उन्हे **'वातप्रसादन'** कहते है।

यथा—मैस का दधि, तिक्त रस

मन प्रसादन

पर्याय—मन प्रसादन, मनप्रसादकर

परिभाषा—जो मन को प्रसन्नता प्रदान करे तथा मन का कार्य ठीक रखें, उन्हे **'मन प्रसादन'** कहते है। यथा—मधुर रस, भगा

रस प्रसादन

परिभाषा—जो द्रव्य रस की वृद्धि करके स्वास्थ्य की स्थापना करते है, उन्हे **'रस प्रसादन'** कहते है। यथा—मधुर रस, क्षीर इत्यादि।

रक्त प्रसादन

पर्याय—रक्त प्रसादन, असृग्प्रसादन, शोणित प्रसादन।

परिभाषा—जो द्रव्य स्वास्थ्य रक्षार्थ अनुग्रह पूर्वक रक्त की वृद्धि करे, उन्हे **'रक्त प्रसादन'** कहते है। यथा—उष्ण वीर्य द्रव्य, स्नान, मधुर रस, यव, अगुरु कुष्ठ, तगर, सारिवा।

मांस प्रसादन

परिभाषा—जो द्रव्य मास को बढाकर स्वास्थ्य का पालन करते हैं, उन्हे **'मांस प्रसादन'** कहते है। यथा—आलेप, शीतवीर्य, मासवर्ग आदि।

बलप्रसादन—बलप्रसादकर

परिभाषा--जो बल की वृद्धि करते है उन्हे बलप्रसादन कहते है

यथा—वेशवार, अभ्यग, मधुर रस द्रव्य।

वर्ण प्रसादन

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर के वर्ण या कान्ति की वृद्धि करते हैं, उन्हे 'वर्णप्रसादन' कहते है। यथा—मधुर रस, स्नान, यव, विष्किर प्राणियो के मास, एलाद्वय, तुरुष्क, कुष्ठ, फलिनी, तमाल पत्र, व्याघ्रनख, देवदारु, अगरु, कुकुम, सर्जरस आदि।

त्वग्प्रसादन

पर्याय—त्वग्प्रसादन, त्वग्प्रसादकर।

परिभाषा—जो द्रव्य त्वचा की कान्ति की वृद्धि करते है, उन्हे **'त्वग्प्रसादन'** कहते हैं। यथा—उद्वर्तन, तैल, स्नान, हरिद्राद्वय एव अन्य वर्णकर सभी द्रव्य।

पित्तप्रसादन

परिभाषा--जो द्रव्य क्षीण पित्त को अनुग्रहपूर्वक वढाकर स्वास्थ्य की स्थापना करते है, उन्हे **'पित्तप्रसादन'** कहते हैं। यथा--यव, उष्णवीर्य द्रव्य, अगरु, एला, श्योनाक, काश्मर्य, पाटला।

निग्रहण

व्युत्पत्ति--नि उपसर्ग ग्रह उपादने धातु मे अप् प्रत्यय करके निग्रहण रूप वनता है।

निग्रहस्तु निरोध स्यात्। (अमरकोष)

परिभाषा--बलान्निरोधयेद्यस्तु वेदनादीन गतिक्रमान्।

विद्यान्निग्रहण वैद्यो यत्रतत्रोदितान् क्रियान्। (विश्व)

अर्थात्--जो द्रव्य वलपूर्वक शरीरस्थ दोषादि की क्रियाओ को रोक दे उन्हे **'निग्रहण'** कहते हैं।

व्यापक सज्ञाए

वायोर्निग्रहण, मारुतनिग्रहण, छर्दिनिग्रहण, पिपासानिग्रहण, हिक्कानिग्रहण, तृष्णा निग्रहण, निद्रानिग्रहण, पर्वनिग्रहण।

वायोनिग्रहण

पर्याय--वायोर्निग्रहण, मारुतनिग्रहण, वातविग्राहक, मारुतसग्रह।

परिभाषा--जो द्रव्य वलपूर्वक वात की क्रिया को रोक दे उसे **'वायोनिग्रहण'** कहते है।

यथा--दशमूल, विदारीगन्धादिगण, भद्रदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, वदर यव आदि।

छर्दिनिग्रहण

परिभाषा--जो द्रव्य छर्दि को वलपूर्वक रोक दें या शान्त कर दे, उन्हे **'छर्दिनिग्रहण'** कहते है। यथा--आम्रपल्लव मातुलुंगाम्लबदरदाडिम यवषष्टिकोशीर

तृष्णा निग्रहण--पिपासानिग्रहण --

परिभाषा--जो द्रव्य वलपूर्वक तृष्णा को रोक देते है उन्हे **'तृष्णानिग्रहण'** कहते है। यथा--नागरधन्वयासकमुस्तपर्पटचन्दनकिराततिक्तकगुडूचीह्रीवेर धान्यक पटोलानि।

हिक्का निग्रहण--

परिभाषा--जो द्रव्य हिक्का को बलपूर्वक रोक देते है, उन्हे **'हिक्कानिग्रहण'** कहते हैं। यथा--शटीपुष्करमूलवदरबीजकण्टकारिकावृहती वृक्षरुहा पिप्पली दुरालभा।

निद्रानिग्रहण--

पर्याय--निद्राविनिग्रह, निद्रानिग्रहण

परिभाषा--जो द्रव्य वलपूर्वक निद्रा को रोक देते है, उन्हे **'निद्रानिग्रहण'** कहते हैं। यथा--

कायस्य शिरसश्चैव विरेकश्छर्दनं भयं,
चिन्ताक्रोधस्तथा धूमो रक्तमोक्षण उपवासो सुखाशय्या सत्वौदार्य,
निद्रा प्रसगमहित वाम्यन्ति समुत्थितम् ।

शोषणम्—

परिभाषा—जो द्रव्य दोष धातु अथवा मल का शोषण करते है, उन्हे 'शोषण' कहते हैं ।

शोषयेद्दोष धातुवा मलादीन् वा स्वकर्मत ।
शोषण नाम तद्द्रव्यमुक्त मेतद् मनीषिभि ॥ (विश्व)

व्यापक संज्ञाएं—मेद शोषण, पित्तोपशोषण, पूय शोषण, मज्जा शोषण, अस्थिशोषण, मूत्रोपशोषण, स्वेदोपशोषण, पुरीषशोषण, पित्तशोषण, मूत्रशोषण, श्लेष्मोपशोषण, कफशोषण, गर्भशोषण, पूयोपशोषण, रसोपशोषण, रक्तोपशोषण, रुधिरोपशोषण, मांसोपशोषण, मेदोपशोषण, अस्थ्युपशोषण, मज्जोपशोषण, शुक्रोपशोषण, क्लेदोपशोषण, वसोपशोषण, लसिकोपशोषण ।

मेद:शोषण—

पर्याय—मेदोविशोषण, मेदोपशोषण, मेद शोषण ।

परिभाषा—जो द्रव्य अपने कर्म मे मेद का शोषण करे उसे **'मेद शोषण'** कहते है । यथा—तिक्त रस, कषाय रस ।

पित्तोपशोषण—

परिभाषा—जो द्रव्य अपने कर्म मे पित्त का शोषण करे उन्हे **'पित्तोपशोषण'** कहते हैं । यथा—तिक्त रस, कुटज ।

मज्जोपशोषण—

परिभाषा—जो द्रव्य मज्जा का शोषण करते हैं, उन्हे **'मज्जोपशोषण'** कहते हैं यथा—तिक्तरस ।

पूयशोषण—

पर्याय—पूयशोषण, पूयोपशोषण ।

परिभाषा—जो द्रव्य पूय का स्वकर्म से शोषण करे उन्हे **'पूयोपशोषण'** कहते हैं । यथा—तिक्त रस ।

अस्थिशोषण—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर अस्थि का शोषण करे, उन्हे **'अस्थिशोषण'** कहते हैं । यथा—तिक्त रस का अतिसेवन ।

मूत्रशोषण, मूत्रोपशोषण—

परिभाषा—जो द्रव्य मूत्र का शोषण करता है, 'उसे **मूत्रशोषण'** कहते है । यथा—तिक्त रस ।

स्वेदोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य स्वकर्म द्वारा स्वेद का शोषण करे उसे '**स्वेदोपशोषण**' कहते हैं।

पुरीषशोषण--

पर्याय--पुरीषोपशोषण, विट्शोषण, शकृतशोषक, पुरीषशोषण।

परिभाषा--जो द्रव्य सेवन करने पर पुरीष का शोषण करने है, उन्हे '**पुरीषशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्त रस।

भुक्तशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य खाये हुए भोजन का शोषण करते हैं, उन्हे '**भुक्तशोषण**' कहते हैं। यथा--कटुरस।

कफशोषण, श्लेष्मोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य स्वकर्म से श्लेष्मा का शोषण करते हैं, उन्हे --'**श्लेष्मोपशोषण**' कहते हैं। यथा--कटुरस।

रसोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य सेवन करने पर रक्त का शोषण करते है, उन्हे '**रसोपशोषण**' कहते है। यथा--तिक्तरसस्यातिसेवन।

रक्तोपशोषण, रुधिरोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य शरीरस्थ रुधिर का शोषण करते है, उन्हे '**रुधिरोपशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्तरसस्यातिसेवन।

मांसोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य अपने कर्म से मास का शोषण करते है, उन्हे '**मासोपशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्तरसस्यातिसेवन।

क्लेदोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य अपने कर्म से शरीरस्थ क्लेद पदार्थ का शोषण करते है, उन्हे '**क्लेदोपशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्तरसस्याति सेवन।

वसोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य अपने कर्म से वसा का शोषण करते हैं, उन्हे '**वसोपशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्तरस।

लसिकोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य अपने कर्म से लसिका का शोषण करते है, उन्हे '**लसिकोपशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्तरस।

शुक्रोपशोषण--

परिभाषा--जो द्रव्य अपने कर्म से शुक्र का शोषण करते हैं, उन्हे '**शुक्रोपशोषण**' कहते हैं। यथा--तिक्तरसस्यातिसेवन।

भेदन--

व्युत्पत्ति--भिदिरद्वैधीकरणे धातु मे घञ् प्रत्यय करके भेदन शब्द की निष्पत्ति होती है ।

परिभाषा--१. मलादिकमवद्ध च वद्ध वा पिण्डित मलं ।
भित्त्वाऽध पातयति तद् भेदन कटुकी यथा ।। (शा प्र ४)
२. भेदनं पिण्डितमलाना द्रवीकृत्य वहि सारणं, तस्मै हितम् ।(यो)
३. भेदनाय शरीरान्मलनिर्हरणाय हितम् । (ग)

४. वद्ध विवद्ध शुष्कं ग्रथितं च । तत्र शुष्क पुरीषविषय, ग्रथित दोषादिविषयम । तथा अवद्ध द्रवरूपमपि द्विविधम्--एक पुरीषविषयम्, अन्यन्मलादिकमिति । मलोऽत्रदोष । आदिग्रहणात् रूक्षदूषितादीनामपिग्रहणम् । भित्त्वेति तत् पुरीष भित्त्वा विदार्याध. पातयति, 'द्रव्यम्' इति शेष । (आ)

५ यद् द्रव्यमवद्ध मलादिक पिण्डितं पिण्डीभूतैर्मलैर्बद्ध वा भित्त्वा विदार्य, अध पातयति तद् भेदनम् । (का.)

अर्थात्--जो द्रव्य अपने प्रभाव से दोष मलसघात का भेदन कर वाहर निकाल देते है, उन्हे भेदन कहने है ।

यथा--"सुवहार्कोरुवुकाग्निमुखी चित्राचित्रक चिरविल्वशंखिनी-शकुलादनी स्वर्णक्षीरिण्य इति दशेमानि भेदनीयानि भवन्ति ।" (च सू ४)

श्यामादिगण (सु सू ३८)
अम्लवेतस (च सू २७)

व्यापक संज्ञाएं--शर्करामेदन अश्मरीभेदन, आनाहभेदी, आनाहभेदन अश्मभिन, रक्तविभेदन, शोणित सघात भेदन, विड्भेदी, विडसघभेदन, गुल्मभेदन, सन्धिभेदन, पक्वशोथभेदन ।

आनाहभेदन, आनाहभेदी--

परिभाषा--आनाह को आचार्यो के मत मे कोष्ठबद्धता या आनाह माना है। जो द्रव्य उस आनाह का भेदन या समाप्ति करके मल की सम्यक् प्रवृत्ति कराते हैं, उन्हे 'आनाहभेदी' कहते हैं। यथा--पीलुकल्कपक्वघृत ।

चत्वारस्तैल गोमूत्रदधिमण्डाम्ल काजिकात् ।
प्रसृता सर्षपै विष्टैर्विट् संगानाह भेदन । अ क ४।२४

रक्तविभेदन शोणितसंघात भेदन-

परिभाषा-जब किसी कारण से या रोग मे शरीर मे रक्त जम जाता है या अवरोध हो जाता है, उस अवस्था मे जमे हुए रक्त के सघात को तोडकर रक्त को पतला करके वाहर निकालते है, उन्हे 'शोणितसघात भेदन' कहते है ।

यथा-क्षार, पलाशक्षारतोय सिद्धघृत, कटुरस ।

विड्भेदी-

पर्याय-विड्भेदी, विट्सघभेदन, विड्भिन्नकर ।

परिभाषा-जो द्रव्य मल के सघात को तोडकर तथा मल को पतला वनाकर वाहर निकाल देते है, उन्हे 'विड्भेदी' कहते हैं ।

यथा-एरण्डतैल, दन्ती, हरीतकी, जयपाल ।

गुल्मभेदन–

परिभाषा–गुल्म वातजन्य रोग है, जिसमे कुक्षि, नाभि, हृदय या वस्तिप्रदेश मे एक गोला जैसा प्रतीत होता है। जो द्रव्य उस गुल्म के सघात को तोडकर उन्हे शरीर से वाहर निकाल देते हैं, उन्हे **'गुल्मभेदन'** कहते हैं।

यथा–त्रिकटु, अजमोदा, सैन्धव, ·ीरकद्वय, कुलत्थ आदि।

सन्धिभेदन–

परिभाषा–चल सन्धियो मे वन्धन के नये सूत्र वनकर उन्हे अचल व वेदनायुक्त बना देते है, जो द्रव्य उन जुडे वन्धनो को तोड दे, उन्हे 'सन्धि भेदन' कहते हैं।

यथा–लवण, कटु, क्षार, अम्ल, मैथुन, आतप, व्यायाम, रूक्षभोजन।

पक्वशोथभेदन, पक्वशोथ विदारण–

परिभाषा–जो द्रव्य पके हुए शोथ का भेदन करते है, उन्हे **'पक्वशोथ भेदन'** कहते हैं।

यथा–गुग्गुलु, गोदन्ती, अतसी, स्वर्णक्षीरी, कपोतविट, क्षारौषध, क्षार।

शर्करा भेदन–

पर्याय–शर्कराभेदन, अश्मरीभेदन, अश्ममित।

परिभाषा-शर्करा, अश्मरी मूत्र के घटक जव मिलकर अपना घन सघात बनाकर छोटे छोटे शर्करा के दानो की तरह होते हैं तो शर्करा कहलाते है और जव यह दाने कई मिलकर वडे वडे होकर अश्म की तरह कठिन हो जाते हैं तो अश्मरी कहलाते है। जो द्रव्य इनको भिन्नकर छोटे कणो मे विभाजित करके मूत्र द्वारा वाहर निकाल देते हैं, उन्हे **'अश्मरीभेदन'** कहते हैं। **यथा**–कुलत्थ, पाषाणभेद, गन्धर्वहस्त, बृहती, व्याघ्री, गोक्षुरक, इक्षुर, वरुण आदि।

क्लेदन, प्रक्लेदन–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर के धातुओ मे द्रवाश की वृद्धि करते है अथवा कठिन वस्तु को क्लिन्न करते है, उन्हे **'क्लेदक'** कहते है।

व्यापक सज्ञायें–क्लेदन, प्रक्लेदन, कफोत्क्लेदी।

परिभाषा–जो द्रव्य कफ की मात्रा को वढाकर क्लिन्नता पैदा करते है, उन्हे 'कफोत्क्लेदी' कहते है।

यथा–अम्लरस, स्नेहन, श्लेष्मातक।

स्थापन सम्बन्धी सज्ञाए–शोणित स्थापन, रुधिरस्थापन, वेदना स्थापन, सज्ञास्थापन, गर्भस्थापन, वय स्थापन।

शोणितस्थापन–

परिभाषा–१–शोणितस्य दुष्टस्य दुष्टिमपहृत्य तत् प्रकृतौ स्थापयतीति शोणितस्थापनम्। (च द-)

२–शोणित स्थापयति अतिप्रवृत्त स्तम्भयति इति शोणितस्थापनम्। (यो)

३–रुधिरसस्थापन पुरुषस्य रुधिरवृद्धि–स्थैर्यकरम् (इ.)

४–शोणितास्थापन शोणितातिप्रवृत्तिस्तम्भनम् (सु चि १।४८ उ डल्हण)

अर्थात्—शोणित स्थापन की परिभाषाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—१—कार्यचिकित्सा, २—शल्यतंत्र ।

१—कायचिकित्सा—जो द्रव्य दुष्ट रक्त की विकृति को दूर करके प्रकृति की स्थिति में लाते हैं, रुधिर की वृद्धि तथा स्थिरता को करते हैं ।

यथा—मधु मधुक रुधिर मोचरस मृत्कपाललोध्र गैरिक प्रियङ्गु शर्करालाजा इति दशेमानि शोणित स्थापनानि भवन्ति । (च सू ४)

२—शल्य क्रिया—जो द्रव्य रक्तस्राव को रोकते हैं ।

यथा—शीत परिषेक, बन्धन, अग्निकर्म आदि ।

वेदना स्थापन—

परिभाषा—१—वेदनायां संभूतायां तां निहृत्य शरीर प्रकृतौ स्थापयतीति वेदनास्थापनम् ।(च द)

२—वेदनां स्थापयति अति प्रवृत्तं वेदनां स्तम्भयतीति वेदनास्थापनम् (यो.)

३ वेदनायाश्छिद्यते. सतर्पक वेदनास्थापनम् (इ)

अर्थात—जो द्रव्य वेदना का नष्ट करे उसे 'वेदनास्थापन' कहते हैं ।

यथा—शालकट्फलकदम्बपद्मकतुम्ब मोचरस शिरीषवञ्जुलैलवालुकाशोका इति दशेमानि वेदनास्थापनानि भवन्ति । (च सू ४)

संज्ञास्थापन—

परिभाषा—१—संज्ञा ज्ञान स्थापयतीति संज्ञास्थापनम् (च द., यो)

२—सज्ञायां विनष्टायां तां परिहृत्य सज्ञां प्रकृतौ स्थापयतीति सज्ञास्थापनम् ।

अर्थात्—जो द्रव्य नष्ट हुए ज्ञान को पुन वापिस लाते है, उन्हे 'सज्ञा-स्थापन' कहते हैं ।

यथा—हिङ्गु कैटर्यारिमेदावचाचोरकवयस्था गोलोमीजटिला पलङ्कषा शोकरोहिण्य इति दशेमानि संज्ञास्थापनानि भवन्ति । (च सू. ४)

प्रजास्थापन-गर्भस्थापन—

परिभाषा—१—"प्रजोपघातकं दोष हृत्वा प्रजा स्थापयतीति प्रजास्थापनम् । (च. द)

२—प्रजा गर्भ स्थापयति दोष निरस्येति प्रजास्थापनम् (यो)

अर्थात्—जो द्रव्य प्रजा की उत्पत्ति या गर्भस्थिति मे बाधक दोषो को नाश कर प्रजोत्पादन की शक्ति प्रदान करते है, उन्हे 'प्रजास्थापन' कहते हैं ।

यथा—ऐन्द्री ब्राह्मी शतवीर्या सहस्रवीर्याऽमोघाऽव्यथाशिवाऽरिष्टावाट्य-पुष्पी विष्वक्सेनकान्ता इति दशेमानि प्रजास्थापनानि भवन्ति । (च सू ४)

वय.स्थापनं—वयस्यम्—

परिभाषा—१—वय तरुण स्थापयतीति वय स्थापनम् (च. द , यो.)

२—वयसि हित वयस्य, जरामभिहृत्य यौवन रक्षति । (र. वै पृ. १८३)

अर्थात्—जो द्रव्य वय—तरुणावस्था को स्थिर रखे उसे 'वय स्थापन कहते हैं।

यथा—"अमृताऽभयाधात्रीमुक्ताश्वेता जीवन्त्यतिरसा मण्डूकपर्णीस्थिरा-पुनर्नवा इति दशेमानि वय स्थापनानि भवन्ति । (च सू ४)

प्रबोधन सम्बन्धी संज्ञाए–

संज्ञा संबोधन–

परिभाषा–संज्ञा ज्ञान प्रबोधयति इति संज्ञाप्रबोधनम् (विश्व)

अर्थात्–जो द्रव्य नष्ट हुई संज्ञा को पुनः वापिस लाते हैं या चैतन्यावस्था को लाते हैं उन्हे 'संज्ञाप्रबोधन' कहते हैं। यथा–तीक्ष्णमद्य, मातुलुंगरस, शुण्ठीयुक्त सौवर्चल, हिङ्गु, त्रिकटु, अंजन, कपिकच्छू घर्षण, तीक्ष्ण नस्यादि।

इन्द्रियबोधन–इन्द्रियप्रबोधन–

परिभाषा–जो द्रव्य ज्ञानेन्द्रियों के नष्ट हुए या कम हुए ज्ञान को पुनः बोधन कराते हैं, उन्हे 'इन्द्रियप्रबोधन' कहते हैं।

यथा–शिरोविरेचन, विरेचन नस्य।

स्वर प्रबोधन–

परिभाषा–जो द्रव्य विकृत या नष्ट हुए स्वर को प्रबोधन करते हैं, उन्हे 'स्वरप्रबोधन' कहते हैं। यथा–दशमूलश्रुतात्क्षीरात्सर्पियदुदियान्नवं।
सपिप्पलीक सक्षौद्र तत्पर स्वरप्रबोधनम्॥ (अ.चि ५–१९)

बुद्धिप्रबोधन–

परिभाषा–बुद्धे प्रबोधन बुद्धि प्रबोधनम्। (इ)

अर्थात्–जो द्रव्य बुद्धि का प्रबोधन करते हैं, उन्हे बुद्धिप्रबोधन कहते हैं।

यथा–ब्राह्मी, ऐन्द्री आदि।

तर्पण–संतर्पण–

परिभाषा–'संतर्पयति इति संतर्पण' अर्थात् जो शरीरावयव तथा रसादि धातु, दोष व मलो को पर्याप्त पोषण प्रदान करके तृप्ति करते हैं, उन्हे 'सन्तर्पण' कहते हैं।

भौतिक संगठन–भौमापम्। यथा–मांसरस, क्षीर, घृत, शर्करा आदि।

व्यापक संज्ञाएं

इन्द्रियसंतर्पण–इन्द्रियतर्पण

परिभाषा–जो द्रव्य इन्द्रियों को इन्द्रियों के पोषक द्रव्य देकर तृप्ति करते हैं उन्हे '**इन्द्रिय पोषक**' कहते हैं।

यथा–क्षीर, स्वप्न शय्यासुख, अभ्यंगस्नान, संतोष हर्षण।

शिरस्तर्पणम्, शिरस्तृप्तिकरम्–

परिभाषा–जो द्रव्य शिर को तृप्त करते हैं, उन्हे '**शिरस्तर्पण**' कहते हैं।

यथा–**शिरोवस्ति, परिषेक, अभ्यंग, पिचुधारण।**

अक्षितर्पण, अक्षिसंतर्पण–

परिभाषा–जो द्रव्य नेत्रो को संतृप्त करनेवाले होते हैं, उन्हे 'अक्षिसंतर्पण' कहते हैं। **यथा**–स्नेह मे अक्षिपूरण, हितौषधिस्वरस पूरण।

कर्णतर्पण–

परिभाषा–जो द्रव्य वातादिजन्य रूक्षता के कारण रूक्ष हुए कर्ण मे स्निग्धतादि से तृप्ति करते हैं, उन्हे 'कर्णतर्पण' कहते हैं।

यथा–निर्गुण्डीतैल, कर्णपूरण स्नेह से।

प्रवर्तन सम्बन्धी सज्ञाएं

१–रजः प्रवर्तन, आर्तव प्रवर्तन–

परिभाषा–जो द्रव्य रुके हुए रज या आर्तव को पुन प्रवर्तन करते है, उन्हे 'रज या आर्तव प्रवर्तन' कहते है। यथा–कुटज काश्मर्य क्वाथ सिद्धघृत मे उत्तर वस्ति, टकण, अगट, रेणुकाबीज।

२–वर्चः प्रवर्तनम्–

परिभाषा–जो द्रव्य बद्ध या रुके हुए मल को बाहर निकाले उसे '**वर्च-प्रवर्तन**' कहते है। यथा–त्रिवृत्, दन्ती, आरग्वध, स्नुहीक्षीर, एरण्डतैल आदि।

३–विषवेग प्रवर्तन–

परिभाषा–जो द्रव्य विपवेग को बढाते है, उन्हे '**विषवेग प्रवर्तन**' कहते है।
यथा–लवणरसस्याति सेवन, विप, मद्य।

कर एवं जनन सम्बन्धी संज्ञाएं

अनिलकर–

पर्याय–अनिलकर, वातकर, परवातकर, अल्पवातकर, वातल, अतिवातल।
परिभाषा–जो द्रव्य वात की उत्पत्ति करते है उन्हे '**वातकर**' कहते है।
यथा–तिक्त-कषाय रस, रूक्षाल्पान्न, सेवन, कलाय शुष्क शाक, वल्लूर आदि।

पूतिमारुतकर–

परिभाषा–जो द्रव्य दुर्गन्धितवायु को अधिक मात्रा मे पैदा करते है, उन्हे '**पूतिमारुतकर**' कहते है यथा–विल्व, हिंगु, विडलवण।

कफकरश्लेष्मल–

पर्याय–कफकर, कफकृत, श्लेष्मकर, श्लेष्मकृत, श्लेष्मकारी, बलासकृत, श्लेष्मल, श्लेष्मोपचयकर।
परिभाषा–जो द्रव्य श्लेष्मा की उत्पत्ति करते है, उन्हे '**श्लेष्मल**' कहते है।
यथा–मधुराम्ललवण, स्निग्धशीत गुरुपिच्छिल भोजन, दधि, दुग्ध, कृशरा, पायसेक्षुविकार आदि।

पित्तकर, पित्तल–

परिभाषा–जो द्रव्य पित्त की उत्पत्ति करते है, उन्हे '**पित्तल या पित्तकर**' कहते है। यथा–कट्वम्ललवण क्षारतीक्ष्णोष्ण भोजन, तिलतैलपिण्याकादि।

आध्मानकर–

पर्याय–आध्मानकर, आध्मानकारक, उदराध्मानकर, उदराध्मान जनयति।
परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर आध्मान रोग को उत्पन्न करते है, उन्हे '**आध्मानकर**' कहते है। यथा–हरेणु, कलाय, आढकी दाल, पिष्टान्न।

पुष्प कृत–

परिभाषा–जो द्रव्य आर्तव या पुष्प की उत्पत्ति करते है, उसे '**पुष्पकृत**' कहते है। यथा–तीक्ष्णोष्ण द्रव्य, रेणुकाबीज, अशोकारिष्ट।

स्तन्यवृद्धिकर–

पर्याय–स्तन्यकर, स्तन्यजनन, स्तन्यवृद्धिकर।
परिभाषा–स्तन्य जनयतीति स्तन्यजननम् (यो.)

अर्थात्–जो द्रव्य स्तन्य-दूध की वृद्धि करते हैं, उन्हें 'स्तन्यवृद्धिकर' कहते हैं।

यथा–वीरणशालिषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकत्तृण मूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति। (च सू. ४)

जीरक, विदारीकन्द, कार्पासफल, गुड,। काकोल्यादिगण (सु. सू. ३८)

ओजस्कर–

परिभाषा–जो द्रव्य ओज की उत्पत्ति करते हैं, उन्हें 'ओजस्कर' कहते हैं।

यथा–मधुररस।

स्रोतस मार्दवकर–

परिभाषा–जो द्रव्य स्रोतसो मे मृदुता उत्पन्न करते हैं, उन्हें 'स्रोतसमार्दवकर' कहते हैं।

यथा–कृतान्नवर्ग।

अवकाशकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे अवकाश उत्पन्न करते हैं, उन्हें 'अवकाशकर' कहते हैं। यथा–लवणरस

ह्लादक–

पर्याय–ह्लादक, ह्लादनकर, ह्लादी।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर हृदय को आह्लादन करते हैं, उन्हें ह्लादक, कहते हैं। यथा–गगनाम्बु, क्षीर कृतपदार्थ, कूर्चिका, तोय वर्ग, शीतवीर्य द्रव्य।

मन सांत्वनकर–

पर्याय–मनसात्वनकर, मनस्कर, सत्वप्रद।

परिभाषा–जो द्रव्य मन को सात्वना देते हैं, उन्हें 'मनसात्वनकर' कहते हैं।

यथा–मधुररस, मद्य।

छर्दिकर–वमिकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर छर्दि पैदा करते है, उन्हें 'छर्दिकर' कहते हैं। यथा–मदनफल, इक्ष्वाकु, धामार्गव, ताम्र भस्म।

धातुशोषकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर धातुओ का शोषण करते हैं, उन्हे 'धातुशोषक' कहते है। यथा–शिलाजतु, गुग्गुलु, तिक्तरस।

मदकर, मदकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर मद की उत्पत्ति करते है, उन्हे 'मदकर' कहते है। यथा–मद्य, लवण, कटुरस का अतिसेवन।

भ्रमकर–

पर्याय–भ्रमकर, भ्रमापादन, भ्रमप्रद

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर भ्रम पैदा करते है, उन्हे 'भ्रमकर' कहते हैं। यथा–विषान्न, कटुरस का अतिसेवन।

इन्द्रियोपतापकरम्–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने पर इन्द्रियो को उपताप या कष्ट पैदा करते है, उन्हे 'इन्द्रियोपतापकर' कहते हैं। यथा–लवणरस का अतिसेवन।

दोषजनन–

पर्याय–दोपजनन, दोपोत्क्लेशकर, दोपल।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर दोषो की उत्पत्ति करते है, या उत्क्लेश करते हैं, उन्हे 'दोषजनन' कहते हैं।

दोषमार्दवकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर दोषो की उग्रता मे मृदुता पैदा करें उसे 'दोषमार्दवकृत' कहते है। यथा–स्वेदन, हिताहार।

रक्तकृत, अस्रदा–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर रक्त की अधिक उत्पत्ति करते है, उन्हे 'रक्तकृत' कहते हैं। यथा–मधुररसवाले द्रव्य, दधि, क्षीर, इक्षुविकार, लोहभस्म आदि।

प्रभूत मांसकृत, मांसदार्ढ्यकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर मास की अधिक मात्रा मे वृद्धि करते है, उन्हे 'प्रभूत मासकर' कहते हैं। यथा–मधुररस, शीतस्निग्धवीर्य द्रव्य, मासवर्ग आदि।

प्रभूत मेदोकर–

पर्याय–प्रभूतमेदोकर, मेदोवृद्धिकर मेदकृत।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर मेद की अतिशय वृद्धि करते है, उन्हे 'प्रभूत मेदोकर' कहते है। यथा–मधुरशीत स्निग्ध गुरुपदार्थ, दधि, दुग्ध, घृतादि।

अस्थिस्थैर्यकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर अस्थियो मे स्थिरता उत्पन्न करते है, उन्हे 'अस्थिस्थैर्यकृत' कहते है। यथा–गन्धतैल।

शुक्रकृत–

पर्याय–शुक्रकृत, शुक्रकर, शुक्रल, शुक्रदा, शुक्रजनन।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर शुक्र की उत्पत्ति करते है, उन्हे 'शुक्रकर' कहते है। यथा–क्षीर, अश्वगन्धा, शतावरी, क्रौंचबीज, अष्टवर्ग, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, जटामासी।

घ्राणस्रावकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर या नासा मे जाकर नासिका से स्राव पैदा करते है, उन्हे 'घ्राणस्रावकर' कहते हैं। यथा–कटुतीक्ष्ण द्रव्य।

श्रुतिदार्ढ्यकृत, श्रोत्रदार्ढ्यकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर कर्णों मे दृढता उत्पन्न करते है, उन्हे 'श्रुतिदार्ढ्यकृत' कहते है। यथा–अपामार्ग, नारायण तैल।

विष्टम्भकर–

पर्याय–विष्टम्भकर, विष्टम्भकृत, विष्टम्भी ।

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने मे विष्टम्भ पैदा करते हैं, उन्हे 'विष्टम्भकर' कहते है । **यथा**–माष की दाल, अरहर-मोठ की दाल, तिक्तरस, कलाय, कषाय रस ।

त्वग्स्थिरीकर–त्वच्य–

परिभाषा–जो द्रव्य त्वचा को स्थिर या दृढ करते हैं, उन्हे 'त्वग्स्थिरीकर' कहते है । यथा–अभ्यग, मधुररस ।

स्वेदोपपादक–

पर्याय–स्वेदोपपादक, स्वेदल, स्वेदकर ।

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने से स्वेद की उत्पत्ति करते है, उन्हे 'स्वेदोपपादक' कहते हैं । यथा–उष्णवीर्य द्रव्य, तीक्ष्णद्रव्य, लवणरस, अम्लरस ।

धातुसाम्यकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर बढे हुए धातुओ को घटाकर तथा घटे हुए धातुओ को बढाकर शरीर मे समता उत्पन्न करते है, उन्हे '**धातुसाम्यकर**' कहते है । यथा–गुडूची ।

शरीरधातुमृदुकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर के धातुओ को मृदु करते हैं, उन्हे 'शरीरधातुमृदुकर' कहते है । यथा–घृत, लवणरस ।

शरीरावयव मृदुकर–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर के अवयवो को सेवन करने पर मृदु करते है, उन्हे '**शरीरावयव मृदुकर**' कहते है । यथा–लवणरस

धातुक्षोभकर–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने पर धातुओ को क्षुब्ध करते है, उन्हे '**धातुक्षोभकर**' कहते हैं । यथा–विषवर्ग, मद्य

मुखसौष्ठवकर–

पर्याय–मुखसौष्ठवकर, मुखकान्तिकर, मुखोपचयकर, आनन दार्ढ्यकृत, मुखसौगन्धकर, मुखवैशद्यकर ।

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने पर मुख का उपचय करके उसे कान्ति सम्पन्न बनाते हैं, उन्हे '**मुखसौष्ठवकर**' कहते है ।

कुकुमोशीर कालीयक लाक्षायष्टयाह्व आदि से सिद्धकृत, कर्पूरजाती कक्कोल लवग कटुकाह्वयै सचूर्ण सहित तत्र ताम्बूलज शुभ मुखवैशद्य सौगन्ध कान्ति सौष्ठवकारक । (सु चि. २४–२२)

गलदाहकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर गले मे जलन पैदा करते हैं, उन्हे '**गलदाहकृत**' कहते है । यथा–कटुरस का अतिसेवन ।

स्वरकृत–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करनेपर स्वर को उत्तम करते है, उन्हे '**स्वरकृत**' कहते है यथा–कुल्जिन, लवग, एला ।

दार्ढ्यकृत, धातुपुष्टिकृत

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर शरीर को दृढ बनाता है या मासादिधातु वृद्धि करते है, उन्हे '**दार्ढ्यकृत**' कहते है । यथा—तैल, स्नेहपान ।

जिह्वाजाड्यकृत—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर जिह्वा को जड बनाते है, उन्हे '**जिह्वा जाड्यकृत**' कहते है । यथा—कषाय रस, हरीतकी ।

तालुदाहकृत—

जो द्रव्य सेवन करने पर तालु मे जलन पैदा करते है, उन्हे '**तालुदाहकृत**' कहते है । यथा—कटु तीक्ष्ण द्रव्यो का अति सेवन ।

तृष्णाकर, तृष्णाकृत— (विशेष)

परिभाषा—जो द्रव्य सेवनोपरान्त तृष्णा को पैदा करे, उन्हे '**तृष्णाकर**' कहते है । यथा—कटु–उष्ण–तीक्ष्ण–क्षार पदार्थों का तथा गुरु मधुर पदार्थो का अतिसेवन ।

दन्त दार्ढ्यकृत, दन्तबलकर—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर दातो को दृढ करते है या बलप्रदान करते है, उन्हे '**दन्त दार्ढ्यकृत**' कहते है । यथा—स्नेहगण्डूषधारण ।

ओष्ठ शोषकृत—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर ओष्ठ को सुखाते हैं, उन्हे '**ओष्ठ शोषकृत**' कहते हैं यथा - कटुरस ।

उज्ज्वलताकृत—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर शरीर को उज्ज्वल बनाते है, उन्हे '**उज्ज्वलताकृत**' कहते है । यथा—जल, स्नान, उष्णोदक स्नान, क्षीर सेवन ।

अगदकर (विशेष)—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर को रोगरहित करते है, उन्हे '**अगदकर**' कहते है । यथा—रसायन द्रव्य ।

भेदकृत—

परिभाषा—१ **मलादिकमबद्ध च बद्ध वा पिण्डित मलं ।**
भित्त्वाऽध पातयति तद् भेदनम् ।। (शा पू ख अ ४)

२ **भेदनाय शरीरान्मल निर्हरणाय हितम्** । (ग)

३ **भेदनं पिण्डित मलाना द्रवीकृत्य बहि सारणं, तस्मैहितम्** (यो)

४ **यद् द्रव्यमबद्धं मलादिक पिण्डितै. पिण्डभूतैर्मलैर्बद्ध वा भित्त्वा विदार्य, अध पातयति तद् भेदनम्** । (का)

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर मे जाकर बद्ध या अबद्ध तथा पिण्डित पुरीष को द्रव करके उसे अधोभाग मे बाहर निकालते है, उन्हे **'भेदकृत या भेदन'** कहते है। **यथा—सुवहार्कोरुबुकाग्निमुखी चित्राचित्रक चिरबिल्वशखिनी शकुलादनी स्वर्णक्षीरिण्य इति दशेमानि भेदनीयानि** । (च सू ४)

श्यामादिगण (सु) **कटुकी** (शा)

पूतिमारुतकर—

परिभाषा—जो द्रव्य मलद्वार मे निकलने वाले दुर्गन्धित पूतिगन्ध के वायव्य अशो को बढाते है और निकालते है उन्हे **'पूतिगन्धकर'** कहते हैं। यथा—बिल्व, हिंगु।

परंवातकर—

परिभाषा—जो द्रव्य विशिष्ट रूप से वात की उत्पत्ति करते है, उन्हे **'परवातकर** कहते है। यथा—कलाय, तिक्तरस।

केशस्निग्धकर, केशमार्दवकर—

परिभाषा—जो द्रव्य केशो को स्निग्ध या मृदु बनाते है, उन्हे **'केश-स्निग्धकर या मृदुकर'** कहते है। यथा—शिरोभ्यग।

केशबहुलकर—

पर्याय—केशबहुलकर, केशबहुत्वकर, केशव्याकरण, लोमजनन।

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर अल्प केश वाले व्यक्तियो मे अधिक मात्रा मे केश पैदा करते हैं, उन्हे **'केशबहुलकर'** कहते है। यथा—तैल, मक्षिका हस्तिदन्त, रसाजन, अवटु।

केशकृष्णताकर, केशरञ्जन—

परिभाषा—जो द्रव्य श्वेतकपिलादि वर्ण वाले केशो को काले करते है, उन्हे **'केशकृष्णताकर'** कहते है। यथा—भृगराज, केशराज, बिभीतकमज्जा, आम्रास्थि त्रिफला, नीलिनी, मदयन्तिका, जया, लौह, मण्डूर, सैरेयक।

केशबलकृत—

परिभाषा—जो द्रव्य गिरते हुए केशो को रोकते है या बल प्रदान करते हैं, उन्हे 'केशबलकृत' कहते हैं। यथा—भृगराज तैल, आमलकी तैल।

केशवर्द्धन—

परिभाषा—जो द्रव्य केशो को अधिक मात्रा मे बढाते हैं, उन्हे **'केशवर्धन'** कहते हैं। यथा— नारिकेल, तिल, बिभीतक, गुजा, त्रिफला।

उष्मजनन—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर उष्मा या उष्णता की वृद्धि करते है, उन्हे **'उष्मजनन'** कहते हैं। यथा—व्रीहि, उष्ण—तीक्ष्ण द्रव्य।

कण्डूकर—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन के उपरान्त शरीर मे कण्डू पैदा करते हैं, उन्हे **'कण्डूकर'** कहते हैं। यथा—सविषान्न।

स्वल्पमूत्रकर, अल्पमूत्रकर—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने पर शरीर में जाकर मूत्र की मात्रा को कम कर दे, उन्हे **'स्वल्पमूत्रकर'** कहते है। यथा—तिल।

बद्धविट्क, बद्धपुरीष—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर पुरीष को बाध देते हैं, उन्हे **'बद्धविटक'** कहते हैं। यथा—कषायरस, कटु-तिक्तरस।

अतिरुजाकर—

पर्याय—अतिरुजाकर, शूलजनन, शूलमापादयति, शूलमापादन।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर अत्यन्त पीडा उत्पन्न करते है, उन्हे **'अति रुजाकर'** कहते है। यथा—वाकुची, अम्लरस, विष।

कृमिकर, कृमिल—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने से शरीर मे कृमि पैदा करते हैं, उन्हे **'कृमिकर'** कहते है। यथा—मधुर रस का अतिसेवन।

मन्यास्तम्भकृत, मन्यास्तम्भजनन—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर मन्यास्तम्भ पैदा करते है, उन्हे **'मन्यास्तम्भकृत या जनन'** कहते है। यथा—तिक्तरसस्यातिसेवन।

मूर्च्छाकर, मूर्च्छाकृत—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से मूर्च्छा उत्पन्न होती है, उन्हे **'मूर्च्छाकर'** कहते हैं। यथा—लवणरसस्याति सेवन।

हृदयावपीडक, हृत्पीडाजनयति—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन करने से हृदय मे पीडा हो, उन्हे **'हृदयावपीडक'** कहते है। यथा—कषाय रसस्यातिसेवन।

सुप्तिकर—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे सुप्ति पैदा होती है, उन्हे **'सुप्तिकर'** कहते है यथा—विषान्नसेवन। अहिफेन।

ज्वरकृत, संतापकृत—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे ज्वर की उत्पत्ति हो, उन्हे **'ज्वरकृत'** कहते हैं। यथा— लवणरसस्याति सेवन, विषान्न सेवन, अम्लरसस्यातिसेवन।

ज्वरान्तकृत—

परिभाषा—जो द्रव्य प्रयोग करने से ज्वर को शान्त करते है, उन्हे **'ज्वरान्तकृत'** कहते हैं। यथा—वत्सनाभ, गुडूच्यादिकषाय, पचतिक्तकषाय।

दाहकर—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के प्रयोग से शरीर मे जलन पैदा होती है, उसे **दाहकर'** कहते हैं। यथा—उष्णवीर्य द्रव्य, कटुरस का अतिसेवन।

शूलशान्तिकृत––

परिभाषा––जिन द्रव्यो के प्रयोग से शूल की शान्ति होती है, उन्हे 'शूलशान्तिकृत' कहते हैं। यथा––अच्छघृत, तैल, पिप्पली, शख, चन्द्रशूर, कपर्दिका, यवानी।

श्वयथुकर––

परिभाषा––जो द्रव्य शरीर मे जाकर शोथ पैदा करते हैं उन्हे 'श्वयथुकर' कहते हैं। यथा––उष्ण, तीक्ष्ण, कटुक्षाराम्ल द्रव्यो का अति मात्रा मे सेवन करना।

अग्निकर––

पर्याय––अग्निकर, अग्निकृत, अग्निदा।

परिभाषा––जो द्रव्य प्रयोगोपरान्त शरीर मे अग्नि को बढाते हैं अथवा दीप्त करते है, उन्हे 'अग्निकर' कहते है। यथा––त्रिकटु, शतपुष्पा, हिंगु मद्य, क्षार, चित्रक आदि।

अभिष्यदीकर––

परिभाषा––जो द्रव्य प्रयोगोपरान्त शरीर मे अभिष्यन्दता को अधिक पैदा करते हैं, उन्हे अभिष्यन्दीकर' कहते हैं। यथा––लवणरस का अधिक सेवन, मधुर पिच्छिल पदार्थो का अति सेवन अधिक अभिष्यन्दी होता है।

प्रीतिकर––

परिभाषा––जिन द्रव्यो के प्रयोग से प्रीति की उत्पत्ति होती है, उन्हे 'प्रीतिकर' कहते हैं। यथा––मधुर–शीतवीर्य द्रव्य अथवा उष्ण द्रव्य।

अगदकर, अविषीकरण––

परिभाषा––जो द्रव्य शरीर मे जाकर शरीरस्थ विष को समाप्त करते है, उन्हे 'अगदकर' कहते है। यथा––नाकुली, पृश्निपर्णी, शिरीष, प्रियगु, ह्रीवेर, कुष्ठ।

अपत्य-सतानकर––

परिभाषा––जिन द्रव्यो के सेवन से अपत्य की प्राप्ति होती है उन्हे 'अपत्यसतानकर' कहते है। यथा––ब्राह्मी, दूर्वा, अतिवला, काकोली, हरीतकी, लक्ष्मणा, यष्टीमधु, गोघृत, स्वर्ण रजत आदि।

स्थैर्यकृत––

पर्याय––स्थैर्यकृत, पुष्टिदा, पुष्टिप्रद, वलप्रद, अगस्थिरीकर, दार्ढ्यकृत, उपचयकर उपलेप कृत, पुष्टिकर, वलकृत, वृहत्वकृत्।

परिभाषा––जो द्रव्य शरीर मे मासादि धातुओ की वृद्धि करके शरीर को उपचित करते है तथा अगो को स्थिर तथा दृढ वनाते है, उन्हे **'स्थैर्यकृत'** कहते हैं। यथा––क्षीरिणी, राजक्षवक, अजगन्धा, काकोली, क्षीरकाकोली, वला, कार्पासी, महावला, विदारी, कपिकच्छू मृद्वीका, खर्जूर, मास, काकोल्यादि गण, पार्थिव द्रव्य।

अल्पवाक्कर—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के प्रयोग से वाक् शक्ति अल्प होती है, उसे 'अल्पवाक्कर' कहते है। यथा—कषायरस का अतिसेवन।

आयुष्कृत—

पर्याय—आयुष्कृत, वयप्रदा, आयुर्दा, आयुप्रद।

परिभाषा—जिसके द्वारा आयुष्य को बढाया जा सके या जिससे आयु की उत्पत्ति हो, उसे 'आयुष्कृत' कहते है। यथा—काकोल्यादि गण, अश्वगन्धा, शतावरी महावला, मधुर-स्निग्ध-पिच्छिल-गुरु पदार्थ।

उर्जस्कर—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर उर्जा या शक्ति की वृद्धि करके शरीर को स्वस्थ तथा वलयुक्त वनाते है, उन्हे '**उर्जस्कर**' कहते है। यथा—आमलकी रसायन, अगस्त्यहरीतकी आदि।

कार्श्यकर, तनुकर, लाघवकर—

परिभाषा—जिनके सेवन से शरीर मे कृशता उत्पन्न हो, उन्हे '**कार्श्यकर**' कहते हैं। यथा—लघुरूक्षपदार्थ, मधु-शिलाजतु, विडङ्ग, क्षार, मुद्ग, कुलत्थ, अरिप्ट।

जड़ताकर—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के द्वारा शरीर मे जडता पैदा की जाती है, उन्हे जडताकर कहते है। यथा—एक शफ दुग्ध, अहिफेन, विष, कोकेन।

चेष्टाकर—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर की चेष्टाये बढ जाती है, उहे 'चेष्टाकर' कहते हैं। यथा—कस्तूरी, तम्वाकू।

लालाप्रसेक जनन—

परिभाषा—ये द्रव्य लालास्राव को बढाते हैं। जो दो प्रकार से होता हैं।

१—कई द्रव्य मुख मे रखने पर लाला ग्रन्थियो को उत्तेजित करते हैं और स्राव वढाते है। यथा—अकरकरा, तम्वाकू, राई, लालमिर्च।

२—कई द्रव्य रक्त मे मिलकर लाला द्वारा वाहर निकलते हैं और लाला-स्राव को वढाते है। **यथा**—पारद।

तन्द्राकर—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से तन्द्रा की उत्पति होती है, उन्हे '**तन्द्राकर**' कहते है।

यथा—मधुर, गुरु, स्निग्ध एव पिच्छिल पदार्थों का अति सेवन, विपान्न।

मेधाकर–

पर्याय–धीकर, मेधाकर, मेधाकृत वुद्धिकृत, मेधादा, मेधाप्रद, वुद्धिप्रद ।

परिभाषा–जिन द्रव्यो के उपयोग से वुद्धि बढती है, उन्हे **'धीकर-मेधाकर'** कहते है ।

यथा–ब्राह्मी, शखपुष्पी, कस्तूरी, यष्टीमधु, गुडूची, स्वर्ण, रजत इत्यादि।

पाककर–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने पर पाक की क्रिया को बढाकर प्रयुक्त द्रव्यो का पाक करती है, उन्हे 'पाककर' कहते है। **यथा–**धान्यक, मुस्तक, पिप्पलीमूल, मरिच, शुण्ठी, लवग, नागकेशर, मुस्तादि ।

पैच्छिल्यकर–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे पिच्छिलता की अभिवृद्धि होती है या पिच्छिलगुण का आधिक्य पाया जाता है, उन्हे **'पैच्छिल्यकर'** कहते है।

यथा–दधि, अन्य पिच्छिल गुणप्रधान द्रव्य ।

बन्धनकर–

परिभाषा–जो शरीर के वन्धनो को दृढ करते हैं या शरीर मे वन्धन करते है, उन्हे **'बन्धनकर'** कहते है । **यथा–**आप्य द्रव्य ।

मंगलकर–

परिभाषा–जिस वस्तु के उपयोग करने पर मगल होता है, उन्हे **'मगलकर'** कहते है । **यथा–**कल्याणकारकघृत, गोरोचन, दधि, क्षीर, अक्षत ।

रुचिकर, रुचिकारक–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से अन्न मे रुचि पैदा होती है, उन्हें **'रुचिकर'** कहते हैं । **यथा–**अम्लस्कन्ध, आम्राम्रातक करमर्द अम्लवेतस लकुच वदर दाडिम मातुलुग चागेरी नारग चुक्र तिन्तीडीक, परुषकादि गण ।

लावण्यकर–

पर्याय–वर्णकर, सौकुमार्यकर, कान्तिकर, वर्णप्रद

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे सुन्दरता बढती है, वर्ण या सुकुमारता की प्राप्ति होती है, उन्हें **'लावण्यकर'** कहते हैं ।**यथा–**उद्वर्तन, अभ्यग

विक्षेपकर–

पर्याय–विक्षेपकर, आक्षेपमापादयति, आक्षेप जनयति ।

परिभाषा जिन द्रव्यो के सेवन से विक्षेप पैदा हो जाता है, उन्हे **'विक्षेपकर'** कहते हैं । **यथा–**कुपीलु, धस्तूरवीज ।

वैशद्यकारक–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे विशदता की उत्पत्ति हो, उसे **'वैशद्यकर'** कहते हैं ।

यथा–वायव्यद्रव्य, कटुतिक्त कषाय, ताम्वूल, पूग, गन्धतृण, जवीरतृण ।

विष्यन्दनकर–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे विष्यन्दन क्रिया अधिक हो, उन्हे '**विष्यन्दनकर**' कहते है। यथा–लवणरस

शौर्यकर–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे शौर्यगुण की वृद्धि होती है, उन्हे '**शौर्यकर**' कहते हैं। **यथा**–पित्तवर्गीय द्रव्य।

स्थौल्यकर–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे स्थूलता पैदा होती है, उन्हे '**स्थौल्यकर**' कहते है। **यथा**–मधुर स्निग्ध वसामय पदार्थों का अति सेवन।

स्मृतिकर–

पर्याय–स्मृतिकर, स्मृतिदा, स्मृतिप्रद।

परिभाषा-जिन द्रव्यो के सेवन से स्मृति शक्ति वढती है, उत्पन्न होती है, उन्हे '**स्मृतिकर**' कहते हैं। यथा–ब्राह्मी, शखपुष्पी।

स्वप्नकृत स्वप्नजनन–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से नीद अधिक उत्पन्न होती है, उन्हे 'स्वप्नकृत' कहते है।

यथा–मद्य, अहिफेन, विजया, सर्पगन्धा, पारसीक यवानी, महिषीक्षीर आदि–यथा –**माहिषक्षीरं स्वप्नजननानाम्** (च सू २५)

लालास्रावकर–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से लालास्राव की उत्पत्ति होती है, उन्हे '**लालास्रावकर**' कहते है। **यथा**–अम्ल, तिक्त, कटु, गन्धद्रव्य, मद्य, राजिका, तम्बाकू, अम्लवर्ग आकारकरभ।

क्षुधाकर–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से क्षुधा की उत्पत्ति होती है, उन्हे '**क्षुधाकर** कहते हैं।

यथा–कटुतिक्तक्षार, मातुलुग, करमर्द, आर्द्रक, जीरक, हिंगु।

क्षतसन्धानकर–

परिभाषा–जो द्रव्य क्षतावस्था मे सन्धान करते हैं, उन्हे '**क्षतसन्धानकर**' कहते है। यथा–मधुररस, मधु, मधुयष्टि, घृतादि।

क्षीणसन्धानकर–

परिभाषा–जो द्रव्य क्षीण मासादि, धातु की दशा मे सधान करते है, उन्हे '**क्षीणसन्धानकर**' कहते है। यथा–मधुररस।

वातप्रकोपक–

परिभाषा–जो द्रव्य प्रयोगोपरान्त वात का प्रकोप करते है उन्हे '**वातप्रकोपक**' द्रव्य कहते है। **यथा**–शुष्कशाक, शुष्कमास, वरक, उद्दालक, कोरदूष श्यामाक, नीवार, मुद्ग, मसूर, आढकी, चणक, कलाय निष्पाव, विरुढक, तृणधान्य आदि।

पुरीषजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य पुरीष को बढाते है, उन्हे 'पुरीषजनन' कहते है।

यथा–कुलमाष, माष, कुक्कुटाण्ड, धान्याम्ल।

मूत्रजनन–

पर्याय–मूत्रजनन, अतिमूत्रल, बहुमूत्रल।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर मूत्र की अधिक उत्पत्ति करते है, उन्हे '**मूत्रजनन**' कहते है। **यथा**–इक्षुरस, वारुणी, मण्ड, द्रवमधुर-अम्ल-लवण-कफोत्क्लेदी द्रव्य, तृणपचमूल।

उदावर्तजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य उदावर्त पैदा करते है, उन्हे '**उदावर्तजनन**' कहते हैं।

यथा–रुक्षकषायकटुतिक्त भोजन।

उर:सन्धानजनन–

परिभाषा-जो द्रव्य शरीर मे जाकर क्षत हुए उर प्रदेश का सन्धान करे उन्हे '**उर सन्धानकर**' कहते हैं। **यथा**–मधुर आप्य, द्रव्य। सुधा-प्रवालमणि-मौक्तिक।

दोषजनन, दोषल–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से वातादि दोषो की उत्पत्ति होती है, उन्हे '**दोषल या दोषजनन**' कहते हैं।यथा–नवमद्यसेवन।

नेत्ररोग प्रजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवनोपरान्त नेत्ररोग पैदा करते है, उन्हे '**नेत्ररोग प्रजनन**–कहते। **यथा**–अतिमद्यपान, द्रवपदार्थों का अति सेवन।

आस्यशोषजनन–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से मुख मे शुष्कता की उत्पत्ति हो, उन्हे '**आस्यशोषजनन**' कहते है। **यथा**–कटुतिक्त रस का अतिसेवन।

स्तम्भजनन–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे स्तम्भता की उत्पत्ति होती है, उन्हे '**स्तम्भजनन**' कहते है।

यथा–कषायरसस्याति सेवन, शीतवीर्य-तिक्तरस का अतिसेवन।

विसर्पजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर विसर्प की उत्पत्ति करते है, उन्हे '**विसर्पजनन**'-कहते हैं।

यथा–रात्रौ दधिभोजन, उद्धृतस्नेह, पर्युषित पय, अम्लरसस्यातिसेवन।

आश्वासजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने पर आश्वासन पैदा करते है, उन्हे '**आश्वासजनन**' कहते है। **यथा**–मधुररस–

आनन्दजनन–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे आनन्द की उत्पत्ति होती है, उन्हे 'आनन्दजनन' कहते है। **यथा**–मद्य, भगा।

उत्क्लेदजनन–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे क्लेद की उत्पत्ति होती है, उन्हे उत्क्लेदजनन कहते है। **यथा**–अम्ल, लवणरस।

अर्दितापादन–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर अर्दित रोग उत्पन्न करते है, उन्हे 'अर्दितापादन' या 'अर्दितमापादयति' कहते है। **यथा**–कठिन पदार्थो का खाना, रुक्ष-कटु-तिक्त-कपाय पदार्थों का अधिक सेवन।

शिर शूलमापादन–

परिभाषा–जो शिर मे शूल की उत्पत्ति करे, उन्हे 'शिर शूलमापादन' कहते हैं। **यथा**–तिक्तरसस्याति सेवन।

मुखपाकमापादन–

परिभाषा जो द्रव्य शरीर मे जाकर मुख मे पाक पैदा करे, उन्हे 'मुख पाकमापादन' कहते हैं। **यथा**–लवणरस का अतिसेवन।

अक्षिपाकजनन-अक्षिपाकमापादन–

परिभाषा–जो द्रव्य सेवन करने पर अक्षिपाक पैदा करते है, उन्हे 'अक्षि-पाकमापादान" कहते है। **यथा**–लवणरस का अतिसेवन।

पुंस्त्वोपघातमापादन–

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से पुस्त्वोपघात की प्राप्ति होती है, उन्हे 'पुस्त्वोपघातमापादन कहते है। **यथा**–कटुरसस्यातिसेवन, लवणरसस्याति सेवन।

सौमनस्यजनन–

परिभाषा–सौमनस्य मनसः प्रसादता जनयतीति सौमनस्यजननम्।
अर्थात्–जो द्रव्य मन को प्रसन्न करे उसे '**सौमनस्यजनन**' कहते हैं।
यथा–मद्यं सौमनस्यजननानाम्। (च सू २५)

मार्दवकर–

परिभाषा–जो द्रव्य लगाने पर, जिस भाग मे लगाये जाते है, उस भाग मे मृदुता उत्पन्न कर देते हैं, उहे '**मार्दवकर**' कहते हैं। **यथा**–तैल, चर्बी।

मोहजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य मस्तिष्क पर क्रिया करके निद्रा लाते है, उन्हे '**मोह-जनन**' कहते है। **यथा**-अफीम, गाजा, मद्य।

आविजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य प्रसूति के समय या प्रसूति के उपरान्त गर्भाशय की सकोचन क्रिया करके आवि को निकालते है, उन्हे 'आविजनन' कहते हैं।

यथा–कुनैन, अर्गट।

स्फोटजनन–

परिभाषा–जो द्रव्य त्वचा पर लगाने से स्फोट या छाले पैदा करे, उसे "स्फोटजनन" कहते हैं। **यथा**–राई, चित्रक मल।

वर्धन सम्बन्धी संज्ञाएं–

पवनवर्धन परिभाषा–जो द्रव्य वायु की वृद्धि करते है, उन्हे **'पवनवर्धन'** कहते है। **यथा**–कटु, तिक्त, कषायरस, रुक्ष लघुगुणवाले पदार्थ।

पित्तवर्धन–

परिभाषा–जो द्रव्य पित्त की वृद्धि करते है, उन्हे **'पित्तवर्धन'** कहते है।

यथा–पिण्डालु, क्षार, तीक्ष्णोष्ण कटु अम्ल लवण पदार्थ।

कफाभिवर्धक–

पर्याय–श्लेष्मवर्धन, श्लेष्माभिवर्धन।

परिभाषा–जो द्रव्य कफ की अभिवृद्धि करते हैं, उन्हे कफवर्धन' कहते हैं।

यथा–जीवनीय, विदारिगन्धादिगण, मधुरशीत स्निग्ध पदार्थ।

स्तन्यवर्धन–

परिभाषा–जो द्रव्य स्तन्य-दुग्ध की वृद्धि करते है, उन्हे **स्तन्यवर्धन'** कहते है। **यथा**–जीरक, गुड, शतपुष्पा, कार्पासबीज, काकोल्यादिगण।

ओजवर्धन, ओजवर्धक–

परिभाषा–जो द्रव्य ओज की वृद्धि करते है, उन्हे **'ओजवर्धक'** कहते है

यथा–दुग्ध, मधुररस।

धातुवर्धन, धातुविवर्धन–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीरस्थ सभी धातुओ की वृद्धि करते है, उन्हे **'धातुवर्धन'** कहते हैं। **यथा**–क्षीरवर्ग, मधुररस।

ग्रहणीबलवर्धन–

परिभाषा–जो द्रव्य ग्रहणी के बल को बढाते है, उन्हे **'ग्रहणीबलवर्धन'** कहते हैं। **यथा**–त्र्यूषणादि घृत, चित्रकादि वटी।

शोणितवर्धन–

परिभाषा–रक्तधातु की वृद्धि करनेवाले द्रव्यो को **'शोणितवर्धन'** कहते हैं।

यथा—कासीस भस्म, लोहभस्म, मण्डूर, मधुररस।

मांसविवर्धन–

परिभाषा–जो द्रव्य मास की वृद्धि करते हैं, उन्हे मासविवर्धन' कहते हैं।

यथा–महामृग, क्रव्याद्मास, काकोल्यादिगण, मधुररस।

मेदोवर्धन, मेदोवर्धक–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीरस्थ मेद धातु की वृद्धि करते है, उन्हे **'मेदोवर्धन'** कहते हैं। **यथा**–वसा, मेद, घृत, मधुररस।

अस्थिवर्धन–

परिभाषा–अस्थि की वृद्धि करने वाले द्रव्यो को '**अस्थिवर्धन**' कहते है।

यथा–कच्छपपृष्ठ, प्रवाल, मुक्ता, शुक्ति।

मज्जावर्धक–

परिभाषा–मज्जा धातु की वृद्धि करनेवाले द्रव्यो को '**मज्जावर्धक**' कहते हैं। यथा–मधुररस-घृतादि।

शुक्रवर्धन–

परिभाषा–शुक्रधातु की वृद्धि करनेवाले द्रव्यो को '**शुक्रवर्धन**' कहते है।

यथा–मधुररस, मधुर शीत स्निग्ध द्रव्य, मूसली, कपिकच्छू।

बलवर्धन–

परिभाषा–शरीर मे बल की वृद्धि करनेवाले द्रव्यो को '**बलवर्धन**' कहते हैं।

यथा–वेसवार मधुरस्निग्ध पदार्थ।

अग्निवर्धन, अग्निविवर्धन–

परिभाषा–क्षीण हुई अग्नि की वृद्धि करनेवाले द्रव्यो को '**अग्निवर्द्धन**' कहते हैं।

यथा–मातुलुगशठीरास्नाकटुत्रयहरीतकी सर्जिका यावशूकाख्यौ क्षीरादि।

दोषसंघातवर्धन–

परिभाषा–दोषसघात को वढानेवाले द्रव्यो को '**दोषसघातवर्धन**' कहते हैं।

यथा–शीतलजल।

ज्वरवेगाभिवर्धन–

परिभाषा–जो द्रव्य ज्वर के वेग की अभिवृद्धि करते है, उन्हे '**ज्वर-वेगाभिवर्धन**' कहते है। **यथा**–लहसुन, कषायरस।

नाश एवं तदभिप्रेतार्थसूचककर्म परिभाषाएँ

वातघ्न–पर्याय–अनिलघ्न, अनिलहा, वातघ्न, वातहन्ता, वातापहम्, अनिलापहम्, सर्ववातापहम्, मारुतघ्न, मारुतापहम्, वातनाशन, अनिलनाशन, अनिलहर, वात-हर, वातजित, अनिलजित, उर्ध्वानिलजित्, अनिलसूदन, केवलवातनुत, पवननाशन।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर, बढे हुए वातका नाश करते है या उसे जीतकर स्वकार्य करते है, उन्हे वातघ्नादि नामो से पुकारते हैं।

यथा–दशमूलगण, वीरतर्वादि, पिप्पल्यादि, परुषकादिगण, मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्धोष्ण, गुरु आदि द्रव्य।

पित्तघ्न–

पर्याय–पित्तघ्न, पित्तहन्ता, पित्तापह, पित्तहा, पित्तघ्नी, पित्तनाशन, पित्तनाशनी, पित्तविनाशन, पित्तहर, पित्तहारी, पित्तावरोधी, पित्तजित पित्तजयेत्।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे वढे हुए पित्त का नाश करते है या पित्त के कार्यो को या पित्त को जीतकर स्वकार्य करते है, उन्हे 'पित्तघ्न' आदि नाम से पुकारते है। **यथा**—प्रियग्वादि-अम्बष्ठादि-लाक्षादि-उत्पलादिगण, मधुर, स्निग्ध, तिक्त, कपायरस, गुर्वादि द्रव्य।

कफघ्न–

पर्याय–कफघ्न, कफहा, कफापह, श्लेष्महा, श्लेष्मघ्न, वलामघ्न, कफनाशन, कफहर, श्लेष्महर, वलासजित, कफजित, कफनिवारण, श्लेष्मनिर्हरण, कफनिरोधन।

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से शरीर मे वढे हुए कफ का विनाश होता है या जो द्रव्य कफ के कर्मो का या कफ को जीतकर स्वकार्य करते है, उन्हे 'कफघ्न' आदि नामो से पुकारते हैं। **यथा**–सालसारादि-रोध्रादि-अर्कादि, सुरसादि-पिप्पल्यादिगण, कटुतिक्त कपायरस, रुक्ष लघूष्णादि द्रव्य।

वातव्याधिनाशन–

पर्याय–वातव्याधिनाशन, सर्वमारुतामयनाशन, वातव्याधिहर, वातरोगहर, सर्ववातामयहर, सर्वानिलव्याधिहर, वातरोगजित, सर्ववातविकारजित, सर्ववातविकारनुत, वातविकारनुत, वातामयापह।

परिभाषा–जिन द्रव्यो के सेवन से सम्पूर्ण वातव्याधियो या वातजन्य विकारो का नाश होता है, उन्हे '**वातव्याधिनाशन**' आदि सज्ञाओ से कहते हैं।

यथा–निरूहण, अनुवासन वस्ति, एरण्डस्नेह, दशमूल, रास्नादिक्वाथ, गुग्गुलु के विविध योग।

पित्तामयापह–

पर्याय–पित्तामयापह, पित्तामयहर।

परिभाषा–जो द्रव्य सर्व पित्त विकारो की शान्ति करते है, उन्हे **पित्तामयापह**' आदि सज्ञाये दी गयी है। **यथा**–विरेचन, घृत, चन्दन, आमलक, उत्पल, नलिन, कुमुद, पुण्डरीक, शतपत्र, सुगन्धवाला, सारिवादिगण।

कफव्याधिविनाशन—

पर्याय—कफव्याधिविनाशन, श्लेष्म रोगहर, श्लेष्मविकारनुत।

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से सम्पूर्ण कफव्याधियो का विनाश होता है, उन्हे '**कफव्याधिविनाशन**' आदि सज्ञाए दी गयी है। यथा—वमन द्रव्य, मधु, अगरु, कुष्ठ, तगर, क्षार पिप्पल्यादि–वृहत्यादि–मुष्ककादि–वचादि–सुरसादिवर्ग।

आनाहघ्न—

पर्याय—आनाहघ्न, आनाहनाशन, आनाह विमोक्षण।

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से आनाह का नाश हो, उन्हे '**आनाहघ्न**' कहते हैं। यथा—कुलत्थ, पचमूल- यवक्षार, वचा, सैन्धव, हिंगु इत्यादि।

वातगुल्मापह—

पर्याय—वातगुल्मापह, वातगुल्मनुत ।

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से वातगुल्म का नाश हो, उन्हे '**वातगुल्मापह**' कहते है । यथा—त्र्यूषणादिघृतम्, दाडिमादिसिद्धघृत, हिंगु-सौवर्चलादिघृत ।

वातज्वरापह—

परिभाषा—जिन द्रव्यों के सेवन से वातज्वर का नाश होता है, उन्हे '**वातज्वरापह**' कहते है यथा—

बलादर्भश्वदंष्ट्राणां कषायं पादशेषितम् ।
शर्कराघृततलयुक्त पिवेद्वात ज्वरापहम् ॥ सु० उ० ३९।१७९

वक्त्रक्लेदमलापहम्—

पर्याय—वक्त्रक्लेदमलापहम्, वक्त्रमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर मुखगत क्लेद तथा मल को समाप्त करते है, उन्हे '**वक्त्रक्लेदमलापह**' कहते हैं । यथा—कर्पूर, जावित्री, कस्तूरी, शीतलचीनी, लवग ।

रक्तपित्तघ्न—

पर्याय—रक्तपित्तघ्न, पित्तशोणितघ्नन्ति, पित्तासृगापह, असृग्पित्तनुत, रक्तपित्तघ्नी, रक्तपित्तनिर्वहण ।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर रक्तपित्त को शान्त करते है, उन्हे '**रक्तपित्तघ्न**' कहते हैं । यथा—वासा, पक्वोदुम्बर, शीतवीर्य व्य, शतावरीघृत, दूर्वाद्यघृत, कुष्माण्ड रसायन, खण्डकाद्यलौह ।

पित्तज्वरापह—

पर्याय—पित्तज्वरापह, पित्तज्वरनाशन, पित्तज्वरहर ।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर में जाकर पित्तज्वर का विनाश करते है, उन्हे '**पित्तज्वरहर**' कहते है । यथा—पटोलादिक्वाथ, पठानी लोध्र, नीलकमल गुडूची, कमल, अनन्तमूल, पित्तपापडा, मधुयष्टि, मृद्विका, आमलकी ।

शिरःशूलघ्न—

पर्याय—शिरशूलघ्न, शिरोरोगहा, शिरोशूलहा ।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर शिर शूल को शान्त करते है, उन्हे '**शिर शूलघ्न**' कहते है । यथा—नस्य, कलशी–बृहती–द्राक्षा आदि से सिद्धघृत ।

यक्ष्मापह—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर राजयक्ष्मा रोग को शान्त कर देते है, उन्हे '**यक्ष्मापह**' कहते है । यथा—वासा, मृगाकरस, राजमृगाकरस, च्यवन-प्राश, नागबलाद्यघृत, निर्गुण्डीघृत, चन्दनाद्यतैल ।

स्तन्योपहन्ता—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर स्तनो की वृद्धि को या स्तनो मे आनेवाले दुग्ध या उसकी वृद्धि का नाश करते है उन्हे **'स्तन्योपहन्ता'** कहते हैं। यथा—कटुरस।

स्रोतोविबन्धघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य महास्रोतस की उचित क्रिया न होने पर, स्रोतसो के भीतर होनेवाले स्रोतोविबन्ध या दोषो का हरण करते है, उन्हे **'स्रोतोविबन्धघ्न'** कहते है। यथा—विरेचन द्रव्य–यथा—त्रिवृत्, दन्ती, द्रवन्ती, आरग्वध।

उदरामयघ्न—

पर्याय—उदरामयघ्न, उदरनुत, उदरनाशन।

परिभाषा— जो द्रव्य सेवन करने मे सम्पूर्ण उदर विकारो को शान्त करते हैं, उन्हे **'उदरामयघ्न'** कहते है। यथा—

वदर्यर्जुनजम्ब्वाम्र शल्लकीवेतसत्वच।
शर्कराक्षौद्र सयुक्ता पीताघ्नन्त्युदरामयम्। सु० उ० ४०।९७

उदरविषापहम्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर उदरविषो का नाश करते है, उन्हे 'उदरविषापह' कहते है। यथा—

वचामदन जीमूतकुष्ठ वा मूत्रपेषित पूर्वकल्पेन
पातव्य सर्वोदर विषापहम्। अ० उ० ३८।२३

छर्दिघ्न—

पर्याय—छर्दिघ्न, छर्दिघ्नन्ति, छर्दिहा, छर्दिघ्नी, छर्दि निवारण, छर्दिहर, वमिघ्न।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर छर्दि रोग को शान्त करते है, उन्हे **'छर्दिघ्न'** आदि सज्ञाओ मे पुकारा जाता है। यथा—गुडूच्यादिक्वाथ, पर्पटक्वाथ, वेल के जड की छाल, मूर्वाचूर्ण, चावलमण्ड, आरग्वधादि गण।

प्लीहापह—

पर्याय—प्लीहापह, प्लीहातिघ्नन्ति, प्लीहाहा, प्लीहानुत, प्लीहनाशन।

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से अतिवृद्धप्लीह क्षीण होती है और अपनी प्राकृत दशा मे आ जाती है, उन्हे **'प्लीहापह'** कहते है। यथा—रोहितक, पिप्पली, अर्कलवण, गोमूत्र आदि।

प्लीहशूलजित, प्लीहशूलनुत—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे प्लीहा के शूल को शान्त करते हैं, उन्हे **'प्लीहशूलजित'** कहते हैं। यथा—

रोहितक, तालीसपत्र मरिच नागर पिप्पली शुभा
यथोत्तर भागवृद्ध्या त्वगेलेचार्धभागिके तद्द्रव्य
प्लीह — — — — — — — शूलजित — — — — — — अ चि ५।६०

कामलापह्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर कामला रोग का विनाश करते है उन्हे '**कामलापह्**' कहते हैं। यथा–निशागैरिकाधात्री अजन, तिक्तकोशातकीनस्य।

ग्रह्णीरोगघ्न—

पर्याण—ग्रह्णीरोगघ्न, ग्रह्णीदोपनुत, ग्रह्णीहर।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर ग्रह्णीरोग या ग्रह्णी दोष को नाश करते हैं, उन्हे '**ग्रह्णीरोगघ्न**' कहते है। यथा—कुटज, बिल्व, तक्र, नागर, कुटजावलेह, तक्रारिष्ट, रसपर्पटी, पचामृतपर्पटी, बिल्वगर्भघृत, भूनिम्बादि चूर्ण इत्यादि।

गर्भरुजापह्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर गर्भरुजा का नाश करते हैं, उन्हे '**गर्भरुजापह**' कहते है। यथा—कपित्थ, बिल्व, बृहती, पटोल, इक्षु।

अचरणापहम्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर योनिगत अचरणा रोग का नाश करते हैं, उन्हे '**अचरणापहम्**' कहते है। यथा—उत्तरवस्ति तैल से, किण्वचूर्ण मधु से।

विप्लुतापहम्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर विप्लुता रोग का नाश करते है, '**विप्लुतापहम्**' कहते है यथा—स्नेहपिचुधारण।

मदघ्न—

पर्याय—मदघ्न, मदघ्नी, मदघ्नन्ति।

परिभाषा—जिन द्रव्यो के प्रयोग से मद नामक रोग का विनाश होता है, उन्हे '**मदघ्न**' कहते हैं। यथा—पुराणघृत, उपोदिका, त्रिजात, पिप्पली, द्राक्षा, मधुक, खर्जूर आदि।

मूर्छाघ्न—

पर्याय—मूर्छाघ्न, मूर्छाघ्नन्ति, मूर्छापह।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर मूर्छा को नाश करते है, उन्हे '**मूर्छाघ्न**' कहते हैं। यथा—मधुर रस, त्रिफला, शतावर्यादिसिद्ध दुग्ध या घृत।

मन्याशूलघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य सेवन करने से मन्याशूल को समाप्त करते है, उन्हे '**मन्याशूलघ्न**' कहते है। यथा—कर्णपूरण।

हनुशूलघ्न—

परिभाषा—जिन द्रव्यो के उपयोग मे हनुशूल की शान्ति होती है, उन्हे '**हनुशूलघ्न**' कहते हैं। यथा—कर्णतैल पूरण।

कासघ्न—

पर्याय—कासघ्न, कासापह, सर्वकासहर, कासनाशन, कासविनाशन, कासहर, कासनिवर्हण ।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर कास को शान्त या नाश करते हैं, उन्हे 'कासघ्न' आदि सज्ञाओ मे पुकारा जाता है यथा—

वासा, बृहतीद्वय । द्राक्षाभयामलक पिप्पली दुरालभाशृंगी कण्टकारिका वृश्चीर पुनर्नवातामलक्य इति दशेमानि कासहराणि भवन्ति । (च सू ४)

विदारी गन्धादि और सुरसादि गण । (सु सू ३८)

श्वासघ्न—

पर्याय—श्वासघ्न, श्वासहा, श्वासापह, श्वासनाशन, श्वासकासहर, श्वास प्रकाशिनी, श्वासामय विनाशन ।

परिभाषा—जिन द्रव्यो के सेवन से श्वास रोग की शान्ति या समाप्ति होती है, उन्हे 'श्वासघ्न' कहते है । यथा—

शटीपुष्करमूलाम्लवेत सैलाहिग्वगुरु सुरसातामलकी जीवन्ती चण्डा इति दशेमानि श्वासहराणि भवन्ति । (च सू ४)

हिक्काघ्न—

पर्याय—हिक्काघ्न, हिक्कापह ।

परिभाषा—हिक्का हन्तीतिहिक्काघ्न ।

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर मे जाकर हिक्का रोग को नाश करते हैं, उन्हे 'हिक्काघ्न' कहते है । यथा—**शटी, पुष्करमूल–बदरबीज–कण्टकारिका–बृहती–वृक्षरुहाभया–पिप्पली–दुरालभा–कुलीरशृङ्गी इति ।** (च सू ४)

अश्मरीघ्न—

पर्याय—अश्मरीघ्न, अश्मघ्न, शर्कराहा, अश्मरीनाशन, शर्करा नाशन, अश्मरीनिषूदन ।

परिभाषा—अश्मरी हन्तीति अश्मरीघ्न ।

अर्थात्—जो द्रव्य अश्मरी रोग को शान्त या नष्ट करते हैं, उन्हे 'अश्मरीघ्न' कहते हैं ।

नोट—जब मूत्र के घटक मिलकर जब अपना एक घनसघात बना लेते हैं और पत्थर की तरह कठोर हो जाते हैं, तो उसे '**अश्मरी**' कहते है ।

प्रमेहघ्न—

पर्याय—प्रमेहघ्न, प्रमेहहा ।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर प्रमेह का नाश करते हैं उन्हे 'प्रमेहघ्न' कहते हैं । यथा—आरग्वध–इन्द्रयव–पाटलिका–निक्ता निम्बामृता–भूनिम्ब–मैरेया–पटोल–करज–सप्तच्छद आदि ।

इन्द्रियोपघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर इन्द्रियो की क्रिया का नाश करते है, उन्हे '**इन्द्रियोपघ्न**' कहते है। यथा—विपान्न या विपसेवन।

दोषघ्न—

पर्याय—दोपघ्न, दोपहर, त्रिदोषघ्न।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर तीनो दोषो का नाश करते है, उन्हे '**त्रिदोषघ्न**' कहते है यथा—स्नेहवस्ति, शतावरीअकुर, आमलकी, विभीतक, हरीतकी, तक्र।

रक्तघ्न, रक्तनाशन—

परिभाषा—जो द्रव्य रक्तस्थित रक्तकण, श्वेतकण, जीवसार, प्रोटोप्लाज्म, प्लेटलेट आदि सघटनात्मक द्रव्यो मे से एक या अधिक सघटन द्रव्य का नाश करते हैं, उन्हे '**रक्तघ्न**' कहते है। यथा—क्षार, तीक्ष्ण द्रव्यो का अधिक प्रयोग। सोमल, स्फुरक, गन्धक, सरसतैल, मद्य, कुनैन, फेनक।

रक्त दोषघ्न—

पर्याय—रक्तदोपघ्न, रक्तदोपहर, असृग्दोषघ्न।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर रक्त मे मिलकर रक्तगत वात पित्त कफ दोपो को तथा अन्य रक्तविकारो का नाश करते हैं, उन्हे '**रक्तदोषघ्न**' कहते है। यथा—सारिवा, उशीर, काश्मर्य, मधुक।

रक्तनिष्ठीवघ्नन्ति—

परिभाषा—जो द्रव्य रक्तनिष्ठीवन या थूक से रक्त निकलने को शान्त करते है, उन्हे '**रक्तनिष्ठीवघ्न**' कहते है। यथा—त्रिजात, पिप्पली, सिता, द्राक्षा, मधुक, खर्जूर, एलादिवटी।

मेदोपह—

पर्याय—मेदोपह, मेदोपहन्ता, मेदोविनाशिनी मेदोनिवारण, मेदोहर।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर बढे हुए मेधधातु को कम करते हैं, उन्हे '**मेदोपह**' इत्यादि अनेक सज्ञाओ से प्रयुक्त किये है। यथा—शिलाजतु, रोध्रादिगण, यव, मधु, चणक, अर्कादिगण, साल्सादिगण, मुष्ककादिगण, कटुरस।

शुक्रबलापह—

परिभाषा—शुक्रबल अर्थात् सन्तानोत्पत्ति शक्ति और उस जनन शक्ति को जो द्रव्य नाश करते हैं, उन्हे '**शुक्रबलापह**' कहते हैं। यथा—कटुरस का अतिसेवन।

शुक्रघ्न—

पर्याय—शुक्रघ्न, शुक्रापह, शुक्रोपहन्ता, शुक्रनाशन, शुक्रहर, शुक्रजित, शुक्र निषूदन।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीरस्थ शुक्रधातु को नष्ट करते हैं, उन्हे '**शुक्रघ्न**' आदि अनेक सज्ञाओ मे पुकारा जाता है। यथा—कुलत्थ, अतसी, कटुरस का अतिसेवन।

शुक्रविषापह–

परिभाषा–जो द्रव्य शुक्रगतविष को नष्ट करते है, उन्हे **'शुक्रविषापह'** कहते है। यथा–निष्पाव

शुक्रामयहम्–

परिभाषा जो द्रव्य शुक्र मे होनेवाले विकारो यथा—अल्प वातादि दोषो से दुष्ट, क्षीण शुष्क, ग्रथित आदि विकारो को शान्त करते है, उन्हे **'शुक्रामयहम्'** कहते है। यथा–जीवन्त्यादि सिद्धतैलघृत की अनुवासन वस्ति।

लालाप्रसेकापनयन–

परिभाषा–जो द्रव्य लालास्राव को कम या नष्ट कर देते है, उन्हें **'लाला-प्रसेकापनयन'** कहते हैं। यथा–धुस्तूर–हरिताल

दृष्टिक्लेदापहम्–

परिभाषा–जो द्रव्य नेत्रगत क्लेद का नाश करते है, उन्हे **'दृष्टिक्लेदापह** कहते है। यथा–सैन्धवाञ्जन, कषायाञ्जन,

अक्षिशूलघ्न–

परिभाषा–जो द्रव्य आखो के दर्द को शान्त करते हैं, उन्हे **'अक्षिशूलघ्न'** कहते हैं। यथा–शखाद्यञ्जन, गण्डूपदाञ्जन, पिप्पल्यादिवर्ति।

नयनामयघ्न, अक्षिरोगनुत्–

परिभाषा–जो द्रव्य अक्षिगत सभी रोगो को शान्त करते हैं, उन्हे **'अक्षिरोगनुत'** कहते हैं। यथा–त्रिफला।

दृष्टिघ्न–

पर्याय–दृष्टिघ्न, दृग्घ्न, दृग्टिवलापह, दृग्हृत, दृगापह।

परिभाषा–जो द्रव्य दृष्टि शक्ति को नष्ट करते हैं, उन्हे **'दृष्टिघ्न'** कहते है। यथा–अतसी, कुठेर, सिग्रु, सुरस, सुमुख, आसुरी भूतृण, फणिज्जक, अर्जक, जम्बीर इत्यादि।

ईक्षणपाकघाती (Anti septic)

परिभाषा–जो द्रव्य नेत्रगत पाक रोक देते है, उन्हे **'ईक्षणपाकघाती'** कहते हैं। यथा–पलाशरस क्रिया।

कर्णशूलघ्न, कर्णपीडाहर–

परिभाषा–जो द्रव्य कर्णशूल को नष्ट करते है, उन्हे **'कर्णशूलघ्न'** कहते हैं। यथा–सुदर्शनरस, निर्गुण्डी तैल।

कण्ठघ्न–

परिभाषा–जो द्रव्य कण्ठ को नाश करते हैं उन्हे **'कण्ठघ्न'** कहते हैं। यथा–जाम्बव, आम कपित्थ

स्वरभ्रंशंघ्नन्ति–

परिभाषा–जो द्रव्य स्वर भ्रंश को नष्ट करते हैं, उन्हे **'स्वरभ्रंशघ्न'** कहते हैं। यथा–त्रिजात, पिप्पली, सिता, द्राक्षा, मधुक, खर्जूर, एला, कुलिजन।

तृष्णाघ्न–

पर्याय–तृष्णाघ्न, तृष्णाघ्नी, तृष्णापह, तृड्घ्न, तृड्पह, पिपासाघ्न, तृष्णानाशन, तृष्णानाशनी, तृड्नाशन, पिपासानाशन, तृष्णाहर, तृड्हर, तृषाहर, पिपासाहर, तृड्जित, तृष्णानुत।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर तृष्णा को शान्त करते है, उन्हे 'तृष्णाघ्न' कहते है। यथा–परुपकादिगण, उत्पलादि–गुडूच्यादि-सारिवादिगण के द्रव्य।

कण्डूघ्न–

पर्याय–कण्डूघ्न, कण्ड्वापहम्।

परिभाषा- जो द्रव्य कण्डू को नष्ट करते हैं, उन्हे 'कण्डूघ्न' कहते हैं।

यथा–चन्दन-नलद-कृतमाल, नक्तमाल, निम्ब-कुटज-सर्षप-मधुक-दारुहरिद्रा-मुस्तानीति दशेमानि कण्डूघ्नानि भवन्ति (च सू ४)

कृमिघ्न–

पर्याय–कृमिघ्न, कृमिघ्नी, कृमिहा, जन्तुघ्न, कृमिहर, कृमिनाशन।

परिभाषा–विभिन्न प्रकार के कृमियो को नष्ट करनेवाले द्रव्यो को **'कृमिघ्न'** कहते हैं यथा–पलाश, विडग, पारसीकयवानी, शोभाजन, मरिच, गण्डीर, निर्गुण्डी, अपामार्ग, गोक्षुर, मूषापर्णी, वृषपर्णी।

कुष्ठघ्न–

पर्याय–कुष्ठघ्न, कुष्ठनिर्हरण, कुष्ठहा, कुष्ठापह।

परिभाषा–कुष्ठ को नाश करनेवाले द्रव्यो को **'कुष्ठघ्न'** कहते है।

यथा–खदिराभयामलक–हरिद्रारुष्कर–सप्तपर्णारग्वध–करवीर–विडङ्ग, जातीप्रवाला इति। (च सू ४)

विषघ्न–

पर्याय–विषघ्न, विषापह, सर्वविषघ्न, विषनाशन, गरहर, विषसूदन, विषनुत।

परिभाषा–जो द्रव्य विष का नाश करते है, उन्हे **'विषघ्न'** कहते हैं।

यथा–हरिद्रा–सुवहा–मजिष्ठा–सूक्ष्मैला–पालिन्दी–चन्दन–कतक–शिरीष–सिन्धुवार–श्लेष्मातका इति। (च सू. ४)

श्वयथुघ्न–

पर्याय–श्वयथुघ्न, शोफघ्न, शोफघ्नन्ति, शोफनिवारण, शोफहर, शोफ-निर्वापण, शोफहा।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर शोथ का हरण करते हैं, उन्हे 'श्वयथुहर' कहते हैं।

यथा–पाटलाग्निमन्थश्योनाक–बिल्व-काश्मर्य–कण्टकारिकाबृहती–शालपर्णी-पृश्निपर्णी–गोक्षुरका इति। (च सू ४)

ज्वरहर–

पर्याय–ज्वरहर, ज्वरदाहार्तिनुत, विषमज्वरजित, सर्वज्वरहर, सर्वज्वरनाशन, ज्वरघ्न, ज्वरापह, ज्वरहन्ता, पित्तज्वरनाशन, जीर्णज्वरापह।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर सभी प्रकार के ज्वरो को स्वेदन पाचन मूत्रलादि विधियो मे नष्ट करते है उन्हे ज्वरघ्न कहते है।

यथा–सारिवा–शर्करा–पाठा–मजिष्ठा–द्राक्षापीलू परुषकाभयामलक–विभीतकानीति (च सू ४)

पचतिक्त कषाय, गुडूच्यादि कषाय, ताल्रभस्म, मृत्युञ्जय।

श्रमहर–

पर्याय–श्रमहर, श्रमजित, श्रमहा, श्रमनाशन, श्रमघ्न।

परिभाषा–शरीर की थकावट या श्रम को दूर करनेवाले द्रव्यो को 'श्रमहर' कहते है।

यथा–द्राक्षा–खर्जूर–प्रियाल-बदर–दाडिम–फल्गु–परुषकेक्षु–यव षष्टिका इति दशेमानि श्रमहराणि भवन्ति। (च. सू. ४)

तृप्तिघ्न–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे जाकर धातुओ की तर्पण क्रिया को नष्ट करते है, उन्हे तृप्तिघ्न कहते है।

यथा–नागरचव्यचित्रकविडङ्ग मूर्वा-गुडूची–वचा–मुस्त–पिप्पली–पटोलानीति दशेमानि तृप्तिघ्नानि भवन्ति। (च सू ४)

अर्शोघ्न—

पर्याय—अर्शोघ्न, अर्शोविकारघ्न, गुदकीलापह।

परिभाषा— गुदा की वलि मे होने वाले मासाकुरो को अर्श कहते है और उन अर्श को नष्ट करने वाले द्रव्यो को अर्शोघ्न' कहते हैं। यथा—**कुटजबिल्व–चित्रक–नागरातिविषाभयाधन्वयासक–दारुहरिद्रा–वचा–चव्यानीति** (च सू ४)

नाभिपाकहर—

परिभाषा—नाभिपाक को हरण करने वाले द्रव्यो को **नाभिपाकहर'** कहते है। यथा—**लोध्रमधुक प्रियगुहरिद्रा कल्कसिद्धेन तैलेनाभ्यंगात्।**

(च० शा० ८)

गर्भसुप्तिनिवारक—

परिभाषा—गर्भ की सुप्ति को निवारण करने वाले द्रव्यो को **गर्भसुप्तिनिवारक'** कहते है। यथा—मृदु–मधुर–शीत द्रव्य।

गर्भोपघातकर—

परिभाषा—जो द्रव्य गर्भ को नही रहने देते है, उन्हे **गर्भोपघातकर'** कहते हैं। यथा—तीक्ष्णोष्ण लवण–अम्ल–गोधामास–वराहमास–मत्स्यमास।

गण्डमालानाशक—

परिभाषा—गण्डमाला नामक रोग को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **'गण्डमाला नाशक'** कहते है। यथा—काचनार, मुण्डी, गुडूची, सारिवा, गुग्गुलु, लौह।

रक्षोघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य राक्षस या जन्तु या जीवाणुओ का नाश करते है, उन्हे **'रक्षोघ्न'** कहते है। यथा—गुग्गुलु, अगरु, राल, वचा, सिद्धार्थ, लवण, निम्बपत्र, घृत, लागली, जटिला, ब्रह्मचारिणी, लक्ष्मी, गुहा, अतिगुहा, शतवीर्या, सहस्रवीर्या, लशुन, हिंगु, पुराणघृत, सर्पगन्धा, मेषशृगी, विधारा, त्रिकटु, अर्कमूल।

दन्तोद्भव रोगघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य दन्त निकलने के समय उत्पन्न हुए दन्त रोगो को नष्ट करते है, उन्हे **'दन्तोद्भवरोगघ्न'** कहते है। यथा—समगाधातकी रोध्र-वलाद्वय आदि से सिद्धघृत क्षीरमस्तुयुक्त।

मूत्रविकारघ्न—

पर्याय—मूत्रविकारघ्न, मूत्रामयापह, मूत्रविकारहर मूत्रामयहर।

परिभाषा—मूत्र के अनेक प्रकार के विकारो को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **मूत्रविकारघ्न'** कहते हैं। यथा—गोक्षुर, अनन्तमूल, शीतलचीनी, तृणपचमूल, अपामार्ग, पाषाण भेद, मुष्ककादि, परुषकादि वर्ग।

मूत्रकृच्छापहम्—

पर्याय—मूत्रकृच्छापह, मूत्रकृच्छहर।

परिभाषा—मूत्रत्याग की कृच्छता को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **'मूत्र-कृच्छापह'** कहते है। मूत्रमार्ग मे विकृति होने से मूत्रत्याग मे कृच्छता–कठिनाई होती है और विबन्ध नही होता।

मूत्राघातहर—

पर्याय—मूत्राघातहर, मूत्राघात निवारण।

परिभाषा—जो द्रव्य मूत्राघात को नाश करते है उन्हे **'मूत्राघातहर'** कहते है। यथा—वीरतर्वादिगण।

नोट—मूत्राघात मे विबन्ध की मात्रा अधिक व कृच्छता की कमी होती है।

मूत्रविबन्धजित--

परिभाषा--जो द्रव्य मूत्रविबन्ध को नाश करते है, उन्हे '**मूत्रविबन्धजित**, कहते है। यथा--तृणपचमूल, परूषकादि-मुष्ककादि, वीरतर्वादि, वृहत्यादि, नलमूल इक्षुरस, शुण्ठीबलाव्याघ्री गोकण्टकगुड सिद्धपयप्रयोग।

नोट--मूत्रविबन्ध-मूत्र का खुलकर न उतरना, उन्हे मूत्र का विबन्ध कहा जाता है।

मूत्रदोषहर--

परिभाषा--जो द्रव्य मूत्रगत दोषो का हरण करते है, उन्हे '**मूत्रदोषहर**' कहते है। यथा--परूषकादि-वीरतर्वादि गण।

स्वेदघ्न--

परिभाषा--स्वेद को नाश करने वाले द्रव्यो को '**स्वेदघ्न**' कहते है। यथा--स्नान, शीत द्रव्यो का आलेप प्रयोग, यशदभस्म, प्रवाल, नवक्षीरी तुगाक्षीरी।

अतिसारघ्न--

पर्याय--अतिसारघ्न, पित्तातिसारघ्न, पक्वातिसारघ्न, आमातिसारजित।

परिभाषा--जो द्रव्य अतिसार के विभिन्न भेद तथा अवस्थाओ को दूर करते है, उन्हे '**अतिसारघ्न**' कहते है। यथा--आमातिसारजित-पत्रकल्क घृतमृष्ट तिल्वकस्य सशर्करम्।

पेया वा उत्कारिका-आमातिसारजित।

पक्वातिसार-प्रियङ्ग्वादि-अम्बष्ठादिगण॥ अ सू १५।३८

पित्तातिसारघ्न-किराततिक्तं मुस्त वत्सक सरसाजन पित्तातिसारघ्नम् (चक्रदत्त)

अग्निदाहरुजापहम्--

परिभाषा--जो द्रव्य अग्निदाहजन्य पीडा को नष्ट करते हैं, उन्हे '**अग्निदाहरुजापह**' कहते हैं यथा-- शतधौतघृत।

अभिघातरुजापहम्--

परिभाषा--जो द्रव्य अभिघातजन्य पीडा को शान्त करते है, उन्हे '**अभिघातरुजापह**' कहते है। यथा--परिषेक, घृत, मधुयष्ठी।

अभिष्यन्दघ्न, अभिष्यन्दहर--

परिभाषा--अभिष्यन्द को नष्ट करने वाले द्रव्यो को '**अभिष्यन्दघ्न**' कहते हैं। यथा--पचतिक्त, रसाजन द्रव।

अरुचिहा--

पर्याय--अरुचिहा, अरुचिनुत, अरुचिजित, अरुचिहर, अरुचिघ्नन्ति, अरोचहर, अरुचिपहम् अरोचक नाशन।

परिभाषा--अरुचि को नष्ट करने वाले द्रव्यो को '**अरुचिहर**' कहते हैं। यथा--सुरसादि-श्यामादिगण, लवणरस, तिक्तरस।

अल्पवर्चहा—

परिभाषा—अल्पवर्चता को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'अल्पवर्चहा। कहते हैं। यथा—शूकधान्यवर्ग। यव, माष।

आखुविषापहम्—

परिभाषा—मूषक विष को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'आखुविषापह' कहते है। यथा—सिद्धवास्तूक, शिशुविल्वमूल, पुनर्नवा, वचा, गोक्षुरु, जीमून, शरपुखा बीज, अकोलमूल, वत्समूत्र।

अनलसादघ्न—

पर्याय—अनलसादघ्न, अपवितनाशन, अग्निमान्द्यहर, अग्निमाद्यनुत।

परिभाषा—अग्निमाद, पाचन की कमी या अग्निमान्द्य को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'अनलसादघ्न' कहते है। यथा—नागर, चव्य, चित्रक, पिप्पली, मरिच, आर्द्रक, पञ्चकोल आदि।

आढचमारुतंघ्नन्ति, आढचवातहर—

परिभाषा—उरुस्तम्भ को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'आढचमारुतघ्न' कहते हैं। यथा—वरुणादिगण, वचादिगण, हरिद्रादिगण।

उपदंशव्रणापहम्—

परिभाषा—उपदंशजन्य व्रणो को नष्ट करनेवाले द्रव्यो को 'उपदंशव्रणापह' कहते है। यथा—त्रिफला भस्म मधु के साथ।

ऊर्ध्वगदापह, ऊर्ध्वजत्रुरोगहर—

परिभाषा—उर्ध्वजत्रुगत रोगो को नष्ट करनेवाले द्रव्यो को 'ऊर्ध्वगदापह' कहते है। यथा—विविध सिद्धनस्य।

खलितघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य खलितरोग को नष्ट करते है, उन्हे 'खलितघ्न' कहते हैं। यथा—जम्वु, अर्जुन गम्भारीफलतिलभागरा आमलकी गुठली आदि से सिद्ध तैल।

भ्रमघ्न, भ्रमहर—

परिभाषा—जो द्रव्य भ्रमरोग को नष्ट करते है उन्हे 'भ्रमहर' या भ्रम-रोगघ्न कहते है। यथा—गोक्षीर, त्रिजात, पिप्पली, द्राक्षा मधुक खर्जूर।

व्यंगघ्न—

परिभाषा—जो द्रव्य व्यगरोग को नाश करते है, उन्हे 'व्यगघ्न' कहते है।

यथा—लाक्षा, दोनो लोध्र, दारुहल्दी, मन शिला, हरिताल, कुष्ठ-नागकेशर आदि।

पार्श्वरुग्घ्न–

पर्याय–पार्श्वरुग्घ्न, पार्श्वरुजघ्नन्ति, पार्श्वशूलघ्न, पार्श्वशूलविनाशी, पार्श्वरुग्नाशन, पार्श्वार्तिप्रणाशिनी, पार्श्ववेदनाहर, पार्श्वार्तिजित, पार्श्वशूलजित ।

परिभाषा–पार्श्व मे होनेवाले शूल को नष्ट करनेवाले द्रव्यो को '**पार्श्व-शूलघ्न**' कहते है ।

पार्श्व–वक्ष के उभय प्रान्तो के भागो को कहते है । यथा-गोक्षुर, कण्टकारी, पिप्पल्यादिवर्ग ।

दाहघ्न–

पर्याय-दाहघ्न, दाहविनाशन, दाहहर, दाहनुत, दाहार्तिनुत, दाहरोगनुत ।

परिभाषा–शरीर मे पैदा होनेवाले दाह को जो द्रव्य नष्ट करते है, उन्हे 'दाहघ्न' सज्ञाओ से प्रयुक्त किया जाता है ।

यथा–चन्दनद्वय, त्रिफला, केतकी, शिरीष, मधुयष्टि, यवासा, उशीर, तगर, वंशलोचन, अनन्तमूल, गुडूची, मजिष्ठा ।

नीलिकाघ्न–

परिभाषा–नीलिका रोग को नाश करनेवाले द्रव्यो को '**नीलिकाघ्न**' कहते कहते हैं । यथा—मजिष्ठा, वचा, चन्दन, गोरोचन, आरग्वधत्वक्, वरगद का पीलापत्र, कालीयक, पद्माख, कमल केशर, लाक्षा आदि ।

प्राणघ्न–

परिभाषा–प्राण को नष्ट करनेवाले द्रव्यो को '**प्राणघ्न** कहते है । यथा—विषवर्ग ।

शूलघ्न, वातशूलघ्न–

परिभाषा–जो द्रव्य शूल को नाश कहते है, उन्हे '**शूलघ्न** कहते है ।

यथा–अहिफेन, धत्तूर, कर्पूर, वत्सनाभ, गुग्गुल, आदि ।

शोषघ्न–

पर्याय–शोषघ्न, शोषापह, शोषजित, शोषविनाशन ।

परिभाषा–जो द्रव्य शरीरगत धातु शोष को नष्ट करते है उन्हे **शोषघ्न** कहते है । यथा–मधुरशीत स्निग्ध पदार्थ, अष्टवर्ग, शतावरी, अश्वगन्धा, मासवर्ग, क्षीरवर्ग, बलादिसिद्ध घृत, च्यवनप्राश आदि लेह, काकोल्यादि, विदारी-गन्धादि गण ।

श्लीपदहा–

परिभाषा–जो द्रव्य श्लीपद को नष्ट करते हैं, उन्हे '**श्लीपदहा**' कहते हैं । यथा–आर्द्रक, शुण्ठी, पिप्पली, चव्यचित्रक मरीच ।

दौर्बल्यापह–

परिभाषा–जो द्रव्य दौर्बल्य को नाश करते हैं, उन्हे '**दौर्बल्यापह**' कहते है । यथा–मधुरस्निग्ध, शीत द्रव्य, काकोल्यादि, विदारीगन्धादिगण ।

तिमिरापह्–

पर्याय–तिमिरापह, तिमिरघ्नी, तिमिरजित ।

परिभाषा–तिमिररोग को नाश करनेवाले द्रव्यों को 'तिमिरापह' कहते हैं ।

यथा–द्राक्षा, चन्दन, मजिष्ठा काकोल्यादि सिद्धघृत, त्रिफलासिद्धघृत, घृतयुक्त वराक्वाथ, दुग्ध त्रिफला के साथ ।

नाड़ीव्रणापहृम्, नाडीव्रणहर–

परिभाषा–नाडीव्रण का नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'नाडीव्रणापह' कहते हैं ।

यथा–शाक, मरिच, हरिद्राद्वय आदि से सिद्धघृत का तूलप्रयोग ।

(अ. उ ३०–२४)

नखदन्तविषापह्–

परिभाषा–नख तथा दन्त से क्षत होकर विषात्मक व्रण जन्य विष को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'नखदन्तविषापह' कहते हैं । यथा—सोमवल्क, अश्वकर्ण गोजिह्वा, गर्पादिता, हरिद्राद्वय, गैरिकलेप ।

अर्दितनाशन–

परिभाषा–अर्दित रोग को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'अर्दितनाशन' कहते हैं । यथा–मक्खन के साथ उड़द के बडे, दशमूल, नस्य स्नेह, अभ्यग ।

हृदार्तिप्रणाशिनी–

पर्याय–हृदार्तिप्रणाशिनी, हृद्वेदनाहर, हृद्रुजाहर, हृच्छूलजित, हृद्रुजघ्न ।

परिभाषा–जो द्रव्य हृद्रुजा या हृद्प्रदेश की पीडा को नष्ट करते हैं, उन्हे 'हृद्रुजाहर' कहते हैं ।

हृद्रोगहर–

पर्याय–हृद्रोगहर, हृद्रोगजित, हृदामयापह ।

परिभाषा–हृद्रोग को नष्ट या हरण करनेवाले द्रव्यों को 'हृद्रोगहर' कहते हैं । यथा—श्वदंष्ट्रादि सिद्धघृत, व्याघ्रीलेह, जीवनीयगण ।

उदावर्तनाशन–

पर्याय–उदावर्तनाशन, उदावर्तहर, उदावर्तहरीक्रिया ।

परिभाषा–उदावर्त को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'उदावर्तनाशन' कहते हैं ।

यथा–श्यामादिगण

आस्यवैरस्यनाशन–

परिभाषा–मुख की विरसता को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'आस्यवैरस्य-नाशन' कहते हैं । यथा—मुस्ता, पर्पट, शुण्ठी, एला, धनिया, त्रिकटु आदि ।

मुखरोगविनाशन, मुखरोगहर–

परिभाषा मुख रोग को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को 'मुख रोगनाशन' कहते हैं । यथा—राल, स्वर्ण गैरिक, धनिया, तैल, घृत, सैंधानमक, प्रियगु, त्रिफला ।

कोठविनाशन

परिभाषा—कोठ-शरीर पर जो उभार होते हैं, उनको नष्ट करनेवाले द्रव्यों को '**कोठविनाशन**' कहते हैं। यथा—गैरिक, प्रवाल

आध्माननाशन—

परिभाषा—आध्मान को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को '**आध्माननाशन**' कहते हैं। यथा—हिंगु, त्रिकटु, चव्य, चित्रक आदि।

भगन्दरनाशन—

परिभाषा—भगन्दर को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को '**भगन्दरनाशन**' कहते हैं।

यथा—वटपत्रेष्टकर शुण्ठी गुडूची पुनर्नवा आदि का लेप, त्रिवृतादि लेप, कुष्ठादिलेप, स्नुह्यादिवर्तिका।

स्तब्धतानाशन, स्तम्भनाशक—

परिभाषा—शरीर गत स्तब्धता को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को '**स्तब्धतानाशन**' कहते हैं। यथा—लवणरस।

सिध्मनाशन—

परिभाषा—सिध्म को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को '**सिध्मनाशन**' कहते हैं।

यथा—**मयूरक क्षारजले सप्तकृत्वा परिस्तुते, सिद्ध ज्योतिष्मति तैलमभ्यंग।**

पाण्डुनाशन—

परिभाषा—पाण्डुरोग को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**पाण्डुनाशन**' कहते हैं। यथा—अयोरज, नवायसलौह, मण्डूर, त्र्यूपणादि मण्डूर, व्योषाद्य घृत, द्राक्षाघृत, हरिद्राघृत इत्यादि।

पीनसनाशन—

पर्याय—पीनस नाशन, पीनसजित, पीनसहर।

परिभाषा—पीनस रोग को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**पीनसनाशन**' कहते हैं। यथा—स्नैहिकधूम, चित्रक हरीतकी।

क्षुद्विनाशी—

परिभाषा—बढी हुई क्षुधा को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**क्षुद्विनाशी**' कहते हैं। यथा—गुलर की छाल, मधुररस का अधिक प्रयोग।

पक्तिनाशन—

परिभाषा—पाचन शक्ति को जो द्रव्य नष्ट करते हैं, उन्हे '**पक्तिनाशन**' कहते हैं।

अलक्ष्मीनाशिनी, अलक्ष्मीहरम्—

परिभाषा—शरीर की अलक्ष्मी या असौन्दर्यता को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**अलक्ष्मीविनाशी**' कहते हैं। यथा—गोक्षीर, चन्दन, कुकुम, गन्धमाल्यादि धारण।

अलिविषनाशिनी—

परिभाषा—अलि या भ्रमरदंशजविष को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'अलिविषनाशन' कहते हैं।

ग्लानिविनाशन—

पर्याय—ग्लानिविनाशन, ग्लानिघ्न, ग्लानिपह्।

परिभाषा—ग्लानि को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**ग्लानिविनाशन**' कहते हैं। यथा—कृतान्नवर्ग, पथ्यादि प्रयोग।

शोकनाशन, शोकनाशिनी—

परिभाषा—शोक को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**शोक नाशन**' कहते हैं। यथा—मधुररस प्रयोग।

वातासृग्हर—

परिभाषा—वातरक्त या वातासृक् को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'वातासृग्हर' कहते हैं। यथा—शिलाजतु, गुग्गुलु, मधु।

रजसामयहर—

परिभाषा—रज के विकारों या रोगों को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**रजसामयहर**' कहते हैं। यथा—जीवन्ती मदन मेदा श्रावणी मधुकबलाशताह्व-ऋषभक आदि से सिद्धतैल की अनुवासनवस्ति।

स्तन्यरोगहर, या दोषहर—

परिभाषा—स्तन्य रोग या दोषों को हरण करने वाले द्रव्यों को '**स्तन्यरोगहर**' कहते हैं। यथा—वचाजलज देवाह्व नागरातिविषाभया हरिद्राद्वय यष्ट्याह्वकलशी इन्द्रयव, वचादिगण, हरिद्रादिगण, मुस्तादिगण।

हृल्लासहर—

परिभाषा—हृल्लास को दूर करने वाले या नष्ट करने वाले द्रव्यों को हृल्लासहर' कहते हैं। यथा—गुडूची निम्बकुष्ठतुम्बुरु चन्दनानिभद्रकश्च।

स्मृतिहर—

परिभाषा—स्मृति का हरण करने वाले द्रव्यों को '**स्मृतिहर**' कहते हैं। यथा—मद्यवर्ग।

धीहर—

परिभाषा—जो द्रव्य धी या बुद्धि को कम करते हैं, उन्हे '**धीहर**' कहते हैं। यथा—मद्यवर्ग, विषवर्ग।

कोष्ठवातहर—

परिभाषा—कोष्ठस्थित वात को नष्ट करने वाले द्रव्यों को '**कोष्ठवातहर**' कहते हैं। यथा—पिप्पली, नागर पाठा, सारिवा, बृहतीद्वय, चित्रक, इन्द्रयव, क्षार, पचलवण, उष्णाम्बु, काजी।

मेदोदोषहर—

परिभाषा—मेदस्थित दोषों को हरण करनेवाले द्रव्यों को 'मेदोदोषहर' कहते हैं। यथा—असननिनिश भूर्जश्वेतवाह खदिरकदरमुण्डी शिंशपा मेषशृंगी पलाश अश्वकर्ण धव कलिंग।

अश्रुहर, अश्रुजित—

परिभाषा—नेत्रों से आनेवाले अश्रुओं के आधिक्य को जो द्रव्य नष्ट करते हैं, उन्हें 'अश्रुहर' कहते हैं। यथा—शिग्रुतलवनिर्याश सुघृष्टस्ताम्रसपुटे घृतेन धूपितो हन्ति अश्रु वेदना। (अ० उ० १६।३८)

कर्णकण्डूहर—

परिभाषा—कर्णकण्डू को नष्ट करने वाले द्रव्यों का 'कर्णकण्डूहर' कहते हैं। यथा—शुष्कमूलकखण्ड या क्षारादि से सिद्ध तैल से कर्ण पूरण करना।

कर्णनादहर—

परिभाषा—कर्णनाद को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'कर्णनादहर' कहते हैं। यथा—सर्षप के तैल से कर्णपूरण, एरण्ड पत्रादि से सिद्ध तैल से कर्णपूरण।

कर्णस्रावहर—

परिभाषा—कर्णस्राव को हरण करने वाले द्रव्यों को 'कर्णस्रावहर' कहते हैं। यथा—**पक्व प्रतिविषाहिंगुमिशित्वक् सर्जिकोपर्ण**
सुसुक्ते पूरणा स्तैल-स्रावनुत। (अ० उ० १८।२५०)

कर्ण रोगहर, कर्णरोगजित—

परिभाषा—कर्ण रोग को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'कर्ण रोगहर' कहते हैं। यथा—मुस्तभूनिम्ब यष्टाह्व कुटजोदीच्यचन्दन-पिप्पली सिद्धघृत प्रयोग।

पूतिगन्धहर, पूतिगन्धापकर्षण—

परिभाषा—योनिगत पूतिगन्ध को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'पूतिगन्धहर' कहते हैं। यथा—आरग्वधादि क्वाथ का परिषेक।

पूतिकर्णहर—

परिभाषा—कान से आनेवाली दुर्गन्ध को हरण करने वाले रोगों को 'पूतिकर्णहर' कहते हैं। यथा—प्रतिविषादि सिद्धतैल पूरण।

मुखपाकहर—

परिभाषा—मुखपाक को नष्ट करनेवाले द्रव्यों को मुखपाकहर' कहते हैं।

दन्तशर्कराहर—

परिभाषा—दन्तशर्करा को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'दन्तशर्कराहर' कहते हैं। यथा—क्षारचूर्ण मधुयुक्त प्रतिसारण शल्य क्रियोपरान्त।

दन्तशूलहर, दन्तरुजाहर—

परिभाषा—जो दन्तशूल को नष्ट करते है, उन्हें 'दन्तशूलहर' कहते हैं। यथा—**हिंगुकट्फलकासीस स्वर्जिका कुष्ठवेल्लज रजो।** (अ० उ० २२।२१)

दन्तकृमिहर—

परिभाषा—दन्तकृमियों को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'दन्तकृमिहर' कहते हैं। यथा—

सप्तच्छदार्क क्षीराभ्या पूरण कृमिशूलजित। (अ० उ० २२।२०)

त्वगामयहर, त्वग्रोगजित—

परिभाषा—त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'त्वगामयहर' कहते हैं। यथा—त्रिफला, गन्धक, निम्ब।

मूत्रविकारहर—

परिभाषा—जो द्रव्य सभी प्रकार के मूत्रविकारों को नष्ट कर देते हैं, उन्हें 'मूत्रविकारहर' कहते हैं। यथा—वरुणादि क्वाथ, तृणपचमूल, चन्द्रप्रभा।

सन्धिशूलहर—

परिभाषा—सन्धिस्थित शूल को हरण करने वाले द्रव्यों को 'सन्धिशूलहर' कहते हैं। यथा—गुग्गुलु, रास्नादिक्वाथ, अहिफेन।

हनुशूलहर—

परिभाषा—हनुशूल को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'हनुशूलहर' कहते हैं। यथा—गुग्गुलु, धस्तूर, रास्ना, पारसीक यवानी।

चक्षुवलहृत—

परिभाषा—जो द्रव्य चक्षु के देखने की शक्ति या वल का हरण करते हैं। उन्हें 'चक्षुवलहृत' कहते हैं। यथा—उष्ण जल मे स्नान करना।

अग्निमाद्यकर—

परिभाषा—अग्निमाद्य को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'अग्निमाद्यकर' कहते हैं। यथा—चित्रक, त्रिकटु, क्षार, अतिविषा, प्रतिविषा, हिंगु, जीरक, आर्द्रक, पिप्पल्यादि-गुडूच्यादि-आमलक्यादि गण।

आढ्यवातहर—

परिभाषा—आढ्यवात को नष्ट करने वाले द्रव्यों को 'आढ्यवातहर' कहते हैं। यथा—वरुणादि गण (अ हृ), वचादिगण, हरिद्रादिगण।

उन्मादहर, उन्मादनिवारण—

परिभाषा—जो द्रव्य उन्मादरोग को नष्ट करते हैं, उन्हें 'उन्मादनिवारण' कहते हैं। यथा—पुराणघृत, पैशाचिकघृत, महापैशाचिकघृत, महाकल्याणघृत।

काचहर—

परिभाषा—काचरोग को हरण करने वाले द्रव्यों को 'काचहर' कहते हैं। यथा—अजन प्रयोग।

गुल्महर, गुल्मनाशक—

पर्याय—गुल्महर, गुल्महृत, गुल्मनिषूदन, गुल्मनुत, गुल्मजित, गुल्मघ्न, गुल्मनाशन ।

परिभाषा—गुल्म को नष्ट करने वाले द्रव्यों को **'गुल्महर'** कहते हैं । यथा—उषक, तुत्थक, हिंगु, कासीसद्वय, सैन्धव, शिलाजतु, वरुणादिगण, मुष्ककादिगण ।

गण्डमालाहर—

परिभाषा—गण्डमाला को नष्ट करने वाले द्रव्यों को **'गण्डमालाहर'** कहते है । यथा—काचनार गुग्गुलु ।

हिक्काहर—

परिभाषा—हिक्का रोग को नष्ट करने वाले द्रव्यों को **'हिक्काहर'** कहते है । यथा—मधुयष्टि, पिप्पली, गुड,सोंठ, सिता, बेर की गुठली, कुटकी, स्वर्णगैरिक, आवला, मुस्तक, पिण्ड खर्जूर, पाटला ।

उत्क्लेदहर—

परिभाषा—जो द्रव्य क्लेद की बढी हुई मात्रा को कम करते है, उन्हे 'उत्क्लेदहर' कहते है । यथा—कासमर्द, तिक्त रस ।

धृतिहर—

परिभाषा—धृति या धैर्य को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **'धृतिहर'** कहते है । यथा—विष, मद्य का अति सेवन ।

मूत्रविबन्धजित, मूत्रविबंधनुत—

परिभाषा—मूत्र के विबन्ध को नष्ट करने वाले द्रव्यों को **'मूत्रविबन्धजित'** कहते है । यथा—शुण्ठी, बला, व्याघ्री गोकण्टक गुड से सिद्ध दुग्ध प्रयोग ।

पुरीषग्रहजित—

पर्याय—पुरीषग्रहजित, शकृद्विबन्धजित, शकृद्विबन्धनुत ।

परिभाषा—पुरीषग्रह या विबन्ध को नष्ट करने वाले द्रव्यों को **'पुरीषग्रहजित'** कहते है । यथा—

पिप्पली पिप्पलीमूल धान्यकदाडिमैघृतम् ।
दध्ना च साधित वातशकृन्मूत्रविबन्धनुत् । अ ह चि ८।७२

अतिस्थौल्यजित—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीरस्थ अतिस्थूलता को नष्ट करते हैं, उन्हे 'अतिस्थौल्यजित' कहते हैं । यथा—शिलाजतु, गुग्गुलु, मधु ।

विसर्पजित—

परिभाषा—विसर्परोग को जीतने वाले द्रव्यो को **'विसर्पजित'** कहते हैं । यथा—प्रपौण्डरीकादि प्रलेप, न्यग्रोधादिलेप, गायत्र्यादिलेप ।

व्रणशूलजित–

परिभाषा––व्रण मे होनेवाली पीडा को नष्ट करने वाले द्रव्यो को 'व्रणशूलजित' कहते है । यथा––उदुम्बर क्वाथ, पचमूलक्वाथ से प्रक्षालन ।

पायुशूलजित–

परिभाषा––पायु–गुदास्थित अर्शवेदना शूल को नष्ट करने वाले द्रव्यो को 'पायुशूलजित' कहते है । यथा––घृत, तैल, मासरस, आज्ययुक्त यापना वस्ति प्रयोग ।

शोषजित–

परिभाषा––शोषरोग या धातुशोष को नष्ट करने वाले द्रव्यो को 'शोषजित' कहते है । यथा––जीवनीय, विदारीगन्धादिगण, शीत मधुरस्निग्ध द्रव्यो का सेवन ।

अंगावसादजित–

परिभाषा––अगावसाद को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **'अगावसादजित'** कहते है । यथा––काफी, कस्तूरी ।

अपस्मारनुत–

परिभाषा––अपस्मार को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **'अपस्मारनुत'** कहते है । यथा––य खादेत् क्षीर . .

अपस्मार महाघोर सुचिरोत्थ जयेध्द्रुवम् । चक्र पृ ९३

सुप्तिनुत–

परिभाषा––जो द्रव्य त्वचा मे होने वाली सुप्ति को नष्ट करते है, उन्हे 'सुप्तिनुत' कहते है । यथा––अभ्यग ।

गलामयनिवारण–

परिभाषा––गल या कण्ठ के रोगो को नष्ट करने वाले द्रव्यो को **'गलामय-निवारण'** कहते है । यथा––कर्पूर, जातिलवग, सपूग ताम्बूल सेवन ।

जरानिवर्हण–

परिभाषा––जो द्रव्य जरा या बुढापे को नष्ट करते है या युवावस्था की स्थापना करते हैं, उन्हे **'जरानिवर्हण'** कहते है । यथा––रसायन–आमलक्यादि रसायन ।

सर्वरोगघ्न–

पर्याय––सर्व रोगघ्न, सर्वरोगजित, सर्वव्याधि निवर्हण, सर्वरोगहर ।

परिभाषा––जो द्रव्य शरीरस्थ विकारो को शान्त करते है, उन्हे **'सर्वरोगहर'** कहते है । यथा––हरीतकीकल्प, त्रिफला ।

लोमशातन–

परिभाषा––प्रलेपात् रोमानि शातयति विनाशयति इति रोमशातन (लोमशातन) (सु चि १) अर्थात् जो द्रव्य लेप करने से बालो–रोमो को नष्ट कर देते हैं, उन्हे 'रो (लो) म शातन' कहते हैं। यथा––हरितालमिश्र शख चूर्णादि । (सु चि १)

स्तन्यनाशन--

परिभाषा---जो द्रव्य स्त्रियो के स्तन्य–दूध को नष्ट करते है, उन्हे 'स्तन्यनाशन' कहते हैं। यथा---पान का पत्ता, मोगरे का फूल, कर्पूर का पत्ता।

दुर्गन्धहर--

परिभाषा---जो द्रव्य दुर्गन्धि का नाश करते है, उन्हे **'दुर्गन्धिहर'** कहते है। यथा—कोयला।

विशिष्ट कर्मवाचक सज्ञाए

१–जीवनीयम्-जीवनम्, जीवन प्राणसधारक (Restoratives or Life prolongers)

परिभाषा–१–जीवन आयु तस्मै हित जीवनीयम्। चक्र

२–मूर्च्छितस्य सज्ञाजनकत्वेन जीवनीय व्याख्येयम्। च द., ग, यो)

३–जीवन प्राणधारण (डल्हण सु मू ३८–३६)

४–जीवनीय प्राणाना सधारकम्। (अ म मू अ ३४ इन्दु)

अर्थात जो द्रव्य जीवन के आयुष्य के प्राणधारण के लिए हितकर हो उन्हे 'जीवनीय' कहते है।

पाचभौतिक सगठन–१–शरीरेन्द्रिय सत्वात्म सयोगोधारी जीवितम्। तस्यायहित कुर्वन्ति जीवनीयमितिस्थिति। विश्व

पृथिव्यपा गुणैयुक्त जीवनीयमिति स्थिति। (र वै ४–३० भाष्य)

यथा–जीवक ऋषभक मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवन्ती मधुकमिति (च मू ४)

क्षीर, विदारीकन्द (च मू २७)

काकोल्यादिगण (सु. सू ३६)

नोट–पाश्चात्य वैद्यक मे विटामिन का आविष्कार होने पर, कुछ लेखको ने विटामिन का हिन्दी अनुवाद जीवनीय भी किया है।

२--बृहणीयम्, बृहणम्–(Nutritiouses)

परिभाषा–१–बृहत्त्व यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृहणम्। (च सू २२)

२–देहबृहणाय हित बृहणीयम्। (ग.)

३–बृहणयत बृहत्वाय देहस्य (सु मू ४०–६)

४–बृहण शरीर वृद्धिकरम्। डल्हण

अर्थात्–जो द्रव्य शरीर को पुष्ट करते हैं या मोटापन लाते हैं, उन्हे 'बृहणीय' कहते है।

पाच भौतिक सगठन–बृहण पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठम्। (सु मू ४१)

यथा–क्षीरिणी–राजक्षवकाश्वगन्धा काकोली-क्षीरकाकोलीवास्यायनी-भद्रौदनी-भारद्वाजी पयस्यर्ष्यगन्धा मुञ्जातक-विदारीकन्द मृद्विका।

१–गुरुशीत मृदुस्निग्ध बहल स्थूल पिच्छिलम्।
प्रायोमद स्थिर श्लक्ष्ण द्रव्य बृहण मुच्यते। (च मू २२–१०–१४)

३—लंघनम्—

परिभाषा—१—यत्किंचिल्लाघवकर देहे तल्लघनं स्मृतम् । (च मू. २२)

२—लंघनं लाघवाय यत् देहस्य । (अ म मू अ २४)

३—देहस्य यल्लाघवाय कल्पते तल्लघनम् । इन्दु)

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर मे हल्कापन पैदा करते है, उन्हे 'लघन' कहते है।

भौतिक सगठन—आग्नेय वायव्य नाभस लघनमिति (इन्दुः)

यथा—लघूष्ण तीक्ष्ण विशद रूक्षं सूक्ष्म खर सरम् ।

कठिन चैव यद् द्रव्यं प्रायस्तल्लघनं स्मृतम् (च मू २२)

चतुष्प्रकारा संशुद्धि पिपासा मारुतातपौ ।

पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लघनम् ॥(च मू २२)

४—स्नेहन—

परिभाषा-स्नेहन स्नेहविष्यन्द मार्दवक्लेदकारकम् । (च मू २२)

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर मे स्निग्धता, द्रवपना अथवा स्नेह का क्षरण, मृदुता तथा क्लेद उत्पन्न करे उसे 'स्नेहन' कहते है ।

यथा—द्रवं सूक्ष्म सर स्निग्धं पिच्छिल गुरुशीतलम् ।

प्रायो मन्द मृदु च यद्द्रव्यं तत् स्नेहन स्मृतम् (च मू २२)

द्रव्य—आप्यपदार्थ, घृत, तैल, वसा, मज्जा ।

भौतिक सगठन—आप्य

५—रूक्षण—

परिभाषा—रौक्ष्यं खरत्व वैशद्य यत् कुर्यात्तद्धिरूक्षणम । (च सू २२)

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर मे रूक्षता, खरता तथा विशदता लाता है, उसे 'रूक्षण' कहते है ।

यथा—रूक्ष लघु खर तीक्ष्णमुष्ण स्थिरमपिच्छिलम् ।

प्रायशः कठिन चैव यद्द्रव्य तद्धि रूक्षणम् । (च सू २२)

६—स्वेदन—

परिभाषा—स्तम्भगौरव शीतघ्न स्वेदन स्वेदकारकम् । (च मू. २२)

अर्थात्—जो द्रव्य अगो की निश्चेष्टता, जकडाहट, गौरव तथा शीत को नष्ट करे और पसीना लावे उसे 'स्वेदन' कहते है ।

यथा—उष्ण तीक्ष्ण सर स्निग्ध रूक्ष सूक्ष्म द्रव स्थिरम् ।

द्रव्य गुरु च यत् प्रायस्तद्धि स्वेदनमुच्यते ॥ (च सू २२)

"स्वेदनाश्चरणायुधा ॥ (च मू २७)

७—रसायनम्—

परिभाषा—१—'लाभोपायो हि शस्तानां रसादीना रसायनम्' (च चि १)

(अ स उ ४९, अ हृ उ ३९)

२–'श्रेष्ठाना रस-रुधिरादीना यो लाभोपाय स रसायनमुच्यते ॥(अ हृ.)

३–"रसायनतन्त्रं (रसायनं) नाम वय स्थापनमायुर्मेधाबलकर
रोगापहरण समर्थ च ।" (सु सू १–८)

४–रसाना रसरक्तादीनामयनमाप्यायनं रसायनम् (डल्हण)

५–रसाना रस-वीर्य-विपाकादीनामायु प्रभृतिकारणानामयनं विशिष्ट-
लाभोपायो रसायनम् (ड)

६–रसायन च तज्ज्ञेय यज्जराव्याधिनाशनम् । (शा प्र ख ४)

७–दीर्घमायु स्मृति मेधामारोग्य तरुण वय ।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबल परम् ।
वाक्सिद्धि प्रणति कान्ति लभते ना रसायनात् ॥

अर्थात्–जो द्रव्य जरा तथा व्याधि का नाश करता है एव प्रभा-कान्ति-मेधा आदि को प्रदान करता है उसे 'रसायन' कहते है ।

यथा–'यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥ '(शा प्र ख ४)
पाँच भौतिक संगठन–पार्थिवाप्य ।

८–वाजीकरण, वाजीकर, ९–वृष्य–

परिभाषा–१–वाजीवाति बलोयेन यात्यप्रतिहत स्त्रियः ।
भवत्यतिप्रिय स्त्रीणा येन येनोपचीयते ।
तद्वाजीकरण, तद्धि देहस्यौजस्कर परम् ॥ (अ म उ ५०)
(अ हृ उ अ ४०)

२–येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नर ।
व्रजेच्चाभ्यधिक येन वाजीकरणमेव तत् ॥ (च चि २ पा ४)

३–वाजीकरणतन्त्र (वाजीकरण) नामाल्प दुष्ट क्षीण-विशुष्क-रेतसामाप्यायन–प्रसादोपचय-जननिमित्त प्रहर्षजननार्थं च । (सु सू १)

४–सेव्यमानो यदौचित्याद्वाजीवात्यर्थवेगवान् ।
नारीस्तर्पयते तेन वाजीकरणमुच्यते ॥ (सु चि २६)

५–यस्माद् द्रव्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकर च तत् ॥ (शा)

अर्थात्-जिस द्रव्य के सेवन से सुरत-मैथुन मे पुरुष और स्त्री दोनो को अधिक हर्ष की प्रतीति हो तथा पुरुष बिना किसी रुकावट के अश्व की तरह बलवान होकर स्त्रीगमन मे समर्थ हो उसे "वाजीकरण या वाजीकर या वृष्य' कहते हैं ।

वाजीकरण के भेद व उदाहरण–

सामान्य तथा वाजीकरण द्रव्यो के चार भेद पाये जाते हैं —

१–शुक्रल–जो द्रव्य शुक्र की वृद्धि करते हैं, उन्हे 'शुक्रल' कहते हैं ।

यथा–वृषण, कपिकच्छुबीज, विदारीकन्द, शतावरी, सालम-पजा, गाय का घी, अश्वगन्धा ।

२–शुक्रप्रवर्तक–जो द्रव्य साक्षात् शुक्र की उत्पत्ति नही करते, केवल शुक्र का प्रवर्तन मात्र करते हैं। यथा–स्त्रीस्पर्श, अकरकरा, मकरध्वज, कस्तूरी आदि।

३–शुक्रस्रुति-वृद्धिकर–कुछ द्रव्य शुक्रजनन और प्रवर्तक दोनो कार्य करते हैं, उन्हे शुक्रस्रुति-वृद्धिकर कहते है। यथा—दूध, उडद, मिलावे का मज्जादि।

४–शुक्रस्तम्भन–जो द्रव्य शुक्रधातु का स्तम्भन कर के सुरत काल को लम्बा वनाते हैं उन्हे 'शुक्रस्तम्भन' कहते हैं। यथा–जायफल, अफीम आदि।

शुक्रस्रुतिकरं किंचित्, किंचिच्छुक्रविवर्धनम्।
स्रुति-वृद्धिकरं किंचित्, त्रिविधं वृष्यमुच्यते ॥ (च द)

नोट–चक्रपाणिदत्त द्वारा माने गये वृष्य के भेद तथा उदाहरणो का वर्णन पूर्व मे प्रस्तुत किया जा चुका है, शब्दमात्र मे भेद है।

१०. व्यवायी–

परिभाषा–१ पूर्वं व्याप्याखिल कायं तत पाक च गच्छति। (शा.)

२ व्यवायी चाखिलं देहं व्याप्य पाकाय गच्छति। (सु. सू ४६)

अर्थात्—जो द्रव्य जठराग्नि के द्वारा पाक होने से पूर्व ही सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त होकर अपने गुण कर्म दिखलाते हैं, उन्हे 'व्यवायी' कहते हैं। यथा—भाग, अफीम, वत्सनाभ।

भौतिक सगठन—वायु आकाश गुण वहुलानि।

११. विकाशी–

परिभाषा–१ संधिवन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशी तत्।
विश्लिष्यौजश्च धातुभ्यो। (शा. प्र. ख. ४)

२. "विकासी विकसन्नेव धातुबन्धान् विमोक्षयेत्। (सु सू ४६)

३ अपक्व एव सकल देहव्याप्य धातुबन्धान् विमोक्षयेत्।
धातु शैथिल्य करोति। (ड.)

अर्थात्—जो द्रव्य जठराग्नि के द्वारा पाक होने से पूर्व ही धातुओ से ओज को विभक्त करके सधियो के बन्धनो को शिथिल करता है उसे **'विकाशी'** (सी) कहते है। यथा—कच्ची या ताजी कोदो, सुपारी।

भौतिक संगठन—वायु।

१२. प्रमाथी–

परिभाषा–१ निजवीर्येण यद्द्रव्य स्रोतोभ्यो दोष सचयम्।
निरस्यति प्रमाथि स्यात् ॥ (शा प्र. ख अ ४)

२. यद्द्रव्य निजवीर्येण स्वप्रभावेण स्रोतोभ्यो रसवाहिसिरामार्गेभ्यो, दोष सचय निरस्यति दूरीकरोति, तत् प्रमाथिस्यात्। (का)

अर्थात्—जो द्रव्य अपने शक्ति से स्रोतो से अर्थात् रस-रक्तादि का वहन करने वाली शिराओ और मार्गों तथा कर्ण, मुख, नासिका आदि के छिद्रो से दोषो के सचय को दूर करे, उसे **'प्रमाथि'** कहते है। यथा—मरिच, वचा।

भौतिक सगठन—तेज वायु प्रधान।

१३. अभिष्यन्दि--

परिभाषा-१. अभिष्यन्दि दोषधातुमलस्रोतसा क्लेद प्राप्तिजननम्।
(सु सू ४६।५१ (उ)

२. पैच्छिल्याद्गौरवात् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहा सिरा।
धत्तेयद्गौरव तत् स्यादभिष्यन्दि। (शा प्र ख अ ४)

३. अभिष्यन्दो दोषधातु मल स्रोतसां क्लेद प्राप्ति।
(च. सू २३।३० यो)

अर्थात्--जो द्रव्य अपनी पिच्छिलता एव गौरव से रसवह सिराओ को रुद्ध करके शरीर मे गौरव या भारीपन अथवा कफ का प्रकोप करते हैं, उन्हे 'अभिष्यन्दि' कहते हैं। यथा--दधि, केला, मत्स्य।

भौतिक सगठन--पार्थिवाप्य।

१४. आशुकारी, आशुगम्, आशु--

परिभाषा-१. आशुकारी तथाऽऽशुत्वाद् धावत्यम्भसि तैलवत्। (सु. सू. ४६)

अर्थात्--जो द्रव्य शरीर मे पहुचते ही अपने शीघ्रत्व गुण के कारण अपना कार्य शीघ्र करते है, उन्हे 'आशुकारी' कहते है। यथा--विष, मद्य।

भौतिक सगठन--तैजस वायव्य।

१५. विदाही--

परिभाषा-- द्रव्यस्वभावादथ गौरवाद्वा चिरेण पाकं जठराग्नि योगात्।
पित्तप्रकोप विदहत करोति तदन्नपानं कथितं विदाहि॥
(सु सू ४५।१५८ उ)

अर्थात्--जो द्रव्य अपने स्वभाव से अथवा पचने मे भारी होने से देर मे हजम होता है और पचते समय पित्त का प्रकोप करके अन्नवहा नली मे जलन खट्टी डकार आदि उत्पन्न करे, उसे 'विदाही' कहते हैं। यथा--गुरुपदार्थ, उडद, इक्षुरस, अन्य गुड विकार, क्षाराम्ल।

भौतिक संगठन--पार्थिवाप्यतैजस।

१६. योगवाहि--

परिभाषा-१ गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं ससर्गिवस्तु गुणान्। (भा)

२. एतदेव हि योगवाहित्व यत् स्वगुणापरित्यागेनांशेन सादृश्यात् परस्य शक्तिपूरणम्। (इ)

अर्थात्--जो द्रव्य अपने गुणो को न छोडता हुआ अपने साथ ससर्ग मे आनेवाले द्रव्य के गुणो को बढावे उसे 'योगवाहि' कहते है। यथा--योगवाहि पर मधु। (च सू २७)

१७. सूक्ष्मम्--

परिभाषा-१ देहस्यसूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत् सूक्ष्ममुच्यते। शा प्र ख. अ ३।४

२ सूक्ष्मस्तु सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मेषु स्रोत स्वनुसर' स्मृत। सु सू. ४६

अर्थात्--जो द्रव्य शरीर के सूक्ष्म स्रोतो मे प्रवेश करे उसे **'सूक्ष्म'** कहते है। यथा--**तद्यथा सैन्धव क्षौद्रं निम्बतैल रुवूद्भवम्** । (शा प्र. ख. ४)

शल्य कर्म संबंधी संज्ञाएं

निर्घातन--

परिभाषा--इतश्चेतश्च निर्हरण, इतश्चैतश्चवहनमित्येके । (ड)

अर्थात्--किसी शल्य आदि को इधर उधर हिलाकर निकालने का नाम **'निर्घातन'** है अथवा मुद्गर या पाषाणादि से चोट मारना निर्घातन है । इसमे डल्हण का पहला अर्थ अधिक प्रशस्त नही दिखायी देता है, क्योकि निर्हरण के लिए विकर्षण तथा आहरण अन्य दो स्वतन्त्र सज्ञाए पायी जाती है । यथा--मुद्गर, अष्ठीलाश्मादि ।

पूरण--

परिभाषा-- पूरण वस्तिनेत्र प्रभृतिभिस्तैलादिना ।

अर्थात्--नेत्रवस्ति द्वारा तैलादि द्रव पदार्थों से गुद, योनि व्रण आदि के भरने की क्रिया को **'पूरण'** कहते है ।

बन्धन--

परिभाषा-- बन्धन रज्ज्वादिना ।

शरीर के ऊपर रज्जू आदि से बाधने की क्रिया को **'बन्धन'** कहते है । यथा--रज्जूपदचर्मादि ।

व्यूहन--

परिभाषा--१. उर्ध्वीकरणं छित्वोन्तुण्डिस्योद्धरणार्थम् । (ड.)

२. **व्यूहनं तु चूर्णित अश्मर्यादीना सग्रहणम्** । (हाराण)

पूर्व की डल्हण की परिभाषा व्यूहन के लिए अधिक प्रशस्त ज्ञात नही होती, क्योकि व्यूहन के लिए सर्पफल शलाका का उपयोग बताया गया है । हाराणचन्द्रजी ने अश्मरीचिकित्सा के आधार पर लिखा है, क्योकि अश्मरीग्रहण मे सर्पफणशलाका का उपयोग पाया जाता है । अत साधारण रूप मे व्यूहन का अर्थ होगा कि शल्य को देखने या निकालने के लिए व्रण के किनारो को खीचना । यथा--सर्पफणशलाका ।

वर्तन--

परिभाषा--१. विवृतस्य वर्तुलीकरणम् । (ड.)

२. **व्रणोष्ठयो सहतिकरणम्** । (गण.)

अर्थात्--फटे हुए व्रण को टूटी हुई अस्थि को तथा शरीर के अन्य इधर उधर हुए अवयवो को यथा स्थान स्थापन करना । यथा--यन्त्रकर्म ।

चालन--

परिभाषा--१, स्थानात् स्थानान्तरनयन अन्ये शल्यकम्पन माहुः । (ड)

२. **गलादावबद्धास्थिशल्यादीनामपनयनस्** । (हाराण)

अर्थात्— किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना या शल्य को चलायमान करना। हाराणचन्द्रजी के मत से गलादि स्थानो मे अटके हुए शल्य को बाहर निकालना।

विवर्तन--

परिभाषा— **कर्णवायोर्निष्कासयितुमिष्टस्य कर्ण लग्नस्य पुनर्निवर्तनम्, अन्ये अन्त्रस्यभ्रामणमन्तरे वा।**

अर्थात्—यन्त्र को पकड कर ऐठकर शल्य को बाहर निकालने को 'विवर्तन' कहते है। यथा—स्वस्तिक यन्त्र।

विवरणम्–

परिभाषा-- विवरण प्रकाशन मासच्छेदादवकाशदानेन विवरणमित्येके विवरण प्रसारणमिति। (ड)

अर्थात्--नाडीव्रण घाव आदि के मुख मे मासादि को काटकर खोल देने की क्रिया को 'विवरण' कहते है। यथा--यन्त्रकर्म।

पीडन--

परिभाषा-**व्रणस्य पूयादि निर्गमनार्थमङ्गुल्यादिना।** (ड)

अर्थात्—व्रणगत पूयादि निकालने के लिए अगुली तथा ओपधियो द्वारा दवाना। यथा—यन्त्र कर्म।

एषण–

परिभाषा–**एषण गण्डूपदमुखेन गतिव्रणो शल्यादीनाम्।** (ड)

अर्थात्–नाडीव्रणादि के अज्ञात मार्ग को जानने की विधि को 'एषण' कहते हैं। यथा–गण्डूपद शलाका।

दारणम्, प्रदारणम्–

परिभाषा–१–**पक्वमपि स्वयमविदार्यमाणं व्रणशोधनानि द्रव्याणि दारयन्ति तानि दारणानि, इत्युच्यते॥** (सु सू. ३७)

२–**दारण शिरकर्णादि द्विधाकरणम्।** (ड)

अर्थात्–पकने पर भी अपने आप न फूटनेवाले व्रण शोथ को जो द्रव्य फाड देते हैं, उन्हे 'दारण' कहते हैं।

भौतिक सगठन–तत्पार्थिवमाग्नेय च। (र वै ४–१५–१६)

यथा-**चित्रक, कपोतविट, क्षारादीनि** (सु सू २७)

ऋजुकरणम्–

परिभाषा–**ऋजु करण कुटिलस्य।** (ड)

अर्थात्–टेढी-मेढी अस्थि को या व्रण के टेढे मेढे किनारो को सीधा करना। यथा–अस्थ्यर्जुकरणम्।

प्रक्षालनम्–

परिभाषा १–प्रक्षालन तोयदिभिर्व्रणोत्सगादीनाम् । (ड)

अर्थात्–निम्व त्रिफलादि के क्वाथ से व्रण का धोना, यथा–निम्व त्रिफला-क्वाथ, उदुम्बरस्वरस आदि ।

प्रधमनम्–

परिभाषा–प्रशमनं नासिकायां नाड्या चूर्ण क्षेपणम् ।

अर्थात्–नासाकर्णादि मे नाडी की सहायता से औषधिचूर्ण फेकना ।

भञ्जन, अवचूर्णन–

परिभाषा–शिरकर्णादेरामर्दनं समन्ततो

अर्थात्–शल्यादि को खण्डित करना ही भजन है । यथा–मुद्गर

नोट –आधुनिक चिकित्सा मे भी अश्मरी का आहरण भजन करके होता है । इस विधि को कहते हैं ।

उन्मथनम्–

परिभाषा–प्रनष्टस्य शल्यस्य मार्गे शलाकादिभिरालोडनम् । (ड)

अर्थात्–खोये हुए शल्य के ज्ञान के लिए शलाकादि से विलोडन करना ।

यथा–गण्डूपद शलाका ।

प्रमार्जन–

परिभाषा–प्रमार्जन प्रोञ्छन वालागुलिवस्त्रैरक्षिरज शल्यादिषु । (ड)

अर्थात्–अगुलि वस्त्र वाल इत्यादि से नेत्रादि मे पडी हुई धूलि या शल्य के निकालने को 'प्रमार्जन' कहते है । यथा—वस्त्र, वाल, अगुलि ।

विम्लापनम्–

परिभाषा–यानि द्रव्याणि व्रणशोथे आरम्भत एव प्रयुक्तानि शोथम-पाचयित्वैव विम्लापयन्ति तानि विम्लापनानि इत्युच्यन्ते ।

अर्थात्–जो द्रव्य व्रण शोथ की प्रारम्भ दशा मे ही प्रलेप रूप मे प्रयुक्त होने पर व्रण शोथ को विना पकाये विठा देते है, उन्हे 'विम्लापन' कहते हैं ।

यथा–अतसी ।

प्रपीडन–

परिभाषा–१–पक्वप्रभिन्नाना मर्मादिसमीपस्थानां सूक्ष्ममुखाना व्रणाना स्वयमेव सम्यक्पूयमवहता प्रपीडन कृत्वा यानि द्रव्याणि तेभ्य पूयं सम्यग्वाहयन्ति, तानि 'प्रपीडनानि' इत्युच्यन्ते ।

२–पूयगर्भानणुद्वारान् व्रणान मर्मगतानपि ।
यथोक्तै पीडन द्रव्यै समन्तात् परिपीडयेत् (सु चि १)

अर्थात्–जो द्रव्य पक कर फूटे हुए तथा सूक्ष्म मुख होने के कारण सम्यक् पूय न निकलने पर व्रणो को पीडित कर पूय को निकालते हैं, उन्हे 'प्रपीडन' कहते है । यथा–१–शाल्मलीत्वगादीना-कर्मविशेष । (सु सू. ४०–५० पर ड)

२–द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वड्मूलानि प्रपीडनम् ।
यवगोधूम माषाणा चूर्णानि च समासत ।। (सु सू ३७)

रोपणम्–

परिभाषा–शुद्ध व्रणं द्रव्याणि रोपयन्ति तानि 'रोपणानि' इत्युच्यन्ते।

अर्थात्–जो द्रव्य शुद्ध व्रण का रोपण करते हैं उन्हे 'रोपण' कहते हैं।

यथा–रोपण कषाय वर्तिकल्कघृत तैल रस क्रिया चूर्ण ॥

उत्सादनम्–

परिभाषा–१–उत्सादन मांसवर्धनम् (ड)

२–परिशुष्काल्पमांसान् गम्भीरान व्रणान् यानि द्रव्याणि मांसवर्धने नोत्सादयन्ति तानि उत्सादनानि इत्युच्यन्ते (सु सू ३७)

अर्थात्–जो द्रव्य शुष्क अल्प मांसवाले तथा गहरे व्रणो मे मांस को वृद्धि करके उन्हे ऊँचा करके समतल करते हैं, उन्हे 'उत्सादन कहते हैं।

यथा–अपामार्गोऽश्वगन्धा च तालपत्री सुवर्चला।
उत्सादने प्रशस्यन्ते काकोल्यादिश्च यो गण ॥ (सु सू ३७)

अवसादनम्–

परिभाषा–उत्सन्न मृदु मांसान् व्रणान् यानि द्रव्याण्यवसादयन्ति, तानि 'अवसादनानि' इत्युच्यन्ते। सु सू. ३७)

२– अवसादने इति मांसस्फोटने (ड)

अर्थात्–जो द्रव्य उभरे हुए कोमल मांसयुक्त व्रणो को बैठाकर समतल करते हैं, उन्हे 'अवसादन,' कहते हैं।

यथा–कासीसं सैन्धव किण्व कुरुविन्दो मन शिला।
कुक्कुटाण्ड कपालानि सुमनो मुकुलानि च (सु सू ३७)

स्तम्भनम्–

पर्याय–स्तम्भन, स्तम्भि, स्तम्भनीय

परिभाषा–१–स्तम्भन स्तम्भयति यद्गतिमन्तं चलं ध्रुवम् (च सू २२)

२–रौक्ष्याच्छैत्यात् कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत।
वातकृत् स्तम्भन तत्स्यात्। (शा प्र ख. ४)

अर्थात्–जो द्रव्य रूक्ष शीत कषाय रसवाले तथा वातकर होने के कारण गतिमान् वमन्, अतिसार, रुधिर और पित्त आदि द्रव्य पदार्थ को रोके उसे 'स्तम्भन' कहते हैं।

यथा–"शीत मन्द मृदुश्लक्ष्ण रूक्ष सूक्ष्मं द्रव स्थिरम्।
यद्द्रव्य लघु चोद्दिष्टं प्रायस्तत् स्तम्भनं स्मृतम् ॥ (च सू २२)

दीपनम्–

पर्याय–दीपनीयम्, दीपनम्, अग्निदीपनम्।

परिभाषा–१–पचेन्नाम वह्नि कृच्च दीपनम्। (शा प्र ख ४)

२–दीपनीयं वह्ने रुद्दीपनाय हितम्। (ग.)

३–दीपनमन्तरग्ने सधुक्षण, तस्मैहित दीपनीयम्। (यो)

४-यदग्निकृत् पचेन्नामं दीपन तत् । (अ हृ सू १४-७)

५-दीपन ह्यग्निकृत्वाम कदाचित् पाचयेन्नवा । (अ हृ सू १४-७)

पर तन्त्रान्तरीयवचनम्

अर्थात्—जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले द्रव्यो को 'दीपनीय या दीपन' कहते हैं।

यथा—पिप्पली-पिप्पलीमूल-चव्य-चित्रक-शृङ्गवेराम्लवेतस-मरिचाजमोदा-भल्लातकास्थि-हिगुनिर्यासा इति । (च सू ४)

मिशि (शतपुष्पा (शा प्र ख ४)

पाच भौतिक सगठन—दीपनाग्नि गुणभूयिष्ठ तत्समानत्वात् । (सु सू ४१)

पाचनम्—

परिभाषा—१—पचत्याम न वह्नि च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् (शा प्र. ख ४)

२—पचन्तमग्निं प्रतिपक्षक्षपणेन वलदानेन च यत् पाचयति तत् पाचनम् ।
(च. सू २२—८ पर चक्रपाणि)

३—पचतोऽग्ने पक्तु शक्तिमधिका यदुत्पादयति तद् द्रव्य क्रिया वा पाचनमुच्यते । (अ, द)

४—पाचनं पाचयेद्दोषान् सामान् शमनमेव तु । (अ हृ. सू १४—७ पर तन्त्रान्तरीय वचन)

अर्थात्—जो द्रव्य आम अर्थात् अपक्व अन्नरस तथा मल को पकावे परन्तु जठराग्नि को प्रदीप्त करने का गुण प्रधानरूप में न हो, उसे पाचन कहते है ।

भौतिक सगठन—१ तच्च वाय्वग्निगुणभूयिष्ठम् (च द.)

२. 'अग्नेस्तु गुणबाहुल्यात् पाचन परिचक्ष्महे ।' र वै भाष्य पृ १८७

यथा—नागकेशर, मुस्तादि ।

सन्धानीयम्, सन्धानम्—

परिभाषा—१ सन्धानाय भग्नसयोजनाय हित सन्धानीयम् । (ग यो)

२ सन्धानक शरीरेऽन्तः संहतिकर भावानाम् ।। (इन्दु)

३ सधानीय भग्नसन्धानकारकम् । (ड)

अर्थात्—अस्थिभग्न आदि के सयोग के लिए उपयुक्त द्रव्यो को 'सन्धानीय या सन्धान' कहते हैं । यथा—

मधुकमधुपर्णीपृश्निपर्ण्यम्बष्ठकी समङ्गा मोचरसधातकी लोध्र प्रियङ्गु कट्फलानीति । (च सू ४)

आहरण, आहार्य—

परिभाषा—कर्णनासा नाडी आदि मे स्थित शल्य को निकालने वाले द्रव्य को 'आहरण' कहते है । यथा—तालयन्त्र ।

आचूषण–

परिभाषा— आचूषणार्थं मस्थिगतवायोर्दुष्ट रक्त स्तन्ययोराचूषणार्थम् । (ड)

अर्थात्– जो द्रव्य अस्थिगत वायु दुष्ट रक्त तथा दुष्ट स्तन्य को चूसकर बाहर निकाल देते हैं, उन्हे 'आचूषण' कहते हैं। यथा—मुख या शृंग।

आशुपाकी–

परिभाषा—जो द्रव्य चिरकाल मे पकने वाले व्रणशोथ विद्रधि आदि मे शीघ्र पाक पैदा करते है, उन्हे 'आशुपाकी' कहते हैं। यथा—उष्णवीर्य द्रव्य, अलसी, एरण्डपत्र, अश्वत्थपत्र।

संरोहण--

परिभाषा—व्रणानामरोहताम् यत्कुर्यात् रोहणम् ।

अर्थात्—जो द्रव्य रोहण न होने वाले व्रणो मे व्रणपूरक या रोहण वस्तु की उत्पत्ति करते है, उन्हे 'संरोहण' कहते हैं। यथा—तिलकल्क समधुकम्।

मार्ग विशोधन--

परिभाषा—मार्गविशोधन मूत्रपुरीषसंगे।

अर्थात्—मलमूत्रादि के अवरोध मे शलाका के उपयोग से मार्ग को खोलना। यथा—शलाका।

विकर्षणम्–

परिभाषा—'विगृह्याकर्षणम् अन्ये मासादिप्रतिबद्धस्य शल्यस्य मोचनम्।' (ड)

अर्थात्– मासादि धातुओ मे स्थित शल्य को पकडकर बाहर खीच लेना। यथा—स्वस्तिक यन्त्र।

उन्नमनम्–

परिभाषा—अध स्थितस्य शिर कणदिरूर्ध्वगमनम्। (ड)

अर्थात्—अध स्थित शल्य अस्थि शरीरावयव आदि को ऊपर उठाना। यथा—यन्त्रकर्म।

विनमनम्

परिभाषा—विनमनं निम्नीकरणम्। (ड.)

अर्थात—ऊपर उठी हुई अस्थि आदि को नीचे दवाना। यथा-यन्त्रकर्म।

आच्छन--

अर्थात् —सकुचित मुख या अग को खीचना शल्यादि कर्षण। यथा—यन्त्रकर्म।

छेदन–

परिभाषा—छेद्यं नि शेषत छेदनीयमर्शप्रभृति । (ड.)

अर्थात्—काटकर भगन्दर अर्श आदि को वाहर निकालने की क्रिया को 'छेदन' कहते हैं। यथा—शल्य कर्म, मण्डलाग्र, वृद्धिपत्र।

भेदन--

परिभाषा--विद्रधि आदि को चीरने की क्रिया को '**भेदन**' कहते है।
यथा--शस्त्रकर्म, वेतस पत्र।

लेखन--

परिभाषा--पोथकी आदि नेत्रगत रोगो मे अथवा विद्रधि आदि मे संश्लिष्ट मासादि के खुरचने की क्रिया को '**लेखन**' कहते है।

१. **लेखनम् पत्तली करणम्** (डल्हण) २. **शस्त्र कर्मणि लेखनम् ईषच्चर्म विदारण घर्षणेन् तस्मै हितम् लेखनीयम्**। ३ **लेखनम् कर्षणम् तस्मैहितम् लेखनीयम्**। (योगीन्द्रः) ४. **लेखयेत् स्थूलस्य कृशता कारयेत्**। आढमल्ल

बेधन--

परिभाषा--बेध्य अल्पकुशै शस्त्रैर्व्यधनीयं सिरादि।

अर्थात्--अल्प मुख वाले शस्त्र से छेद करके सिरावेध करना अथवा जलोदर या मूत्रवृद्धि मे जल या मूत्र के नि सरण की क्रिया को '**बेधन**' कहते हैं।

विस्रावण--

परिभाषा--विद्रधि, कुष्ठ, सिराजाल आदि मे से रक्तलसीका या पूय को चुआने-स्रवण करने की विधि को '**विस्रावण**' कहते हैं। यथा-शस्त्रकर्म।

सीवन--

परिभाषा--छेदन-भेदन करने के उपरान्त या किसी आघात आदि से छिन्न-भिन्न हुए शरीरावयव को रोपण मे सहायता करने के लिए टाके लगाने या सीने की क्रिया को '**सीवन**' कहते है। यथा--शस्त्रकर्म-सूची।

उपनाहन--

परिभाषा--शोथ का प्रस्राव या पाचन कराने के लिए अतसी आदि उष्ण वीर्य द्रव्यो को पीस कर और गर्म करके कपडे आदि से बाधने को '**उपनाहन**' कहते हैं। यथा--अतसी, हरिद्रा, पलाण्डुतैल।

कुट्टन--

परिभाषा--सूची के सहायता से त्वचा मे छोटे-छोटे छेद करने को '**कुट्टन**' (कुट्टन) कर्म कहते हैं। यथा--सूची।

मन्थनम्--

परिभाषा--मन्थ की सहायता से मन्थन क्रिया द्वारा छेद करने को '**मन्थन**' विधि कहते है। यथा--शस्त्रकर्म।

आन्त्रोत्तेजक--

परिभाषा (सामान्य)--जो द्रव्य आन्त्रो को उत्तेजित करते है, उन्हे '**आन्त्रोत्तेजक**' कहते हैं। यथा--रसकर्पूर, जयपाल।

रक्तभिसरणोत्तेजक--

परिभाषा--जो द्रव्य रक्ताभिसरण को उत्तेजित करते हैं, उन्हें 'रक्ताभिसरणोत्तेजक' कहते हैं। यथा--डिजिटेलिस, बेलाडोना, कपूर।

आमाशयोत्तेजक--

परिभाषा--आमाशय को उत्तेजित करने वाले द्रव्यों को 'आमाशयोत्तेजक' कहते हैं। यथा--सुगन्धित द्रव्य, मसाले।

त्वगुत्तेजक--

परिभाषा--त्वचा को उत्तेजित करने वाले द्रव्यों को 'त्वचोत्तेजक' कहते है। यथा--राजिका।

नेत्रोत्तेजक--

परिभाषा--नेत्र को उत्तेजित करने वाले द्रव्यों को 'नेत्रोत्तेजक' कहते हैं। यथा--रसौत।

व्रणशोथोत्तेजक--

परिभाषा– व्रणशोथ या व्रण को उत्तेजित करने वाले द्रव्यों को 'व्रणशोथोत्तेजक' कहते हैं। यथा—निम्बपत्र, सभालू के पत्र।

विरुद्ध–

परिभाषा–जो द्रव्य एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करते है, कोई वीर्य विरुद्ध, कोई सयोग विरुद्ध कहलाते हैं। यथा–मद्य और कुचला, अफीम और बेलाडोना।

तारकाविकासी–

परिभाषा–ये द्रव्य कनीनिका को-आख की पुतली को विकसित करते हैं, इनसे कनीनिका की पेशी दुर्बल होती है और कुछ काल तक दीप्तता कम हो जाता है। यथा–धत्तूरा, बेलाडोना।

तारकासंकोचक–

परिभाषा–इन द्रव्यो से कनीनिका का सकोच होता है और आंखो का तनाव कम होता है। यथा —अफीम।

शोणितोत्क्लेशक–

परिभाषा–ये द्रव्य त्वचा पर लगाने से त्वचा लाल हो जाती है या किन्ही मे त्वचा पर छाले पड जाते हैं। यथा–राई, हुलहुल, चित्रक, पीलु।

उत्तेजक–

परिभाषा–इन द्रव्यो से अगो मे उत्तेजना होती है, चाहे उन्हे मुख द्वारा लिया जाय या त्वचा पर मला जाय।

व्यापक संज्ञाए–

सुषुम्नाकाण्ड के उत्तेजक--परिभाषा–जो द्रव्य सुषुम्नाकाण्ड को उत्तेजित करते है, उन्हे 'सुषुम्नाकाण्डोत्तेजक कहते है। यथा—कुचला, फासफोरस।

यकृदुत्तेजक–

परिभाषा–यकृत् को उत्तेजित करनेवाले द्रव्यों को '**यकृदुत्तेजक**' कहते है ।

यथा–नौसादर, पित्तसारकवर्ग ।

हृदयोत्तेजक–

परिभाषा–जो द्रव्य हृदय को उत्तेजित करते है या रक्ताभि-सरण की गति को बढा देते है, उन्हे 'हृदयोत्तेजक' कहते है ।

यथा–डिजीटेलिस, उष्ण द्रव्य ।

कर्षण, अपकर्षण–

परिभाषा–दोषधातुमलादीन् कर्षयति यद्बलात् ।
कर्षण नामतज्ज्ञेय यथा वचा त्रिकटु ॥

अर्थात्–जो द्रव्य अपनी क्रिया द्वारा दोप धातु व मल को कर्पण करके वाहर निकाल दे उमे '**कर्षण**' कहते है । यथा–वचा, त्रिकटु ।

व्यापक सज्ञाए–श्लेष्मापकर्पण पित्तकर्षी, पूतिगन्धापकर्पण, मूत्रकर्षी, स्थौल्यापकर्षण.

१. श्लेष्मापकर्षण–

परिभाषा–जो द्रव्य विमार्ग गये हुए अथवा अपने मार्ग मे रुके हुए कफ को वलपूर्वक कर्पण-खीच करके वाहर निकाल दें, उमे '**श्लेष्मापकर्षण**' कहते है।

यथा–पिप्पली , वचा, त्रिकटु

२. पित्तकर्षी–

परिभाषा–जो द्रव्य विमार्ग मे गये हुए पित्त को बलपूर्वक खीचकर अपने मार्ग मे लाते है, उन्हे 'पित्तकर्षी' कहते है । यथा–गोपित्त, नवसार, सज्जीखार, पारा, रेवन्दचीनी ।

३. पूति गन्धापकर्षण-

परिभाषा–जो द्रव्य अपने प्रभाव द्वारा शरीर स्थित पूतिगन्ध को खीचकर वाहर निकाल देते है, उन्हे '**पूतिगन्धापकर्षण**' कहते है । यथा–हिंगु

४. मूत्रकर्षी–

परिभाषा–जो द्रव्य मूत्राशय मे स्थित मूत्र को बलपूर्वक खीचकर निकाल देते है, उन्हे '**मूत्रकर्षी**' कहते हैं । यथा–तृणपचमूल, सुरा, इक्षुरस आदि ।

५. स्थौल्यापकर्षण–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर के मुटापे को वलपूर्वक खीचकर समाप्त कर देते हैं, उन्हे '**स्थौल्यापकर्षण**' कहते है । यथा–शिलाजतु, गुग्गुलु ।

रोगजन्तुघ्न-क्रिमिघ्न–

परिभाषा–जो द्रव्य रोग उत्पन्न करनेवाले कीटाणुओ को नाश करते हैं, उन्हे '**रोगजन्तुघ्न**–कहते है । यथा–गुग्गुलु ।

मद्यम्-मादकम्-मदकरी–

परिभाषा–१–बुद्धिं लुम्पति यद द्रव्य मदकारी तदुच्यते ।
तमोगुणप्रधान च यथा मद्य सुरादिकम ।। (शा प्र· ग ४)

अर्थात्–जो द्रव्य तमोगुण प्रधान होने के कारण बुद्धि का नाश करके मद-नशा उत्पन्न करते है, उसे 'मदकारी' कहते है । यथा–नानाप्रकार की सुरा ।

मद के लक्षण–अव्यक्तबुद्धि-स्मृति-वाग्विचेष्ट सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्त. ।
आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मद्येन मत्त पुरुषोमदेन (भा·)

मदोत्पत्ति––मद्य हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् ।
दशभिर्दश सक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।।
लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्ल व्यवाय्याशुगमेव च ।
रूक्ष विकाशि विशद मद्य दशगुण स्मृतम् ।।
गुरु शीतं मृदुश्लक्ष्ण बहल मधुर स्थिरम् ।
प्रसन्न पिच्छिल स्निग्धमोजो दशगुण स्मृतम् ।।
गुरुत्व लाघवाच्छैत्य मौष्णादम्ल स्वभावत ।
माधुर्यं, मार्दव तैक्ष्ण्यात्, प्रसाद चाशुभावनात् ।।
रौक्ष्यात् स्नेह, व्यवायित्वात् स्थिरत्वं श्लक्ष्णतामपि ।
विकासिभावात्, पैच्छिल्य वैशद्यात्, सान्द्रतां तथा ।।
सौक्ष्म्यान्मद्य निहन्त्येव मोजस. स्वगुणैर्गुणान् ।
सत्व तदाश्रय चाशु सक्षोभ्य जनयेन्मदम् ।। (च चि. २४)

भौतिक सगठन–तदाग्नेय वायव्यं च (र वै ४–११,१२)

अपतर्पण–

परिभाषा–जो द्रव्य रसादि धातुओ के तर्पण-पोषण मे बाधा उत्पन्न करते हैं और धातुओ की ठीक प्रकार से तृप्ति-पोषण नही होने देते है, उन्हे 'अपतर्पण' कहते है ।

यथा–सक्षौद्रश्चाभयाप्राश
त्रिफला आरग्वध पाठा सप्तपर्ण । (च सू २२)

अवृष्य–

परिभाषा–जो द्रव्य शरीर मे सेवन करने के उपरान्त शुक्र की वृद्धि मे बाधा उत्पन्न करते हैं अथवा शुक्र ह्रास करते है, उसे अवृष्य' कहते हैं ।

यथा–कषाय कटुरस, खदिर, केले की जड ।

★★★

भाग ४

औषधि विज्ञान शास्त्र

भाग ४

कर्म विज्ञान

१. औषधि प्रयोग विज्ञान

औषधि प्रसरण मार्ग (Routs for the administration of Drug)—औषधिया दो प्रकार से प्रयुक्त होती है। स्थानिक व सार्वांगिक। स्थानिक औषधिया त्वचा, नेत्र–कर्ण–नासा इत्यादि मे या किसी एक कोष्ठ या स्रोतस् पर प्रयुक्त होती है, सार्वांगिक शरीर के प्रत्येक परमाणु अवयव परमाणु स्रोतस् तक मे और कोष्ठादि मे भी प्रयुक्त होती है। अत उनके भिन्न भिन्न मार्ग कहा कहा होते है उनका निम्नलिखित विवरण दिया जाता है।

महास्रोतस् (Elementary Canal)—महास्रोतस औषधि उपयोग का प्रधान साधन है जिसमे मुख से लेकर गुदापर्यन्त अग सम्मिलित है। औषधि सेवन किये जाने पर इस मार्ग से प्रथम प्रसार पाते हैं। अत उन्हे निम्नरूप से व्यक्त किया जाता है —

मुखगह्वर—सर्व सुलभ मार्ग औषधि सेवन का मुख है–मुख के बाद अन्न प्रणाली आमाशय–पक्वाशय, (बृहद व क्षुद्रान्त्र) गुद इत्यादि है। सर्वप्रथम मुख मे पहुचने पर मुख गह्वर की कला व जिह्वा के सपर्क मे द्रव्य आता है। जिह्वा व मुखद्वार के विशेष अगो पर भिन्न–भिन्न रस वाले द्रव्यो का प्रभाव भिन्न–भिन्न होता है इनके अतिरिक्त अन्य स्थानो पर भी प्रभाव होता है। यथा–

मधुर—स्वादुरास्वाद्यमानो मुख लिम्पति, इन्द्रियाणि प्रसादयति।

अम्ल— अम्लस्तु जिह्वामुद्वेजयति, उर कण्ठ विदहति, मुख स्रावयति अक्षि भ्रुव सकोचयति, दशनान् हर्षयति।

लवण—मुख विष्यदयति, कण्ठ–कपोल विदहति।

तिक्त—तिक्त विशदयति वदनम्, विशोधयति कण्ठ, प्रतिहन्ति रसनाम्।

कटु—कटुको भृशमुद्वेजयति जिह्वाग्र, चिमचिमायति कण्ठ कपोलम् स्रावयति मुखाक्षि नासिकाम्।

कषायस्तु—कषायस्तु जडयति जिह्व, बध्नाति कण्ठं पीडयति हृदयम्।

(अ स सू अ १८)

अत स्पष्ट है कि कोई द्रव्य मुख मे जाता है–जिह्वा पर निपात के बाद मुख मे फैलता (मुखलिम्पति), मुख की आभ्यतर श्लेष्मल कलाओं से स्राव कराता (मुख स्रावयति), कठ कपोल पर प्रभाव करता है (कठ कपोल विदहति, कठ कपोल स्रावयति), जिह्वाग्र या कठ पर उद्वेजन (Irritation) पैदा करते है, कठ चिमचिमायन करते हैं। जिह्वा को जड बना देते (जडयति जिह्वा) हैं, कठ पर असर करता है। इस प्रकार मुख गह्वर के तालु, कठ, जिह्वा, कपोल दत तक प्रभावित होते है। यह प्रभाव तब ही होते है जब द्रव्य जिह्वा सपर्क के बाद मुख के द्रव मे मिलकर शोषित हो जाय। विशेषकर अम्लरस व कटुतिक्त। अत गण्डूष–कवल प्रलेप (Paints) वटी–वटक (Lozenges) आदि कल्पों को मुख मे प्रयोगार्थ चुनते है।

गलप्रदेश (ग्रसनिका) (Pharynx)––मुखाग्र से अन्न प्रणाली के बीच ग्रसनी पेशियो मे बने भाग को ग्रसनिका कहते है। इस स्थान मे भी प्रलेप लेप–अवक्षेपण (Sprays) प्रधान द्रव्यो (Insufflation) का प्रयोग व घर्षण (Tonches) का प्रयोग करते है।

आमाशय––निगलन क्रिया के बाद द्रव्य अन्न प्रणाली से भीतर आमाशय मे जाते हैं और शोषित होकर अपना प्रभाव करते है। कुछ औषधिया जो सत्वमय व तिक्त कटुरस वाली होती है उनका शोषण आमाशय मे भी कुछ होता है। कभी कभी तीक्ष्ण व उष्ण द्रव्य आमाशय मे नही रुकते और आगे को प्रेषित कर दिये जाते हैं। यथा––जयपाल के योग (इच्छाभेदी वगैरह) कटुसत्वादि आमाशय मे भी शोषित होते हैं। विशेष शक्तिप्रद द्रव्यो का कुछ आमाशय मे भी शोषण होता है। यथा––कज्जली–रससिंदूर–चद्रोदय। वामक औषधियो की क्रिया आमाशय तक ही सीमित होती है और पुन वमन के रूप मे वाहर निकाल दी जाती है।

आमाशय में स्ववीर्य से शोषित होकर जो औषधियां अपना प्रभाव

(१) दर्शाती हैं वह स्थानिक उग्रता के अतिरिक्त नाडी प्रभावज क्रियाये जिन्हे

(२) प्रत्याक्षिप्त क्रिया कह सकते है करती है।

(३) शोषण के बाद उनकी सामान्य क्रमिक क्रियायें होती हैं। यथा–– वमन द्रव्य–स्थानिक प्रभाव व प्रत्याक्षिप्त प्रभाव–वमनद्रव्य–पीतवन्त तु खल्वेन मुहूर्त्तमनुकाक्षेत, तस्य यदा जानीयात्–स्वेदप्रादुर्भावेण दोष प्रविलयनमा पद्यमान, लोमहर्षेण च स्थानेभ्य प्रचलित, कुक्षिसमाध्मापनेन च कुक्षिमनुगत, हृल्लास आस्य श्रवणाभ्यामपि चोर्ध्वमुखीभूतम् अथास्मै जानुसममसवाध मुप्रयुक्तास्तरणोत्तर प्रच्छदोपधान सोपाश्रय मासनमुपवेष्टु प्रयच्छेत् (च. सू १५)

अंत्रगत प्रभाव (Intestines)––(१) वहुतसी औषधिया आमाशय के बाद क्षुद्र आत्र मे प्रविष्ट होकर शोषित होती हैं। इन पर श्लेष्म व पाचक

पित्त की क्रिया से सयोग वियोग होकर कुछ परिवर्तन होता है और गुणकर्म का उदय होता है ।

(२) जो तीक्ष्ण व उष्ण वीर्य होती है वह क्षोभक गुण पैदा करती है व आंत्र की श्लैष्मिक कला के ऊपर प्रभाव कर विस्यदन–विच्छेदन क्रियाकर आंत्र की गति मे तीव्रता पैदा करती है । श्लेष्मल कला मे प्रदाह उत्पन्न करती है । आत्र का शोषण प्रधान कार्य है ।

औषधियो के शोषण का क्रम निम्न बातो पर निर्भर करता है—

(१) द्रव्यो की घुलनशीलता (२) द्रव्यो का प्रायोगिक रूप ।

जो द्रव्य द्रव प्रधान रूप या मिश्रण के रूप मे होते है उनका शोषण चूर्ण व वटक मे शीघ्र होता है । रिक्त आमाशय मे औषधि का शोषण और प्रभाव शीघ्र होता है । स्नेहादि पहले घुलकर विभाजित होते है और फिर घने श्वेत दुग्धाम द्रव के रूप मे होकर तब शोषित होते है । इस मार्ग से चूर्ण–वटी–अवलेह–व पाकादि का गमन होता है ।

मलाशय–गुद–(Rectum)––गुद द्वारा गुदवर्ती, वस्ति आदि का प्रयोग किया जाता है । जब आमाशय रुग्ण हो तो साक्रामिक अवस्थाओ मे गुदमार्ग से बल्य औषधियो का प्रयोग किया जाता है । इस प्रान्त मे शोषक शक्ति अधिक होती है क्योकि रक्त वाहिनियो के शिराजाल अधिक होते है । आजकल चेतनाहर (Anaesthetics) व निद्राकर औषधियो का प्रयोग भी इस मार्ग से किया जाता है । मधुर द्रव्य व लावणिक घोलो का प्रयोग, पिच्छा वस्ति स्नेह वस्ति का प्रयोग भी इसी मार्ग से होता है ।

श्वासमार्ग (Respiratary tract)—महास्रोतस के अतिरिक्त श्वासमार्ग से भी औषधि का प्रयोग होता है । इस मार्ग मे नासा का आभ्यन्तर भाग श्वास प्रणाली व फुफ्फुस सम्मिलित है । नासिका द्वारा–शुष्क नस्य (प्रधमन) व स्निग्ध नस्य (प्रतिमर्ष), नासावर्ति (Bougies) प्रलेप, अभ्यग इत्यादि का प्रयोग या सीकर का प्रयोग (Sprays) वाष्प व धूम्र का प्रयोग सुगधित तैल उडनशील तैलो का प्रयोग भी इसी प्रकार होता है ।

वायव्य द्रव्य (गैस व धूम्र) का प्रयोग भी करके आधुनिक चिकित्सा मे चेतनाहर द्रव्यो का प्रयोग किया जाता है ।

यथा––क्लोरोफार्म–आक्सीजन इत्यादि ।

स्पर्शनेन्द्रिय (त्वक्)––बाह्यप्रयोगार्थ बहुत प्रकार के द्रव्यो का उपयोग अक्षत त्वचा पर करते है । इसके कई प्रकार है । यथा—प्रलेप–त्वचा के ऊपर प्रयोग करने के लिए विभिन्न दोषहर द्रव्यो को पीसकर लेप लगाते है अथवा स्वरस का लेपन कर देते है इसमे मर्दन या घर्षण क्रिया का आश्रय नही लिया जाता ।

उपनाह––औषधि द्रव्य को जल से पीसकर स्नेहादि सहित मिश्रित करके आधा अगुल या १ अगुल मोटा लेप लगाते है । इसमे––

मलहर (Ointment)--स्निग्ध लेप भी सम्मिलित हैं।

अभ्यग-तैल-घृत-स्वरस-द्रव-इत्यादि द्रव्यों को त्वचा पर लगाकर उसको मर्दनपूर्वक प्रयोग करते है इसमे तैल-घृत-द्रव इत्यादि का प्रयोग होता है। इससे ये द्रव्य धीरे धीरे त्वचा मे शोषित होकर भीतर मास व अन्य ततुओं मे प्रविष्ट होते है। यथा-महानारायण तैल-विषगर्भ-वेदनाहर प्रलेप-टिकचर क्रीम इत्यादि सम्मिलित हैं।

स्वेदन-त्वचा पर उष्ण या शीत जल के द्वारा उष्ण चैलिक विधि या शीत चैलिक विधि से स्वेदन करके लाभ उठाते हैं।

अन्तस्त्वचा-मे औषधियो के प्रयोग के लिये काकपदाकन-(शिर या किसी प्रदेश मे सन्निपात मूर्च्छा इत्यादि) मे ऊपर की त्वचा को तीव्र धार दार शस्त्र से प्रच्छन करके (Inoculation & Sccrefecation) औषधि का अव चूर्णन या लेपन करते हैं।

सूचीवेध-भीतर की त्वचा मे सूची मे औषधि प्रक्षेप करके प्रयोग करते है।

मांसधातु-आवश्यकतानुसार भीतरी मासधातु मे औषधिप्रक्षेप अग्नि दग्ध या अन्य प्रयोग करते है यथा-विशूचिका मे-एडी के मास का अग्नि दग्ध कर्म, अधिमथ मे-शख प्रदेश को दग्ध करना।

अथवा-लवण द्रव्य-मधुर द्रव इत्यादि का निक्षेप करके आत्ययिक दशाओं मे जीवन रक्षण करते है। रक्त का निक्षेप-रक्त-वारि का निक्षेप इत्यादि करके रक्षा करते है। यथा-लवण द्रव (Saline Solutions), द्राक्षशर्करा, द्रव निक्षेप, रक्त वारि (सीरम) या रक्त निक्षेप करते है। मासधातु के भीतर शिरा व धमनिया, नाडिया होती है उनके द्वारा इनका निक्षेप कर आकस्मिक स्थिति मे जीवनरक्षा करते है।

कलायें-नेत्र-नेत्र की श्लेष्मल कला (Conjunctiva) तथा अश्रु-प्रणाली मे कर्णिका (Cornea) मे आश्च्योतन (drops) अजन और वर्ति-इत्यादि का प्रयोग करते हैं इस प्रकार कर्ण मे भी औषधि निक्षेप करते है।

श्रोतस्-मुख गह्वर के अतिरिक्त योनि व गर्भाशय मे फलवर्ति-इत्यादि का प्रयोग पिचु-प्लोत-का प्रयोग या प्रक्षालन द्रव्यो का प्रयोग करते है।

उत्तरवस्ति-इसमे औषधि द्रव्यो को मूत्र प्रणाली द्वारा मूत्राशय मे औषधि पहुचाते हैं।

नासिका में औषधि निक्षेप-अन्नप्रणाली का प्रसारण-प्रक्षालन व आमाशय का प्रक्षालन भी बडे स्रोतसो के द्वारा करके औषधि का लाभ उठाते है।

आजकल-अतर्सौषुम्निक द्रवभरण या निष्काशन, फुफ्फुसावरण मे हृदया वरण से द्रव निष्काशन व द्रव भरण करते है। अथवा कोषावरण से तरल निष्काशन या प्रक्षेप करते है।

हृदयान्तर्गत-Intra cardiac Injection) हृदय के भीतर के कोष्ठ मे औषधिभरण व प्रेक्षण करके लाभ उठाने की प्रणालिया चल निकली है।

कान में कर्णपूरण–कर्णप्रक्षालन और कर्ण संशोधन या कर्ण मे रस निक्षेप आदि क्रियायें होती है।

औषधि प्रयोग के मार्ग संक्षेप मे लिखे गये है। उनमे किन किन कल्पो का प्रयोग हो सकता है संक्षेप मे निम्नरूप मे प्रदर्शित है–यथा त्वचा पर अक्षत त्वचा पर (unbroken skin)

१–स्नेहन	५–परिषेक	९–उत्कारिका
२–स्वेदन	६–प्रदेह	१०–पिण्डिका
३-लेप	७-प्रलेप	११–मज्जन
४–अभ्यग	८–आलेप	१२–निम्मज्जन

१३–शिरोवस्ति

(२) श्लेष्मल कला पर (Mucous Membarane)

(१) नासिका कला–१ नस्य २–प्रतिमर्ष नस्य (३) प्रधमन नस्य (४) पूरण-विनुपूरण (५) धूम्रपान (६) वाष्प पान

(२) नेत्र की कला पर (१) आश्च्योतन (२) अजन (३) वर्ति (४) पूरण-स्वरस-कषाय-घृत-तैल (५) प्रतिसारण

(३) मुख की कला (१) कवल धारण (२) गण्डूष धारण (३) कल्क धारण (४) चूषण (वटी चूषण) (५) लेप-गललेप (Throte Paint)

(४) गुदकी कला (१) वस्ति-अनुवासन व निरूह (२) तर्पण (गुद मे स्वरस कषाय-लवण-द्रव-दुग्ध-घृत का धारण)। (३) गुदवर्ति (फलवर्ति-(Supositary)

(५) योनि की कला–(१) परिषेचन (२) धावन (३) फलवर्ति (४) पिचु (५) प्लोत (६) विकेशिका

(६) मूत्र नली की कला व मूत्र बस्ति–उत्तर वस्ति।

क्षतज–आच्छादित शोथयुक्त या रुग्ण त्वचा पर (Deseased Surface) (१) प्रलेप (Ointments) (२) प्रदेह (Poultice) (३) आलेप (Paints) (४) अभ्यग (massage) (५) परिषेचन (कषाय-पानीय Irrigation) (६) व्रण धावन (Lotions) (७) अव चूर्णन Dusting powder) (८) रोपण चूर्ण व चूर्णन (९) शोधन चूर्ण विकीर्णन (१०) उत्कारिका-पिण्डिका (११) स्वेदन (उपनाहस्वेदन-द्रव स्वेद-उष्मस्वेद-तापस्वेद (१२) प्रावरण (Thik coverings) (१३) स्नेहन (१४) शिरोवस्ति (१५) अग्निदग्ध पर लेप (१६) दाहकलेप (सर्षप या लवग (१७) लेखन

औषधि कर्म मे वर्णित विविध कर्म एकाग या सर्वांग क्रिया के लिये प्रयुक्त होते है उनका पृथक् वर्णन किया गया है। यथा—दीपन-पाचन ग्राही वमन विरेचन रसायन।

वाजीकरण-स्रसन-अनुलोमन-भेदन-संशोधन-च्छेदन-लेखन आदि सहाय्य कर्म है जिनका प्रयोग विविध प्रकार से होता है।

२. कर्म व उसका आयुर्वेद में विवरण

आयुर्वेद जीवन का व्यापार शास्त्र है। अतः इसके कर्म संबधी विवरण मे शारीर व मानस क्रिया व्यापार का विवरण मिलता है। शरीर मे जितने भी कार्य होते है वह सब इसमे सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त शरीर धातु दोष व मलो मे विषमता होने पर भी जो क्रिया व्यापार होते हैं वे सबके सब तथा औषधि द्वारा जो कार्य होते है वह सब इसके क्षेत्र मे आते हैं। इस निमित्त प्रथम हम कर्म की परिभाषा कहेगे जिनसे कि इन सबका अर्थ सार्थक होता हो।

कर्म–क्रियत इति कर्म। जो कुछ किया जाय वह कर्म है। यहा पर ससार के अन्य कर्म का ग्रहण न करके औषधि कर्म व शारीर कर्म के लिये इसका प्रयोजन व्यक्त है अत यह परिभाषा सामान्य अर्थ मे समग्र कर्म के लिये आई है। विशेष औषधि कर्म के लिये चरक ने पुन दूसरी परिभाषा कही है वह है–

१ संयोगे च विभागे च कारणं द्रव्यमाश्रितम्।
कर्तव्यस्य क्रिया कर्म कर्म नान्यदपेक्षते। चरक०

पुनश्चः–द्रव्याणि हि द्रव्य प्रभावाद्गुणप्रभावात्, द्रव्यगुण प्रभावाच्च, तस्मिं-स्तस्मिन् काले तत्तदधिष्ठानमासाद्य, तां ता युक्तिमर्थं च, त तमभिप्रेत्य, यत् कुर्वन्ति तत् कर्म, येन कुर्वंति तद्वीर्यं, यत्र कुर्वंति तदधिकरण, यदा कुर्वन्ति स काल, यथा कुर्वंति स उपाय, यत् साधयति तत्फलम्। च सू स्था २६।१२

इसमे प्रथम लक्षण तो वैशेषिक मतानुसार है। यथा—

एकं द्रव्यमगुणं सयोगविभागेष्वनपेक्ष कारणमिति कर्म लक्षणम्।
वै व वेदान्त।

द्वितीय परिभाषा औषधि कर्म के लिये ही कही गई है। अर्थात्–जो सयोग व विभाग मे अनपेक्ष कारण या स्वतत्र कारण होता है और अगुण होता है तथा द्रव्य के आश्रित रहता है वह कर्म है।

ससार के जितने भी कर्म है वह बिना किसी के सयोग व विभाग के नही होते। इसी प्रकार यह औषधि कर्म भी औषधि व शरीर के सयोग होने पर उचित काल, युक्ति, अर्थ, उपाय व अधिकरण को पाकर शरीर मे जाकर जो कुछ भी करते है वह ही कर्म है। चाहे वह द्रव्य से, गुण से व द्रव्य व गुण दोनो के प्रभाव से निष्पन्न होता हो।

आयुर्वेद मे कर्म से विभिन्न प्रकार के चिकित्सा सबधी कार्य अभिप्रेत होने से विभिन्न प्रकार के अधिकरण, उपाय, एक कर्मार्थ निश्चित आश्रय लेकर क्रिया के रूप मे निष्पन्न होनेवाला कर्म अभिप्रेत है। यथा –वमन कर्म के लिये वसत ऋतु का काल, शरीर मे आमाशय का अधिकरण पाकर, उष्ण-तीक्ष्ण व्यवायी व विकाशी गुणो का सहारा लेकर सारे शरीर के विभिन्न भागो से नाड़ी व धमनी का सहयोग लेकर एक स्थान पर वमन के यत्रण के उपाय के

द्वारा गुत्र स्कंध ग्रीवा तालु ओष्ठ आदि के प्रसारण आमाशय के सकोच आदि क्रिया पूर्वक जो एक कर्म वमन होता है यह ही इसका फल होता है। अतः एक कर्म के लिये औषधि व शरीर के विभिन्न अगो के सम्मिलन व एक दूसरे के साथ सपर्क व अन्योन्याश्रित कर्म होकर रस रक्त के साथ मिलकर जो भी क्रिया उत्पन्न होती है वह ही कर्म है।

सामान्य अर्थ मे इन्द्रिय का मन व आत्मा के साथ संयोग होने पर विभिन्न कर्म की उत्पत्ति होती मानी गई है। फिर औपधि कर्म के उत्पन्न होने मे उनका विशेप प्रकार का मेलन व कार्य निष्पन्न होने की स्थिति होती है।

इसी प्रकार की परिभाषा आधुनिक चिकित्सको की भी है। यथा—

By the action of a drug on the human organism is under stood the inter action between a drug and the blood and tissues, where by either the exesting functions are altered or certain functions are brought more in to prominance which were latent before.

(Materia Madica by Ghos Page No. 46)

अर्थात्--औषधि के कर्म का अर्थ मानव शरीर मे औषधि का पहुचना और रक्त व औषधि का मिलना व उससे निष्पन्न क्रिया का होना मात्र। चाहे वह क्रिया किसी अग की क्रिया बढावे या कम करे।

यह कर्मक्षेत्र बहुत बडा है और दो प्रकार का होता है। एक तो वह कर्म जो कि द्रव्य के शरीर मे पहुचने पर दोनो के मेलन पर प्रत्यक्ष होता है। दूसरा जो प्रत्यक्ष नही होता। परंतु वह शरीर मे औषधि के गुण प्रभाव से भीतर ही भीतर चलता रहता है। यथा---हम वमन मे औषधि खाने के बाद प्रतीक्षा करते हैं और उसके प्रभाव से होने वाले उत्क्लेश रोमोद्गम स्वेद ओष्ठ-मुख गल-तालु का विस्फारण व स्कध वक्ष-ग्रीवा की पेशी का विस्फारण देखते है और फिर उसके बाद उदर से वमन द्रव्य का निकलना देखते हैं इसमे कौनसा द्रव्याश कहा पर गया और किस प्रकार कर्म को उत्पन्न किया यह हम नही देख पाते। किन्तु वमन का निष्पन्न होना हम देख पाते हैं।

औषधि कर्म से हमको यहा पर इस प्रकार के कर्म का होना अभिप्रेत है। कुछ आचार्य इस विस्तृत कर्म की परिभाषा न करके छोटी परिभाषा करते है वह है --

क्रिया लक्षणं कर्म। रस वैशेषिक अ सू ज्ञ। ८०

प्रयत्नादि कर्म चेष्टितमुच्यते। चरक स १।४९

अर्थात्--क्रिया के लक्षणो का स्वरूप ही कर्म।

इस प्रकार कर्म के द्विविध प्रकार दृष्टिगोचर हो सकते है। ऐसा रस वैशेपिक के भाष्यकार मानते है। विभिन्न अवयवो मे होने वाली अवयव क्रिया

और समुदाय मे होने वाली सामुदायात्मिका क्रिया। वमन समुदायात्मक क्रिया है और भिन्न–भिन्न लक्षणो वाले लक्षण अवयव क्रिया है। बाह्य कर्म मे जैसे तदुल पाचन कर्म मे तदुल साफ करना जल मे मिलाना पतीली मे रखना आग मे पकाना, उवालना यह छोटे छोटे कर्म अवयव कर्म है और भात का पक कर तैयार होना यह समुदायात्मक कर्म है। अत कर्म परिभाषा लिख कर भी चरक ने **'कर्त्तव्यस्य क्रिया कर्म कर्म नान्यदपेक्षते'** ऐसा लिखा है। अथवा **'प्रयत्नादि कर्म चेष्टितमुच्यते'**।

चरक ने कई शब्द कर्म के पर्याय माने है यथा––

प्रवृत्तिस्तु खलु चेष्टा कार्यार्था। सैव क्रिया प्रयत्न कार्य समारम्भ श्चेति।

वि० स्था० चरक ८।९९

ये एक या समस्त कर्म के बोधक है। **प्रवृत्ति प्रवर्त्तनम् प्रवृत्ति** इसका अर्थ व्याप्त होकर क्रिया करना होता है। द्रव्य शरीर मे व्याप्त होकर जो भी करता वह कर्म है।

क्रिया करणं क्रिया। प्रवृत्तिस्तु खलु चेष्टा कार्यार्था सैव क्रिया।

इसका व्यापक अर्थ होता है। शरीर मे जाने पर कोई भी द्रव्य जो भी करता है उन सभी होने वाले कार्य या परिवतन क्रिया वाच्य है।

यत्न––कर्म उत्पादनार्थ जो भी यत्न या चेष्ठाये हैं वह कर्म हैं।

समारम्भ–किसी कर्म के करने के लिये कई तरह के समारम्भ करने पडते हैं। जैसे तडुल पाक मे कई क्रियाओ का समावेश है। यह सब समारभ है। किन्तु इनका ही नाम कर्म कहा गया है। अत चरक व वैशेषिक के परिभाषा मे कोई अतर नही है। केवल शब्द का ही अतर है। इस प्रकार शरीर कर्म अवयव कर्म सामूहिक कर्म आदि का विवरण बतलाने के लिये ही तीन वार परिभाषा चरक ने कर्म की लिखी है। जिसमे सबका सग्रह हो जाय।

कर्म चेष्टा व्यापार है––कर्म की उत्पत्ति के लिये द्रव्य को शरीर मे प्रवेश करना पडता है वह भीतर जाकर शरीर के विविध स्थानो के रसो के साथ सबध करता है इन दोनो के विविध प्रकार के सयोग व वियोग से कई प्रकार के मेलन कर्म व विश्लेषण कर्म होकर अत मे एक सामूहिक कर्म की फलप्राप्ति होती है और वह ही एक कर्म की सज्ञा पाता है।

इस तरह विभिन्न प्रकार की शारीर चेष्टा से उत्पन्न कर्म भिन्न है और औषधि क्रिया से उत्पन्न कर्म भिन्न प्रकार का होता है। परन्तु हैं सब कर्म ही।

भाष्यकार यथा––अत्र कर्मेति समुदाय क्रिया। तस्या लक्षण रूपेण व्यवस्थाप्यमाना लक्षण क्रिया। वमनमिति समुदाय क्रिया। वल्या स्नेहन स्वेद-नाश्वासन तद्दिवसाहार क्रिया अवयव क्रिया तयाभिव्यज्यते समुदाय क्रियेति। यथा उदकादिभि तंडुल धावने दर्वीघट्टनपरिस्रावण परिवर्त्तनादय क्रिया विशेषा अवयव।

क्रिया विशेषा अवयव भूतास्तामभिव्यजयंति। तंडुल विलृप्ति रूपामिति। अथवा करण क्रियाकारण लक्षण कर्मेति॥

कर्म के लिये सयोग विभाग मे कारण बनना सदा सभव है चाहे वह शरीर व्यापार हो या सामान्य चेष्ठा रूप कार्य हो। अग का उसकी प्रवृत्ति का सयोग विभाग पाना ही होता है। औषधि कर्म से स्पष्ट है कि जो बात परिभाषा के रूप मे सूत्रस्थान के २६ वे अध्याय मे कही है। वह ही इसका स्पष्ट अर्थ द्योतक है। यथा **द्रव्याणि हि द्रव्य प्रभावात् गुण प्रभावात द्रव्यगुण प्रभावात् तत्तदधिकरणमासाद्य तां तां युक्तिमर्थं च त तमभिप्रेत्य यत् कुर्वन्ति तत् कर्म।**

कर्म की विविधता--कर्म का क्षेत्र अति विस्तृत है। वह सामान्य कर्म से लेकर विशेष कर्म तक मे फैला हुवा है। इसके आधार पर सहस्रो कर्म बन जाते हैं। यथा—

आयुर्वेद मे कर्म की विविधता का क्रम विभिन्न प्रकार का है। यथा—शरीर व्यापारार्थ दोप धातु व मल की साम्यता मे कर्म जो शरीर की स्थिति का निवध करते है और शरीर व्यापार चलता है। यथा—शरीर मे।

दोष जन्य कर्म—विभिन्न प्रकार का वातजन्य चेष्टा-व्यापार, पित्त जन्य अग्नि-कर्म व श्लेष्म का उदक कर्म यह सारे शरीर की स्थिति को रखते हैं। चरक, सुश्रुत व वाग्भट मे इनका विवरण बहुत है। कोई भी शरीर व्यापार विना इनकी चेष्टा के हो नही सकता अत सहस्रो की सख्या मे चेष्ठा व्यापार का स्वरूप शरीर कर्म के रूप मे बनता है। ये ही जब वैकारिक हो जाते हैं तो विभिन्न प्रकार के कर्म के रूप को धारण करते है।

इस प्रकार दो स्वरूप कर्म के शरीर मे मिलते है। यथा—

१. अवैकारिक कर्म   २ वैकारिक कर्म

अवैकारिक—वात द्वारा विभिन्न चेष्ठायें उत्साह, उच्छ्वास, नि श्वास, उद्वहन, धारण, पूरण, विवेकगति, मनो नियमन प्रेरण उद्योजन, सधान। अग्नि सधुक्षण, सर्वेन्द्रियार्थाभिवहन। आक्षेप, विक्षेप, क्षेपण प्रसादन अवसादन। प्रस्पन्दन, प्रवर्धन, अनुलोमन, निग्रहण जनन शमन उत्तेजन चल, विशद, प्रेरण स्पर्श, आहरण निष्ठीवन सशोधन, स्रोतो भेदन अनुवर्त्तन, आहरण आकुचन उद्योजन अवलबन। प्रवृत्ति पाचन विवेचन, नयन, निमेष, उन्मेप उत्सर्ग सग आदि।

पित्तज कर्म—उष्मा, दर्शन, पक्ति, क्षुधा, तृषा मार्दव। मात्रामात्रत्व उष्मा, वर्ण, शौर्य, राग ओज, तेज, अभिलाष, रुचि अग्नि दीप्ति, रूप व छाया प्रकाशन प्रसाद देह मार्दव पाचन आदि।

श्लेष्म कर्म—गौरव स्नेह वध स्थिरत्व, वृषत्व बल, क्षमा, धृति, अलोभ-दाढर्च, उपचय, उत्साह, ज्ञान, शुद्धि, सधि सश्लेषण रोपणपूरण विवेचन, गौरव, शैत्य, स्नेह माधुर्य पैच्छिल्य शौक्ल्य मात्स्नर्य इन्द्रिय-तर्पण-अवलम्बन-क्लेदन रस बोधनम् आदि। यह कर्म अति सक्षेप मे अवैकारिक दोपो के दिये गये है। प्रत्येक इन्द्रिय के साथ व क्रिया के विशेषण लगाकर इनकी सख्या अति अधिक हो जाती है।

इसी प्रकार धातु व उपधातुओ के सामान्य व विशेष कर्म भी है। सामान्य कर्म यथा--

रस धातु--प्रीणन, तुष्टि, रक्त पुष्टि आदि।

रक्त के कर्म--जीवन मास पुष्टि वर्ण प्रसाद।

मांस कर्म--उपलेप शरीर-पुष्टि मास-पुष्टि, जीवन धारण ओजस्वीकरण।

मेद कर्म--स्नेहन, स्वेद, दृढत्व, अस्थि पुष्टि।

अस्थि कर्म--धारण, मज्जपूरण।

मज्जा कर्म--पूरण, स्नेहन, वल, शुक्र, पुष्टि।

शुक्र कर्म--सन्तानोत्पत्ति धैर्य, प्रीति, वल, हर्ष।

ओज--शरीर मे उर्जा का प्रदान व शरीर धारण, हृदयावलम्वन-पुष्टि आदि।

इसी प्रकार से धातु उपधातु व मलो के भी कर्म का विवरण दिया हुवा है। इनकी सख्या असख्य है।

वैकृतिक कर्म का विवरण विरतारपूर्वक आगे दिया जा रहा है।

(औषधियां शरीर पर किस प्रकार कार्य करती हैं)

भारतीय चिकित्सा का प्रधान आधार औपधियो के कर्म विज्ञान पर निर्भर करता है। यह चिकित्सा विभिन्न नामो मे पुकारी जाती है। यथा—

चिकित्सित व्याधि हरं पथ्यं साधनमौषधम्।
प्रायश्चित्तं प्रशमनं, प्रकृति स्थापनं हितम्।
विद्यात् भेषज नामानि। चरक

ये सव नाम चिकित्सा के कहे गये है। इस कर्म का ज्ञान प्राचीन काल से ही प्राचीन चिकित्सको को था। और इसका आधार व्याधि प्रशमनार्थ औषधियो के विभिन्न गुणो का जानना आवश्यक होता था। अत यह विचारना अत्यावश्यक है कि इन औषधियो का कर्म किस प्रकार का होता था और इसके विषय मे प्राचीन चिकित्सको के क्या विचार थे। इसका विस्तृत विवरण आयुर्वेद विज्ञान मे मिलता है। औषधिया किस प्रकार कार्य करती हैं यह विचारणीय विषय पहले भी था।

चरक व सुश्रुत का मत है कि औषधिया अपने कार्य के लिये शरीर को अपना आश्रय वनाकर के कार्य करती हैं और इस प्रकार शरीर का अधिकरण प्राप्त करके वह शरीर मे जव जाती हैं शरीर के सपर्क मे आकर सयोग व विभाग के द्वारा अपना कार्य करती है। इन लोगो का विचार है कि औषधियां कई प्रकार से अपना कार्य करती है। यथा--

१. द्रव्याणि हि द्रव्य प्रभावात् २ गुण प्रभावात् ३ द्रव्य गुण प्रभावात्

तस्मिन् तस्मिन् काले तत्तदधिकरणमासाद्य तां तां युक्तिमर्थं च यत्कुर्वन्ति तत्कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वीर्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, यदा कुर्वन्ति स काल, यथा कुर्वन्ति स उपाय, यत् साधयन्ति तत्फलम्॥ च सू. अ २६

ऊपर के विचार से स्पष्ट है कि औषधिया अपने द्रव्य प्रभाव से, गुण प्रभाव से व द्रव्य गुण प्रभाव से विभिन्न काल मे विभिन्न अधिकरण को पाकर युक्तिपूर्वक प्रयुक्त होती है तो जो कुछ करती हैं वह कर्म कहलाता है और जिस सक्रिय तत्व के द्वारा कार्य करती हैं वह उसका वीर्य कहलाता है। जहा कार्य करती है वह अधिकरण कहलाता है। जब तक उनका कार्य होता है वह उस कर्म का काल कहलाता है। जिस प्रकार करती हैं वह उसका उपाय कहलाता है। और जो कर्म फल साधन होता है वह उसका फल कहलाता है।

अर्थात् फल की निष्पत्ति मे औषधि को इनका आश्रय लेना पडता है। यथा--१. अधिकरण या शरीर व शरीराग (Body) २. काल या समय टाइम (Time) ३. युक्ति मेथडस् (Methods) ४. वीर्य या सक्रिय तत्व (Active Principle) ५. उपाय।

इस प्रकार औषधि शरीर का आश्रय लेकर एक निश्चित काल मे अपना कार्य एक विशेष समय मे करती हैं। इनका विवरण आगे दिया जाता है।

कर्म की उत्पत्ति--कर्म की उत्पत्ति मे विभिन्न साधनो के अतिरिक्त जिस प्रधान वस्तु के द्वारा कार्य होता है वह वीर्य या कार्य-कर तत्व हैं जो कि उनमे पाये जाते हैं। सबसे पहले तो आत्रेय सप्रदाय वालो का यह विचार था कि द्रव्य का कार्य तीन प्रकार से होता है यथा--द्रव्य प्रभाव से अर्थात् द्रव्य अपने प्रभाव द्वारा कार्य करता है।

द्रव्य प्रभावात् कर्म--द्रव्य वह है जिसमे कि कर्म व गुण रहते हैं अतः वह अपने भीतर के स्व-प्रभाव द्वारा कार्य करता है। यथा--

जब द्रव्य अपने गुणो का पराभव करके कार्य करता है तब वह द्रव्य कृत कर्म कहलाता है। द्रव्य मे सदा ही गुण रहते हैं अत बिना गुण के कार्य हो नही सकता। ऐसी शंका मे यही समझा जाता है कि द्रव्य जब गुणो को पराभूत कर के कार्य करते हैं और अपने प्रभाव का सामूहिक प्रभाव डाल कर कार्य करते हैं तब वह द्रव्य प्रभाव जन्य कहलाता है। यथा--

१--दन्ती का अपने प्रभाव से रेचन कर्म करना।

२--मणी का अपने प्रभाव से व्याधि का नाश, धारण मात्र करने से करना आदि।

२--गुण प्रभावात् कर्म--जब द्रव्य अपने भीतर के गुणो के आधार पर कार्य करता है तब वह गुण कृत कार्य कहलाता है। इसमे द्रव्य के प्रभाव को गुण अकिंचित कर कर के कार्य करता है।

३--द्रव्य गुण प्रभावात्--जब द्रव्य, द्रव्य व गुण दोनो के प्रभाव से कार्य करता है तब द्रव्य गुण प्रभावज कर्म कहलाता है।

द्रव्य के गुण के उदाहरण मे ज्वर मे तिक्त रस का उपयोग ज्वर शामक है। शीत से उत्पन्न व्याधि मे उष्ण गुणवाले द्रव्य व उष्ण से उत्पन्न रोग मे शीत गुणवाले द्रव्य का उपयोग करना लाभप्रद है।

द्रव्य गुण प्रभाव मे कृष्णाजिन का उपयोग यकृत रोग मे। कृष्ण-गुण व अजिन द्रव्य दोनो के गुणो का उपयोग ही रोग नाशक है।

इस प्रकार देखते है कि द्रव्य के कार्यार्थ यह सामान्य विधि पहले प्रचलित थी। इसके वाद और विचार हुवा और तव दूसरी विधि अपनाई गई। वह निम्न रूप से है।

विभिन्न प्रकार के विचार–कुछ समय वाद देखने को मिलता है कि इनमे विचार विशेप प्रकार के वने यथा–

१–द्रव्य अपने प्रभाव के अतिरिक्त अपने मे स्थित रहने वाले रस, गुण, वीर्य व विपाक तथा प्रभाव के द्वारा कार्य करते है। यथा–

१–किंचिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन चापरम्। गुणान्तरेण वीर्येण प्रभावेण च किंचन। अ हृ सू ९।

२–किंचिद्रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम्। द्रव्य गुणेन पाकेन प्रभावेण च किंचन। च सू. अ २६

३–तद्द्रव्यमात्मना किंचित किंचिद्वीर्येण सेवितम्।
किंचिद्रस विपाकाभ्या दोषं हति करोति वा। सु. सू अ ४६।

इनके प्रतिपादनार्थ दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। यथा–१–पृथक्त्व दर्शी २–सम दर्शी।

१–पृथक्त्व दर्शी–इनका मत है कि द्रव्य अपने भिन्न भिन्न गुण, रस, वीर्य, विपाक व गुण के द्वारा अलग अलग कार्य करते है। कभी रस से, कभी गुण से कभी वीर्य से, व विपाक से।

सम दर्शी–सम दर्शियो का मत है कि द्रव्य अपने भीतर के गुणों के द्वारा अपना कार्य करता है। कभी रस से, कभी गुण से, कभी वीर्य से, कभी विपाक से, कभी प्रभाव से, कार्य करते हैं। सम दर्शी सव द्रव्यो का जो इसके भीतर रहते है उनसे कार्य करने का विचार करते है। जैसा कि ऊपर कह आये है इनका कार्य विभिन्न गुणो के आधार पर होता पाते हैं।

द्रव्यो के कर्म को ध्यान मे रख कर उनके कर्म का विभाजन दो प्रकार से किया गया है। यथा—

१–मीमास्य	अमीमास्य	सुश्रुत
२–चिन्त्य	अचिन्त्य	—
३–प्रकृति सम समवेत	विकृति विपम समवेत	चरक
४–समान प्रत्ययारब्ध	विचित्र प्रत्ययारब्ध	वाग्भट
५–रैशनल (Rational)	इम्पिरिकल (Empirical)	

ऊपर की सज्ञायें सव समानार्थवाचक है। विभिन्न विचार वालो के मत से नाम भिन्न भिन्न दिये गये हैं जो कि समान वाचक हैं। सुश्रुत के मत से इसे जो कहते हैं उसका विचार निम्न है।

मीमांस्य–रसादि पचयुक्त द्रव्य के दो भेद हैं व तदनुसार उनके कार्य भी दो प्रकार के हैं। यथा—

मीमांस्य–जिन द्रव्यो की क्रिया का पता चलता है उनको मीमास्य द्रव्य कहते हैं। इससे यह पता चलता है कि यह द्रव्य रस के द्वारा कार्य करता है कि गुण के द्वारा आदि।

२–**अमीमांस्य कर्म**–जिनके कर्मों का समाधान उनके रस, गुण, वीर्य, विपाक के क्रम द्वारा नही जान पडता उनको अमीमास्य कहते है। इन्हे तर्क या अनुमान के द्वारा जाना जाता है। अत जिस कर्म का तर्क सम्मत समाधान नही मिलता उनको अमीमास्य कहते हैं।

प्रकृति सम समेवत-जिसमे द्रव्यो के कर्म शरीर मे जाने पर कारण द्रव्य के गुण विचार से ही, कार्य द्रव्य के गुण व कर्म का ज्ञान होता है अर्थात् कारण व कार्य के गुण समान हो और कार्य निष्पन्न होता हो उसे प्रकृति सम समवेत कहते है। इसमे कारण द्रव्य के गुणो का उपमर्द नही होता वे ज्यो के त्यो कार्य में पाये जाते है। यथा—चित्रक। दुग्ध आदि।

विकृति विषम समवेत–जिस द्रव्य के कारणात्मक गुण का उसी प्रकार अवस्थान नही करते वल्कि कारण गुणो का उपमर्द करके नये गुण उत्पन्न हो जाते है। अत द्रव्य के प्राकृत रसानुरुप गुण नही होकर विशेप प्रकार से द्रव्य कार्य करता है। यह विकृति विपम समवेत कहलाता है। अत जहा पर द्रव्यो के परस्पर मेल होने से उत्पन्न नये गुणो को ही प्रधानता मिलती है जो उस द्रव्य का निजी गुण वनता है विकृति विसम समवेत कहलाता है। यथा–दन्ती, विष, लौहापकर्षण मणि।

नोट–चरक के इस सिद्धान्त के अनुसार कर्म के द्विविध भेद मे एक विशेषता है। वह द्रव्य के कर्म को समझने के लिये एक नये स्वरूप का प्रतिपादन करता है। उसका कथन है कि द्रव्यो के आपस मे मिलने पर अवयवो के परस्पर सघात से परस्पर गुणोपमर्द और विशिष्ट गुणोपसर्जन हो जाता है तथा द्रव्य समवाय की विशेपता से नवीन गुणो की उत्पत्ति भी होती है। सुश्रुत

१–अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावत। आगमेनोपयोज्यानिभेषजानि विचक्षणै। सु

प्रत्यक्ष लक्षण फलाप्रसिद्धानि स्वभावत। नौषधीहेतुभिर्विद्वानपरीक्षेत कदाचन। सु अ. सु ४०

२–द्विविधो मेलको भवति रसानां दोषाणा च प्रकृत्यनुगुण, प्रकृत्यननुगुणश्च; तत्र यो मिलितानां प्राकृतगुणानुपमर्देन मेलको भवति, स प्रकृति समसमवाय शब्देनोच्यते। यस्तु प्राकृतगुणोपमर्देन भवति स विकृतिविषम समवायेऽभिधीयते।
चक्रपाणि।

३–न हि विकृतिविषेम समवेतानां नानात्मकाना परस्परेणचोपहतानामन्यैश्च विकल्पनैर्विकल्पितानां अवयवप्रभावानुमानेनैव समुदाय प्रभावतत्वं अध्यवसातुं शक्यम्। तथायुक्ते हि समुदयेसमुदायप्रभावतत्वमेवोपलभ्य ततो द्रव्यविकार प्रभावतत्वं व्यवस्येत्। च. वि अ. १।१०।११

की तरह अभी मास्य कह करके वह रुक नही जाते समाधान के मार्ग को ढूढ निकालने के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिये हैं।

वास्तव मे द्रव्य का कार्य दो प्रकार से होता है। जब वह अपने द्रव्य स्थितभूत प्रभावातिशय के बने तत्वाधार पर कार्य करता है तो उस का स्वरूप एक विशेष प्रकार का होता है और जब वह विभिन्न प्रकार के तत्वो के आधार पर बने गुण के अनुसार कार्य नही करके कई द्रव्य या एक ही द्रव्य के उपयोग पर विशेष प्रकार से कार्य करता है तब वह विशिष्ट कर्म कहलाता है। इसमे द्रव्य मेलन से सयोग विभाग होकर अणु परमाणु के मेल पर विशेष प्रकार के तत्वो के मेल से नया द्रव्य गुण उत्पन्न हो जाता है और विशेष प्रकार का कार्य होता है। विज्ञान विज्ञान है वह किसी दायरे मे बाधा नही जा सकता अत. विशेष कार्य करने मे विशेष विधि से कार्य होने व कार्यप्रणाली का ज्ञान न होने पर उसको चरक ने विशेष शब्द दिया है वह ही विकृति विषम समवेत है। वाग्भट भी उसे मानते है। उनकी सज्ञा समान प्रत्ययारब्ध व विचित्र प्रत्ययारब्ध है। उनका विचार है कि कर्म दो प्रकार से होते है। प्रथम समान प्रत्ययारब्ध क्रम मे यथा–

समान[1] **प्रत्ययारब्ध द्रव्य**–भी पाच भौतिक हैं और शरीर भी। अत जहा पर एक ही प्रकार के महाभूतो से रसादि व द्रव्य की उत्पत्ति होती है उसमे रसादि के आधार मे ही द्रव्य कर्म का निर्णय होता है। अत समान जातीय महाभूतो के द्वारा द्रव्य रस की उत्पत्ति होने से इनकी सज्ञा समान प्रत्ययारब्ध है। अर्थात् समान गुण से समान कर्म की उत्पत्ति होती है। वह समान प्रत्ययारब्ध है।

विचित्र प्रत्ययारब्ध–वे द्रव्य जिनके रसो के आरम्भक महाभूत अन्य होते हैं और द्रव्य के आरभक महाभूत अन्य होते हैं अत द्रव्य तद्गत रस के भिन्न भिन्न उत्पादक होने से कर्म केवल रसादि के आधार पर न होकर द्रव्य का कर्म कुछ और स्वतत्र हो जाता है। ऐसे द्रव्यो मे उनके विशिष्ठ कर्म का निर्देश विशेप होता है वह विचित्र[2] प्रत्ययारब्ध कहलाते हैं।

१–अरुण दत्त की टीका विचार–यानि द्रव्याणि यै रेव महाभूतैर्यथाविधै. रसादय आरब्धा स्तैरेव तथा विधै र्महाभूतै स्तदाश्रयाण्यपिद्रव्याणि आरब्धानि। तानिरसादि समान प्रत्ययारब्ध उच्यते। तानि च यथायथातत्कर्म रसाद्यनुगुणसमान्यात् कुर्वते। यथा क्षीरेक्षु शर्करादीनि। एवं यानि समान प्रत्ययारब्धानि द्रव्याणि तेषां रसोपदेशेनैवगुणा निर्दिष्टा भवंति।

२–विचित्र प्रत्ययारब्ध यस्मिनद्रव्ये रसादीनामन्यानि महाभूतानि आरभकानि भवंति द्रव्यस्य चारंभकानि अपराणि च तद्द्रव्य विचित्र प्रत्ययारब्धम्। तानि च यथायथरसाद्यनुरुप कर्म न कुर्वंति। भिन्न हेतुत्वाभावस्या यानितु विचित्र प्रत्यया रब्धानि द्रव्याणि तेषां प्रतिद्रव्यं कर्मोपदेशं बिना यथा यथं कर्मवक्तुं न शक्यते। अरुण दत्त।

यह विचार स्पष्ट रूप से वाग्भट के टीकाकार अरूण दत्त करते है। वाग्भट उसे स्पष्ट कहते है।

१– इति सामान्यत कर्मद्रव्यादीनां पुनश्च तत्।
विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्य भेदेन भिद्यते।

अत स्पष्ट है कि समान प्रत्ययारब्ध द्रव्य जिनमे पांचभौतिक सगठन का अश जो रस गुण वीर्य विपाक आदि के निर्माण मे भाग लेते है वे ही द्रव्य के सगठन मे भी भाग लेते है अत द्रव्य का समान कर्म भी तदनकूल होता है अत' समान प्रत्ययारब्ध कहलाता है। जो द्रव्य अपने पाच भौतिक सगठन के आधार पर बने अपने रसगुण वीर्य व विपाक के आधार पर क्रमानुसार कार्य नही करते प्रतिकूल कर्म करते है वह विचित्र प्रत्ययारब्ध है। यथा–

१–गोधूम स्वादु व गुरु होने से वातजित होता है। इसी गुण युक्त यव कातकर होता है।

२–क्षीरस्वादु व गुरु होनेसे शीत क्रिया करता है। मत्स्य उष्ण गुण का होता है।

३–शूकर मास स्वादु स्निग्ध गुरु होने से मधुर पाकी होता है। सिंह-कटुपाकी होता है।

यह तो निश्चित हो चुका है कि दो प्रकार के द्रव्य होते है। एक जिनमे कर्म एक नियमित क्रमानुसार होता है और दूसरा जो कि नियमित क्रमानुसार नही होता। इन दोनो प्रकार के कार्यों के लिये औषधियो को कार्य करने मे एक किसी क्रम को अपनाना पडता है। वह क्रम निम्न है —

अधिकरण या औषधियों के कार्य का स्थल–

१ रोगो के त्रिविध[1] मार्ग है इसी प्रकार औषधियो के कार्य करने के भी मार्ग हैं। रोगो के तीन मार्ग है। १ शाखा, २ मर्मास्थि सधय, ६ कोष्ठश्च। शाखा––बाह्य त्वचा व रस रक्त माँस मेद, अस्थि मज्जा व शुक्रादि धातु। यह बाह्य रोग मार्ग है इन मार्गो से व्याधि का परिसर्पण होता है।

२ मर्मास्थि सधय––मर्मादि स्थान हृदयादि व सधियो के स्थान स्नायु कडरा नाडी।

३–स्वादुर्गुरुश्च गोधूमोवातेजित वाकृद्यव.। उष्णा मत्स्या पय. शीतं कटुसिहो न शूकर। अ. सू ९।२८

१. त्रयो रोगमार्गा इति-शाखा, मर्मास्थि संधय, कोष्ठश्च। तत्र शाखा रक्तादयो धातवस्त्वक् च, स बाह्यो रोगमार्ग। मर्माणि पुनर्बस्ति हृदय-मूर्धादीनि। अस्थि संधयो अस्थि सयोगा तत्रोप निबद्धाश्च स्नायु कडरा स मध्यमो रोग मार्ग। कोष्ठ पुनरुच्यतेमहास्रोतः शरीरमध्य महानिम्नआम पक्वाशयश्च स आभ्यंतरो रोग मार्ग। च० सू० ११।४८

३ कोष्ठ—महास्रोत जिसमे कई प्रकोष्ठ हैं, व अन्य मार्ग। इसमे मलाशय क्षुद्र आत वडी इसी प्रकार से रोग के परिमार्जनार्थ जो भी औषधियां दी जाती हैं वह भी दो प्रकार की होती हैं व उनका कार्य दो प्रकार से होता है। यथा[२]—१ वहि परिमार्जन २ अत परिमार्जन।

वहि परिमार्जन—यह औषधिया वाहर से प्रयुक्त होती है और लेप अभ्यग परिषेक प्रदेह के रूप मे इनका प्रयोग होता है।

अंतः परिमार्जन—यह औषधिया भीतर प्रयोग की जाती हैं और भीतर जाकर विभिन्न प्रकार से अपना कार्य करती हैं।

इन दोनो प्रकार के कार्यों को पुन दो प्रकार मे विभाजित करते हैं यथा—१ स्थानिक २ सार्वांगिक

स्थानिक— जिनका प्रयोग एक स्थान विशेष पर होता है। आमाशय, पक्वाशय या अन्य स्थान पर।

सार्वांगिक—जिनका प्रयोग होने पर सारे शरीर पर कार्य करती है। या एक विशेप कार्य वाहक सस्थान पर कार्य करती हैं। यथा—प्राण का क्षेत्र या अपान का क्षेत्र। रक्तवाहक क्षेत्र इन दोनो प्रकार के कार्य के लिये अधिकरण या क्षेत्र एक या कई होते हैं। यथा—अजन का नेत्र, कवल गंडूष का, मुख, पूरण कार्य का कर्ण पर आदि। इसी प्रकार वमन का आमाशय। विरेचन का पक्वाशय—छोटी व वडी आत। शिरोविरेचन का शिर क्षेत्र। इसी प्रकार शुक्र सशोधन शुक्र क्षेत्र पर। स्तन्य सशोधन स्तन्योत्पादक अगो पर। गर्भाशय शोधक गर्भाशय पर आदि।

यह औषधिया अधिकरण रूप शरीर या शरीराग को पाकर अपना कार्य उन अगो के क्रिया को कम करके या अधिक करके करती हैं। अत अधिकरण का आश्रय लेकर कार्य करती हैं। सार्वांगिक कार्य मे औषधि प्रयोग के वाद मे शोषित होकर पाकादि क्रिया मे परिणत होती हैं और विपाक काल मे उनका रूपान्तर होता चलता है और गुणान्तर भी होता है। यथा—

द्रव्याणि हि द्रव्यान्तराणि भजते तथा गुणाः गुणान्तराणि च।

इस प्रकार परिपाक काल मे नियमित पाक या प्रकृति सम समवेत रूप मे होता है अथवा विकृति विषम समवेत के रूप मे किसी गुणान्तर प्राप्त क्रमानुसार विशेष रूप मे होता है। और प्रभाव का क्रमदीपन, पाचन, वृहण, कर्षण या लेखन के रूप मे दिखाई पडता है।

स्थान जहां पर औषधि कार्य करती हैं या अधिकरण—पूर्व मे वतला चुके हैं कि औषधिया, दो प्रधान रूप से कार्य करती हैं। स्थानीय जव वे किसी

---

२ अत परिमार्जन यदन्त· शरीरमनुप्रविश्यौषधमाहार जात व्याधीन् प्रमार्ष्टि। वहि परिमार्जन यत् पुन वहिः स्पर्शनाश्रित्याभ्यंग स्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनाद्यैरामयान् प्रमार्ष्टि। च० सू० ११।५५

स्थान विशेप पर जाकर वहा के मास, कला या अन्य धातु सघात पर अपना कार्य उसके सपर्क मे आते ही करती है। यथा मुख आमाशय आत्र आख नेत्र, श्वास सस्थान या जनन सघ सस्थान पर कार्य करती है। यह उनका प्रत्यक्ष कर्म या डायरेक्ट एक्शन कहलाता है। इस सपर्क का प्रभाव विभिन्न स्थान पर प्रकट होता है। वह वहा के पुद्गल पर या नाडी के अतिम भाग पर या रक्तवाही अग पर होता है। कभी कभी औषधि एक स्थान पर प्रयुक्त होती है और उसका प्रभाव दूर स्थल मे दिखाई पडता है। जैसे अम्ल वस्तु मुख मे डालते ही आमाशय मे रसस्राव भ्रूसकोच कराते है या तिक्त द्रव्य कटु द्रव्य मुख मे आकर नासा से या नेत्र से आसू का स्राव करते है। दाहक औषधि त्वचा पर लगाते ही वहा के स्थान पर लालिमा लाकर रक्त के प्रवाह की वृद्धि करती है। यह उनका अप्रत्यक्ष या इनडायरेक्ट एक्शन कहलाता है।

निष्ठा पाक में आहार शोषित होने के बाद—जब औपधि पच कर रक्त मे मिल जाती है तब उसके द्रव्यो का मिलित प्रभाव एक विशेप स्थान पर प्रकट होता है वह किसी एक अग या एक अश के सघात, सेल या खड पर नही होता वह जिसके प्रभाव के साथ उसका अतिनिकटतम साम्य होता है उस प्रकार के कार्य के क्षेत्र पर प्रभाव डालती है। यह उसका विशेष कर्म कहलाता है। इस प्रकार औषधियो के कर्म करने का क्रम भिन्न भिन्न होता है। मूत्रल औपधि प्रयोग करते ही जल के शोपण की क्रिया रोक कर उसे वाहर निकलने की क्रिया को प्रेरित करती है। मूत्र सगाहक औषधि मूत्र वनने व जल को शरीर मे अधिक विलय कराती है और मूत्र कम निकलता है। विरेचक औषधि आतो पर प्रभाव करके आतो की गति, द्रव निकालने की क्रिया व मल सघात भेदन की क्रिया करती है इस प्रकार रेचन होता है उससे अन्य क्रिया नही होती अत विशेष कर्म कई प्रकार के होते है। सक्रामक औषधि सक्रामक जीवाणु के ऊपर प्रभाव डालती है और उसका प्रसार रोकती है।

कुछ औषधियो का प्रभाव एक ही स्थान पर न होकर विभिन्न सस्थानो पर हो जाता है। इसको सास्थानिक विशेष प्रभाव या जेनेरेलाइज्ड सिस्टेमिक एफेक्ट कहते है। यह क्रिया किसी अग की क्रिया को या तो बढा देती है या वह उसकी क्रिया को घटा देती है। इस प्रकार की क्रिया को प्रसादन कर्म (स्टिम्युलेशन) कहते हैं। व घटाने की क्रिया को अवसादन या (डिप्रेशन) कर्म कहते है। सशमन कर्म मे क्रिया साम्य के लिये किसी के कर्म को कम करना व किसी के कर्म को वढाना होता है। इस तरह शरीर की क्रिया का सतुलन करके शरीर कार्य करता है। कभी कभी एक ही औषधि दोनो प्रकार का कर्म करती हे। यथा—धतूरा पहले प्रसादन करता है पश्चात अवसादन। मद्य पहले प्रसादन करता है फिर अवसादन। हृदय की क्रिया हानि मे हृत पत्री उसकी क्रिया को बढ़ाकर सहायक होती है।

कुछ औषधिया अपना प्रभाव कम मात्रा मे कुछ करती हैं और विशिष्ठ मात्रा मे कुछ और करती हैं यथा—वचा कम मात्रा मे बुद्धि वढाने का कार्य करती है और अविक मात्रा मे वमन कराती है हृदय नाडी कार्य व मांस पेशियो पर प्रभावकारी औषधियो का इसी प्रकार बहुत सा कार्य दिखाई पडता है।

कुछ औषधियो मे उनका कार्य, उनका उत्तेजन स्थानीय सेलो पर विशेष प्रकार का विपरीत प्रभाव डालता है। प्रयोग के वाद वह वहा के सेल की क्रिया को विगुण करके वहा पर अविक उत्तेजन करती हैं और शोथ या उत्सेघ का स्वरूप धारण करती है। यही क्रिया यदि वढ जाय तो वहा पर शोथ के वाद स्फोट या छाले पड जाने की क्रिया हो जाती है।

कभी कभी देखते है कि वही औषधि विशेष क्रिया का रूप धारण करती है जिसे उसका अतियोग कह सकते हैं। जैसे कुचिला का मात्राधिक्य आक्षेप का स्वरूप धारण करता है। अल्प मात्रा मे जो भूख का वढाने वाला व रुचि-कारक होता है वही तिक्त रस आक्षेप कर वात व्याधि के स्वरूप को लाता है। यथा—भगा वल्य व अग्नि वर्द्धक है वही अविक मात्रा मे मूर्च्छा प्रलाप या सन्यास भी पैदा करता है। यथा—चरक ने लिखा है।

तिक्तो रसः स्वयमरोचिष्णु' अपि अरचिघ्न अधिकमुपयोगात् ग्लपयति कर्शयति मोहयति अपरांश्च वातविकानुपजनयति।

कषायो रसः अधिकमुपयोगात् खर विशद रूक्षत्वात् पक्षवधग्रहापतान-कार्दितप्रभृतींश्च जनयति इत्यादि।

— अतः एक ही द्रव्य जो कि एक विशेष अच्छा कार्य करता है वही अधिक मात्रा मे विशेष हानिकारक प्रभाव दिखाता है।

कुछ औषधि प्रयोग वशात् वडी मात्रा मे भी अभ्यास वश सात्म्य हो जाती है या उसका प्रयोग किसी व्यक्ति विशेष पर जरा सा भी अधिक कार्यकर व हानिकर प्रभाव करता है। यथा—प्रकृति विपरीत या एर्लजिक औपविया। किसी को घी देख कर किसी को दूध देखकर वमन होती है किसी को किसी विशेष औवधि के प्रयोग से विशेष भयकर लक्षण होते हैं। यथा—पेनिसिलिन के देने से कितने ही आदमी को शीत पित्त की तरह कोठ पिडका उठ जाते हैं। किसी का शरीर इतना सवेदनशील होता है कि पेनिसिलीन का इ जेक्शन देखकर ही कोठ पिडका का असर हो जाता है।

कुछ औषधियो का प्रभाव अनुकूल होता है। यथा—यकृत की क्रिया हानि मे यकृत यूष या लिवर एक्सट्रैक्ट का प्रयोग। पीयूष ग्रन्थि के कार्य हीनता मे उसके सत्व का प्रयोग। गल ग्रथि के रोग मे उसके चूर्ण का प्रयोग आदि।

इस प्रकार से औषधि का कार्य अधिकरण विशेष पाकर विशेष रूप मे प्रतिफलित हो जाता है। सुश्रुत ने इस प्रकार के कर्म को "तद्रव्यामात्मना किंचित करोति" कहते हैं। प्रभाव के उदाहरण मे देखते है कि सेवन के वजाय धारण करने पर भी औषधि कार्य करती है यह भी उसका विशेष प्रभाव जनित कर्म कहते हैं। यथा--मणि माणिक्यधारण-रत्नधारण।

कुछ औषधियां अपने मे कोई परिवर्तन नही करती परन्तु कर्म हो जाता है। यथा-लिक्विड पैराफिन या मार्तीक तैल जब लिया जाता है तो वह अपने मे कोई परिवर्तन नही करता किन्तु उसके मार्ग जिन से होकर जाता है उनको चिकना या पिच्छिल बना देता है। स्निग्धता आ जाती है और कार्य हो जाता है। ईसबगोल व गोद कतीरा यह परिवर्तित भी होते है और अपना प्रभाव भी छोड़ने हैं। स्निग्धता की वृद्धि रूक्षता की कमी इनसे होती है। अत अधिकरण के आधार पर कार्य बहुत कुछ निर्भर करता हैं।

कर्म के विभिन्न प्रकार व विधि

द्रव्य प्रभावज कर्म-जब द्रव्य अपने किसी अश मे परिवर्तन किये बिना व पाक मे गये बिना अपना प्रभाव करता है तब यह उसका अपना प्रभाव या उसका शारीरिक प्रभाव मानते है यथा-स्निग्धता।

तैल घृत यह अपने स्निग्ध गुण के कारण जहा पर जाते है वहा पर स्निग्धता उत्पन्न करते हैं। एरड स्नेह यह आंतो मे जाकर अपने पिच्छिल व स्निग्ध गुण से आंत्र मे स्निग्धता उत्पन्न करता है। बदलता नही-पैराफिन बिना परिवर्तित हुए पिच्छिलता उत्पन्न करता है।

पिच्छिलता-ईसबगोल, तालमखाना, गोद कतीरा अपना प्रभाव अपने पिच्छिल व शीतल गुण से करते हैं। आत मे जहा पर जाते है वहा पर पिच्छिलता करते है। सेल खरी, अपने प्रभाव से आमाशय की गदगी, विकार व पिच्छिलता का शोषण करती है। कोकिला या कोयला खाने पर आध्मान के समय उत्पन्न गैस को अपने मे शोषण करता है रूपान्तर नही ग्रहण करता, वैसे ही निकल जाता है। यह इनकी अपनी शोषण की क्रिया का फल है। न रस का, न विपाक का और न वीर्य का।

इस प्रकार स्निग्धता रूक्षता पिच्छिलता शोषण व कषायता अपना अपना प्रभाव द्रव्य प्रभाव से करते है।

रस के द्वारा कर्म व गुण के द्वारा कर्म व विपाक के द्वारा कर्म आदि का उदाहरण उनके विवरण के साथ दिया जा चुका है। यहा पर शरीर मे इनका कार्य किस किस प्रकार से होता है वह विशेष रूप मे यहा पर दिखाने की कोशिश की जाती है। द्रव्य मे अपने अपने गुण होते है। वह किसी से मिल कर रूपान्तर धारण करते हैं व विशेष कार्य कर लेते है जहा रूपान्तर नही

धारण करने वहा पर उनका कार्य वैसा नही होता। गुणान्तराधान व द्रव्यान्तरत्व यह तो द्रव्य के विशेष कार्य के साधन है।

गुण प्रभावात कर्म–गुण का कार्य विशेष वुद्धि गम्य व शारीर क्रिया विज्ञान के जाने विना समझना कठिन है। गुणान्तराधान रासायनिक क्रिया के द्वारा होती है। जिस द्रव्य का जो जो गुण होता है वह पच महाभूतो के आणविक विश्लेपण मे जो जिस के आकर्षण मे आने वाले होते हैं या मैत्री मे विशेष से आकर्पित होते हैं या स्वाभाविक आकर्पण होता है वैसा ही प्रभाव डालते हैं। कुछ द्रव्य अपने आणविक सगठन के आधार पर शीघ्र शरीर मे मिल जाते हैं कुछ देर मे मिलते हैं, कुछ कभी मिलते हैं कभी नही मिलते। इनके आवार पर उनका गुण भी पूरा वदलता है, कम वदलता है, नही वदलता या तीव्रता से वदलता है। इसके आधार पर उनके गुण सक्रिय निष्क्रिय उदासीन व अल्प क्रिय कहलाते हैं। वीस गुणो मे से आठ विशेष क्रियाशील हैं और उनमे भी दो अत्यधिक सक्रिय है। इनका नाम इस आवार पर अष्ट वीर्य वाले, द्विविध वीर्य वाले व सामान्य गुण के नाम से होते हैं। अत क्रिया भी तदनुकूल होती है। व्यवायी विकाशी तीक्ष्ण व उष्ण गुण वाले द्रव्य अपना शोपण, मेलन व परिवर्तन शीघ्र करते हैं और उनकी क्रिया शीघ्र होती है। जिनमे यह कर्म नहीं होता वे अपने कार्य को सीमित रखते है। विशेप गुण वाले विशेष व अधिक कार्य करते है। इस आधार पर इनके गुणो का प्रभाव भिन्न–भिन्न हो जाता है और कई रूप धारण करता है। उनका विवरण यहा पर विभिन्न रूप मे देने की चेष्टा कर रहा हू।

सर्वांगिक कर्म व स्थानिक कर्म–कुछ द्रव्यो मे कार्य करने का क्रम इस प्रकार दिखाई पडता है कि वह एक स्थान का नही होता परतु समान रूप से सर्वांग पर होता है। यथा—

पुनर्नवा का शोथघ्न कर्म, मजिष्ठा का रक्त शोधन कर्म, तृणपचमूल का मूत्र विरेचन कर्म आदि। कुछ द्रव्य शरीर मे जाकर शोषण के वाद किसी अग विशेप पर अपना प्रभाव द्रव्य सामान्य या विशेष आकर्षण के आवार पर अपना कार्य करते हैं। ऐसा दिखाई पडता है कि जैसे इन द्रव्यों का इस अग विशेष से विशेष सवध हो या वे उसके आकर्षण मे अधिक आ गये हो। यथा–हृदय पर अर्जुन का, श्वास मार्ग पर वासा का, पुष्कर मूल व कूट का। प्लीहा पर शरपुखा का, रोहितक का, गर्भाशय पर अशोक का–लोध्र का या कार्पासी मूल का या उलट कवल का। ऐसा ही नही अपितु दोष धातु व मल और इनके वहन करनेवाले स्रोत्स पर इनको दूषित करने वाले हेतु, आहार-विहार आदि जैसे विशिष्ठ होते हैं उसी प्रकार तत्सम द्रव्य चुने जाते हैं। तदनुकूल द्रव्य को जो स्थान सश्रय के अनुकूल कार्य करता हो द्रव्य चुनना होता है। इस प्रकार का निर्देश भी दिखाई पड़ता है। यथा—

आहारश्च विहारश्च य स्याद्दोषगुणै. सम ।
धातुभिर्विगुणश्चापि स्रोतसां स प्रदूषक: ।
प्राणोदकान्नवाहानां दुष्टाना श्वासिकी क्रिया ।
कार्या तृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी । च वि.अ ५।२३-३६

यही नही अपितु दोष धातु व मल वाहक स्रोतसो मे उनकी अति प्रवृत्ति रुकावट या उन पर ग्रथी आदि वनने पर भी या दोषो के विमार्ग गमन पर भी स्रोतसो की विगुणता होती है और वहा पर चिकित्सा उस स्थान के अवलोकन व ज्ञान पूर्वक होती है ।

अतिप्रवृत्ति: संगो वा सिराणां ग्रथयोऽपि वा ।
विमार्ग गमनं चापि स्रोतसा दुष्टिलक्षणम् । च. वि अ. ५।२४

पुनश्च—तेषां प्रकोपात् स्थानस्थाश्चैव मार्गगाश्च शरीरधातव:
प्रकोप मापद्यन्ते इतरेषां प्रकोपात् इतराणि च ।
स्रोतांसि स्रोतास्येव धातवश्च धातूनेव प्रदूषयति प्रदुष्टा: । च वि. अ. ५।९

अत. इन विशिष्ठ द्रव्यो का प्रभाव किस प्रकार होता है इसके विषय मे विशेष उद्धरण मिलते है किन्तु आधुनिक चिकित्सक तो इस विषय मे मौन हैं वह कह नही सकते कि क्यो इस प्रकार के द्रव्य अग विशेष पर विशेष कार्य करते हैं । उनका कथन है कि यह औषधिया इस ही अग पर अपना कार्य क्यो करती है यह ज्ञात नही होता । यथा—

ऊपर के विवरण से ज्ञात होता है कि जिस द्रव्य का जिस द्रव्य दोष धातु व मल के साथ समानता होती है वह उस जाति के स्थान, दोष व धातु पर अपना विशेष आकर्षणात्मक कार्य प्रदर्शन करता है । अत कई प्रकार के आहार का भी प्रभाव तत्सम अग या दोष पर हो जाता है व यही क्रम विकृति के उत्पन्न होने का भी कारण हो जाता है और विभिन्न रूप मे वैकारिक स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । जब ऐसी स्थिति आती है तो दोष व धातु साम्य द्रव्य स्रोतसो मे उनके प्रवहित होने वाले द्रव्यो की अति प्रवृत्ति कराते है (Stimulation Augmentation, Acceleration) क्रिया की अधिकता हो जाती है अथवा उनकी क्रिया का सग या अवरोध होता है, अल्प क्रियता होती है अथवा उभार वनते हैं या ग्रथि वत रूप वन जाते हैं (Retardation, inhibition & Depression) या विमार्ग गमन होता है । इस प्रकार (Spasmodic Contraction & consequent bulging) बहु विध रूप उनका वन जाता है । यहा पर द्रव्य समान गुण के आधार पर काम करता है परतु उसके लिये कई विकल्प करने पडते हैं । साधारण क्रिया से लाभ नही होता । अत विचार कर विशेष क्रिया करने पर ही लाभ होता है । विशिष्ठ औषधि का प्रयोग करके उन्हे शात करना पडता है । यथा—प्राणवह, उदकवह अन्नवह स्रोतसो की विगुणता मे क्रमश प्राणवह मे श्वास की नाशक क्रिया व उदकवह की दुष्टि मे तृष्णा प्रशमनी क्रिया व अन्नवह दुष्टि की विगुणता मे अतिसार रोग की क्रियाओ के क्रम अनुसरण करना चाहिये ।

इसी प्रकार कर्म के कराने मे तदनुकूल द्रव्य का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। कुछ द्रव्य शरीर के सपर्क मे आये विना भी कार्य करते हैं और यह उनका प्रभावज कर्म मानते है। यह मानसिक प्रभाव के रूप मे होता है। यथा–

दूर से किसी वस्तु के देखने से गध लेने से या स्मरण से औषधि का या द्रव्य का प्रभाव हो जाता है यथा–सुगध आहार द्रव्य या स्वादिष्ट आहार द्रव्य के देखने व गध मिलने से ही लाला स्राव होना, रुचि होना, वुभुक्षा उत्पन्न होना हो जाता है। निंवू के देखते ही लार टपक पड़ती है। रक्त मास व दुर्गंध के देखते ही या गध मिलते ही अरुचि वमन या अवसाद या विशाद हो जाता है। यह सव ही मानसिक क्रिया के द्वारा परिवर्तन कर्म द्वारा हो जाते हैं। ऐसे कर्म औषधि के भी होते हैं। मदन फल के घ्राण से जो पुष्प पर रखकर दें वमन कारक हो जाता है इस प्रकार के कर्म दिखाई पडते हैं। इनका विवरण स्पष्ट आगे करेगे।

कर्म विज्ञानीय विभाग

रसो के द्वारा कर्म–

रसो का कार्य–रस का विभाग दो प्रकार का है। यह सौम्य और आग्नेय दो विभागो मे विभक्त हैं और इसके आधार पर इनकी क्रिया दो प्रकार की होती है। सौम्य विभाग के रस शरीर की स्थिति निर्माण में विशेष भाग लेते हैं और आग्नेय विभाग के रस शरीर की क्रिया को अधिक सक्रिय वनाने मे भाग लेते हैं।

सौम्य रस—१- सौम्य वर्ग के रस। मधुर रस, तिक्त रस, कषाय रस। २. आग्नेय वर्ग के रस—कटु रस, अम्ल रस, लवण रस।
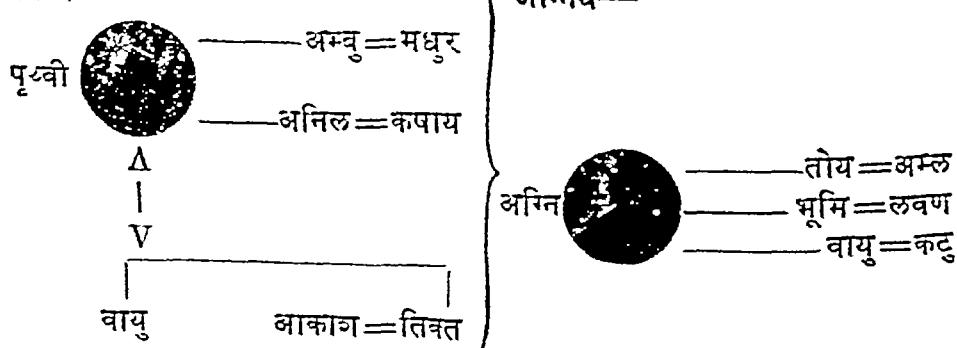
१–अन्नमिष्टं ह्युप हितमिष्टै गंधादिभि पृथक्।
देहे प्रीणाति गंधादीन् घ्राणादीनीन्द्रियाणि च। च चि १५।१२

२–पृथिव्यापो तमो रूपं रक्त गंधस्तदन्वय। तस्माद्रक्त गंधेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवा। द्रव्य स्वभाव सित्येके दृष्ट्वा यदभिमूर्च्छन्ति। सु उ ४६।

३–हीन सत्वास्तु .. विषाद वैवर्ण्यमूर्च्छोन्मादभ्रम प्रपतनानामन्य तममाप्नुवंति। च. वि ८।११९

ऊपर की सरणी से पृथ्वी व अग्नि तत्व विशिष्ठ रसों का विवरण स्पष्ट दिखाई पडता है। सौम्य वर्ग के रस शीत वीर्य होते है और आग्नेय वर्ग के रस उष्ण माने जाते है। इनमे स्निग्ध गुण वाले व गुरु गुण वाले मधुर अम्ल व लवण रस हैं। रूक्ष व लघु गुण वाले कटु तिक्त कषाय है। इनमे जिनका सगठन अग्नि व मारुत भूत होता है वह अधिक सक्रिय होते है और गतिमान होते हैं जो पृथ्वी व जल तत्व विशिष्ट होते है उनका कार्य शिथिल स्थायी व गति क्रिया मे अपेक्षाकृत कम होते है।

इनमे निम्न गुण होते हैं जिनके आधार पर इनका कार्य होता है। यथा–
१ मधुर रस–स्निग्ध शीत व गुरु गुण। २. अम्लरस–लघु उष्ण स्निग्ध गुण ३. लवण रस–उष्ण स्निग्ध किंचित् गुरु गुण। ४. कटुरस–लघु उष्ण रूक्षगुण ५. तिक्तरस–रूक्ष शीत लघु। ६. कषाय रस–रूक्ष शीत लघु गुण वाले।

ऊपर वाले गुण इनमे विशेष क्रम मे रहते हैं। क्रिया काल मे यह अपने अनुकूल भौतिक गुण पाकर रूपान्तर करते है और इस आधार पर गुणान्तर भी करते हैं तथा विशेष प्रकार की जो क्रियाये घटती हैं इनका विवरण दिया जा रहा है।

इनका स्वरूप विशेष प्रकार से गुण व रस के विवरण के साथ मिलेगा।

रसों के द्वारा कार्य—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय यह छ रस प्रकृति में पाये जाते हैं और उनका उपयोग आहार और औषधि के लिये होता है। यह शरीर मे जाकर किस प्रकार अपना कार्य करते हैं यह विचारणीय विषय है। प्रत्येक रस का सगठन पाचभौतिक होता है और इसके आधार पर उनका कार्य होता हैं।

रसो निपाते द्रव्याणाम्।

रसज्ञान—जब जिह्वा पर किसी वस्तु का निपात करते हैं तो रस का ज्ञान होता हैं। इस काल मे जिह्वा पर के रसाकुर उस द्रव्य के सपर्क मे आते हैं और उसका ज्ञान नाडी ततुओ द्वारा हमे ज्ञात हो जाता है तव हम रस का ज्ञान समझ पाते है। इस प्रकार मुख से लेकर आभ्यतर भाग मे जहा जहा द्रव्य का सपर्क होता जाता हैं वहा वहा वह अपने कार्य का स्वरूप वतलाता है और अपना कार्य करता है। इसके कार्य कई प्रकार के होते है और उनका विभाजन विभिन्न रूप मे किया जाता है। सामान्य रूप मे हम उसे दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं। १.स्थानिक २. सार्वांगिक

१. **स्थानिक कर्म में**—वह अपना कार्य विभिन्न रूप मे करता है।

मधुर रस–

प्रत्यक्ष कर्म—स्थानीय प्रतिक्षिप्त रूप मे—

प्रत्यक्ष कर्म—१. मुखोपलेप–मुख मे जाकर मधुर रस फैल जाता है और जिह्वा के ऊपर फैल कर रसाकुरो पर फैल कर एक आवरण वनाता है। माधुर्य का ज्ञान और अनुभव मे आनद की अनुभूति होती है।

२. **प्रह्लादन**—मुख मे जाकर वह ओष्ठ व कण्ठ के सपर्क मे आकर आह्लाद व सुखानुभूति पैदा करता है। जिह्वा पर आनंद कर प्रतीति होती है।

३. **प्रत्यावर्तित कर्म**—सब इन्द्रियो का प्रसादन करता है।

२. **सार्वदैहिक कर्म**—शरीर मे जाकर यह रस अपना पाचन प्राप्त करके धातु उपधातु दोष व मल के ऊपर अपना प्रभाव भिन्न-भिन्न रूप मे करता है। यथा—

१ सप्त धातु प्रसादन—यह आजन्म सात्म्य होने से सर्व धातु बल-प्रद है।

२. यह बल दायक, आयुष्य, जीवन, वर्ण्य, तर्पण, स्थैर्यकर व शरीर सघात कर है।

३. उपधातुओ मे त्वक् का व स्तन्य का वर्धक हैं।

४. मल मूत्र की मात्रा का वर्द्धक है व केश का वर्द्धक है।

५. दोष शामक व प्रकोपक के रूप मे यह वात शामक, पित्त शामक व कफ वर्द्धक है।

६. इंद्रिय प्रसादन नेत्र व नासिका के लिये विशेष आवश्यक वस्तु है।

७. **रोगो पर प्रभाव**—दुर्बलता, मूर्च्छा, दाह, तृष्णा का प्रशमक है। विष का नाशक, क्षत क्षीण सधान कर है, वृद्ध बालक स्त्री सबको समान रूप से हितकारी है।

८. अति मात्रा मे खा जाने पर यह कई प्रकार के हानि कारक प्रभाव करता है। यथा—

१. पाचन सस्थान, श्वसन सस्थान, मूत्रवह व रक्तवह, नाडी संस्थान पर विशेष प्रकार का प्रभाव डाल कर रोगी बनाता है। इस को क्रमश. विचार करे तो ज्ञात होगा कि यह कितना आवश्यक और शरीर को लाभ प्रद है।

कार्य की अनुभूति—मधुर रस जब मुख मे जाता है तब वह जिह्वा के स्वाद कोषो के सपर्क मे आता हैं और उसके परिणाम स्वरूप रसाकुरो से सबद्ध नाडियो से जिसे स्वादनी नाडियाँ कहते हैं वह रस का ज्ञान कराता है और रस का ज्ञान हो जाता है।

२—रसज्ञान के बाद सुखानुभव होता है। अनुकूल रस के होने के कारण सर्व इन्द्रिय प्रसादन होता है।

३—बल्य व सर्व धातु प्रसादन कर्म व सर्वधातुवर्द्धन—

शरीर के पोषक तत्व शरीर मे तीन प्रधान रूप मे काम करते हैं और वह शारीर द्रव्य के रूप मे रक्षण व बल वर्द्धन करते है और उनका आधार मूल भूत आहार द्रव्य ही हैं और शरीर मे निवास करते व शरीर की क्षय व वृद्धि मे हेतु होते हैं। यह हैं—१ श्लेष्म २ पित्त और ३ वात।

श्लेष्म—इनमे शरीर धारक तत्व कफ है यह उदक कर्म के द्वारा शरीर का रक्षण करता है। बाहर का वारि जब शरीर मे जाकर शारीर वारि बन

जाता है तव उसका स्वरूप कफ होता है। यह शरीर का प्राकृत बल है बिना जल तत्व के शरीर का निवध नही हो पाता। अत यह शरीर के द्रव के रूप मे काम करता हुवा शरीर धारक है। शरीर मे यह निम्न मात्रा मे पाया जाता है। यथा—पुरुष के शरीर मे उसके शरीर भार से जल की मात्रा।

१—पुरुष शरीर भार से ४० से ६८ प्रतिशत / औसत ५३% प्रतिशत।
२—स्त्री शरीर मे ३० से ५३ प्रतिशत / ४५% प्रतिशत

इस प्रकार शरीर द्रव जल ३५ लिटर या ५० प्रतिशत, ७० किलोग्राम भार के ऊपर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर मे आहार के रूप मे हम जो भी लेते हैं उसका स्वरूप रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र के रूप मे बन कर रहता है। आजकल उसका वैज्ञानिक नाम शरीर धातु व टिश्यू के नाम पर कहते हैं। सप्त विध धातु की तरह यह अनेक प्रकार के टिश्यू के स्वरूप है। इन सबो मे इस द्रव का क्या निपात है वह निम्न रूप मे है।

१ द्रव

शरीर द्रव द्रव्य का रासायनिक विभाजन

१—इन्द्रिय	जल	वसा	प्रोटीन	भस्म
१—त्वक	५७।७१ प्रति-	१४.२३	२७।३३	.६२
२—ककाल	२८।१७ शत	२५।०४	१९ ७१	२६ ६२
३—मास पेशी सरल	७०.०९	६ ६०	२१.९४	१ ०१
४—मस्तिष्कका मस्तुलग व नाडी	७५ ०९	१२.३५	११.५०	१.३७
५—यकृत	७१.५८	३.११	२२.२४	१ ५
६—हृदय	६२.९५	१६.५८	१७.४८	.६१
७—फुफ्फुस	७७ २८	१.३२	१९.२०	१ ०३
८—वृक्क	७० ५८	७ १८	१९ २८	.७
९—महास्रोतस	७७ ४०	९ १७	१२ ७७	५३
१०—अवलबक धातु	२३ ०२	७१.५७	५८५	.२०
सपूर्ण शरीर का द्रव धातु	५५ १३	७१.५७	१८.६२	५ ४३

जब यह मालूम है कि शरीर मे द्रव रूप मे रहने वाला यह श्लेष्म प्रधान आश्रय है तब समझने मे देर न लगेगी कि आहार या औषधि द्रव पूर्वक अपना कार्य करते हैं इसके प्रसादन कर्म की स्थिति भी इसी के आधार पर है। मधुर रस द्रव मे घुल कर अपना काम करता है। आधुनिक विचारक कहते हैं कि रस व रक्त के वारि मे मधुर रस का सम्मिश्रण रहता है। ऊपर की सरणी से

1. Bio Chemestry & Human Metabolism page 140
By वर्नहम S Walkr M. D. P. H. D.

आपका शारीर द्रव्य का पता मिलता है और उसके साथ अन्य शारीर प्रधान द्रव्य का भी ज्ञान होता है अतः कफ प्रत्येक धातु मे चाहे वह मास हो, अस्थि हो या रक्त हो मिला रहता है। इस के साथ मे यह मधुर रस भी मिलकर के शरीर का पोषण करता है।

यह शरीर मे जाकर पचता है और शोषित होता है तथा शरीर तत्व के रूप मे परिणमित होता है एव शरीर से निकल जाता है। शरीर के धातुओ का सार रस यह मधुर रस ही है। शरीर मे जाकर यह चाहे स्टार्च खावें या प्रोटीन या शर्करा जातीय कार्वोहाइड्रेट यह शरीर मे जाकर शारीर द्रव्य के रूप मे परिणत होता है। यह आधुनिक भाषा मे इसके आधार स्टार्च, इक्षु शर्करा, फल शर्करा व द्राक्ष शर्करा या अन्य द्रव्य हैं यह अतीव उपयोगी शारीर मधुर रस ग्लूकोज के रूप मे शरीर मे जमा होते हैं और यकृत से रक्त मे प्रक्षिप्त होते है और अन्य मास आदि धातुओ मे यह यथा प्रोटीन मे, मेदा मे, मज्जा मे, शुक्र मे आदि धातुओ मे रूपान्तरित होकर रहते हैं और यदि इस रूप मे नही होते तो फिर आवश्यकता पडने पर यह प्रोटीन से पुन रूपान्तरित होकर मधुर द्रव्य का काम करते है और मेद से भी रूपान्तरित होकर कार्य करते है।

इसकी रासायनिक क्रिया या रूपान्तरत्व, ग्लाईकोजन बनना व पुनः ग्लूकोज के रूप मे शरीर मे उपयोग होना आदि के रूप मे रहता है अत· प्राचीन काल के महान पुरुषो ने जो सर्व धातु प्रसादन या वृद्धि कर लिखा ठीक ही है। अथवा बल वर्द्धक लिखा है ठीक है।

शोषण–आहार से पचकर शोषित होकर यकृत मे जमा होकर यह रक्त मे सीधे मिल जाता है और सब धातु का आप्यायन करता है। यह रक्त वारि मे घुला रहता है। रक्त पूर्वक यह प्रत्येक सेल मे रहकर प्रोटोप्लाजम मे पहुच कर शरीर के प्रत्येक पुद्गल को जीवन व सरक्षण प्रदान करता है और जीवन, बल्य, ओज-कर बनता है। इस कार्य के निष्पादन के लिये उसे दूसरे शरीर तत्व पित्त का आश्रय लेना पडता है जोकि शारीर विभिन्न अम्ल या (एसिड) के रूप मे शारीर के मधुर रस कार्वोहाइड्रेट के रूपान्तर करके शरीर के उपयोगार्थ रूप देता रहता है। अत रूपान्तर मे यह लैक्टिक एसिड से, स्तन्य के मधुर रस मे व पायुरूविक एसिड के सहयोग से मास प्रोटीन से रूपान्तर होकर शारीर कार्वो हाइड्रेटस के रूप मे प्रोटीन का परिणमन कराता है। अत पायु-रुविक एसिड, ग्लाइक्रोलिटिक एसिड व्यूट्रिक एसिड के रूप मे मिल कर ग्लाइकोजन या अन्य शारीर शर्करा को परिवर्तित करता रहता है और धातुओ की पुष्टि होती है। यह शारीर वस्तु के साथ मिल कर खाये हुये शर्करा से शारीर शर्करा व अन्य रासायनिक शर्करा ग्लूकोज १ फास्फेट व ६ ग्लूकोज-फास्फेट के रूप को बदलता हुवा सब का पोषण करता है। अत यह शरीर के सर्व धातु का रक्षक और पोषक है यह आधुनिक विचारो से भी निर्विवाद है।

इस प्रकार शरीर निरोग व बल युक्त बनता है। जब इसकी मात्रा अधिक हो जाती है तो यह शरीर के भागो मे जमा होकर के विभिन्न रूप मे रोग पैदा करता है। जब यह मात्राधिक होता है शरीर से मूत्र व मल के रूप मे बाहर आता है। शरीर रूप के धातु के रूप मे जमा होता है। अधिक मात्रा होने से मुख में मधुरता रहती है।

मधुर रस का कार्य--

बल प्रद–पहले बतलाया जा चुका है कि मधुर रस शरीर का पोषक। शरीर के श्लेष्म द्रव मे मिलकर यह अपना बल वर्द्धक कार्य करता है।

पित्त विष मारुतघ्न विषघ्न–मधुर रस का कार्य जो भी दृष्ट है वह यदि विशेष रूप मे विचार करे तो देखने मे आता है कि इसके सक्रिय तत्व ग्लूकोज या द्राक्ष शर्करा के रूप मे विषो मे इसका उपयोग मूत्र विषमयता में (urimea), पित्त विषमयता, गर्भ विषमयता व वमन जन्य घोर विषाक्तता मे इसका उपयोग ग्लूकोज वाटर के रूप मे सिरावेध क्रिया द्वारा करने पर विष प्रभाव नष्ट हो जाता है और रोगी को लाभ होता है। क्योकि द्राक्ष शर्करा यकृत का प्रधान वस्तु है और उसके कम हो जाने पर जो प्रभाव रहता है वह नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार फासफोरस के विष क्लोरोफार्म और आरसेनिक के विष मे भी लाभ करता है।

बल्य–यकृत के विकार यकृत क्षय मे (atrophy of liver) व यकृत दाली मे (cerrhosis of the liver) बलाधान के लिये ग्लूकोज का प्रयोग करते है।

दाह मूर्च्छा प्रशमन–मूर्च्छा के होने के कई कारण है अत. किन अवस्थाओ में इस का प्रयोग किया जाता है वह निम्न है।

१–मस्तिष्क की कमजोरी मे मस्तिष्क मे रक्त की अल्पता मे मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है तब ग्लकोज का सिरो गत प्रक्षेप से लाभ होता है।

२–अतिसार विशचिका आदि मे जब शरीर का द्रव कम हो जाता है तब द्राक्ष शर्करा का अत निक्षेप मूर्च्छा का नाश करता है।

३–अग्नि रसाधिक्य–अग्न्याशय के रस इनस्यूलिन के अधिक बनने पर भी शर्करा परिणमन होकर मूर्च्छा हो जाती है अत इसका प्रयोग करने पर जाती रहती है।

४–मधुमेहज सन्यास–रक्त मे शर्करा की मात्रा अधिक हो जाने पर मूर्च्छा हो जाती है तब इसका उपयोग लाभप्रद होता है।

अत. तृष्णा मूर्च्छा दाह प्रशमन सुश्रुत का व दाहतृष्णा मूर्च्छा प्रशमन ठीक निकलता है मस्तिष्क गत प्रभाव से मूर्च्छा · मस्तिष्क के क्रेनियल क्षेत्र मे रक्त के दवाव के बढने से (B P) या शिरोभिघात बढने से मूर्च्छा बढती है तब इसका गाढा घोल डालते हैं। इसकी गाढता घोलने के लिये रस का खर्च होता है अत. भार कम हो जाता है और मूर्च्छा ठीक हो जाती है।

हृदय जन्य मूर्च्छा–हृदय की मास पेशी मे विशेष प्रकार का शर्करा का कार्य चलता है इसके क्षय हो जाने पर भी मूर्च्छा का आविर्भाव हो जाता है अत इसके निक्षेप से शाति होती है।

पाचन संस्थान–यह खाने के वाद पचकर के ग्लूकोज के रूप मे शरीर में व यकृत मे एकत्र होता है और रक्त पूर्वक मिलता रहता है। मास पेशी मे ग्लाईकोजन के रूप मे रहता है। अस्थि मे भी जाता है और रहता है। इस प्रकार शरीर मे यह जाकर शीघ्र फैलकर कार्यकर वल्य वनता है। **वृक्क पर प्रभाव**–-रक्त पूर्वक यह जाकर वृक्क मे पहुचता है और वहा से छन जाता है जब अधिक होता है तव इसका प्रभाव मूत्र से शर्करा छान कर निकाल देता है।

यह शरीर के प्रत्येक धातु मे रक्त पूर्वक जाता है और वहा पर जमा हो जाता है अत. सर्व धातु प्रसादन है। दाह मे भी शर्करोदक देने पर लाभ होता है। भीतर प्रक्षेप से भी लाभ होता है।

अति रस सेवन से कर्म–मधुर रस का अधिक मात्रा मे सेवन करने से विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं। यथा :

पाचन संस्थान मुख–

१. **माधुर्य**–मधुर रस के अधिक शरीर मे हो जाने के वाद रक्त मे भी मात्रा वढ जाती है और फिर मुख सदा मीठा बना रहता है। स्वाद मधुर हो जाता है। मुख पाक हो जाता है।

२ **कंठ**–मुख व गले के क्षेत्र मे मास वृद्धि हो जाती हैं और गले मे व आभ्यतर नासा मुख मे छोटे छोटे दाने वन जाते है तथा गलशुडी वढ जाती है। गला कठ मे अर्वुद बन जाते हैं एव अन्य माँस वृद्धि जन्य गले के रोग हो सकते हैं।

३ **आमाशय में**–अग्नि मद हो जाती है, वमन वत प्रवृति हो जाती है। छर्दि का लक्षण हो जाता है।

४. **आंत्र** –आनाह अलसक प्रभृति रोग हो जाते हैं अनन्नाभिलाष की वृद्धि होती है। आनाह अलसक के अतिरिक्त कृमि भी पेट मे पैदा होते हैं।

५ **अर्श** मास की वृद्धि के कारण होता है या इस स्थान मे अर्वुद व अन्य रोग हो जाते हैं।

६ **श्वसन संस्थान**–इसके रोगो मे प्रतिश्याय कास श्वास स्वर नाश आदि रोग होते हैं।

७ **मूत्रवह संस्थान**–वहुमूत्र व मधुमेह शर्करा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वस्ति उपलेप हो जाता है।

८ **रक्त वह संस्थान**–धमनी उपलेप या धमनी की दीवाल की वृद्धि मोटाई वढ जाती है और उनमे मार्दव न रहकर काठिन्य या शोफ हो सकता है।

९ **नाडी संस्थान**–अन्न के प्रति अरुचि, अति स्वप्न, आलस्य, शरीर गौरव, अग्नि दौर्वल्य, सज्ञा प्रणाश, स्वर प्रणाश, शिर शूल, मूर्च्छा व सन्यास उत्पन्न हो जाते हैं।

२. **त्वक् के रोग**–त्वचा के कई रोग यथा–शीतोदर्द, कोठ कंडू के रोग।

३. **इन्द्रिय रोग**–नेत्रार्वुद अक्ष्यामय अभिष्यद व अन्य रोगतिमिर भी हो जाता है।

४. **दोष जन्य रोग**–श्लीपद स्थौल्य, अग मार्दव, गौरव, शीत ज्वर, गलगड, गंडमाला आदि विकार हो जाते है।

मधुर रस के अधिक हो जाने पर शरीर मे इसका सग्रह होता है अतः समान गुण के कारण मास मेद कफ की वृद्धि के रोग हो जाते है। शर्करा की वृद्धि होकर शर्करा जन्य रोग हो जाता है रक्त मे वृद्धि शर्करा की होकर भयकर रोग हो सकते हैं। अधिक शर्करा से हायपरग्लाइसीमिया होकर सन्यास व मूर्च्छा की उत्पति होती है।

२. अम्ल रस—अम्ल रस के सेवन से विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष व प्रतिक्षिप्त लक्षण होते है। यथा :

प्रत्यक्ष कर्म–१. दतहर्ष– अम्ल रस के सेवन के बाद दात सक्रिय नही हो पाते। काटने मे कठिनाई होती है।

२. मुख से रसस्राव होता है मुख शुद्धि होती है। अधिक मात्रा मे लेने पर मुखदाह होता है। ३. कठ व जिह्वा मे विदाह होता है ४ स्पर्श मे शीत लगता है। ५. अधिक मात्रा मे उर प्रदाह करता है। ६. भुक्त अन्न का अपकर्षण उसका क्लेदन व जारण करता है पाचन मे सहायता देता है। ७. वातानुलोमन व कोष्ठ विदाह करता है।

प्रत्यावर्तित कर्म–२ अक्षिभ्रूसकोच २. मुख मे स्राव वृद्धि ३. रोम हर्ष ४. हृदय को प्रिय लगता है। ५. अग्नि को प्रदीप्त करता है। रुचि प्रद है।

सर्वांगिक कार्य—धातु व उपधातु के ऊपर अम्ल रस का कार्य निम्न रूप मे होता है

१. शरीर या देह का वृहण २. उर्जा या शक्ति प्रद ३. वल वर्द्धन ४. इन्द्रिय दार्ढ्य कर मनो वोधन व सृष्ट मूत्र व पुरीष।

इन्द्रियो पर प्रभाव

मनोबोधन–मन का वोधन करके यह शरीर को चैतन्य वनाता है। ज्ञानेन्द्रियो का प्रवर्द्धन करके उनको शक्ति देता है।

सांस्थानिक प्रभाव व रोग—

मात्रावत् प्रयोग–मात्रा मे प्रयोग करने पर यह अम्ल रसवातानुलोमन का कार्य व मूढ वातानुलोमन करता है। अत· पाचन तत्र पर इसकी क्रिया विशेप शक्ति प्रद होती है। अत पाचन है।

२. अम्ल रस वाह्य भाग पर प्रयोग करने पर सामान्य मात्रा मे रहने पर शीत लगता है। अधिक मात्रा मे यह हो जाय जैसे तीव्र अम्लो के स्पर्श से मास के सूत्र दग्ध हो जाते हैं। दाह व पाक करता है। आभ्यंतर की मात्रा मे

अम्ल रस के वढ जाने पर शरीर मे अम्लता की वृद्धि हो जाती है। अम्ल पित्त हो जाता है। रक्त मे अम्लता होकर रक्त पित्त हो जाता है। यदि किसी कला या त्वचा के सपर्क मे यह आता है तो उसको पाक कर देता है। दाह पैदा करता व्रण वना देता है।

३. शरीर के धातु निर्माण मे अम्ल रस का पग पग पर उपयोग होता है। शर्करा के पाचन के लिये प्रोटीन के पाचन के लिये, वसा के पाचन के लिये विभिन्न प्रकार के अम्ल का उपयोग शरीर करता है। और शारीर द्रव्य के रूप मे उसको निर्माण करके वह शरीर का उपवृहण करता है। अत शरीर का वल प्रद है।

अम्ल वस्तु के प्रयोग से पाचक रस अधिक उत्पन्न हो जाते हैं। भोजन का अपकर्षण होता है और पाचन की शक्ति वढती है। आमाशयिक रस, पक्वाशयिक रस, अग्नि रस आन्त्रिक रस यह सव वढते है पाचन में सहायक होते हैं। अत **अग्नि दीपयति, क्लेदयति, जरयति, दीपन पाचन** आदि कर्म होते हैं। अम्ल के सेवन से किण्वी करण मे सहायता मिलती है और पाचन व रोचन कर्म हो जाते हैं।

रक्त पर क्रिया—रक्त में मधुर रस के रहने पर मात्रावत स्वरूप मे रक्त में प्रसन्नता द्रवता व सरता के लक्षण होते हैं। भ्रमण मे सहायता मिलती है। अम्ल की मात्रा अधिक हो जाने पर तृषा मूर्च्छा भ्रम व अत्य रोग और मृत्यु तक हो जाती है।

वृहण—रक्त पूर्वक वृद्धि होने पर सव धातु व विशेष कर रक्त के वाद के धातु मास का आप्यायन होता है। अत. वृहण है और वल वर्द्धन होता है।

हृद्य—हृदय की पेशी को विशेष वलदायक होता है। हृदय के पोषक जितने अम्ल है उनका स्वरूप मधुर के साथ मिलकर के शारीर शर्करा ग्लूकोज के रूप में वदल कर पोषक होता है। प्रोटीन को अमीनोएसिड के रूप मे व अन्य अम्लो के रूप मे परिवर्तन करके मास धातु का वृद्धि कर वनता है। फैट को फैटी एसिड के साथ मिलाकर पाचन व जरण Oxidation मे सहायक होता है। उष्मा की वृद्धि करके शरीर की विषम मात्रा को ठीक रखता है।

अति मात्रा मुख में—मुख मे दन्त हर्ष कठ के प्रदाह, उर में दाह करता है।

रक्तवह सस्थान में—हृदय दाह, पाडु, रक्त पित्त, रक्त दूषण, मास दूपण आदि रोग करके शरीर को व्याधित करता है।

अम्ल रसाधिक्य मे कई रोग हो जाते हैं।

इन्द्रिय रोग—नेत्र मे अभिष्यद तिमिर दृष्टि दौर्वल्य अम्लाध्युसित रोग करता हैं।

नाड़ी संस्यान—शरीर मे अम्लता की वृद्धि होकर के त्वक्—कडू, विसर्प, विस्फोट, ज्वर, पाडु, रोम हर्ष, क्षीण व क्षत का रोगी वना देता है।

दुर्वलो मे यह रक्त प्रकोप करके यह रक्त दूषण, माम विदहन, शोथ की वृद्धि, कठ व उर रथल मे विदाह पैदा करता है। अम्ल के बढ जाने पर साधारण क्षत होने या आघात लगने, भग्न होने पर स्थान–शोथ युक्त होकर पक जाता है।

देह शैथिल्य—शरीर मे अम्ल की वृद्धि होकर के शिथिलता आ जाती है। शरीर के भागो मे पूय का जनन हो जाता है।

भ्रम व तिमिर रोग—अम्ल के अधिक हो जाने पर अम्लता के कारण दृष्टि क्षेत्र मे विकृति हो जाती है। दर्शन शक्ति कम हो जाती है।

विस्फोट जनन व ज्वर की उत्पत्ति हो जाती है। पाडुता,सर्वांग मे कडू कठोपरोध, मूर्च्छा व मृत्यु भी हो जाती है। अम्ल रस आधुनिक काल मे भी चिकित्सको की दृष्टि मे रोग कर होता है। सामान्यावस्था मे अम्ल के मात्रावत रहने में सव प्रकार से शरीर की
क्रिया समुचित रूप मे होती पाते है और अधिकता मे रोगोत्पत्ति कर स्वरूप की सूचना देते है। अम्लताधिक्य एसिडोसिस मे विभिन्न प्रकार क्रियाये शरीर मे हो जाती है और शरीर रुग्ण हो जाता है। रक्त मे उचित मात्रा मे अम्ल का व शरीर अम्ल रस का होना आवश्यक है।

आधुनिक काल मे निम्न अम्ल शरीर की रचना मे व पाचन मे चाहे वह शर्करा का पाचन हो प्रोटीन का हो या फैट का हो भाग लेते है। यह शरीर मे ही होते है और शरीर मे ही प्रत्यापर्वतित होकर के कम या अधिक होकर के शरीर का पालन व पोषण करते है। इनका कार्य विभिन्न रूप मे होता है। यथा—मधुर रस के पाचन व किण्वी करण मे अम्ल।

१ लैक्टिक एसिड — ६ हाईड्रोएसिटिक एसिड
२. पायुरुविक एसिड — ७ एरोविक एसिड
३. फास्फोरग्लाईसेरिक एसिड — ८ ट्राईकार्वोजाइलिक एसिड
४. फास्फोएनोल पायुरुविकएसिड — ९ साईट्रिक एसिड
५. हाईड्रोजोइक एसिड

इस प्रकार से कई एसिड शर्करा के निर्माण भजन व सिंथेसिस भाग लेते हैं। प्रोटीन के विश्लेषण व निर्माण मे—

१. एमाइनो एसिड — ५. ग्लुटेनिक एसिड
२. ईमाइनो एसिड — ६. पायुरुविक एसिड
३ केटो एसिड — ७. व्युटिरिक एसिड
४ एसेटिक एसिड

इस प्रकार के अम्ल व अन्य जो कि अन्य शरीर रस को एजाइम्स के साथ मिल कर विविध रूप धरते हैं व सज्ञाये विविध हो जाती है शरीर के प्रोटीन के निर्माण व प्रोटीन के परिवर्तन मे भाग लेते हैं।

फैट व उसके पाचक व भंजक अम्ल—१ फैटी एसिड २. एसेटिक एसिड ३. लैक्टिक एसिड ४. ओक्सिलीक एसिड ५. साईट्रिक एसिड ६. केटोनिक एसिड।

इनकी विशेष क्रियाये—वायोकेमिस्ट्री की आधुनिक पुस्तको मे मिलती हैं।

तिक्त रस—

प्रत्यक्ष कर्म—१. रसनेन्द्रिय प्रतिघात जीभ पर जाते ही वह अन्य रसो के प्रभाव को कम करता है। रसना की क्रिया का नाश करता है। अस्वदनम् अस्वादुता करके देर मे रसज्ञान कराता है।

२. मुख मे विशदता की उत्पत्ति कराता है।

३ कठ व गले मे यह रूक्षता व शुष्कता करता है। कठ का अल्प मात्रा मे शोधन करता है।

प्रत्यावर्तित कर्म अनन्नाभिलाप कराता है। रोम हर्ष कर है। मन का वैशद्य कर है। अधिक मात्रा मे मुख का शोष कर बनता है।

सम्यक् प्रयोग करने पर यह निम्न कार्य करता है।

१. ज्वर, दाह, कडू, कोठ, कुष्ठ, क्रिमि का नाशक है। मूर्च्छा व तृष्णा का प्रशमक है।

२. आमाशयिक उत्क्लेश को कम करता है।

३. विषघ्न है।

४ स्वयमरोचिष्णु होकर भी अरुचि नाशक है। आस्य वैरस्य नाशक है।

५ रक्त वह सस्थान पर रस रक्त मास मेद अस्थि मज्जा का शोषक है। बल का ह्रासक है व शरीर का कृशता कारक है। स्रोतो मे सरसता पैदा करता है।

प्रजनन कर्म—शुक्र का शोषण कारक है। शरीर मे खरता रूक्षता व कृशता करता है। पुनश्च यह शरीर के द्रव का चाहे किसी रूप मे हो शोषण करता है। यथा—पित्त लसीका, स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेष्म व मेद का शोषक हैं।

६ वद्ध मूत्र पुरीप है।

७ मेघ्य कर्म भी करता है।

अति मात्रा मे—

१. **पाचन सस्थान**—आस्य वैरस्य व मुख शोष कर है।

२. **नाड़ी संस्थान पर**—भ्रम, मोह, ग्लानि, मूर्च्छा, अर्दित, मन्यास्तंभ आक्षेप, गात्र स्तम, शिर शूलता, भेद व च्छेद कर होता है।

प्रजनन सस्थान पर—शुक्र शोष कर होता है। खरता कृशता कारक है।

इस प्रकार के कर्म तिक्त रस के पाये जाते हैं।

आधुनिक कर्म—आजकल आधुनिक चिकित्सक कटु को रस नही मानते परन्तु कटु रस का वर्ग पजेंट मानते हैं व कर्म भी बतलाते हैं। तिक्त व कट मे प्राचीन काल मे भी पृथकता रहने पर अभेद जैसा दिखाई पडता है। कटुकी तिक्त है पर नाम कटुकी है। त्रिकटु के द्रव्य कटु व तिक्त है। कुटज तिक्त तम है परन्तु रस कटु लिखा है अतः ऐसे उदाहरण बतलाते हैं कि इनमे आम्य-

तरिक प्रयोग मे समता आ जाती है और कार्य प्रिय समतानुकूल दिखाई पडता है। जितने सुगंधित तैल व द्रव्य है वह अधिकतर कटु व तिक्त रस युक्त हैं। अतः कर्म विभिन्न होने पर भी विपाक मे कटु व तिक्त का विपाक समान रूप से कटु हो जाता है।

यह सब विचार हमे विशेष रस से दोनो के भौतिक व संगठन की साम्यता व अनुप्रवेश व उनका अनुग्रह व मेलन विशेषता रखता है। अत ज्ञात होता है कि कर्म मे विशेषता का निरूपण विशेषता देखकर ही की गई है। अत यहा पर हम तिक्त की क्रिया को ही विशेष रूप मे आधुनिक मत से आधुनिक चिकित्सक सामान्य रूप से इसका विशेष गुण पाने के लिये इसको उपक्षार के रूप मे प्रयोग (Alkloids) करते है। कुछ उदाहरण निम्न है—

१ तिक्त रसो के उपयोग मे कुपीलू सत्व, वत्सनाभ सत्व या अलक्लाइड का व कई कटुकी सत्व आदि का प्रयोग करते है। उनका स्वल्प उपयोग लिखते हैं। कुनाईन का भी उपयोग होता है।

कुपीलू सत्व—

१. **पाचक संस्थान**—क्षुधा वृद्धि कर पाचक है। इस तिक्त रस वाले उपक्षारो के प्रयोग से मात्रावत प्रयोग मे स्वाद वह कोष मे सपर्क मे आने पर रसस्राव को वढाकर अग्निमाद्य मे लाभप्रद है। अत तिक्त रस उद्दीपक या आमाशय क्रिया वर्धक माना जाता है।

रस वृद्धि से रक्त का वर्धन व वल वर्धन होता है। प्रत्यक्ष कर्म करने मे तो आमाशय प्रवेश पर यह रसस्राव वृद्धि कर नही मिलता, पर कालान्तर मे सेवन से परोक्ष रूप मे अग्नि सदीपन कार्य परिलक्षित होता है। अत चिरकालिक अग्निमाद्य मे इनका आमाशय वल्य लक्षण दृष्टिगोचर होता है।

२. कटु व तिक्त रस साथ मिलने पर यथा—त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्र सौफ का तैल, राजिका तैल आदि के प्रयोग पर वातानुलोमन कार्य पाते हैं।

क्रिमि पर—यह क्रिमियो का उद्वेजक है और कोष्ठ से निकालने मे या मारने मे भी प्रयुक्त होता है। सूत्र क्रिमि पर इसका प्रभाव पाते हैं। वह क्रिमि नाशक होता है।

वात जनित रोग—कुपीलु सत्व का प्रयोग करे तो आक्षेप व सकोच विस्तार के लक्षण होते पाते हैं। स्ट्रिक्नीन का प्रयोग नाडी क्षोभक उत्तेजक होता है। मूर्च्छा भ्रम तम व सन्यास भी पैदा करता है।

सप्तपर्ण का व सिनकोना का सत्व ज्वर नाशक व ताप हारक होता है। तिक्त रस से मूर्च्छा का प्रशमन भी पाते है। कटुकी का सत्व ज्वर हर व अल्प मात्रा मे आमाशय व नाडी बल्य है। कालमेघ का सत्व ज्वर हर, आमाशय व यकृत बल्य है। इसी प्रकार तिक्त रस के प्राचीन योग भी पिप्पली घृत शत प्रहरी पिप्पली व पचतिक्त घृत आदि योग बल्य व ज्वर नाशक होते हैं।

नाडी बल्य के रूप मे उडनशील तैल व सुगधित तैल कार्य करते हैं वह आमाशय बल्य व अग्नि कर्म कृत बनते हैं। कटु रस का घन सघात विन्दु घृत मे विरेचक व शोधक होता है।

क्रिमिनाशक—सूक्ष्म कीटाणु नाशक के रूप मे तिक्त रस शीत ज्वर नाशक, विष नाशक शरीर दोष सशोधक व लाभकर होते है।

तिक्त रस नाडी बल्य के साथ पूय शोषण, पित्त शोषण व शरीर द्रव शोषण करते हैं। अत पूय वर्धन की कमी करते हैं। लसीका की वृद्धि ह्रासक और बल्य है। व्रण रोपण व त्वक् स्थिरी कर है।

कटु व तिक्त रस सम्मिलित रहने पर वात शामक, आध्मान हर, आटोप हर व आन्त्रक्रिया को सुदृढ बनाते हैं। आधुनिको की तरह प्राचीन भी यही मानते हैं। केवल रस न मानने मात्र से क्रिया की प्राप्ति मान कर इसकी क्रिया पाते है अत प्राचीनो का कथन ठीक है। रसना ग्राही रस की परिभाषा मे यह रस पाये जाते है व उनकी क्रिया भी मिलती है।

इस प्रकार कटु व तिक्त रस की क्रिया पाते हैं भिन्न-भिन्न द्रव्य के अनुसार यह क्रिया कुछ भिन्न भी हो सकती है। जिनका वर्णन न करके सामान्य वर्णन किया गया है। विशेष द्रव्य के साथ विशेष विवरण प्राप्त हो सकेगा।

कटु रस–

प्रत्यक्ष कर्म—१ जिह्वा पर कटु रस के प्रयोग से तत्काल चुमचुमायन होता है। उसके वाद उद्वेग होकर जिह्वा पर तोद के लक्षण होते हैं। जीभ पर पीडा के बाद पीडा होने लगती है धीरे धीरे कठ व कपोल पर भी चिमचिमायन होने लगता है। मुख से स्राव होने लगता है। श्लेष्म कला के उद्वेजन से स्राव अधिक हो जाता है।

२. भीतर जाकर जहा पर जाता है वह स्राव की वृद्धि करता है पाचक रस वनते हैं और पाचन होता है। मुक्त अन्न का शोषण व मलादि का सग्रह होकर मल गाढा हो जाता है।

३. त्वक्–इस पर प्रदाह करता है। स्फोट डालता है।

परिवर्तित कर्म—१. मुख के स्राव की वृद्धि करके पाचक रस बढाता है।

२ नेत्र से स्राव कराता है। मुख सस्राद नासा स्राव व चक्षु स्राव कराता है।

३ मुख मे जाने के वाद से स्राव की वृद्धि के साथ पाचक रसो की भी वृद्धि करता है परिणाम स्वरूप अग्नि की वृद्धि होती है।

४ अविक मात्रा मे आने पर यह सिर मे पीड़ा करता है।

धातु व उपधातु दोषों पर क्रिया–

धातु—मास लेखन करता है : २ रक्त के सघात का भेदन करता है। ३ शुक्र का नाग करता है। ४ मेद का नाशक है। ५. स्रोतसो को फैलाता है। ६. सधियो की जकड़ाहट का नाशक है।

उपधातु—स्तन्य का नाशक है।

दोष हरत्व—कटु रस वात वर्द्धक है। पित्त वर्द्धक है। कफ शामक है।

मल—मलो मे पुरीष व मूत्र को कम करता है। स्वेद व क्लेद को कम करता है।

सार्वांगिक कर्म—उचित मात्रा मे कटु रस का प्रयोग करने पर निम्न प्रभाव देख पाते है।

१. त्वचा—उदर्द कंडू शोथ व कुष्ठ का प्रशमन करता है। किंतु व्रण रोपण मे बाधा करता है।

२. मुख—वक्त्र के रोग का नाशक है।

३ आमाशय—अरुसक व अग्निमाद्य का नाशक, क्रिमि नाशक है।

४. रक्तवह सस्थान पर कार्य करके स्थौल्य का नाशक है। विष का प्रशमक है। अभिस्यद हर है।

नाड़ी पर—आलस्य प्रशमन, स्नेहहर, क्लेदहर, स्वेदकर व वात नाडी की क्रिया का वर्द्धक है। बद्ध मूत्र व पुरीष का कर्म करता है।

अधिक मात्रा में—प्रयोग होने पर निम्न रोग करता है।

१. रक्तवह संस्थान—कार्श्यकर, बल विघातकर तथा मद नामक रोग करता है।

२. पाचन संस्थान—ओष्ठ गल तालु कंठ मे शोथ व पाक कर होता है। अत. दाहतृपाकर होता है। अधिक मात्रा मे यह वमन करने वाला होता है।

३. नाड़ी संस्थान—भ्रम मोह मूर्च्छा तम का उत्पादक है। दवथू कप तोद भेद, चरण, भुज पार्श्व पृष्ठ मे वात के रोग व कभी-कभी अग आघात तक करता है। गल तालु ओष्ठ मे सतापकर ज्वरकर बनता है।

४. त्वक—त्वचा पर दाह सताप व स्फोटकर उत्तेजक होता है। अत कप तोद भेद आदि पैदा करता है। अति अगसाद, अति कर्षण, अतिस्राव व शरीर का शोष कर बनता हैं।

इस प्रकार कटु रस अपना विशेष कार्य करता है। कटुरस आधुनिक नही मानते अत कटु रस का विवरण नही मिलता। क्षारीयता की वृद्धि के जो लक्षण हैं वह सब मिलते है। क्षाराधिक के जो कार्य हैं वह ही सब मे पाये जाते है और इसकी अधिकता मे कटुरस के कार्य के अनुकूल कार्य होता है आगे विवरण देंगे।

लवण रस के कार्य—

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर्म—लवण रस को जिह्वा पर रखने से निम्न कर्म दृष्ट होते हैं। यथा—

मुख—लवण रस मुख मे जाते ही घुल कर मुख मे क्लेद की वृद्धि करता है। मुख की कलाओ से रस स्यदन कराता है। मार्दव उत्पन्न करता है। अधिक मात्रा में विदाह उत्पन्न करता है।

२ कंठ——विदाह उत्पन्न करता है।

३ **आमाशय**——आमाशय मे जाकर आमाशय से क्लेदन कर्म कराता है। श्लेष्म कला से रस स्राव कराकर वह क्लेदन कर्म करता है, अन्न को स्निग्ध करता है।

प्रत्यावर्तित कर्म–

१ मुख प्रसेक कर होने से वोधक व क्लेदक कार्य को रसस्राव करा कर के वढाता है।

२ आहार मे रुचि उत्पन्न कराता है।

सार्वदैहिक कर्म——शरीरावयवान मृदु करोति

शरीर मे जाकर यह रसच्यावन कर्म कराता है। शरीर को मृदु करता सूक्ष्म स्रोतसो मे जाकर स्रोतसो के अवरोध को दूर करता है। शरीर मे निष्ठा काल मे यह सघात भेदन व छेदन च्यावन कर गति शील बनाता है। शरीर का स्नेहन कराता है। मार्ग का शोधन करके शरीर को मृदु कराता है। पाचन कर्म मे सहायक होता है।

सृष्ट विट मूत्र–मल व मूत्र का त्याग कराता है। अधिक मात्रा मे देने पर स्रसन कर्म करता है। यह स्वेदकर व लोम दत व केश का च्यावन है।

इन्द्रिय कर्म——इन्द्रियो के कर्म को कराने मे सरत्व उत्पादन मे यह विशेष उपयुक्त है। सम्यक मात्रा मे लवण रस का उपयोग होने पर यह क्रमश निम्न कार्य करता है।

१ स्रोतस शोधन २ मार्दव ३. क्लेदन ४. सघात विधमन।

यह सूक्ष्म स्रोतसो मे प्रवेश करके व उनसे स्राव कराकर के स्रोतोरोध का नाशक है। स्निग्ध होने से मृदुता करने वाला व मास सूत्रो मे मार्दव करता है। दोषो के सघात को दूर कर उन्हे मार्ग मे प्रेरित करने वाला होता है।

लवण शरीर मे जाकर शारीर लवण के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। यह शरीर मे कई लवणो के रूप मे काम करता है जिनमे प्रधान सैंधव लवण है। यह कई कार्य कर लवणो को प्रोत्साहित करके कर्म करता है। लवण कई प्रकार के होते हैं। इन सवकी सम्मिलित क्रिया उपर्युक्त होती है।

सैंधव लवण—यह शरीर मे सोडियम क्लोराइड के रूप मे रहता है। प्रतिदिन इसकी मात्रा ५ ग्राम तक शरीर मे ली जाती है और निकलता भी है। अधिक से अविक १५० मिलीग्राम इसकी खपत है। मूत्र मे १० मिलीग्राम निकलता है। यह अविक होने पर विशेष हानि कारक प्रभाव नही करता केवल रक्त प्लाज्मा की आयतन (Volum) को कम करता है। अधिक मात्रा मे होकर जल की आकाक्षा करके तृपा की वृद्धि कराता है। रक्त के सीरम का विश्लेपक है। सरलता से यह अत शरीर के द्रव मे प्लाज्मा मे मिल जाता है और द्रव की मात्रा को घटाता वढाता है। अधिक होकर यह लवणाधिक्य

(Hyper natrimia)का रूप कर शरीर मे क्षोभकर होता है मास पेशियो मे उत्तेजन वढ जाता हैं। सकोच अधिक होने लगता है।

इसी प्रकार शरीर मे कई प्रकार के लवण है जिनमे विशेष कैलशियम, पोटेशियम, मेगनीशियम और सोडियम के लवण मिलते है और कार्यकर होते है।

पोटेशियम—इसकी औसत मात्रा ३ ८ ग्राम है। अधिक से अधिक १५० ग्राम तक लग सकता है। दैनदिन के उपयोग मे ढाई से ४ ग्राम तक की विशेष खपत रहती है।

कैलशियम—शारीर शास्त्र के जानकारो ने वतलाया है कि शरीर मे विशेप कर अस्थि मे ७९६ से १५१८ ग्राम इसकी मात्रा अस्थि मे पाई जाती है। कोमल ततु व शारीर द्रव्य मे यह ५ ग्राम मिला रहता है। मास सूत्रो मे दृढता के लिये भी आवश्यक है। रक्त मे यह मिला रहता है इसकी कमी से शरीर मे मृदुता उत्पन्न हो जाती है। शरीर का यह अत्युपयोगी तत्व है।

मैगनिशियम—शरीर मे यह २१ ग्राम खर्च होता है। ११ ग्राम यह अस्थि पजर मे मिलता है। मास पेशी मे ६ ग्राम रहता है।। अस्थि भस्म मे एक प्रतिशत से कम अवशेष इसका मिलता है जव कि ३८ प्रतिशत कैलशियम का मिलता है।

क्लोराइड व फास्फेट की भी मात्रा मिलती है परन्तु यह ही अधिक काम मे आते है। इन सव का काम शरीर द्रव मे मिलकर के शरीर की मृदुता, दृढता व स्निग्धता की उत्पत्ति कराना है। शारीर पाचक द्रव की उत्पत्ति कराना भी कार्य है। जितने पाचक द्रव या अन्य आग्नेय द्रव शरीर से निकलते हैं यह सव इन लवणो की क्रिया की निष्पत्ति मे पाये जाते हैं।

इनकी कमी से शरीर मे आक्षेप आने लगते है, सम्यक मात्रा मे रह कर मॉस पेशी की क्रिया को ठीक रखते है। अधिक मात्रा मे हृदय की पेशी का कार्य रोध तक हो सकता है और शोथ भी हो सकता है अत' शोथ मे इसकी मात्रा वढने पर लवण कम कर देते हैं और इस प्राचीन नीति को आज भी आधुनिक चिकित्सक मानने लगे है।

अत अग्नि दीपन, छेदन, सघात विधमन आदि कार्य यह शारीर द्रव्य मे मिलकर कराता है। शरीर मे मार्दव व स्निग्धता का प्रेरण करता व बल दाता माना जाता है।

अधिक मात्रा में—१. अधिक मात्रा मे यह होने पर त्वक्, कड्रू, कोठ, पिडिका, वैवर्ण्य, शोथ, दारण व कुष्ठ तक उत्पन्न कर देता है। शोथ का पाचक है। वाल अकाल मे इसकी अधिकता से पक जाते है, झडने लगते है। विसर्प इन्द्रलुप्त विर्चचिका किटिभ व कुष्ठ करता है।

पाचक संस्थान—यह उचित मात्रा मे रहने पर जहा पाचन कर्म का सहायक होता है। अधिक मात्रा पित्त का कोप करता है। रक्त को बढाता है। तृषा को करता है। पाचन का हानिकर होता है। अत अनन्नाभिलाप होता

है। दंत का अकाल मे पतन होता है। मुख पाक होता है। मसूढों को यह मृदु वनाता और पायरिया का उत्पादक होता है तथा कंठ के ऊपर प्रभाव कर तृषा का उत्पादक है।

आमाशय—अधिक मात्रा मे अम्ल रस होने से अम्ल पित्त करता है।

इन्द्रिय—इन्द्रियोपताप कर होता है। उनकी क्रिया को कम करता है। अकाल मे रसना का, कान का, नेत्र का कार्य कम हो जाता है। रक्त दूषित कर, अम्ल पित्त, विसर्प, वात रक्त, विर्चचिका आदि रोग पैदा करता करता है। नपुसकता करता है, रक्त मे विष की वृद्धि करता है, मास शैथिल्य, ओजनाश, मद रोग की वृद्धि, वल का ह्रास करता है। नेत्र विकार करता है। नाडी सस्थान पर कार्य कर मूर्च्छा उत्पन्न करता है। वृद्धावस्था लाता है। वली पलित खालित्य कर अकाल मे दुर्वल वनाता है।

इस प्रकार जहा यह अधिक उपकारी है अपकार भी करता है। शरीर के अन्य लवण भी इसके सहयोग से कार्य करते हैं।

कषाय रस--

सामान्य कर्म प्रत्यक्ष कर्म—

१. **जिह्वा**—मुख मे आते ही कषाय रस विशदता या स्वच्छता को उत्पन्न करता है। फिर धीरे धीरे जड़ता उत्पन्न करता है। अधिक मात्रा मे यह स्तब्धता को करता है।

२. **कंठ**—कठ मे इसके प्रसार होने के साथ ही सकोच मालूम होता है फिर जडता, स्तब्धता व कठ का अवरोध उत्पन्न करता है।

३. **मुख**—सारे मुख मे फैलने पर यह स्राव वद करके रूक्षता, खरता करके शोष उत्पन्न करता है।

४. **आंतो मे**--यह ग्राही कर्म करता है। विवध और गौरव भी अधिक मात्रा मे करता है।

सार्व दैहिक कर्म—

धातु व उपधातुओं पर प्रभाव—इस क्षेत्र मे आने पर यह निम्न कार्य करता है। यथा–

१. **रस व रक्त**--कषाय रस के सेवन से धातुओ में दृढता व वल आता है। रस व रक्त मे सग्राहक शक्ति मिलती है। रक्त व्याधि प्रशमन है और रस धातु प्रसादन है। द्रव धातु का शोषण है।

२. **त्वक् व मांस**–त्वक् सवर्ण कर व सकोचक है। व्रण रोपण व सधान कर है। क्लेद शोषक व सग्राही कर्म करता है। मेद का शोषक है।

सामान्य रूप से यह आम स्तभन, लेखन, पीडन, शोषण, सशमन है। रक्त पित्त सशमन के रूप मे कार्य करता, सकोचक होने से यह स्तभन व कर्षण है।

३ **मल**—मूत्र व पुरीष की मात्रा को कम करता है वद्ध मूत्रपुरीष है।

४. **दोष**—कषाय रस वात वर्द्धक, पित्त शामक व कफ शामक है।

अति मात्रा में—

१. पाचन संस्थान—१. मुख मे रस स्राव की कमी करके वह शोष कर होता है। २. उदर में आध्मान कर है। ३. कठ मे तृषा व रूक्षता करता है। आमाशय की क्रिया मे संकोचक होने से क्रिया की कमी करता है। देर मे पाचन होता है, मल मूत्र की मात्रा कम करता है।

२. रक्तवह संस्थान—मुख शोषव वाक् संग करता है। हृदय की माँस पेशी मे जड़ता व संकोचक कर्म करके हृदयापकर्षण करता है तथा पीडा जनक होता है। अधिक कषाय रस खाने वालो को हृदय पीडा होती है। धमनी व पेशी का यह संकोचक है।

३. नाड़ी संस्थान—वाक् ग्रह, मन्या-स्तंभ, गात्र-स्फुरण, आक्षप, ग्लानि, पक्षवध, अर्दित, ग्रहापतानक जैसे लक्षण उत्पन्न करता है। स्रोतोरोध व कृशता कारक है शरीर मे चिमचिमायन करता है।

४. मूत्रवह—मूत्र सग या कमी करता है।

५. प्रजनन संस्थान—शुक्र की कमी व शुक्र का स्तभ करता है। पुस्त्व नाश करता है। त्वक् व मास सकोचक, श्यावता कर है।

कषाय रस का विशेष कार्य—कषाय रस आधुनिक काल मे चिकित्सको के द्वारा भिन्न-भिन्न रूप मे प्रतिपादित है। यथा—भिन्न-भिन्न औषधियो के कषाय रस टेनीन के रूप मे निवास करता है। वह शरीर में जाकर शरीर के कोषो के सपर्क मे आता है और वह तीन प्रधान कार्य करता है।

१. प्रोटीन के सपर्क मे आकर उन्हे प्रक्षिप्त करता है। २. अवक्षेप में आने पर सकोच होता है। ३. स्रावो को कम करता है। अत. क्रमश. देखें तो कर्म इस प्रकार है।

स्थानिक क्रिया—मुख मे जाकर यह रसवाही स्रोतस व जलवह स्रोतस के अवकाश को कम करके स्राव की कमी व रूक्षता करता है। इसी प्रकार कंठ व गले मे जाकर सकोच व स्तभ शोष करता है। रस रक्त का सग्राहक है अत नासा स्राव मे रक्त पित्त मे, अर्श, रक्त मूत्रता व शरीर के किसी भाग से रक्त निकलने पर कषाय रस का प्रयोग करते हैं यथा · नागकेशर, लाक्षा, मोच रस व अन्य द्रव्य।

२. श्लैष्मिक कला के सपर्क मे आकर यह अघुलन शील आवरण बनाता है इससे व्रण रोपण मे सहायता मिलती है और पूयोत्पादक क्रिमि का प्रवेश शीघ्र नही हो पाता। यह अत कोषीय द्रव धातु (इटर सेलुलरफ्लूइड) को जमा देता है। अत व्रणो से कोई स्राव नही निकलता। अत व्रण रोपण के रूप मे नये अभिष्यद (Conjunctions), आत्र व्रण व त्वक विकार (Weeping eczema) अभिष्यद, पूति नासा (ozaena) श्वेत प्रदर गर्भाशयिक स्रावाधिक्य, वस्ति गत स्राव होने पर इसका प्रयोग करके समुचित लाभ

उठाते है। मुख पाक गलामय (Subacute or chronic sore throat) गल माँस वृद्धि (Tonsilitis) आदि मे सकोचक कार्य के लिये प्रयोग करते है।

पाचन संस्थान—मुख मे मुख गत स्राव को कम करता है। अत रूक्षता शोष व कर्षण होता है। मास के धातु सूत्रो का सकोचक है। अत उनमे कठिनता व परुपता लाता है।

आमाशय मे यह अलब्यूमिन के साथ मिल कर जम जाता है और कोई विशेष कार्य नही करता। स्राव की कमी करता है।

पाचक रसो मे पेपसिन व पेप्टोन को उदासीन करता है अत आमाशयिक रस का उन पर प्रभाव न होने से पाचन क्रिया मे कोई विशेष त्रुटि नही पाई जाती। अधिक मात्रा मे प्रयोग करने पर कषाय रस पाचक रसो को अवक्षिप्त करता है अत कुछ बाधक बनता है। इसकी मात्रा बढने पर उत्क्लेश व वमन हो सकते है।

आँतो में—आँतो मे प्रोटीन के साथ मिल कर यह एक घन आवरण बनाता है और विषो के प्रभाव से रक्षा करता है। आँतो की पुरस्सरण गति को कम करके यह स्रावो की मात्रा कम कर देता है। अत स्रावाल्पता से मल गाढा व कठिन भी हो सकता है। अत अतिसार व ग्रहणी मे कषाय रस का उपयोग करते हैं। यह आन्त्रगत माइक्रोब व यीस्ट (Microbes and yeasts) को भी अवक्षिप्त करता है अतः इस अर्थ मे क्रिमिहर माना जाता है और जतुघ्न गुण वाला मानते है।

रक्त स्राव के रोगो मे ग्राही होने के कारण ही प्रयोग करते हैं और सकोचक होकर रक्त रोधक बन जाता है। कषाय रस के टैनीन का शोषण नही होता अत विशेष सार्व दैहिक प्रभाव नही होता, आँतो मे जाकर गैलिक एसिड के रूप मे परिणत होकर जब शोषण होता है तब इसका प्रभाव पाते हैं।

विषघ्न—यह विषघ्न द्रव्यो के साथ मिलकर उनका अवक्षेप करा देता है इस अर्थ मे विषघ्न है। इस प्रकार विभिन्न रसो का सामान्य व विशेष कर्म देखने को मिलते हैं। विशेष अध्ययन करने पर सूक्ष्मतम भी कार्य देखने को मिल जाते हैं। अत सामान्य व विशेष रूप के कर्म इनके मिलते है। यही इसमे रस के कर्म के नाम से कहे गये हैं।

गुण के द्वारा कर्म—

गुण—यह द्रव्य मे असमवाय सबध से उसमे निष्क्रिय होकर रहने वाला तत्व है जो गुण कहलाता है। इस अर्थ मे तो रस भी गुण है व रस के भीतर रहने वाला शीत स्निग्ध गुरु लघु आदि भी गुण हैं अत कर्म काल मे यह कही पर अपने रस के आधार पर, कही वह गुण के आधार पर तथा कही पर वीर्य के आधार पर व कभी कभी प्रभाव के आधार पर, काम करते हैं यह पूर्व मे ही कह आये हैं।

ये गुण २० की सख्या मे द्रव्य मे पाये जाते है और क्रिया कर्म के आधार पर यह अनगिनत है। द्रव्य मे रस व द्रव्य मे गुण के आधार पर वीर्य काम करते है अत द्रव्य के प्रयोग करते ही इन सबो का कर्म होना प्रारभ हो जाता है। चाहे वह कही रस की प्रधानता से काम करते हो, चाहे गुण की प्रधानता से काम करता हो या वीर्य से या विपाक से। रासायनिक परिवर्तन के काल मे भी द्रव्य के रूपान्तर होने पर गुण का भी गुणान्तर हो जाता है और क्रिया हो जाती है अत जहा पर विशेष उग्रता के आधार पर रस कर्म गुण कर्म व वीर्य आदि का कर्म कहते है वह सदा गुणाधीन ही रहता है। रस मे गुण व द्रव्य मे गुण होने से रस यद्यपि निष्क्रिय रहता है वह शरीर रूपी अधिकरण पाकर के अपना कर्म प्रारभ करता है। अतर इतना ही है कि कार्य कर्तृत्व मे द्रव्य भी कारण है और गुण भी, परतु द्रव्य समवाय कारण है तो गुण असमवायि कारण है। गुण की विशेषता को आयुर्वेद विशेष मानता है और अधिक महत्व देता है। स्वस्थावस्था मे हो चाहे रुग्णावस्था मे हो, प्रत्येक अवस्था मे कर्म के कारण गुण माने जाते है।

यह गुण दो प्रकार से कार्य करते हैं। वह है १—सामान्यकर्म।
२—विशेष कर्म।

सामान्य कर्म—जब गुण अपनी सामान्य स्थिति मे रह कर कार्य करता है वह उसका सामान्य कर्म कहलाता है। यथा—मधुर रस का कर्म उपलेपकर व तृप्ति कर।

विशेष कर्म—जो रस अपने विशेष अधिक मात्रा के आधार पर विशिष्ट कर्म करता है। यथा-तिक्त रस का अधिक मात्रा मे मुख शोष व रूक्षता उत्पादन।

ये गुण शरीर के विभिन्न अगो मे स्वाभाविक रूप मे रहते है। जब आहार या औषधि के रूप मे औषधि लेते है तब ये द्रव्य रस रक्त पूर्वक शरीर मे जाकर तत्सम गुणो मे पहुच कर उनका वृद्धि या क्षय करते है और कर्म की परिस्थिति उत्पन्न करते है।

सामान्य रूप मे पांच भौतिक द्रव्य मे अपने अपने गुण होते हैं। यथा—

पार्थिव द्रव्य—गुरु—खर—कठिन—मन्द—स्थिर—विशद—सान्द्रस्थूल गुण वाले गध गुण विशेष होता है।

आप्य द्रव्य में—द्रव, शीत, स्निग्ध, मद, मृदु, पिच्छिल गुण व रस गुण बहुल।

तैजस द्रव्य—उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष, विशद, रूप गुण बहुल।

वायव्य द्रव्य—लघु, शीत, रूक्ष, खर, विशद, स्पर्श बहुल।

नाभस द्रव्य—मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, शब्द गुण बहुल।

ये ही गुण शरीर के भी भागो मे रहते हैं और विभिन्न द्रव्यो मे भी शरीर मे निवास करते है। अत जब भी कोई द्रव्य इन गुणो वाले होते हैं शरीर मे

जाकर वे इन गुणो की तरफ प्रथम आकर्षित होते हैं और इसके प्रभाव से विशेष व सामान्य गुण करते है। सामान्य रहने पर वृद्धि विशेषावस्था मे हानि करते हैं या क्षय करते है। अत. इनके गुण के विवेचन काल मे ध्यान रखना अत्यावश्यक है। और इनका कार्य विशेप रूप मे विपाक के काल मे या बाद मे घटते बढते हैं। चरक सहिता मे इस पर विशेष ध्यान दिया गया है। एक पग भी औषधि विवेचन मे बिना गुण के चला नही जा सकता। चक्रपाणि ने इसका विवेचन गुण के कर्म विवरण मे सामान्य विशेप को तीन प्रकार का माना है। यथा–त्रिविध सामान्य विशेपश्च त्रिविधः।

यथा–१–द्रव्य गोचर, २–गुण गोचर, ३–कर्म गोचर ॥ च सू १।४५

अत विशेष विवेचन की बात यह है कि आहार या औषधि द्रव्य मे उनके प्रयोग के बाद द्रव्य कृत कर्म गुण कृत कर्म व कर्मगोचर स्थिति यह तीनो ही मिलते है। आहार द्रव्य मास जाति का हो तो वह द्रव्य स्वभाव से मास जाति की वृद्धि करेगा। गुण की दिशा मे वही स्निग्धता-गुरुता-मृदुता व दृढ़ता की वृद्धि करेगा। और कर्म गोचर लक्षण पुष्टि, बल व स्थैर्य का भान होगा।

इसी प्रकार गुण भी विशेष व सामान्य गुण करते हैं और वह अपने विशेष रूप मे प्रति फलित होते है। यही कर्म, गुण के कर्म, द्रव्य के कर्म व अन्य के परिणाम रूप मे दृष्टि गोचर होते हैं। अत सिद्धान्त के रूप मे।

समान गुणाभ्यासो हि धातुनां वृद्धि कारणम्। च. सू १२।

प्रकोपण विपर्ययो हि धातुनां प्रशम कारणम् इति।

पुनश्च–धातव पुन शारीरा समानगुणै. समानगुण भूयिष्ठैः अपि आहार विकारैः अभ्यस्यमानैः वृद्धि प्राप्नुवंति ह्रासं तु विपरीतगुणैः विपरीत गुण भूयिष्ठैर्वाऽप्याहारैरभ्यस्यमानैः । च शा ६।९

अत महर्षि चरक के मत से देख पाते है कि गुर्वादि बीस गुणो मे से जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं, वे आहारादि बाह्य द्रव्यो मे स्थित होकर अपने स्वभाव के अनुसार काम करके समान गुण वालो की वृद्धि व विपरीत गुण वालो का ह्रास करने का सामर्थ्य रखते हैं जैसे गुरु आहार द्रव्य शरीर गत गुरु गुणवाले धातुवो का आप्यायन और विपरीत गुण वाले धातुओ का ह्रास करते हैं। यह दोनो कर्म साथ ही साथ होते हैं।

सर्वांश मे समान गुण वाले द्रव्य न मिलने पर भी या अनुपयोगी होने पर भी अधिकाश मे समानता रखने वाले उपयोगी द्रव्यो से शरीर धातुओ की वृद्धि की जा सकती है और होती भी है।

यथा १–**यौगपद्येन तु विरोधिनां धातुनां वृद्धि ह्रासौ भवत.। यद्धि यस्य धातो वृद्धिकरं तत्ततो विपरीत गुणस्य धातो. प्रत्यवायकरं संपद्यते** । च. शा ६।५

अतः आहार की तरह औषधि द्रव्य भी इसी प्रकार कार्य करते है। यही कारण है कि एक धातु के क्षय होने पर तत्सम द्रव्य का उपयोग होता है। यथा-

शुक्र क्षय में—मधुर, स्निग्ध, शीत, गुण वाले क्षीर, सर्पि, नवनीत आदि द्रव्य।

पित्त क्षय में—अम्ल, लवण, कटु रसवाले उष्ण-तीक्ष्ण-क्षारादि द्रव्य का सेवन।

श्लेष्म क्षय में—स्निग्ध, सान्द्र, गुरु, पिच्छिल गुण वाले मधुर रस वाले द्रव्य।

वात क्षय में—कटु, तिक्त, कषाय रस वाले रूक्ष लघु शीत गुण वाले द्रव्य।

अत: आहार व औषधि द्रव्य का सेवन अपना कार्य विभिन्न रूप मे करते हैं। आहार पच जाने के बाद भी निष्ठा पाक काल मे परिणमित होते हुवे भी अपने इस गुण को नही छोडते। यह इनका सामान्य व द्रव्य गुण कहलाता है। जब वे अपने आंशिक गुणो के परिवर्तन काल मे एक या अधिक द्रव्य का समागम करके गुण बाहुल्य लाभ करते हैं तो वे अपना विशेष गुण करते है। इस प्रकार सामान्य व विशेष गुण का उदय हो जाता हे।

यथा—परिणमतस्तु आहारस्य गुणा शरीर गुण भावमापद्यंते यथास्वमविरुद्धा:, विरुद्धाश्च विहन्युः विहताश्च विरोधिभिः शरीरम्। च. शा ६।१६

अत. यदि द्रव्य परिणाम काल मे अपने कुछ छै गुणो मे द्रव्य साम्य रखता हो और कुछ मे विषमता, तो वह उस गुण से समान गुण मात्रा की वृद्धि व असमान गुण की वृद्धि कर के उसका क्षय करते है। यथा—कलाय के सेवन से वह समान गुण वाले द्रव्य स्निग्ध वस्तु की अर्थात् मास जातीय प्रोटीन की वृद्धि करता है और रूक्षगुण के कारण जो कि अधिक होता है रूक्षता की वृद्धि करके खाज्य व पागुल्य की क्रिया करता है। अत: कलाय के सेवन से वात की वृद्धि होती है। आधुनिक आहार व्यापार व क्रिया व्यापार इसका उत्तर शीघ्र नही दे पाता। मधुर रस का अति सेवन करने पर धातुओ की वृद्धि होती है। परन्तु मास समान धातु के लिये अति सग्रह के कारण गल ग्रथि वृद्धि व परिणाम कास श्वास की उत्पत्ति भी करता है। इसी प्रकार अन्य द्रव्य। विशेष गुण वाले द्रव्य तो आशु अपनी क्रिया को कर देते हैं। तिक्त रसवाले अहिफेन का कर्म रूक्ष गुण बढा कर गल ग्रथि का रस स्रवण कम कर देते हैं और रूक्षता उत्पन्न करते हैं। यही नही मुख रूक्षता-शुष्कता के साथ वह मुख शोष और कंठावरोध भी करता है। यहा पर रूक्षगुण के अतिरिक्त अपने कषाय रसाभाव की तीव्रता से कठ शोष की मात्रा वृद्धि बढाता है और रक्त मे शोषित होकर नाड़ियो पर विषाक्त प्रभाव क्रिया हानि भी प्रकट करता है। विष जातीय होने से द्रव्य अपने विशेष द्रव्य गुण से विषाक्तता प्रकट करता हैं और शरीर पर उसके लक्षण तीव्र हो जाते हैं जब कि कम मात्रा मे वह कास श्वास की कमी करता है विशेष मात्रा मे मारक हो जाता है। इसी प्रकार मद्य भी शरीर मे कम मात्रा मे जहा वह आहारवत गुण करता है अपने विशेष मात्रा मे हानि कर हो जाता है। रक्त पूर्वक वह शरीर के साथ मिल कर मादक कर्म करता

है व विष मारणकर्म करता है। मादक द्रव्य भी मात्रा मे मादक कर्म के अतिरिक्त मारण भी करते हैं। यह उनका अपना विशेष गुण है जो शरीर के धातु गुणो से विपरीत पडता है। यथा–मद्यरक्त पूर्वक शरीर मे प्रविष्ठ होकर शारीर ओज के दश गुणो के विपरीत अपनी क्रिया करके मूर्च्छा करता है, चेतना शक्ति का नाश करता है।

द्रव्य के आत्म गुण का इससे विशद विवरण नही मिल सकता। यथा–

मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान्। दशभि दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम्। लघूष्णो तीक्ष्ण सूक्ष्माम्लव्यवायाशुग मेव च। रूक्षं विकाशि विशदंमद्य दश गुणं स्मृतम्। गुरु शीत मृदु स्निग्धं वहलं मधुरं स्थिरम्। प्रसन्नं पिच्छिलं श्लक्ष्णं ओजो दश गुणं स्मृतम्॥ च वि २०। २९। ३

इसी प्रकार विष के भी गुण ओज के विपरीत होने से वह मारक गुण करता है। यथा–विष मे लघु, रूक्ष, आशु, विशद, व्यवायि, तीक्ष्ण, विकाशी, सूक्ष्म, उष्ण व अनिर्देश्य यह दश गुण होते हैं इसके वल पर वह शरीर के ओज गुण के विपरीत कार्य करके मारक हो जाता है। आशु गुण वाले द्रव्य इस प्रकार ही अपने विशेष गुणो से विपरीत गुण का नाश कर मारक होते हैं। यह क्रिया गुणो की उग्रता, तीक्ष्णता, व्यवायि व विकाशि गुण के कारण होती है व्यवायि विकाशी गुण तो द्रव्य मे विकृति होने के पहले कार्य कर देता है। तव पाचन होता है। अत शरीर गुणो के विपरीत आने पर मृत्यु तक हो जाती हैं। यह द्रव्य की अपनी विशेषता है। ऐसे ही द्रव्य द्रव्य मे गुणान्तर होता है। यही कारण है कि द्रव्य दोष धातु व मल पर विशेष कार्य करते हैं। परिणाम कर्म के रूप मे प्रति फलित दिखाई पडता है। इस प्रकार से द्रव्य शरीर मे जाकर अपने अपने गुण से अनुकूल व प्रतिकूल कर्म एक साथ ही करते है। शरीर के वस्तु जिनकी क्रिया विशेष रूप से धातुओ की अपेक्षा सक्रिय होती है प्रथम अपने गुण को ग्रहण करते हैं इसके वाद धातु क्रिया होती है। इस विशेषता के आधार पर ही इन्हे दोष व दूष्य कहा जाता हैं।

वात पित्त व श्लेष्म शरीर के निर्माता होने के कारण सबसे पहले इन गुणो से प्रभावित होते हैं क्योकि इनमे अपने भी गुण हैं जो कि द्रव्य गुण के गुण की तरह हैं। अत शीघ्र प्रभावित होते हैं। २० प्रकार के गुण शारीर द्रव्य वात पित्त व श्लेष्म मे हैं व अधिक गुण भी हैं उन पर प्रभाव तत्तद गुणान्वित होने से प्रथम प्रभावित होता है। क्योकि वह शरीर मे रहता है और द्रव्य शरीर सपर्क के गुण के आते ही वह अपना कार्य सामान्य व विशेष करता है। एक साथ ही यह कार्य होते है। यथा—

वात के गुण–रुक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, खर।

पित्त गुण–उष्ण, तीक्ष्ण, विस्र, द्रव व सहिष्णुता।

श्लेष्म गुण–स्निग्ध, श्लक्ष्ण, मृदु, सान्द्र, स्तिमित, पिच्छिल, अच्छ–मन्द सार, शीत आदि।

इन गुणो के कारण शरीर धातुओ के निर्माण मे यह विभिन्न गुण करते है। यथा--इन २० गुणो के अतिरिक्त इनमे अपने विशेष गुण भी रहते है जिनके आधार पर ये अपने अपने गुणो को विशेष ग्रहण करते है। यथा–वात मे—चलत्व शीघ्र कर्मत्व वहु गुणत्व आदि। इसके आधार पर अपने गुणो को शीघ्र लेता है और पित्त व श्लेष्म से कर्म कर्तृत्व मे अग्रणी रहता है। इन गुणो के साथ यदि कटु रसात्मकता उस द्रव्य मे हुई तो यह आशु कर्म कर देता है। पित्त . सब गुण शीघ्रगामी बनने वाले है परन्तु वह सहिष्णु गुण के कारण वात से कुछ कम सक्रिय होता है। विस्र गुण व तीक्ष्ण गुण होने से यह कटु रस व अम्ल रसवाले द्रव्यो के साथ शीघ्र कर्म करके उष्णता, तीक्ष्णता व अन्य उग्र गुणो को कर देता है।

श्लेष्म मे–अन्य प्राकृतिक गुणो के अतिरिक्त अच्छ निर्मल आकर्षक व मधुर रसानुकूल कर्म कृत होने से शीघ्र अपना कार्य करता है। इस प्रकार यह अपने गुणो मे विशेषता रख कर कार्य करते है ये गुण जब भी अधिक हो जाते है शरीर गुणो की वृद्धि व विपरीत गुणो की हानि करके शरीर को रोगी व निरोगी बनाने वाले होते है। च वि. । ९६।९७।९८ मे यह कार्य विशेष रूप मे वर्णित है। विशेष रोगो की उत्पत्ति मे इन गुणो पर प्रभाव देखते है। यथा–प्रमेह मे २० गुणो के आधार पर १० श्लेष्मज प्रमेह, ६ पित्तज व चार वातज प्रमेह होते हैं।

चिकित्सा मे अधिकाश कार्य गुणो के आधार पर ही सपादित होता है। विपरीत गुण वाले द्रव्य दोषो को शात करते है। यथा—

विपरित गुणं द्रव्यै देश कालोपपादितै।
विकारा विनिवर्तन्तेभेषजै' साध्य सम्मताः। च सू १।६२

इस प्रकार गुण कर्म कराने मे हेतु होते है। द्रव्य अनादि हैं और उन के गुण भी अनादि है, द्रव्य व गुण का नित्य सबध है अत समान से वृद्धि व विपरीत से क्षय होता है। चरक की युक्ति इस विषयमे अत्यत युक्ति और विचारणीय है।

भाव स्वभाव नित्यत्वाच्च। गुरु लघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षादीनां द्रव्याणां सामान्य विशेषाभ्यां वृद्धि ह्रासौ भवत। गुरुभिरभ्यस्य मानैर्गुरुणामुपचयो भवति अपचयो लघूनामिति। एषभाव स्वभावो नित्य स्वलक्षण च पृथिव्यादीनां द्रव्याणां संति तु द्रव्याणि गुणाश्च नित्यानित्या। च सू ३०।२७

विपरीत गुण वाले कर्म विशेप करके रस सन्निपात होने पर जब कि एक साथ कई द्रव्य प्रयुक्त होते है अपना समवेत कार्य करते हैं तो वहा पर अधिक रस व गुणवाले द्रव्य अपने समवेत गुण के कारण विशेष मात्रा जिस गुण की रखते है तदनुकूल कार्य हो जाता है। यथा—

तत्र खल्वनेक रसेषुद्रव्येष्वनेकदोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोषप्रभाव-मेकैकश्येनाभि समीक्ष्य ततो द्रव्यविकारयो प्रभावतत्व व्यवस्येत्। च वि १।९ .

अत. गुणो का कर्म अपने अपने गुणों के अनुकूल यथा मात्रा, समय, देश, काल व पात्र तथा अधिकरण पाकर हो जाता है। यही क्रम जब विशेष रासायनिक रूप मे होता है तब वह विचित्र रूप मे प्रति फलित होता है और कभी प्रभावज कभी विपाकज व कभी वीर्य जनित कहलाता है। ये गुण २० प्रकार के हैं और अपना विशेष कर्म करते है। इनका दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करूगा। यथा——

१. रूक्ष—रूक्ष गुण शरीर मे स्निग्धता की कमी व रूक्षता की वृद्धि करता है। अत स्निग्ध कर्मा जितने अग हैं उन सबका कार्य कम कर देता है। सातो धातुओ मे प्रत्येक मे स्निग्धता है। यह स्निग्धता रस व रक्त पूर्वक शरीर मे पहुचाई जाती है। जितने शरीर की श्लेष्मल कला है उन पर प्रभाव डालता है। मुख मे जाते ही वह मुख की कलाओ का कार्य कम करता है। जल-वाही स्रोतसो का भी प्रभाव कम करता है। गले कठ मे इस प्रकार से रस की कमी से मुख शोष होने लगता है। धातुओ मे रस नही पहुचने से तृषा की इच्छा होती है।

२. स्निग्धता की कमी से बलक्षय के लक्षण दिखाई पडते हैं।

३. द्रवावस्था से शरीर मे जो मृदुता रहती है वह कम हो जाती है और कठिनता दिखाई पड़ती है। पेशिया कठिन व तनाव पूर्ण हो जाती हैं।

४. वात की क्रिया जो कि सरलतासे सज्ञा वहन की व अन्य क्रियात्मक होती थी वह नही हो पाती अतः वात की क्रिया उग्र हो जाती है। आंतो मे की क्रिया सम्यक् प्रकार से नही होती अत' क्रियायें उग्र हो जाती हैं।

५. यही अवस्था लगातार बनी रही तो शरीर मे बलक्षय के लक्षण दिखाई पडते हैं।

२ स्निग्धता—स्निग्ध गुण का कार्य शरीर में स्निग्धता की वृद्धि करना है। बिना स्निग्धता के शरीर का कार्य चल नही सकता।

१. शरीर मे श्लेष्म स्निग्धता की क्रिया करके शरीर का धारण करता है। यह स्निग्धता शरीर के प्रत्येक धातु मे होती है वह विभिन्न प्रकार से शरीर को मिला करती है। शरीर की कलाओ के द्वारा शरीर की ग्रथियो के स्रावो के द्वारा शरीर के धातुओ मे रहकर उनमे स्निग्धता व मृदुता को प्रदान करके व प्रत्येक सेल मे प्रोटोप्लाजम के रूप मे विद्यमान रहकर इत्यादि। अत यह शरीर की बल दायक क्रिया के रूप मे काम करता है। बिना स्निग्धता के शरीर के यत्र काम नही कर पाते। अत इसके गुण निम्न हैं।

१. स्निग्धता—शरीर के प्रत्येक धातु मे स्निग्धता की वृद्धि करना प्रत्येक शरीर के सेल मे स्निग्धता रहती है। यह द्रव्य रक्त पूर्वक शरीर मे इसके पोषक वस्तु को देते हैं अत बल प्रद व स्निग्धता दायक हैं। इससे शरीर मे क्रिया सरलता से होती है व क्रमश होती है पोषण मिलता है।

स्निग्धता मिलती है और चिक्कणता की पिच्छिलता की वृद्धि होती है अतः वल प्रद है। इस प्रकार वात की क्रिया को क्रमश चालू करने मे सहायक होता है। नाडिया स्निग्ध रह कर अपना कार्य ठीक करती है यह वात शामक इस अर्थ मे माना जाता है।

स्निग्ध—शरीर के प्रत्येक भाग मे यह स्निग्धता रहती है। रस व रक्त मे विभिन्न प्रकार के प्रोटीन के रूप मे मास मे उसके प्रोटीन के रूप मे, नाडी या नर्व मे उसके प्रोटीन के रूप मे इत्यादि रूप मे शरीर मे स्निग्धता रहती है अतः इसकी अधिकता मे शरीर मे क्रिया ठीक प्रकार चलती है। इसकी कमी मे रूक्षता हो जाती है। यह रूक्षता व स्निग्धता एक शरीरापेक्षी क्रिया है। इसकी साम्यावस्था मे क्रिया ठीक चलती है और कम या अधिकता मे वह ठीक नही चलती। स्निग्धता की अधिकता मे भी शरीर की क्रिया मे वाधा होती है। अत यह शरीर मे वल प्रद कार्य अपनी स्निग्धता के आधार पर करता है।

२. **मार्दव**—शरीर की मृदुता उसके अगावयव की स्निग्धता व समान स्थिति मे रहती है। अत स्निग्धता की पूर्ति मे शरीर मृदु रहता है।

३. **क्लेदन**—शरीर की क्रिया को ठीक करने व सचालन करने के लिये शरीर की क्लिन्न करने वाली कलाओ व ग्रथियो की उद्रेचन शक्ति ठीक होनी चाहिये। अतः ठीक प्रकार से क्लिन्नता होने पर शरीर मृदु व स्निग्ध वना रहता है। अतः "यस्य क्लेदने शक्ति स स्निग्ध" ऐसा मान है।

४. **वर्णकर**—शरीर की स्निग्धता ठीक होने के लिये त्वचा की ग्रथियो का काम पूर्ण रूप से चलना चाहिये। इसके कार्य के ठीक चलने पर त्वचा स्निग्ध रहती है और मृदुता वनती है और मृदुता के आने पर त्वचा का वर्ण उत्तम रहता है, अतः यह वर्ण कर भी होता है।

५. **वृष्यम्**—शरीर की वृषता के लिये उचित मात्रा मे शुक्र मे, मेद मे शरीर मास मे स्निग्धता होना चाहिये। यह तव मिलता है जव आहार मे स्निग्ध गुण वाले द्रव्य रहते हैं। अत. यह शुक्र वर्धक होने से वृष्य है।

६. **श्लेष्म कर व वातहर**—श्लेष्म जाति के द्रव्य स्निग्ध व पिच्छिल मृदु होते है। यह आहार से पचने पर शरीर मे आते हैं और इन गुणो की वृद्धि करते हैं। अत. श्लेष्मकर कहलाते है। स्निग्ध गुण रहने पर वात की रूक्षता कम होती है अत. यह वातहर भी वन जाता है। स्निग्ध द्रव्य गुरु–पिच्छिल–मृदुकर होते हैं अत इस गुण के द्रव्य से शरीर के उस भाव की वृद्धि हो जाती है। अत स्निग्ध द्रव्य शरीर मे वलकृत स्निग्धता वर्द्धक, क्लिन्नता कारक, वृहण व वल्य होते हैं। इस क्रिया को समझने के लिये चिकित्सक को शरीर रचना व क्रिया

विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। शरीर की स्निग्धता की वृद्धि के लिये किन किन यन्त्रो द्वारा कार्य होना है यह जानना चाहिये। यथा—श्लेष्मल कला की क्रिया का ठीक होना, शुक्र ग्रथि की क्रिया का ठीक चलना, गर्भाशय की व उसकी सहायक ग्रथियो का, मज्जा बनाने वाले यत्र, मेद की मात्रा का ठीक होना, रक्त की प्रोटीन का मात्रा मे होना, नाडी धातु के द्रव्य का ठीक बनाना, मस्तिष्क के मस्तुलुग का ठीक मात्रा मे बनना, मांस के स्निग्ध द्रव्य का उचित मात्रा मे बनाना, श्लेष्मल उद्रेचनो का ठीक बनाना आदि आदि। यह सक्षेप मे बतलाया है। इस प्रकार शरीर के द्रव्य जो कि उसकी स्निग्धता व मृदुता को बनाये रहते हैं वह उचित मात्रा मे रहे तो शरीर की स्निग्धता की मात्रा ठीक रहती है। इसके विपरीत यदि इनकी कमी हो जाती है तब इसके विपरीत कार्य होने लगते है और विपरीत गुण रूक्षता की वृद्धि होती है। यह क्षय व वृद्धि एक साथ ही चलते हैं। यदि एक काम अधिक हो जाये तो दूसरा कम हो जाता है। रूक्षता बढ जाती है तो स्निग्धता की कमी हो जाती है। यह स्निग्ध व रूक्ष गुण शरीर के उन द्रव्यो के बनाने वाले यत्रो की क्रिया पर असर डालते हैं जो कि शरीर मे स्निग्ध वस्तु की मात्रा बनाते है। अस्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कौन से यत्र के कार्य पर असर पडेगा।

स्निग्ध रूक्ष—स्निग्ध व रूक्ष गुण विशेष करके एक दूसरे के विपरीत गुण व सगठन वाले है अत ये भिन्न-भिन्न रसो मे रहते है। यथा—

१ **स्निग्ध**—मधुर अम्ल लवण यह स्निग्ध गुण वाले है इनमे मधुर स्निग्धता मे सबमे प्रवर है, अम्ल मध्यम है और लवण स्निग्धता मे अवर है। अत क्रमश ये उत्तम मध्यम व अवर स्निग्धता करते हैं।

रूक्षगुण—रूक्षता मे कषाय सबमे उत्तम है, कटु रस मध्यम है, और तिक्त अवर है। अत इन रसो मे उनके गुणो के आधार पर सब कुछ निर्भर करता है। अत जो द्रव्य मधुर अम्ल व लवण होते हैं वे प्राय स्निग्धता की वृद्धि व जो द्रव्य कषाय कटु व तिक्त होते हैं वे रूक्षता की अधिक वृद्धि करते हैं इस प्रकार से द्रव्य का विभाजन इस आधार पर कर लेते है।

गुरु व लघु गुण—प्रत्येक द्रव्य मे गुरुता व लघुता होती है। वह मात्रा पेक्षी होती है। कोई द्रव्य कम गुरु होता है। अत इनका युग्म है। जो द्रव्य गुरु गुण वाला होगा वह जो कुछ करेगा उसके विपरीत लघु गुण करेगा।

गुरु गुण—गुरु गुण मे निम्न कर्म करने की क्रिया होती है। यथा .

१. अवसाद २. उपलेप ३. बलकृत ४ बृहण ५ तर्पण ६. वातहर और ७ चिरपाकी।

अवसाद–सामान्य रूप से अवसाद की क्रिया तव होती है जबकि शरीर मे स्निग्ध गुण वाले अश बढ जाते हैं। श्लेष्म के कर्म मे मद व स्थिर गुण होने से यह जब ही वढ जाता है तव ही स्निग्धता की मात्रा बढ जाती है और शरीर मे अवसाद की क्रिया उत्पन्न हो जाती है। यह अवसाद दो प्रकार का होता है एक वह जो कि द्रव्याविक्य से उत्पन्न होता है, आहार जन्य द्रव्य की वृद्धि से। दूसरा वह जो कि द्रव्य द्वारा क्रिया ऐसी उत्पन्न की जाय जो कि शरीर में स्निग्धता की वृद्धि करने वाले अगो को उत्साहित करे और तत् स्वरूप क्रिया कर नाडी केन्द्र पर प्रभाव डालकर के शारीर क्रिया को कम कर दे। अत शरीर के सक्रिय करने वाले तत्व श्लेष्म को बढा देने से क्रिया मद हो जाती है और पित्त केन्द्र को उत्तेजित करने वाले अगो की क्रिया को उत्ते-जित करके सक्रियता वढा देते है।

आहार द्रव्य मे स्निग्धता व गुरुता युक्त होने पर अवसाद हो जाता है। और औषधि मे स्निग्ध गुरु व शीत गुण वढ जाने से अवसाद हो जाता है। इससे क्रिया शैथिल्य होकर अग क्रिया कम हो जाती है।

उपलेप–गुरु गुण वाले द्रव्य के सेवन से धातु व मल की वृद्धि होती है।

वलकृत–जव शरीर मे धातुओ की वृद्धि होती है तब वल बढता है।

बृहण–शरीर बढाने की क्रिया का नाम बृहण है अत ये द्रव्य जब मात्रा मे वढ जाते है तब मास धातु की मात्रा अधिक हो जाती है। अत बृहण की क्रिया होती है।

तर्पण– तर्पण उस क्रिया को कहते है जब कि शरीर के प्रत्येक अग मे उनके पोषक अश मिलते है अत आहार व विपाक पूर्वक यह कार्य होते हैं।

वातहर–जब गुरु गुण वढ जाता है तब वात दोष की हानि हो जाती है। और इस अवस्था को वातहर क्रिया के नाम से पुकारते हैं।

चिरपाकी—गुरु द्रव्य देरी से पाचित होते है।

गुण क्रिया–

लघु गुण वाले–इनका कार्य शरीर मे निम्न हुआ करता है। यथा

१ प्रसादन २. लेखन ३. कर्षण ४. कफक्षयकर ५. मल ह्रास कर ६. अपतर्पण और ७ शीघ्रपाकी।

प्रसादन कर्म–प्रसादन कर्म शरीर मे लघु गुण वाले, रूक्ष गुण वाले, द्रव्य के अधिक हो जाने पर हो जाते हैं। यथा

१. शरीर मे जव सक्रिय तत्व पित्त धातु की वृद्धि हो जाती है तव लघु क्रिया उत्पन्न हो जाती है शरीर मे पित्त तत्व को उत्पन्न करने वाले अग भिन्न–भिन्न है अत उनकी क्रिया का प्रसादन होता है। पित्त तत्व का वढना कफ अश की क्रिया का कम होना है। कफ व पित्त यह दोनो शरीर की क्रिया करने वाले तत्वो की उत्पत्ति करते हैं अत जैसे ही एक क्रिया करने वाले शारीर द्रव्याश बढते है दूसरा अपना कार्य कर देता है अत. गुरु व लघु क्रिया भी साथ ही

साथ होती है वह चाहे आहार के द्रव्य के द्वारा हो या वह औषधि द्रव्य या शरीर की स्थिति के अनुकूल होती हो। यह सदा साथ साथ होती है।

लेखन–शरीर मे जब वृद्धि कर द्रव्य कम हो जाते हैं और दूसरे विपरीत तत्व बढ जाते हैं तो शरीर इस तत्व की वृद्धि करता है। तीक्ष्ण व कटु तिक्त कषाय द्रव्यो से यह क्रिया उत्पन्न होती है चाहे वह शरीर द्रव्य की उत्पत्ति करा करके हो या बाहर से ऐसे द्रव्य शरीर मे आ जाये अत लघु गुण वाले द्रव्य शरीर मे जाकर गुरु गुण की शक्ति कम कर देते है तब लघु गुण यह कार्य करता है। औषधि तत्व से शारीरिक उन तत्वो की वृद्धि होती है जो कि इनके कार्य कर द्रव्य उत्पादन करते हैं। लघु गुण व रूक्ष गुण वाले द्रव्य यह कार्य करते हैं। लेखन का रूप किसी वस्तु की कमी का है। मास लेखन मे मास की कमी का अर्थ होता है। यह दो प्रकार का है। सीधे मास पर कटु तीक्ष्ण द्रव्य फिटकरी आदि के, तुत्थ के लगाने से मास की वृद्धि रुक जाती है। यह उसका लेखन है। गुरु गुण से वृद्धि व लघु गुण से कमी का ही विशेष रूप इसमे है।

अपतर्पण–जब धातु कम बनते है तब उनका आप्यायन नही होता और शरीर धातु का अश कम बनता है और अपतर्पण का रूप धारण करता है।

अचिर पाकी–लघु द्रव्य शीघ्र पाचित हो जाते हैं।

मल ह्रासक–जब शरीर से निकलने वाले द्रव्य कम होते है तब मल का स्राव कम होता है।

रस–मधुर कषाय व लवण रस वाले द्रव्य गुण गुण की क्रिया करते हैं। और अम्ल कटु तिक्त यह लघु होते है। इन रस वाले द्रव्यो मे गुरु व लघु गुण विशेष मात्रा मे व क्रमश अधिक मध्यम व कम होते हैं। मधुर रस वाले द्रव्य के खाने के साथ ही शरीर शिथिल हो जाता है। देर मे पचता है बल वृद्धि करता है। मल का सरण करता है। इसके विपरीत अम्ल व कटु रस वाले द्रव्य शीघ्र पच जाते हैं और शरीर मे लाघव पैदा करते हैं, जल्द पच जाते हैं या शरीर को कर्षित करता है। शरीर मे गुरु व लघु गुण उत्पन्न करने वाले अग हैं जो कि इनका उत्पादन करते हैं और मात्रा कम या अधिक होती है अधिक होने पर शरीर की वृद्धि होती है और गुरु गुण की कमी पर शरीर मे कर्षण होता है। इस प्रकार से यह तत्व शरीर मे काम करते हैं।

पित्त के उत्पन्न करने वाले अश लाघव व कफ की वृद्धि करने वाले द्रव्य गुरुत्व की मात्रा बढाते हैं। मधुर वस्तु आदमी अधिक खा जाता है और उससे शरीर के धातु बढते हैं। कटु रस कम खाया जाता है और शरीर के पोषक तत्व कम बनते है। मधुर रस वाले कफ बढाते है और कटु रस वाले पित्त। अत. सरलता से एक सिद्धान्त बनाया जाता है कि यह गुरु व लघु है।

कटु रस वाले पाचक रसो की वृद्धि करते है और पाचन क्रम को बढा देते हैं।

शीत व उष्ण–

शीत व उष्ण गुण यह एक दूसरे के सापेक्ष हैं। जब उष्णता उत्पन्न करने की क्रिया कम होती है तो उसका कार्य एक नियत मात्रा के बाद शीत कहा जाता है। शरीर मे आहार द्रव्य पच करके शरीर के सपर्क मे आकर के शरीर की उष्मा बढाते हैं। जो कम उष्मा बढाते हैं उनको शीतल कहते हैं। यह आहार द्रव्य की स्थिति पर निर्भर करता है कि द्रव्य मे कैसे गुण वाले तत्व है। यदि गुरु व स्निग्ध गुण वाले हुए तो वह एक विशेष प्रकार की उष्मा बनाता है और स्निग्ध पदार्थ उष्ण माने जाते हैं। गुरु व पिच्छिल द्रव्य शीत गुण की उत्पत्ति करते हैं। अतः निम्न क्रिया शीत व उष्ण से होती है। यथा–

उष्ण–उष्ण द्रव्य शरीर के भीतर जाकर उष्णता उत्पन्न करता है। अधिक होने पर दाह करता है। पसीना लाता है। पाचन कर्म मे सहायक होता है। इसके निम्न प्रधान कर्म हैं–

१. पाचन करना। २ शरीर मे उष्मा पैदा करना। ३. शरीर मे खाये अन्न का परिणमन करना। ४. रक्त सवहन मे तीव्रता लाना। ५. स्वेद लाना। ६. तृषा मूर्च्छादाह उत्पन्न करना आदि।

शीत गुण–शीत गुण शरीर का पोषक गुण है। अत उष्मा की कमी करना, दाह को कम करना, ह्लादन, स्तमन, स्वेद हर, पित्त शामक, वातकफ-वर्द्धक प्रभाव देखने मे मिलते है।

विवेचन–शीत व उष्ण गुण शरीर मे कार्य करने वाले अगो की क्रिया पर निर्भर करता है। आहार द्रव्य जब शरीर मे जाकर परिणमित होते है तब शरीर मे एक नियत मात्रा की उष्मा बनती है ये आहार द्रव्य व वनौषधि द्रव्य अपना कार्य इस क्रिया को करने वाले शरीर के अग पर अपना प्रभाव डाल कर उष्मा की वृद्धि करते है। यही विशेष रूप मे उष्म कृत भाव व शीत कृत भाव हैं। बाहर के आहार से और शरीर मे शरीर क्रिया के द्वारा यह उत्पन्न होता है। शारीर कार्मुक गुण तो आहार परिणमन के बाद शरीर मे उष्मा की वृद्धि से होते हैं।

उष्मा–यह त्वचा की क्रिया, मास पेशी की क्रिया, यकृत की क्रिया तथा पित्त उत्पादक अंगो की क्रिया द्वारा मिलती है अत जो द्रव्य इन अगो को सक्रिय करके शरीर उष्मा बढाते हैं वह ही उष्ण गुण वर्द्धक होते हैं। जो कम उष्मा बढाते है वह शीत गुण वाले होते हैं।

उष्ण गुण–इसकी विभिन्न क्रियाओ का वर्णन मिलता है। जिनमे मुख्य ऊपर कहे गये हैं। शरीर की उष्मा पर आहार व औषधि का भी प्रभाव होता है। यह प्रत्यक्ष रूप मे या अपरोक्ष रूप मे अपना कार्य कर उष्म केन्द्र पर प्रभाव डालते हैं और उष्णता बढ़ जाती है।

कस्तूरी, अम्बर, मकरध्वज रस सिन्दूर आदि द्रव्य उष्मा को बढा देते हैं और उशीर, सप्तपर्ण, इन्द्रयव, चिरायता यह उष्मा को कम कर देते है। इस प्रकार सीधे केन्द्र पर प्रभाव डालकर या आहार द्रव्य की उष्मा जनक मात्रा पाकर उष्मा बढाकर द्रव्य उष्ण या शीत कार्य करते हैं।

उष्मा से—उष्ण द्रव्य पाचनकृत होते हैं, आहार पचाने का काम करते है। इसी प्रकार के द्रव्य स्वेद लाना, पसीना पैदा करना, आहार परिणमन करना। अत स्नेहन, वृहण, मेधा, वुद्धि कर कार्य करते हैं।

शीत द्रव्य अपने गुणो से वह तृष्णा, मूर्च्छा-प्रशमन, निद्रा-कर, मोह नाशन आह्लादन आदि कार्य करके शरीर को सुखी बनाते है। उष्ण ऋतु मे शीतप्रियता व शीत ऋतु मे उष्ण कामिता की वृद्धि अपने आप हो जाती है। अतः समझ बूझ कर इनका विवरण देना चाहिए। गुण विज्ञान में इसका विवेचन किया गया है। पाठक वही देखे।

तीक्ष्ण व मृदु गुण—

तीक्ष्ण व मृदु यह भी सापेक्ष गुण हैं। तीक्ष्णता की कमी व वेशी का नाम इन दोनो नामो मे विभाजित हैं। द्रव्य के दो पहलू हैं सक्रिय होने के बाद कम क्रियाशील होना या अधिक क्रियाशील होना। इनका विभाजन इस रूप मे होता है।

तीक्ष्ण गुण—यह गुण देखा नही जाता परन्तु वह अनुमान के द्वारा ज्ञात हो सकता है। सुश्रुत कहते है कि—

"कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते द्रव्याणामगुणागुणा ।"

अत पूर्व की तरह से इसके उत्पन्न गुण का अध्ययन करे तो उचित निर्णय पर पहुच सकते है।

शीघ्र कारित्व—सर गुण का कार्य क्रियाशीलता उत्पन्न करना है। यह गुण जव अधिक हो जाता है तव तीक्ष्ण गुण की क्रिया उत्पन्न हो जाती है। "शीघ्र कारित्व तीक्ष्णत्वम्—' ऐसा विचार प्राचीन लोगो का है। अत. कार्य मे तीक्ष्णता व उग्रता लाना तीक्ष्ण का कार्य है। यह अपनी उग्रता के कारण से शरीर पर कई प्रकार के लक्षण उत्पन्न करता है। यथा—वेदना व कई प्रकार कर्म मे उग्रता लाना। यथा—वमन व विरेचन मे। अत अत व वाह्य प्रयोग मे यह अपना कार्य शीघ्र करता है। यह निम्न रूप मे क्रमश अपना कार्य करते हैं।

२ **स्रावण**—शरीर के जिस भाग का तीक्ष्ण द्रव्य सपर्क करता है वह उसके ऊपर शीघ्रता करके प्रथम सक्रिय करने वाले अग से स्राव निकलता है। श्लेष्मल कला के सपर्क मे आकर वह मुख की कला से स्राव कराता है और अन्य से भी इसी प्रकार कार्य कराता है। यही नही, यह कोष्ठ ग्रथियो से भी कार्य कराता है। कटु रस तीक्ष्णता प्रधान होते है अत. इसके लेते ही मुख से स्राव तो होता ही है वह आख, नाक व कान से तथा लाला ग्रंथियो से भी स्राव

कराता है। जहा जहा शरीर मे जाता है वह उस स्थान की कला से स्राव करा कर इसकी तीक्ष्णता का परिचय देता है।

दाह—जब स्राव अधिक तीक्ष्ण होता है और उसका प्रभाव कला के अतिरिक्त अन्य नाडियो पर भी प्रभाव कर के स्थानिक उग्रता का रूप धारण करता है तब वहा पर जलन या दाह का स्वरूप बनता है। तीक्ष्ण द्रव्य त्वचा के सपर्क मे आते ही अपना प्रभाव दिखाते हैं। अत. उत्तेजन या इरिटेशन (Irritation) उत्पन्न होता है इसकी मात्रा का अधिकतम होना दाह का स्वरूप है।

उत्तेजन व लेखन—कार्य इस प्रकार उत्तेजन होकर के वहा पर जो उग्रता पैदा करता है वह स्राव की उत्पत्ति करके वहा के कुछ द्रवद्रव्य को निकालता है। उसका क्षोभन करता है। अत परिणाम स्वरूप लेखन क्रिया हो जाती है। स्निग्धता की कमी व कुछ उग्रता से तीक्ष्ण द्रव्य वहा की कला मे क्षोभकत्व करके उग्रता से लेखन भी करते है। लेखन मे क्षोभ व किसी स्थानीय वस्तु का निर्गमन यह दोनो ही मिश्रित हैं।

पाक—जब दाह की मात्रा अधिक हो जाती है तब वस्तु विशेष पर सीधे प्रभाव पड़ता है वह स्फोट कर व पाक कर होकर दृष्ट होती है। अत. इसका नाम भी इसी रूप मे लिया जाता है।

शोधन—शोधन का अर्थ सामान्य रूप से स्थान से कुछ दुष्ट द्रव्य को निकालना है। स्रावण व पाचन के रूप मे यह कार्य होता है। मल मूत्र का निष्काशन होता है या इसी प्रकार के अन्य कार्य भी होते है। यह शोधन कर्म कहलाते हैं। हेमाद्रि ने '**यस्य शोधने शक्ति स तीक्ष्ण**" कहा है। दोषो मे पित्त के ऊपर अपना प्रभाव करने के कारण यह उग्र क्रिया कर, शारीर तत्व पित्त पर अपना प्रभाव डालता है। अत. विपरीत शारीर द्रव्य दोष मे वात व कफ का प्रशम होता है।

मंद—तीक्ष्ण के ठीक विपरीत मद गुण है यह कार्य सामान्य रूप मे होता रहता है। जब सुश्रुत ने "**मंद यात्राकर स्मृत**" लिखा तो स्पष्ट है कि यह यात्राकर नाम की गतिशीलता सामान्य गति की है न कि तीक्ष्ण गति की। अत. परिभाषा मे यह कहना पडता है कि—

मद—जो द्रव्य शरीर मे जाकर के द्रव्य का कार्य सामान्य रूप मे लाते हैं वह मद कहलाते है। यह क्रमागत क्रिया है जो कि नियमित रूप मे होती है। यह सिस्टेमिक क्रिया कहलाती है। तीक्ष्ण जहा पर अपने प्रभाव को सीधा प्रयोग मे लाता है वहा पर यह नियमित गति शीलता उत्पन्न करके लाता है। अत यह दोष धातु व मल पर अपना प्रभाव निम्न रूप मे करता है। चिरकारित्व क्रिया शरीर मे द्रव्य प्रयोग के बाद जब उत्पन्न होती है तब वह क्रमश होती है। धातु निर्माण दोष की उत्पत्ति व क्रमश मल की उत्पत्ति जो होती है वह

नियमित गति के रूप मे होती है। इस नियमित गति मे भी शिथिलता करना कुछ लोगो का अभिप्राय है। अत: भावमिश्र ने लिखा कि—**मंद: सकल कार्येषु शिथिलो अल्पो मदोऽपि जायते।** भा० प्र०। अत उसकी स्वाभाविक क्रिया से कमी का भी अर्थ लिया जाता है।

चिकित्सा मे मद कार्य कभी कभी क्रिया स्थैर्य के लिये भी किया जाता है। जिन द्रव्यो की क्रिया शीघ्र हो जाती है और चिरस्थायी नही होती उनकी क्रिया को चिरस्थायी वनाने के लिये मद का आश्रय लिया जाता है। यथा—अहिफेन सखिया या अन्य द्रव्य की क्रिया को उपदश आमवात मास स्थिर करने के लिये अल्प मात्रा मे व अन्य द्रव्य मिलाकर काम मे लेते हैं। वत्सनाभ आदि विषावत औषधियो के कर्म को तीक्ष्ण होने से वचाने के लिये हमे इसके साथ अन्य ज्वरघ्न या वेदना हर, चिरकारी, मद गुण वाले द्रव्य का मेलन करना पडता है।

आज भी जव हमे पेनीसिलीन या अन्य वस्तु इनस्यूलिन की क्रिया स्थायी वनाने के लिये यही उपाय वरतना पडता है। यथा—पेनीसिलीन कार्य काल २४ घटे रहता है। उसको मद क्रिया करने के लिये मद गुण युक्त अल्प सक्रिय द्रव्य आर्चिस आयल (Orchis oil) या अलव्युमिनम इस्टेट का सम्मेलन करते हैं। इनस्यूलिन के कर्म को भी मद करने व देर तक चालू रखने के लिये हमे लेटे–इनस्यूलिन व प्रोटोमिन–जिंक–इनस्यूलिन का प्रयोग करना होता है। कुछ द्रव्य स्वाभाविक रूप मे मद क्रिय होते हैं। यथा––सेल–खरी, दुग्ध–पाषाण। इनके साथ अन्य द्रव्य मिला लेते हैं। यथा—विसमथ मद क्रिय है तो इसके प्रयोग का लाभ उठाने के लिये चिकित्सक सखिया जैसे तीक्ष्ण कर्मा द्रव्य को इसके साथ मिला कर मास गत इजेक्शन देते है और वह उस कर्म को धीरे धीरे चलाता है। साथ ही साथ सखिया का भी कार्य चलता है।

फिरग मे इसी प्रकार से कार्य करते है। आर्सेनो–वेजोल का कार्य भी इसी प्रकार चिरस्थायी वनाने के लिये होता है। पचामृत सत्व का या सखिया का भी प्रयोग वशलोचन या द्राक्ष शर्करा के सयोग से धीरे धीरे नित्य प्रयोग करके कार्य लेते है। शरीर मे यह कार्य मद क्रिया के द्वारा सपादित की जाती है अत वृहण, स्नेहन व स्तमन कार्य मे इस प्रकार के कार्य शरीर लेकर कार्य करता है वह धीरे धीरे शरीर मे द्रव्य मास आदि के या शुक्र के स्तभन का कार्य कराते हैं। अत सौम्य वर्ग की क्रिया मे इसका प्रयोग खूब होता है। जहा पर तीव्र क्रिया की आवश्यकता होती है तीक्ष्ण की क्रिया व जहा क्रमागत कार्य का आश्रय लेना होता है वहा पर मद सक्रिय द्रव्य का कार्य लेना उचित होता है। धीरे धीरे शरीर को सक्रिय वनाने के लिये व शरीर मे उग्र औषधि को भी मर कर कार्य कराने के लिये इस द्रव्य की आवश्यकता होती है। अत तीक्ष्ण व मद गुण वाले द्रव्य का कार्य व्यवहार मे आता है।

स्थिर व सर गुण—

स्थिर व सर गुण यह शरीर के कई भागो मे रह कर कार्य करते है। जितने अग के भाग स्थिर हैं जैसे मास अस्थि मस्तुलुग मज्जा शुक्र सबमे यह गुण होता है इसके आधार पर इनका सग्रह धीरे धीरे होता है और यह शरीर मे स्थायी बने रहते हैं किन्तु जब शरीर मे क्षयावस्था आती है तो ये धीरे धीरे शरीर रक्षा के लिये काम मे आते है। अत स्वाभाविक काल मे जो जैसे रहते हैं उनका कार्य आत्ययिक काल मे भी वैसा ही बना रहता है।

स्थिर गुण—स्थिर गुण का प्रधान कार्य शरीर का धारण है। यह हेमाद्रि ने लिखा है। अत. इस गुण वाले द्रव्य का कार्य वात सस्थान के ऊपर पडता है जिसका कि चल गुण है। स्थिर गुण के कारण शरीर की क्रियायें सप्त धातु के निर्माण काल में अपना कार्य धीरे धीरे करके क्रमश इसकी पूर्ति करते है उत्तरोत्तर धातु बनते जाते है। वात की क्रिया को नियमन करने के लिये इस गुण वाले द्रव्य का होना आवश्यक है। इसकी कमी से वात की क्रिया उग्र हो जाती है और अधिक देर तक इस गुण वाले अर्थात् सरगुण वाले द्रव्य के मिलने पर वात की क्रिया बढ़ जाती है।

अत· स्थिर व सरगुण एक साथ ही अपना कार्य करते हैं। जहा पर स्थिर गुण का कार्य है वह काम करता है जहा पर सर की आवश्यकता है उसका कार्य होता है। अत वात के बाद मल के निर्माण मे भी इसका स्थायी कार्य होता है। इसके प्रभाव से शरीर के मल भी नियमित रूप मे बनते हैं। अत. स्थिर व सर गुण उन अगो पर जहा स्वाभाविक कार्य स्थिर व सर का है, अपना प्रभाव डालते है। महास्रोतस मे यह स्वाभाविक कार्य चलता है अतः वात व मल के ऊपर इसका स्तभ व सर गुण चलता है। महास्रोतस मे सर गुण वाले द्रव्य के प्रयोग से सरता बढ जाती है और स्थिर गुण वाले द्रव्य ईसबगोल व गोद कतीरा देने पर मल का सरण धीमा हो जाता है और उग्रता कम हो जाती है। अत जहा पर स्थित गुण शरीर के बृहण के लिये होता है सरगुण वाले विरेचक द्रव्य उसकी गति बढा देते हैं।

सरगुण वाले द्रव्य—

सर गुण वाले द्रव्यो का कार्य विशेष रूप मे स्थिर के विपरीत होने के कारण **"सर्वत प्रवृत्ति शीलत्वं"** माना जाता है। हेमाद्रि ने भी जिसकी प्रेरणा मे शक्ति होती है उसको सर माना है। **"यस्य प्रेरणे शक्ति स सर ।"** सुश्रुत ने **सरो अनुलोमनो प्रोक्तः** ऐसा लिखा है। अनुलोमन भी प्रेरण कर्ता माना जाता है। अत जितने प्रेरक कार्य वाले द्रव्य हैं वह सब के सब सर माने जाते हैं।

विरेचक द्रव्य, वमन द्रव्य यह सब सरत्व गुण वाले हैं। नाडियो की क्रिया शीलता के लिये सर द्रव्य का प्रयोग होता है और उनकी क्रिया की उग्रता को कम करने के लिये स्थिर गुण वाले द्रव्य का प्रयोग होता है। जिनमे स्थिर गुरु मद गुण है नाड़ी की क्रिया की तीव्रता को कम करते है। अहिफेन वत्सनाभ

पारसीक यवानी का इसके इस गुण से नाड़ी की क्रिया मन्द व [illegible] की कमी करते हैं और यह क्रिया [illegible] की वृद्धि करते हैं। दिन दिन के आहार द्रव्य में भी गुरु द्रव्य आहार की धारण [illegible] रखते हैं सब बातें इनकी वृद्धि करते हैं जैसे [illegible] के पारसीक के द्रव्य अतः गुरु त्याग अपेक्षा [illegible] गुण में अधिक होता है।

इस प्रकार से ये द्रव्य शरीर की क्रिया के अलावा कार्य [illegible] की वृद्धि व स्थिर रखने में सहायक हैं।

मृदु व कठिन गुण—

यह गुण शरीर के धारण के लिये अत्युपयोगी है। शरीर की क्रिया में जैसे नित्य क्षय व वृद्धि होती है कठिन व मृदु गुण वाले द्रव्य स्वस्थावस्था में व रुग्णावस्था में दोनों काल में अपना प्रभाव दिखाकर कार्य करते हैं।

मृदु गुण—मृदु गुण वाले शरीर के भावों में अधिष्ठान भाग हैं। मृदुता के बने रहने पर शरीर के प्रत्येक पुद्गल में मार्दव रहता है। इसके विपरीत कठिनता आ जाती है। अतः मृदु कार्य कर द्रव्य शरीर में मार्दव लाते हैं। स्निग्ध वस्तु गुरु व पिच्छिल वस्तु का साथ मार्दव कर होते हैं। पेशी में, स्नायु में, नाड़ी में मार्दव होना शरीर की स्वाभाविक स्थिति में रहते हैं यदि इसके विपरीत क्रिया हो तो या शरीर में कठिन द्रव्य का प्रभाव हो तो शरीर रूक्ष व कठिन हो जाता है, त्वचा फट जाती है और रूक्षता [illegible] की वृद्धि होती है।

अतः यह मृदु द्रव्य शरीर में मृदुता लाते हैं और नाड़ी की या शरीर की क्रिया की उग्रता को कम करते हैं। अतः हेमाद्रि ने "यस्य ह्लसमने शक्तिः स मृदु ।" कहा है।

धातु—मृदु धातु पर कार्य कर उनकी गति मंद करता है। कोमलता व शिथिलता लाता है। उनकी उग्रता व तीक्ष्णता कम करता है।

दोष—कफ मृदु दोष में है अतः इसका यह प्रेरक व सहायक है।

कठिन गुण द्रव्य—कठिन गुण वाले द्रव्य शरीर के अंगो में जाकर के शरीर में कठोरता व दृढता उत्पन्न करता है। अतः हेमाद्रि कहते हैं कि 'यस्य दृढी करणे शक्ति स दृढ ।' पार्थिव गुण वाले द्रव्य के कारण शरीर में दृढता आती है। अतः इस गुण वाले द्रव्य पार्थिव गुण वाले विशेष होते हैं शरीर की मास पेशी नाडी अस्थि जब दृढ रहती है कार्य नियमित चलता है। जब मृदुता आती है तब अस्थि मार्दव अनुत्साह आलस्य की वृद्धि हो जाती है अतः इस गुण की आवश्यकता अतीव होती है। कठिन द्रव्यों में सुधा, लौह, ताम्र, वंग, नाग यह शरीर की कठिनता व दृढता के वर्द्धक हैं। ऐसे ही गुरु स्निग्ध पार्थिव द्रव्य शरीर की दृढता बढाते हैं। अस्थि कंडरा सिरा नख केश के ऊपर इनका कार्य विशेष होता है। रूक्षण, घन व कर्षण कार्य करने वाले द्रव्य इसमे अधिक सहायक होते हैं। कठिन गुण वाले द्रव्य मे इसलिये ही रूक्ष–खर–तीक्ष्ण–उष्ण–स्थिर–विशद–सूक्ष्म और सर तथा द्रव गुण मिलते हैं। विशद विवरण गुण विज्ञान के महा निबंध मे है।

पिच्छिल व विशद—

परिभाषा—जो द्रव्य जीवनीय शक्ति वर्द्धक, बल कारक, सघात कर घ-गुरुता उत्पन्न करने वाले होते है वह पिच्छिल कहलाते हैं तथा श्लेष्म की वृद्धि करते हैं।

पिच्छिल द्रव्य—यह ततुल होते है। इस प्रकार शरीर मे ततुल द्रव्य लाला, शुक्र व श्लेष्म जातीय द्रव्य पाये जाते है अतः यह द्रव्य इसके वर्द्धक होते हैं।

पिच्छिल द्रव्य प्राय. अप् तत्व प्रधान होते हैं अत शरीर के जलीय वस्तु जितने हैं सब पर प्रभाव डालते हैं और विशद इसके विपरीत होते हैं अतः वह अप्–तत्व के कार्य के विपरीत कार्य कर होते हैं। गुग्गुलु कोकिलाक्ष, गोद–जातीय द्रव्य जो रस मे मधुर अम्ल व लवण होते हैं पिच्छिल के कर्म कर सकते है। इस पिच्छिल गुण के सहयोगी गुरु–शीत–मृदु–स्निग्ध–स्थूल–मद स्थिर गुण श्लक्ष्ण–द्रव–सूक्ष्म–सरगुण वाले द्रव्य होते हैं। अत इनके कर्म मे पूर्व के वर्णित सब गुणो का समावेश हो जाता है। अत जीवन बल्य सघान गौरव का कार्य करते है और श्लेष्म वर्द्धक रस रक्त मेद मज्जा शुक्र के वर्द्धक होते है।

विशद—इस गुण का कार्य पिच्छिल के विपरीत होने से यह शरीर के द्रवाश को कम करने वाला होता है। वह विशेष रूप मे प्रतिफलित होता है। इसको भिन्न–भिन्न रूप मे कहा जा सकता है। यथा—विशेषकर **"यस्य शोधने शक्ति. स विशद."** ऐसा मानते हैं। अत यह द्रव्य वायु, पृथ्वी, अग्नि, आकाश महाभूत से बने होते हैं। इनका कार्य निम्न होता है।

१. **क्लेदाचूषण**—शरीर के क्लेद की कमी करना।

२. **रोपण करना**—शरीर के क्षय काल मे जितने पुद्गल क्षीण होते हैं उनकी पूर्ति करता है। व्रणादि मे भी जो क्षीणता आ जाती है उनकी पूर्ति करता है।

३. **अजीवन**—शरीर की शक्ति की कमी को करके जीवन क्षीण बनाता है।

४. **असंघात कर**—शरीरावयवो को शिथिल करके यह शरीर मे शिथिलता व आलस्य की वृद्धि करता है।

५ **कफ हर**—श्लेष्म के प्रतिकूल कार्य करके यह उसका क्षय करता है।

६ **बल हानि व लाघव**—शरीर की शक्ति को कम करके यह बल हीनता पैदा करता है और लघुता पैदा करता है।

अत यह अम्ल तिक्त व कटु रसो के भीतर इसका निवास होता है। यह कडरा सिरा स्नायु त्वक् मे अपनी क्रिया का विकाश शीघ्र करता है। मास व अस्थि मे इसका प्रधान अधिष्ठान है। अतः इन रोगो मे जिनमे इसकी आवश्यकता पडती है वह है लघन वमन विरेचन नस्य दीपन पाचन आदि। इसकी आवश्यकता ज्वर अतिसार ग्रहणी आम स्थौल्य श्लीपद आदि रोगो मे विशेष कर होता है।

श्लक्षण व खर–

यह दोनो गुण एक दूसरे के सापेक्ष हैं। जहा पर श्लक्षणता रहती है वहां पर कुछ भागो मे शरीर के खर गुण भी होते हैं। जब एक गुण बढता है तो दूसरा गुण कम होता है। शरीर के कई भाग ऐसे है जिनमे भास्वरता कठिनता वर्ण व सौन्दर्य व दीप्ति दिखाई पडती है। श्लक्षण उनकी वृद्धि करता है और खर इनकी कमी करता है। अत. इनके कार्मुक रूप निम्न हैं।

श्लक्षण १ **रोपण**–शरीर के प्रतिक्षण के क्षीण होने पर उनकी पूर्ति करना।

२ **जीवन**—शरीर की जीवनी शक्ति बढाना।

३ शरीर के सघात कर भावो की वृद्धि करना।

४ **श्लेष्म की वृद्धि करना**—यह श्लेष्म सस्थानीय भागो मे रहता है अतः उनकी वृद्धि करता है। चिकित्सा कर्म मे बृहण स्तमन अनुवासन कर्म मे इनकी आवश्यकता पडती है। राजयक्ष्मा क्षय वातव्याधि अर्दित उन्माद अपस्मार आदि मे वह अपनी क्रिया करके शरीर के दोष की कमी करता है।

खर गुण—खर गुण के कार्य उसके विपरीत होने से वह शरीर मे निम्न कार्य करता है।

१. सर्व प्रधान कार्य खर का लेखन कर्म का करना है। अत: यह शरीर मे श्लेष्म भाव की कमी करके वात की वृद्धि करता है और कटु तिक्त व कषाय रसो मे इसका अधिक सक्रिय होना पाते हैं। यह रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, लघु विशद गुणो का सहायक होता है। अत मल मूत्र की कमी, द्रवत्व की कमी करके वह शरीर मे खरत्व की वृद्धि करता है। मास व अस्थि मे खर गुण होता है अत. यह मास व अस्थि पर खरत्व के गुण का प्रभाव शीघ्र डालता है। द्रवत्व की कमी करना प्रधान कार्य है। कडरा सिरा त्वक् स्नायु की मृदुता मे कमी करता है अत. इसका प्रयोग कफज रोगो मे करके लाभ उठाते हैं।

स्थूल व सूक्ष्म–

स्थूल व सूक्ष्म गुण दोनो सापेक्ष हैं और एक काल मे यह दोनो गुण अपना कार्य करते हैं। यह शरीर के सबसे मुख्य कार्य कर गुण हैं। जब कोई द्रव्य खाया जाता है तब वह शरीर मे जाकर शरीर के सामान्य गुण के अनुसार तदनुकूल शारीर द्रव्य की वृद्धि व ह्रास करते हैं। इनमें स्थूल व सूक्ष्म के गुण पृथक पृथक हैं।

स्थूल–प्रधान कार्य शरीर का सवरण करना इसका कार्य है। अत· धीरे धीरे शरीर मे जमा होकर स्रोतसो मे फैल कर अवकाश को कम करता है और शरीर के अवयवो मे स्थूलता पैदा करता है। इसके द्रव्य विशेष कर पार्थिव गुणाधिक्य के होते हैं अत यह पार्थिवत्व की वृद्धि करता है। स्वादु अम्ल व लवण रस में यह गुण अधिक होता है अत. यह इन रसो के सेवन से अधिक कार्य कर होता है। गुण मे यह गुरु शीत मृदु स्निग्ध पिच्छिल मद स्थिर

श्लक्ष्ण गुणो का अनुयायी है अत यह भी तदनुकूल कार्य करता है। शरीर के अंगो मे स्थूलता आदि कर्म इसके आधार पर होते है। कार्मुक स्वरूप मे इसको निम्न रूप मे पाते हैं। यथा–

स्थूल–१. बृहण कर्म–शरीर के धातुओ की वृद्धि करना। २. शरीर के अवकाशो को भरना।

३. **स्रोतोरोध**–स्रोतसो मे जाकर उनके अवकाश को भर देता है अत अवरोध पैदा करता है।

४. **कफ वर्द्धन**–कफानुरूप आकार प्रकार व गुण मे होने के कारण यह कफ कर होता है। कडरा शिरा स्नायु त्वक् में स्थूल गुण होते हैं यह इनकी वृद्धि दृढ़ता व घनता करता है, पुरीष केश व नख की वृद्धि करता है। अत: क्षयज व वातज रोगो मे इनका उपयोग होता है।

सूक्ष्म गुण–यह गुण स्थूल के विपरीत होने के कारण ये शरीर के सूक्ष्म गुण व कर्म करने वाले द्रव्य पर अपना प्रभाव डालता है। अग्नि वायु व आकाश गुण प्रधान होने के कारण यह गुण शरीर का परमोत्तम कार्य कर वस्तु है। यह शरीर के स्थूल भावो स्थानो व अवकाशो को विस्तृत करता है। हेमाद्रि ने **"यस्य विवरणे शवित स सूक्ष्म"** कहा है। अत: प्राण, उदक, अन्नवह रुधिर मास रस मेद अस्थि मज्ज व शुक्र के बहने वाले स्रोतस मे यह उनकी लचकता व दृढता का पोषण करता है। प्रत्येक स्रोतस की क्रिया को सम्हालता है और उनके अवकाश की स्थिति कर ठीक करता है अत शरीर मे इसका कार्य निम्न रूप मे आता दिखाई पडता है।

१- **सूक्ष्म स्रोतस प्रवेश** २. **विवरण**–विकाश शीलता। शरीर की वात क्रिया को ठीक रखने मे इसका जितना कार्य है किसी भी गुण का नही है अतः शरीर के सूक्ष्म नाडियो की क्रिया को सम्हाल करके वात स्थिति ठीक करता है। स्नेहन स्वेदन स्तभन कर्म मे इसकी आवश्यकता होती है। अत. वात प्रधान रोगो मे इनकी आवश्यकता पडती है।

उष्ण वीर्य व आग्नेय द्रव्य इसके आधार हैं। शरीर की रचना व विघटन मे यह दोनो गुण जितना कार्य करते हैं उतना कार्य अन्य गुण का नही होता है। इस प्रकार यह दोनों गुण अपना कार्य करके शरीर की क्रिया का धारण करते हैं।

सान्द्र व द्रव गुण के कार्य–

सान्द्र व द्रव गुण सापेक्ष हैं इनका कार्य शरीर मे विभिन्न रूप मे प्रति फलित होता है। इसका जानना प्रत्येक वैद्य का कार्य है। अन्य गुणो की तरह यह भी धातुस्थौल्य कर व शरीर मृदु व क्लिन्न कर गुण वाले है। क्रमश इनका कार्य निम्न है।

सान्द्र गुण–शरीर के आहार लेने के बाद परिणमन हो जाने के बाद यह अपना गुण स्वजातीय वर्ग में देते है। सान्द्र गुण के कार्य विशेष करके शरीर को दृढ संघातवान व घन बनाना हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव को घन स्थूल व स्थिर बनाने का कार्य इस गुण से होता है। शरीर के अवयवो को निबिड़

वनाने वाले हैं और इस रूप में शरीर में प्रसादन की शक्ति देते हैं। अवयव अपने कार्य को अधिक करने की शक्ति पाता है। यह पार्थिव गुण प्रधान होता है। अत इसके कार्य निम्न है।

१ **बृंहण**–शरीर के भावो को वढाना।

२. **वधन**–शरीर के वधनो को दृढ करना।

३ **प्रसादन**–शरीर के अगो को अपने कार्य करने की अधिक शक्ति देना। यह शरीर के सब धातुओ मे अपना कार्य कर प्रत्येक कोप्ठ को वल-प्रद तथा कार्य शील वनाता है।

द्रव–

द्रव गुण के कार्य–शरीर का सर्वांग कार्य शील रहता है। द्रव का प्रधान कार्य प्रक्लेदन करना है शरीर के प्रत्येक आभ्यतर भाग मे विना द्रवत्व रहे मृदुता नही आती और विना मृदुता के शरीर का कोई भी अवयव कार्य नहीं कर सकता। अत इसकी आवश्यकता प्रति पल पड़ती है। इसके आधार पर भीतर की श्लेप्मल कला का कार्य नही हो सकता। स्रावी जितने अग हैं उनका कार्य चल नही सकता। अत आप्य तत्व विशिप्ठ द्रव्यो से पाया जाने वाला यह गुण अपनी क्रिया की विशेपता रखता है इसके निम्न कार्य हैं।

१. **प्रक्लेदन**–शरीर के प्रत्येक क्लेद कर अग, चाहे कला, ग्रथि या कोष्ठ हो उसको प्रगतिशील वनाना।

२ **विलोडन**–शरीर के पचने वाले व मिश्रण होने वाले व सघात भिन्न होने वाले अगो को सहायता करके उनको विलोडनार्थ गतिशील वनाना।

३ **व्याप्ति**–शरीर के भीतर द्रव रूप में सर्वत्र प्रसरित होना।

४. पित्त की क्रिया शीलता के लिये द्रवत्व क्रिया की वृद्धि करना। इस प्रकार ऐसा शरीर का कोई भाग नही है जहाँ पर जाकर यह अपना कार्य न करता हो। अत. स्नेहन, स्वेदन, स्तभन व द्रव कर्म मे इसकी आवश्यकता होती है।

इन गुणों के अतिरिक्त और भी कई गुण हैं जिनका कार्य शरीर से विशेष सवध रखता है। यथा–

व्यवायी, विकाशी, सुगध, आशु, शुप्क आदि गुण जिनका कार्य विशेष स्थलो पर विशेष महत्व का है। व्यवायी विकाशी शरीर मे शीघ्र विकाश करके आशु कर्म करते हैं। आशु गुण भी इनका सहयोगी है अत हम देखते हैं कि अहिफेन, भगा या गाजा अपना कार्य विना पचे ही पहले करते हैं वाद मे पाचन होता है। मादक विष व अन्य गैस वाले द्रव्य शरीर पर शीघ्र अपना प्रभाव कर लेते हैं। इनका कार्य शरीर के द्रव गुण के अनुपूर्वक होता है अत यह शरीर में जाते ही द्रव का सपर्क करके अपना कार्य शीघ्र कर देते हैं। ओज रूप जो द्रव श्लेप्म के रूप मे शरीर मे धारण का कार्य करता है वह अपना आधार इनको वनाकर कार्य शीघ्र कर लेते है और आशु कर्म कृत वन जाते हैं। अहिफेन व सर्प विप या वत्सनाम आदि का कार्य इस प्रकार ही आशु, व्यवायी व विकाशी गुण के कारण होता है।

गुण व उनका वर्गीकरण--

गुण के दो वर्ग हैं एक जो कि आग्नेय वर्ग के हैं व दूसरे सौम्य वर्ग के है।

सौम्य वर्ग मे--				आग्नेय वर्ग मे--				
गुरु	पृथ्वी	जल		लघु	वायु	आकाश	अग्नि	
मन्द	पृथ्वी	जल		तीक्ष्ण			अग्नि	
हिम		जल		उष्ण			अग्नि	
स्निग्ध		जल		रूक्ष	वायु		अग्नि	पृथ्वी
श्लक्ष्ण			अग्नि	खर	वायु		अग्नि	पृथ्वी
सान्द्र	पृथ्वी			द्रव		जल		
कठिन	पृथ्वी			मृदु		आकाश जल		
स्थिर	पृथ्वी			सर		जल		
पिच्छिल		जल		विशद	वायु	आकाश	अग्नि	पृथ्वी
स्थूल	पृथ्वी			सूक्ष्म	वायु	आकाश	अग्नि	
पृ. ६ जल ५ अग्नि १				वायु ५ आकाश ४ अ. ७ पृ. ३ जल ३				

ऊपर के योग से स्पष्ट है कि सौम्य वर्ग प्राय पृथ्वी व जल प्रधान है व आग्नेय वर्ग अग्नि प्रधान व सहयोगी वायु व आकाश तत्व प्रधान हैं अतः इनका कार्य भी इनके अनुकूल ही चलता है। प्रत्येक वर्ग मे अपने अपने गुणो को वढाने वाले गुण का सहयोग होता है। यथा—

गुरु गुण मे सहयोगी, गुणाविष्ठान, शीत मृदु,स्निग्धस्थूल, पिच्छिल, मंदस्थिर, श्लक्ष्ण द्रव सूक्ष्म सर गुण।

शीत में—गुरु, मृदु, स्थूल, पिच्छिल, स्निग्घ, मद, स्थिर, श्लक्ष्ण द्रव सूक्ष्म सर रूक्ष. लघु गुण सहयोग।

स्निग्ध गुण—गुरु, मद, शीत, मृदु, स्थूल, पिच्छिल, स्थिरतीक्ष्ण उष्ण द्रव, सूक्ष्म सर, लघु गुण सहयोग।

मन्द गुण—गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, स्थूल, पिच्छिल, स्थिरश्लक्ष्ण, द्रव सूक्ष्म, सर लघु गुण सहयोग।

स्थिर—शीत, मद, मृदु, श्लक्ष्ण रूक्ष, सूक्ष्म, द्रवलघु, गुरु स्निग्ध, स्थूल, पिच्छिल, उष्ण तीक्ष्ण सर।

मृदु—द्रव सूक्ष्म, सरस्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीत, मद, रूक्ष स्थिर, श्लक्ष्ण स्थूल गुण सहयोग।

कठिन गुण—रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण स्थिर विशद, सूक्ष्म, सर द्रवगुणानुवध।

पिच्छिल गुण—गुरु, शीत, स्निग्ध, मृदु, स्थूल, मद, स्थिर, श्लक्ष्ण, द्रव, सूक्ष्म, सर गुणानुवध।

श्लक्ष्ण गुण—शीत, मद, मृदु, सूक्ष्म, स्थिर, द्रव, गुरु, लघु, स्निग्ध, पिच्छिल, स्थूल गुणानुवध।

स्थूल गुण—गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, पिच्छिल, मद, स्थिर, श्लक्ष्ण गुणानुवध।

सान्द्र गुण--गुरु व मद गुणानुबध ।

द्रवगुण--सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीत, मृदु, उष्ण, रूक्ष, तीक्ष्ण, स्थिर श्लक्ष्ण, लघु गुणानुबध ।

लघु गुण--रूक्ष, खर, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थिर, विशद, कठिन, शीत, मद, मृदु, श्लक्षण सूक्ष्म, द्रव सर गुणानुवध ।

उष्ण--रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण, स्थिर, विशद कठिन, श्लक्ष्ण, मृदु, सूक्ष्म, द्रव, सरगुणानुवध ।

रूक्ष--लघु, खर, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थिर, कठिन, विशद, सूक्ष्म, मृदु, मंद, श्लक्ष्ण आदि गुण ।

तीक्ष्ण गुण--लघु, उष्ण, विशद, रूक्ष, सूक्ष्म, सर, खर, कठिन, स्थिर, स्निग्ध, द्रव, गुरु आदि ।

सर--द्रव, सूक्ष्म, स्निग्घ, गुरु, पिच्छिल, शीत, मद, मृदु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष लघु, खर ।

विशद गुण--लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, खर, सर, कठिन गुणानुवध ।

खर--रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थिर विशद, कठिन गुणानुबंध ।

सूक्ष्म--द्रव, सर, स्निग्ध पिच्छिल, शीत, मृदु, श्लक्ष्ण, रूक्ष, लघु, उष्ण, तीक्ष्ण गुणानुवध ।

विपाक के द्वारा कर्म--

आहार लेने के वाद जाठर अग्नि के द्वारा होने वाले पाक का नाम विशिष्ठ पाक मानते हैं। यह परिभाषा वाग्भट की है यथा--

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् ।
रसानांपरिणामान्ते स विपाक इति स्मृत । अ- हृ सू. अ ९

शरीर मे प्रविष्ठ हुवे अन्न का उसके पाचन काल मे रस व गुणो का जव शरीर के द्रव्य के रूप में रसान्तर व गुणान्तर होकर जाठर व धात्वग्नि के द्वारा विशिष्ठ पाक हो जाता है तो वह विपाक कहलाता है । ऊपर की परिभापा से जाठराग्नि के द्वारा होने वाले रसान्तर मात्र परिणमन का ग्रहण किया गया है ।

रस वैशेषिककार के मत से--**परिणाम लक्षणी विपाक** विपाक की परिभाषा की गई है। यह विशेष क्रम मे उपादेय मानी जा सकती है। क्योंकि चरक सहिता मे परिणमन मे भूताग्नि पाक व धात्वग्नि पाक का भी आश्रय लिया है।
यथा-- **पंच भूतात्मके देहे आहारः पांच भौतिक ।**
विपक्व पंचधा सम्यक् गुणान् स्वानभिवर्द्धयेत् ।

इसी प्रकार गगाधर ने भी परिणमन मे द्रव्य का द्रव्यान्तर व रस का रसान्तर व गुण का गुणान्तर होना माना है। इस प्रकार पाचन मे एक स्थान पर पाक न होकर रसान्तर व गुणान्तर समग्र शरीर मे चलता रहता है। इस कारण पाक का सामान्य अर्थ जाठर पाक होने पर भी निष्ठा पाक के काल मे विभिन्न स्थानो पर पाचन होना भी द्योतित करता है।

"विपाकः कर्म निष्ठया"—इससे कर्म निष्ठा का ज्ञान कब हो सकता है। यह भी विचारणीय विषय है। अतः निष्ठा के निम्न अर्थ हैं।

निष्ठा निष्पत्ति नाशान्ता. । अमर

इस प्रकार निष्ठा का अर्थ अतिम अवस्था की प्राप्ति जहा पर द्रव्य का रसान्तर होकर उसकी समाप्ति हो जाती है जिसको आज की भाषा मे फाइनल प्रोडक्ट या फिनिस्ड प्रोडक्ट (Final Poduct or Finished Product) माना जा सकता है। अत' यही शब्द सुश्रुत की भी अभिप्सित होगा ऐसा जान पडता है। चक्रपाणी ने भी स्पष्ट करते करते हुये लिखा है कि—

"कर्मणो निष्ठा, निष्पत्ति क्रिया परिसमाप्तिः रसोपयोगे सति योऽन्त्याहार परिणाम'। कृत. कर्म विशेष' कफ शुक्रादिरूप वृध्यादि लक्षण तेन विपाको निश्चीयते।"

अत. स्पष्ट है कि विपाक केवल रसपरिणमन नही अपितु रसान्तर हो जाने के वाद भी निष्ठा रूप मे धात्वन्तर प्राप्ति तक का काल व परिणमन गिना गया है। अस्तु

विपाक की परिभाषा से व उसके क्षेत्र से स्पष्ट है कि आहार द्रव्य अवस्था पाक व निष्ठा पाक के रूप मे वरावर परिवर्तन प्राप्त करके शरीर व्यापार के रूप मे शारीर द्रव्य के रूप मे परिणत होकर शारीर द्रव्य इस परिणमन मे वन जाते हैं।

प्रकृति समवेत रूप मे जव यह कार्य करते है तो वह स्वाभाविक परिवर्तन होता है। जव विकृति विषम समवेत रूप मे कार्य करते है तव उनका कार्य विशिष्ठ प्रकार का हो जाता है।

इस विपाक मे द्रव्य का द्रव्यान्तर व गुण का गुणान्तर होकर द्रव्य शरीर भाव मे आ जाते हैं। यथा——

"परिणमतस्त्वाहारगुणा शरीर गुण भावमापद्यंते।"

- अत' स्पष्ट है कि धातुओ मे रसभाव की प्राप्ति विपाक से होती है। रस मधुर है, मास मधुर हैं, शुक्र मे माधुर्य होना, यह तभी सभव है जव कि परिणमन रस का रसान्तर होकर द्रव्य शरीर भाव मे आ जाय और खाये आहार का रस रक्त मास मेदादि निष्ठाकालीन धातु मे परिणमन हो जाय और इनमे के कण उनमे भी आ जाय। अत प्राचीन चिकित्सको का कहना है कि गुरु, लघु, शीत, उष्णादि गुण द्रव्य से धातु मे आ जाते है यह ठीक ही जचता है। अत विपाक ही ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा रस गुण आदि की क्रिया निष्पन्न होती है। इनके उदाहरण भी देखने को मिलते हैं।

सामान्य रूप मे विपाक आहार को किट्ट व प्रसाद रूप मे परिणमित करते है। यथा——

प्रसाद किट्ट धातूनां पाकादेवं विपद्यतः। च चि. १५-१९

परिणाम रूप मे कार्य व परिवर्तन निम्न रूप मे होता है। यथा——

यथा स्व स्वं च पुष्णन्ति देहे द्रव्यगुणा पृथक् ।
पार्थिवा पार्थिवानेव शेषा: शेषांश्च कृत्स्नश ।
सप्तभिर्देहधातारो धातवो द्विविधं पुन ।
यथास्वमग्निभि पाक यान्ति किट्टप्रसादवत् । च. चि. १५

इस प्रकार विपाक से पार्थिवादि गुणो के प्राप्ति से शरीर के धातु उपधातु व दोषो के गुणो की प्राप्ति व पुष्टि होती है। गुण विपाक द्वारा गुण की पुष्टि शारीर धातु गुणो के रूप मे होती है। अत धात्वग्नि व्यापार व भूताग्नि व्यापार यह सव यथा काल यथा व्यवस्थित रूप मे होते हैं। अत. शारीर गुण द्रव्य गुण से शरीर मे आ जाते है और क्रिया के उत्पत्ति मे सहायक होते हैं। विशेष कर शीत व उष्ण गुण तथा शीत व उष्ण वीर्य की क्रिया इसके द्वारा उत्पन्न होकर पित्त के अग्नि कर्म व श्लेष्म के उदक कर्म का प्रतिपादन करके शरीर मे शीत व उष्ण की मात्रा मात्रत्व की स्थिति का निवघन करते हैं। अत: सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि---

द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वंवु पृथिवी गुणा ।
निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते ।
तेजोऽनिलाकाशगुणा पच्यमानेषु येषु तु ।
निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाक कटुक उच्यते ।
द्रव्ये द्रव्याणि यस्माद्धिविपच्यन्ते न षड्रसा ।
श्रेष्ठं द्रव्य मतो ज्ञेयं शेषाभावास्तदाश्रया: । सु सू ४०

इस प्रकार विपाक से रसादि मे परिणमन होता है परतु द्रव्य गुण-धर्म मे अंतर नही होता। अत जब द्रव्यान्तर को प्राप्त करते हैं तो गुण-गुणान्तर को प्राप्त करके शरीर मात्र को प्राप्त करते हैं। इनका ज्ञान कर्म द्वारा होता है। यथा--- विपाक कर्म निष्ठया। चरक

अस्तु हम विचार करे कि किस प्रकार यह द्रव्यान्तर व रसान्तर प्राप्त करते हैं। आज आधुनिक विज्ञान के अध्ययन व विश्लेषण के आधार पर बहुत वाते जानी जाती हैं और उनकी पुष्टि प्राचीन काल के विचारो की पुष्टि मे दिखाई पडती है।

विपाक के तीन प्रधान भेद हैं। मधुर, अम्ल व कटु। यह तीन रस षड्रसो के परिणमन के वाद होते हैं और शरीर मे यह इन तीन प्रधान रसो के रूप मे रह कर भी आवश्यकतानुसार षड्रसो के रूप मे परिवर्तित होते रहते हैं। आज का विज्ञान हमे इसके अध्ययन करने मे सहायता करता दिखाई पडता है। इसका विवरण आगे उपस्थित करते है। आधुनिक मत से रस से रसान्तर व धातु रूपान्तरत्व का कुछ सक्षिप्त उदाहरण रखते हैं।

परिणमन सात्म्यी करण– (Metabolism)

शरीर मे जो भी द्रव्य हो वह चाहे आहार हो या औषधि जाकर पचते है और उनका परिणमन दो प्रकार की क्रिया के द्वारा होता है। प्रथम मे द्रव्य शरीर मे जाकर शारीर द्रव्य के रूप मे परिणत होता है और द्वितीय मे परिणत

वस्तु का व्यय शरीर मे होता है और उनका खर्च हो जाता है और वाकी हिस्सा शरीर से वाहर हो जाता है। प्रथम का नाम रचनात्मक या एनावोलिक (Anabolic) द्वितीय का नाम सहरणात्मक या केटावोलिक (Katabolic) होता है। रचनात्मक क्रिया मे शरीर के लिये द्रव्य को, जीवन मूल द्रव्य का निर्माण करते है और शरीर का धारण करते हैं। द्वितीय सहारात्मक क्रिया मे इस जीवन मूल द्रव्य का और आहार रस का विश्लेषण होकर शरीर धातु के रूप मे परिणमन होता है और विभिन्न प्रकार के शरीर व रासायनिक तत्व वनते है और शरीर क्रिया चलती है। इसका सम्मिलित नाम सात्म्यीकरण है। अत. हम आहार द्रव्य के नाम पर आज के द्रव्य कहे जाने वाले द्रव्य कार्वो-हाइड्रेटस् प्रोटीन, फैट वा अन्य द्रव्य या षड्रसात्मक आहार को ग्रहण करते है। मधुर रस का परिणमन (जिसमे प्रारभ के तीन आते हैं उनके परिणमन) का क्रम निम्न होता है। मधुर रस वाले द्रव्य का मुख से प्रवेश करने के वाद पाचन, शोषण, विपाक, वीर्य रूप मे शरीर मे परिणत होकर त्यक्त द्रव्य वाहर आ जाने तक का क्रम सम्मिलित है यह दो भाग मे कहे जा सकते है।

अवस्था पाक--पाचन व शोषण (Digestion) & (absorption)

निष्ठा पाक— विपाक गुण व वीर्य परिणमन ((Intermidiatary & cellular metabolism)

इस आधार पर मधुर रस या कार्वो हाइड्रेट का परिणमन किस प्रकार होता है विचारणीय है तथा क्रमश· प्रोटीन व वसा का परिणमन कैसे होता है।

कार्वो हाइड्रेट्स् के नाम पर स्टार्च (Starch) व शर्करा मे फल शर्करा, द्राक्ष शर्करा, दुग्ध शर्करा, इक्षु शर्करा (Sucrose-Glucose-lactose & Bitsugar) का ग्रहण होता है। यह आहार मे पचकर आमाशय व आत्र मे शोषित हो जाते हैं। लघु आत्र से शोषित होकर, यकृत मे ग्लाइकोजन के रूप मे जमा हो जाते हैं और शरीर मे द्राक्ष शर्करा के रूप मे परिणत हो कर वरावर खर्च होते हैं। यकृत से लघु आत्र मे शोषित होकर याकृती शिरा (Portal vein) से यकृत मे जाते है, जमा होते है। यहा से तीन प्रकार से व्यय होता है। यथा--

१. यकृत से याकृती सिरा द्वारा रक्त मे जाकर।

२ रक्त परिभ्रमण मे यकृत से ग्लूकोज के रूप मे ०१ से ०६२ तक या दशमलव एक प्रतिशत तक रक्त मे मिश्रित होकर के।

३ यकृत मे रहकर स्टोर होकर ग्लाइकोजन व ग्लैक्टोजन के रूप मे शरीर मे मिलते रहना। रक्त शारीर मे तरल के साथ मिला रह कर के शरीर की रक्षा करना। यह रक्त के रक्त वारि मे रहता है। मूत्र मे २४ घटे मे एक ग्राम निकलता है। वृक्क मे इस की मात्रा मात्रत्व १८ (Thresh-hold) है व रक्त मे ०४ प्रतिशत तक रहने मे ग्लाइको सूरिया या शर्करा मे नही माना जाता। यकृत मे रहकर यह ग्लाइकोजन से विभिन्न रूप मे परिणत होकर शरीर मे मिलता व व्यय होता है। इसके दो प्रधान क्रम है। पर कई

विधि से शरीर के विभिन्न रूप मे मास, शुक्र, सिरा, धमनी व अन्य शारीर तत्व के रूप मे परिणत होकर चलता है।

१. शरीर की शार्करीय स्थिति-ग्लाइकोजेनेसिस (Glycogenesis)

२ ग्लाइकोजेनेलाइसिस (Glycogenelysis) इन दो क्रियात्मक परिवर्तनो के रूप मे शरीर मे व्यय होता है।

परिणमन–

शरीर मे शर्करा द्राक्ष शर्करा (Glucose) गैलेक्टोज(Galactose) फ्रुक्टोज (Fructose) के रूप मे रहता है। जब आवश्यकता होती है तो वह रासायनिक क्रम से परिवर्तित होकर ग्लूकोज के रूप मे बदल कर काम मे आता है। यकृत मे यह दो प्रकार से व्यवहृत होते है।

१. ग्लाइकोजेनेसिस मे ग्लूकोज फ्रुक्टोज व गैलेक्टोज फास्फोरिक अम्ल के सयोग से ग्लाइकोज के रूप मे आते हैं इसका वैज्ञानिक नाम फास्फोरिलेज (Phosphorilase) है। फिर यह अन्य रासायनिक कर्म से फास्फो–गैलेक्टा–आइसोमेरिज व पश्चात ग्लूकोज १ फास्फेट बनता है फिर ग्लूकोज ६ फास्फेट बनता है। इस प्रकार वह शरीर मे इस रूप मे चलता रहता है।

ग्लूकोज एक फास्फेट शरीर मे यकृत से बन कर चलता है और सिक्स फास्फेट शरीर मे मास पेशी व अन्य स्थान मे जमा होकर रहता है और ग्लाइकोजन बन कर ग्लूकोज का स्वरूप धारण करके वह शरीर मे व्यय होता है। प्रथम क्रिया ग्लाइको जेनेसिस या शर्करा से शारीर शर्करा मे परिवर्तित व दूसरे मे शरीर के विभिन्न भागो से लिया जाकर सिक्स फास्फेट से फिर एक फास्फेट मे बदलता रहता है। यही क्रम चलता रहता है जैसी आवश्यकता होती है।

इस प्रकार एक शार्करिक (Monosaccharides) द्विशार्करिक (Disaccharides) बहु शार्करिक के रूप मे यह (Polysaccharides) शरीर मे व्याप्त होकर के रहते है और परिवर्तित होकर शरीर मे चलते रहते है। यही जब अधिक मात्रा मे निकलते है तब रोग का स्वरूप धारण करते हैं। यह सब क्रम कार्बन के परमाणु के साथ हाईड्रोजन के विभिन्न रूप मे शोषण व दहन (Oxidation) आक्सिडेशन के होने पर हो जाते है। कार्बन आधुनिक क्रम मे मधुर रस के उत्पादन मे विशेष भाग लेता है। "अत कार्बन के साथ हाइड्रोजन के परमाणु के दहन होने पर इसका नाम कार्बोहाइड्रेट बनता है।" इसके विभिन्न रासायनिक परिवर्तन होते हैं और यह ग्लूकोज, फ्रुक्टोज-गेलेक्टोज, मैनोज, राइबोज, डिआक्सि, राइबोज और न मालूम कितनी सज्ञाये पाता है।

क्रम यही रहता है कि पहले बाह्य शर्करा से ग्लूकोज व ग्लाइकोजेन बनते हैं। फिर ग्लाइकोजेन से ग्लूकोज बनता है और शरीर मे लगता है।

मांस पेशी में इसका स्वरूप—मास पेशी मे ग्लाइकोजेन का परिणमन होता है इस मे अपने एन्जाइम रहते है उनके सहयोग से भी परिवर्तन करता है। जिन्हे फास्फोरिलेज व फास्फो ग्लूकोम्यूमेटेज कहते है इनसे ग्लैकोज वनता है और रक्त मे लग जाता है।

कभी–कभी शरीर की शर्करा का ग्लूकोज ६ फास्फेट बने बिना भी शर्करा या ग्लूकोज वन जाता है इस विधि को ग्लाइकोनियोजेनेसिस (Glyco-neogenesis) कहते हैं। जो शरीर के अन्य अम्ल के संयोग से बन जाता है।

शरीर के कुछ हारमोन भी इसके नियत्रण मे भाग लेते हैं। जिनमे इनस्यूलिन से यकृत के ग्लूकोज ६ फास्फेट को ग्लाइकोजेन मे परिणत करता है दूसरा अग्नि रस ग्लूकोज ६ फास्फैट बनने की प्रवृत्ति कम करता है। एड्रेनेलिन ग्लूकोज ६ फास्फैट के रूप मे वदलने मे सहायक होता है। इसकी उपस्थिति मे यकृत रक्त मे ग्लूकोज शीघ्र वनाकर मिलाता है। फास्फैट की कमी से मास पेशी के सेलो मे लैक्टिक एसिड वन जाता है। पीयूष ग्रथी का रस यकृत के ६ फास्फैट के वनाने के क्रम का अवरोधक है। इनस्यूलिन व एड्रेनेलिन यह इसके अवरोध को दूर करते हैं। इस प्रकार से विभिन्न रूप मे शर्करा का भजन व परिणमन चलता रहता है। अस्थि के ऊपर लगे मास पेशी मे इसका सग्रह अधिक रहता है। शुक्र द्रव मे फल शर्करा मिलती है प्राकृत शुक्र मे .८ प्रतिशत शर्करा मिलती है।

१. दुग्ध मे शर्करा मिलती है। (Lactose)

२. यकृत, वृक्क, अस्थि, मज्जा, प्लीहा, हृदय मे और मस्तिष्क मे ग्लूकोज ६ फास्फेट मिलता है।

इस प्रकार देखते हैं कि शरीर के प्रत्येक भाग मे शर्करा का रूपान्तर किसी न किसी रूप मे मिलता है। इसमे शरीर के कई अम्ल भाग लेते हैं। यह यूरेनिक एसिड (Urenic Acid) वर्ग कहलाते हैं यथा—१. ग्लूकोरोनिक एसिड (Glucoronic Acid) यह प्राणियो के वातु मे मिलता है। यह हाइड्रोक्लोरिक एसिड व सलफूरिक एसिड से (Hch-sulph-Acid) रूपान्तर प्राप्त करके वनता है।

२. **उच्च श्रेणी के शर्करा**—एमाइनो शूगर (Amino sugor) यह उत्तम श्रेणी के प्रोटीनो मे मिलता है। यथा—मस्तिष्क व नये टिस्यू व हृत पेशी में।

इस प्रकार यह बनकर शरीर मे परिणत होता है। इसी प्रकार से शरीर मे प्रोटीन व वसा का भी परिणमन होता है। आहार के द्रव्य से यह शारीर द्रव्य के रूप मे वनते जाते हैं और खर्च होते रहते हैं।

प्रोटीन का परिणमन–

आहार से जो प्रोटीन आता है वह अमाइनो एसिड के रूप मे आता है। वह प्रोटीन के पाचन के वाद आता है। यह याकृती शिरा (पोर्टल व्हेन)

(Portalvein) से होकर रक्त मे प्रवाहित होता है। अत प्रोटीन युक्त आहार की मात्रा अधिक रहने पर प्रोटीन की मात्रा आहार मे वढ जाती है। जो दो से ६ मिलीग्राम तक वढती है। शरीर मे विभिन्न प्रकार के प्रोटीन मिलते हैं जिनके नाम यह है। इनके दो भेद हैं।

१ जो ग्लाइकोजेनिक क्रम के है। यथा--सेरिन आर्जेनिन, प्रोटीन थियोमिन, सिस्टेन, हिस्टेडिन मेथियोनिन, वैलिन यह सब अमाइनो ग्रुप के हैं। इनके शोषण मे कार्वन के परमाणु मिल कर ग्लूकोज व ग्लाइकोजेन के रूप मे आते हैं अत ग्लायको जेनिक कहलाते है।

२ जो केटाजेनिक क्रम के हैं। यथा--ल्यूसिन, आइसोल्यूसिन फेनिलोलोमाइन और टाइरोसिन यह प्रोटीन २० प्रकार के होते है और शरीर मे विभिन्न प्रकार से जमा होते है और इनका व्यय होता रहता है।

इनके व्यय मे कई प्रकार के शारीरिक अम्ल सहायता करते है। जिनमे पाइरुविक एसिड प्रधान है। शरीर के इन्जाइम व कई द्रव्य इनके परिणमन मे साथ होते है। इसी प्रकार से फैट का भी परिणमन होता है।

शर्करा जिस प्रकार शरीर मे परिणमित होकर शरीर उष्मा व शक्ति का स्रोत वनती है यह प्रोटीन व वसा भी शक्ति के रूप मे परिवर्तित होते है और कार्वो हाइड्रेट के रूप मे काम करते है। वसा भी परिवर्तित होकर काम करती है। शर्करा के वदले काम होता है इस प्रकार प्रोटीन व फैट दोनो शर्करा के रूप मे काम करते हैं और मधुर भाव का स्वरूप धारण करते हैं। इस प्रकार से मधुर रस शरीर मे अवस्था पाक व निष्ठा पाक मे आधुनिक मत से परिणत होकर कार्य मे आता है। अम्ल भाव व कटु भाव मे भी इनका कार्य होता है जिनका विवरण आगे दिया गया है। विपाक का यही प्रधान कार्य है।

संशोधन या विरेचन कर्म विज्ञानीय स्कंध

संशोधन विज्ञान—

शरीर के जानने वाले आचार्यों ने क्रिया क्रम मे दो प्रधान कर्मों का उल्लेख किया है।

१ सशोधन २ सशमन

इन दो प्रधान क्रिया कर्मो मे प्राय शरीर की सभी क्रियाओ का समावेश हो जाता है अत क्रमश उनका विवरण उपस्थित करते है।

१ सशोधन—

पर्याय—शोधनम् सशोधनम्।

परिभाषा—सामान्य रूप से जो औषधि सपूर्ण शरीर या शरीर के किसी एक भाग से अथवा दोष व धातु मल से दोषो को निकालती है वह सशोधन कहलाती है। यथा—उर्ध्व भाग हर, अधो भाग हर, उभयतो भाग हर, शिरो

विरेचन, स्तन्य शोधन, शुक्र शोधन, पित्त शोधन। चरक व सुश्रुत ने इसकी परिभाषा पृथक नही की है। शाब्दिक अर्थ करने पर सम्यक प्रकार से सशोधन करने वाले द्रव्य सशोधन कहलाते हैं। ऐसा अर्थ स्वत निकल आता है किंतु पश्चात काल वाले चिकित्सको ने इसकी परिभाषा की है। यथा—

१. वाग्भट्ट **यदीरयेद्बहिर्दोषान् पंचधा शोधन हि तत्।**

२ **स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्व मधो वा मलसचयम्।**
देहे संशोधनं तत् स्याद्देवदाली फल यथा। शा०

ऊपर की परिभाषा से स्पष्ट है कि जो द्रव्य शरीर के मल सचय को ऊपर या नीचे के मार्ग से निकाल दे वह सशोधन कहलाते है।

आचार्य शार्ङ्गधर के मत से शोधन के दो प्रधान भेद हैं।

१ वहिराश्रयम्, आभ्यतराश्रयम्।

वाग्भट पाच प्रकार का मानते हैं। वमन, विरेचन, निरूह, शिरोविरेचन, अस्र विस्रुति। आचार्य चरक ने भी सिद्धि स्थान मे शोधन कर्म मे पच कर्म की ही विशेपता मानी है। वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरोविरेचन आदि।

किन्तु वृहत्त्रयी की सज्ञाओ का अनुशीलन करने पर हमे विशेष सज्ञायें मिलती हैं। यथा—स्तन्य शोधन, रक्त शोधन, शुक्र शोवन, दत शोधन, मुख शोधन आदि। इनके ऊपर विचार करे तो ज्ञात होता है कि न केवल उर्ध्व या अव मार्ग से दोष निकालने वाले ही द्रव्य सशोधन कहलाते है किन्तु सर्वांग या एकाग से दोष निकालने वाले द्रव्य भी सशोधक होते है। इनमे से पाच कर्मो का विवरण विशेष मिलता है जो कि सिद्धि स्थान मे है। अन्य कर्म इतस्तत प्रयोग वश कहे गये है।

शार्ङ्गधर की परिभाषा मे यद्यपि भार है परन्तु वह भी दो भेद मे जाकर कुछ दूर तक सफल होती है। यथा—आढमल्ल का कथन है कि—

यत शोधनं द्विविधमाचक्षतेवहिराश्रयमाभ्यतराश्रयश्च।
तत्र वहिराश्रयं शस्त्र क्षाराग्नि प्रलेपादय आभ्यंतराश्रय तु चतु प्रकारकम्।
वमनरेचना स्थापना शोणितमोक्षणम् च।
एके शिरोविरेचन मन्यन्ते। तच्चात्र वमनान्तर्गत वोधव्यम्।
उर्ध्व शोधनत्वात्। आढमल्ल शा टीका

इस प्रकार की परिभाषा से सार्वभौम अर्थ नही निकलता जो कि सब के लिये सामान्य वन सके अत वाग्भट को परिभाषा मे कुछ जोडने पर सवका रूप वन जाता है। यथा—

यदीरयेद्बहिर्दोषान् शोधनं तच्च सस्मृतम्।
सर्वांगेऽवयवावैक दोष धातु मलेषु च। विश्व

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर के एक अग या सर्वांग के दोपधातु व मल से दोष का निष्काशन करते हैं वह ही सशोधन कहलाते है। इस परिभापा से हर प्रकार के शोवन कर्म का अर्थ मिल जाता है।

उर्ध्वअधोभागहर द्रव्य व कर्म–

द्रव्य—महर्षि चरक ने सशोधन द्रव्यो के गुण का उल्लेख करते हुये लिखा है कि वह—

उष्ण–तीक्ष्ण–सूक्ष्म–व्यवायि–विकाशीन्यौषधानि स्ववीर्येण हृदयमुपेत्य धमनीरनुसृत्य स्थूलाणुस्रोतोभ्य केवलं शरीरगतं दोषसंघातं आग्नेयत्वाद् विष्यंदयन्ति तैक्ष्ण्यात् विच्छिन्दन्ति, अग्निवाय्वात्मकत्वादूर्ध्वभागप्रभावात् औषधस्योर्ध्वमुत्क्षिप्यते । सलिलपृथिव्यात्मकत्वाद्दधोभाग प्रभावाच्चौषधस्याधः प्रवर्तते । उभयतश्चोभयगुणत्वात् । च क. अ. १

इससे स्पष्ट है कि जो द्रव्य कायार्थ लिये जाते है। उनमे निम्न गुण होना चाहिये ।

भौतिक सगठन—

अधोभागहर द्रव्य—पृथ्वी व जल तत्व प्रधान होना चाहिये ।

उर्ध्वभागहर—अग्नि व वायु भूयिष्ठ द्रव्य उर्ध्व भाग हर होते हैं ।

उभयतोभागहर द्रव्य—जिनमे इन दोनो के गुण होते हैं वह उभय भागो से दोष हरण करते हैं ।

रस—तिक्त, कटु, कषाय, लवण रस वाले द्रव्य सशोधन कर्म मे लाभ कर होते है ।

गुण—उष्ण, तीक्ष्ण, व्यवायी विकाशी गुण युक्त औषधिया अपने वीर्य व गुण प्रभाव से रोग व दोष दूर करने मे कार्यक्षम होती हैं ।

क्रिया क्रम—यह औषधिया अपने गुणो से किस प्रकार कार्यशील होती है। यह निम्न रूप मे सक्षेप मे दिया गया है ।

क्रम—यह औषधिया अपने शरीर मे जाकर आग्नेय गुण के कारण, उदर मे जाकर विष्यदन कर्म करके कलाओ से द्रव स्यदन कराती हैं । तीक्ष्णता के कारण दोष सघात भेदन कराती है। विच्छेदन कर्म से सर्वत्र फैलकर गति शीलता उत्पन्न कराती है। दोष एकत्र करके उन्हें ऊपर या नीचे से निकालती हैं। यह सामान्य कर्म है। विशेष कर्म उनके साथ ही कहा जायगा। द्रव्य भी साथ ही कहे जायगे ।

पूर्व मे कहा जा चुका है कि वामक व विरेचक औषधिया कई प्रकार से कार्य कराती हैं । यथा—

१ मुख मे जाने पर वह सारे शरीर मे फैलती हैं। इनमे उष्ण, तीक्ष्ण, व्यवायी, विकाशी गुण होते हैं। अत यह शीघ्र प्रसरणशील होती है। स्थानिक व केन्द्रिय कार्य दोनो प्रकार का होता हैं। स्थानिक कार्य मे यह निम्न कार्य करती हैं ।

१ आग्नेय होने से विष्यदन कर्म करना ।

२. तीक्ष्ण होने के कारण मल सघात भेदन करना ।

३. व्यवायी विकाशी होने के कारण क्रिया मे तीव्रता लाना, आत्र की गति बढाना, दोष कर्षण करना।

४. धमनियो, नाडियो की गति बढा कर सर्वांग से दोष प्रचालन करना।

केन्द्रिय कार्य—१. उष्म केन्द्र पर प्रभाव डालना।

२ विष्यदन कार्य मे तीव्रता लाकर कलाओ से दोष निकालने की प्रेरणा देना।

३. सारे शरीर की क्रिया पर प्रभाव डालना व गतिशीलता की वृद्धि करना।

इन दो प्रकार की क्रिया के होने के बाद द्विविध कार्य मे से एक का करना।

१. अग्निवाय्वात्मकत्वात् उर्ध्व भाग प्रभाव करके वमन की प्रवृत्ति करना।

२. सलिल पृथिव्यात्मक होने से अधो भाग की गति शीलता की वृद्धि करना। अत' वमन व विरेचन मे से किसी एक कार्य का सपादन करना या उभयत. क्रियाशील द्रव्य के रहने पर वमन व विरेचन दोनो कर्म को कराना।

द्रव्य का क्रिया सामर्थ्य–पोटेंसी (Potency)

क्रिया का क्रम तो ऊपर कहा गया है परतु इसमे क्रियाशीलता की उत्पत्ति के लिये आवश्यक होता है कि द्रव्य मे विशेषता हो। वह विशेषता विभिन्न बातो पर निर्भर करती है। यथा—१ प्रत्येक द्रव्य अपने गुण को निम्न बातो के आधार पर ठीक रूप मे सम्पन्न करते हैं। यथा—

१. औषधियाँ देश, काल, भाजन, गुण, सपद, वीर्य व बलाधान से कार्य करती हैं। व उनमे सामर्थ्य आता है।

२. नाना विध देश मे उत्पन्न होने के कारण द्रव्य मे विशेषता आती है। यथा—मालवा की श्यामा त्रिवृत व जूनागढ की त्रिवृत वीर्य सपन्न व गुणाधिक्य युक्त होते हैं विरेचन ठीक होता है अन्य स्थान वालो मे कार्य होने की शक्ति होती है परतु वह शक्ति कम होती है। ठीक काल तक रहने पर द्रव्य मे गुण की वृद्धि होती है। कच्चे द्रव्य उतने गुण नही करते जितने परिपक्व कार्य करते हैं। विन्ध्य का मदनफल अधिक वीर्यवान बनता है, वमन शीघ्र कराता है। आरग्वध का फल पार्वत्य उपत्यका का अधिक वीर्य सपन्न होता है। मैदान वाले मे उतनी शक्ति नही होती।

अत उचित देश व काल मे परिपक्व द्रव्य मे आस्वाद या रस वीर्य विपाक की क्रिया सम्पन्नता अधिक होती है। ऋतु के अतिरिक्त उत्पन्न द्रव्य मे भी क्रियाशीलता होती है परतु वह अल्प होती है। अत विचार कर द्रव्य सग्रह करना काल मे सग्रह कर उनको सरक्षण प्रदान करना चाहिये। तब औषधि वीर्यवान बनती है।

१ विचित्र गध, सुगध, वर्ण, रस व स्पर्शादि गुण के कारण भी औषधि मे तीव्रता आती है। २ औषधि के कार्य मे तीव्रता लाने के लिये आवश्यक है कि उसके कल्पनाओ का स्वरूप विशेष गुणप्रद द्रव्य के सयोग पूर्वक बनाया गया हो और योग का नाम भी उसी के नाम पर होना चाहिये। यथा—सुरा के तीन योग क्वाथ के इतने योग आदि। फिर अमुक सुरा के योग आदि। महर्षि चरक ने लिखा है कि—

यद्धि येन प्रधानेन द्रव्यं समुपसृज्यते ।
तत्सञ्ज्ञक स योगो वै भवतीति विनिश्चयः । च. क. १२।४३

३. द्रव्य की शक्ति बढाने के लिये आवश्यक है कि उसे गुणशील द्रव्य की भावना दी जाय और गुण बढाया जाय। यथा—

भूयश्चैषा बलाधानं कार्यं स्वरसभावनै ।
सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद्बहुकर्म कृत् ।
स्वरसैस्तुल्य वीर्यैर्वा तस्माद्द्रव्याणि भावयेत् । च क. १२।४७

यथा—आमलक रसायन की क्रिया शीलता की वृद्धि के लिये आमलक की शतशत भावना तक देते है। इस क्रिया के करने पर थोडे भी मात्रा मे द्रव्य का कर्म अच्छा होता दिखाई पडता है।

४ औषधि द्रव्य के गुण की वृद्धि के लिये उनका सस्कार, सयोग, विश्लेष आदि के द्वारा उनमे विशेष प्रकार के गुणाधान हो जाते हैं। यथा—

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम् ।
कुर्यात् संयोग विश्लेष काल संस्कार युक्तिभि । च क १२।४८

५ कार्य सपादन करने के लिये कभी—कभी आवश्यक हो जाता है कि उसमे वीर्य विरुद्ध द्रव्य की भी भावना दी जाय। इससे उसके गुण व वीर्य मे वृद्धि होती है, हानि नही होती। यथा—मदनफल के कर्म को तीव्र बनाने के लिये आरग्वधादि आठ क्वाथो का योग करना बतलाया है। इससे मदनफल उसमे उष्ण, तीक्ष्ण, व्यवायी, विकाशी गुणो से अपने अनुकूल वस्तु का सग्रह कर के विशेष क्रिया शील हो जाता है, तीव्रता से वमन होता है। विपरीतता नही आती। अत. —

विरुद्धवीर्यमप्येषां प्रधानानामबाधकम् ।
अधिक तुल्यवीर्ये हि क्रियासामर्थ्यमिष्यते ॥ च क १२।४५

६ द्रव्य व उसके कल्प को बलवान बनाने के लिये उसमे अनुकूल रस गध को मिला कर रोगी के सेवन योग्य बनाना पडता है। हरीतकी, आरग्वध, निशोथ ऐसे द्रव्य है कि सब व्यक्ति सेवन नही कर सकते अत उनके अनुकूल बनाने के लिये उसमे इष्ट गध व रस का सम्मिश्रण करना आवश्यक हो जाता है। जैसे विभिन्न प्रकार के लेह माजून आदि की कल्पना। यथा—

इष्ट वर्ण रस स्पर्श गंधार्थं प्रति चामयम् ।
अतो विरुद्धवीर्याणां प्रयोगमपि निश्चितम् । च क. १२।४६

इस प्रकार से विभिन्न विधियो के द्वारा द्रव्य को रोगानुसार दोप पर कार्यशील वनाने के लिये आवश्यकता होती है कि उसको उपयोगी व आस्वाद युक्त वनाया जाय । यदि ऐसा नही करते तो अच्छी औषधि भी कोई नही खायेगा । आवला जैसे द्रव्य को लेह वना कर च्यवनप्राश का रूप देना । हरड का लेह व माजून वना कर देना इस विधि मे उचित है ।

इस प्रकार प्रयोगोपयोगी वनाने के लिये उचित कार्य कर के औषधि मे वलाधान करना चाहिये । महर्षि चरक ने कल्प स्थान मे इसकी अच्छी विधि वतलाई है । उनमे से कुछ का उल्लेख यहा किया गया है ।

विरेचन कर्म और उसके भेद—

वमन व विरेचन मे क्रिया कर्म के आधार पर तीन भेद किये गये हैं । यथा—१. तीक्ष्ण वेग २ मृदु वेग और ३. मन्द वेग ।

तीक्ष्ण वेग—यदि औषधि देश, काल, भाजन व अन्य क्रमो के अनुकूल होती है तो तीक्ष्ण विरेचन कर्म होता है और उसके निम्न लक्षण होते हैं ।

वमन	विरेचन
१. **सुखं क्षिप्रं महावेगम्**	१. **सुख क्षिप्रं महावेगम्**
२. **असक्त प्रवर्तनम्**	२. **असक्त प्रवर्तनम्**
३. **हृदये न च रुक् करम्**	३ **पायौ न च रुक् करम्** **नाति ग्लानि कर पायौ**
४. **अंतराशय मक्षिणवन् कृत्स्नं दोषं निरस्यति ।**	४. **अंतराशय अक्षिणवन् कृत्स्नं दोषं निरस्यति**

अर्थात्—वमन काल मे जो औषधि सुख पूर्वक महावेग के साथ दोप को निकाल दे, विना रुके वमन करावे, हृदय मे वेदना कारक न हो और भीतर के किसी भाग पर विना हानि पहुचाये सुख पूर्वक वमन करा दे वह तीक्ष्ण [1]वेग की औपधि है ।

२ विरेचन की औषधि जो कि सुख पूर्वक महावेग के साथ मल निकालती हो व विना रुके मल निकाले व गुद प्रदेश मे हानिकर प्रभाव न डालती हो और आत्र आदि मे विना खराश डाले विना हानि पहुचाये मल निकाले उसे तीक्ष्ण वेग की औपधि कहते है ।

---

१ **सुखं क्षिप्रं महावेगमसक्तं यत् प्रवर्तते ।**
नाति ग्लानि कर पायौ हृदये न च रुक् करम् ।
अन्नाशयमनुक्षिण्वन्कृत्स्न दोषं निरस्यति ।
विरेचन निरुहो वा तीक्ष्णमिति निर्दिशेत् ।

अत चरक व सुश्रुत ने लिखा है कि जो औषधि जल अग्नि कीट से दूषित न हो। देश, काल, भाजन आदि सस्कारो से युक्त हो और तुल्य वीर्य द्रव्यो से भावित हो और ईषदधिक मात्रा मे देने से तीव्रता से कार्य करती हो वह तीक्ष्ण वीर्य वाली औषधि कही जाती है।

मध्य वीर्य वाली औषधि—उपर्युक्त गुणो से युक्त और मध्यम रूप से कार्य करने वाली औषधि मध्य वीर्य औषधि कहलाती है।

मन्द वीर्य औषधि—स्नेहन स्वेदन से रहित व्यक्ति पर जो औषधि हीन मात्रा मे देने पर मद कार्य करती है वह मद औषधि कहलाती है।

विरेचन विधि—१ स्नेहन व स्वेदन करके औषधि देना चाहिये।

२. एक बार औषधि दी हुई पच जाय या निकल जाय वमन हो जाय तो उस व्यक्ति को पुन औषधि[२] देना चाहिये।

३. वमन की औषधि देने पर बिना[३] पचे हुये ही निकल आना चाहिये।

४. विरेचन मे पच कर निकलना चाहिये और निम्न मार्ग से निकलना चाहिये।

५. जो पुरुष दीप्ताग्नि वाला हो और बहु दोष वाला हो और स्निग्ध गुण से युक्त हो और दु शोध्य हो उसको प्रथम दिन वमनोपग या विरेचनोपग औषधि देकर दूसरे दिन उसको औषधि देना चाहिये।

६. जो रोगी अल्प बल वाला हो, बहु दोषी हो और दोष पाक हो जाने से सामान्य रस आदि द्रव्य से ही विरेचित हो जाता हो उसको आहार द्रव्य की रस कल्पना करके विरेचन औषधि देना चाहिये। इस प्रकार के रोगी मे पूर्व से सब बातो का पता लगा कर तब दवा देना चाहिये अन्यथा वह अधिक विरेचित होकर नि सत्व हो जाता है।

७. वमन या विरेचन मे यदि प्रमाणानुकूल दोष निर्हरण न हो तो उस को जिसमे दोष शेष रह गये हो पुन भोजनान्तर व पान के द्वारा शेष दोष का शमन करना चाहिये।

८. जो व्यक्ति दुर्बल हो, एक बार शोधित हो चुका हो और अल्प दोष युक्त हो तथा जिसका कोष्ठ अपरिज्ञात हो ऐसे पुरुष को पहले मृदु–औषधि या विरेचनोपग औषधि देना चाहिये।

९ वह विरेचन उचित माना जाता है जो कि मृदु मात्रा मे देने पर भी दोष को निकाल दे किन्तु वह तीक्ष्ण औषधि ठीक नही मानी जा सकती जो कि प्रयोग करने पर प्राण का सकट उत्पन्न कर दे अत सोच विचार कर औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

---

२. देयं त्वनिहृतेदोषेपीते पश्चात् पुनः पुन ।
भेषजं वमनार्थाय प्राय आपित्त दर्शनात् ।

३. अवयवं मन दोषं पच्यमानं विरेचनम् ।
निर्हरेद्वमनस्यातःपाकं न प्रतिपालयेत् ।

१०. यदि रोगी दुर्बल हो और महादोष युक्त हो तो उसे धीरे धीरे बहुत औषधि का प्रयोग करके दोष निकाल देना चाहिये। क्यो कि मृदु भेषज देने पर दोष न निकल कर रोगी की प्राण की हानि कर सकते है।

ऊपर के लिखे विचार चरक कल्प स्थान १२ के है। यह सामान्य विधि की बात है। विशेष विधि के लिये विशेष नियम वहा पर दिये हुए है। चिकित्सक को विचार करते समय इनका ध्यान रखना चाहिये।

११. कभी कभी औषधि दोष रुद्ध होकर न तो नीचे जाती है न ऊपर से निकलती है तब बार बार उद्गार आते है और अग मे वेदना आने लगती है ऐसे समय मे रोगी को स्वेदन करके तब औषधि प्रयोग करना चाहिये।

१२. रूक्ष शरीर वाले, क्रूर कोष्ठ वाले, व्यायाम करने वाले, अनिल प्रकृति वाले तथा दीप्ताग्नि वाले पुरुषो मे औषधि विना विरेचन हुवे ही जीर्ण हो जाती है। ऐसे व्यक्ति मे पहले वस्ति देकर पश्चात् विरेचन कर्म कराना चाहिये।

१३. रूक्षासन करने वाले, दीप्ताग्नि वाले व क्रूर कर्म करने वाले, अधिक परिश्रम करने वाले, पुरुषो मे दोष बिना विरेचन के ही वात, आतप व अग्नि की क्रिया कराने से नष्ट हो जाते हैं अत ऐसे पुरुषो मे दोष शमन के लिये पहले स्नेहन करके वात से रक्षा कर के तब शोधन कर्म करना चाहिये।

१४. अति स्निग्ध शरीर वाले मे स्नेह विरेचन न देकर रुक्ष विरेचन देना चाहिये।

इस प्रकार से चिकित्सक जो देश, काल व शरीर प्रमाण को जानने वाला हो वह उचित विचार करके औषधि देने पर अपराध युक्त नही माना जा सकता। यदि चिकित्सक जरा भी बिना ध्यान दिये सम्यक् प्रकार से औषधि का प्रयोग करता है तो वह दोषी बन सकता है। अत चिकित्सक को अच्छी तरह विचार करके तब औषधि चाहे वमन हो या विरेचन हो प्रयोग करना चाहिये।

वमन व विरेचन सबधी अन्य कई बातो की जानकारी आवश्यक है। जिनका विवरण चरक सि. अ. १ व सुश्रुत चि अ. ३४ व ३५ मे दिया गया है। यह विषय विशद रूप मे यहा पर वर्णित है वहा पर ही देखना चाहिये। विशेष सामान्य बाते यहा पर दी जा रही है।

वमन—वमन मे वेग का क्रम निम्न है। जघन्य वेग ४, मध्य वेग ६ और प्रवर वेग ८ होना चाहिये और निरुपद्रव निकलना चाहिये। वमन के अत मे पित्त का निकलना शास्त्रीय दृष्टि से उत्तम है। पित्तान्त वमन उचित माना गया है।

विरेचन—१. जघन्य वेग १०, मध्य वेग २० व प्रवर वेग ३० तक मानते है। कफान्त विरेचन माना गया है। औषधि मात्रा—विरेचन व वमन मे मात्रा का क्रम तो रोगी की स्थिति पर व रोग की तीव्रता पर निर्भर करता है।

परंतु क्रमश' मात्रा—चूर्ण की विरेचन में १ तोले, २ तोले व ३ तोले हैं। क्वाथ की ६,१०, २० तोले द्रव की मात्रा है।

वमन में चूर्ण की मात्रा—क्रमश १ तोले। २ तोले व ३ तोले ४ तोले है।

क्वाथ की मात्रा—१०, २०, ४० तोले की या चिकित्सक की आज्ञानुसार कम या अधिक होना चाहिये।

वमन होने के लक्षण—वमन मे क्रमश कफ, फिर पित्त व अत मे अनिल निकले व हृत, पार्श्व, मूर्द्धा, इन्द्रिय, मस्तिष्क व स्रोतसो की शुद्धि होकर लघुत्व हो जाय वह उचित है।

विरेचन—स्रोतो विशुद्धि, इन्द्रिय प्रसन्नता, लघुत्व, उर्जा, अग्नि की सम्यक् स्थिति और मल के निर्गम में पहले विट फिर पित्त व अत में कफ निकले व वायु अत में निकले तो सम्यक् विरक्त के लक्षण माने गये हैं।

शोधन के ऋतु—क्रमश प्रावृट आपाढ व श्रावण।
शरद कार्तिक व मार्गशीर्ष।
वसत फाल्गुन व चैत्र यह काल दोष शोधनार्थ उत्तम माने गये हैं। इनमे शोधन देना चाहिये।

औषधि जीर्ण होने के लक्षण—

अनुलोमोऽनिल स्वास्थ्यं क्षुतृष्णोर्जो मनस्विता।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गार शुद्धि जीर्णौषधाकृतिः। च सि. ६

उपद्रवा — आध्मानं परिकर्तिश्च स्रावो हृद्गात्रयो ग्रह।
जीवादानं सविभ्रंश स्तभ सोपद्रव क्लम.।
अयोगादतियोगाच्च दशैता व्यापदो भवेत्।

साविशेष औषधि चिन्ह—

क्लमो दाहोऽङ्गसदन भ्रमो मूर्च्छा शिरोरुजा।
अरतिर्बल हानिश्च सावशेषौषधाकृति। च सि

नियम—सामान्य रूप से स्निग्ध स्विन्न शरीर वालो को ही शोधन कराना चाहिये। इसके बाद भी सम्यक् योग मे ठीक लक्षण होते हैं और अयोग मे आध्मान, स्तभ, क्लम, हृद् ग्रह, गात्र ग्रह, स्थान विभ्रश होते हैं। अति योग मे परिकर्त, स्राव, जीवादान, गुद–भ्रश आदि लक्षण चलते हैं। अत सावधानी से औषधि का सेवन करना चाहिये। यह विवरण विशेष रूप मे सिद्धि स्थान मे अ ६ व ७ मे वर्णित हैं वहा पर विशेष रूप से देखना चाहिये।

अधः काय संशोधन अथवा विरेचक द्रव्य व उनका कार्य—

विवरण—पूर्व मे बतलाया जा चुका है कि सशोधन कर्म कई प्रकार का होता है। यहा पर जिस सशोधन कर्म का विवरण दिया जायगा वह स्पष्ट परिभाषा के रूप मे यहा पर व्यक्त किया जायगा।

अध: काय संशोधन—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर उदरस्थ मल को शरीर के अधोभाग से निकाल देते है उनको अध काय सशोधन या विरेचन द्रव्य कहते हैं।

द्रव्य——जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी गुण युक्त होते हैं वे अपने गुण वीर्य के द्वारा शरीर से मल का निष्काशन अधो मार्ग से कराते हैं।

इस प्रकार के द्रव्य विभिन्न जातीय होते है। चरक सुश्रुत व वाग्भट ने इनके विभिन्न विभेद किये हैं। यथा—

मूल विरेचक—श्यामा, त्रिवृत, श्वेत त्रिवृत, दती, द्रवती, सप्तला, शंखिनी, विषाणिका, गवाक्षी, छागलाद्मी, स्नही, स्वर्ण क्षीरी, चित्रक, अपामार्ग, कुश कास। सु० सू० ३८

त्वक् विरेचक—पूतीक त्वक्, तिल्वक त्वक्, पाटला त्वक्। सुश्रुत

क्षीर विरेचक—स्नूही अर्क क्षीर सप्तच्छद क्षीर, ज्योतिष्मती क्षीर।

फल विरेचक—पूगफल हरीतकी आमलकी विभीतक नीलिनी चतुरंगुल एरड पूतीक।

पत्र विरेचक—चतुरंगुल व पूतीक।

फल रज विरेचक—कम्पिल्लक।

विरेचन के क्रम के अनुसार भेद करके कई द्रव्य का नाम दिया गया है। यथा—

विरेचनोपग—द्राक्षा गभारी फल, हरीतकी, आमलक, विभीतक, बडी वदर, छोटी मीठी वदर, कर्कंवू और पीलू का फल विरेचक हैं।

भेदनीय गण—निशोथ, एरड, अर्क, कलिहारी, चित्रक, करज, शखिनी, कटुकी, स्वर्ण क्षीरी। चरक

संशोधन—

तैल विरेचन—एरड तैल, जयपाल तैल, दतीवीज तैल, जैतून का तैल आदि।

इसके अतिरिक्त कई गण हैं जिनके द्रव्य विरेचन कर्म कराने वाले माने जाते है। यथा—

चरक संहिता—विरेचनोपग, भेदनीय गण।

सुश्रुत संहिता—अधोकाय सशोधन गण।

वाग्भट संहिता—विरेचन गण।

इनके अतिरिक्त अष्टाग हृदयकार ने दुग्ध व मूत्र को भी विरेचन कहा है।

चरक संहिता—विमान स्थान अध्याय ८ व सूत्र स्थान अ ४ मे व प्रथम अ. मे मूलिनी व फलिनी का विभाजन है।

सुश्रुत सू अ ३८ व ३९ मे सामान्य गण व सशोधन गण का विवरण है।

अष्टांग हृदय में—विरेचन द्रव्य का विवरण सूत्र अध्याय मे मिलता है।

इस प्रकार गणों मे लिखित औषधियों का विवरण मिलता है। इनके अतिरिक्त कई द्रव्य है जो कि विरेचन कर्म कराते हैं और उनका विवरण इन गणो मे नही आया है। इनको प्रकरण के अनुसार हम आगे देगे।

विरेचन कर्म व उसके भेद—आयुर्वेद के साहित्य मे जितनी संज्ञायें इस सबध की मिलती हैं उनमे उचित विभाजन किया जाय तो निम्न कार्य क्रम बनते हैं। १. मृदु विरेचन २. मध्य विरेचन ३. तीक्ष्ण विरेचन।

इन तीनो का पुन दूसरे दृष्टि कोण से विचार करे तो क्रिया के आधार पर निम्न क्रम बनते है।

१ अनुलोमन व सर २ स्रसन ३. भेदन ४. विरेचन ५. तीक्ष्ण विरेचन या पित्त विरेचन ६ लवण विरेचन।

इसके अतिरिक्त ऋतु, काल व शरीर के आधार पर कई सज्ञायें मिलती हैं इनका वर्गीकरण इस रूप मे करते हैं।

ऋतु काल के आधार पर

१ ग्रीष्मकाले विरेचनम् २ वर्षासु विरेचनम् ३. जलदात्ययविरेचन।

शरीर क्रम पर—सुकुमार विरेचन, ईश्वराणा विरेचन, निरपाय विरेचन।

स्थानीय विरेचन—१ उदर विरेचन २. पक्वाशय विरेचन।

द्रव्य भेद से विरेचन भेद—१. स्निग्ध विरेचन या स्नेह विरेचन २ रूक्ष विरेचन।

सामान्य क्रिया के रूप में—१. पुरीष भेदी या विट् भेदी २. विरेचनोपग।

इस प्रकार के विचार व भेद इससे दिखाई पडते हैं। आधुनिक काल मे भी विरेचन के दो ही प्रधान भेद मिलते हैं यथा—

१. मृदु विरेचन २ तीक्ष्ण विरेचन।

इस प्रकार के भेदो की कल्पना का कारण विभिन्न दृष्टि कोण से वस्तु व क्रिया का ज्ञान होना समझा जाता है इस विषय का प्राचीन अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है।

इतिहास—ईसवीय सन् से कई सहस्र वर्ष पूर्व भारतीय चिकित्सको ने भारत मे औषधियो के कर्म व गुण का अध्ययन किया था और उनका विशद विवेचन भी किया था। वैदिक काल से लेकर निघटु काल तक इस विरेचन कर्म का अध्ययन करके तब विशेष विभाजन कर्म का किया था। वैदिक काल की औषधियो मे इसका सामान्य विवरण मिलता है। किन्तु सहिता काल मे इनका प्रयोग व विविध रूप से प्रयोग दिखाई पडता है। शरीर भेद से सुकुमार विरेचन, सामान्य विरेचन व कोष्ठ भेद से मृदु मध्य व तीक्ष्ण विरेचन तथा विभिन्न ऋतु मे विरेचन के क्रम से वर्षा, ग्रीष्म व शीत ऋतु मे विरेचन के द्रव्य व कर्म का अध्ययन किया था। इनकी विधि इनकी व्यापत्तिया और इनका परिमार्जन के क्रम का भी अध्ययन किया था और पुन. वस्तु के मूल का

विरेचन, फल विरेचन, त्वक् विरेचन, रज विरेचन व क्षीर विरेचन आदि तक का अनुशीलन किया हुवा पाते हैं। निघटु मे तो प्रत्येक द्रव्य के अध्ययन का क्रम था अतः यह विवेक अधिक पल्लवित हुवा था और आज तक यह विचार चल रहा है जिसका आधार भी यही है। चरक, सुश्रुत व वाग्भट ने इसके गण बनाये व क्रम निर्धारण किया। यहा तक कि किस किस रोग मे इसका प्रयोग किया जाय और किस रोग मे न किया जाय यह भी बतलाया था। अत. विरेचन कर्म का अध्ययन विशेप रूप मे किया गया था। अन्य चिकित्सा पद्धतियो पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि यह साहित्य ईस्वीय सन् से पूर्व सामान्य रूप मे ज्ञात था। सबसे पहले प्लेटो ने इसका उल्लेख किया था। हिपोक्रेट ने इसके कर्म को एक पक्षी से सीखा था। यह यूनानी चिकित्सा के इतिहास से ज्ञात होता है। बुकरात या हिपोक्रेट के विचार धारा वाले हर एक रोग मे विरेचन देते थे और अन्य विरेचक औपधि के ज्ञान के अभाव मे जैतून का तेल ही व्यवहार मे अधिक आता था। विशेप रूप मे १९ वी शताब्दी मे इसका अध्ययन हुवा और विशेप रूप में इन पर विवेचन किया गया।

मिश्र देश मे भी चिकित्सा मे विरेचन का प्रयोग होता था। इस रूप मे जितना यह कर्म भारतीय चिकित्सको को ज्ञात था उतना इनका ज्ञान प्रौढ न था। विशद विवेचन के आधार पर भारतीय विरेचन कर्म का विज्ञान अधिक प्रौढ था।

सामान्य रूप से विरेचन देने के कर्म मे स्नेहन का विशेष महत्व था और आज भी है। इसके बाद सीधे विरेचन न करा कर विरेचनोपग कर्म का प्रयोग पहले करते थे। फिर कोष्ठ की परीक्षा करके तब मृदु, मध्य व तीक्ष्ण विरेचन का उपयोग करते थे।

इसके अतिरिक्त निरुपद्रव विरेचन का भी व धनी मानी पुरुषो के कोष्ठ का अध्ययन करके वैसा ही विरेचन कराते थे।

इस प्रकार भारतीय चिकित्सक विरेचन की क्रिया का उपयोग सबसे पहले से जानते थे। फिर देखते हैं कि इन्होने अनुलोमन, स्रसन, विरेचन भेदन ऐसा विभाग करके उचित परिभाषा बनाई। इनकी औषधियो के गण निर्माण किये। इनसे होने वाली लाभ हानि का भी लेखा जोखा किया। अत' इस विषय मे कोई भी क्रम अवशेष न रह गया। इनका विवरण हम आगे देने का क्रमशः विचार उपस्थित करेगे।

अधः काय संशोधन—

सामान्य रूप से अधोभाग सशोधन के प्रधान चार भेद है। यथा—

१.	अनुलोमन	इनको पुन दो प्रधान भागो मे बाटा जाता है।
२	स्रसन	१. सामान्य विरेचक २ तीव्र विरेचक
३	भेदन	सामान्य विरेचन मे अनुलोमन व स्रसन आते है और
४.	विरेचन	विशेष विरेचन मे भेदन व विरेचन आते हैं।

हर प्रकार के विरेचन का अपना अपना क्षेत्र होता है और उनका कार्य विशिष्ठ रूप से शरीर के विभिन्न स्थानो पर कार्य करके सपादन करना होता होता है । इनका विवेचन आगे परिभाषा सहित करेगे ।

अनुलोमन–१. **कृत्वापाकं मलाना च भित्वा बधमधोनयेत् ।**
तच्चानुलोमनं प्रोक्त यथा प्रोक्ता हरीतकी ।

स्रंसनम्– २. **पक्तव्य यदपक्त्वैवश्लिष्ठ कोष्ठे मलादिकम् ।**
नयत्यधः स्रसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः ।

भेदनम्– ३. **मलादिकमबद्ध वा बद्धं वा पिंडितं मलै ।**
भित्वाऽधः पातयति तद्भेदन कटुकी यथा ।

विरेचनम्– ४. **विपक्व यदपक्व वा मलादि द्रवता नयेत् ।**
रेचयत्यपितद्ज्ञेयं रेचन त्रिवृता यथा ।

ऊपर की परिभाषा के आधार पर यह स्पप्ट कहा जा सकता है कि १. **अनुलोमन**–उदर की पाक क्रिया पर विना बाधा डाले मल वध को भेदन कर के मल का अधोनयन करता है ।

२. **स्रसन**—यह पाचन क्रिया पर प्रभाव डाल कर पक्तव्य को विना पकाये निकाल कर भल बध को तोड़ कर अधोनयन करता है ।

३. **भेदन**—भेदन मे पाचन क्रिया का अवरोध, शोषण क्रिया मे वाधा, अबद्ध व बद्ध मल का निकलना, वध भेदन करना व आत्र की पुरस्सरण क्रिया को वढाना और बल पूर्वक मल का गुदा मार्ग से निकालना ।

४ **विरेचन**—विरेचन मे पाचन क्रिया का रोध, शोपण क्रिया का रोध, श्लेष्मल कला से स्राव उत्तेजन पूर्वक करना व आत्रिक कला से क्लेदक श्लेष्म का निकालना, द्रवत्व वृद्धि करना व आत्र की पुरस्सरण क्रिया वढाना व जोर से रेचन करना । यह कार्य होते है ।

इस प्रकार देखा जाता है कि मृदु विरेचन मे पाचन क्रिया पर विघात नही होता या मामूली होता है और क्रिया हो जाती है। विरेचन मे पाचन कर्म, आत्र के शोषण कर्म, आत्र की पुरस्सरण गति मलाशय की क्रिया पर प्रभाव पडता है और तव रेचन होता है ।

विरेचक औषधियो का कर्म—अत स्पष्ट है कि विरेचक औषधियां आमाशय, पक्वाशय, क्षुद्र आत्र, वृहदात्र और मलाशय के ऊपर प्रभाव डालती है और क्रमश निम्न कार्य विघात होते है ।

१.	पाचन कर्म विघात	३	आत्र की पुरस्सरण गति वढाना
२.	शोषण कर्म विघात	४	द्रवत्व की वृद्धि करना तव विरेचन करना आदि आदि ।

चरक ने इसको वहुत ही स्पष्ट रूप मे विवेचन करके कल्प स्थान मे अपना विचार दिया है।

इनको हम चरक के शब्दो मे निम्न प्रकार से प्रकट कर सकते है। यथा—विरेचन औषधिया शरीर पर द्विविध प्रकार से कर्म करती है। यथा—स्थानिक Local २. सर्वांगिक General।

काय संशोधनम्—स्थानिक व सर्वांगिक कर्म को निम्न प्रकार से लिखा गया है।

द्रव्य—उष्ण, तीक्ष्ण, व्यवायी, विकाशीन्यौषधानि स्ववीर्येभ्य

१. **हृदय मुपेत्य**—(हृदय व मस्तिष्क पर सीधे प्रभाव डालना)

२. **धमनीरनुसृत्य स्थूलाणु स्रोतोभ्य. केवल शरीर गत दोष सघातम्।** (सूक्ष्म व अणु स्रोतो पर प्रभाव डालना व सपूर्ण शरीर गत दोष को निकालने की चेष्टा करना)

३ **आग्नेयत्वाद् विष्यदयति** (आग्नेय गुण के प्रभाव से श्लेष्मल कला से स्राव कराना)

४. **तैक्ष्ण्यात्विच्छिदति** (तीक्ष्णता से शरीर दोष को विच्छेदन करना आदि)

५ **सलिल पृथिव्यात्मकत्वात् अधोभाग प्रभावात्औषधस्य अध प्रवर्तते।**

अधोग कर्म करना और रेचन कर्म मे सहायक होना आदि। यह सब क्रियाये इतनी स्पष्ट है कि जिनके विषय मे विवेचन करना वडा ही सरल है।

ऊपर के उद्धरण मे स्पष्ट रूप से सारे कर्म का विवरण दिया गया है। वह इस रूप मे प्रतिफलित है कि वात सस्थान पर प्रथम असर करना, उसके वाद रस वाहिनी व रक्त वाहिनी पर प्रभाव डालना। उष्ण क्रिया से क्षोभ करना, आम पक्वाशय की कला से रसस्राव कराना, मल का वध पुरस्सरण गति से तोडना, आमाशय की क्रिया वढ जाना, आत्र की क्रिया वढना, अपान क्रिया द्वारा मलाशय की क्रिया वढाना व मलाशय से वलपूर्वक मल का निकालना।

- इस प्रकार चरक के मत से मल विरेचक औषधि किस प्रकार कर्म करती है यह स्पष्ट हो जाता है। अव हम क्रमश एक एक का विवेचन करेगे।

विरेचक प्रभाव औषधि किस प्रकार करती है—

१ भोजन मे शोषित न होने वाले द्रव्य की मात्रा वढा कर, पुरस्सरण की क्रिया मे उत्तेजन लाकर के।

२. आतो के जलीयाश के शोषण को रोक कर।

३ क्षुद्र आत मे क्षोभ उत्पन्न कर के प्रत्यावर्तित कर्म को वढाकर और पुरस्सरण कर्म की वृद्धि करके।

४ आतो पर सीधे प्रभाव डाल कर के साम्वेदनिक नाडी मडल पर प्रभाव डाल कर।

विरेचन देने की सामान्य आवश्यकता—

१ प्रधान रूप से मलावरोध कम करने के लिये। आतो से मल निकालने के लिये।

२ शोथ कम करने के लिये, (शरीर से जलीयाश कम करने के लिये)

३. रक्त चाप को कम करने के लिये ।

४. ज्वर आदि कई रोगो को दूर करने के लिये ।

५. शरीरस्थ विष व अन्त्र के विषाक्त प्रभाव को कम करने के लिये ।

अत निम्न रोगो मे भी विरेचन देने की सम्मति है । किन किन रोगो मे विरेचन करना चाहिये ।

अनुलोमन व सर लैग्जेटिव्स--(Laxatives)

अनुलोमन--इसके पर्याय अनुलोमन व सर मृदु विरेचन, मुलय्यन (यूनानी)

परिभाषा—जो द्रव्य उदर मे जाने के वाद मल को कुछ ढीला कर के निकाल देती हैं उन्हे अनुलोमन कहते है । यथा—

कृत्वापाकं मलानां च भित्वाबंधमधोनयेत् ।

तच्चानुलोमनं प्रोक्तं यथा ज्ञेया हरीतकी । शा०

सुश्रुत—सरोऽनुलोमनं प्रोक्तम् । सु० सू० ४१

परिभाषा से स्पष्ट है कि वह द्रव्य अनुलोमन है जो कि पाक को कर के उनके वध को ढीला कर के मल को अधोभाग से निकाल दे ।

द्रव्य—चरक ने जिन द्रव्यो को विरेचनोपग लिखा है वह सब की सब मृदु विरेचक हैं । यथा—

विरेचनोपग—द्राक्षा, गभारी, फल, हरीतकी, आमलक, विभीतक, छोटी वेर, बडी बेर, पक्व पीलू फल, पक्व फालसा, कर्कंधू, राजबदर ।

अन्य द्रव्य—पके सेव, पकी नास पाती, इमली, अजीर, आलूबुखारा, श्लेष्मातक, उन्नाव, अमरुध, गुलाब के फूल, कासनी, त्रायमाणा, वास्तूक बीज, वच, पटोल, स्वरस, कारवेल्लक, इसबगोल ।

तैल—एरड तैल, अतसी तैल, जैतून का तैल, वादाम का तैल ।

यूनानी वैद्यक मे जो विचार किये गये हैं वह विभिन्न दोष के लिये विभिन्न प्रकार का है । यथा—

श्लेष्म पाचक मुंजिस—मुजिस की वह परिभाषा है जो कि विरेचनोपग की है । यथा—

मुंजिस—वह द्रव्य जो दोष को सघात भिन्न कर के पतले को गाढा या गाढे को पतला करके निकाल दे मुँजिस कहलाती है (दोषमृदुकरण)

श्लेश्म पाचक—मधुयष्टि, अजीर, सौफ, अलसी, लिसोढ़ा, सिकजवीन, वालछड, उन्नाव, गावजवा, शतपत्री, मुनक्का ।

पित्त पाचक—तरवूज का रस, त्रपुस स्वरस, कुष्माड स्वरस, आलूवुखारा, इसवगोल, इमली, कासनी पत्र, पालकी के वीज, लोणिका या कुलफा के वीज, खरवूज व तरवूज के वीज, शुक्त-शार्कर, पित्त पापडा, नीलोफर, कमल पुष्प, काकमाची ।

वातदोष पाचक या मुंजिस सौदा—मधुयष्टि, पित्त पापडा, हसराज, शतपुष्पा, यवास-शर्करा, श्लेष्मातक, उन्नाव, गोजिह्वा या गावजवा आदि।

विरेचनोपग का ठीक यूनानी शब्द—मुलय्यन है—इसका अर्थ 'मल-मार्दव-कर' है। जो द्रव्य आत के मल को मुलायम करके निकालने मे सहायक होते हैं उन्हे मुलय्यन कहते है।

विरेचन शब्द के लिये यूनानी मे मुसहिल अथवा सारे शरीर से दोष निकालने वाला द्रव्य माना जाता है।

क्रिया—इस वर्ग के द्रव्य सामान्यतया आत मे अत्यल्प प्रभाव डाल कर मल सारक होते हैं। इनका कार्य निम्न होता है।

१. आत पर प्रभाव डाल कर सामान्य गति वृद्धि करना व मल ढीला करना।

२. मल ढीला होने पर मलाशय की क्रिया पर सामान्य प्रभाव डाल कर मल त्याग मे सरलता पैदा करना।

इनमे मधुर रस वाली औषधिया अधिक होती है। यह अपने स्निग्ध गुण, पिच्छिलता के कारण शोषित नही होती। आत्र व तत्स्थानीय पेशियो पर भार व दवाव डालती हैं और थोडा उत्तेजन मे प्रभाव डालती है मल निकालती है। यथा—मुनक्का, अजीर, फालसा, आरग्वध, इगभारी फल दूध, घृत, इक्षुरस।

२. **मधुर व अम्ल रस वाली औषधिया**—यह स्निग्धता व तरलता की वृद्धि करके आत की शोषण क्रिया पर प्रभाव डालती है। द्रव अधिक निकाल कर मार्दव पैदा करती है। गाढा मल पतला होकर सरलता से निकल आता है। यथा—इमली, आलूवुखारा।

३ **पिच्छिल औषधिया**—आत्र मे जाकर स्निग्धता व पिच्छिलता पैदा करती हैं। शोषण पर प्रभाव डालकर स्थानिक चिक्कणता पैदा कर के मल मात्रा वृद्धि व निष्कासन के लिये उत्तेजन करती हैं। यथा—श्लेष्मातक, ईसबगोल, मार्तीक तैल या (पैराफीन) एरड तेल, जैतून का तेल।

४. **मधुराम्ल कषाय रस वाली औषधियां**—स्निग्धता द्रव वर्द्धनता व कषाय रस की होने से शोषण पर प्रभाव डालती है और मल की मात्रा वढ जाती है और मल निकलता है। यथा—हरीतकी, आमला, विभीतक, बिल्व फल आदि।

इस प्रकार देखने मे आता है कि यह औषधिया अपने विभिन्न गुणो के कारण अपना विभिन्न प्रभाव डाल कर के अपना अपना कार्य करती है। ठीक इसी प्रकार के विचार आधुनिक चिकित्सको के है। किन्तु इतने दूर तक विचार नही किया जाता। वह सामान्य रूप से लैग्जेटिव अर्थ मे मामूली मल निकालने वाली औषधि मानते है। यथा—

Laxatives--

There are mostly domestic medicines and some time a Part of the usual food stuff (cellulose & roughes) which are not being readity absorbed, cause a mild stimulation of the muscular coat of the intestine relaxing the bowels (A R Majumdar)

अर्थात्--मृदु विरेचक द्रव्य सामान्यत वह है जो कि सामान्य रूप से घर मे पाई जाती है या आहार का अंश होती है जैसे काष्ठीज या सेल्यूलोज जो कि सरलता से शोषित नही होती और इनके स्वरूप मे मल के भाग को वढा देती है व आत की गति मे वृद्धि सामान्य रूप मे करके पेट को साफ करती है। मजूमदार

अत सामान्य रूप से अनुलोमक औषधि का प्रयोग आत के भीतर न पचने वाले पिच्छिलता पैदा करने वाले, स्निग्धता पैदा करने वाले व अपने प्रभाव से सामान्य रूप से आत की गति वढा कर के मल का भार वढाती है जिससे मलाशय पर प्रभाव पडता है और मल त्याग हो जाता है। सुश्रुत ने 'सर' यह सज्ञा दी है। सुख विरेचन, मृदु विरेचन यह शब्द इसके लिये आये हैं।

स्रंसन--सिम्पल परगेटिव्स---

पर्याय--स्रसन, स्रसी, मृदु विरेचक, शोधनम्, सरम्, सरणम्, सुखविरेचनम्।

निष्पत्ति --स्रस शब्द 'स्रसु अध पतने' इस धातु से बनने के कारण पतनात्मक कार्य का बोधक है।

परिभाषा--- पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्ट कोष्ठे मलादिकम्।
नयत्यधः स्रंसनं तद् यथा स्यात् कृतमालकम्। शा०

अर्थात्--जो द्रव्य उदर मे प्रयुक्त होने पर कोष्ठ मे के लगे मल को जो कि पचने वाले होते है उनको विना पकाये ही वाहर निकाल देते हैं। उसे स्रंसन कहते हैं। यथा--अमलतास।

क्रिया--स्रसन द्रव्य महास्रोतस मे अनुलोमन मे तीव्र कार्य करते हैं। यह द्रव्य पाचन सस्थान की पाचन क्रिया मे विघात डालते हैं और पचने वाले द्रव्य जो महास्रोतस मे होते हैं उनको विना पचे निकालने की चेष्टा करते हैं। अत पाचन कर्म मे विघात पहुचाते है। पाचन कर्म मे अन्न का सूक्ष्म विभाजन व अन्न सघात को भेदन द्रव्यान्तर रूप धारण करना व शोषण सम्मिलित है। अत. इन क्रियाओ पर विघातक असर पडता है। वद्ध या अवद्ध मल का निस्सारण करना आत की पुरस्सरण गति पर असर डालना और अधोनयन कर्म करना यह सब इसमे सम्मिलित है।

द्रव्य का सगठन--प्राय इस कर्म वाले द्रव्य आप्य व पार्थिव महाभूत प्रधान होते हैं।

द्रव्य संग्रह—अमलतास, सनाय, एलुवा, कम्पिल्लक, गोरोचन, रेवद चीनी, अम्लिका। अम्ल वेतस, सुरजान, श्वेत निशोथ। चाक्षुष, बिल्वफल, गुलाव के फूल, गुलकंद, त्रायमाणा, अपराजिता, त्रिफला, कालमेघ, वरुण, घृत, मक्खन, दुग्ध आदि।

तैल—एरण्ड तैल, मार्तीक तैल, जैतून का तैल, अतसी का तैल।

आसव अरिष्टों में—धातृ अरिष्ट, अभयादि क्वाथ, रास्नादि क्वाथ, अमलतास की अवलेहिका।

अमलतास की अवलेहिका—

योग—परिपक्व अमलतास लेकर निंबू के रस मे भिगो दिया जाता है रात भर रहने के बाद उसको प्रात काल मसल कर कपडे से छान करके उसमे यथानुभव शर्करा व अल्प काला नमक मिला कर पकाते है। यह गाढ़ा हो जाता है तव अवलेह की तरह १तोले की मात्रा मे चाटने पर साफ मल लगता है। स्वाद मे भी चटनी की तरह होने से रुचिपूर्वक हर प्रकार के रोगी वाल, वृद्ध व राजमान्य व्यक्ति खाते है, शरीर की मात्रा व गठन के अनुसार मात्रा वढ़ाई जाती है। जैसा कोष्ठ हो वैसा ही मात्रा का क्रम होता है।

त्रिवृतावलेह—एक पाव त्रिवृत का चूर्ण। अमलतास का छना गूदा १ पाव। निंबू का रस ४० तोला। शर्करा १ सेर। काला नमक २ तोले।

विधि—निंबू के रस मे अमलतास को भिगो करके मज्जा को कपड छान कर लिया जाय। फिर शर्करा की चासनी करके इसमे अमलतास का गूदा डाल करके निशोथ व काला नमक डाल कर के फिर चासनी गाढी कर ली जाय तो अवलेहवत् वन जाता है और वह आसानी से चाटने योग्य तथा देर तक रखने योग्य वन जाता है और प्रयोग मे सौकर्य होता है।

मात्रा–१ से २ तोले तक।

गुलकंद—१ से ३ तोले तक प्रयोग करने पर स्रसन कर्म करता है।

भेदनम्—

पर्याय—भेदनम्, भेदी, पुरीष भेदी आदि।

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे जाकर वद्ध मल या अवद्ध या गाढे पिंडित मल के वध को तोड करके पतला बना कर वाहर निकालता है वह भेदन कहलाता है। यथा—कटुकी। यथा—

> **मलादिकमबद्धं वा वद्धं वा पिंडितं मलं।**
> **भित्वाध पातयति तत् भेदनं कटुकी यथा।** शा०

ऊपर की परिभाषा शार्ङ्गधर की है। प्राय यह ठीक वैठता है। इसमे निम्न क्रिया होती है। यथा—१. पाचन क्रिया पर विघात २. शोषण क्रिया पर विघात ३ आंत की निर्गमन क्रिया पर प्रभाव ४. आंत की कलाओ से रस

निःस्यदन कराना ५ वेगपूर्वक मल को निकालना आदि यह सब क्रियायें ही मिलकर भेदन कराने मे सहायक होती हैं।

द्रव्य—भेदन वर्ग मे बहुत सी औषधियो का सग्रह शास्त्र मे मिलता है। चरक ने भेदनीय गण ही पृथक लिखा है। सुश्रुत ने श्यामादि गण को भेदन बतलाया है। उसके अतिरिक्त बहुतसी औषधिया है जो कि इस गण मे आती हैं।

भेदनीय गण—निशोथ, अर्क क्षीर, एरड, कलिहारी, दन्ती, चित्रक मूल, करज, शखिनी, कटुकी व स्वर्ण क्षीरी।

श्यामादि गण—श्वेत निशोथ, काली निशोथ, महाश्यामा, दंती, नगिनी, तिलवक, कम्पिल्लक, महानिम्ब, पूग, महादती, इन्द्रायण, अमल्तास, काटा करज घृत करज, हरीतकी, सप्तला, सेहुड, विधारा, स्वर्णक्षीरी आदि १९ औषधिया है जो कि इसमे गिनाई गई है।

इस प्रकार से देखने मे आता है कि भेदन गण मे बहुतसी औषधियो का समावेश किया गया है। विरेचक व भेदक के केवल क्रिया की उग्रता मात्र का भेदन जो कि प्राचीन आचार्य मानते है। द्रव्यो मे थोडासा फर्क होता है।

क्रम—मात्रा मे इनका प्रयोग इन सब क्रियाओ को करता है और बलपूर्वक मल का भेदन कर के मल निष्कासन करता है यही इनका क्रम है। यह औषधिया प्रयोग करने पर पाचन का विघात करके पके अधपके सबको ही जो कि स्रोतस मे होते है प्रभाव डालती है।

आतो की पुरस्सरण गति बढ जाती है और द्रव भी अधिक निकलता है। वेगपूर्वक मल का निःसरण कराने के कारण इनको भेदन की सज्ञा मिली हुई है।

इस प्रकार अष्टाग हृदय मे भी इनके गण और क्रिया का उल्लेख है।

विरेचक औषधिया—

पर्याय—विरेचनम्, तीक्ष्ण विरेचनम्, रेचनम्, तीव्र विरेचनम् आदि।

परिभाषा— विपक्व यदि पक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेय रेचनम् त्रिवृता यथा॥

अर्थात्—जो द्रव्य विपक्व व पक्व मल को पतला करके वेग पूर्वक निकालती है वह रेचन या विरेचन द्रव्य कहलाता है।

क्रिया—इस औषधि का प्रभाव आमाशय व पक्वाशय दोनो की क्रिया पर पडता है। यह पाचन कर्म मे विघान डालते है। अपनी तीक्ष्णता व उग्रता के कारण आत की श्लेष्मल कला से द्रव का निष्कासन अधिक मात्रा मे करा कर द्रव की मात्रा बढा देते है और मल को पतला करते हैं। आत्र की गति बढा करके वेग पूर्वक मल को निकाल देते है। इसका कार्य बहुत उग्र होता है। भेदन की अपेक्षा इसका कार्य तीव्र होता है और वेग भी तीव्र होता है।

इसके कई भेद होते हैं। विरेचन शब्द तीव्र विरेचन के लिये ही प्रयुक्त हुवा है जिसमे द्रव मल निकलता है। इसमे कई भेद हो सकते है। यथा—

१ अधिक द्रव विरेचक २. पित्त विरेचक ३ श्लेष्म विरेचक

पित्त विरेचन भी यूनानी मत से दो प्रकार के भेद है।

१ पीत वर्ण के मल विरेचक २. कृष्ण पीत वर्ण के मल विरेचक

द्रव्य विरेचक वर्ग—१. त्रिवृत, २ दती, ३ द्रवती, ४ आरग्वध, ५. तिल्वक, ६ स्नूही, ७. सप्तला, ८ शखिनी, ९ नीलिनी, १० त्रिफला, ११. कम्पिल्लक, १२ वचा, १३ इन्द्रायण, १४ स्वर्ण क्षीरी, १५ लता करज, १६ समुद्र फल, १७ दती वीज या जयपाल, १८ देवदाली, १९. जीमूतक २०. श्यामा त्रिवृत।

पित्त विरेचक—

१ रस कर्पूर, २. जैलप या जलापा हरड, ३. एलुवा, ४. श्यामा निशोथ, ५. यास शर्करा ६ सनाय, ७ ककुण्ठ, ८. मृद्दार शख, ९ कटुकी।

गाढ़ पित्त विरेचक—इसमे मल का रग गाढा, कृष्ण वर्ण का होता है। इन्द्रायण, उशक नामक गोद, बडी मात्रा मे त्रिफला, कालादाना, जमालगोटा।

श्लेष्म विरेचक—निशोथ, जयपाल, सुधा चक्रमर्द, कम्पिल्लक, वायविडग, जैलप, काला दाना, सातला, रेवंद चीनी, मदन फल आदि।

श्यामादि गण—सुश्रुत ने श्यामादि गण को विरेचक वतलाया है। इसको पूर्व मे लिख आये हैं। वाग्भट ने विरेचक गण लिखा है यथा—दती, त्रिवृत, त्रिफला, इन्द्रायण, स्नूही, शखिनी, तिल्वक, नीलिनी, आरग्वध, कम्पिल्लक, स्वर्ण क्षीरी, दुग्ध व मूत्र।

सुश्रुत ने अधो भाग हर मे ३१ औषधिया लिखी हैं जिनमे ऊपर की औषधियो के अतिरिक्त मेषशृगी, कटभी, द्रवती, पाटला ज्योतिष्मती, वृद्धदारक, कुगा, कास, चित्रक, महानिम्ब, चिरविल्व, अर्क आदि अधिक लिखे हैं। इनको यथा स्थान देखना चाहिये। यह प्राय विरेचक हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से विरेचन के अर्थ मे आने वाली औषधियो का विवरण मिलता है।

लावणिक विरेचन—

आयुर्वेद मे लवण के विरेचनो का विवरण कम मिलता है। जो कुछ हैं वह विरेचन के अर्थ मे लघु विरेचन या स्रसन का कार्य करते हैं। इनमे प्रधान निम्न हैं।

सैंधव लवण, सामुद्र लवण, काड लवण, पत्र लवण, अर्क लवण, नारिकेल लवण व क्षार के योग। **कारण**—लवण विरेचन उत्तम विरेचक नही होते। सामान्य अनुलोमन या स्रसन की तरह का कार्य करते हैं। एक दो वेग लाकर पेट साफ कर देते हैं। यही कारण है कि आयुर्वेद मे इनका स्पष्ट विवेचन व

योग अधिक नही मिलते । इन लवण के योगो मे कई एक का प्रयोग किया जाता है । आधुनिक विचारक भी इसी प्रकार के विचार रखते हैं । यथा--

"All these saline purgatives are cleansing, it is costomory to preced their use by a vegitable or mercurial purgative (Ghosh)

साराश यह है कि ये सैलाइन विरेचक पेट को साफ नही करते । इनका प्रयोग कुछ चिकित्सक व्यवहारात्मक रूप मे प्रयोग करते हैं । अतः अन्य वानस्पतिक या पारदीय लवण का प्रयोग करना उचित माना जाता है ।

लवण के विरेचन विशेष अवस्थाओ मे प्रयुक्त होते हैं और लाभ दायक माने जाते हैं । यथा--

१ यकृत के रोग २ प्लीहा के रोग ।

इनमे जव विवध नियमित रहने लगता है तव अर्क लवण, नारिकेल लवण का प्रयोग करते हैं । यह लवण विना यकृत व प्लीहा को उत्तेजित किये हुवे ही सामान्य विरेचन करा देते हैं । इसके लिये भी वड़ी मात्रा का प्रयोग करना पडता हैं । कभी-कभी आमवात मे भी इसका प्रयोग देखा जाता है ।

२ इसके प्रयोग से आतो की शोषण शक्ति मे रुकावट होकर भीतर के द्रव्य का सग्रह अधिक होता है और यह महास्रोतसीय द्रव्यो के साथ मिलकर पतला मल त्याग कराता है । यदि आतो मे मल त्याग की शक्ति न हो तो मल त्याग भी नही होता । अत लावणिक विरेचन से दस्त आ ही जायेंगे यह निश्चित नही कहा जा सकता ।

३. ऐसी दशा मे जव व कि यह शोषित हो जाते हैं और रक्त मे मिल जाते हैं । रेचन के वदले मूत्र की वृद्धि हो जाती है । पुराने विवंध के रोगियो मे इससे लाभ होने की सभावना कम होती है ।

वास्तव मे लावणिक विरेचन आतो की यान्त्रिक क्रिया को वढा देते हैं और शोषण रोककर के मल क्लिन्न कर के सरण क्रिया कराते हैं । हा इनसे वेदना व उत्तेजना नही होती अत. शोषण रुकने से भार की वृद्धि हो जाती हैं । इससे आत की दीवाल पर असर पड़ता है । आत की आकुचन व प्रसारण की गति मे वृद्धि हो जाती है । अत अर्द्ध तरल द्रव्य वृहदंत्र मे प्रविष्ट होते हैं और उसमे उत्तेजन वढाते हैं और मल त्याग की प्रवृत्ति पर प्रभाव डालकर शीघ्र मल निर्गम होता है ।

कभी-कभी गति के ऊपर प्रभाव पडकर घने लवण द्रव शीघ्र नही घुलते और द्रव वृद्धि करके वार वार मल त्याग कराते हैं तथा घटो निकलने मे समय लग जाता हैं । तव क्रिया और भी वढ जाती है । जव कि कोई रासायनिक लवण कम घुलनशील होता है । लवण विरेचनो से शरीर का तापमान ज्वरावस्था मे कम हो जाता है । लगातार लावणिक विरेचन से आदत हो जाने पर शोषण की गति मे कमी आकर शरीर भार कम हो जाता है ।

इनका शिरा द्वारा प्रयोग विरेचन न करके मूत्रल क्रिया करता है। यह विचार आधुनिक लवण विरेचनो के है।यथा—**सोडियम सल्फेट, सोडियम फास्फेट, सोडियम व पोटेशियम टारट्रेट तथा मेग्नेशियम सल्फेट आदि।**

अर्क लवण—उदर के रोगो मे एक व दो तोले की मात्रा मे देने पर सारक प्रभाव करता है। मृदु कोष्ठ वालो मे तीन या चार दस्त ला देता है। यह यकृत को उत्तेजित नही करता। प्लीहा को भी उत्तेजित नही करता। पित्तस्राव विना कराये ही सारक प्रभाव करता है। क्योकि इसमे अर्कपत्र स्वरस् का ही प्रभाव रहता है। क्षीर का नही।

नारिकेल लवण—पैत्तिक शूल मे पित्त वाहिनी प्रणाली की शोफावस्था में या क्रिया हानि मे लाभ दायक होता है। पित्त शामक व स्रोतस से द्रव सरण करा कर पित्त प्रवाह को होने देता है। अत वेदना वद हो जाती है।

कांड लवण व पत्र लवण—सुश्रुत के काल मे इनका प्रयोग आध्मान और विवध भेदन के लिये किया गया है। उदरशूल व वात व्याधि मे भी प्रयोग है। किन्तु इनका प्रयोग दो तोला या तीन तोले की मात्रा मे गाढा घोल वनाकर प्रयोग करने पर लाभ प्रद अनुलोमन व वात सशमन की क्रिया करता है। इसके प्रयोग से आध्मान कम हो जाता है।

कल्याण लवण—यह कई द्रव्यो के क्षार के साथ सिद्ध लवण है। यह उत्तम अनुलोमक व आध्मान हर व वातहर है। किन्तु इसकी मात्रा बडी होनी चाहिये।

सुश्रुत ने इनके प्रभाव का कारण निम्न दिया है।

विस्यदनाच्चुष्ण भावाच्च दोषाणा च विपाचनात्।
संस्कार पाचनाच्चेवं वात रोगेषु शस्यते। सु. वा चि. अ ४।३३

अर्थात्—क्षार युक्त लवण मे ष्यदन, पाचन, उष्णभाव व सस्कार पूर्वक पचन क्रम से यह स्रोतसो का शोधन करके वातव्याधि के रोगो मे लाभकरता है।

अष्ट लवण व क्षाराष्टक—इनका प्रभाव भी पूर्ववत होता है और अधिक मात्रा मे सारक व वातानुलोमक होते है। परतु इन्हे अच्छा विरेचक नही माना जा सकता।

सैंधव लवण—भुने हुवे सैंधव लवण से १ चम्मच गाढाघोल वनाकर देने से शीघ्र मल त्याग होता है।

सैंधव नरसार—१ चम्मच देने से लाभ होता है।

पारदीय विरेचन—

रस शास्त्र मे पारद की कज्जली या हिंगुल को मिलाकर जयपाल के योग से कई विरेचक योग है जिनका प्रभाव अच्छे विरेचक की तरह रोग मे या निरोगावस्था मे होता है। इनमे प्रधान निम्न है—

१.	इच्छाभेदी रस	६.	यकृत प्लीहारि रस
२	रुक्मिश रस	७.	यकृदरि रस
३.	नाराच रस	८.	वृहदिच्छा भेदी रस
४	मृत सजीवन रस	९	शोथोदरारि रस
५	जलोदरारि रस	१०.	सुधानिधि रस आदि ।

इन रसो का विवरण यद्यपि विभिन्न रोगो मे किया जाता है और लिखा भी है परतु ये हर एक दशा मे विरेचन कराने की क्षमता रखते हैं ।

विवेचन—यह रस चूकि जयपाल के सम योग से या अर्द्ध योग से या विभिन्न मात्रा मे डाल कर बनाये जाते है अत इनमे विरेचन की शक्ति होती है और यह शक्ति जयपाल की अपनी अकेली शक्ति से अधिक व निरापद होती है।

यह तीव्र विरेचक, तीव्र द्रव विरेचक है । इनकी क्रिया औषधि सेवन से २ से ४ घटे के भीतर हो जाती है तथा विरेचन करा कर बाहर आ जाते हैं । जब तक बाहर नही आते बराबर रेचन होता रहता है । इच्छा भेदी रस मे तो जितने बार जल शीतल पिया जाता है उतने बार विरेचन होता है । उष्ण जल पीते ही बद हो जाता है । दूसरे प्रकार मे यह उष्ण जल से बराबर विरेचन कराता है और शीत जल देते ही बद हो जाता है । किन्तु शेष तो जल उष्ण या शीत हो अपना कार्य जब तक वहा पर पेट मे रहते है रेचन कराते हैं ।

नाराच रस—यह ज्वराधिकार का है । ज्वर मे प्रयोगार्थ लिखा है परतु दो गोली इसके देते ही स्वस्थावस्था मे भी विरेचन होने लगता है । यह द्रव विरेचक है ।

मृत संजीवन रस—२ माष के बराबर या १ रत्ती देने पर तीव्र विरेचक होता है ।

जलोदरारि रस—यह रस २ से ४ रत्ती तक प्रयोग करने पर क्रूर कोष्ठ वालो मे भी विरेचन कराता है । उदर रोग मे इसकी व्यवस्था है परतु यह किसी दशा मे भी विरेचक हो जाता है ।

यकृत प्लीहारि रस व यकृदरि रस—दोनो ही जयपाल की मात्रा पर विरेचन कराते हैं । १ रत्ती से २ रत्ती मे विरेचन हो जाता है ।

शोथोदरारि रस—२ से ४ रत्ती की मात्रा मे यह विरेचक है ।

रसकर्पूर रस—यह २ रत्ती के मात्रा मे विरेचक मृदु विरेचक होता है । यह पित्त विरेचक है । मृदु कोष्ठ मे अधिक भी दस्त ला देता है ।

सुधानिधि रस—यह भी २ रत्ती की मात्रा मे मृदु विरेचक है । यह दोनो रस मृदु विरेचक होने के कारण सोते समय लिये जाते हैं और सबेरे साफ मल त्याग कराते हैं । जिन रोगियो मे पुरानी विबध मे उदर या आमाशय मे दाह होता है उनके लिये इनका विरेचन लाभप्रद होता है । यह द्रव स्यदन कराना, आत की गति बढ़ाना, ऐंठन करना, वेग से मल निकालना यह सब क्रिया करते है ।

स्नेह विरेचन—

कई प्रकार के स्नेह विरेचक होते हैं। इनमे सस्कारित घृत व तैल का भी स्थान है। यथा—

१. एरड स्नेह
२. जयपाल स्नेह
३. मार्त्तीक तैल
४. जैतून का तैल
५. तिल तैल
६. अतसी तैल

संस्कारित स्नेह—

१. विन्दु घृत
२. महा विन्दु घृत
४. नाराच घृत

सस्कारित स्नेहो मे तो जयपाल का तैल ही अधिक रहता है अत यह जयपाल स्नेह की तरह की क्रिया करते हैं।

एरंड तैल—यह एक निरापद स्नेह विरेचक द्रव्य है और सरलता से विरेचन करता है।

मात्रा—१ से ४ तोले तक। क्रूर कोष्ठ वालो मे अधिक मात्रा मे और मृदु कोष्ठ वालो मे यह १ या २ तोले मे ही विरेचन कराता है। इसको स्नेह विरेचन मे उत्तम वतलाया है। कम से कम दो तोले मात्रा मे यह सामान्य मृदु कार्य करता है। आतो मे जाकर यह मृदुता पिच्छिलता उत्पन्न करता है और मल या अन्न जो भी होता है सरलता से निकल आता है। ५ से ६ तोले मे यह ऐंठन पैदा करता है अत इसको सोठ के क्वाथ के साथ देते हैं। देने के वाद २ से ६ घटे मे इसका कार्य हो जाता है।

जयपाल तैल—१ से २ वूंद की मात्रा मे देने के वाद आधे घटे से ३ घटे मे कार्य कर देता है। यह तीव्र द्रव विरेचक है। आतो मे प्रदाह ऐंठन व वेदना पैदा करता है।

मार्त्तीक तैल—लिक्विड पैराफीन का प्रयोग केवल स्रसन क्रिया के लिये ही होता है। यह आतो को चिकना वना कर मल का निष्काशन करता है।

जैतून का तैल—यह पित्त का शामक निरापद मृदु विरेचक है। पित्तज रोगो मे इसका मृदु कोष्ठ मे प्रयोग करते है।

संस्कारित स्नेह—विन्दु घृत, महा विन्दु घृत—यह दोनो २ से १० बिन्दु की मात्रा मे तीव्र विरेचन कराते हैं। महा विन्दु की मात्रा आधे तोले से एक तोले लिखी है।

नाराच घृत—एक से दो तोले तक।

महा नाराच घृत—मात्रा एक कर्ष।

बिन्दु घृत में—अर्क क्षीर, स्नूही क्षीर के साथ घृत मे रेचक द्रव्य मिला कर योग वनाते हैं। एक बिन्दु से एक वेग होता है जितने बिन्दु लिया जाय उतने वेग होते हैं।

इन योगो मे घृत के साथ विरेचक क्षीर जब जयपाल लेकर दूध का घृत बनाते है। दही जमा कर घृत बना लेते है और फिर इसके प्रयोग को करते हैं और वह विरेचन कराता है।

क्षीर विरेचन वर्ग--

विरेचन वर्ग को सुश्रुत ने कई भागो मे विभक्त किया है। इनमे प्रधान निम्न है।

१ मूल विरेचन	४. फलरज विरेचन
२. त्वक् विरेचन	५. क्षीर विरेचन
३. फल विरेचन	६. पत्र विरेचन आदि।

क्षीर विरेचन—इसमे विशेप कर सुधा क्षीर, अर्क क्षीर, सप्तला क्षीर, सप्तपर्ण क्षीर प्रधान माने गये हैं। इनके अतिरिक्त दती क्षीर, वृहद् दती क्षीर, व्याघ्र एरड क्षीर, नाग दती क्षीर, ये तीव्र विरेचन माने जाते हैं।

क्रिया--शरीर मे जाकर ये क्षीर शारीर द्रव मे घुल जाते हैं और फिर रक्त मे मिल कर तीव्रता से शरीर द्रव पर अपना प्रभाव कर के शीघ्र सक्रिय होते हैं जहा जहा पर जाते है। उनके साथ मिलते जाते है और वहा पर अपना प्रभाव करते है। जोकि क्रमश निम्न है।

१ आमाशय मे जाकर अपने प्रभाव से आमाशय की पाचनी क्रिया पर विघात डालते है। फिर पित्तधरा कला पर पहुचकर पित्त पर क्षोमण क्रिया करते हैं। पित्त के सयोग से पित्त के घटको पर प्रभाव डालकर अपनी क्रिया वढा देते है। इससे क्रिया मे तीव्रता आ जाती है। इसका प्रभाव निम्न पडता है। (१) आत्र की क्रिया सक्षोभ जनित उत्तेजना पूर्ण हो जाती हैं। (२) आत्रस्थित ग्रथिया उत्तेजित हो जाती हैं स्राव वढ जाता है। (३) आत्र की मास पेशियो की आकुचन व प्रसारण की क्रिया वढ जाती है। अर्क तीव्र रेचन होता है।

कार्य--क्षीर विरेचक का कार्य २ से ४ घटे के बीच हो जाता है। इसके प्रयोग मे उदर पीडा भी होती है। ऐठन तीव्रता व पीडा पूर्वक आत की पेशियो से वलपूर्वक स्राव निकल आता है। कभी कभी जी मिचलाहट वमन आदि भी होते हैं। उदर के पास के अन्य क्षेत्र पर भी प्रभाव पडता है। स्त्रियो के गर्भ पर प्रभाव पडता है और कभी कभी गर्भस्राव भी हो जाता है। अत मृदु कोष्ठ वालो व पित्त प्रकृति वालो पर इसका प्रयोग नही करना चाहिये।

नोट—कल्पस्थान मे स्नूही क्षीर का विरेचन वत प्रयोग दिया हुवा है। इसके विभिन्न कल्प वहा पर देखिये।

१ **सुधाक्षीर**—यह अति तीव्र विरेचक है। इसकी दो रत्ती की मात्रा होती है अथवा ५ से १० बूद तक। यह तीव्रता से अति द्रव विरेचक होता है।

अनुपान--इसकी चने की भुनी सत्तू मे मिला कर चने के बराबर गोलिया बना लेते है। एक या दो गोली मे अच्छा विरेचन होता है।

अर्क क्षीर--इसकी मात्रा २० बूंद से ५० बूंद तक है या सुखाया हुवा २ से ४ रत्ती तक। विरेचन अच्छा करता है। इसकी सुकरता के लिये आटे के साथ बडी गोली दो चने के बराबर गोली बनाना चाहिये।

सप्तपर्ण का क्षीर—इसकी मात्रा ५ बूद है।

नागदन्ती व व्याघ्र एरंड का क्षीर—यह क्षीर तो नही होता परंतु क्षीरवत् हल्के श्वेत वर्ण का द्रव होता है। इसकी मात्रा चने के आटे मे मिला कर सुखा कर जयपाल के बीज के बराबर गोली बनावे। एक गोली से एक दस्त आता है अथवा चने की भुनी दाल लेकर एक शीशी मे रख कर छिलका हटाकर उसमे दती क्षीर भर कर सुखा सुखाकर भावना दें। खूब भावित हो जाने पर एक दो सूखे दाने खा लेने पर एक दस्त आता है। ग्राम्य वैद्य इसका प्रयोग करते है।

संशोधनम् (Purgation)—

पर्याय—शोधनम्, सशोधनम्।

परिभाषा--शोधनम्-सामान्य रूप से जो औषधि शरीर या शरीर के किसी भाग अथवा शरीर द्रव्यो से (धातु–उपधातु–मल–दोष) दूषण को निकालती है उन्हे शोधन या सशोधन कहते है। यथा–१ ऊर्ध्वभागहर २ अधो भागहर, शिरो विरेचनम्, स्तन्य शोधन, शुक्रशोधन, पित्तशोधन आदि।

यथा—अ० हृदय—

१. यदीरयेद्वहिर्दोषान् पंचधाशोधनम् हि तत्। अ. हृ. सू १४

२. स्थानाद्वहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम्।
देहे तच्छोधन यत्स्याद्देवदाली फल यथा। शा ख ४ श्लोक ८

भेद—शार्ङ्गधर के मत से सशोधन द्रव्य के दो भेद है (१) वहिराश्रयम् (२) आभ्यतराश्रय।

वाग्भट के मत से ५ प्रकार के हैं। (१) कायशोधन, (२) वमन, (३) निरुह, (४) शिरोविरेचन, (५) अस्र विस्रुति (रक्तमोक्षणम्)।

चरक व सुश्रुत भी इनका ही वर्णन करते है। सिद्धि स्थान मे चरक ने पचकर्म को ही सशोधन मे प्रधानता दी है। (१) वमन, (२) विरेचन,

---

१. यत शोधनं द्विविध माचक्षते, बहिराश्रय आभ्यन्तराश्रयं च।
तत्रबहिराश्रयं शस्त्र क्षाराग्नि प्रलेपादय।
आभ्यन्तराश्रयं तु चतु प्रकारम् वमनरेचनास्थापन शोणितमोक्षणं च।
एकेशिरोविरेचनं मन्यन्ते।
तच्चात्र वमनान्तर्भूत बोद्धव्यम्, उर्ध्वशोधनत्वात्। आढमल्ल
शार्ङ्गधर टीकायाम्। आढमल्ल पूर्व।

(३) आस्थापन, (४) अनुवासन, (५) शिरोविरेचनादि। किन्तु बृहत्त्रयी की सञ्ज्ञाओ के अवलोकन से कई प्रकार के सशोधनो का वर्णन उपलब्ध होता है— स्तन्यशोधन, शुक्रशोधन, रक्तशोधन, दतशोधन, मुखशोधन इत्यादि। इस निमित्त शोधन शब्द की परिभाषा मे एकाग या सर्वांग मे दुष्टि को निकालने वाले द्रव्य को ही शोधन की प्रधानता दी गई है। इनमे ५ ही प्रधान हैं जो चरक, सुश्रुत मे विशेषरूप से वर्णित किये हैं।

शार्ङ्गधर की परिभाषा इसमे उत्तम जचती है। बहिराश्रय व अतराश्रय भेद मे वह शस्त्रक्षार, अग्नि प्रलेपादय मानते हैं और अतरम्य मे वमन विरेचन, आस्थापन, शोणित मोक्षणादि को मानते हैं। इस परिभाषा मे सवका समावेश हो जाता है।

अत शोधन की पारिभाषिक सज्ञा है जहा जिस शब्द के साथ प्रयुक्त हो उसे उन द्रव्य का शोधन मानना चाहिए। यथा—

रक्तशोधन, स्तन्यशोधन, मुखशोधन, शुक्र शोधनादि।

यदीरयेद्बहिर्दोषान् शोधनं तच्चसंस्मृतम्।
सर्वांगेष्वयथवाचैक धातु–दोष मलेषु च।

महाभौतिक सगठन—

१. सलिल पृथिव्यात्मकत्वादधो भागप्रभाववत्।
२. अग्नि वाय्वात्मकत्वादूर्ध्व भागप्रभाववत्।
३. उभयगुण भूयिष्ठ मुभयतो भागम्।

रस—तिक्त–कटु–कषाय–लवणा।

गुण—उष्ण[1]-तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी गुण युक्त औषधिया अपने वीर्य से वमन–विरेचन या उभय कर्म कराने मे समर्थ होती है।

वामक द्रव्य (Emetics)

पर्याय—वमनद्रव्य, वामक, वान्तिकर, उर्ध्वकाय सशोधन इमेसिस (Emesis–Emetics)

परिभाषा—१ दोषहरणमूर्ध्वभागिकं वमनसंज्ञकम्। च क. अ १
२ अपक्वपित्त श्लेष्माणौ बलादूर्ध्व नयेत्तु यत्।
वमनं तद्धिविज्ञेयं, देवदाली फल यथा। शार्ङ्गधर

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर के उर्ध्वभाग से वलपूर्वक अपक्वपित्त व श्लेष्म को निकाल देते है उन्हे वमन द्रव्य कहते है।

---

१. तत्रउष्ण–तीक्ष्ण–सूक्ष्म व्यवायी–विकाशीन्यौषधानि स्ववीर्येण हृदय मुपेत्य धमनीरनुसृत्य स्थूलाणुस्रोतोभ्य केवलं शरीर गतं दोषसंघात माग्नेयत्वाद् विष्यदयति, तैक्ष्ण्याद् विच्छिन्दन्ति – – – –

अग्नि वाय्वात्मकत्वादूर्ध्व भागप्रभावादौषधस्योर्ध्वमुत्क्षिप्यते, सलिल पृथिव्यात्मकत्वादधो भागप्रभावाच्चौषधस्याध प्रवर्तते, उभयतश्चौभय गुणत्वात्॥ च. चि १–५

सार्वांगिक—(Central Emetics) रक्त मे शोषित होकर वमन केन्द्र को उत्तेजित करती है।

द्रव्य—वच, वन्दाल, अरिष्टक, सत्यानाशी का तैल, मैनफल, ताम्रभस्म, तुत्थ भस्म, हस्तिशुण्डी, डिजिटेलिस, लोबिलिया, मार्फीन। इनसे वमन देर तक होता है। अग मे शिथिलता, रक्तसचालन, मन्दता, लालाप्रसेक, प्रस्वेद एव कफ का स्राव अधिक होता है।

फल वामक—मदनफल, जीमूतक, कृतवेधन, इक्ष्वाकु, धामार्गव, सर्षप, विडग, करज, प्रपुन्नाड बीज।

पुष्प वामक द्रव्य—मदनफल के पुष्प—मात्रा—१ कर्ष
जीमूतक पुष्प—कटुतुम्बी पुष्प

शलाटु—वामक द्रव्य—मदनफल शलाटु, जीमूतक व इक्ष्वाकुशलाटु।

पिप्पली या बीज—मदनफल—पिप्पली।

मूल वामक—कोविदार, कर्बुदार, निम्ब, अश्वगध, विदुल—बधुजीव (गुड्हल के मूल त्वक), श्वेतापराजिता, शणपुष्पी, बिम्बी, वचा, इन्द्रवारुणी, चित्रा (दती) इनके मूल त्वक का कषाय वामक होता है'

मात्रा प्रयोग—पुष्प वामक—१ कर्ष से १ पल तक—

आपामार्ग, अर्क, निम्ब } किसी एक का कषाय के साथ मधुसैंधव मिलाकर

शलाटु चूर्ण—मात्रा—१ पल वकुल, अमलतास } के कषाय से
यवागू— तिल, तडुल } यवागू को मदनफल चूर्ण मिलाकर

पिप्पली चूर्ण—अतर्नखमुष्टि मे जितना आ जाय—१॥ से २ पल
मधुयष्टि, कोविदार } कषाय के साथ देना चाहिए।

प्रयोग—मदनफल—श्लेष्म, ज्वर, प्रतिश्याय, अतर्विद्रधिम्।
इक्ष्वाकु—कास, श्वास, छर्दिरोग, कफरोग।

जीमूतक पुष्प—कफ—अरोचक, श्वास, कास, पाण्डु, यक्ष्मा मे।

धामार्गव—गर—गुल्म, उदर, श्वास, कास, श्लेष्मामय मे धामार्गव द्वारा वमन कराना चाहिए।

नस्य वामक—कृतवेधन व मदन—पिप्पली चूर्ण को वामक द्रव्यो से भावना देकर उत्पल के खिले पुष्प पर छिडककर सूंघने को देने से वमन होता हे।

वमन क्रिया किस प्रकार होती है—कार्मुकता—

महर्षि चरक[1] का मत—वमन द्रव्य उष्ण–तीक्ष्ण–सूक्ष्म–व्यवायी व विकाशी गुण युक्त होते हैं। उनका आशुकर्म होता है अत यह अपने वीर्य मे मस्तिष्क स्थित (हृदय) केन्द्र पर प्रभाव डालकर, सूक्ष्म धमनी द्वारा कार्य कराकर–स्थूल व अणु स्रोतसो मे फैलकर सपूर्ण शरीर गत दोष सघात को निकालने की क्रिया करती है। क्रम निम्न होता है—

१ आग्नेय गुण के कारण कोष्ठ कलाओ से द्रव विष्यदन करना।
२ तीक्ष्ण गुण के कारण सघात का विभेदन करना।
३ दोषो को कोष्ठ मे लाकर उर्ध्वभाग से निकालना।

इन क्रियाओ द्वारा दोष आमाशय मे आकर उदान वायु की क्रिया द्वारा प्रोत्साहित होकर अग्नि व वायु तत्व प्रधान होने से मुख द्वारा निकलते हैं। इस क्रिया को वमन कहते हैं।

औषधि प्रभाव[2]—द्रव्य लेने के वाद शरीर की भिन्न–भिन्न क्रियायें दोष की स्थिति का दिग्दर्शन कराती हैं। यथा—

१. दोष अपने स्थान से विलीन होकर चलायमान होने की स्थिति मे हो तो स्वेद प्रादुर्भाव होता है।

२. लोमहर्ष–अपने स्थान से प्रचलित है।

३. कुक्षिसमाध्मापन–कुक्षि व उदर मे आध्मान–भार होने से अपने स्थान से चलकर कुक्षि मे आ रहे हैं।

४. हृल्लास–आस्यस्रवण–राल टपकना–और उवकाई आने पर यह दोष वाहर निकलने को तैयार है यह, जानना चाहिए। यही विचार आधुनिक मत में भी पाये जाते है–आगे देखिये–यथा—

Defenition

Emetics are drugs which produce vomiting this is often accompnied by various, salivation, sweet secretion of mucous from the air passages and oessophagus, quick pulse and irregular respiration.

During this act cardiac sphinctor opens and pyloric portion of the stomach strictly contracts.

(Ghosh)

---

१. तत्र उष्ण–तीक्ष्ण (व्यवायी)–सूक्ष्म विकाशीन्यौषधानि, स्ववीर्येण–हृदयमुपेत्य धमनीरनुसृत्य, स्थूलाणु स्रोतोभ्य केवलशरीर गत दोष संघात माग्नेय त्वाद्विष्यदयति, तैक्ष्ण्यात् विच्छिन्दन्ति। सविच्छिन्न परिप्लवन स्नेह भाविते कायेस्नेहाक्त भाजनस्थमिव क्षौद्रमसज्जन्नणु प्रवणभावादामाशयमागयो-दान प्रणुन्नोऽग्नि वायुवात्मकत्वादूर्ध्वं प्रभादोषधस्योर्ध्वमुत्क्षिप्यते।

च० चि० अ० १–५

२. तस्य यदा जानीयात्–स्वेद प्रादुर्भावेण दोषं प्रविलयनायद्यमानं, लोमहर्षेण–स्थानेभ्य प्रचलित, कुक्षिध्मापनेन च कुक्षिमनुगतम् हृल्लास्या स्यस्रवणाभ्यामपि वा चोर्ध्वं मुखीभूतम्–तदास्मै, जानुसम मंवाधं, सुप्रमुक्ता-स्तरणच्छदोपधान स्वापाश्रय मासनमुपवेष्टु प्रयच्छेत्। च० सु० अ० १५

अर्थात्—वामक औषधि लेने के पश्चात् उनकी तीक्ष्ण क्रिया द्वारा भिन्न भिन्न लक्षण होते हैं। कभी कभी उबकाई, लालास्राव, स्वेदोगम, श्वास व अन्न प्रणाली का स्राव, अरति, नाडी की तीव्रता और अनियमित श्वासप्रश्वास होकर वमन होता है।

इसमे उद्विग्नता होकर प्रभूत लालास्राव होकर मुख लाल, कठ प्रदेश की शिरा का शिथिल हो जाना आदि लक्षण होते हैं पश्चात् आमाशय का हार्दिक द्वार खुल जाता है। आमाशय का दक्षिण मार्ग दृढ हो जाता है, उदर की महा प्राचीर पेशी मे उत्तेजना, दृढता और सकोच होकर आमाशय सकुचित होता है और भीतर का द्रव्य बाहर आ जाता है।

इस समय आमाशयिक ग्रथियो का रसोद्रेचन अधिक होता है और निकलता रहता है। तीव्रता की दशा मे पित्त और अग्नि रस भी निकलते हैं। अधिक उत्तेजना पर वमन बद होकर रक्तस्राव भी होकर मुख से वमन के रूप मे निकलता है।

अंगों द्वारा वमन कार्य संपादन में सहयोग—

वमन कर्म अगो के सहयोग का सामूहिक व मिलित कर्म है। इसमे कई अग कार्य करते है जिसमे केन्द्रीय क्षेत्र (हृदय) मस्तिष्कगत सुषुम्नाशीर्षक का केन्द्र व तालु—कठ—गल, आनन, आमाशय—अन्नप्रणाली, वक्षोदर—मध्यस्थ पेशी, वक्ष व स्कध ग्रीवा की तथा मुख की पेशिया भाग लेती है। चरक ने सू अ. १५ पर यही क्रम बतलाया है। यथा—

विकृत तालुकठ, नाति महता व्यायामेन, वेगानुदीर्णानुदीरयन किंचिद-वनम्य ग्रीवामूर्ध्वं शरीरमुपवेगमप्रवृत्तान्, प्रवर्तयन – – – सुख प्रवर्त्तयस्वेति।

च० सू० अ० १५

ललाटप्रतिग्रहे, पार्श्वोपग्रहे, नाभिप्रपीड़ने, पृष्ठोन्मर्दने,
चानपत्रपणीया सुहृदोऽनुमता प्रयतेरत्। इत्यादि

यही विचार आधुनिक चिकित्सक भी मानते है और ठीक इसी प्रकार के विचार उनके भी है—

Vomiting is a complex physiological Phenomenon to produce in which several parts are brought in to play. The chief of them is the vomiting centre in the medulla and different stimuli carried to the centre from various sources. (Ghosh M M)

चरक व सुश्रुत ने—वमन के योगातियोग मिथ्या योग का विवरण बहुत स्पष्ट दिया है।

इसमे सब प्रकार के लक्षण सम्मिलित हो जाते हैं और वमन की कमी व अधिकता के पूरे लक्षण दृष्टिगोचर होते है। यथा—

as noted before above

वमन द्रव्यों में निरापद वामक—

१. वमन द्रव्यो मे मदनफल निरापद वामक है।

संग्रह—इसका सग्रह ग्रीष्म ऋतु मे या वमत ऋतु में सुपक्व होने पर करना चाहिए। इसके लिये निम्न नक्षत्र उत्तम है—

पुष्प—अश्विनी, मृगशिरा व चैत्र मूहूर्त मे इनको सग्रह करना चाहिए। जो सुपरिपक्व परिपुष्ट हो।

वमन का प्रयोग—कहा करना चाहिए यथा—

१. विशेषेण तु वामयेत्—

१ नवज्वर, अतिसार, पित्तासृक, राजयक्ष्मा, कुष्ठ, प्रमेह, अपची, ग्रथी, श्लीपद उन्माद, कासरोगी, श्वास, हृल्लास, विसर्प, स्तन्यदोप, उर्ध्वाग के रोग।

२ आमाशयस्थ, अजीर्णान्न, पित्त श्लेष्म विकार—विषभक्षित

३ अन्नप्रणाली या श्वास नलिका से द्रव्यनिष्काशनार्थ।

४ रक्तसवहन की गति धीमी करने व मासपेशी की क्रिया शिथिल करने को।

५ पित्त निष्काशनार्थ। च० पित्ताश्मरी छोटी निकालने को।

६. प्रसवकाल मे गर्भाशय ग्रीवा काठिन्य कम करने के लिए।

७. रक्त मे विष के प्रवेश हो जानेपर निष्काशनार्थ।

अवम्य कौन है—

> **अवम्या ग्रहणी रूक्ष, क्षुधितो नित्य दु खित।**
> **बाल वृद्ध कृश स्थूल, हृद्रोगि क्षत दुर्बला॥**
> **प्रसक्त वमथू प्लीह, तिमिर क्रिमि कोष्ठिनः।**
> **उर्ध्व प्रवृत्त वाखस्र, दत्त वस्ति हत स्वरा॥**
> **मूत्रघात्युदरी गुल्मी, दुबलोऽत्यग्नि रर्शस।**
> **उदावर्त्त भ्रमाऽष्ठीला पार्श्वरुक् वातरोगिणः॥**
> **ऋते विष गराजीर्ण, विरुद्धाभ्यवहारत।** वा० सू० १८

इसी प्रकार वमन के अयोग, योग मिथ्यायोग के लक्षण भिन्न-भिन्न है। वेग—हीनवेग—४, मध्यवेग—६, प्रवरवेग—८।

मदन फल—

परिचय मदन के वृक्ष ६ से १५ फीट तक ऊचे होते हैं। वे ज्यादातर विस्तार से फैले हुवे नही होते है। खास करके लम्बे उचाईवाले होते है, तो भी उसमे से छोटी छोटी आमने सामने शाखायें निकली हुई होती हैं, जिससे इसका उपरी भाग कुछ भरावदार दिखाई देता है। पत्ते चौडे चमकीले हरे या गहरे

---

१ **नवज्वराति साराध पित्तासृग्राजयक्ष्मिण.।**
कुष्ठमेहापची ग्रथी श्लीपदोन्माद कासिन.।
श्वास हृल्लास वीसर्प—स्तन्य दोषोर्ध्व रोगिण।

हरे रग के होते है। वे छोटी डालियो पर पास पास चार चार या पाच पाच पत्ते डाली के सिरे पर होते हैं और इन पत्तो मे से कोई कोई पत्ते लम्बे और कोई कोई छोटे होते हैं। यह पत्ते हेमन्त ऋतु मे गिर जाते है और ग्रीष्म काल के अन्तिम मे व वर्षा काल के प्रारम्भ मे नये आते है, वृक्ष पर तीक्ष्ण कटक होते हैं। फूल हरे, पीले या सफेद रग के मधुर सुगधवाले होते है। फल नासपाती के समान, पीले या लालीमा युक्त धूसर वर्ण के होते हैं।

मूल--जमीन के हिसाव से गहरे होते है परन्तु कीचड वाली जमीन मे उसकी कितनी ही शाखाये निकलती है वह शाखाये मुख्य मूल से भी ज्यादा लम्बी होती है।

डंठल और डालियां—मदन के वृक्ष का तनाका भाग (धडभाग) हाथ के समान मोटा होता है उस पर आमने सामने वहुतसी पतली पतली डालिया निकली हुई होती है। उसके डठल और डालियो पर की त्वक् खरदरी होती है उस पर पतला छिलका निकलता है। यह धूसर वर्ण का होता है। डालियो पर के पत्तो के सन्धि स्थान के ऊपर होते है। डाली का व्यत्स्तच्छेद करने पर चार चक्र दिखाई देते हैं। पहला चक्र चमकीला धूसर वर्ण का होता है उसके वाहर दूसरा चक्र सछिद्र सफेद रग का होता है। तीसरा फिर से धूसर वर्ण का होता है और चौथा हरे रग का जो त्वक का होता है वह दिखाई देता है। डालियो पर मैले रग के (भस्मी रग के) मडल व चिन्ह होते हैं। इसकी अन्तर छाल हरे रग की और भगुर होती है। लकडी मजबूत और गध व रस अरोचक होता है।

पत्ते—आमने सामने लगे होते हैं व पत्रदण्डी के पास सकडे, सिरे पर चौडे और नोक गोलाई लिये या अन्दर की ओर मुडी हुई होती है। यह १ से २ इच लम्वे और ३।४ से १ या ०।। चौडे होते है। पत्ते की दोनो तरफ सफेद रग के रोम होते है। पत्तो की शिराये आमने सामने नही होती ज्यादातर एक के पीछे एक होती है। गध और रस अरोचक होता है।

उपपान—नीचे से चौडा सिरे पर नोकदार होते हुवे सफेद रोम युक्त सीधे शिराओ से युक्त होते हैं।

फूल– पुष्प वाह्यकोष पर भूरे या सफेद रग के रोम होते है। वे दो लाईन लम्वे और छोटे ६ दाते उसके शिर पर दिखाई देते हैं। पुष्पाभ्यतर कोष की पखडिया ५ होती है। उसमे से मोगरा पुष्प जैसी मधु से सुगन्ध आती है। उसकी नली ३।४ इच लम्वी और सिरे के मुख का विस्तृत भाग का व्यास भी ३।६ से १ इच जितना होता है। कली की स्थिति मे पुष्प वाह्यकोष और पुष्पाभ्यतर कोष हरे रग का होता है। पुष्प धारण करने वाला दण्ड कटको पर से या पत्र कोण मे से एक ही ग्रथि के पास २ से ४ निकलता है और कही कही पर कोमल डालियो के किनारे पर भी एक पुष्प लगा हुआ

दिखाई देता है। पुष्प पत्र धारण करने वाली दण्डी कुछ छोटी और रोमयुक्त होती है। पुष्प वाह्यकोष के दाते सिरे पर नोकिले या गोलाई युक्त और सीधी शिराओ वाले होते हैं। पुकेसर ५ होते हैं। वे नली के मुख पर होते है उसके ततु स्पष्ट दिखाई नही देते है। सिर्फ पराग कोष दिखाई देता है। वह नली मे चारो तरफ लगा हुवा सफेद रग का लवगोल और नोकीला होता है। स्त्रीकेशर १ होता है, उसका गर्भाशय पुष्प वाह्यकोष के साथ जुडा हुआ होता हैं इसलिये वाह्यकोष के किनारे गर्भाशय के सिरे पर आ जाते हैं। नलिका सफेद रग की १।४ इच लम्बी और मुलायम होती है। नलिकाग्रमुख हरे रग युक्त पीला कुछ ऊचा दो भागो वाला चिकना रस वाला और चमकीला होता है।

फल—१ से १॥ इच लवा ४ से १ या १। इच चौडा सिरे पर से दबा हुआ नीचे की ओर सकरा होता हुआ होता है उसकी सपाटी चमकीली और झील्लीवाली होती है। उसमे दो खड होते हैं। इन प्रत्येक खड मे वहुत से सूक्ष्म वीज–चिकने अरोचक गध वाले होते है। जव फल विल्कुल सूख जाता है तव उसके अन्दर का गर्भ भाग भी सूख जाता है तव उसके अन्दर का गर्भ मज्जा भी सूख जाता है तव उसके अन्दर वीज भी चिपक जाते हैं फल को हिलाने पर वीज अन्दर से वजते हैं।

बीज—रक्ततायुक्त भूरे रग के १॥ से २ लाईन लम्बे और ३।४ से १ लाईन चौडे होते हैं। वह वहुत कठिन होते हैं। वीज की सपाटी पर एक धारी होती है। वीज को तोडने पर उसका दिखाव गोद या रंजन जैसा और वहुत चमकीला होता है।

उपयोगी अग—मूल–डठल–पत्ते और फल।

गुणदोष—वातिकारक, ग्राही और शोथघ्न।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय की निचली पहाडियो मे जम्मू से लेकर सिक्किम तक तथा सिन्ध, कूचविहार, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत मे पाया जाता है।

रासायनिक सघटन—मैनफल मे मुख्य तत्व सैपोनिन (Saponin) होता है जो समस्त फल के १।३ परिमाण मे होता है। यह एक फल मे प्राय: दो रत्ती होता है। इसके अतिरिक्त वेलिरियतिक अम्ल (Valerionic acid) मोम, राल, रजक द्रव्य होते है। वीजो मे सुगन्धित तैल भी होता है।

सग्रह विधि—वसन्त और ग्रीष्म–ऋतुओ के मध्य मे पुष्प, अश्विनी या मृगशिरा नक्षत्र मे मदन फल के पके हुये पीताभ मध्यम प्रमाण के तथा जन्तुओ से रहित फल ग्रहण करे। इन फलो को कुशपुट मे बाधकर, गोवर से लीप, आठ दिनो तक जव उडद, मूग, कुलथी, धान आदि के भूसे या पुआल मे रख दें। तदनन्तर जव ये मृदु, मधुगन्धि हो जाय तव निकाल कर सुखा दें

और सूखने पर वीज पिण्डो को निकाल ले। इन्हे घी, दही, मधु और तिलकल्क मे घोट कर फिर सुखाले। इस प्रकार प्रस्तुत चूर्ण को नये शुद्ध पात्र मे सुरक्षित रख दें।

वामक:

मदनफल– पर्याय–– मंजिष्ठादि

(Randiadumetorum) (Rubiacaerae)

गण–चरक–वमन, फलिनी सुश्रुत–उर्ध्वभागहर, आरग्वधादि, मुष्ककादि।

पर्याय	ध नि.	रा नि.	भाव.
चरक	मदन	+	+
मदन	शल्यक	शल्य·	+
+	राट	–	+
	पिण्डी	+	+
+	पिण्डीतक	+	+
+	फल.	–	–
	तगर.	तरट	–
+	करहाट.	+	+
	छर्दन.	–	+
श्वमन	विषपुष्पक:	–	+
		कैडर्य	मरुवक:
		धाराफल:	
		घटाल.	
		मादन:	
		हर्ष·	
		घटाख्य·	
		वस्तिशोधन	
		ग्रथिफल.	
		गोलफल	
		मदनार्ह	

ध. नि ––मदनः शल्यको राट. पिण्डीपिण्डीतकः फल। तरटः करहाटश्चछर्दन· विषपुष्पकः।

राजनि०–मदन शल्यकैडर्य· पिण्डीधाराफलस्तथा। तरट कर हाटश्च राहु पिण्डीतक स्मृत घटालो मादनो हर्षो घंटाख्य वस्तिशोधन। ग्रंथिफलो गोलकलो, मदन श्चविशति·।

भाव ––मदनच्छर्दन पिण्डी राठ पिण्डीतकस्तथा। करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्पक।

	चरक	सुश्रुत	ध. नि.	रा नि.	भाव.	मदनपाल नि.
रस	–	–	कटुतिक्त	कटु–तिक्त	मधुरतिक्त	
गुण	–	–	उष्ण	उष्ण	उष्ण लघु रुक्षः	
वीर्य	–	–	–	–	उष्ण	
विपाक	–	–	–	–	–	
दोष	–	–	–	कफवातहर		
कफ	–	–	वमन	वमन	लेखनवान्तिकुल	
रोग रोग	श्लेष्मप्रसेक ग्रथिज्वर श्लेष्मज्वर गुल्म प्रतिश्याय उदर–अरुचि		व्रण, श्लेष्मज्वर प्रतिश्याय गुल्म विद्रधि वस्तिशोफ	शोफदोष	विद्रधि + व्रणान्तकृत कुष्ठ कफ आनाह शोथ गुल्म	

गुण–ध० नि०—

> मदनः कटुकस्तिक्तस्तथाचोष्णोव्रणापह ।
> श्लेष्मज्वरप्रतिश्याय गुल्मेषु विद्रधीषु च ।
> शोफत्यादिहरो वस्तो वमने चेह शस्यते ।

राज नि०— मदन कटुतिक्तोष्ण. कफवातव्रणापह ।
> शोफ दोषापहश्चैव वमने च प्रशस्यते ।

भाव०—
> मदनो मधुरस्तिक्तो, वीर्योष्णो लेखनो लघु ।
> वान्तिकृत् विद्रधिहर प्रतिश्याय व्रणान्तक ।
> रुक्ष कुष्ठकफानाह शोथ गुल्म व्रणापह. ।

मदन कल्प—

विधि—मदन फल को सग्रह करने की ऋतु–वसंत व ग्रीष्म ऋतु मे
नक्षत्र–पुष्य, अश्विनी–मृगशिरा
मुहूर्त–चैत्र

मे सुपरिपक्व–हरित पाण्डुवर्ण के जो क्रिमि भक्षित न हो उन्हे साफ कर कुश मे रख कर बाध कर–गोमय लपेटकर, यव–तुप–माष–शालि–कुलत्थ तथा मूंग की राशि मे ८ दिन रखकर जब मृदु हो जाय और आस्रुत होकर गधोद्गम होकर पीतवर्ण हो जाय तो निकाल कर सुखा दें। पश्चात् उनकी

फल की पिप्पली वत् ग्रथित बीज निकाल कर मधु–घृत–दधि मे मर्दन कर सुखाकर नव कलश मे सभालकर रख दे।

मदनकल्प की संख्या—१३३ होती है। उनका विभाग निम्न हैं—

१.	कषाय के ९ योग	७	लेह	२० योग
२.	क्षीर व घृत के ८ योग	८	मोदक	२० ,,
३.	फाणित के साथ ५ योग	९	उत्कारिका	२० ,,
४.	घ्रेययोग २	१०.	शष्कुली	१६ ,,
५.	वर्तिक्रिया ६	११	अपूप	१६ ,,
६.	मदनफल चूर्ण १	१२	षाडव	१० ,,
	—३१			१०२ – १३३

प्रयोग क्रम—सुखवामक व निरापद द्रव्यो मे मदन फल सर्व श्रेष्ठ द्रव्य है। प्रथम ३–३ दिन स्नेह स्वेदन करा कर वमन कर्म के लिये प्रयोगार्थ लाना चाहिए। कई प्रकार के साघन द्रव्य इसके अनुपानार्थ व उत्क्लेशनार्थ प्रयुक्त होते हैं। यथा—

१. गाम्यानूपौदक–मासरस। २ क्षीर, ३. दधि, ४ माष, ५ तिल, ६ शाक इत्यादि खिला कर श्लेष्म को उत्क्लेशित कराके दूसरे दिन उपवास रखकर पूर्वाह्ण मे प्रयोग करे। अनतिस्निग्ध यवागू का पान पूर्णघृत माया के साथ करा करके तव मदनफल पिप्पली की अपनी मुष्टिमात्रा–२–३ तोले या जितना उचित समझे उतनी मात्रा दें।

१. कषाय के नव योग—

१	कोविदार	कषाय	(१० तो) ९
२.	कर्बुदार	,,	
३	कदम्ब	,,	
४	वेतस (वहुल)	,,	
५	विम्वी कदूरी	,,	
६.	शण पुष्पी	,,	
७	सदापुष्पी (अर्क)	,,	
८	प्रत्यकपुष्पी–अपामार्ग	,,	
९.	मधुयष्टि कषाय	,,	

विधि—३ भाग मदनफल चूर्ण करके दो भाग कोविदारादि के कषाय से २१ वार रखकर स्रावित कर–उस रस के साथ तीसरा चूर्ण भाग मिलाकर पान करना चाहिए। कल्क मात्रा १ तो व कषाय मात्रा–१ अजलि के साथ मदन फल देवें।

उपयोग--नवकषाय योगो का उपयोग-निम्न लिखित रोगो मे करना चाहिए। यथा—

१.	श्लेष्मप्रसेक	इन रोगो मे क्वाथ का उपयोग करना चाहिए।
२	ग्रथि (ज्वर)	
३	ज्वर	
४.	उदर	
५	अरुचि	

२. क्षीर व घृत के योग (८)

प्रयोग--अधोग रक्त पित्त, हृद्दाह

१.	फल	पिप्पलीश्रृत	क्षीर – अधोगरोग–रक्तपित्त हृद्दाह मे	
	,,	,,	क्षीरयवागू ,, ,, ,,	
२.	,,	,,	दधि – कफर्छिद तमक प्रसेक	
३.	,,	,,	दधि उत्तरक (सर)	
४.	,,	,,	क्षीरसतानिका–पित्तप्रकोप, उर.कंठ–हृदय प्रदेश मे कफाधिक्य होनेपर	

---

६. **फल पिप्पलीघृत क्षीर से नवनीत मिलाकर**—इसका प्रयोग घृत पाकार्थ मदन फलादि वीज के कल्क व कषाय से साधित करके तव देना चाहिए।

प्रयोग—इस घृत का प्रयोग–कफाग्निमाद्य, शुष्क शारीरवाले को देना चाहिए।

इस घृत का प्रयोग पूर्वोक्त ४ प्रकार के क्षीरयोगो के साथ मिलाकर

यथा—१	मदनफलपिप्पलीश्रृत	क्षीर या क्षीरयवागू	+ घृत
२.	,,	,, दधि	+ घृत
३	,,	,, दधिसर	+ घृत
४.	,,	,, क्षीरसतानिका	+ घृत

इस प्रकार ८ योग–क्षीर व घृत प्रत्येक के चार चार मिला कर हुये।

---

३ घ्रेययोग—२

१. मदनफल पिप्पली के चूर्ण को फलादि कषाय से २१ भावना देकर पुष्परज की तरह सूक्ष्म चूर्ण करके तालाव मे फूले कमल पुष्प पर रात्रि मे चूर्णित करके प्रात काल लेकर सुखा कर सूँघने को दें।

२ मदनपिप्पली चूर्ण को भावना देकर सुखाकर चूर्णित कर ऐसे ही सूँघने को दें।

प्रयोग--जो सुकुमार व्यक्ति औषध द्वेषी है उन्हे देना चाहिए।

काल--पित्त कफोत्क्लेशित व्यक्ति को।

४ फाणित योग—१. फलपिप्पली के रस को भल्लातक विधि से परिश्रुत करके पकाकर फाणित की तरह पकाकर गाढा करके जब उसका स्वरूप गाढा एक सूत की चासनी की तरह तन्तुवत हो जाय तो लेहवत उपयोग करना चाहिए इसी प्रकार इसका घनसत्व धूप मे सुखाकर चूर्णित करके।

१. जीमूत २. इक्ष्वाकु ३ धामार्गव, ४ कृतवेधन ५ कुटज इनके क्वाथ से उपरोक्त घन क्वाथ को या चूर्ण को दिया जाय। इन पाचो के कषाय के साथ होने से ५ योग होते है।

५ **वर्तियोग**—६–योग। प्रयोग–पित्तकफ स्थानगत होने पर प्रवेश।

इसी प्रकार–फलपिप्पलीचूर्ण की मदन–जीमूतक–इक्ष्वाकु कृतवेधन–कुटज–धामार्गव द्वारा परिश्रुत कर घन क्वाथ वर्तिवत् बना करके वर्ति के रूप मे फलादि छ कषाय के साथ पीने को देना चाहिए। इस प्रकार यह ६ योग होते हैं।

६. **लेह के २० योग**—फलपिप्पली को लेकर इन निम्न लिखित २० द्रव्यो के साथ सिद्ध लेह बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

आरग्वध	शार्ङ्गव	पटोल	पिप्पली
वृक्षक	मूर्वा	सुषवी	पिप्पलीमूल
गोक्षुर	सप्तपर्ण	गुडूची	गजपिप्पली
बाण	नक्तमाल	सोमवल्क	चित्रक
पाटला	पिचुमर्द	–	शृंगवेर

---

७. **मोदक के २० योग**

८. **उत्कारिका २० योग**—फल पिप्पली से निम्न २० द्रव्यो मे से प्रत्येक के साथ उत्कारिका की तरह उनके कषाय से बनाकर २० प्रकार की उत्कारिका व २० प्रकार के मोदक बनाकर २० मोदक बनते हैं। यथा—

१.	एला	८	चोरक	१५.	मासी
२.	हरेणुक	९.	मरुवक	१६.	शैलेयक
३.	शतपुष्पा	१०	अगरू	१७	स्थौणेयक
४	कुस्तुम्बुरु	११.	गुगुलु	१८	सरल
५.	तगर	१२	एलवालुक	१९	पारावतपदी
६.	कुष्ठ	१३	श्रीवेष्टक	२०	अशोकरोहिणी
७.	त्वक	१४	परिपेलव		

इस प्रकार प्रत्येक के २० योग=४० योग हुवे।

१०. **शुष्कुली व अपूर्व के योग १६–१६**—फल पिप्पली के कषाय से परिभावित तिल षष्टिक या शालि के चावलो की पिष्ठी बनाकर उन्ही के कषाय से छान कर पूड़ी बनाना अथवा अपूप की तरह अपूप बनाना चाहिए

फल पिप्पली कषाय परिभावित पिष्ठ को निम्न लिखित षोडश द्रव्यो की भावना देकर यदि अपूप या पूडी बने तो वह भी वामक होता है।

द्रव्य—

१ सुमुख	५ कालमालक	९. गृजन	१३. इक्षुवालिका
२ सुरस	६. पर्णासिक	१०. कासमर्द	१४. कालंकतक
३ कुठेरक	७ क्षवक	११. भृगराज	१५ दण्डेरका
४ काण्डीर	८ फणिज्जक	१२ पोट	

ऊपर के १५ द्रव्य व एक ऊपर वाला मदन कषाय युक्त पाक ऐसे १६ योग होते हैं।

---

११. **षाडवादि १० कल्प**—पुन. मदनफलचूर्ण को निम्न लिखित १० षाडवादि के साथ मिलाकर उपयोग कर के वमन कराना चाहिए। यह वामक होता है। यथा—

१ वदरषाडव	६ तर्पण
२ वदर राग	७. पानक
३. ,, लेह	८. मासरस
४ ,, मोदक	९. यूष
५ ,, उत्कारिका	१०. मद्य

औषधियों का कार्य

रस संबंधी औषधि कर्म—

रस परिभाषा—तत्र पचभूतात्मकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्यद्विविध वीर्यस्याष्ट विध वीर्यस्य वा नैक गुणयुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्ययस्तेजोभूत सार. परम सूक्ष्मः स रस इत्युच्यते। सु सू. अ १४।२

अर्थात्—विभिन्न प्रकार के आहार द्रव्यो के सम्यक् प्रकार से पचने के वाद जो परम सूक्ष्म तेजोभूत सार आहार रस का निष्पन्न होता है वही रस की सज्ञा पाता है।

यह अप् धातु प्रधान होता है। इसमे द्रवाश अधिक होता है और आदि धातु के रूप मे होता है। इसके आधार से और धातुओ का पोषण होता है यह शोषित होने के वाद वरावर चलता रहता है अत रस कहते हैं। (अहरह गच्छतीति रस)स खल्वापो रस । सु० सू० अ० १४–५

गुण—यह सर्व शरीर शोषक द्रवानुसारी, स्नेहन, जीवन, तर्पण, धारण गुणो के कारण सौम्य होता है। इसमे दोष धातु व मल की उत्पत्ति की शक्ति होती है अत इसमे क्षय व वृद्धि होती है।

रसक्षय—आहार रस से सार व कीट के विभाजन के वाद इसका क्षय होता है फिर इसकी निश्चित मात्रा १० अजली है उससे जव मात्रा कम हो जाती है और कई प्रकार के हेतुओ से यह कम हो जाता है तव इसकी रस क्षय की सज्ञा होती है।

रसवृद्धि--आहार द्रव्य, चव्य, चोष्य, पेय, लेह्य जाति के द्रव्यो को उचित मात्रा से अधिक खाने पर व सम्यक् पच जाने पर आहार रस भी अधिक मात्रा मे बन जाता है और मात्रा से अधिक होने पर यह रस वृद्धि की सज्ञा पाता है।

इसके सबध की निम्न क्रियाये व द्रव्य प्राप्त होते हैं। यथा—

१· रस प्रसादन २. रस वर्द्धन ३ रसोपशोषण

रस प्रसादन—वे द्रव्य जो रस धातु को नियमित रखते है और रस प्रवृत्ति को वढाते हैं रस प्रसादन कहलाते है। यथा—मधुर रस क्षीर, दधि, इक्षु, मिष्टान्न, द्राक्षा परुषक आदि।

रसवर्द्धन--वे द्रव्य जो शरीर की रस मात्रा को अधिक बढा देते है रस वर्द्धन कहलाते है। यथा--शर्करा जातीय, आमिष जातीय, पिष्ट जातीय द्रव्य।

रसोपशोषण--वे द्रव्य जो रस को शोषण करते है और उसे सुखा कर कम कर देते हैं रसोपशोषण कहलाते हैं।

द्रव्य—कटु, तिक्त, रूक्ष, शुष्क आहार व औषधिया।

विशेष कर तिक्त रस की मात्रा अधिक हो जाने पर द्रवाश का शोषण होता पाया जाता है।

वर्द्धन व प्रसादन में अंतर--वर्द्धन क्रिया मे रस की मात्रा की वृद्धि होती है और प्रभूत मात्रा मे यह रस का निर्माण करने वाले मधुर रस व शरीर सात्म्य द्रव्य के सेवन से होते है।

प्रसादन—रस की वह अवस्था जो कि किसी आत्ययिक दशा मे बढाने की शक्ति रखे या अल्प मात्रा बढा दें वे द्रव्य प्रसादक कहे जा सकते हैं। रस की जो गुणावली (क्वालिटी) है उसको ठीक रखने वाले द्रव्य प्रसादन कहलाते हैं। यथा—मधु शर्करा का प्रयोग, मधु का प्रयोग या लवण घोल सेलाइन का अत निक्षेप आदि।

जब पाचन क्रिया की कमी होती है तब आगे के रस बनते नही और रस की कमी होती जाती है यह रस क्षय की अवस्था है जब अधिक पचता है रस बनता है तब वृद्धि की अवस्था होती है।

रक्त के ऊपर कार्य करने वाली औषधियां—

(Drugs acting on blood)

रक्त की परिभाषा—

> **रंजिता तेजसा त्वाप· शरीरस्थेन देहिनाम्।**
> **अव्यापन्ना प्रसन्नेन रक्त मित्यभिधीयते।** सु. सू अ १४।६

अन्न का प्रसाद रूप रस जब शरीरस्थ तेज से रजित हो जाता है तो इसमे रक्त की सज्ञा हो जाती है।

रक्त के घटक—

> विस्रता द्रवता रागः स्पंदनं लघुता तथा।
> भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते चात्र शोणिते। सु. सू. अ. १४।१२

अर्थात्—रक्त में विस्र गंध, द्रवत्व, राग, स्पन्दन शीघ्रता व लघुता यह गुण इनके द्रव्यों के द्वारा पंच महाभूत के गुणों से रक्त में निवास करते हैं।

रक्त के ऊपर क्रिया कर द्रव्य—

रक्त प्रसादन	शोणित दूषण	असृक् स्तम्भन
रक्तवर्द्धन	शोणित शमन या भेदन	रक्त स्रावि नाशन
रक्त नाशन	रक्तावसेचन जनन	असृक् शोधन
रक्त शमन	रक्त संग्राहक—रक्तस्तम्भक	रक्त पित्तघ्न
रक्त शोधन	शोणित स्थापन	रक्त पित्त प्रशमन
रक्त कोपण	रुधिरोपशोषण	

रक्त प्रसादन—

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त में मधुरांश व लौहादि अंश की वृद्धि कर उनको कुछ बढा देते हैं वह असृक प्रसादन कहलाते हैं। यथा—गुड व मधु।

> पित्तघ्नो मधुरोशुद्धो वातघ्नोऽसृक् प्रसादन।
> स पुराणोऽधिक गुणो गुड. पथ्य तम. स्मृतः। सु सू अ. ४५।१६१

गुड मे निम्न द्रव्य होते हैं अत वे शरीर रक्त प्रसादन होते हैं। यथा—

१. इक्षु शर्करा ५९ ७१ खनिज ३.४६
२ मधु शर्करा २१ २८ प्रतिशत जलांश ८ ८६

खनिजो मे केल्शियम, फास्फोरस, लौह, ताम्र आदि प्रधान खनिज द्रव्य हैं अत लौह ताम्र के अश से रक्त की वृद्धि व मधु शर्करा के कारण रक्त के घटक जो वृद्धि होकर रक्त प्रसादन की क्रिया होती है। इसी प्रकार मधु भी ग्लूकोज को प्रदान कर रस रक्त प्रसादन कर्म करता है। सु सू अ. ४५।१३२ (मधु तु मधुर प्रसादन सूक्ष्म मार्गानुसारी आदि)।

अन्य द्रव्य—जिन द्रव्यो मे लौह, ताम्र, स्वर्ण, रजत व यशद के अंश होते हैं वे रक्त प्रसादन होती हैं। विशेषकर लौह व ताम्र के अश विशिष्ठ द्रव्य हिमो ग्लोविन की वृद्धि करके रक्त घटक की वृद्धि कर के रक्त प्रसादन होते हैं। यथा—मधुर रस वाले द्रव्य।

१. मडूर—भस्म, ताम्र भस्म, लौह भस्म, मजिष्ठा, अनत मूल, आमला गूगल, चोपचीनी, कुचिला, कपूर, कम्पिल्लक, अश्वगधा, शतावरी पुनर्नवा, सप्तपर्ण, रोहितक, शरपुखा, वबूल, रक्त चदन। पारद, हिंगुल, गधक, हरताल, मैनशिल, शिलाजीत, सखिया के योग आदि।

जहां पर रक्त प्रसादन से रक्त की प्रसन्नता का अर्थ लिया जाता है वहा पर रक्त शोधक औपधियो का भी समावेश हे। किन्तु रक्त शोधक द्रव्य के गुण पृथक होने से उनका विवरण यहा पर नही किया गया है। यह औषधिया अपने प्रभाव से रक्त के गुणो को वढाकर अपना कार्य करती है। यथा—मधुर स्कध के द्रव्य।

असृक प्रसादन—इसी प्रकार से मधुर रस वाले द्रव्यो मे मधु रक्त प्रसादन है। इसके घटक भी रसवर्द्धक है यथा—मधु मे निम्न द्रव्य होते हैं यथा—द्राक्ष शर्करा ७५ प्रतिशत।

इक्षु शर्करा या प्रोटीन्स ४ प्रतिशत होती है अन्य द्रव्यो मे लौह, ताम्र, फास्फोरस, रजक द्रव्य और अन्य द्रव्य होते है। मधु शर्करा की जाति मे एक शार्करिक द्रव्य, मोनोसेक्राइड् अधिक होने से शीघ्र शोषित हो जाते हैं और प्रसादन कर्म करते है।

कर्म की विधि—ये द्रव्य रक्त की क्रिया शीलता को उसके गुण की वृद्धि करने वाले द्रव्यो को रक्त मे वढा कर करते हैं।

मधुर रस वाले द्रव्य मधु शर्करा या ग्लूकोज की वृद्धि करके रक्त प्रसादन करते हैं। अनन्तमूल, सारिवा, पचक्षीरी वृक्षमजिष्ठा आमला, त्रिफला, गुग्गुल आदि द्रव्य और लौह, ताम्र, स्वर्ण आदि तथा शाको मे गाजर, मूली, चुकदर, पालक, मेथी, धनिया मे लौह की प्राप्ति होती है। पत्र शाको से अधिकाश मे क्लोरोफिल मिलता है जो कि रक्त के हिमोग्लोबिन के अश को वढाते हैं अथवा उसके घटक ग्लाइको साइड्स की वृद्धि करते है। कुछ फास्फोरस की वृद्धि करके शक्ति देते हैं। किसी के त्वक् मे लौह व शर्करा जातीय द्रव्य होते हैं और रक्त प्रसादन मे लाभ प्रद होते हैं। यथा—अर्जुन त्वक वट त्वक् अश्वत्थ त्वक्, उदुम्बर त्वक्, दाल चीनी का त्वक् आदि।

रक्त वर्द्धन या हिमेटिनिक्स
(Hoemetinics)

रक्त वर्द्धन द्रव्य—

परिभाषा—रक्त वर्द्धन द्रव्य वे है जो कि रक्त की मात्रा की वृद्धि करते है।

रक्त के घटक—रक्त मे रक्ताणु, श्वेताणु व रजक द्रव्य व रक्त वारि का भाग होता है अत जो द्रव्य इनकी वृद्धि करते है वे रक्त वर्धक की श्रेणी मे आते हैं।

द्रव्य—रक्त व शोणित तथा आर्तव यह आग्नेय हैं। अत वे द्रव्य जो कि आग्नेय गुण विशिष्ट होते है रक्त की जाति के हो कर रक्त वर्द्धक होते हैं।

मधुर रस वाली औषधिया, काकोल्यादि गण, जीवनीय गण, वृहणीय गण की औषधिया तथा रक्त प्रसादन औषधिया रक्त वर्द्धक होती है। इनके अतिरिक्त लौह, मडूर और ताम्र भी इसके वर्द्धक है।

इनके अतिरिक्त रक्त शोधक और व्रण्य औषधिया भी रक्त वर्द्धक होती हैं। इन मे रक्त कण वर्द्धक व रक्त वर्ण वर्द्धक व रक्त के प्रोटीन वर्द्धक द्रव्य पाये जाते है। अत यह रक्त वर्धक है।

क्रियाक्रम—पूर्व मे वतलाया गया है कि रक्त के घटक व रक्त राशि को वढाने वाले द्रव्य रक्त वर्द्धक होते है। अत काकोल्यादि गण रक्त राशि के वर्द्धक व शेष उसके कण वर्द्धक या रजन तत्व वर्द्धक होते है और इस रूप मे वे रक्त वर्द्धक बन जाते है। रक्त को स्थिर रखने के लिये विषघ्न गण भी कार्य करके रक्त वर्द्धन मे सहायक होते हैं।

रक्त संग्राहक—(Blood cogulaters)

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त को गाढा कर देते हैं वे रक्त सग्राहक कहलाते है। रक्त सग्रहण व रक्त स्कदन यह दोनो शब्द एक ही अर्थ मे आयुर्वेद मे प्रयोग मे आये हुवे दिखाई पड़ते है। स्कदन का अर्थ भी गाढा होना या जमना है तथा सग्राही का अर्थ भी रक्त का गाढा होना है और जो द्रव्य इस गण मे प्रयुक्त हुये है वे सब के सब रक्त को गाढा करते है।

द्रव्य—जो द्रव्य रक्त को गाढे करने वाले वस्तु की वृद्धि करके रक्त को गाढा करते हैं वे स्कदन कर या सग्राहक होते हैं। जिन द्रव्यो मे कषाय रस प्रधान होता है वे रक्त स्कदन कर होते है। रक्त मे कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो कि रक्त को शीघ्र गाढा वनाते हैं ये गुण स्निग्धता, पिच्छिलता, स्थिरता या घनता है जो कि रक्त मे रहते हैं और यह श्लेष्म व पित्त के आत्म गुणो से रक्त मे आते है। स्निग्धता, पिच्छिलता व स्थिरता कफ के गुण हैं और आग्नेय गुण जो कि पित्त के हैं उन मे राग, पक्ति व उष्मा प्रधान हैं जो कि रक्त के स्वरूप को ठीक रखते है और वह स्वाभाविक स्थिति मे वना रहता है।

रक्त के प्रोटीन जो श्वेत कण व रक्त कण के मौलिक निर्माता हैं तथा प्रोटीन श्लैष्मिक भाग हैं और रजक तत्व उष्णता व स्कदन द्रव्य यह पित्त के विभागीय हैं अत श्लेष्म गुण की वृद्धि से स्कदन होता है और पित्त गुण की वृद्धि से द्रव्य रहता है।

पित्त जातीय द्रव्य तीक्ष्ण व अधिक सक्रिय होते है अत वे श्लेष्म को घुलनशील वनाये रखते हैं और जब वे मात्रा मे कम हो जाते है तब रक्त की जमने की शक्ति घटा देते हैं और रक्त वरावर गिरता रहना है यदि चोट लग कर गिरे। यथा—रक्त पित्त मे। अत कफ भाव की वृद्धि करने पर रक्त का स्कदन शीघ्र सभव है।

रक्त का जमाव—रक्त मे प्लाज्मा, रक्त वारि व कुछ घन द्रव्य रहते है। आधुनिक मत से रक्तवारि व प्लाज्मा मे ९१ प्रतिशत जल होता है। इसमे कुछ घुले द्रव्य होते है वे प्रोटीन सेन्द्रिय पदार्थ व कुछ निरिन्द्रिय पदार्थ होते हैं। कुछ भीतरी स्राव होते हैं तथा घन वस्तु मे लाल कण, श्वेत कण व चक्रिकायें होती

हैं। इसमे के कुछ वस्तु जमने की प्रवृत्ति जल्द बनाते हैं। चोट लगने पर स्थान के क्षत होने पर शिरा जाल टूट जाता है और क्षत विक्षत हो जाते है अत. उनमे के द्रव्य निकलने लगते है उनसे चक्रियाये थ्रम्वो काइनेज या स्कदन शील वस्तु निकालती है जो कि शीघ्र ही केफालिन या कफालयी वस्तु बनाते हैं और यह केफालिन यकृत द्रव्य हिपेरिन की क्रिया को जमने से रोक देते हैं या उदासीन बनाते है और रक्त के प्रोथम्बोज अब थ्रम्बम मे बदल जाते है और शरीर गत केल्शियम थ्रम्बस को सहायता कर के रक्त के पिच्छिल वस्तु फाइब्रिनोजन को वाइब्रिन मे बदल देने मे सहायक होता है जो रक्त को स्कंदित करता है।

रक्त के प्रसन्न भाव मे जब कि सब की मात्रा ठीक रहती है वह जमता नही, अब वही जम जाता है। इसकी स्वाभाविक स्थिति को रक्त की प्रसन्नता की सज्ञा सुश्रुत ने दी है यथा—

रजिता तेजसा त्वाप शरीरस्थेन देहिनाम्।
अव्यापन्न प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते। सुश्रुत

पित्त वस्तु उसे उष्मा व हिपेरिन की मात्रा देकर जमने या अव्यापन्न होने से बचाती है वह अब नही होता है और रक्त जम जाता है।

रक्त संग्रहण—

रक्तग्राही मे शारीरिक स्थिति भी घनत्व कृत होती है। कफ व पित्त मिला रक्त जब बाहर आता है तब वह बाहर की उष्णता व शीतता पाकर जम जाता है। इसी स्थिति को रक्त जमने के फिजियोलोजिकल फैक्टर कहते हैं।

रोगानुसार जब इनकी स्थिति मे अतर आ जाता है तब भी यह जम जाते है तब यह रोगानुकूल या पैथोलोजिकल स्थिति कहलाती है। जैसा कि रोगो मे पाते हैं। अत रक्त स्कदन मे दोनो स्थितियो का ध्यान रखकर चिकित्सा करते है। रोगान्वय स्थिति मे वाह्य व आभ्यतर औषधियो का प्रयोग करना पडता है। इसमे चार प्रकार से रक्तावरोध होता है। यथा—

१ सधान २. स्कदन ३ पाचन व ४. दहन।

संधान—इसमे रक्त रोधक औषधि व क्षत प्रदेश पर दबाव दोनो काम करते हैं। सग्राहक औषधि लगाकर कसकर पट्टी वाध देते है। शारीरिक क्रम मे केवल दवाव डालने मे भी रक्त वद हो जाता है।

रोगान्वय स्थिति मे जब शरीर का रक्त दूषित हो जाता है अथवा वह विकृत हो जाता है रक्त की द्रवता मे वृद्धि हो जाती है और रक्त पित्त या अन्य रोग हो जाते है। तव औषधि चिकित्सा की आवश्यकता पडती है अत आभ्यतर व बाह्य चिकित्सा का क्रम अपनाना पडता है। अत इसमे निम्न चिकित्सा विधि होती है और द्रव्य प्रयुक्त होते हैं। शीत व उष्ण क्रिया अग्नि दग्ध का भी प्रयोग रक्त रोकने के लिये होता है। यह प्रोटीन को जमा देते हैं।

भीतरी औषधि का प्रयोग—जब रक्त के घटक विकृत हो जाते हैं तब प्रयोग करना होता है और औषधियां प्रयोग की जाती है। अतः निम्न श्रेणी हैं।

१ वे द्रव्य जो रक्त की स्थिति बदलकर रक्त जमाते हैं। यथा—प्रवाल, शंख, शुक्ति, वराटिका, गैरिक मृत्तिका, लोध्र आदि व अन्य वानस्पतिक द्रव्य जो कषाय होते हैं तथा खनिज वस्तु यथा—फिटकरी-कासीस।

२ जो द्रव्य बिना रक्त की स्थिति बदले ही रोक देते हैं।

३ कषाय रस वाले वानस्पतिक द्रव्य या खनिज द्रव्य।

इसे ही आधुनिक लोग वेजिटेबिल एस्ट्रीजेन्ट व मेटालिक स्ट्रीजेन्ट कहते हैं।

द्रव्य-रक्तग्राही द्रव्य—१ साल सारादि गण २. रोध्रादि गण ३. पच क्षीरी वृक्ष ४. प्रियग्वादि गण व सुरसादि गण के कुछ द्रव्य।

अन्य—लौह भस्म, गैरिक, माजूफल, कमल-केशर, केशर, फिटकरी, खदिर कहरवा, लोध, सोना पाठा, कपित्थग्योनाकमोचरस, बोल, लाक्षा।

इसके दो भेद हैं १ बाह्य २ आभ्यतर द्रव्य।

बाह्य—क्षार, अम्ल, रेशम की भस्म, चर्म लोम की भस्म, मकडी का जाला।

आभ्यंतर—जिनका उपयोग रक्त पित्त-रक्त प्रदर, रक्तस्राव, अर्श आदि मे होता है। यथा—प्रवाल, मोती, शख, शुक्ति, कहरवा, मोचरस, खून खराबा, बोल आदि रक्त स्थापन वर्ग की औषधिया भी इसमे सहायक होती हैं।

शोणित स्थापन— (Stiptics & Haemostatics)

यह वर्ग बहुत बडा वर्ग है। इसमे विचार कर देखे तो दो और गणो के द्रव्यो का भी सम्मिश्रण है जो कि रक्त शमन व रक्त नाशन के नाम से व्यवहृत होते हैं।

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त के स्थानिक प्रवाह को रोक देते हैं अथवा बहते रक्त को गिरने से बद कर देते है उन्हे रक्त स्थापन कहते हैं।

चक्रपाणि ने परिभाषा करते समय यह लिखा है कि—

१. शोणितस्य दुष्टस्यदुष्टिमपहृत्य तत् प्रकृतौ स्थापयतीति शोणित स्थापन । चक्रपाणि

२. शोणितं स्थापयति अति प्रवृत्तं रक्तंस्तंभयतीति शोणित स्थापनम्।
योगीन्द्र

३ शोणित स्थापनम् शोणितातिप्रवृत्ति स्तंभनम्। डल्हण

ऊपर की परिभाषाओ को देखकर अधिक प्रवृत्त रक्त रोकना ही परिभाषा ठीक होगी। यहा पर शोणित स्थापन का स्वरूप दुष्ट व दूषित बहते रक्त का बहना रोकने का अभिप्राय चक्रपाणि दत्त का है। किंतु दूषित रक्त को शुद्ध करके रक्त को प्रकृतावस्था मे रखने का चक्रपाणि जी का विचार हो तो फिर रक्त शोधक औषधि मे अतर पडेगा।

अस्तु—रक्त के प्रवाह को रोक कर प्रकृतावस्था मे लाने वाले द्रव्य का ही समावेश यहा पर किया गया है।

द्रव्य–शोणित स्थापन गण––मधु, मधुक, रुधिर या कुकुम, मोचरस, मृतकपाल, लोध्र, गैरिक, प्रियगु, शर्करा व लाजा यह १० चरक ने रुधिर स्थापन कहे हैं।

२ रोध्र, मधुक, प्रियगु, पतग, गैरिक, सर्जरस रसाजन, शाल्मली पुष्प, शख, शुक्ति, माप, यव, गोधूम चूर्ण, तथा––साल, सर्ज, अर्जुन, अरिमेद, मेष शृगी व धन्वनत्वक् आदि। सु सू अ १४।३६

इनके अतिरिक्त रक्त शमन व रक्त नाशन का प्रयोग भी कही कही रक्त रोधन के अर्थ मे किया गया है।

क्रिया कर्म––इसमे इस प्रकार की औषधिया हैं जो कि रक्त को गाढा करके या शिरामुख को सकुचित करके रक्त प्रवाह रोकती है। ऊपर की औषधियो मे विशेषकर दोनो प्रकार की औषधिया सम्मिलित है।

सुश्रुत ने रक्त सग्राहक औषधियो को अलग ही वर्गीकरण मे रखा है अत. इसका क्रम व परिभाषा जो कि डा. देसाई ने की है हमे मान्य नही है। क्योकि इस विषय पर विचार किये बिना ही यह बडा अर्थ कर दिया गया है। जब बडे गण मे वह आ ही जाय तो पृथक गण का कोई महत्व नही होता। अस्तु हमने पारिभाषिक शब्दो को श्रेणी बद्ध करते समय विशेष विचार किया है।

असृक् दोष विशोधन–असृक् दोषघ्न

रक्तशोधन––

परिभाषा––जो द्रव्य रक्त की किसी प्रकार की दुष्टि को दूर करते है उन्हे रक्त शोधक कहते है। यह दुष्टि रक्त के घटक की दुष्टि हो या जीवाणु जन्य हो या किसी रोग के कारण या शारीर विष या सर्प विष के कारण या दूषी विष के कारण हो जब दूषित हो जाता है तब उसे शोधन करने की आवश्यकता पडती है। दूसरे शब्दो मे यह कह सकते हैं कि जो द्रव्य रक्त की किसी प्रकार की दुष्टि को दूर कर दे रक्त शोधक कहलाते है।

रक्त के दुष्ट होने के कई प्रकार है और तदनुकूल औषधिया भी विशेष प्रकार की हैं।

१. कुष्ठ, वातरक्त, रक्त पित्त, गडमाला, गलगड, अपची आदि रोग मे रक्त दुष्टि दोपजन्य हेतुओ से हो जाती है।

२ शीत पित्त, उदर्द, कोठ, पिडका आदि मे विशेष प्रकार की विकृति पित्त या श्लेष्म जन्य वैगुण्य से होती है अत तदनुकूल औषधि करना चाहिये।

३ रक्ताणु, श्वेताणु व रक्त विषो मे औषधिया विभिन्न किस्म के विकृति के कारण निर्धारित की जाती है।

४ सूजाक उपदश व आक्षेपजन्य विकृति मे अन्य प्रकार की औषधिया विकृति के आधार पर दी जाती है। अत स्पष्ट है कि एक ही दवा सब विकृति

मे नही दी जा सकती । अत निम्न प्रकार से औपधि विचार करके तब उनके क्रियाक्रम का विचार करना चाहिये ।

द्रव्य—व्रण जन्य दुष्टि मे लाक्षादि गण, प्रियग्वादि गण, अवष्ठादि गण, न्यग्रोधादि गण, रोध्रादि गण, अर्कादि गण, सुरसादि गण, पटोलादि गण, आरग्वधादि गण की औपधिया व्रणजन्य दुष्टि मे कार्यकारी होती हैं ।

रक्त विष नाशन के लिये—श्यामादि, रोध्रादि, पटोलादि, न्यग्रोधादि, गण की औषधिया विशेष रूप से कार्यकारी होती हैं ।

कुष्ठ व चर्म रोगो से दुष्ट रक्त मे विभिन्न प्रकार की क्रिया निम्न औषधिया करती है । यथा—सालसारादि गण, अर्कादि गण, न्यग्रोधादि गण, सारिवादि गण की औषधिया कार्य करती है ।

यकृद् विकार पित्त दुष्टि मे और मूत्र विकृति मे पारद घटित व शिलाजतु प्रधान औषधिया कार्य करती है ।

वातरक्त व उपदश की विकृति मे हरताल, मजिष्ठा, पारद के यौगिक सत्यानाशी, चोवचीनी, रसकपूर उसवा आदि लाभकर होते हैं ।

उष्णवात या सूजाक मे चदन तैल, गध विरोजे का तैल व रस कर्पूर घटित औषधिया कार्य करती है ।

जीवाणुजन्य विकृति मे जिस जाति का जीवाणु होता है तद् नाशक औषधि का प्रयोग उत्तम होता है । रक्त दुष्टि का क्षेत्र इतना विशाल है कि वह विभिन्न रूप से विचार करने पर भी समाप्त नही हो सकता । किन्तु यहा पर केवल चिकित्सक के दिग्दर्शन के लिये ही इनका विवरण दिया गया है ।

क्रिया विधि—जब शरीर का रक्त शारीरिक दोषो की विकृति के कारण दूपित होता है तब तद्दोष सशोधक द्रव्य का प्रयोग करते हैं । यथा—वात सशमन, पित्त सशमन व श्लेष्म सशमन द्रव्य आदि ।

यह द्रव्य दोषो के बनाने वाले मूलभूत हेतुओ पर प्रभाव डालकर रक्त की उचित उत्पत्ति करके रक्त का शोधन करते है । इस दशा मे तिक्त व कषाय रसवाली औषधिया कार्य करके पित्त श्लेष्म की प्रकृतावस्था को बनाकर कार्य करती है ।

कुष्ठ, महाकुष्ठ व अन्य रक्त रोगो मे रक्त के भीतर जीवाणुओ पर उनकी नाशक क्रिया का प्रयोग हो जाता है अत यह क्रम चलता है । सखिया, हरताल, मैनशिल व सारिवादि गण के द्रव्य रक्त गत दूषित करने वाले जीवाणुओ पर अपने तीक्ष्ण, उष्ण व तिक्त रसता के आधार पर क्रिया करते है और रक्त शुद्ध करते हैं ।

सूजाक या अतर व्रण की स्थिति मे चदन, कबाब चीनी, उसवा का प्रयोग भीतरी व्रणावस्था पर रोपण का कार्य व सशोधन का कार्य करते हैं । आरग्ववादि गण, श्यामादि गण का कार्य विशेष रूप से सशोधनात्मक होता है ।

महारोगों मे व जीवाणुजन्य रोगो मे तत्तद् रोग नाशक औषधि का चयन करना होता है। इसके लिये चिकित्सक को उसका पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

रक्त शोधक औषधिया विशेष कर रक्त की क्वालिटी या रक्त वस्तु की शुद्धि करते हैं अथवा वे रक्त गत जीवाणु का नाश करते हैं और शोधन हो जाता है।

कुष्ठ मे तुबरक तैल, चाल मोगरा तैल, भिलावा, खदिर, वाकुची का तैल यह तीव्र आशुकारी कार्य करते है और रक्त मे प्रविष्ट क्रिमि या जीवाणु नाश करके उसका सशोधन करते है। यकृत के रोगो मे पाडु, कामला व कुभ कामला मे रक्त के घटको की स्थिति सुधार करके कार्य होता है।

वाह्य व आभ्यतर दोनो प्रकार के द्रव्य भीतर से व बाह्य से लेपादि के द्वारा उभयात्मक कार्य करके अपना कार्य करते है। रक्त द्रव्य की शुद्धि, रक्त विषाणु की शुद्धि, जीवाणु नाश आदि करके रजक वस्तु व रक्त घटक वस्तु की पूर्ति करके पूर्ति करते है।

लौह, अभ्र, स्वर्ण गैरिक, रक्त के घटक हिमो ग्लोबिन की पूर्ति करके रक्त का शोधन करते है।

इसी प्रकार शीत पित्त, उदर्द प्रशमन द्रव्य रक्त की दोषज स्थिति को सुधार करके रक्त की शुद्धि मे सहायक होते है। पारद, गधक, रसकपूर व सखिया आदि अपने विष नाशक क्रिया के द्वारा रक्त गत कीटाणु नाशन या विष-उदासीन करके कार्य करती हैं। व्रण शोधक औषधिया रक्त का रोपण, अकुर वर्द्धन व शोधन पूर्वक कार्य करती है। अत चिकित्सक एक प्रकार से विचार न रख कर विभिन्न प्रकार से कार्य का चिंतन करते है। रक्त रोगो मे मजिष्ठादि, महा मजिष्ठादि क्वाथ व श्यामादि गण, सारिवादि गण की औषधिया रक्त का सशोधन करके कार्य करती है।

रक्त नाशन—(Blood letting)

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त की स्वाभाविकता को नष्ट करके उसकी प्रसन्नता नष्ट कर देते हैं और वह अपने स्वाभाविक रूप मे नही रहता वह द्रव्य रक्त नाशन कहलाते हैं।

अथवा—वे द्रव्य जो कि रक्त के घटक द्रव्यो को नाश कर देते है और रक्त की सक्रियता नष्ट कर देते हैं उन्हे रक्त नाशक कहते हैं।

इस क्षेत्र मे कई प्रकार की औषधिया सम्मिलित है। यथा—

१. **रक्तावसेक जनन**—वे द्रव्य जो रक्त को जमने नही देते और रक्त बराबर गिरता रहता है। इन्हे रक्तावसेक जनन कहते हैं। यथा—

द्रव्य—एला, कर्पूर, कूठ, तगर, पाठा, भद्रदारु, विडग, चित्रक, त्रिकटु, आगार धूम, हल्दी, अर्कांकुर, करज इनको अकेले या यथा लाभ सग्रह कर के क्षत प्रदेश पर लगाया जाय तो रक्त का जमना बद हो जाता है और बहता रहता है।

इन औषवियों मे रक्त के जमाव की शक्ति कम करने की है अत यह एटिकोगुलेटिंग शक्ति रखते हैं। रक्त के जमाव करने वाले वस्तु बाहर की हवा लगते ही जमा देते है। परतु ऊपर की दवायें जब क्षत प्रदेश पर लग जाती हैं तो जमने की शक्ति कम हो जाती है।

इस प्रकार एक प्रकार से रक्त की स्वाभाविक क्रिया को नष्ट पाते हैं जो रक्त को जमाती है। इन वस्तुओ को अधिक मात्रा मे शरीर के भीतर लेने पर रक्त की जमने की शक्ति कम हो जाती है।

२. **रक्त नाशन गण**—वे द्रव्य जो कि रक्त की सगठनात्मक शक्ति कम कर देते हैं अथवा रक्त घटक द्रव्य को नष्ट करने की शक्ति रखते है। यथा—

१. उत्पलादिगण २ विदार्यादिगण ३ करमर्दादिगण

१. **उत्पलादि गण**—इसमे नील कमल, रक्त कमल कुमुद, सौगधिक या सहस्रदल कमल कुवलय पुडरीक मधुयष्टि द्रव्य हैं। यह द्रव्य रक्त की सग्राहकता वढा देते हैं और उष्णता कम करते है और रजक द्रव्य को रक्त मे सग्रह नही होने देते अत रक्त की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।

२. **विदार्यादि गण**—इसमे विदारी, सारिवा, गुडूची, रजनी, मेपश्रृगी यह पाच द्रव्य हैं यह रक्त व पित्त के गुणो के विपरीत होने से हानिकर होते है।

३. **इसी प्रकार करमर्दादि गण के द्रव्य**—करमर्द त्रिकटक शैदेयक शतावरी गृध्रनखी यह द्रव्य हैं इनके भी गुण वही हैं जो कि विदार्यादि गण के। अतर केवल इतना है कि इनमे अम्ल रस अधिक होता है व कषाय की मात्रा रक्त मे वढाते है अत हानि कर रक्त पित्त के गुण के विपरीत पडते हैं।

अत. रक्त नाशन के गण मे सक्रिय दिखाई पडते है। तीक्ष्ण कटु अति तिक्त द्रव्य रक्त की रक्तता नष्ट करते हैं। अधिक अम्ल, अधिक क्षार की मात्रा वढ जाने पर भी रक्त की विकृति पाई जाती है इस अर्थ मे ये रक्त विनाशन हैं।

शोणित संघात भेदन—(Anti cogulatings)

परिभाषा—जो द्रव्य जमे हुवे रक्त के सघात या थक्के को तोड देते हैं अथवा गाढे जमे रक्त को द्रुत कर देते हैं वह शोणित सघात भेदन या शोणित भेदन कहलाते है।

ज्ञातव्य—शोणित मे कुछ पिच्छिल व स्निग्ध द्रव्य है जो कि अधिक मात्रा हो जाने व रक्तस्कदन कर द्रव्यो की मात्रा अधिक पाने पर रक्त को गाढा कर देते हैं और रक्त गाढा होकर जमने लगता है अथवा कही कही जम जाता है। कभी ऐसा होता है कि चोट लगने व रक्त स्राव कही पर हो जाने के कारण रक्त वहा पर एकत्र होकर जम जाता है तब भी इनको हटाने की क्रिया शरीर को करनी पडती है। यदि स्कदित रक्त हटाया न जा सके तो वह विकृत ग्रथी अर्बुद व अन्य मास सघात बना देता है।

रक्त स्कदन कर द्रव्य इस जमे हुवे रक्त को चाहे वह किसी प्रकार से

शरीर मे जाकर सग्रहीत होता हो उनको घुलाकर शरीर मे पुनः भेज देता है।

क्रिया—कुछ द्रव्य जो कि कटु रस वाले होते है वे इसमे सक्रिय होते है। और अपने गुणो के कारण वे इस सघात या गाढे पन को दूर कर देते है। सुश्रुत ने कटु रस के व चरक ने भी कटु रस के गुणो मे लिखा है कि—

कटुरस शोणित सघातभिनत्ति।

कटु तीक्ष्ण व क्षारीय द्रव्य शोणित के इस जमे हुवे भाग पर अपनी तीक्ष्णता से कार्य करते हैं और उनको घुला घुला कर धीरे धीरे रक्त मे मिला कर विलायित कर देते हैं।

द्रव्य—१. पिप्पल्यादि गण २ सुरसादि गण व कटुक स्कध के तीव्र कटु द्रव्य।

यथा—पिप्पली, पिप्पली मूल, हस्ति पिप्पली, चव्य, अजमोदा, आर्द्रक, कुष्ठ मल्लातक, लशुन, शीग्रु सुरस, कुटेरक कालमालक, क्षार, मूत्र व जातव–पित्त आदि। गोरोचन पचपित्त।

इसी प्रकार के अन्य द्रव्य भी जो तीक्ष्ण होते हैं वे तथा शारीर द्रव्य अतर ग्रथीय स्राव यह भी रक्त मे मिल कर उसका सघात भेदन करते है।

शरीर रक्त मे रक्त को द्रव वनाने वाले वस्तु हमेशा मौजूद रहते है। अत. इस दशा मे इस प्रकार के द्रव्य यथा पित्त व अधिवृक्कीय व पीयूषीय द्रव्य वढ कर इस कार्य को कराते हैं। जिनका शरीर स्वस्थ होता है उनके शरीर मे यह क्रिया विना किसी औषधि के लिये ही हो जाती है और ज्ञात नही होता। चोट लग जाने के वाद रक्त जमता है और स्वत ही फिर विलीन हो जाता है। पता तक नही चलता।

जहा कार्य नही चलता उन स्थानो मे औषधि का प्रयोग करना पडता है। वहा पर सोच विचार कर इन औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। जैसे यकृत वृद्धि–प्लीह वृद्धि–रक्तार्वुद–कैंसर आदि इनमे इनके प्रयोग से लाभ होता है। धमनीगत रक्त स्कदन मे विशेषकर हार्दिकी धमनी के रक्त सघात होकर अवरोध होने पर इसका प्रयोग होता है। इस प्रकार के रोगो मे रक्त स्राव का होना जोक लगाना–शृगी या तुम्बी का प्रयोग शीघ्र ही स्थानिक अवरोध दूर कर देते हैं।

शोणित प्रकोपण—

परिभाषा–जो द्रव्य शोणित मे प्रकोप करने की प्रवृत्ति वढा देते हैं वे शोणित प्रकोपण कहलाते हैं।

द्रव्य—पित्त के प्रकोप करने वाले द्रव्य। यथा—

क्रोध शोक भय उपवास कटु अम्ल लवण तीक्ष्ण लघु विदाही तिल तैल पिण्याक कुलत्थ सर्षप, अतसी गोधा मास, अजा आविक मास, दधितक्र कुचिका

मस्तु सौवीर सुरा अम्ल फल, अम्ल तक्र का सेवन जिस प्रकार पित्त का प्रकोप करता है वह रक्त का भी प्रकोपक है। इनके अतिरिक्त निम्न वस्तु भी रक्त प्रकोपक हैं।

अधिक मात्रा मे द्रव स्निग्ध गुरु आहार, दिवा स्वप्न, क्रोध अनल आतप श्रम अभिघात अजीर्ण, भोजन, विरुद्ध भोजन, अध्यशन इत्यादि के कारण रक्त प्रकोप हो जाता है।

विधि—पित्त व रक्त एक ही प्रकार के द्रव्य हैं क्योकि रस मे जव पित्त जातीय वस्तु मिल जाते हैं और याकृत पित्त का सम्मेलन हो जाता है तव तथा पित्त वर्द्धक अन्य हेतुओ से जव रक्त मे पित्त जातीय द्रव्य वढ़ जाते हैं तव रक्त अपनी स्वाभाविकता या प्रसन्नता से रहित हो जाता है और दूषित की प्रकुपित की सज्ञा प्राप्त करता है। रक्त मे अम्ल व लवण यह दो रस इसके सतुलन को वनाये रखते हैं। जव इनमे से किसी की मात्रा अधिक हो जाती है तव रक्त का स्वाभाविकता का ह्रास हो जाता है और कुपित हो जाता है। कुपित होकर यह शरीर मे जहा पर जाता है वहा पर कोष्ठ तोद सचरण अम्लिका पिपासा दाह अन्न द्वेष हृदयोक्लेश को यथा मात्रा मे उत्पन्न करता हैं। इसमे पित्त जातीय द्रव्य की मात्रा की ही प्रधानता रहती है। अत रक्त प्रकोप पित्त प्रधान द्रव्यो के ही आधिक्य का नाम है।

दूषण अलग कार्य है और प्रकोपण अलग है। अत पित्त प्रधान कटुतिक्त उष्णता की वृद्धि होने से रक्त पित्त पूर्वक ही कुपित होकर कार्य करता है।

असृक वहन—(Drugs acting on the vessels)

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त के परिभ्रमण को वढा देते हैं वे रक्त वहन कहलाते हैं।

पर्याय—रक्तावह, असृकवहा, असृगावह।

विधि—रक्त का परिभ्रमण तो वरावर होता रहता है। किन्तु जो द्रव्य इस गति मे वृद्धि कर देते हैं वे सव रक्त के वहाने वाले कहलाते हैं।

कई प्रकार के द्रव्य जो स्वाद मे कटु व तिक्त होते हैं तथा तीक्ष्ण व उष्ण होते हैं रक्त के परिभ्रमण को वढा देते हैं। पित्त वर्द्धक जितने भी द्रव्य है वे भी अधिक तर इस कार्य मे सहायक होते हैं।

विशेषकर सुरा व आसव जिनमे अलकोहल की मात्रा अधिक होती है रक्त की गति वढा देते हैं। सुश्रुत ने व चरक दोनो ने सुरा को सद्य. रक्त वहा वतलाया है।

रक्त मे जव अलकोहल की मात्रा १ प्रतिशत होती है रक्त की गति तीव्र हो जाती है। इसी प्रकार वे आसव व अरिष्ट जो कि ७ या ८ प्रतिशत अलकोहल युक्त होते हैं वे सव रक्त की गति को वढ़ा देते हैं।

रक्तवाहिनियों का कार्यक्रम—

रक्त सवहन का कार्य दो केन्द्रो से सचालित होता है।

१- सुषुम्ना शीर्षक स्थितवाहिनी प्रेरक केन्द्र (Vosomotor centre)

२. सुषुम्नास्थित कई सहयोगी केन्द्रो द्वारा (Subsidiary centres)

इसमे दो प्रकार की नाडियो का कार्य होता है। प्रथम वह जो कि सकुचित करती है। द्वितीय वे जो कि धमनीयो को विस्फारित करती है। रक्त परिभ्रमण के लिये एकसा तनाव रक्त वाहिनियो मे होना आवश्यक है। इसके लिये सकोचक केन्द्र सदा अपना सवेदन भेजता रहता है और कार्य होता है। विस्फारक आवेग भिन्न प्रकार से होते है। धमनी में विस्फारक पेशी सूत्र नही होते। अत यह अपना कार्य सकोचक आवेगो के निरोध द्वारा करते है। इन दोनो प्रकार के आवेगो का नियत्रण स्वतत्र नाडी मडल द्वारा होता है।

यदि दोनो उत्तेजना एक साथ हो जाय तो सकोचक प्रभाव प्रधान हो जाता है। यदि यह क्रम लगातार चलता रहे तो सकोचक ततुओ मे थकावट प्रथम आ जाती है और अततः विस्फार की स्थिति देर तक बनी रहती है। वाहिनी प्रेरक किसी भी सस्थान पर केन्द्र से नाड्यत तक प्रभाव होने से औषधियो का प्रभाव इस सस्थान पर पडता है। इस सस्थान पर प्रभाव शरीर के अन्य भागो पर प्रभाव पडने से भी होता है। जो कि प्रत्याक्षिप्त रूप से होता है। फुफ्फुसी या धमनी व मस्तिष्क गत धमनी मे वाहिनी सकोचक नाडिया नही पायी जाती और इन मे रक्त का नियमित सचार होना आवश्यक है। परन्तु यह कार्य इसी प्रकार प्रत्याक्षिप्त विधि से होता है।

रक्तावह औषधिया अपना कार्य रक्त को बढाकर वे नियमित रूप से संवहन कराकर करती हैं। इन औषधियो का विवरण हृद्य औषधियो के साथ किया गया है। सामान्य रूप से रक्त सवाहन कार्य ठीक प्रकार से तब होता है जब कि यह क्रिया नियमित चलती रहे और नाडिया स्वस्थ हो।

रक्तवह—

धमनियो के भीतर जो रक्त भार है वह धमनी की दीवारो पर होता है वही रक्त का भार गिना जाता है। यह वाहिनी सकोचक नाडियो की क्रिया शीलता के कारण होती हैं। रक्त भार की वृद्धि के कारण—

१. सार्वदैहिक धमनियो का सकोच २. हृदय की उत्क्षिप्त राशि मे वृद्धि
३ सामान्य रक्त राशि मे वृद्धि ४ रक्त की सान्द्रता वृद्धि।

मोटी धमनियो के अतिरिक्त पतली धमनिया व केशिकाये इस क्रिया को अधिक सामान्य बनाये रखती हैं। केशिकाये सकोच व विस्तार की शक्ति से युक्त होती है। जिनका नियत्रण रासायनिक क्रिया व नाड़ी आवेगो द्वारा

होता है। पियूष ग्रथी से एक प्रकार का रस स्रावित होता है जो कि केशिकाओं के सामान्य शक्ति का सतुलन रखता है।

संखिया स्रोतोजन व एटीमनी तथा हिस्टामिन जैसी औषधिया अपने प्रभाव से केशिकाओ को प्रभावित कर के विस्फार को करती हैं और अर्जुन हरीतकी जैसी औषधिया सकोच की वृद्धि कर के रक्त भार को बढाती हैं। रक्त प्रवाह को बढ़ानेवाली औषधियां व क्रिया—

१. वाहिनी प्रेरक केन्द्र पर उत्तेजक कार्य कर औषधिया: यह औषधिया मस्तिष्क और सुषुम्ना पर उत्तेजक कार्य करती है और सुषुम्ना के ऊपर प्रभाव पडने से केन्द्र उत्तेजित हो जाता है। अत रक्त सकोच के बढने के कारण रक्त का वहाव वढ जाता है। कुचला, धतूर, कपूर, कोकेन व सुरा यह केन्द्र की क्रिया वढा कर वत का वहन वढा देते हैं।

त्वचा के उत्तेजक व कार्वन द्विओषित की मात्रा वृद्धि से भी रक्त का चाप वढ जाता है।

२. आशयिक प्रदेशस्थ वाहिनी सकोचक नाडी कंदिकाओ को प्रभावित करने वाली औषधिया।

३. यह सामयिक वृद्धि करते हैं। यथा—चक्रमर्द, धतूर आदि।

४. वाहिनी प्रेरक नाड्यग्रो पर कार्य करने वाली औषधियां। साधक पित्त जनित स्रावो के द्वारा यह कार्य होता है। उपवृक्क का स्राव शरीरस्थ रस सवहन कार्य वढाने मे सहायक होता है। उपवृक्क रोगी हो जाय तो इस पर प्रभाव पडता है। सोम, अर्गट उलट कवल व कार्पास मूलत्वक् का प्रभाव इनपर पड़ता है। सामान्य रूप से कषाय रसवाली औषधिया इस तरह का कार्य करती हैं। यह स्वतत्र नाड्यग्रो पर प्रभाव डाल कर तीव्रता पूर्वक अपना संकोचक कार्य कराती है फलत रक्त भार वढ जाता है।

५. धामनिक पेशी पर प्रभाव करने वाली औषधिया।

कुछ औषधिया मुख से अथवा सूची वेध के कर्म से रक्त का सकोचन करती है और रक्त भार वढ जाता है। यथा—हृतपत्री, अर्जुन।

६. रक्त के आयतन मे वृद्धि होने से—

रक्त के अधिक स्राव हो जाने से रक्त भार गिर जाता है अत इस अवस्था मे रक्त भार वढाने की आवश्यकता होती है।

इसके विपरीत क्रिया करने से रक्त का सवहन कम हो जाता है। यथा—१. केन्द्र का अवसादन। २ आशयिक नाडी केन्द्रो का अवसादन ३. नाड्यग्रो पर कम कार्य कर द्रव्य अवसादक। धमनी पेशी को अवसादित करने वाले द्रव्य। रक्त को प्रेषित करने की क्रिया मे कमी।

रक्त दूषण—

परिभाषा—वे द्रव्य जो कि रक्त को दूषित कर देते है वह रक्त दूषण कहलाते हैं।

दूषण के हेतु—जब रक्त वात पित्त या श्लेष्म इन दोषो के द्वारा दूषित होता है तब उसके विभिन्न प्रकार के लक्षण होते हैं। यथा—

वात दुष्ट रक्त—फेनिल अरुण कृष्ण रुक्ष शीघ्र वहने वाला तथा अस्कन्दि होता है। अस्कन्दि न जमने वाला।

पित्त दुष्ट रक्त लक्षण—नील पीत हरित श्यावमास गधि चीटियो और मक्षिकाओ को अप्रिय तथा न जमने वाला होता है।

श्लेष्म दुष्ट रक्त—गैरिकोदक की तरह स्निग्ध शीतल पिच्छिल गाढा चिरस्रावि मास पेशी प्रभृति श्लेष्म दुष्ट रक्त होता है।

सन्निपात दुष्ट—ऊपर के वात पित्त व श्लेष्म के लक्षणो से युक्त होता है और विशेष कर काजी की तरह अधिक दुर्गंध युक्त होता है।

रक्त दोष से युक्त रक्त रक्त पित्त की तरह विशेष करके कृष्ण वर्ण का होता है।

द्वीदोषज—दो दोषो से युक्त होता है।

इस प्रकार से रक्त की विकृति के चिन्ह ज्ञात होते है।

शुद्ध रक्त का वर्ण विशेष कर रक्त वर्ण का प्रसन्न सूक्ष्म तनु और सरलता से शरीर की शिराओ मे घूमने वाला होता है। इस मे यह विकृति कई कारणो और द्रव्यो के सयोग से होती है। रक्त मे कार्वन द्विओषित के वढने पर रक्त का वर्ण काला हो जाता है। आक्सीजन के आधिक्य पर इन्द्रगोप कीट के वर्ण का होता है।

इसका विवरण प्रारभ मे ही किया गया है।

दूषक द्रव्य—दोषो के जो जो प्रदूषक द्रव्य है रक्त के प्रदूषक माने जाते हैं। मासो मे गज मास रक्त का दूषक सुश्रुत ने माना है। यथा—

विरुक्षणो लेखनश्च वीर्योष्ण:रक्त दूषण ।
स्वाद्वम्ल लवणस्तेषा गज श्लेष्माऽनिलापह । सु सू ४६।९६

इसी प्रकार से रक्त दूषण कृत द्रव्यो का विवरण मिलता है।

दोष प्रकोपक और दूषण जो द्रव्य पहले वताये गये हैं वही इसके भी दूषण हैं।

रक्त शोषण—

परिभाषा—जो द्रव्य रक्त को सुखा देते हैं वह रक्त शोषण कहलाते है।

द्रव्य—तिक्त रसाधिक्य व कटु रसाधिक्य यह दोनो रक्त व पित्त के शोषण हैं। अत. कषाय कटु तिक्त द्रव्य विशेष रूप से रक्त के शोषक है। रक्त के द्रव अश का शोषण रक्त कणो का शोषण व नाश व तरलाश का शोषण का जो भी हेतु है वह रक्त का शोषक होता है।

मांस–धातु—

इसमें कई संज्ञायें हैं जिनमें प्रधान—१. मास वर्धक
२. मास दाढ्र्यकृत
३ मास पुष्टिकृत
४- मास स्थिरीकरण—मास बलकृत
५. मास विलेखन
६. मास शोषण
७ मास प्रसादन

मांसवर्धन व बृहणम्—

मास विवर्धन–मांसकर–मासद–मासप्रद–प्रभूत मासकर यह संज्ञायें मिलती हैं।

परिभाषा—वह द्रव्य जो मास जातीय धातु संबधी वस्तुओ की वृद्धि करते हैं और मास की मात्रा बढाते हैं। मास वर्धन या बृहण कहते हैं।

बृहत्वं यच्छरीरस्य जनयेतच्च बृहणम् ।

जो द्रव्य शरीर की मास की वृद्धि कर शरीर की वृद्धि करते हैं वह बृहण कहलाते हैं। कुछ लोगो का मत आधुनिक शब्द न्यूट्रिशस (Nutritious) सज्ञा का प्रयोग इसके लिये मानते हैं। यह शब्द सप्तधातुवर्द्धक के लिये प्रयुक्त होता है—केवल मासधातु के लिये नही।

द्रव्य—जो द्रव्य गुण मे गुरु–शीत–मृदु–स्निग्ध–बहल–स्थूल–पिच्छिल–मद व स्थिर श्लक्षण गुण वाले होते हैं वह बृहण कहलाते हैं।

गुरु शीत मृदुस्निग्धं बहलं स्थूलपिच्छिलम् ।
प्रायोमन्द स्थिरंश्लक्षणं द्रव्यं बृंहण मुच्यते ॥ च. २

भौतिक सगठन—पृथ्वी–जल–तत्व भूयिष्ठद्रव्य–मधुर रसप्रधान–मासवर्धक होते हैं।

१ **बृंहण कषाय**—चरक मे बृहणीय कषाय मे निम्न लिखित द्रव्य लिखे हैं—

१ क्षीरिणी, २ राजक्षवक, ३ बला, ४. काकोली, ५- क्षीर काकोली, ६ वाट्यायनी (बलाभेद), ७ भद्रौदनी, ८ भारद्वाजी, ९ विदारीकद, १० वृद्ध दारुक।

२. **काकोल्यादि गण**—की औषधिया।

३ **आमिष जातीय द्रव्य**—आनूप–वन्य व साधारण देश प्राणियो के मास–मास को विशेष रूप मे मासवर्द्धक माना गया है।

नहिमांससमं किंचिद्द्रव्यदेह बृहत्व कृत् ।
मासाद् मांस मांसेन–संभृतत्वा द्विशेषत ॥

४ **अनुवासन वस्ति**—स्नेह द्रव्यो की वस्ति।

५. अनुवासनोपग--द्रव्य भी स्नेह के साथ मासवर्द्धक व वल्य होते है। इसके द्रव्य-रास्ना-देवदारु-विल्व-मदनफल-मिश्रेया-श्वेत पुनर्नवा-रक्तपुनर्नवा -गोक्षुर-अरणी व श्योनाक।

६ अन्य---मधुर-मधुराम्ल-रसवाले द्रव्य-

आम्र-आम्रातक-नारिकेल-कदली- खर्जूर पनस-परुषक-तालफल-गभारी -मधूक-वदर-वेल-उदुम्वरफल - विदारीकद-लसोढा-वादाम-पिस्ता-अक्षोड- सेव-नासपाती-अश्वगध,-काजू- चिरौजी - लीची - खर्वूज-मधुर रस के वने सामान-रसगुल्ला-गुलाव जामुन-घृतपूर दुग्ध-घृत-तैल-वसामज्जा-नवनीत- पक्षियो के अडे, द्विदल-जाति के द्रव्य।

धातूपधातु---स्वर्ण-लोह-रजत-शिलाजीत-मुक्ता-प्रवाल आदि।

मधुरस्कंध के द्रव्य--

कर्म--आमिप-वर्धक द्रव्यो का उल्लेख ऊपर किया गया है इसमे आमिप के गुरु-मद-स्थिर-पिच्छिल-स्थूल-श्लक्षण-शीतस्निग्ध-गुण होते है। अत. आमिप सेवन-मास धातुवर्धक है। द्विदल आहार द्रव्यो मे आमिप जातीय द्रव्य प्रोटीन के अधिक होने से मास वर्धक होते हैं। शरीर मे मास धातु सव से अधिक पाया जाता है और यह अस्थियो पर लग कर शरीर के वल शक्ति और मास पुष्टिकृत वनता है। समान गुण भूयिष्ट होने से मास वर्धक है। पिण्डजातीय व्रीही-गोधूम-यव व मधुररस मे गुड-मत्स्यडिका-शर्करा भी घृत या दुग्ध के साथ-मासवर्धक है। रक्तपूर्वक यह शरीर मे जाकर सगृहीत होते हैं और मासवर्धक होते हैं।

वृंहण कर्म की उपयोगिता--व्याधि से कृश-औषधि सेवन से दुर्वल, स्त्री सेवन से कृश, भारवहन-प्रवास-उर क्षत से क्षीण व्यक्ति, रूक्ष, अशक्त, सगर्भा-प्रसूता-वालक-वृद्ध ये सव वृहण अधिकारी है। रसवर्धक-रक्तवर्धक द्रव्य मासवर्धक होते हैं।

मधुर स्कंध के द्रव्य--जो गुरु-स्निग्ध-मृदु-पिच्छिल-स्थिर-गुणवाले होते हैं पाचन के पश्चात् रक्त मे जाकर मासधातु वर्धक होते है। यथा--

जीवक-ऋषभक-शतावरी - अश्वगध मापपर्णी-मुद्गपर्णी - विदारीकद- मधुयष्टि-कशेरुक-आत्मगुप्ता-इक्षु-खर्जूर-आम्र-क्षीर-आदि सव मे मासवर्धक द्रव्य होने से मासवर्धक होते हैं वे द्रव्य भी जो स्वाद मे अल्प मधुर होते परतु ऊपर के गुण युक्त होते है मासवकर्ध होते है।

२. **मासदार्ढ्यकृत**--

३. **मांसस्थिरीकृत**--

४. **मासपुष्टि कृत**--मास वर्द्धक द्रव्यो के अतिरिक्त कपाय-तिक्त- अम्ल रस वाले द्रव्य मास को दृढ करने वाले स्थिर करने वाले व पुष्टि कृत होते है। इसके कई विभाग हैं--

दंतमांस दार्ढ्य कृत—कषाय रसवाले त्रिफला–माजूफल–नागरमोथा–आदि तथा रूक्ष, लघु–गुण वाले द्रव्य मास को दृढ बनाते हैं। यथा—तैल–गडूष–त्रिफला–कवल–पेय क्षीरी कषाय।

मांस की पुष्टि—मासो के वे प्रतान जो–अस्थियो के प्रान्त भागो पर लगे होते है वह दृढ कठिन स्थिर व गुरु–गुण वाले होते हैं इनके सेवन से मासतूत्र कठिन बनते हैं। प्रोटीन जातीय–द्विदल जातीय द्रव्य मास सूत्रो को दृढ करते हैं। पक्षियो के अडे–खोया के द्रव्य– किलाट के बने द्रव्य–श्रीखण्ड–पेडा व अन्य द्रव्य मास दार्ढ्यकृत होते हैं।

सर्वांग--सारे शरीर मे मास हो वह भी विना व्यायाम के वहल व ढीला ढाला होता है। अत व्यायाम नियमित किया जाय तो शरीर के मासधातु की वृद्धि करके शरीर मे वल प्राप्त होता है।

मासपेशियो की क्रिया के प्रवर्तक केन्द्र यदि स्वस्थ रहे तो शरीर मे वल आता है। पित्त वर्गीय द्रव्य इनमे कटु–अम्ल–लवण रस वाले द्रव्य–शरीर मे शक्तिवर्द्धक तत्व–शक्ति को वढाते है। उपवृक्क–पीयूष ग्रथी का रसोद्रेचन–मास पेशी मे वल लाकर आकुचन व प्रसारण की गति वढाकर वलप्रदान करते हैं। मास पौष्टिक वल्य द्रव्य चाहे वह शारीरिक द्रव्य हो या औपधि सव मास वल्य होते हैं। इनके केन्द्र सुपुम्ना शीर्षक मे होते हैं यह जव अपना कार्य करते हैं तो मास धातु का वल सम्यक् वना रहता है। और श्लेप्म जातीय द्रव्य जो नाडियो मे वनते है वह मास धातु को ढीला वना देते हैं। सज्ञाहर द्रव्य–श्रम, स्त्रीसेवन–असयम– अब्रह्मचर्य यह सव मास को शिथिल वना देते हैं।

नाड़ीवल्य द्रव्य—स्वर्ण–अभ्रक–लौह–रौप्य–शिलाजीत–आमलक–लघु व वल्य वर्ण्य की औपधिया मास सूत्र दार्ढ्यकृत व वल्य होते हैं।

५ **मास विलेखन**—जो द्रव्य–कटु–तिक्त–कषाय रस वाले रूक्ष–लघु व ग्राही होते हैं वे मास विलेखन होते हैं।

कर्म--यह औपधिया मास धातु से उसके द्रव का निष्कासन या शोषण करती है और मास धातु मे सकोच पैदा करती हैं। अन्य द्रव्य या कर्म जो मास धातु के द्रवत्व को कम करते है। दोष निष्काशन करते हैं–मल का शोधन करती हैं। मास धातु विलेखन होती हैं।

भिन्न–भिन्न स्थान के मांस के विलेखन करने वाले द्रव्य भिन्न होते हैं।

स्थानिक क्षत में—मासक्षत–व्रण या पाक होने पर सशोधक सिंदूर–मृद्दारसग, स्फटिका, काशीश–तुत्य आदि स्थानिक मास विलेखन होते हैं।

नेत्र--आश्च्योतन वाले सव द्रव्य नेत्र से अश्रु निकालते व कला के प्रदाहक होते हैं। यथा—कर्पूर–स्फटिका–शहद–लोध्र।

सार्वांगिक—मासविलेखन द्रव्य–सशोधन वर्ग के द्रव्य–वमन–विरेचन आदि मासलेखन होते हैं–शिलाजतु–मधु–यह भी सार्वांगिक विलेखन होते हैं

उपवास–गोमूत्र सेवन–मूत्रल द्रव्य ये भी विलेखन हैं। ताम्रभस्म–स्वर्ण माक्षिक–कुष्ठ–सालसारादिवर्ग के द्रव्य–वासा–पुष्करमूल–सारिवा–मुडी यह सार्वांगिक मासविलेखन द्रव्य हैं।

आचार—व्यायाम–उपवास–वमन–विरेचन यह भी सार्वांगिक मास-विलेखन होते हैं।

मांसशोषण—वे द्रव्य जो कटु व तिक्त रसवाले होते हैं अति मात्रा मे या अधिक मात्रा मे सेवन करने पर मासशोषण कृत होते है।

व्रत–उपवास–अल्पाहार–निराहार–अधिक व्यायाम–यह भी मास शोषण कृत होते है।

मांस के गुण—गुरु–पिच्छिल–मृदु–स्निग्ध–स्थिर व वहल गुण है इनके विपरीत गुण वाले द्रव्य जो लघु–रूक्ष–खर–विशद–द्रव्य गुण वाले द्रव्य मासशोष कृत होते है।

दीर्घ कालिक व्याधि–साघातिक व्याधि–क्षत–क्षय–रक्तस्रुति भी मास शोषण के हेतु है।

मांसप्रसादन—

परिभाषा—वे द्रव्य जो मास की मात्रा बढाकर शरीर को सुन्दर स्निग्ध व स्थिर अवयव वाले बनाते हैं मास प्रसादन होते हैं।

द्रव्य—विशेषरूप मे माष मासप्रसादन वस्तु है। द्विदल जातीय द्रव्य–आत्मगुप्ता राजमाष–माष–मुद्गपर्णी–माषपर्णी आदि मासप्रसादन है।

जो द्रव्य–मासवर्द्धक है सब मासप्रसादन है। मासपेशियो की गति का प्रसादक लघुमस्तिष्क है अत इसकी सतुलित क्रिया होने पर मास की क्रिया स्वस्थ व प्रसादरूप मे (ठीक) चला करती है। अत मास प्रसादन का कार्य होता है।

अनुवासन वस्ति—स्नेह वस्ति के प्रयोग से वातव्याधि मे मासप्रसादन–मास–मास आप्यायन–पेशीवर्धन का कार्य होता है।

धातुवर्गीय—

शुक्र–इसके निम्न वर्ग है।

१ शुक्रवर्धन
२ शुक्र नाशन
३. शुक्र शोषण
४ शुक्रसशोधन
५ शुक्रावग्राहक–अवशोधक
६. शुक्रामयहर
७. पुस्त्व प्रद

शुक्रवर्धन—इस वर्ग मे निम्न सज्ञाये दृष्टिगोचर होती है।

शुक्रवर्धन–शुक्रप्रद–शुक्रविवर्धन–शुक्रकृत, शुक्रकर, शुक्रवृद्धिकर। बहुशुक्रल–बहुशुक्रकर–शुक्रल–शुक्रजनन।

परिभाषा—जो द्रव्य शुक्र को नियमित रूप मे बढाकर उसकी मात्रा की वृद्धि करते है शुक्रवर्धक कहलाते हैं। यथा—

यथा—यथा शुक्रस्य वृद्धि स्याच्छुक्रल च तदुच्यते शा०

द्रव्य—शुक्रजनन वर्ग के द्रव्य प्रजास्थापन गण

काकोल्यादि गण अष्टवर्ग

औषधिया-ऊपर के वर्ग के अतिरिक्त जो द्रव्य मधुर-शीत-स्निग्ध-पिच्छिल-गुरु-स्थिर-कठिन-गुण वाले होते है सब शुक्रल होते है। जीवक-ऋषभक-काकोली-क्षीरकाकोली-मुद्‌गपर्णी, मासपर्णी-मेदा महामेदा-शतावरी जटामासी-श्वेतगुजा-ऐन्द्री-ब्राह्मी – शतावरी-श्वेतदूर्वा – लक्ष्मणा-पाटलीफल-हरीतकी-हरिद्रा-बला-अतिबला-महाबला-अपराजिता – वाराहीकद – विदारी कद-भिलावे के बीज-बादाम-अखरोट-पिस्ता-चिरौंजी-बहमनश्वेत-बहमनसूर्ख -मूसली-सालम मिश्री-भिलावा-यह सब शुक्रल हैं। तालमखाना-जीवती बीज -सेमलयूसत्व-

धातूपधातु—स्वर्ण-रजत-लौह-वग-नागभस्म-प्रवाल मोती-त्रिवग-वज्र -हीरक भस्म यह शीघ्र शुक्रल व शुक्रजनन द्रव्य हैं।

प्राणिज—दुग्ध-घृत-दधि-मास-अडे-गुड-शर्करादि।

भेद—यह दो प्रकार से शुक्र की वृद्धि करती है।

(१) उष्णवीर्य शुक्रल (२) शीत वीर्य शुक्रल

दोनो प्रकार के द्रव्य दो प्रकार से शुक्रवृद्धि करते हैं।

(१) **नियमित**—जो द्रव्य परिपाचित होकर नियमित रूप से रसादि धातुक्रमान्त शुक्र धातु की वृद्धि करते है वह नियमित शुक्रवर्धक होते हैं।

(२) **तात्कालिक**—वे द्रव्य जो शुक्र की नियमित क्रम से वृद्धि छोडकर शीघ्र सामान्यगुण भूयिष्ट द्रव्य होने से शुक्र के वर्धक होते हैं। ऊपर कथित औषधिया नियमित रूप मे सेवन करने पर शुक्रल होती है।

अश्वगधा—शतावरी-सालममिश्री- पजासालव-श्वेतमूसली – काकोली-मेदा यह नियमित रूप से दुग्धघृत के साथ सेवन करने से १ सप्ताह से १ मास के भीतर प्रभूत शुक्र की वृद्धि करती है।

शीतवीर्य—शुक्रल-जो वीर्य मे शीत होती है और शुक्रवर्धक होती है।

उष्णवीर्य—जो वीर्य मे उष्ण होने पर भी शुक्रल होती है ऊपर के विभाग मे द्विविध औषधि सग्रह है।

शीतवीर्य—वाली औषधिया पित्तप्रकृतिवालो के लिये व उष्णवीर्य औषधिया श्लेष्मप्रकृतिवालो के लिये हितकारक है। चिकित्सक को चिकित्सा से पूर्व इसका विचार करना आवश्यक है।

प्राय शुक्रल औषधिया देर मे पचनेवाली विबध कृत अग्निक्षोभक होती हैं अत. उचित मात्रा मे देना चाहिए।

इन औषधियो के बलवर्धनार्थ–दुग्ध–घृत व शर्करा का सयोग अत्यावश्यक है। पाचन औषधि भी साथ मे देना चाहिए अन्यथा भूख कम हो जाती है। अश्वगधारिष्ट, बलारिष्ट, द्राक्षारिष्ट का सेवन भोजनोत्तर एतदर्थ उचित होता है। यह नियमित क्रमवाली औषधिया रस रक्त मासादि धातु की वृद्धि कर इसकी पूर्ति करती हैं।

औषधि सेवन काल मे–कामोत्तेजना–स्वप्नदोष विवध यह दोष आते है अत. ब्रह्मचर्यपूर्वक पूरे समय १ सप्ताह से ४ सप्ताह तक सेवन करना चाहिए। प्रमेह के कारण उत्पन्न धातुक्षय, अंगमर्द–व मूत्र मे वीर्यस्राव इनके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। शरीर मे बल पौरुष–स्त्रीकामिता और शक्ति का सचार होता है।

शुक्र मे गौरव–शीत–स्निग्ध–पिच्छिल–मृदु–द्रव–घन–श्वेतत्व तथा एक विशिष्ट गध भी होती है। वे द्रव्य जो इन गुणो के समान गुण वाले होते है शीघ्र शुक्रजनन होते हैं। शुक्र–यह शरीर के वस्तिप्रात के उभयत कुछ ग्रथियो के स्राव का सयुक्त द्रव द्रव्य है। जिसमे अण्डग्रथी–शुक्रप्रपिका–अष्ठीला ग्रथी व अन्य कई ग्रथियो के स्राव मिले रहते है। शुक्रजनक यह ग्रथिया अपना नियमित कार्य करके इनकी वृद्धिकर शक्ति बढाती है। अत. अश्वगधा–मूसली–बिदारी-कद–वाराहीकद–सालम मिश्री–ऋद्धि–वृद्धि काकोली मे ये द्रव्य रहते है और दुग्ध क्षीर से बने द्रव्यो मे भी इसके निर्माण करने योग्य द्रव्य रहते है। इनके सेवन से यह ग्रथी सक्रिय होकर विशिष्ट प्रकार के स्राव की वृद्धि करते है।

शुक्र के दो प्रधान कार्य है। १–शरीर पुष्टि–बलकृत–दाढर्यकृत–नेत्र को दर्शन शक्ति व पौरुष प्रदान करता है।

२–प्रजास्थापन–सतान उत्पत्ति करना भी इसका कार्य है। अत ये द्रव्य सर्व शरीर की शक्ति व सगम की शक्तिप्रदान करते है।

शुक्रोपशोषण–

परिभाषा—जो द्रव्य शुक्र की मात्रा कम कर देते है या सुखा देते है उन्हे शुक्रोपशोषण कहते है।

द्रव्य—अग्नि तत्व विशिष्ट कटु–तिक्त–अम्ल–तीक्ष्ण–व्यवायी विकाशि द्रव्य शुक्र शोषक होते हैं। १–पिप्पल्यादिगण

२–अम्लवेतस–चागेरी–क्षार–यह सब अधिक मात्रा मे वीर्य शोषक होते है।

३–धुस्तुर अहिफेन–कर्पूर–लवणाधिक्य–पारसीकयवानी।

४–कई रोगो मे शुक्र ग्रथियो पर प्रभाव पडकर उनकी क्रिया हानि होने से शुक्र की उत्पत्ति कम होती है। यथा पाषाण–गर्दभ, उपदश–उष्णवात।

विधि—कटुतिक्त व्यवायी–विकाशी द्रव्य शुक्र की निर्माण करने वाली ग्रथियो की क्रिया हानि करते हैं। अथवा उसके द्रवत्व वृद्धिकर अष्ठीला व

शुक्रप्रपिका की क्रिया हानि कर देते हैं तो शुक्र कम होता है। घुस्तुर–वेला-डोना–सूचीवूटी–खुरासानीअजवायन–भाग, गाजा, चरस व तम्बाकू का अति सेवन शुक्र का शोषण करता है।

कटुतिक्त औषधियो मे–कर्पूर–चिरायता–महानिव–कुपीलू का मात्राविक्य मे सेवन या लगातार सेवन शुक्रशोपण करता है। शुक्र को सुखाकर गाढा कर देते है। सखिया–हरताल–मैनशिल–कोकीन यह भी शुक्र को गाढा करते हैं अत कामेच्छा होने पर भी शुक्र का नि सरण नही होता। आकारकरभ कपीलु कर्पूर के सयोग भी शुक्रतारल्य को कम करते हैं और शोषण की क्रिया होती है।

शुक्रसंशोधन–

परिभाषा—जो द्रव्य दोषो व रोगो के प्रभाव से मुक्त कर शुक्र को शुद्ध कर स्वाभाविक रूप प्रदान करते है वे शुक्र सशोधन कहलाते है।

द्रव्य—१–मुष्कादि गण (सु० सू० ३८)
२–विदार्यादिगण (,,)
३–करमर्दादिगण की औषधियाँ शुक्रशोधन होती है।
४–सालसारादि गण, ५–काकोल्यादि गण, ७–अष्टवर्ग
७–सारिवादि गण, ८–मजिष्ठादि कषाय।

व्याधि व दोषो के गुणो का नाश कर कुछ औषधियाँ शुक्र सशोधन करती है। उपदश–उष्णवात–क्षय–जीर्णज्वर–सक्रामक ज्वर व अन्य रोगो में शारीर विष वढते हैं और शुक्र को विकृत कर देते है। सुश्रुत ने इस विषय पर एक पूरा अध्याय ही लिखा है। शुक्र की कितनी प्रकार की विकृति होती है। इसके कई भेद है। दोषो के अनुकुल व व्याधि के कारण दूषित शुक्र के भेदो का औषधि विवरण भी दिया है। इस प्रकार के द्रव्य–पारद–वग–हिंगुल–सखिया –हरताल–मैनशिल–शिलाजीत – नाग–वग स्वर्ण–रजत – मुक्ता–कर्पूर–गुग्गुलु–शतावरी –कुष्ठ–पुष्करमूल–कटफल–तालमखाना–लज्जावतीवीज–पारस पीपल के वीज–सर्जरस–वीदाना–ववूल का गोद–शाल्मली–निर्यास, अकीक–जहर-मोहरा खताई–स्वर्णवग–वगेश्वर आदि द्रव्य यथा योग्य स्थानपर प्रयोग करने पर शुक्र सशोधक होते है।

विष—उपदश व उष्णवात के अन्य रोगो के तत्तद व्याधि दोषहारक औष-धियो का प्रयोग होता है। पारद–सखिया–हरताल–मन शिला के योग इनमे विशेष लाभप्रद होते हैं।

तारल्य—तारल्यता की कमी मे शिलाजित–वीदाना–सर्जरस व शल्लकी निर्यास का प्रयोग लाभप्रद होता है।

क्षीणता—व्याधि के प्रभाव से यथा–जीर्णज्वर–क्षय आदि के प्रभाव को दूर करनेवाले स्वर्णरजत के योग–शिलाजीत–सालम मिश्री।

शुक्र ग्रंथियों की क्षीणता—ग्रंथियो की क्षीणता मे अडे, मास–नक्रवीर्य–जुन्दवेदस्तर–व अन्य प्राणिज द्रव्य–अग्निजार, कस्तूरी–गोरोचन–जटामासी–ब्राह्मी–अश्वगधा–शतावरी का प्रयोग लाभप्रद हो जाता है।

उष्णता—शरीर की उष्मा की वृद्धि व अम्लता की रक्त मे व शुक्र मे वृद्धि होने पर मुक्ता–प्रवाल–स्वर्ण–गुडूचीसत्व–वशलोचन–तालमखाना ईसबगोल का प्रयोग लाभप्रद होता है।

दूषण—रक्त के दोष से शुक्र दूषित होने पर सारिवादि गण, महामजिष्ठादि गण–रसमाणिक्य, माणिक्य रस–वसत कुसुमाकर–वसततिलक व अन्य द्रव्यो का प्रयोग लाभप्रद होता है।

दौर्बल्य—व्याधिजनित दौर्बल्य मे–स्वर्ण के योग–स्वर्ण मालती वसत–वसतकुसुमाकर–वसततिलक–लक्ष्मीविलासरस लाभप्रद होते हैं। चन्द्रोदय–मकरध्वज–स्वर्णसिंदूर के योग लाभप्रद होते हैं। अश्वगधा व शतावरी का सतत उपयोग शुक्र निर्माण की क्रिया को उन्नत–वृद्ध व शुद्ध करने मे सहायक होते हैं।

उपदंश—उपदंश व उष्णवात–कुष्ठ, वातरक्तादि रोगो मे इनके विष प्रशमक औषधि के नियमित कोर्स को सेवन करना होता है।

शुक्रकीट—उचित मात्रा मे न बनते हो तो इस निमित्त उचित औषधियो का सेवन करना चाहिए। बीदाना–सर्जरस–शल्लकी निर्यास–शिलाजीत–सारिवा–अश्वगधा–शतावरी आदि का सेवन लाभप्रद है। माषपर्ण मृतीय विधि से तैयार दुग्ध इसे उत्पन्न करता है।

शुक्रहर या शुक्र नाशन—

संज्ञायें—शुक्रघ्न–शुक्रहन्ता–शुक्रहर–शुक्रनाशन, शुक्र बलापह–शुक्रापह–शुक्रजित–शुक्रक्षयकर।

परिभाषा—वे द्रव्य जो शुक्र उत्पादन की क्रिया को नष्टकर शुक्र की उत्पत्ति कम कर देते हैं। अथवा शुक्र की मात्रा कम कर देते हैं उन्हे शुक्रनाशन या शुक्रहर कहते है।

द्रव्य—१–कटु तिक्त व कषाय रसवाले द्रव्य–उष्ण तीक्ष्ण–व्यवायी विकाशी गुण वाले पदार्थ शुक्रोत्पादन की क्रिया पर अति मात्रा मे सेवन करने पर शुक्रनाश करते है।

२ कई रोग भी शुक्र का नाश करते हैं। यथा—षाढ्य, पाषाण–गर्दभ–अष्ठीलाग्रथि वृद्धि–उपदश–उष्णवात ये रोग शुक्रोत्पादक यत्र पर प्रभाव डालकर शुक्रनाश कर यह स्थिति उत्पन्न कर देते है। पाषाण गर्दभ (Mumps) उष्णवात या सुजाक व उपदश–शुक्रोत्पादक यत्रो को विकृत कर देते है अथवा

क्रिया क्षय के हेतु वनते हैं। अष्ठीला ग्रथि की वृद्धि से भी शुक्र निर्माण कर ग्रथियो पर प्रभाव पडता है। पाषाण गर्दभ मे अण्ड की ग्रथी के ऊपर के भाग निष्क्रिय व शुष्क हो जाते है। अत शुक्रोत्पादन मे विघ्न पडता है। नपुसक रोग मे भी शुक्र सयम के ऊपर प्रभाव पडता है और क्रियाहानि हो जाती है। अत शुक्र नही वनता या कम वनता है। कटु व तिक्त रस वाले द्रव्य शुक्र की द्रवता के ऊपर प्रभाव डालते हैं और समुचित शुक्र नहीं वनता।

तिक्त रस नाड़ी यत्र के सचालक नाडियो मे शोप पैदा कर देते है अत शुक्र निर्माण की क्रिया मे अनियमितता वन जाती है और शुक्र की मात्रा कम हो जाती हैं। मादक औषधिया–शराव, गाजा, भाग–चरस, धतूरा, अहिफेन यह शुक्र की मात्रा को कम कर शुक्रक्षय कर होते हैं। पारद व सखिया मिली औषधिया शुक्र की मात्रा कम कर देते हैं। अण्डग्रथि के रोग–जिनमे अण्डग्रथी का क्षय, शोष, शोथ हो जाता है शुक्र निर्माण की क्रिया कम हो जाती है। इन सवो का समावेश शुक्रघ्न शुक्रहर वर्ग मे आता है। उपदश व उष्णवात के विषाक्त क्रम का प्रभाव शुक्रोत्पादक सस्थान पर पडता है। इससे इनके यंत्र विकृत व रुग्ण हो जाते हैं और शुक्र उत्पादन समुचित नहीं होता या विकृत होता है।

रेतसअवग्राहक––

संज्ञायें––रेतस अवग्राहक–पुस्त्वप्रद अतिपुस्त्वप्रद शुक्रवारक–शुक्रावरोधक।

परिभाषा––वे द्रव्य जो शुक्रच्युति को रोकते है और रतिकर्म मे देर मे स्राव कराते हैं–रेतोवग्राहक–पुस्त्वप्रद व शुक्रधारक कहलाते हैं।

द्रव्य––कोकीन–अहिफेन–धुस्तूर–गाजा–भाग–जावित्री–जायफल–आकारकरभ–अष्टवर्ग–जीवनीयगण के द्रव्य–अश्वगधा–शतावरी–उच्चटा–आत्मगुप्ता–माष–राजमाष–पारदवद्ध गुटिका–भिलावे के वीज–सालममिश्री – दुग्धिका–भृगराज–

क्रिया––शुक्र नियमित रूप से रति कर्म या स्त्री पुरुप सगम के वाद अपने आप वाहर निकलता है। यह द्रव्य शुक्र के गाढत्व को वढाते है और शुक्रच्युति देर मे कराते हैं। अत इन्हे अवग्राहक कहते है। व्यवायी– विकाशी द्रव्य इसमे विशेष भाग लेते हैं। इनके अतिरिक्त मानसिक सतुलन भी इस कार्य मे सहायक होता है। यदि मानसिक दृढता हो तो शुक्रच्युति इच्छानुकूल होती है। अन्यथा शीघ्र च्युति होती है। औषधिया जो अहिफेन–गाजा–भाग आदि से वनी होती है रेत को गाढ़ा वनाती है और देर मे रेतस विमोचन होता है।

अत इन औषधियो का प्रयोग रति क्रिया से आधे घटे से एक घटे पहले से करना चाहिए। अथवा रतिक्रिया के कुछ मिनिट पूर्व प्रयोग करना चाहिए। कोकेन को मुख मे धारण करने से अवग्राहिता वढती है। यह जिह्वा की नाड़ियो पर प्रभाव डाल कर रति केन्द्र की क्रिया पर प्रभाव डालता है।

अहिफेन–गाजा–शुक्रतारल्य की कमी करके उसके च्युति के समय को बढाते हैं। समुचित आहार विहार से भी रेतसावग्राहकता बढ जाती है। दुग्ध–घृत–व शर्करा का सेवन–अश्वगधा शतावरी के सेवन के बाद लेने से अवग्राहकता बढती है। मापपर्णभृतीय– चरक के माषपर्ण सृतोय अध्याय मे गोदुग्ध को शक्रोपयोगी–बल्य व घन बनाने का समुचित प्रबध लिखा है। ऐसे दुग्ध के सेवन से लाभ होता है। दुग्ध के साथ अश्वगधा चूर्ण–लज्जावती बीज–तालमखाना–गोक्षुर बीज–सालममिश्री–बहमननूर्ख–बहमनश्वेत–त्रीगवद का सेवन १५ दिन तक करने व पौष्टिक आहार लेने पर शुक्र को गुरु घन–पिच्छिल व गाढा बना कर अवग्राहकता पैदा करता है। केवल सर्ज–रस का सेवन दुग्ध के साथ २ सप्ताह सेवन से अवग्राहकता की वृद्धि करता है। मासवर्गीय विविध व्यजन–दुग्ध के बने सामान घृतपूर–पेडा–श्रीखड का सेवन इसमे लाभदायक होता है। मानसिक शाति का भी प्रभाव इस पर पडता है।

शुक्रावरोधक––

परिभाषा––जो द्रव्य शुक्रच्युति मे अवरोध या रुकावट पैदा करते हैं शुक्रावरोधक कहलाते है।

द्रव्य––जो द्रव्य शुक्रावग्राहक मे कहे गये है उन सबो मे यह गुण होता है। विशेषकर अहिफेन व आकारकरभ का योग। कुपीलुसत्व–गुँजासत्व जुन्दवदस्तर–अम्बर–मुक्तापिष्टी–हीरक भस्म–वज्रभस्म–स्वर्णभस्म व इनके वर्क–दरियाई नारियल मे सब गुण होते हैं। इनका नियमित व तात्कालिक सेवन शुक्रावरोध पैदा करता है।

उर्ध्वरेता तपस्वी गणो–मे यह स्वाभाविक क्रिया उत्पन्न हो जाती है। चटक के अडे का सेवन–उच्चटा बीज का दुग्ध सशोधित–बीज चूर्ण–आत्मगुप्ता का शुद्ध चूर्ण–वानरी गुटिका–अपामार्गबीज का मात्रावत सेवन– इन कार्यों को करता है। यह नियमित रूप मे उत्पन्न किया जा सकता है। नियमित रूप मे ब्रह्मचर्य धारण–सात्त्विक आहार सेवन–घृत दुग्ध–शर्करा का सेवन लाभप्रद होता है।

अनियमित–औषधि प्रयोग द्वारा यह उत्पन्न करके कुछ काल तक अवरोध उत्पन्न किया जाता है। रेतसावरोधक व अवग्राहकवर्ग की औषधिया इस कार्य मे सहायक होती हैं। यह औषधिया मानसिक क्रिया सतुलनपूर्वक अपना कर्म करती है।

पुंस्त्वप्रद––वाजीकरण (Aphrodisiac)

संज्ञायें––पुस्त्वप्रद–पुस्त्ववर्धन–वाजीकरण–वृष्य – शक्रबलप्रद–शुक्रशस्त-म्भकरादि।

पुंस्त्वप्रद परिभाषा––जिस द्रव्यो के–आहार व विहार के नियमित सेवनसे पुरुष स्त्री के साथ रति कर्म मे पूर्ण समर्थ होता है। विशेष शक्ति (वाजीव)

प्राप्त करता है। अथवा अधिक वार स्त्री सेवन मे समर्थ होता है उन सबको पुस्त्वप्रद–वाजीकरण–वृष्य आदि कहते है।

महर्षि चरक ने इसकी ऐसी परिभाषा की है। वाजीकरण औषधि पुरुष को ही विशेष रूप से रमण करने की शक्ति प्रदान करती है।

शुक्र—यह मनुष्य के शरीर मे नियमित आहार के करने के बाद ४० दिन के क्रम उत्तरोत्तर धातुवृद्धि करता हुवा परिणाम स्वरूप मे शुक्र के रूप मे परिणत होता है यह स्वाभाविक नियम है। अत नित्य नियमितक्रम के अनुसार यह बनता है। किन्तु कुछ औषधिया अपने प्रभाव से इसे अल्प समय मे भी बना देती है। यह शुक्र निर्माण कर या वर्द्धक द्रव्य के नाम से पुकारी जाती है। यह ठीक है कि शुक्र की उपस्थिति मे ही पुरुष स्त्री से रमण कर सकता है किन्तु रमण की क्रिया मे केवल शुक्र ही हेतु नही है। इसमे रतिक्रिया के लिये निम्न अगो की क्रिया व स्वास्थ्य अपेक्षित है। बिना इनके स्वस्थ रहे यह सभव नही है।

१. मस्तिष्क व मन २. सुषुम्ना काण्ड की नाड़िया

३ रति प्रवर्तक केन्द्र

इनका सबध शरीर के कई अगो की स्थिति को नियत्रित करता है। ऊपर के अगो की क्रिया शीलता का प्राकट्य पुरुष की मूत्रेन्द्रिय को उत्तेजित करना होता है। जब मूत्रेन्द्रिय नली सक्रिय होकर उत्थान करता है तभी रतिक्रिया सपन्न हो सकती है। इस निमित्त लिंग का उत्थान अत्यावश्यक है। यदि नाडीकेन्द्र–सुषुम्ना–मन व मस्तिष्क व लिंग मे से कोई भी अस्वस्थ हो तो फिर रतिकर्म नही हो सकता।

मन के स्वास्थ्य के साथ पुरुषेन्द्रिय का उत्थान ही मुख्य साधन है अत. इसकी क्रिया से ही आगे का कर्म सभव है।

क्रिया—वाजीकरण मस्तिष्क–सुषुम्नाकाड की नाडियो के केन्द्र व मानसिक लालसा की सहायता से होता है। मानसिक लालसा या इच्छा का केन्द्र मस्तिष्क मे है। ध्वजोत्थान की क्रिया सुषुम्नाकाण्ड के मूल की क्रिया पर होता है। दोनो की क्रियायें पृथक् पृथक् सम्पन्न होती हैं।

जब सुषुम्ना का मूल उत्तेजित होकर क्रिया प्रारभ करता है तो मस्तिष्क गत क्रिया होती है और सभोग की इच्छा होती है तथा लिंगोत्थान होता है। जब मस्तिष्क उत्तेजित होता है तो सुषुम्नामूल भी क्रिया मे ह्रास के लक्षण होते हैं।

ध्वजोत्थान—रति क्रिया मे लिंगेन्द्रिय प्रधान इन्द्रिय है जहा इस कर्म की सक्रियता का बोध होता है। पुरुषेन्द्रिय मे प्रथम मूत्र नली की धमनी मे प्रसारण होता है और शिरा का सकोच और रक्त के भराव से पेशिया कडी हो जाती

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजी वल्लभते नर.।
व्रजेच्चाभ्यधिक येन वाजीकरण मेवतत्। च. चि.

है। मूत्रेन्द्रिय नली मे धमनी प्रसारण से रक्त भरता है–शिरा सकोच से शीघ्र लौट नही पाता तो वह वहा से रुक जाता है अत. मूत्रनलिका या लिंग मोटा–कड़ा व रक्त भराव के लाल वर्ण का हो जाता है। इस समय स्थानिक भागो मे रक्त का सचार तेज हो जाता है। लिंगोत्थान होते ही मानसिक चपलता बढती है–प्रेमालाप–आलिंगन–चुबन की प्रवृत्ति पैदा करता है। यह स्वाभाविक रूप मे मानसिक सहकार के लक्षण है।

क्रिया––वस्ति प्रान्तीय धमनियो का प्रसारण दो हेतु से होता है। इसमे सुषुम्ना के दो प्रदेश सहयोग करते है। धमनी प्रसारण–कटिप्रान्तीय कटि कशेरुका के सम्पर्क मे स्थित जननयत्रो के केन्द्र मे उत्तेजना होने से तथा मूत्र नलिका की प्रसारण कारी नाडियो (Vasodilator) की केन्द्रिय उत्तेजना से धमनी प्रसारित होती है। तत्काल ही उपस्थ प्रान्तीय सज्ञावाही नाड़ियो की उत्तेजना से मानसिक उत्तेजना होकर अनुकटिका नाडियो (Lumber Nerves) का केन्द्र अपनी प्रति फलन क्रिया के कारण उत्तेजना बढती है और इसके साथ ही मस्तिष्कस्थ नाडी केन्द्र उत्तेजित हो उठता है और प्रतिफलन कामोत्तेजना का स्वरूप धारण करता है। मानसिक इच्छा–नाडीकेन्द्र उद्वेजन–धमनीप्रसारण व रक्त भराव–लिंग का इससे दृढ होना अत. कामेच्छा होना और स्त्री प्रसग की उत्कट अभिलाषा पैदा होती है। स्त्री स्वय वाजीकरण है–उसके अग स्पर्श–भाषण प्रेमालाप–अग घर्षण आदि परिणाम भी कामोत्तेजक होता है। काम शास्त्र मे स्त्री व पुरुष के विभिन्न अगो मे काम की स्थिति विभिन्न स्थिति मे बतलायी है। अत ठीक स्पर्श मर्दन–निकोटन–ताडन–घर्षण–से पुरुष कामोत्तेजन की तरफ बढता है। स्त्री भी धीरे धीरे एतदर्थ तैयार होती है उसके भी भगप्रान्तीय धमनी मे विस्तार–रक्त का भराव भगनासा की कठिनता आदि पुरुषवत् प्रदीप्त प्रतिफलन मे भाग लेते हैं अत' स्त्री व पुरुष के जननेन्द्रिय इस उत्तेजक प्रभाव से कामासक्त होते हैं। स्त्री व पुरुषेन्द्रिय के स्पर्श से भी स्थानीय उत्तेजना का स्वरूप बढता है। मूत्र नलिका का मर्दन–घर्षण–या उत्तेजक लेप या तिला लगाने से भी रक्त का भराव होकर लिंगोत्थान होता है मानसिक उत्तेजन–प्रेमालाप–उपन्यासादि पाठन के प्रभाव से स्वप्न मे भी लिंगोत्थान होकर शुक्रस्राव होता है। विबध–मल का सग्रह–आत्र मे क्रिमि वृद्धि से भी उत्तेजन व लिंगोत्थान होता है।

कई रोगो मे भी अधिक उत्तेजन होता है। उष्णवात की चिरकालीन विषाक्तता से लिंग मे उत्तेजन आता है। अर्श के रोगी–यक्ष्मा के रोगी मे भी उत्तेजन अधिक होकर रिरसा होती है। किसी भी अवस्था मे अनुकटिका नाडी केन्द्र की उत्तेजना होने पर लिंगोत्थान होता है। पुरुष व स्त्री मे भी कामोत्तेजन की प्रवृत्ति होती है। दोनो स्त्री और पुरुष मे एक समय मे समान उत्तेजन होकर रतिक्रिया सपन्न करने पर मानसिक तुष्टि होती है। आनद अनुभव होता है। यदि उत्तेजन का क्रम देर तक बना रहे तो उपस्थ प्रान्त मे भराव व कभी-

कभी वेदना की भी अनुभूति होती है। और मल त्याग अग्रिम दिवस इस क्षेत्र के अधिक प्रभावित होने से ठीक से त्याग नही हो पाता। मानसिक तीव्रता से शिर शूल–ग्लानि–अस्थिरता–अरति–बेचैनी व तीव्रता में ज्वर, प्रदाह, प्रलाप, सज्ञाग्राहित्य भी उत्पन्न होता है जो कि कामज्वर के लक्षणो मे लिखा मिलता है। स्त्रियो मे अधिक उत्तेजन को दबाने पर योषापस्मार–अग्निमाद्य प्रदाह श्वेतस्राव और अनेक प्रकार के विकार होते हैं।

औषधियां—वाजीकरण द्रव्यो को कई भागो मे बांटा जा सकता है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने तीन प्रधान विभेद किये हैं।

१. शुक्रजनक २ शुक्रप्रवर्त्तक

३. शुक्रजनक व प्रवर्तक

उदाहरण स्वरूप मे–शुक्रजनक–पौष्टिक आहार व अन्य द्रव्य यथा–दुग्ध, दधि–मक्खन, मास–घृत के बने द्रव्य–अष्टवर्ग–काकोल्यादिगण–जीवनीय गण के द्रव्य।

प्रवर्तक—जो तैयार शुक्र को शीघ्र प्रवर्तन कराने या निकालने मे सहायक होता है। यथा–आकारकरभ–उच्चटा–शिलाजतु– अम्बर–कस्तूरी–गोरोचन–जातीफल–आदि जनक व प्रवर्तक–आहार व औषधि द्रव्य–दुग्ध–दधि–घृत या इनके बने द्रव्य। पक्वान्न आदि और औषधिया।

चरक मे ऐसा कोई वर्ग नही बताया गया है। बल्कि जो भी द्रव्य स्त्री के साथ रति कर्म मे सहायक होकर शक्तिप्रदान करते हैं वाजीकरण होते हैं। महर्षि चरक ने वाजीकरण की जो परिभाषा की है उससे यह नही ज्ञात होता कि वाजीकरण का प्रयोग करके पुरुष स्त्री मे आसन्न हो परतु यह स्वस्त्री मे ही आनद लेकर सतानवान होकर यशस्वी बने यथा—

अपत्यसंतानकरं यत् सद्य· संप्रहर्षणम्।
वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहत स्त्रिय.।
भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते।
जीर्यतोऽप्यक्षयंशुक्रं फलवद्येन दृश्यते।
संतानमूलं येनेह प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते।
यश श्रियं बलं पुष्टि वाजीकरणमेव तत्।

इस विषय मे चरक ने चिकित्सा स्थान मे जो विवरण दिये हैं वह वाजीकरण के कर्म मे शुक्रवर्धन–अपत्यकर, शुक्रोत्पादन, वेगपूर्वक यथा शक्ति स्त्री सेवन–आनंदकर व बलवर्धक कर्म वाजीकरण के लिखे हैं।

द्रव्य—जो द्रव्य आहार के रूप में व औषधि के रूप मे वाजीकरण होते हैं वह निम्न हैं।

आहार द्रव्य—दुग्ध, दधि, घृत, शर्करा के बने हुवे द्रव्य जो माष–आत्मगुप्ता–गोधूम–व्रीही–शालि षष्ठिक द्राक्ष–खर्जूर–बादाम के योग से बनते हैं। अथवा जो प्राणिज द्रव्यो के योग से बनते हैं। यथा–चटक–तित्तिर–कुक्कुट–

र्वाह (मयूर), हस, इनके मास व अडे, मास रस वस्त (वकरे), माहिप, वराह, मत्स्य–नक्र–कुंभीर के मास रस–रेतस–वसा–को विभिन्न प्रकार से वनाकर घृत दुग्ध शर्करा के साथ सेवन करना।

कल्प–गुलिका—वृष्यमासगुलिका–वृष्यमाहिसरस, घृतभ्रष्ट–मत्स्यमास–पूपलिका–वृष्यगुटिका–वृष्यउत्कारिका आदि का वडा ही सुन्दर वर्णन व निर्माण प्रकार चरक ने चिकित्सा स्थान अध्याय दो मे लिखा है। सक्षेप मे वृष्य द्रव्य का निम्न विवरण दिया है—

यत्किंचिन् मधुर स्निग्धं जीवनं वृहणं गुरु।
हर्षण मनसश्चैव सर्वं तत् वृष्यमुच्यते ॥

अर्थात् वे द्रव्य जो मधुर रस वाले, स्निग्ध गुणवाले, जीवन–वृहण व गुरु होते हैं वे मन को प्रसन्न करने वाले होते है वह वृष्य द्रव्य कहलाते है।

औषधि द्रव्य—वला–मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, काकोली–वृहतगोक्षुर–मधुक–शतावरी–द्राक्षा – तुगाक्षीरी – शृगाटक–मृद्वीका–माप–शूकशिम्बी–(आत्मगुप्ता) पिप्पली – विषभेपजम् – आकारकरभ–मेदा–महामेदा–कटकारी–अश्वगधा –वाराहीकद – गाजा–भाग –अहिफेन – वादाम–कोकिलाक्षी–भल्लातक वीज–सालममिश्री–गुजा–कुपीलु–प्याज।

प्रजास्थापन वर्ग—ऐन्द्री–ब्राह्मी–शतावरी–शतदीर्घा–सहस्र वीर्या, अमोघा, अव्यथा, हरिद्रा–वला–अतिवला–वाराहीकद–यह द्रव्य इसके हैं।

खनिज द्रव्यादि—स्वर्ण–लौह–रजत–वग, कस्तूरी–अवर, कुक्कुटाडभस्म –प्रवाल–मौक्तिक–वज्र आदि का प्रयोग वाजीकरण मे होता है।

विशेष कामोत्तेजक—कुपीलू –कुपीलूसत्व – गाजासत्व–कोकेन–कस्तूरी–अम्बर, मद्य–कर्पूर आदि है। ये द्रव्य कामोत्तेजक केन्द्र को उत्तेजितकर काम वृद्धि मे सहायक है।

२ आत्मगुप्ता–राजमाप–प्याज–आकारकरभ–मूसली–पजावाली मूसली –वहमन श्वेत व रक्त यह जननेद्रिय के पास भी वातवहा नाडियो के उत्तेजक हैं।

अवस्थायें—जिनमे कामोत्तेजन होता है यह चरक ने वाजीकरण अध्याय मे वहुत सुन्दर लिखा है।

अभ्यग–उत्सादन–स्नान – गधमाल्यधारण – आभूषण धारण–उचितगृह–शय्या–उचितमित्र नवयौवना स्त्रिया, सुन्दरगान–वाद्य–श्रवण–पक्षी गायन–वर्षा ऋतु मे मयूरादि के वाणी के श्रवण से भी वृषता उत्पन्न होती है।

पुनश्च–मत्तद्विरेफाचरिता:–सपद्मा सलिलाशया।
जात्युत्पल सुगंधीनि शीतगर्भ गृहाणि च।
नद्यः फेनोत्तरीयाश्च गिरयो नीलसानवः
उन्नति नीलमेघानां रम्यश्चन्द्रोदया निशा।
वायव सुखसंस्पर्शा. कुमुदाकरगधिनः।
रतिभोगक्षमा रात्र्य. सकोचागुरुवल्लभा.।

इत्यादि स्मृति काम के ऊचे अक माने गये हैं।

अन्य उपाय—वाजीकरण क्रिया के लिये उचित दुग्ध की अत्यावश्यकता पडती है। अत चरक के वाजीकरण प्रकरण में गौ को माप के पर्ण खिलाकर दूध गुणशाली व गाढापन पैदा करने की विधि है। इस दुग्ध का प्रयोग सद्यः वृष्यता पैदा करता है। पुनः इसे वाजीकरण औषधि द्वारा लेने से अधिक लाभ व शीघ्र लाभ होता है।

माषपर्ण भृतीय–शरमूलीय प्रयोग वृष्य गुड़ उत्कारिका–बृंहणी वटी आदि योग इस निमित्त ही लिखे गये हैं।

शुक्र गत व्याधि—महर्षि सुश्रुत ने शारीर स्थान अध्याय दो मे शुक्र के व्याधित रूपो का सुन्दर वर्णन किया है। इसमें आठ प्रकार की शुक्र व्याधियोका वर्णन किया गया है।

१. वातदोष	२. पित्त दोष	३. श्लेष्म दोष
४. कुणप शुक्र	५. ग्रथित शुक्र	६. पूतिपूय शुक्र
७. क्षीण रेतस	८. मूत्रपूयपुरीष गधी शुक्र।	

इन व्याधियो मे पुरुष मैथुन मे समर्थ होता है परन्तु प्रजा उत्पादन करने मे असमर्थ होता है।

१. वात दोषज शुक्र—शरीर की धातुओं मे वातप्रकोप से क्षीणता होने पर शुक्र में भी रूक्षता फेनिलता अरुण वर्णता–अल्प विच्छिन्नता होने से शुक्र का स्राव देर मे परतु अल्प होता है। यह वात दोषज शुक्र है। इसमे पोषक व ओज वर्द्धक आहार की कमी प्रधान हेतु है।

२. पित्त दोषज—पित्त की दुष्टि से शरीर मे दुष्टि होकर अपचयात्मक क्रियाओ के कारण रक्त मे विकृति होकर नील–पीत वर्ण का उष्ण शुक्र लिंग से प्रदाहपूर्वक निकलता है यह पित्त दोषज शुक्र है।

३. श्लेष्म दोषज—श्लेष्म की वृद्धि के कारण शुक्र मे पिच्छिलता बढती है मार्गवद्ध हो जाता है। पश्चात् रेतोवहा शिराओ से प्राप्त होकर श्लेष्मात्मक लक्षण युक्त शुक्र निकलता है।

४ रक्त दूषित कुणपगंधी—रक्त की कमी या विकृति के कारण उसके अपचयात्मक हेतु से शुक्र का निर्माण शीघ्र नही होता रक्त युक्त शुक्र या शुक्र के स्थान पर रक्तागम (Haemospermis) होता है, यह रक्त दुष्टिज है। इसमे उपदश उष्णवात या अन्य रक्त व्याधियो से रक्त दूषित होकर के प्रजोत्पादन मे समर्थ नही होता। इसमे कुणपगधी होने का व रक्तयुक्त शुक्र अनल्प पात होता है।

५. ग्रंथित शुक्र—श्लेष्म व वात के प्रकोप से ग्रथित शुक्र हो जाता है। यह भी दूषित शुक्र है।

६ पूतिपूयनिभं—पित्त व श्लेष्म की विकृति से दुर्गंधित (पूति) व पूय सदृश शुक्र हो जाता है।

७ क्षीण शुक्र—पित्त व वायु के दोप से शुक्र क्षीण मात्रा मे उत्पन्न होता है। मैथुन मे यह समर्थ होता है परतु शुक्र स्राव नही होता पर अत्यल्प होता है। कभी ऐसे रोगी मैथुन मे समर्थ भी नही हो पाते।

८. मूत्र पुरीप गंधी शुक्र—सब दोपो की विकृति से तथा मूत्रस्थान व पुरीप स्थान की विगुणता से शुक्र मे मूत्र व पुरीष गधिता उत्पन्न हो जाती है। उष्णवात—उपदशज विकृति मे भी यह स्थिति चिरकालिक अवस्थाओ मे व्याधि के उपसर्ग के रूप मे होती पायी जाती है।

इनमे एक दोपज साध्य है, कुणप ग्रथि पूतिपूय क्षीण रेतस वाले कृच्छ्र साध्य है और मूत्रपुरीष रेतस असाध्य माने गये हैं।

स्वाभाविक व शुद्ध शुक्र—

स्फटिकाभं द्रवंस्निग्धं मधुरं मधुगधि च।
शुक्र मिच्छन्ति केचित्तु तैल क्षौद्रनिभं तथा।

अर्थात्—शुद्ध शुक्र वर्ण मे श्वेत स्फटिक की तरह द्रव रूप मे स्निग्ध गुण युक्त, स्वाद मे मधुर और मधु गध की तरह गध वाला होता है।

चिकित्सा—वातपित्त—श्लेष्म दोषो से दूषित शुक्र के लिए तत्तद्दोष हर द्रव्यो के —क्वाथचूर्ण—पाक वस्ति आदि लेने से दोष प्रशमित हो जाता है।

इस निमित्त स्नेह स्वेदोपपादित व्यक्तियो को तत्तद्दोषहर औषधि व उत्तर वस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

कुणप रेतस—१. धातकी पुष्प—खदिर, दाडिम व अर्जुन साधित घृत पान करना चाहिए।

२. सालसारादि गण साधित घृत देना चाहिए।

ग्रथित शुक्र (1) वटी सिद्ध घृत पान करना चाहिए।

(11) पलाश भस्म व पलाश क्वाथ साधित घृतपान।

पूतिपूय शुक्र—परुपक व वट से साधित घृत देना चाहिए।

क्षीण रेतस—शुक्र वर्धन के लिए अष्टवर्ग काकोल्यादि गण साधित घृत देना चाहिए।

विडग्रथी शुक्र—चित्रक—उशीर व हिंगुसाधित घृत पान करना चाहिए।

ऐसे रोगियो को स्नेहन—स्वेदन के उपरान्त वमन विरेचन देकर—निरुह व उत्तर वस्ति का प्रयोग करके शुक्र शुद्धि की विधि को अपनाना चाहिए।

इस प्रकार के योग सुश्रुत के अतिरिक्त अष्टाग हृदय मे भी पाये जाते है। उनकी विधि का अवलोकन कर तद्वत चिकित्सा करना चाहिए।

मेद धातु

इस सबध मे निम्न सज्ञाये मिलती है—

१ मेदवर्धन
२. मेद शोपण—मेदः नाशन। मेदोहर
३. मेदजनन

मेद वर्धन—

पर्याय—मेद पुष्टिद–मेदवर्धन, मेदो वृद्धिकर–मेदजनन

परिभाषा—वे द्रव्य जो मेद की वृद्धि या पुष्टि करते हैं उन्हें मेदो वर्धन कहते हैं।

हेतु—मेद की स्थूलता व कृशता रस निमित्त होती है। श्लेष्मल आहार अध्यशन करने वाले, व्यायाम न करने, दिन मे सोने वाले, आम व अम्ल रस वढ कर, स्नेह की वृद्धि करके शरीर मे मेद की वृद्धि करते हैं। ऐसे पुरुषों के मास व मेद की वृद्धि होने पर उदर–स्तन–नितव व अन्य शरीरावयव वढ जाते हैं स्वेद दुर्गंधित व वहुत आता है। शरीर मृदु व सुकुमार हो जाता है। कफ और मेद से शुक्र मार्ग निरुद्ध होकर शुक्र कम वनता है। अत: अल्प व्यवाय वाला या अव्यवाय वाला व्यक्ति हो जाता है। ऐसे रोगियो को प्रमेह, मधुमेह, प्रमेह पिडिका ज्वर भगदर विद्रधि आदि उपद्रव होते हैं।

आवश्यकता—मेदो वर्धन का कार्य कृश रोगियो मे करना होता है जो अति व्यायाम–अतिव्यवाय, अध्ययन भय शोक, ध्यान, रात्रि जागरण पिपासा क्षुधा से पीडित होकर कृश हो जाते हैं।

इनकी चिकित्सार्थ—मेदो वर्धन की आवश्यकता होती है।

चिकित्सा—कृश रोगियो मे मेदा वर्धन के लिए क्षीर काकोली, काकोली, अश्वगधा, विदारी-शतावरी वला अतिवला नागवला और अन्य मधुर वर्ग की औषधियो का सेवन कराना चाहिए।

आहार मे यथा अग्नि–वल, क्षीर, दधि, घृत मास शालि षष्टिक यव गोधूम का अति सेवन, आराम, अल्प व्यायाम–अधिक निद्रा, ब्रह्मचर्य, इनकी संतर्पण क्रिया से लाभ होता है।

स्वप्न, हर्ष, सुख शैय्या, निश्चिन्तता, शाति–अभ्यग नवान्न, नव मद्य का सेवन, उद्वर्तन–स्नान आदि की व्यवस्था से मेद की वृद्धि–मास की वृद्धि होती है।

वृहण के क्रम मे जिन वातो का उल्लेख किया गया है उनका सेवन भी लाभप्रद है। मासरस आनूप देशज मास, रसायन, वाजीकरण के योगो का प्रयोग करना लाभप्रद है।

> **अचिन्तनाच्च कार्याणां ध्रुवं संतर्पणेन च।**
> **स्वप्न प्रसंगाच्च नरो वराह इव पुष्यति** ॥ च सू. २१

मेदोहर—

परिभाषा—जो द्रव्य मेद का शोषण या नाश करते हैं वे मेदोहर कहलाते हैं।

पर्याय—मेदोहर–मेदनाश, मेदोपह, मेदोजित, मेदोघ्न, मेद शोषण यह इसके पर्याय है।

परिचय—पूर्व मे मेदो वृद्धि का जो कारण बतलाये हैं उनसे मास व मेद की वृद्धि होती है। शरीर मोटा हो जाता है। पेट निकल आता है—कटिनितव स्तन मास के साथ बढकर हिलने लगते हैं। चलने फिरने, उठने बैठने मे उसे कष्ट होता है। मेद शोषण से उष्मा अधिक लगती है। यह रोगी अधिक भोजन करता है—अधिक पानी पीता है—अधिक निद्रा लेता है आलसी हो जाता है। चाहते हुवे भी काम नही होता। दैनदिन के काम करने मे भी असमर्थ हो जाता है। सुश्रुत—चरक व वाग्भट ने सूत्र स्थान के १५ व २१ वे अध्याय मे इनका बडा अच्छा वर्णन किया है।

अत. इनकी चिकित्सा करनी पडती है।

चिकित्सा—शिलाजतु, गुग्गुल, गोमूत्र, त्रिफला, लौह रज, रसाजन, मधु व कटु तिक्त रस वाले द्रव्यो का सेवन लाभप्रद होता है।

यव, मुद्ग, कोदो, श्यामाक—उद्दालक। ह्रासक्रिय आहार का सेवन करना—व्यायाम कराना—चिन्ता भय क्रोध का प्रकट कराना स्थूलता को कम करता है।

त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र के साथ क्षौद्र मिलाकर पिलाना लाभप्रद है।

प्रतिवाप वस्ति—लेखन वस्ति का प्रयोग करना वातघ्न अन्नपान, श्लेष्म मेदहर औषधि, रुक्ष उष्ण वस्ति—रूक्ष उद्वर्तन, प्रजागरण—व्यवाय—व्यायाम, चिंतन करने से स्थूलता कम होती है। मेद का क्षय होता है और शरीर स्वाभाविक रूप मे आ जाता है। चरक ने ऐसा सू. अ २१ मे लिखा है शिलाजतु व गुग्गुल का बडी मात्रा मे प्रयोग कृशताकर व लेखन होता है।

मज्ज धातु—

मज्जधातु मे दो विशेष सज्ञाये पाई जाती है।

१. मज्जवर्धन २. मज्ज शोषण

मज्जवर्धन—

पर्याय—मज्जवर्धन—मज्जाभिवर्द्धन—प्रभूतमज्जाकर।

परिभाषा—जो द्रव्य मज्जा की वृद्धि करते है मज्जवर्धक कहलाते हैं।

द्रव्य—मधुर, अम्ल—लवण युक्त रस वाले द्रव्य आहार व विहार मज्जा की वृद्धि करते हैं। मज्जा के बढने पर सर्वांग गौरव व नेत्रगौरव यह लक्षण मिलते हैं।

अधिक मधुर स्निग्ध वस्तु सेवन से यह वृद्धि होती है। वादाम—काजू—अखरोट—चिरौजी—घृत—वसा मज्जा के सेवन से गुड मत्स्यण्डिका—का सेवन मज्जा की वृद्धि करता है। गुड को प्रभूत मज्जाकृत कहा है।

सम्यक मेद—अस्थि की वृद्धि होने पर मज्जा की भी सम्यक वृद्धि होती है।

मज्जशोषण—

पर्याय—मज्ज शोषक—मज्ज शोषण।

परिभाषा—वे द्रव्य जो मज्जा का शोषण अधिक करते है मज्ज शोषक कहलाते हैं।

हेतु--अस्थि शोप होने पर मज्जा की भी अल्पता हो जाती है। विशेप कर चिरकालिक रोगो मे जैसे पाण्डु, कामला मे रक्त के क्षय होने से उत्तरोत्तर धातु का क्षय हो जाता है। स्त्रियो मे ४५ वर्प के वाद रज क्षय होने पर या गर्भाशय प्रणाली अवरोध करने पर-गर्भाशय निकाल देने पर मज्जा का क्षय हो जाता है। कई प्रकार के आगिक रस जो वनते हैं कम हो जाते हैं और मज्ज की निर्माण क्रिया कम हो जाती है। अधिक कटु तिक्त पदार्थों के सेवन, गुगुल व शिला-जीत का सेवन मज्जा को कमी कर देता है मज्जा क्षय होने पर पार्श्व पीडा-अस्थि पीडा-पर्शुकाओ मे पीड़ा होती है। रोगी वाहर निकलते से डरता है। अधिक शुक्र क्षय से भी मज्ज क्षय हो जाता है। अधिक व्यवाय करने वाले और सम्यक आहार न करने वालो को यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा---इसमे मज्जा-मेद वर्धक आहार-स्निग्ध आहार, वृष्य व वृहण आहार अधिक लाभप्रद होते हैं। आनूप मास-मत्स्य मास-कूर्म मास का मधुर रस के साथ सेवन लाभप्रद होता है। जो हेतु हो उनका निराकरण और सतर्पण कर्म से उचित लाभ होता है।

स्वर्ण--वग रजत-स्वर्णमाक्षिक व मुक्ता सेवन भी मज्ज शोष मे अधिक लाभप्रद पाया गया है।

षांढ्यकर (Anaphrodisiac)

पर्याय---अवृष्य-काम शामक-षाण्ढ्यकर, कामशमन, रतिशक्तिह्रासन

परिभाषा---जो द्रव्य काम वासना की उग्रता को कम कर देते हैं और रति कर्म मे शिथिलता ला देते हैं और मनुष्य को नपुसक वनाने मे सहायक होते हैं वह षाण्ढ्यकर कहलाते हैं

द्रव्य---क्षार-तिक्त व कटु रस वाले द्रव्यो का अतिमात्र सेवन कामोत्तेजन की क्रिया को कम करता है। जिनमे प्रधान कर्पूर-अहिफेन, टंकण क्षार-यवक्षार-तम्वाकू का सत या जर्दा, खुरासानी अजवायन, वेलाडोना, धतूरा, भाग ब्राह्मी-जटामासी-शखपुष्पी, नरमार-कोकेन अधिक सुरा पान, आदि। आधुनिक औषधियो मे ब्रोमाइड आयोडाइड आदि के बने योग मानसिक अवसादक होकर कामशामक वन जाते हैं।

विहार---शोक, क्रोध आदि के अधिक करने, अधिक मैथुन करने, उचित आहार के न मिलने पर भी काम वासना कम हो जाती है। पाषाण गर्दभ (Mumps) हो जाने पर या अश्मरी निष्काशन के अडरज्जू के कट जाने पर भी, उत्तेजन समाप्त हो जाता है वार्धक्य आयु मे काम वर्धक नाड़ियो की क्रिया कम हो जाती है। अत काम शमन स्वय ही कम हो जाता है। अण्ड ग्रथियो के क्षय होने, शुष्क होने से भी काम की उत्पत्ति नही होती।

वात व्याधि के रोगो मे सुषुम्ना की कटि कशेरुकाओ मे स्थित जनन केन्द्र मे उत्तेजना भी होती-मत्रेन्द्रिय की धमनियो मे रक्ताभरण का कार्य नही हो पाता।

प्रमेह होने से शुक्रक्षय मे, अति मैथुन से नाडी क्रियाहानि मे, वृक्क के प्रदाह मे, प्रोस्टेट ग्रंथी के शोथ मे कामोत्तेजन नही होता ।

उष्ण वात व उपदंश की विषाक्तता मे भी काम की चेतना नही होती । यदि उष्णवात मे उत्तेजना होती है जो व्रण के उत्तेजन से होती है वह मिथ्या उत्तेजना होती है ।

आवश्यकता—कामोत्तेजना कभी कभी पुरुष व स्त्री दोनो मे अत्यधिक हो जाती है । पुरुषो का कामोत्तेजन (Satyriasic) और स्त्रियो की कामोत्तेजना को (Nymphomania) निफोमेनिया कहते है । यह कभी कभी इतना उग्र होता है कि उन्माद का स्वरूप धारण करता है। स्त्रियो के कामोन्माद (Erotomania) कभी लज्जाशील स्त्रिया व कुमारिकायें भी लज्जाहीन वन जाती है और काम पिपासा शात न होने पर पागल हो जाती है, हिस्टीरिया और अपस्मार का शिकार वन जाती है ।

पुरुष—कुमार भी व्यभिचारी व हस्त मैथुन के शिकार हो जाते है । कभी कभी उन स्त्रियो मे जिनकी कामवासना तृप्त नही होती उन्हे भी कामशामक औषधि का प्रयोग किया जाता है ।

अन्यथा यह अन्य व्याधियो के शिकार हो जाते है । अत इस औषधि की आवश्यकता पडती है । औषधियो के अतिरिक्त-सात्विक भोजन सात्विक विहार-भजन उपदेश की भी सहायता लेनी होती है ।

कभी कभी क्रिमि (चुरवे) के योनि मार्ग मे प्रवेश करने पर भी कडूपन व उत्तेजन होता है। युवाकुमारो मे भी चुरवे क्रिमि के कारण गुद कण्डू व लिंगोत्थान होता है । तव इसकी चिकित्सा पहले करके तव अन्य चिकित्सा लाभप्रद होती है ।

औषधिया—कर्पूर इनमे सवसे अधिक प्रभाव करता है । दिन मे कई बार कर्पूर का सेवन इसकी तीव्रता शात कर देता है । अहिफेन गिरिधत्तुर-वत्तूर-गाजा का सत्व लेने से इसकी उत्तेजना एक दम कम हो जाती है किन्तु इनका प्रयोग समझ करके विद्वान वैद्य की सम्मति से करना चाहिए ।

अरोचघ्न—

पर्याय—अरुचिनाशन, अरोचकघ्न, तृप्तिघ्न, भक्तद्वेपहर—अनन्नाभिलाष हर, अग्नि सदीपन ।

परिभाषा—जो द्रव्य अरुचि को नाश कर भूख लगाते हैं और अन्न खाने की अभिलाषा उत्पन्न करते हैं उन्हे अरोचकघ्न कहते हैं ।

अरुचि के हेतु—आमाशय के चिरकालिक रोग—अतिसार ग्रहणी—शोष, आमाशय पेशी शोष आदि मे अन्न खाने की रुचि नही होती । अजीर्ण—विवध चिरकालिक हो जाने पर भी खाने की रुचि नही होती । अम्लपित्त—वमन छर्दि के होने पर भी अन्न की रुचि नही होती है । इस रोग मे विना खाये भी पेट भारी मालूम होता है । आलस्य—मलावरोध—विवध इसमे स्वय हो जाते

हैं। मुख का स्वाद विगड जाता है। स्वादिष्ट वस्तु का भी स्वाद नही मिलता स्वाद बेमजा फीका ज्ञात होता है। आमाजीर्ण व आमविष मे एकदम अन्न के तरफ देखने की इच्छा नही होती। आमाशय की पेशियाँ गति नही करती। आतो मे गति नही होती। अत कुछ खा भी लिया जाय तो घटो पेट मे पीडा रहती है। शोक, चिन्ता, भय से भी भूख नष्ट हो जाती है ऐसी दशा मे अग्नि सदीपन व अरोचकघ्न उपक्रम लाभप्रद होते है।

औषधि द्रव्य—दीपन व पाचन वर्ग के अतिरिक्त निम्न गण की औषधिया लाभप्रद होती हैं।

१. तृप्तिघ्न वर्ग — २ वृहत्यादि गण
३. सुरसादि गण — ४. पंचकोल
५. त्रिकटु — ६. चतुर्जात
७. पटोलादि गण — ८. गुडूच्यादि गण — ९. आमलक्यादि गण

इनके अतिरिक्त निम्न औषधियाँ भी लाभप्रद हैं।

औषधि—शुक्त, काजिक–आर्द्रक, नीवू अम्लिका–चागेरी–मूली–शलजम सर्षप–कर्पूर–अजवायन का सत्व (थायमल) पिपरमेंट–पोदीना, अनारदाना सैंधव आसव व अरिष्ट।

विधि—गण्डूष–मुख मे शुक्त या सिरका मे नमक डालकर मुख मे धारण करना चाहिए। द्राक्षासव–कुमार्यासव को भी गण्डूष की तरह धारण करके मुख से निकाल देनी चाहिए। इससे मुख की कलावो व लाला ग्रथियो मे उत्ते-जन मिलता है और मौखिक रस बनने की प्रवृत्ति होती है।

इसके पश्चात–दीपन-पाचन और रूचिकारक औषधियो का प्रयोग करते है। प्रथम सिरके मे रखे आर्द्रक–प्याज–लहसन को धीरे धीरे चूसते है। भोजन से पूर्व–आर्द्रक मूली लवण व नीवू को मिलाकर चूसते है। इससे अग्नि सदीपन क्रिया होती है।

१. यवानीषाडव—को थोडा थोडा भोजन के आदि मध्य व अत मे द्राक्षा-सव के साथ लेते हैं।

२ दाडिमाष्टक का प्रयोग भी ऊपर की तरह करते हैं।

३ पीपरमेंट कर्पूर व थायमल मिलाकर द्रव रूप हो जाने पर २–२ बूद बताशे मे लेते हैं।

४ किसी भी आसवअरिष्ट को जिसमे ५–७ प्रतिशत अलकोहल हो। भोजन के आदि मध्य व अत मे लेने से भोजन का पाचन व रुचि उत्पन्न होती है।

५ अनारदाने व संतरे का रस काला नमक व मिर्च चूर्ण के साथ थोडी थोड़ी देर मे लेने से अग्नि सदीपन होता है। अथवा अनारदानो मे से कालानमक व काली मिर्च मिलाकर रस चूसना चाहिए।

६. चित्रक हरीतकी को चित्रकादि बटी के साथ लेने से अरुचि नष्ट होती है और आमाशय मे बल आता है।

७ अगस्त हरीतकी का सेवन भी आमाशय पेशी की क्रिया का उत्तेजक व वल्य होता है।

८. विवध, अतिसार, सग्रहणी व अजीर्ण रोग के कारण अनन्नाभिलाष या अरोचक हो तो प्रथम उसे दूर करना चाहिए।

९ हेतु का परिवर्तन करने पर लाभ होता है।

लवण भास्कर, हिंग्वष्टक, हिंग्वादि चूर्ण व अग्नि सदीपन चूर्ण को द्राक्षासव दशमूलासव-कुमार्यासव और अन्य आसव अरिष्टो के साथ लेने से अग्नि सदीपन होता है। दीपन वर्ग व पाचन वर्ग की प्राय सब औषधियाँ युक्तिपूर्वक कार्य करती हैं।

लालाप्रसेक जनन— (Sialogogues)

पर्याय—लाला जनन, लाला प्रसेक जनन, प्रसेक जनन, ष्ठीवन वर्धक निष्ठ्यूत जनन, कफप्रसेक जनन, निष्ठीवन।

परिभाषा—जो द्रव्य मुख के स्राव लाला (ष्ठीवन) को उत्पन्न करते या वढाते हैं उन्हे लाला प्रसेक जनन द्रव्य कहते है।

लालास्राव—मुख गह्वर की तीन लसीका ग्रथियो व अन्य रसो का सम्मिश्रित आगिक स्राव है। इसमे फुफ्फुसद्वय का द्रव भी व्याधि काल मे मिश्रित हो जाता है।

कार्य—इसका मुख, गला–कठ व श्वास प्रणाली मुख को स्निग्ध करता है।

आकृति—यह एक चिकना–पिच्छिल–अल्प सान्द्र श्वेत द्रव गुरुपारदर्शक रूप का द्रव्य है। यह विभिन्न रोगो मे विभिन्न प्रकार का स्वरूप धारण करता है।

नियंत्रण—इस निष्ठीवन का नियत्रण स्वतत्र नाडी मडल की क्रिया द्वारा होता है। जव यह उत्तेजित होती है तो रक्त सवहन तीव्र होता है और रक्त नाडिया प्रसारित होती है और ग्रथिया इस रस को बनाती है तथा वाहर आकर इसमे मुख कला का रस भी मिलकर द्रव रूप धारण करता है। जव यह नाडिया आकुचित होती है तव ष्ठीवन की मात्रा कम हो जाती है। इसके नियत्रण मे परिस्वतत्र नाडी मडल की नाडियो के तार जो मुख मे आते है ष्ठीवन भी मात्रा मात्रत्व का ध्यान रखते हैं जिनमे प्रधान जिह्वामूलीय (Lingual Nerves) ग्रसनिका नाडी (glossopharyngial Nerves) विशेष उल्लेखनीय है।

लालास्रावक औषधिया दो प्रकार से कार्य करती है।

१. स्थानीय लाला निसा रक
२. विशेष लालास्रावक

स्थानीय लालास्रावक—अम्ल क्षार व कटु लवण रस वाले द्रव्य इसको वढाते हैं। यथा—आकारकरभ तेजवल त्वक, यवक्षार–क्षारसत्व–कालीमिर्च, पिप्पली पिप्पलीमूल–शीतलचीनी–कवाव चीनी–शुंठी–लवग–दालचीनी–इलायची सुपारी–पान–तम्वाकू यह प्रसिद्ध है।

विशेष लालाजनक—यह औषधिया आमाशय मे शोषित होकर रक्त मे मिलकर ष्ठीवन बढाती है। यथा—लवणाम्ल पोट नरसार–यवक्षार टंकण–तम्बाकू, रस कर्पूर, पलाण्डु, अम्लवेतस, तुत्र, मदन फल, कटुतुम्बी–इन्द्रयव।

इनके सेवन से लालास्राव की मात्रा प्रभूत होती है।

क्रिया विधि—इनका कार्य विशेष नाडियो की उग्रता से अधिक सबंध रखता है। यथा—

१. केन्द्रीय नाड्यंत भाग का उत्तेजन—इस उत्तेजन मे लालास्राव अधिक हो जाता है। यथा—अम्ल व कषाय रस वाले द्रव्य। यथा—अम्ल व लवण, तीक्ष्ण गुणवाली औषधिया शराब–सुरा, मृतसजीवनी, वनप्याज आदि है।

२. उपस्वतत्र नाडी मडल का उत्तेजन–यह औषधिया कुछ काल तक प्रभूत लालास्राव कराती है। तम्बाकू–तुत्र मदनफल। वमनोपग सब औषधिया ऐसा कार्य करती है।

३. नाड़ीगडो की उत्तेजना देकर—तम्वाकू–धुस्तूर इस वर्ग की विशिष्ठ औषधिया हैं।

स्वतत्र नाडी मडल के अतिम भागों का उत्तेजन। इसमे तम्बाकू–पान–आकारकरभ व मदनफल उचित कार्य करते हैं।

इस प्रकार की औषधिया विशेषत पारद–पारद के योग रसकपूर को देकर पश्चात मल त्याग हो कर पेट साफ़ हो जाता है।

लाला नि सारण रोधक—(Antisialogogues)

परिभाषा—वाह्य लालानि सार औषधिया उदर मे जाकर लालास्राव को कम कराती है।

द्रव—धुस्तूर फल बीज, माजूफल–फिटकरी, कषाय रसवाले द्रव्य, सुपारी कत्था–बबूल त्वक, क्वाथ, हरीतकी – बिभीतक, अहिफेन–आम्र–जम्बू त्वक् क्वाथ आदि।

विधि—इसके दो प्रकार हैं। १ स्थानिक क्षोभ का अवसादन
२. नाडीक्रिया अवसादन

लालानि सारणार्थ जो उत्तेजन होता है उसे कम करने वाली औषधिया जो स्थानिक प्रभाव करती हैं। स्राव को कम करती है। यथा—माया फल–हरीतकी–बबूल–आम्र–जम्बू त्वक् क्वाथ। परिस्वतत्र नाडी मंडल पर प्रभाव करने वाली औषधिया जो खाने के बाद शरीर में शोषित होकर अपना प्रभाव करती है। धुस्तूर–गिरी धुस्तूर–अहिफेन–जावित्री आदि। यह केन्द्रिय उत्तेजन को कम करती है और निष्ठीवन निकलना कम हो जाता है। कई तिक्त रस वाली औषधिया भी इस कार्य को करती हैं। यथा—अतिविषा–अहिफेन।

इनके प्रभाव से गला व कठ की रस वाहिनी व लसीका वाहिनियों का कार्य कम हो जाता है।

★★★

वातसंशमन

परिभाषा—वे द्रव्य जो कि शरीर मे जाकर वात की उग्रता को कम कर देते हैं और वात विकार की शान्ति करते हैं वे वात सशमन के नाम से पुकारे जाते हैं।

प्रशमन, संशमन—वातसशमन शब्द बहुत व्यापक है। इसमे बहुत तरह की क्रियायें सम्मिलित हो सकती है। शमन शब्द तो परिभाषानुकूल अपनी क्रिया को करता है। यह अन्य दोषो को प्रकुपित नही करता तथा वातसबधी विशेष क्रिया की उग्रता को शमन कर देता है। सशमन के क्षेत्र मे वातावजयन सवधी जितने उपक्रम है वे सब के सब वात सशमन मे आते है। उसमे वात सबधी सशोधन व सशमन, आहार व आचार चारो कर्म सम्मिलित है। अत वायु की उग्रक्रिया के शमनार्थ जितने भी वातावजयन के कार्य हैं प्रशमन व सशमन के क्षेत्र मे आते है। वह चाहे आस्थापन या अनुवासन वस्ती हो या स्नेहन व स्वेदन हो अथवा कोई पथ्यापथ्य की शामक क्रिया क्यो न हो।

इस प्रकार से प्रशमन वर्ग मे सब क्रियाओ का समावेश है और शमन मे केवल मात्र वातसबधी क्रियाओ का समावेश जो कि क्रिया को शमन कर सके और शरीर पर अन्य प्रकार की विकृति न करती हो। अत इसकी परिभाषा निम्न हो सकेगी।

वात शमन—न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समीकरोति च क्रुद्धान् सर्वांग वात विक्रियाम्।
वात प्रशमन तद्धि तद्वा वातावसादन।

अर्थात्—जो औषधि शरीर मे जाने पर दोषो का सशोधन नही करती और समदोषो को उदीरण नही करती और वढी वात की क्रिया को शात कर देती है वह वात शमन औषधि है।

अत विचार करे तो सशमन के क्षेत्र मे इससे अधिक विशिष्ठता दिखाई देती है। इस प्रकार वात सशमन मे निम्न क्रियाये आती है।

१ **वात संशमन संशोधन कर्म**—इसमे निम्न विभाग कर सकेगे :—

१ स्नेहन २ स्वेदन
३ आस्थापन ४. अनुवासन व अन्य प्रकार के वस्ति भेदादि।

वात संशमन कर्म—१. वातप्रशमन २. वात निग्रहण
३ वातानुलोमन ४. वात प्रसादन

२. **वात संशमन आहार**—इस प्रकार से सशमन का क्षेत्र यथा सम्यक् प्रकार से शमन का या प्रकृष्ट प्रकार से वात शमन का कार्य होता दिखाई पडता है। अत वात शमन के लिये चाहे शमन क्रिया हो चाहे निग्रहण की क्रिया हो या वात अनुलोमन की क्रिया हो या भले ही वह वातावसादन पूर्वक वात का प्रशमन किया जाय, सवका सशोधन व सशमन पूर्वक वात की विकृति के दूर करने मे समर्थ हो सकती है। इनका विवरण आगे दे रहे हैं।

वातवर्गीय—वातसंशमन वर्ग मे पूर्व मे कह आ चुके है कि वह सारी क्रियाये ही सम्मिलित है जो कि वात का किसी भी उपाय से शमन करती हैं। इस वर्ग की व वातवर्ग की अन्य क्रियाओ की परिभाषा सब के विचारार्थ रखते है—

१. **न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।**
समी करोति च क्रुद्धान् सर्वांग वात विक्रियाम्।
वातप्रशमन तद्धि तद्वा वातावसादनम्। विश्व।

अर्थात्—जो द्रव्य शरीर मे जाकर दोष शोधन नही करते, सम दोषो को उत्तेजित नही करते वल्कि क्रुद्ध वात को चाहे वह सर्वांग मे या एकाग मे कुपित हो शात कर देते है।

वात निग्रहण	वातनिरोधन	} सुश्रुत
पवन निग्रहण	वायुधारण	

वातनिग्रहण पर्याय—मारुतनिग्रहण वायोः निग्रहणम्। वातावग्राहकः चरक।

निग्रह का अर्थ निरोध से है। रोक देने के अर्थ मे होता है। अत. उसकी परिभाषा यद्यपि कही पर उपलब्ध नही तथापि निम्नरूप से अर्थानुसार कर सकते है। अत

बला न्निरोधयेद्यस्तु वेदना शूल विक्रियाम्।
विद्यान्निग्रहण वायोः यथा रामठगुग्गुलु.॥

अर्थात्—जो द्रव्य बल पूर्वक वायु के कार्य को जो कि विकृति जन्य होते है चाहे शूल हो या वेदना हो रोक देते हैं उसको वात निग्रहण कहते हैं।

यथा—**हिंगु व गुग्गुलु**

वातप्रसादन—जो द्रव्य अपनी क्रिया के द्वारा वात संबधी गत्यात्मक क्रियाओ को बढा कर अपने अनुग्रह द्वारा प्रकृत क्रिया मे प्रेरणा प्रदान करते हैं वह वात प्रसादन कहलाते हैं। अत परिभाषा निम्न हो सकती है :—

वायो गतिं समास्थाप्य शक्तिं स्वास्थ्यहिताय वै।
यत् करोति प्रसादेन प्रोक्त वातावसादनम्। विश्व।
पर्याय—प्रसादक वात प्रसादक। चरक।
अनिल प्रसादक। वातप्रसादनम्। सुश्रुत।

वातानुलोमनम्:—

पर्याय—वातानुलोमनम्, उर्ध्व वातानुलोमनम्, अधो वातानुलोमनम्
मारुतानुलोमनम्, वातानुलोमनी। चरके।
पवनानुलोमनम् मारुतानुलोमनी। सुश्रुत।
कृत्वा पाकं मूलाना च भित्वावध मधोनयेत्।
तच्चानुलोमन प्रोक्त यथा प्रोक्ता हरीतकी। शा
विमार्ग गामिन वातमुर्ध्वाऽधो तिर्यगागतम्।
कृत्वानुलोमनं यस्तु नयेत्तदनुलोमनम्। विश्वः

अर्थात्—जो द्रव्य विमार्ग मे गये वात का चाहे वह तिर्यक् उर्ध्व व अधोगामी हो अपने मार्ग मे लाते हैं और प्रकृत कर्म कराते है वह वातानुलोमन कहलाते हैं। यथा.—हरीतकी।

पूति मारुत कृत—

पर्याय—चरक —पूति मारुतम्। सृष्ट मारुतम्

सुश्रुत —पूति मारुत, वहु मारुत व प्रचुरानिलः

परिभाषा—किंचिद्द्रव्यं क्वचित् काले स्व प्रभाव प्रमाणत।

पूति मारुत कृच्चाथ वहुवात प्रवृत्ति कृत्।

प्रचुरानिल कर्मा वा यथा स्याद्वै सदाफल.। विश्वः

अथवा

स्व प्रभावेण यद्द्रव्यं पूति मारुत कृद्भवेत्।

भृश दुर्गन्धि युक्तं वा भुक्त द्रव्यानुकारि वा।

गुद मार्गेण सरण स्वाद्वायो प्राचुर्यता तथा।

पूति मारुतक विद्याद् यथा रामठश्रीफलौ। विश्व.

अर्थात्—जो द्रव्य खा लेने के वाद अपने प्रमाण या स्वभाव के अनुकूल वहुत दुर्गन्धित वायु को प्रचुर मात्रा मे निकालते हैं वह पूति मारुत कृत या प्रचुर मारुत कृत कहलाते हैं। कभी आतो मे वहुत दिन तक पडे रहनेवाले गुरु द्रव्य वहुत दुर्गन्धित वायु का निष्काशन करने है और गुद मार्ग से दुर्गन्वित वायु सरण होती है वे द्रव्य भी इस श्रेणी मे आते है तव परिभाषा निम्न हो सकती हैं।

आहारस्य तु भागो य शास्त्रे किट्टेति कीर्तित।

चिरकाल स्थितेऽत्रे वै पूति मारुत कर्म कृत्। विश्वः।

वात संशमन—

परिभाषा—वे द्रव्य जो शरीर मे जाकर वात की उग्रता को कम कर देते हो और वात की विकार शान्ति करते है उन्हे वात प्रशमन कहते है।

कर्मवाचक शब्द—प्रशमन शब्द की परिभाषा पूर्व मे की जा चुकी है। यहा वात प्रशमन से वात की क्रिया को प्रवल करने वाली व नष्ट करनेवाली, विभिन्न प्रकार की क्रिया का समावेश है क्योकि वात का शमन एक प्रकार से न होकर कई प्रकार से होता है। आयुर्वेदिक साहित्य मे इस सवध की वहुत सी क्रियायें प्राप्त होती है। सक्षेप मे कहे तो वात शब्द के साथ नाशन, सूदन, हर, घ्न, हन्ता, हा, नुत्, निग्रह आदि शब्द लगकर वात प्रशमन की विविध क्रियाओ के द्योतक होते हैं। यथा—

चरक—	अनिल नाशनम्	अनिल सूदन
	अनिलहरम्	अनिलापहम्
	वातहरम्	पवनापहम्
	वातप्रशमनी	वातप्रशमन
सुश्रुत—	अनिलघ्नम्	वातघ्नम्
	अनिलहा	वातहन्ता

मारुतापहम्	वातहरम्
वातनाशनम्	वातारिम्
वातोपशमनम्	अनिल सादघ्नम्
अनिलापहम्	वातशमनम्
गात्रवातप्रशमन	वातविकारनुत्

इस प्रकार वात सशमन सबंधी सज्ञायें प्राप्त होती है। इनमें भाषा के अनुकूल भी सज्ञाये प्राप्त होती है जिनमे वात शमन की क्रियाओ का भी वर्णन मिलता है। यथा–

१ वातहरम् २ परवातहरम्

इस प्रकार यदि ध्यान पूर्वक विचार करे तो ज्ञात होगा कि वात सशमन वर्ग की क्रियाये और औषधियो का सुश्रुत के विचार के अनुसार चार प्रकार के उपक्रमो की व तदनुकूल द्रव्यो की प्राप्ति वात सशमन क्रिया के अंतर्गत मिलती है। यथा–

१ वात शमन – सशोधन २. वातसशमन – शमन
३ वात शमन – आहार ४. वातसशमन – विहार

इनकी पूर्ति के लिए प्रशमन-सशमन व शमन शब्दो पर विचार करे तो ज्ञात होगा कि शमन शब्द तो ठीक अपनी परिभाषा के अनुकूल अर्थवहन करता है किन्तु प्रशमन व सशमन मे विशिष्ठ प्रकार से वात की उग्रता की शाति के लिए कर्म करना पडता है। वह चाहे सशोधनात्मक क्रिया की विशिष्ठता पूर्वक हो, चाहे वह शमन की क्रिया सशोधन व सशमन उभय प्रकार हो या आहाराचारपूर्वक हो किसी न किसी प्रकार से भले ही चतुर्विध क्रिया ही के द्वारा क्यो न हो वात की उग्रता को शमन करने मे सहायक होता है और वात की उग्रता को, विगुणता को नष्ट कर देता है अथवा शात करता है या सूदन या हरण करता है। इस प्रकार की क्रिया करके वह वातघ्नम् वातहरम्, अनिलसूदन, वातसशमन, वातहा आदि क्रियाओ की पूर्ति करता है। दोषो को समावस्था मे लाने के लिए विशेष प्रकार का कर्म करना पडता है। अत इसकी परिभाषा थोडी सुधार कर करे तो सारे अर्थ ठीक बैठते हैं। यथा–

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समी करोति च क्रुद्धान् सर्वांग वातविक्रियाम्।
वात प्रशमन तद्धि तद्वा वातावसादनम्।

वात सशमन—सशमन क्रिया की पूर्ति के लिए निम्न लिखित वातवर्गीय क्रियाओ का सहयोग प्राप्त करना पडता है। यथा—

१ वातसशमन २. वातनिग्रहण
३ वातानुलोमन ४. वात प्रसादन

अत: वात गत्यागत कर्म मे वायु की शांति के लिए उसकी उग्रता को कम करना, कभी उग्रता हो तो उसका हठात निग्रह करना, कभी उसका अनुलोमन करके मार्ग मे लाना, और कभी वात की मद क्रिया मे उसको बढाकर प्रसादन कर्म से समावस्था मे लाना होता है। संशोधनात्मक शमन मे स्नेह, विरेचन, अनुवासन वस्ति, आस्थापन वस्ति, उत्तर वस्ति आदि का प्रयोग करके शांत करना पड़ता है। इनका विवरण आगे दिया जायगा। अत. इनकी परिभाषा को निम्न रूप मे करना पड़ेगा।

वात प्रशमनं कर्मोत्रिधा स्यात् बहुधाऽपि तत्।
वातनाड़ीक्रियाधिक्यं स्थापयेन्मंदतां तथा॥
हृदयस्य क्रियामाद्य रक्त संवहनस्य च।
सुषुम्नाया क्रिया माद्यं संपाद्य शमयेत् क्रिया:।
एवं सार्वांगिकींकार्यहानिंकृत्वा समंनयेत्।
वातसंशमनंप्राहु: केचिद्वातावसादनम्॥

अथवा

यद्व्रव्ययात तीव्रत्वं शमयेन्नान्य मीरयेत्।
क्रिया सादेन तद्वा यच्छममापादयेदथ।
उग्रत्वंस्थापयित्वा यत् कुर्वंति शमनं च तत्।
एवमाधुनिकेशास्त्रेवर्णनं तद्धि लभ्यते॥

शार्ङ्गधर— न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषान् तथोद्धतान्।
समी करोति विषमान् शमन तद्यथामृता।

पुनश्च

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समी करोति च क्रुद्धान् तत्सशमन मुच्यते॥ आढमल्ल

इस प्रकार वातसशमन की परिभाषा प्राप्त है तथा बन सकती हैं। साहित्यावलोकन से इतना तत्व निकलता है।

अवसादक कर्म—

परिभाषा—यह एक प्रकार की क्रिया है जो कि कर्म की कमी की बोधक है और सामान्य व विशेष कार्य बोधक है श्लेष्म की वृद्धि का चिह्न है। यथा—

१ **वातावसादक**—इसमे आधुनिक क्रियाये सम्मिलित हैं।

वातावसादन—नाडी अवसादक, नाड्यंत अवसादक, चेतनावाही नाडी अवसादक, मस्तिष्क अवसादक, सुषुम्नावसादक आदि।

पित्तावसादक—पित्तावसादन, अग्नि अवसादन, आमाशयावसादन, धमनी अवसादन, हृदयावसादन, यकृदवसादन।

श्लेष्मावसादन—रसावसादन मासावसादन, फुफ्फुसावसादन, मूत्राशयावसादन, गर्भाशयावसादन आदि।

आधुनिक मत मे निम्न सज्ञाये गिनी जा सकती है। यथा—

१.	मस्तिष्कावसादन	६.	फुफ्फुसावसादक
२.	सुषुम्नावसादक	७.	आमाशयावसादक
३.	वातनाडी शामक	८.	गर्भावसादक
४	धमनी अवसादक	९.	मूत्राशयावसादक
५.	हृदयावसादक	१०.	गर्भाशयावसादक

मस्तिष्कावसादन मे निम्न बाते व क्रियायें सम्मिलित है—

१.	सज्ञाहर या समोहन	४.	वेदनाशामक
२.	निद्राकारक	५.	मादक
३	मोह जनक		

अवसादक—प्रसादक इन दो कर्मो मे निम्न प्राचीन वर्ग का भी समावेश हो सकता है। दोषवृद्धि मे अवसादक कर्म

१. वेदना स्थापन	६. निद्रा प्रशमन	११. अपस्मारघ्न
२. सज्ञास्थापन	७ व्यवायी	१२. मदकारी
३. शूलप्रशमन	८. विकाशी	१३. मूर्च्छाहर
४. अग मर्द प्रशमन	९ स्नेहन	
५. श्रमहर	१० सतर्पण	

प्रसादन—कर्म मे क्षय काल मे वर्द्धन कर्म कृत—

१. सज्ञाप्रबोधन	६. बृहणीय	११. आक्षेप जनन
२. मेघ्य	७ सधानीय	१२. प्रक्षेप जनन
३. बल्य	८. प्रपीडन	१३. हृद्य
४. जीवनीय	९ निद्रा प्रशमन	१४. वय.स्थापन
५ रसायन	१०. वातप्रकोपण	

वातसशमन वर्ग—वात सशमन वर्ग मे बहुतसी सज्ञाओ का समावेश है। उनको कर्म के अनुसार विभिन्न रूप मे रक्खा जा सकता है।

परिभाषा—वे द्रव्य जो कि शरीर के विभिन्न अगो की गति का किसी समय चाहे वह क्षीण गति हो या सामान्य गति हो बढा देते है उन्हे प्रसादन या तदुत्तेजक कहते हैं। यथा—

१. वात प्रसादन सु सू ४८।५९
२. पित्तप्रसादन सु सू. ४६।४२ व अ सू ११।३३
३ वातपित्त प्रसादन सु. सू. ४२।५९
४ हृत् प्रसादक सु चि. २२।२९ ५. अनल प्रसादन सु चि. २४।३१
६ दोष प्रसादन
१ रक्त प्रसादन सु चि २४।५९ २. असृक प्रसादन सु सू ४५।१६१
३. शोणित प्रसादन सु सू ४२ ४ मास प्रसादन च सू २६
५. त्वक् प्रसादन अ. सू १०।२१ व २।१५

६. वर्ण प्रसादन अ सू. १५।४४ दृष्टि प्रसादन सु. सू ४६।३५०
८. षडिन्द्रिय प्रसादन च सू २६

ऊपर की क्रियाओ को अवलोकन करे तो हमे दो बाते दृष्टिगोचर होती है। एक तो गति प्रसादन सबधी हैं व दूसरे मात्रा सबधी है। यथा—

१. अनल प्रसादन
२. हृत् प्रसादन
३. शोणित प्रसादन
४ मास प्रसादन

आधुनिक परिभाषा में इनका विवरण निम्न रूप मे दिखाई देता है वात प्रसादन मे भी सामान्य व विशेष प्रकार का प्रसादन मिलता है।

१. **सामान्य प्रसादन**—जिसमे सार्वांगिक क्रिया का प्रसादन होना पाते है। यथा—

जनरल स्टिमुलेंट्स्—विशेष जिसमे एक विशेष अग की क्रिया का ही प्रसादन होता है। यथा—

१. मस्तिष्क प्रसादन
२ सुषुम्ना प्रसादन
३ नाडी प्रसादन
४ हृत् प्रसादन
५ धमनी प्रसादन
६ रक्तवाही शिरा प्रसादन
७. रक्त प्रसादक

वातसंस्थान की क्रिया का परिचय

वातसस्थान ही शरीर का सबसे उत्कृष्ट सस्थान है और इसके आश्रित होकर ही पित्त व श्लेष्म सस्थान के कार्य होते है। यही सर्व शारीरिक चेष्टाओ और ज्ञानादि का प्रवर्तक है। इनके सचालनार्थ निम्न अगकार्य करते हैं। यह शिरः कपाल के आश्रित भाग मे रहता है।

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिता सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमांगमगानां शिरस्तदभिधीयते। च. सू. १७।१८

शिर. क्षेत्र मे–मस्तिष्क (Brain)
सुषुम्नाशीर्षक (Medulla oblongata)
तथा इनके आश्रित–सुषुम्नाकाण्ड (Spinal card)
मज्ञावह } नाडिया (Sensory nerves)
मनोवह }
नाडीकद–इत्यादि हैं।

इसके अन्तर्गत स्वतत्र नाडीमडल है
इसके दो भाग है। स्वतत्र–(Outonomous N System)
परस्वतंत्र–(Parasympathatic)

इसीके आश्रित चेष्टाओ का प्रवर्तक और सज्ञावह केन्द्र, वुद्धि, मनोवेग के भी केन्द्र है। साधारण प्रत्याक्षिप्त के केन्द्र लघुमस्तिष्क और सुषुम्नाशीर्षक मे भी होते हैं। इस प्रकार सज्ञा और चेष्टा सम्बन्धी सर्व कार्य यहा से ही निष्पन्न होते हैं। वातसस्थान पर कार्य करने वाली औषधिया इन उपर्युक्त मस्तिष्क के भिन्न भिन्न भागो पर अपना प्रभाव करती है। यह प्रभाव दो प्रकार का होता है—

(१) अवसादक–(Depressents)
(२) प्रसादक–(Stimulation) उत्तेजन
(Irritation) क्षोभण

वास्तव मे वात सस्थान की उठती हुई प्रस्पन्दनात्मक क्रियाओ के प्रशमनार्थ अवसादक क्रिया करने वाली औषधियो का महत्व ही अधिक चिकित्सा क्षेत्र मे आज मानते हैं। अत इन्हे हम निम्न भागो मे बाट सकते हैं।

मस्तिष्क के निम्न प्रधान अग होते हैं—

मस्तुलुगपिण्ड (Brain)

(१) अग्रिम मस्तुलुंग—— (Fore Brain)

१. आज्ञास्यकन्द (Thalmus)
२. राजिलपिण्ड (Corpus straitum)
३. मस्तिष्क (Cerebrum)—

मध्य मस्तुलुंग–(Mid Brain)

१. कलायिका चतुष्ठय (Corpora Quadrigemine)
२. मस्तिष्क मृणालक (Cerabral Peduncles)

पश्चिम मस्तुलुंग (Hind Brain)—

१. सुषुम्नाशीर्षक (Medulla ablongata)
२. उष्णीषक (Pons)
३. धमील्लक (Cerebellum)

इन अगो का निम्न लिखित कार्यो से सम्बन्ध होता है। यथा—

मस्तुलुंग पिण्ड का–अग्रिमखण्ड (Fore brain)

(१) आज्ञास्यकन्द (Thalmus) इनका कार्य—

१ सुखदु.ख की प्रतीती करना।
२ भावव्यंजना का केन्द्रीयकरण।
३. मस्तिष्क के परिसरीय भाग की ऐच्छिक चेष्टाओ का नियत्रण।
४. सज्ञाओ का मस्तिष्क के परिसरीय भाग मे पहुचने के पूर्व उनका केन्द्रीकरण इसका सम्बन्ध पश्चिम कन्दिका से होने के कारण संज्ञासूत्रो के स्टेशन की तरह कार्य करता है।

(२) राजिल पिण्ड–इसका कार्य (Corpus straitum)

१ मस्तिष्क के परिसरीय चेष्टा क्षेत्रो से मिलकर ऐच्छिक पेशियो का गति नियत्रण।

२. पेशियो की सहकारिता पर कार्य कराने को तत्पर होना।

३. ऐच्छिक पेशियो तक नाडी वेगो को पहुचाना।

४. शरीर ताप का नियमन।

३ **मस्तिष्क**—इसके विभिन्न क्षेत्रो मे ३ प्रधान कार्य होते हैं–

१. उत्तेजनाओ का ग्रहण (सज्ञा क्षेत्र के कार्य)।

२. ज्ञानसचय और उनका उचित सम्वन्ध स्थापन जिससे स्मृति विचार इत्यादि।

३. चेष्टा का उत्पादन (चेष्टाक्षेत्र का कार्य)

इसके परिसरीय भाग के मानसिक शक्ति का विकास होता है। हानि से विकृत होने से मानसिक शक्ति घटती है यथा वृद्धावस्था। इसके परिसरीय धूसरवस्तु की विकृति से मानसरोग होते है और विचार शक्ति का लोप होने लगता है। इस परिसरीय भाग को निकाल दें या विकृत कर दें तो सज्ञा, बुद्धि स्मृति या अन्य सभी मानसिक क्रियाए नष्ट हो जाती हैं।

मध्यम मस्तुलुंग—(MidBrain) का कार्य।

१ इसके सहयोग से धमिल्लक का नियत्रण ऐच्छिक पेशियो पर होता है।

२. परतत्र पेशियो का सयुक्त नियत्रण होता है।

३. प्रत्यावर्तित क्रियाओ का केन्द्र होने के कारण शरीरस्थिति को बनाये रखना।

४ शरीरस्थिति नष्ट होने पर पुन पूर्व वत् स्थिति मे लाने का प्रयत्न करता।

५ पेशी जाडच उत्पन्न करने मे सहायता करना।

पश्चिम मस्तुलुंग (Hind Brain) का कार्य–

१. सुषुम्ना शीर्षक यह प्रत्यावर्तक क्रियाओ का केन्द्र है, जो जीवन रक्षा के प्रधान केन्द्र है।

विशेष क्रिया १. श्वसन (श्वास लेना) नियत्रण
२ भाषण (बोलना) ,,
३ हृदय की क्रिया ,,
४ निगलन ,,
५ पाचन ,,
६ सात्मीकरण की क्रियाओ पर नियत्रण करना प्रत्यावर्तित अनेक क्रियाओ मे प्रधान+लालास्राव, चूषण, चर्वण, निगलन, वमन, कास, छिक्का (छीकना), निमेपोन्मेष की क्रिया का केन्द्र है।

उष्णीषक (Pons)—यह सज्ञावह यत्र का प्रधान केन्द्र है। विशेषकर शीर्षण्य नाडियो मे से–पचमी, षष्ठी, सप्तमी नाडी के साथ सम्बन्ध होता है अत इनका नियत्रण करता है। आख, कान, नासा, रसना के साथ विशेष सम्बन्ध रखता है विशेष रूप मे यह मस्तिष्क के नियंत्रण सम्बन्धी कार्य को करता है।

धमिल्लक या लघु मस्तिष्क (Cerebellum)—

१. यह ऐच्छिक चेष्टाओ का सहयोग मूलक केन्द्र है। शरीर की माशपेशियो के सतुलन से इसका सम्वन्ध अधिक है। यह गति संतुलन का केन्द्र है। इसकी विकृति से पेशिया दुर्वल हो जाती है और शीघ्र श्रमित हो जाती है। यह पेशियो को वल और शक्ति प्रदाता है अत इसके विशेप कार्य निम्न हैं—

१. पेशी सकोच बनाये रखना (Tonic Function)
२. पेशी दाढ्र्य बनाये रखना (Static Function)
३. पेशी को कार्य काल मे शक्तिशाली बनाये रखना (Sthenic Function)
४. पेशियो को सहकारिता के आधार पर गति उत्पन्न करना (Theory of Synergic Control)

अत. स्पष्ट है कि पेशियो की प्रधान तीन विकृति इससे दृष्टिगोचर होती है।

१. पेशी दौर्वल्य (Asthenia)
२ पेशीसकोचन क्षय (Atonia)
३ अस्थैर्य व कम्पन (Astasia)

चूकि वात सस्थान प्रत्येक गति–चेष्टा–ज्ञान–वुद्धि सम्वन्धी शारीरिक क्रियाओ का प्रवर्तक है अत जब इन चेष्टाओ का सम्यक् प्रवहण होता है तो ज्ञानेन्द्रिय अपना उचित कार्य करती है और जब इनका असम्यक् कार्य होता है, अल्प होता है, तो विभिन्न प्रकार की असम्यक् क्रियाए होती हैं और इन्हे ही वेदना–हर्ष–व्यथा–भेद–साद–चाल–तोद–वर्त–कम्प आदि की सज्ञा मिलती है अत इस सस्थान की क्रियाओ से सम्वन्धित निम्न क्रियाओ का विभाजन किया जा सकता है।

वातावजयन—

वात शाति के क्रम मे निम्न बातो का उल्लेख मिलता है।

सामान्य नियम—वात के गुण मे महर्षि चरक ने जो गुण लिखे हैं वह हैं : रुक्ष शीत लघु सूक्ष्म चल विशद व खर इनके विपरीत गुण वाले द्रव्य वात शामक होते है। यथा—स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, स्थिर, पिच्छिल गुणवाले द्रव्य वात शामक होते हैं।

महर्षि चरक ने यह एक सामान्य नियम वतलाया है। यथा—

रुक्ष शीतो लघुः सूक्ष्म· चलोऽथ विशद खर
विपरीत गुणै र्द्रव्यै र्मारुत संप्रशाम्यति। च. सू. अ. १।५८

इनके अतिरिक्त भी विमान स्थान मे वातावजयन क्रम मे भी चरक ने निम्न क्रमो का उल्लेख किया है। यथा—तस्यविजयनम्.

१. स्नेह--२-स्वेद का विधिवत् प्रयोग करना।

२. मृदु संशोधन--जो कि स्निग्ध व उष्ण गुण वाले व मधुर अम्ल व लवण रस वाले हो।

३. उपनाह--उद्वेष्ठन, उन्मर्दन, परिषेक, अवगाहन, सवाहन, अवपीडन वित्रासन, विस्मापन आदि कर्म यथा स्थान प्रयुक्त होने पर वात शमन होते हैं।

४. **दीपन पाचन कर्म। वातहर विरेचन**--स्नेह विरेचन यथा-शतपाकी वला तैल व सहस्रपाकी वला तैल धान्वन्तर तैल आदि।

५. **वस्ति का प्रयोग**--स्नेह वस्ति का उचित प्रयोग वातशमन मे कार्य कर होता है।

६ **आहार द्रव्यों मे**--मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, उष्ण गुण वाले पदार्थ सुरा आसव आनूपज अन्य गुरु गुणवाले, जानवरो के मास, वातहर आहार आदि।

७. अभ्यग व उन्मर्दन का नियमित प्रयोग करने से वात का प्रकोप नही हो पाता। सुश्रुत ने जिन क्रमो का उल्लेख किया है वह तो सब दोषो मे निम्न कर्म हैं। यथा--

१. **संशोधन**--स्निग्ध द्रव्यो का सशोधन। अनुवासन व निरूह वस्ति का उपयोग।

२ **संशमन**--शमन द्रव्य स्निग्ध उष्ण व दीपन पाचनादि का क्रम।

३. **वातहर आहार**--

४. **वातहर**--आचार।

इनके अतिरिक्त वात सशमन वर्ग का विवरण भी दिया है। इस वर्ग मे करीब ३५ औषधिया हैं। अष्टाग सग्रह व अष्टाग हृदय मे भी यही उपक्रम वतलाये गये हैं।

इन उपक्रमो मे जिनका उल्लेख है उनकी कई विधिया पाई जाती है। उनका क्रमश उपयोग वुद्धिपूर्वक करने का निर्देश हैं। यथा--

स्नेह--स्नेह की जाति मे घृत तैल वसा मज्जा का उपयोग दोष की स्थिति के अनुसार जैसा दोष हो तदनुसार मात्रा व क्रमो का उपयोग होने का कथन है।

स्वेद--वात की प्रकोपावस्था के अनुसार मृदु मध्य व तीव्र स्वेद करना।

स्नेहन--उचित स्नेह की मात्रा यथा रोग व दोष स्थिति के अनुसार होना चाहिये।

आहार--वात शमन करने वाले द्रव्यो के द्वारा वना हुवा आहार का उपयोग।

आचार--अभ्यग, उपनाहन, उत्सादन, परिषेचन आदि व ऋतु कालीन विधि का उपयोग सम्यक प्रकार करना आदि।

वेदना स्थापन

(Analgesics, Antalgics, Anodynes)

वेदना की परिभाषा--सामान्य अनुभूति को (ज्ञानानुभव) को वेदना कहते है। यह मन व शरीर के सपर्क से अनुभव मे आती है। इसके दो भेद हैं—

१. सुखात्मक }
२ दु खात्मक } वेदना

यथा— **वेदनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रिय·।**
द्विविधं सुखदु खाना वेदनानां प्रवर्त्तक: ।। च शा. १

रूढार्थ—चिकित्सा मे या साधारण बोलचाल मे वेदना का ग्रहण दु खात्मक वेदना के ग्रहण के रूप मे ही चलता है। वेदना स्थापन भी इसी अर्थ मे उचित ज्ञात होता है अत इसकी परिभाषा निम्न है—

वेदना स्थापन--जो द्रव्य दु खात्मक वेदना को शान्त कर शरीर को प्रकृतिस्थ बना देते हैं उन्हे वेदना स्थापन[1] कहते हैं।

वेदना के ज्ञान के मार्ग व विशिषता--वेदना शरीर व मन के सयोग से होने वाली सुखात्मक या दु खात्मक अनुभूति है। यह अनुभूति चाहे शारीरिक हो या मानसिक वेदनोत्पादन की हेतु बनती है। इसको अनुभूति (Sensation) कह सकते हैं।

आधुनिक मत में वेदना की रूप रेखा यो हैं--

Pain may be defined as that sensation, which usually disagreeable which provokes a protective withdrawl response because of anticepated injury

अर्थात्—वह अनुभूति जो पसद न हो और जिसके हानिकारक प्रभाव को रोकने के लिये चेष्टा होती हो।

बडी वेदनायें शरीर के अगो पर हानिकारक भयकर प्रभाव को डालती है और उनके परिणाम स्वरूप अगो की निष्क्रियता-हानि और शरीर नाशक भाव उत्पन्न कर मृत्युतक ला देती है। एक रोगी की वेदना सरलता से दूर हो सकती है। दूसरे की वहु उपक्रम करने पर भी कठिनता से जाती है। तीसरे को सब उपक्रम करने पर भी लाभ नही होता और मारक सिद्ध होती है। अत वेदना की मात्रा का ज्ञान करना चिकित्सक का कर्त्तव्य है।

वेदना के मार्ग--वेदनाप्रद अनुभूति जिन मार्गो से एक से दूसरे स्थान तक पहुचती है उनको तीन चार प्रधान भेदो मे बाट सकते हैं। यथा—

१. स्पर्शनेन्द्रियगत या त्वगीय वेदना--
(Superficial or cutaneous pain)

---

१ **वेदनाया संभूतायां तां निहत्य शरीरं प्रकृतौ स्थापयतीति वेदनास्थापनम्**
(चक्रपाणिदत्त)

सारी त्वचा नाडी जात द्वारा गवाक्षित है। इसमे की नाडिया दो तरह की है। मेदस विधान सहित व मेदस विधान रहित। यह नाडिया स्पर्शनेन्द्रिय मे चारो तरफ सूक्ष्म नाडी गडो और नाडीचक्रो द्वारा एक दूसरे से सवद्ध रहती है। इनका अतिम भाग (छोर) त्वगीयप्रान्त होता है। इन्हे नाडचन्त भाग (Nerve end) कहते हैं। नाडचन्त भाग–कर्णिका–उदरावरण, फुफ्फुसावरण तथा अन्य विशेष स्थान के हिस्सो मे भी रहते है। यह सब प्रकार की वेदना का ज्ञान कराती है। चाहे वह अभिघातज हो–अग्नि दग्धज हो–विद्युत प्रयोगज हो इत्यादि। यह किसी एक प्रकार की ही वेदना की अनुभूति कराते हो ऐसा नही, यह विविध वेदना की अनुभूति कराती है।

कुछ स्थान की बनावट भी वेदना ज्ञानार्थ ही बनी होती है ऐसा ज्ञात होता है। जो साधारण वेदना का ज्ञान कराती है। यथा—दात के मास (Tooth pulp) वक्षीय क्षेत्र (Sternal cavity) शिरस्य क्षुद्राघ्मनी (little mengical Artery at the base of the brain) जो मस्तिष्क के प्रारभिक भाग मे है। कुछ मस्तिष्क की रक्तवहा शिराये विशेष कर शख प्रदेश की जिनके नाडी ततु शीघ्र वेदना की अनुभूति कराते है।

शरीर के कुछ भागो की बनावट मे क्षुद्रनाडीततु अधिक होते है जैसे— नाखूनो की जड। जहा से वेदनाये धीरे धीरे ऊपर ज्ञात होती है। अत गर्मतार या सूची वेधन का ज्ञान धीमा होता है। अगुलियो से अग्रभाग के मास शीघ्र ज्ञान की अनुभूति करते है।

गंभीर वेदना—(Deep Sensation & Pain) गभीर वेदनाये मास पेशियो, अस्थि, अस्थ्यावरण या सधि के स्नायुओ तथा वक्ष व उदर की कलाओ मे पायी जाती है। गभीर वेदना सामान्य वेदना की तरह दूरवर्ती ज्ञात नही होती। यह तो जब तेज होती है तो साथ मे अन्य लक्षण भी लाती है यथा—

स्वेदागम—मुखवैरस्य–छर्दि–वमन–रक्तभार की कमी–नाड़ीमदता आदि।

उदर व वक्षगत वेदनाये कठिनाई से अनुभूत होती है। क्योकि सौपुम्न नाडिया उदर व वक्ष के क्षेत्र मे नाडीसूत्र भेजती है जो अपना ज्ञान स्वतत्र नाडी मडल के तारको दे देती है और फिर त्वचा तक पहुचने के लिए शरीर की अन्य नाडियो को देकर त्वचा तक अनुभूति पहुचाती है। अत इसमे स्वतत्र नाडी मडल व सावेदनिक नाडी मडल दोनो के तारो का सयुक्त कार्य होने से वेदना का मार्ग एक न होने से सीधा अनुभव होता है।

यही कारण है कि हृच्छूल की वेदना वामबाहू मे और उण्डूक पुच्छ विद्रधि (Appendicitis) या शोथमे का शूल उदर के आमाशयिक क्षेत्र के पास ज्ञात होता है।

यह भी हो सकता है वक्षोदरीय क्षेत्र के नाडी सूत्र अधिक वेदनानुभव करते है। उदाहरणार्थ कह सकते है कि—आमाशय–अत्र–पित्ताशय–गर्भाशय

या अन्य स्थानो का शोथजन्य दर्द तत्स्थानीय दीवालो की नाडियो के तनाव से होता दिखाई पडता है। चाहे वेदना मद हो या तीव्र।

कुछ लोगो का कथन है कि वेदनानुभव केवल वेदनानुभव मात्र है किन्तु यह होता मानसिक व दैहिक दोनो मिश्रित[१] होकर होते है। यथा—क्रोध, भय, असुखात्मक (unpleasant), अरति, वेचैनी, मनोनवस्थिति। जैसे-हिस्टीरिया मे वेदना काल मे वेदना अज्ञात रहती है और वेग वीतने पर थकावट-आलस्य-आदि रूप मे प्रकट होती है।

सक्षेप मे त्वगीय वेदना कोष्ठीय वेदना से भिन्न होती है और इसका स्वरूप प्राभाविक होता है। तीव्र कोष्ठीय शूल-गुरुता (dull pain) वेदना (aching) या दाह (burning) के रूप में होते हैं, जो अग के कार्य का अवरोध करते हैं और स्वेद-वमन-दुर्वलता व थकावट पैदा करते हैं।

इस प्रकार जो व्यक्ति वेदना की अनुभूति कम करते है वह सत्ववान या सहनशील (Phelgmatic) और सत्वहीन या डरपोक (Hypo Codriac) वे है जो जरा सी वेदना मे चीख उठते हैं। इन पर ध्यान दें तो वेदनाप्रद इच्छाये जिन मार्गो से एक से दूसरे प्रान्त मे जाती है उनके तीन प्रधान मार्ग हैं।

१ त्रयोरोग मार्गा.-इति

(१) शाखा-रक्तादयो धातव त्वक् च

(२) मर्मास्थिसधय

(३) कोष्ठ

शाखा—त्वक् व सप्त धातु-यह वाह्य मार्ग है

मम स्थिसधय-वस्ति, हृदय, मूर्धा आदि अस्थि सधियो व उनमे निवद्ध स्नायु मध्यम् मार्ग है।

कोष्ठ—महास्रोतस के मध्यकाय स्थित आमाशय-पक्वाशय आदि उदर व वक्षगत कोष्ठ आदि यह आभ्यतर मार्ग है।

शाखागत वेदना—सामान्य वेदना होती है।

इसी प्रकार जैसे रोग के तीन मार्ग हैं-प्रधानमार्ग वेदना के भी तीन ही है। शरीर रचना क्रमानुसार इनका मार्ग निम्नप्रकार का है।

१ वेदना की अनुभूति स्पर्शेन्द्रिय के भीतर के नाडी क्षेत्रो से समग्रत्वक्-प्रान्त मे पहुँचती है। अन्य अनुभूतियाँ सामान्यरूप से त्वगीय वनावटो व आत्रीय नाडी वनावटो के स्थल मे होती है। साथ ही पृष्ठीय नाडी गडो के सेलो की वनावट भी अनुभूति हेतुक होती है। यह नाडी गड अच्छी तरह नाडी आवरणो से युक्त (Seathed) होते है या अल्प आवरण वाले होते हैं। इन वेदनाओ

---

[१] These are not only pain sensation but of a associated sensations that are emmotional and effective state as well.

की गति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। इन नाडी गडो के छोटे ततु वेदना धीमी गति से प्रसारित करते हैं ऐसे सूत्र सुषुम्ना काड के पश्चिमीय नाडी गडो मे पाये जाते है (Posterior root ganglia of spinal card) इनके सूत्र क्षुद्र व अर्धवृत्त नाडी सूत्रवत् होते है। बडे नाडी वृत्त, बडी वेदना को ले जाते है जैसे दाह जलन, अथवा प्रारम्भिक वेदना (Protopathic pain) उन नाडी सूत्रो (Dendrites) से घूमकर पश्चिमीय नाडी गडो से आती है। अर्थात् साम्वेदनिक गैंगलिया और श्वेतरेमी (rame) से होकर आती है। यह भी वेदना का प्रसार करती है। इस प्रकार के नाडी सूत्र उदर प्रान्तीय (Veceral pain) वेदना या समीपस्थ स्थानो की वेदना लाती है।

२. सुषुम्ना काण्ड के पश्चिमीय कालम को सवृद्ध करने वाले न्यूरोन (Connecting neurones in Posterior Colmn of Spinal-cord)

३. वे नाड़ी सूत्र जो सुषुम्ना काड से थैलमस तक इस पार से उस पार को क्रास करते है। अथवा वे सब जो चढकर जाते हैं (Fibers crossed ascend on the opposite side via spinothalmic tract to thalamus)

४. थैलमस व मानसक्षेत्र की गतिया (Thalamo Cortical impulses) मस्तिष्क के पश्चात् पृष्ठीय चक्राग (Post Central gyrus) और आभ्यन्तर कैपसूल होकर वहा से अधिक वेदना की अनुभूति कराती है। मस्तिष्क का ललाटीय भाग वेदना की प्रतिक्रिया की अनुभूति करता है। वेदनानुभूतिया (Pain Sensations) वेदना शरीर के किसी भी भाग से उठ सकती है। साम्वेदनिक नाडिया सारे शरीर मे इसका प्रसार करती है। अत इसके लिए किसी अग विशेष को नही कहा जा सकता। इसमे तीन प्रकार की वेदनाये स्पष्ट अनुभव मे आती हैं—

१. सामान्य वेदना या त्वगीय वेदना (Superficial or Cuteneous pain)

२ गभीर वेदना— इसमे मासपेशियो — स्नायु — सधियो व मज्जायतनो (Fascia) की वेदनायें सम्मिलित है।

३ कोष्ठीय क्षेत्रीय (Visceral pain) वेदनायें—प्रथम दो प्रकार की वेदनाये शारीरिक वेदना (Somatic pain) के रूप मे मानी जाती हैं और इनका ज्ञान विद्युत यात्रिक या अग्नि द्वारा अथवा रासायनिक द्रव्यो के प्रयोग द्वारा जाने जाते है। इनका विवरण पूर्व मे दे चुके हैं।

मात्रावत् वेदना—नाड्यत भागो से पचेन्द्रिय ज्ञान की बातो का अनुभव होता है। यह अनुभूति प्रथम उत्तेजनपूर्वक होती है। रूप रग—शब्द गध—भार स्पर्श की अनुभूति तत्स्थानीय उत्तेजन (stimuli) पूर्वक होती है। शब्द का कर्ण की नाड्यत भागो द्वारा—रूप व वर्ण के नेत्रीय भाग द्वारा ऐसे ही गध नासास्थानीय व स्पर्श व भार का त्वगीय नाड्यतो द्वारा ज्ञान होता है। इनको दो भेदो मे विभक्त कर सकते हैं। १. सामान्य २. विशेष।

१. सामान्य (Leminal)—वह उत्तेजन की मात्रा जो एक साधारण उत्तेजनात्मक ज्ञान को अनुभूति का स्वरूप दे दें सामान्य उत्तेजन या मात्रावत सवेदन (Leminal thresh hold लिमिनल थ्रेश होल्ड) या Absolute thresh hold) वेदनात्मक अनुभूति कहते हैं। यह मात्रावत अनुभूति है।

विभेदक—इसी प्रकार दो या अधिक प्रकार की अनुभूति की मात्रा जो भिन्न भिन्न रूप मे होती है। इन विविधात्मक मात्रानुभूति (Differential thresh hold of the stimulus) कहते है। इसमे एक ही प्रकार के शब्द या रग की विभिन्नता की मात्रानुभूति होती है। इनकी मात्रा तरतम के रूप मे सामान्य व तीव्र कही जा सकती है। यह सब मात्रायें उत्तेजन (stimuli) व इच्छा (Impulse) की स्थिति के अनुकूल होती है। इन्हें निम्न रूप मे कह सकते हैं—
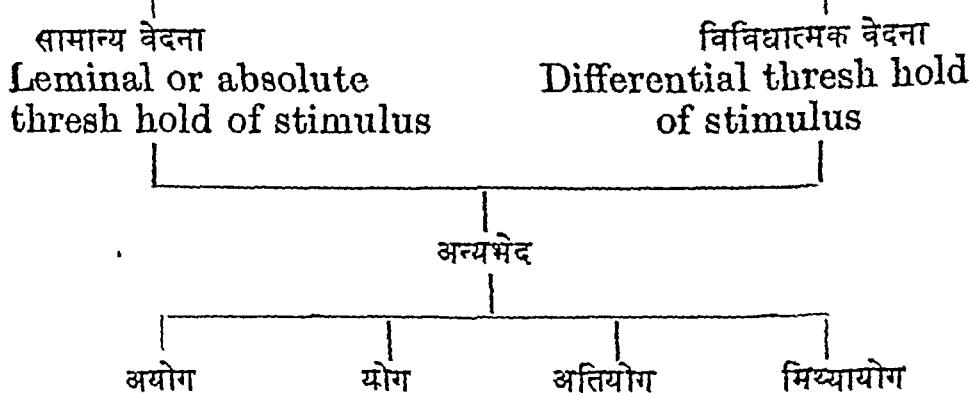
इस प्रकार वह मात्रा की शक्ति जिस पर शीत-उष्ण-दु ख सुख की अनुभूति निर्भर करती है मात्रावत वेदना की सज्ञा मे आती है यह सम्यक् होने पर सम्यक् योग—अधिक होने पर अतियोग सहनशील मात्रा से अनुचित रूप मे होने पर मिथ्यायोग-ठीक योग न होने पर अयोग कहलाती है। इन मात्राओ का प्रवाहण भिन्न भिन्न रूप मे भिन्न मात्रा मे होता है।

१ एक सूई के चुभाने पर वेदना कुछ होकर समाप्त हो जाती है।

२ दतमास की वेदना तीन चार चसक देकर रुक जाती है कुछ देर बाद फिर होती है।

३ आत्र की वेदना होती हैं कुछ देर रहकर कम होती है फिर होती है।

४ हृच्छूल—एक बार होकर देर तक होती है—मात्रा स्थायी होती है।

५. लगातार वेदना—बराबर होती है और उसकी अनुभूति कम अधिक बनी ही रहती है कभी कम कभी अधिक—

चित्र में निम्न रूप से प्रकट कर सकते हैं–

सूची वेधन—१. सूचीवेध
२. दतशूल
३. आत्रगत
४. हृच्छूल
५. लगातार वेदना

वेदना का मात्रामात्रत्व—(Pain standardization)

वेदना के मात्रामात्रत्व के ज्ञान के विषय मे प्राचीन चिकित्सकों के व नवीनो के मत मे कोई विशेष अतर नही है केवल सावन जो मापन के हैं उनका ही अतर है। यथा—

आत्रेय पुनर्वसु–धन्वन्तरि–अग्निवेश–चरक–सुश्रुत–वाग्भट–काश्यप आदि महर्षियो ने वेदना के मापन के कई साधन प्रकार रखे थे।

जिनमें प्रधान— १. शीत सस्पर्श
२. उष्ण (दग्ध) सस्पर्श
३. अभिघातन
४. च्छेदन (ताडनम्)
५. लुचन
६. अवघर्षण (विमलापन)
७. अवसेचन–परिषेचन
८. निमज्जन

आधुनिक चिकित्सको ने वुल्फ (Wolf) हारडी (Hardy) सीवर (Seaver) पीफर (Peefer) वानफे (Vonfray) व गुड्डल (God-dal) इत्यादि कई विचारको ने वेदना की मात्रा पर विचार किया है। उनके ज्ञानार्थ साधन समयानुसार निम्न होते हैं—

१. अग्नि प्रयोग (Tharmal Heat)
२. विद्युत प्रयोग (Electrical)
३. अभिघातन (Mechanical effect)
४. परिघर्षण (Pressure)

प्राचीन काल के चिकित्सको ने वेदना के त्रिविध भेद किये थे। अतः उनके ज्ञानार्थ भिन्न भिन्न साधन अपनाये जाते हैं—

वातवर्ण वेदना	पित्तवर्णवेदना	श्लेष्मवर्णवेदना
१. शीतोष्ण स्पर्श	१. औषठ्य	१ शैत्य
२. तोदन	२. दाह	२. गौरव
३. भेदन	३. पाक	३ स्थैर्य
४. पाटन	४. कण्डू	४. स्तभ
५. विदारण	५. परिवर्तितक्रम	५. वध
६. शूल	६. स्वेद	६ उपदेह
७. व्यथा	७. राग	७ कण्डू
८ खज	८. स्राव	८. श्वैत्य
९. पाण्डुत्व	९ कोथ	९. क्लेद
१०. सकोच		१०. स्नेह
११. हर्ष–रोमहर्ष		
१२. स्तभ		

परिवर्तित रूप में—रस व्यास कम्प तृप्ति ज्वाल
भ्रम माद शोप हर्ष

इन वेदनाओ के ज्ञानार्थ जो उपक्रम किये जाते हैं वह निम्न है—

आत्रेय सप्रदाय ने इन वेदनाओ के मानदड के ज्ञानार्थ कई उपक्रम किये हैं। धन्वन्तरि सप्रदाय मे कुछ और जोडा है इन त्रिविध वेदनाओ के मात्रा के मान दण्ड को जानने के लिए आत्रेय पुनर्वसु ने इनके तीन भेद किये हैं यथा—

१ { सामान्य वेदना / मृदु वेदना ; २ मध्यवेदना ; ३ तीव्र वेदना

इनके मात्रामात्रत्व पर निम्न उपक्रम संक्षेप में आते हैं—

स्पर्शात्मक	उष्णक्रिया	शीतक्रिया
१ विमलापनम्	उष्णस्वेद उष्णचैलिका	१ शीत चैलिक
२ अभ्यग–मर्दन	दग्ध	२ परिषेक
३. स्वेदन	प्लुष्ट	३ प्रदेह
४. परिषेचन	लेप	४. अवगाहन
५. दाहन	परिषेक	५ लेप
६. ताडन–वेधन	प्रदेह	
७ लेपन	अवगाहन–मज्जन	

रोग व व्याधि की दशा मे मृदु–मध्य–तीव्र वेदना मात्रा मे भिन्न भिन्न विचार करना पडता है । वेदना की मात्रा के अनुसार ऊपर के क्रियात्मक–प्रयोग निम्न रूप मे हैं चाहे वह उष्णात्मक प्रयोग हो या शीतात्मक या स्पर्शात्मक ही क्यो नही।

१. रोगर्तु व्याधितापेक्षो नात्युष्णोऽति मृदुर्न च।
द्रव्यवान् कल्पितोदेशे–स्वेद. कार्यकरो मत ।
२. व्याधौ शीतेशरीरे च महान् स्वेदो महाबले।
दुर्बले दुर्बल स्वेदो–मध्यमे मध्यमो हित.।। च. सू. अ. १४।७-८
३. वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते।

१ घर्षण—सामान्य वेदना मे–सामान्य क्रिया–१. विमलापन (लघु-घर्षण) २ अभ्यग।

यह दो उपक्रम आते है। सामान्य सूची वेधन करके उस वेदना के शान्त्यर्थ वहा घर्षण–रगड लगाने से वेदना शात होती है। साधारण श्रेणी की वेदना मे तैलादि मर्दन से वह जाती रहती हैं।

२ स्वेदन—इससे वेदना की मात्रा अधिक हो तो–उष्ण स्वेद का प्रयोग वेदना का उपशम करता है।

स्वेदन की मात्रा व्याधि वेदना व स्थानानुकूल बतलायी गई है। यथा—स्थानानुकूल–

मृदु स्वेद–१. वृषणौ–हृदय दृष्टि स्वेदयेन्मृदु नैव वा।

मध्यम्—२. मध्यमं वंक्षणौ शेषमङ्गावयवमिष्टत ।

तीव्रस्वेद–३ तीव्र वेदना मे उचित स्थान पर

वेदनानुकूल चरक मे मृदु मध्य तीव्र स्वेद के लिये निम्न क्रम लिखे है—

मृदु—उपनाह–प्रदेह–प्रलेप उष्ण, पिण्डस्वेद–उष्णचैलिक स्वेद–(उष्ण चैलिक स्वेद)–नाडी स्वेद ।

मध्यम—परिषेक–अवगाहन–नाडी स्वेदन प्रस्तर स्वेद–कुभी स्वेद ।

तीव्र—कूप–होलाक–अश्मघन–कुटी–भू–जेन्ताक स्वेद ।

१. यह क्रमश. करोष्मा से लेकर–धीरे धीरे वस्त्रोष्मा–लेप से परिषेक अवगाहन तक तीव्र स्वेद ।

२ सामान्य स्वेद से जेन्ताक स्वेद तक मध्य तीव्र स्वेद देकर ।

जिस वेदना की जो मात्रा है वह उतने ही स्वेद मे शात होती है । उस वेदना की वही मात्रा है । मात्रा के विषय मे विचार निम्न हैं—

शीतशूलव्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।
सजाते मार्दवे चैव स्वेदे स्वेदनात् विरतिर्मता । चरक

शीतकर्म—शीतकर्म मे भी शीतल परिषेक–प्रदेह–लेप–परिषेक–अवगाहनादि उष्णताजनित वेदना मे शीतक्रिया द्वारा उपशम करते हैं । यथा—

मुक्तावलीभि शीताभि शीतलै भाजनैरपि ।
जलार्द्रैर्जलजैर्हस्तै. स्विद्यतो हृदयं स्पृशेत् ॥

उष्णकर्म मे धन्वन्तरि संप्रदाय ने एक और ही विधि अपनाई थी वह थी अग्निकर्म ।

उष्णक्रिया—धन्वन्तरि सप्रदाय ने उष्मा का प्रयोग केवल स्वेदन तक ही सीमित नही रखा था बल्कि एक नयी विधि का प्रयोग किया और वह था अग्नि कर्म ।

अग्निकर्म मे उष्णता की कितनी मात्रा कहा प्रयोग करना । वेदना मात्रावत अग्नि की मात्रा का एक नया प्रयोग प्रारम किया जिसमे यह निर्दिष्ट किया गया था कि अग्नि कर्म के योग्य कौन व्यक्ति है और कौन अयोग्य है । इसमे २ विधियो का आश्रय लिया गया था—

१. प्लुष्ट   २. दग्ध

वेदनानुसार एक और विधि का आविष्कार सुश्रुत ने किया था और वह था (३) वेधनम् ।

इन विधियो का प्रयोग वेदनानुकूल किया जाता था । चरक की तरह, सुश्रुत ने भी चौथा प्रकार वेदना स्थापन के मानदण्ड के निर्धारण के लिए और प्रयोग किया था वह था (४) औषधि प्रयोग–महती वेदना मे औषधि की बडी मात्रा और लघु वेदना मे लघ्वी मात्रा का प्रयोग–इसमे २ प्रकार थे—

१. औषधि का बाह्य प्रयोग   २. आभ्यतर प्रयोग

१. बाह्य प्रयोग मे अग्निवत कर्म करने वाले क्षारो का प्रयोग

२ आभ्यतर प्रयोग मे—उष्णतीक्ष्ण व्यवायी विकासी औषधियों का बाह्य व आभ्यतर प्रयोग

अग्नि कर्म के माध्यम निम्न थे—(१) पिप्पली (२) गोदन्त (३) अजाशकृत् (४) शर (५) शलाका (६) जाम्बवोष्ठ लौह या पाषाण ऊन (७) क्षौद्र (८) गुड (९) स्नेहन आदि। सु सू १२–४

इनका प्रयोग वेदनानुसार व स्थानानुसार किया जाता है।

१ **सामान्य वेदना या त्वग्गत वेदना**—

पिप्पली—दग्ध अजाशकृत्—दग्ध

गोदन्त—दग्ध शर—दग्ध

शलाका—दग्ध करना चाहिए।

२. **तीव्रवेदना**—मासगत वेदना

१ जाम्बवोष्ठ दग्ध २. लौह दग्ध

३ **तीव्रवेदना**—शिरास्नायु सधि अस्थिगत वेदना मे

१ क्षौद्र दग्ध २. गुड दग्ध

३ स्नेहदग्ध करना चाहिए।

भिन्न भिन्न रोगो मे वेदना की मात्रा तीव्र तीव्रतम होती है। उसी के अनुसार अग्निदग्ध स्थान व मात्रा का मापदण्ड है। शिरोरोग व अधिमथ (मथ) मे भयकर तीव्र वेदना होने पर भ्रू ललाट या शख प्रदेश मे जहा तीव्र वेदना हो वही पर दग्ध करना चाहिए इत्यादि। यही माध्यम चरक ने भी वतलाये हैं—

मधूच्छिष्टेन तैलेन मज्जक्षौद्रवसावृतै ।

तप्तैर्वा विविधैर्लोहै, र्दहेद्दाहविशेषवित् । च चि अ. २५–१०३

इनका प्रयोग द्विव्रणीय चिकित्साध्याय मे गल–गण्डमाला–श्लेष्मग्रथि रुधिराति प्रवृत्ति मे इनका प्रयोग दग्धार्थ वतलाया गया है।

वेधन–तोदन–ताडन कर्म—वेदना शात्यर्थ चरक व सुश्रुत दोनो ने सूची से वेदन करना—या शिरा ताडन का विचार प्रकट किया है। गभीर मूर्च्छा व वेदना मे इनका प्रयोग होता है। यथा—

सन्यास में—तीक्ष्ण अजन, अवपीडनस्य व धूम्र, सूची द्वारा तोदन नखान्तर मास मे तोदन व दाह—केश व लोम का लुचन दाँतो से जोर से काटना, आत्मगुप्ताव—का घर्षण आदि प्रयोग किये जाते थे। यथा—

---

१ अथेमानि दहनोपकरणानि भवन्ति। तद्यथा—पिप्पल्यजाशकृत् गोदन्त शर–शलाका–जाम्बवोष्ठेतरलौहा. क्षौद्रगुडस्नेहाश्च । तत्र—पिप्पल्यजाशकृत् गोदन्तशर शलाकास्त्वग्गतानां जाम्बवोष्ठेतरलौहामांसगतानां, क्षौद्रगुडस्नेहो शिरास्नायुसंध्यस्थिगतानाम् । सु. सू. १२–४

१. अंजनान्यवपीडाश्च धूमा: प्रधमनानि च ।
सूचीभिस्तोदनं शस्तं, दाह: पीड़ा नखान्तरे ।
लुंचनं केश लोम्नां च दन्तैर्दशनमेव च ।
आत्मगुप्तावघर्षश्च—हितं तस्यावबोधने ।

च० सू० अ० २४ । ४६-४७

२. चूर्णैर्प्रधमनैर्तीक्ष्णै विषार्त्तं समुपाचरेत ।
ताडयेच्चशिरा: क्षिप्रं तस्य शाखाललाटयो: ।
तास्वप्नसिच्यमानासु मुर्ध्निशस्त्रेण शस्त्रवित् ।
कुर्यात् काक पदाकारं व्रणमेवं स्रवंतिता ।।

सु० चि० अ० ५।४०-४५

३ सन्यास में—तीक्ष्णांजनाभ्यंजनधूमयोगै स्तया नखाभ्यन्तरतोत्रपातै. ।
वादित्र गीतानुनयैरपूर्वै, विघट्टनैर्गुप्तफलावघर्षै. ।।
तोत्ररसूची प्रमेह सु० उ० अ० ४६-२२

इस प्रकार गमीर व साधारण वेदना की शान्ति के लिये प्राचीन लोगो ने इन विधियो को वेदना की मात्रा मे प्रयोग करके वेदना के मानदण्ड का निर्धारण किया था ।

आधुनिक वेदनाज्ञापन की विधि—कई प्रकार की विधियो व यत्रो द्वारा वेदनाहर औपधियो की चयन प्रणाली निर्धारित की गई है । वेदना मापक यत्रो (Dolori meters or Analgesemeters) के आधार निम्न वस्तु हैं । इनके ज्ञानार्थ १ अग्नि (Thermal) २. विद्युत (Electricity) ३ अवघातन (Machanical effects) का सहयोग लेना पडता है ।

अग्नि कर्म–ताप प्रणाली (Radient Heat) इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता–वुल्फ (wolf) व हार्डी (Harde) और गुडूल (Goddol) है । इनकी प्रणाली सामान्य हैं परन्तु रोगी शय्या पर इनका प्रयोग दुष्कर है । क्रम–

१ उष्णतार (Warm wiredevence) इस तार को गर्म करके उष्णता की सामान्य व दु खद मात्रा का ज्ञान करते हैं ।

२ क्रमागत विद्युत प्रवाह (Graded electrical stimula) एक धातु के पतले तार को जिसमे विद्युत की मात्रा क्रमश बढाई जा सके वेदना ज्ञापन मात्रा प्रयोग कर जाने जाते हैं । हैरिस ने इसका प्रयोग गमीर वेदना तक में प्रयोग किया है ।

३ अभिघातन–कटक–कडेबालो का प्रयोग

१. वानफ्रे (Vonfrey) ने वेदना के ज्ञानार्थ कटक का प्रयोग किया है। यह घोडे के बने कडे बालो के ब्रश का प्रयोग भी करते थे ।

२ सीवर (Seaver) व पीफर (Pfeeffer) ने भी इसी विधि का प्रयोग किया था ।

इस प्रकार पीतल या ताम्र के तारो का ब्रुश व काटो का प्रयोग कर त्वचा पर आघात पहुँचाकर वेदना नापते थे। अभिघातज प्रणाली का प्रयोग (चोटलगाकर) भी किया गया है।

भारतीय चिकित्सको ने अभिघात की मात्रा पर शीत व उष्ण विधि का प्रयोग किया था। यथा—वेदनानुरूप इनकी प्रणाली का प्रयोग सामान्याभिघात यथा—नेत्र मे धूलिकण—तीव्रवात के प्रयोग पर १ करतलोष्मा २ मुखवाष्पोष्मा का प्रयोग

विशेष मात्राभिघात पर—१ सामान्य स्वेद २ घर्षण ३ प्रलेप ४ उत्कारिकादि का सुखोष्णोपलेप इसका प्रयोग पूर्व मे बतलाया जा चुका है।

औषधि प्रयोग—कई प्रकार की औषधिया व रासायनिक द्रव्यो का प्रयोग जो दाहक उत्तेजक व अवसादक कार्य करते है प्रयोग करके वेदना की मात्रा-मात्रत्व का पता लगाया जा चुका है।

प्राणियों पर वेदना मापन का प्रयोग—छोटे-छोटे प्राणियो पर वेदना ज्ञापन मात्रा (Thresh hold) का प्रयोग कर पता लगाना सरल नही है। क्योकि वे अपनी वेदना की मात्रा को बतला नही सकते। उनकी मुखाकृति व अरति से सक्रिय मात्रा (Reaction thresh hold) का ज्ञान नही होता। वास्तव मे मनुष्य शरीर ही इस प्रकार की वेदना ज्ञापन की उचित मात्रा का समाधान बुद्धि पूर्वक बतला सकता है।

वेदना के कम करने वाले उपक्रम—१ शोथ वेदना की मात्रा को कम करता हैं।

२ उष्णजल—मात्रा मे अधिक उष्णजल वेदनाप्रद होता है।

३ स्थानीय मास पेशी मर्दन (Local Ischemia) से मांस गत वेदना कम होती है।

४ सार्वांगिक मर्दन—किसी स्थान का बधन दूसरे स्थान की वेदना कम कर देता है। एक स्थान पर जोर का बध ५ से १० मिनट बाधने पर वेदनाप्रद हो जाती है।

५ कार्बनद्विओषित (Hypercapnia) ५ से ७ प्रतिशत कार्बन द्विओषित की मात्रा शरीर मे होने पर वेदना ज्ञान बढा देता है। नीद ला देता है।

६ कण्डूयन—वेदना व उष्णता-प्रदाह (Bright & burning nerv-efiber) व कण्डूयन वेदनास्थल की वेदना की शाति कर देता है। कण्डूयन से उत्तेजन होकर वेदना की शांति हो जाती है।

७ सामान्य घर्षण से इजेक्शन के वेधन की वेदना उपशमित होती है।

वेदनाज्ञापन की मात्रा व क्रम

पूर्व मे त्रिविधवेदना–वातवर्ण वेदना–पित्त वर्ण वेदना व श्लेष्म वर्ण वेदना का विवरण वतला चुके हैं। इनमे कुछ स्वत होते है कुछ प्रत्यावर्तित क्रिया द्वारा होते है। इनके ज्ञानार्थ निम्न कोष्टक देखिए–

वातात्मक		पित्तात्मक		श्लेष्मात्मक	
स्रस	+ आर.	दाह	+	श्वैत्य	+
भ्रंश	+ ,,	औष्ठ्य	+	शैत्य	+
व्यास	+ ,,	पाक	+	कण्डू	+
भेद	+	स्वेद	+ आर	स्थैर्य	+
साद	+	क्लेद	+ ,,	गौरव	+
हर्ष	+	कोथ	,,	स्नेह	आर.
कम्प	+ ,,	कण्डू	++	स्तभ	+(++)
वर्च	–	स्राव	,,	सुप्ति	+(+++)
चाल	–	राग		क्लेद	आर.
तोद	+		–	उपदेह	+
व्यथा	+		–	वध	+
चेष्ठा	–				
सुप्ति	+++				
शोष	–				
शूल	++				
सकोचन	+				
स्तभ	+(+++)				
खज	+				

ऊपर जिनमे + धन के चिह्न है नाडी की क्रियाधिक्य मे होते हैं। उनके साथ जिनमे आर लगा है वह प्रत्यावर्तित क्रिया द्वारा होते हैं। क्रिया या चेष्टाधिक्य मे + धन का चिह्न चेष्ठा ह्रास मे का चिह्न है।

वेदना स्थापक

(Analgesics)

परिभाषा—वे द्रव्य जो दु खात्मक वेदना को शान करके शरीर को प्रकृतिस्थ वना देते है उन्हे वेदनाहर कहते हैं। यथा—

वेदनायां संभूतायां तां निहृत्य शरीरं प्रकृतौ।
स्थापयतीति वेदना स्थापनम्। (चक्रपाणि)

आधुनिक मत—

(१) Analgesics are drugs which relieve pain without disturbing consciousness or threshhold intellect, sight, hearing, touch, smell & vibration senses are not effected

(२) Analgesic are drugs which relieve pain without loss of conscious ness. (Ghosh)

अर्थात्—वे द्रव्य जो चैतन्यता मे विना वाधा दिये ही वेदना शान्त कर देती हैं उन्हे वेदनाहर कहते हैं अथवा जो चैतन्यता, दर्शन, श्रवण, स्पर्श, गंध आदि ज्ञानेन्द्रियो की क्रिया को विघ्न पहुचाये विना ही वेदना शात कर देती है। ऊपर की प्राचीन परिभाषा विशालता युक्त है जो वेदना होने पर उन्हे शात करती है। आधुनिक परिभाषा कुछ सीमित क्षेत्र मे प्रयुक्त होती है। वह मादक निद्राकर–ज्वरघ्नादि त्रिया करने वाली होकर वेदना शात करती है।

अत· वेदनाहर वेदनास्थापन औषधि मे कई प्रकार की वेदना स्थापक औषधिया सम्मिलित हो सकती है। यथा—

१. मादक वेदना हर (Novcotic Analgesics)
२. अन्य मादक द्रव्य सयोगज वेदनाहर Synthetic „
३. ज्वरघ्न वेदनाहर (Antipyretics „
४ मिश्रित औषधिया „

भेद—१. स्थानीय वेदनाहर (Local)
२. केन्द्रीय वेदनाहर (Central)

वेदनाहर औषधियों के भेद—यह दो भागो मे विभक्त हो सकती है—

१ स्थानीय (Local) २. केन्द्रीय (Central)

१. **स्थानिक**—वह वेदनाहर द्रव्य हैं जो वेदना की अनुभूति को जो कि एक विशिष्ट स्थान पर होती है प्रान्तीय नाडी मडल पर प्रभाव डालकर दूर करती हैं जिससे स्थान वेदनाहीन वनता है और वेदना स्थापन करता है। यथा—

कोकेन, एथाइल क्लोराइड स्प्रे
फेनोल–मेथल हाइड्रोशौनिक एसिड
वेलाडोना–धुस्तूर–वत्सनाभ, कलिहारी, वृश्चिकाली

२ **केन्द्रीय वेदनाहर**—अहिफेनसत्व (Marphin) व इसके वने अन्य तत्व यथा—पथीडाइन–एमाइडोन, कोलतार वेदनाहर (Coaltar Analgesics) सेलिसिलेट्स–एसपिरीन–सिन्कोफेन–पुनश्च–कुछ कम मात्रा मे–वारवीटूटेरस (Barbrurets) rim (Canebis Indica)

वेदनाहर–Analgesics

१. अगरु	८. कपित्थ	१५. अहिफेन
२. दारुहरिद्रा	९ शतपुष्पा	१६. अशोक
३. शाल्मली	१०. यष्टीमधु	१७ भल्लातक
४. पुन्नाग–केशर	११. पारसीकयवानी	१८. कुष्ठ

५.	देवदारु	१२.	कट्फल	१९.	शाल
६.	हरिद्रा	१३.	कदम्ब	२०	एरका
७.	धत्तूर	१४.	कमल (श्वेत)	२१.	आर्द्रक

१.	अरिभेद (विलायती कीकर)	४	जाती (चमेली)
२.	(गंध चूर्ण) गधप्रसारणी–	५	प्रियगु
३.	कार्पास	६.	वेदमुश्क (लताकस्तूरी)

१. **वेदना स्थापन वर्ग में**––शाल, कट्फल, कदम्ब, पद्माख, नागकेशर, मोचरस, शिरीप, वेतस, एलवालुक व अशोक इन १० औषधियो का ज्ञान सूत्रस्थान के लिखने के कालतक ज्ञात हो चुका था। इसी प्रकार Antipyretics Analgesics)

२. **अंगमर्द प्रशमन**––शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती द्वये, एरण्ड, काकोली चदन, उशीर, एला, मधुयष्ठी इन दस औषधियो का प्रयोग बतलाया है।

३ **पुनश्च**––वातसशमन के नाम से सुश्रुत ने एक वृहतगण का उल्लेख किया जिनमे प्रधान––देवदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, वरुण, मेषश्रृगी, बला, अतिबला, आर्तगल, कपिकच्छु, शल्लकी, पाटला, कीरतरु, सहचर, अग्निमथ, गुडूची, एरण्ड, पाषाण भेद, श्वेतकर्क, रक्तार्क, शतावरी, पुनर्नवा, वसुक, वशिर, काचनार, मारगी, कार्पासी, वृश्चिकाली, रक्तचदन, बदर, कोल–यव–कुलत्थादि ३२ औपधिया हैं। इसके अतिरिक्त– वात के लक्षणो को शमन करने वाले कई गणो का उल्लेख किया है जिनमे प्रधान––

१ विदारि गधादि गण २ दशमूल

३ शूल प्रशमन, सज्ञाहर, श्रमहर, क्रियाकर मादक गणो का उल्लेख किया है।

शूलप्रशमन–पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर, मिर्च, अजमोदा–यमानी, जीरक व गन्डीर यह दस है।

श्रमहर––द्राक्षा, खर्जूर, प्रियाल, बदर, दाडिम, परुषक, दूद, इक्षु–यव, षष्टिक। विदारी गधादि गण–शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, विदारी नागवला सहदेवी, गोक्षुर–शतावरी, खटिका, कृष्णसारिवा जीवक–ऋषभक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, वृहती द्वय, पुनर्नवा, एरण्ड, हसपदी, वृश्चिकाली–कपिकच्छु आदि २० औषधिया है।

मादक व निद्राकर––अहिफेन, अहिफेन सत्व–भगा–गजा, आकारकरभ, खुरासानी–अजवायन, पीपलामूल, सर्पगधा, उपोदिका, कस्तूरी, धुस्तूर, वाताद, मद्य, कोकेन आदि द्रव्य आते हैं। यह विविध औपधिया भिन्न भिन्न प्रकार से प्रयुक्त होकर वेदना हर होती है। इनमे प्रधान व शीघ्र कार्यकर औपधिया निम्न हैं।

नाडी दौर्बल्य से उत्पन्न–वेदना व आक्षेप मे बलाधान कर यह औषधिया सद्य' बलाधान पूर्वक वेदना प्रशमन करती है। यथा—

चतुर्मुख रस–२ रत्ती मात्रा मे	
कृष्णचतुर्मुखरस–मात्रा–२ रत्ती	
वातचिन्तामणि– ,, ,,	स्वर्ण ३+२रौप्य+अभ्रक,+
वृहत्वातचिन्तामणि ,, ,,	लौह—५,प्रवाल–३ मोती
मकरध्वज १–२ रत्ती	
रससिंदूर ,, १–२ रत्ती	
स्वर्णसिंदूर ,, २ रत्ती	
योगेन्द्र रस ,, १–२ रत्ती	मृगमद+कर्पूर+ताम्र
कस्तूरीभैरव ,, २–४ रत्ती	रजनकत+क+मुक्ता

नाडी क्रिया तीव्रता मे निम्नलिखित औषधिया बढी हुई क्रिया को सामान्यावस्था मे लाती है व वेदना प्रशम होती है। यथा–

सूतशेखर=२ रत्ती — वृ० सूतशेखर=२ रत्ती
सर्वतोभद्ररस=२ रत्ती — वेदनान्तक रस–
अहिफेन मिश्रित–वेदनान्तक रस– — गुग्गुलु मिश्रित–
शिवागुग्गुलु=५ गुजा=ताम्रसत्व–स्वर्ण पारद, लौह रौप्य, बग,
रसराज—अश्वगधा, जातीकोप, बलारिष्ट, दशमूलारिष्ट,
वृ० योगराज गु०=आमवात—+बग भस्म, वातगजेन्द्रसिह
लक्ष्मीविलास रस–ज्वर–अभ्र–रस–गधक–कर्पूर+जातीकोष
जयमगल–ज्वर स्वर्ण

वात संशमन विज्ञान–निद्राकर द्रव्य–स्वप्नजनन (Hypnotics-sop. orifics)

पर्याय—निद्राकर, स्वप्न जनन (हिपनाटिक्स)
निद्राजनन–निद्राप्रद

परिभाषा—वे द्रव्य जो शरीर मे जाकर निद्रा ला देते है वे निद्राप्रद कहलाते हैं। निद्रा की आवश्यकता– शरीर के तीन प्रधान स्तभ माने जाते हैं यथा—आहार, ब्रह्मचर्य व निद्रा, आचार्यों का कथन है कि निद्रायत्त ही मनुष्य का सुख दु ख पुष्टि बलाबल, वृषता क्लीबता ज्ञान अज्ञान व जीवन तक है। अत. स्पष्ट है कि मनुष्य के लिये निद्रा अत्यावश्यक वस्तु है और प्रत्येक जीवधारी के लिये निद्रा अत्यावश्यक है।

उत्पत्ति—आयुर्वेद मे निद्रा की उत्पत्ति श्लेष्म तत्व व तमोगुण की वृद्धि से जाना जाता है। कफ तत्व शरीर का पोषक व रक्षकतत्व है। इसकी समावस्था मे शरीर की स्थिति ठीक ठीक रहती है। विषमावस्था मे व्याधियो का निवास बन जाता है। क्षय होने पर क्षीणता क्षय व अन्य व्याधिया उत्पन्न हो जाती है। आयुर्वेद मे निद्रा के लिये निम्न क्रम बतलाया है–

१. श्लेष्मावृतेषु स्रोतस्सु श्रमादुपरतेषु च।
इन्द्रियेषु स्वकर्मभ्यो निद्राविशति देहिनाम्।

२. यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।

इस प्रकार स्वाभाविकी निद्रा तब होती है जब शरीर के स्रोतस् श्लेष्मावृत हो जाते हैं और मनुष्य श्रम से थक जाता है तथा इन्द्रियां अपने कर्म से विरत हो जाती हैं। तब निद्रा मनुष्य के शरीर में आवास लेती है।

इसके भेद—निद्रा कई प्रकार की है।

१. तमोभवा	४. आगन्तुकी
२. श्लेष्म समुद्भवा	५. व्याध्यनुवर्तिनी
३. श्रमसभवा (मन शरीर)	६. रात्रि स्वभाव प्रभवा।

तमो भवा—मन आत्मा व शरीर के तमसा वृत हो जाने पर जो निद्रा आती है वह तमोभवा कहलाती है।

श्लेष्म समुद्भवा—शरीर में श्लेष्म वृद्धि से जो निद्रा आती है वह श्लेष्म समुद्भवा कहलाती है। यथा—प्रतिश्याय, कास, वात-बलास, श्लेष्म ज्वर, आदि में आने वाली निद्रा।

शरीर संभवा—मन व शरीर के श्रमित हो जाने पर जो निद्रा आती है वह श्रम सभवा निद्रा कहलाती है।

आगंतुकी निद्रा—जो निद्रा असमय में औषधि सेवन से आती है वह आगतुकी है।

व्याध्यनुर्वतिनी निद्रा—कई रोगो मे निद्रा रोग स्वभाव से आ जाता है। यथा—कास प्रतिश्याय, शिरोगौरव, अजीर्ण आदि।

स्वभाव प्रभवा निद्रा—जो निद्रा नित्य रात्रि को स्वभाव प्रेरित आ जाती है वह स्वभाव प्रभवा कहलाती है।

तामसी निद्रा—तत्र यदा सज्ञावहानि स्रोतानि तमो भूयिष्ठ प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा भवति। तमो भूयिष्ठाना अह सु निद्रा भवति। रजो भूयिष्ठानामनिमित्तम्। सत्व भूयिष्ठाना अर्द्ध रात्रे क्षीण श्लेष्माविताना अनिल बहुलाना मन शरीर तापवता च नैव। सा वैकारिकी।

निद्राजनन—१ निद्रा की उत्पत्ति के सिद्धान्त · यह सर्व विदित है कि मस्तिष्क चेतना का स्थान है। इसमे जब चेष्ठाओ के आदान, प्रदान की कमी होती है तब तमो गुण की वृद्धि होती है और रक्त सचालन का कार्य कम हो जाता है और नींद आ जाती है।

२. हृदय की गति मद हो जाने पर भी निद्रा आ जाती है।

३. (अ) शरीर क्रिया विज्ञान के अनुसार निद्रा का संबंध कदाधारिक भाग (हाइपो थैलमस) और स्वतंत्र नाड़ी मडल से संबध रखता है।

यह देखने मे आता है कि मस्तिष्क की प्रदाह की स्थिति मे निद्रा अधिक आती है या नही आती ।

३. अधिक देर बैठने और अधिक देर खडे रहने पर तद्रा आ जाती है । जिन रोगियो मे क्षीणता अधिक होती है मस्तिष्क की रक्त वाहिनी धीमा काम करती है तो भी तन्द्रा घेरे रहती है ।

४. उष्ण आहार उष्ण पेय, उष्ण चाय या दूध के प्रयोग से मस्तिष्क के निम्न भाग मे रक्त सचार अधिक होकर नीद आ जाती है ।

५. श्लेष्म की वृद्धि मे निद्रा व तन्द्रा आती है । यथा—(श्लेष्म वृद्धौ शौक्ल्य शैत्य, स्थैर्यं गौरवमवसादो तद्रा निद्रा सध्यस्थि विश्लेपश्च ।

(सु सू. अ १५)

इस प्रकार निद्रा आने के प्राच्य व पाश्चात्य अनेको हेतु बतलाये जाते है । निद्रा न आने पर निम्न रोग हो जाते है—

हलीमकः शिरःशूलं स्तैमित्य गुरु गात्रता ।
अंगमर्दोऽग्निनाशश्च प्रलेपो हृदयस्य च ।
शोफारोचक हृल्लास पीनसार्धावभेदकाः ।
कोठोरुः पिडिका कडूस्तंद्रा कासो गलामयाः ।
स्मृति बुद्धिः प्रलापश्च संरोधः स्रोतसां ज्वरः ।
इन्द्रियाणामसामर्थ्यं विषवेग प्रवर्तनम् ।
भवेन्नृणांदिवास्वप्न स्याहितस्य निषेवणात् ।

चिकित्सा—श्लेष्मकर द्रव्यो का प्रयोग, श्रमादि से बचने की प्रवृत्ति, अभ्यग, उत्सादन, स्नान, ग्राम्य व आनूप देश के जानवरो का मास रस, मन को सुखदायक प्रसग, स्नेह, मद्य, शास्त्र, शाल्यन्न, दधि, क्षीर, अच्छी शय्या, एकान्त स्थान, चक्षु शिर व वदन का तर्पण, लेप, माल्यादि सेवन, मनोहर शब्द, सवारी से यात्रा आदि अवस्थाये व क्रियाये निद्राकर होती है ।

अभ्यगोत्सादन स्नानं ग्राम्यानूपौदका रसाः । शाल्यन्न सदधि क्षीरं—स्नेहो मद्यं मनः सुखम् । मनसोऽनुगुणा गंधाः शब्दाः संवाहनानि च । चक्षुषः तर्पणः लेपो सिरसो वदनस्य च । स्वास्तीर्णं शयन वेश्म सुख कालस्तयोचितः । आनयंत्यचिरान्निद्रां प्रनष्टा या निमित्तत ।

निद्राजनन—विशेप रूप से जिन हेतुओ से निद्रा का नाश हो जाता है उनका परिमार्जन करने से निद्रा आ जाती है । यथा—

१ शिर मे रक्त के सचार से नीद न आने पर ।

१ शिर प्रदेश को ऊचा करना ।

२. हृद्य व बलप्रद औषधि देना । विशेप कर लौह व कुपीलु के योग।

२. उष्णाहार, उष्णपेय, उष्णदुग्ध का, काफी चाय आदि ।

१. हृदय की दुर्बलता में—नीनलदुग्ध, सात्विक आहार, हृद्य द्रव्य और औषधिया।

३ वेदनाजन्य अनिद्रा व इन्द्रियार्थ हानि में—

१ निद्राकर योग २ वेदनान्तक योग

३ उन्माद गजाकुश आदि।

४ विवधजन्य रोग में—आध्मान, अजीर्ण, मल नग्रह में व पूतिमारुत में—

१ कोष्ठ शुद्धिकर द्रव्य २. स्नेह वस्ति

३ शिर का तर्पण शिरोवस्ति आदि।

५. आम संग्रह से निद्रा नाश में—

१. गुड़पिप्पलि मूलस्य चूर्णनालोडितं लिहन्।
चिरादपि च सन्नष्टा निद्रामाप्नोति मानवः। वगसेन

२. मरिचं लालया घृष्टं कस्तूर्याजन भिष्यते।
त्रिरात्रादपि सन्नष्टां निद्रामाप्नोति मानवः। वगसेन

३. वला पुनर्नवा क्वाथो निद्राकरोनृणाम्। हारीन

४. इक्षुरक अपामार्ग, काकजंघा का क्वाथ निद्राकर होता है
क्वाथोनिद्राकर. शीघ्र मूल वा वधयेच्छिखाम्।
काकजघात्वपामार्ग कोकिलाक्षश्च वेदविद्। हारीत

५. निद्रां करोति त्यनिद्रायां प्रदोषेसिरसाघृता।
उपोदिकाकपोतायाशिफावाथघृता तथा। वैद्यमनोरमा

६. चूर्ण च ह्यगधायाः सितया सहितं च सर्पिषा लीढम्
विघाति नष्ट निद्रं निद्रामाश्वेव सिद्ध सिद्धम्। वगसेन

६. श्रमित व अभिघातज निद्रा में—अभ्यग, उत्सादन, स्नेह पान निद्राकर होते हैं। तथा यदि कोई विशेष हेतु न हो तो अच्छी शय्या, मनोहर वाते, मित्र गोष्ठी, माल्य अलकार का धारण निद्राकर होते है।

निद्राकर औषधि योग—

१. सर्पगधामल चूर्ण १ से २ माशे की मात्रा दुग्ध या चाय से
२. पिप्पलीमूल १ माशे व सर्पगंवा १ माशे मिला कर एक मात्रा मधु से।
३. भर्जित भग चूर्ण एक माशे दुग्धेन।
४. भग हरीतकी एक एक माशे मिलाकर।
५. मदनानद मोदक १ से २ माशे तक।
६. खुरासानी अजवायन व गुड २ माशे।
७ मृत सजीवनी सुरा १ से २ तोले तक।
८ द्राक्षासव परिश्रुत २ तोले
९ श्रीखडासव २ तोले
१०. गुड़पिप्पली ३ माशे

नाडी दौर्बल्यज निद्रा, श्री खडादि चूर्ण १ तोले दुग्ध से २–चैतन्योदय रस २ रत्ती। अश्वगधारिष्ट २ तोले। भूताकुश रस अहिफेन योग २ रत्ती। उन्माद गजाकुश २ रत्ती, मूर्द्धापर अभ्यगार्थ गधराज तैल। महाचदनादि तैल आदि।

निद्रा शमन—(Anti Hypnotics or Cataleptics)

निद्राकर हेतुओ मे तमोगुण और श्लेष्म वृद्धि यह प्रधान हेतु होते है इनकी वृद्धावस्था को क्षीण कर देने से सत्वगुणोदय की दशा मे निद्रा का आना प्रशमित हो जाता है।

अत निद्रातियोग मे उन सभी चेष्टाओ को करना चाहिए जो इस कर्म मे सहायक हो। जो द्रव्य कफनाशक, तीक्ष्ण हो तथा तीक्ष्ण सशोधक (वमन, विरेचक) हो उनका उपयोग करना चाहिए। महर्षि सुश्रुत ने सक्षेप मे–

वमेन्निद्रातियोगे तु कुर्यात् सशोधनानि च।
लंघन रक्त मोक्ष च, मनो व्याकुलनानि च॥

अत· मन उद्वेग का भाव–चिन्ता–शोकादि तथा–वमन–विरेचन, नस्य, लघन–रक्तमोक्षण इत्यादि करना चाहिए।

कायस्य सिरसश्चैव विरेकश्छर्दन भयम्।
चिन्ताक्रोधस्तथाधूमो–व्यायामो रक्तमोक्षणम्।
उपवासोऽसुखा शय्या–सत्वौदार्यं तमोजयः।
निद्रा प्रसगमहितं–वारयति समुत्थितम्।

निद्रा नाश के हेतु—

निद्रानाशोऽनिलात् पित्तान्मनस्तापात् क्षयादपि।
सभवत्यभिघाताच्च, प्रत्यनीकैः प्रशाम्यति॥
सु. शा. अ. ४–४८

औषधि—			
	चण्ड भैरव रस–	अप०	५ रत्ती
	कुष्माण्ड घृत	,,	१ तो
	महाचैतस घृत	,,	१ तो
	वृहत्पचगव्य घृत	,,	१ तो
	क्षीरकल्याणक घृत	उन्मा	१ तो.
	पानीयकल्याणक	,,	१ तो

अतिनिद्रानाशनार्थ—

मरिचम्– क्षौद्राश्चलाला सघृष्टै मरिचैनेत्र मजनात्।
अतिनिद्राक्षयम् याति तमः सूर्योदयादिव॥ भाव

वात निग्रहण

वाताक्षेपघ्न--(Antispasmodics or Antispastics) (Anticunvulsive)

परिभाषा—वात प्रकोप होकर, धमनियो मे कुपित वायु जव मास पेशियों मे सकोच व विस्तार (आक्षेप) अधिक करती है तो उसे आक्षेप कहते है। इस क्रिया मे जो औपधि प्रशम करती है उसे वाताक्षेपघ्न कहते हैं।

१. वास्तव मे आक्षेप की क्रिया केन्द्रिय नाडी सस्थान मे से वेदनाओ की मात्रा की वृद्धि से होती है अत वे सव औषधिया आक्षेपघ्न कहलाती है जो कि सेन्ट्रल नर्वससिस्टम की क्रिया पर अवसादक-प्रभाव करती हैं। अथवा जो कि सर्वांग सज्ञाहर होती हैं। केन्द्रिय नाडी-सस्थान पर कार्य करके अवसादन लाने वाली औषधिया इस पर अपना प्रभाव रखती हैं।

२ यह साधारण मान्यता है, द्वितीय प्रकार यह समझा जाता है कि जो औषधिया मोटर नर्व की क्रिया को विना सज्ञाहह नाडियो के केन्द्रिय प्रभाव पर प्रभाव डाले विना वेदना प्रशमन करती है या क्रियावसादन करती हैं वह भी आक्षेपघ्न समझी जाती है।

इस प्रकार की आक्षेप के विभिन्न प्रकारो को कम करने वाली औषधिया अपस्मारहर (antiepileptic) भी कहलाती है। औषधियो द्वारा मोटर-नाडी की क्रिया के ऊपर प्रभाव डालना व केन्द्रीय नाडी सस्थान पर प्रभाव डाल कर वेदनाहर होना यह विशेष महत्व का समझा जाता है। और शरीर को निष्क्रिय करने वाले रोग जैसे–पक्षाघात–(Paralysis Agitans, कंप (chorea) स्पदनाधिक्य (Palsus) और अन्य प्रकार की व्याधियो मे भी इनसे लाभ होता है। इस प्रकार के रोगो का वर्णन वातव्याधि के रोगो मे वहुत मिलता है। यथा–

१. यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः।
यदाक्षिपत्याशुदेहं, मुहुर्देहं मुहुश्चरन्।
मुहुर्मुहुराक्षेपणादाक्षेपक इतिस्मृतः।

२. अगुली गुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंस्थित.। स्नायु प्रतानमनिलो यदाक्षिपतिवेगवान्। विष्टब्धाक्षः स्तब्धतनु र्भग्निपार्श्वकफंवमन। अभ्यंतरं धनुरिव यदानमतिमानवम्। तदा स्यान्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली।

इतिहास—ईस्वी सन् से २००० वर्ष पूर्व भारतीय चिकित्सको ने शरीर के भिन्न भिन्न भागो पर होने वाली वातनाडी सस्थान की क्रियाओ का अध्ययन किया था और उनके शमन के लिये केवल औषधि ही नही वाह्य व आभ्यन्तर कई प्रकार के उपचार–सेक–स्वेद–अभ्यग, परिषेकावगाहनादि व काष्ठौषधियो और रसौषधियों के वातशामक क्रियाओ का अध्ययन किया था। स्नेह वर्ग से तैल–वसा–मज्जा का प्रयोग करके तैल की वात शामक विशेष क्रिया का अनुशीलन कर इसका अभ्यग के अतिरिक्त पान, नस्य, वस्ति मे भी प्रयोग करके वस्ति चिकित्सा को वातसशमन उपक्रमो को प्रथम स्थान दिया था। इसके पश्चात् काष्ठ औषधियो के वातसशमन गण का पता सुश्रुत ने लगाया और वातशामक कई गणो का पता लगाया जिनमे विदारिगधादि गण--पचमूलद्वय थे। एकैक औषधियो का प्रयोग भी किया गया और उनमे गुग्गुलु को सर्वोत्तम प्राप्त किया। तदनन्तर गुग्गुलु के विभिन्न योगो का प्रयोग किया गया। इसके वाद 'रास्ना वातहराणाम्' चरक मे घोषित किया और रास्ना प्रधान योगो का वोल-वाला रहा। रास्ना सप्तक, रास्नादि क्वाथ इत्यादि योग आज तक भी चलते है–एरण्ड–कुष्ठ–पुष्करमूल–हिंगु–जटामासी इत्यादि का प्रयोग हुआ। इनमे गुग्गुलु पर आक्षेपघ्न गुण का अधिक प्रभाव रहा और आज भी वैद्य आँखमूद कर वातव्याधि चाहे आक्षेप हो तोद भेद या पक्षाघात सव मे प्रयोग करते है। वास्तव मे गुग्गुलु के भीतर का ब्रोमाइड के समान तत्व अधिक मात्रा मे रहता है और जितना गुग्गुलु को चोट लगाकर कूटा जाता है उतना ही सरलता से शरीर के पाचक रसो मे विलेय होकर यह कार्य करता है। यह वातें ईस्वीय सन् २००० वर्ष पूर्व से लेकर अब तक चलती हैं। (Anticunvalsant) की तरह १८५७ मे लोकोक ने ब्रोमाइड का प्रयोग १३-१४ अपस्मार के रोगियो पर अच्छा प्रभाव देखा। तव अपस्मार का हेतु हस्तमैथुन समझा जाता था और पोटेशियम ब्रोमाइड का प्रयोग कामोत्तेजना प्रशमन (Anaphradiasiae) समझकर किया गया था। आधी शताव्दी तक यही दवा प्रधान मानी गई थी। सन् १९१८ हापमैन (Havplman)

निद्रायत्त दु ख सुख पुष्टि कार्श्यं वलावलम्
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवित न च।

१. तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मन.शरीरश्रमसंभवा च
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रि स्वभाव प्रभवा च निद्रा।
च सू २१–३६–५८

२. रात्रि स्वभाव प्रभवा मता या
ता भूतधात्रीं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
तमोभवा साहुरघस्य मूलं
शेषाःपुनर्व्याधिषु निर्दिशन्ति। ५९

आक्षेपघ्न व अपस्मारघ्न गुण-फेनोबारविटोल (Pheonbarbitol) के प्रयोग से पाया और वारविटोल के योगो पर प्रयोग करने पर यह विशेष लाभदायक ज्ञात हुआ। मेरिट (Merit) व पुटनम (Putnum) ने विद्युत का प्रयोग कर आक्षेपघ्न गुण प्राप्त किया। कुछ समय वाद कुछ नई औषधिया भी ज्ञात हुई जिनमे ट्रिमेथोडियोन (Trimethodione) व फेनासिमाइड (Phenacimide) औषधिया ज्ञात की गई जिनका अपस्मार के किसी विशेष लक्षणावस्था मे लाभ होता था। इस प्रकार ८० प्रतिशत अपस्मार को दूर करने की विधि मे आशा होने लगी थी फिर भी निश्चित चिकित्सा का अन्वेषण जारी रहा और है। विद्युत व रासायनिक औषधियो का प्रयोग आज भी लाभदायक है।

इस प्रकार प्राचीन व अर्वाचीन दोनो की वाताक्षेपघ्न क्रियाओ का अध्ययन करने की चेष्ठा की गई है।

आयुर्वेद मे भिन्न भिन्न स्थान के आक्षपो के अध्ययन को करके उनका एकैक व सयुक्त दोनो प्रयोग किये गये हैं। आयुर्वेद और प्रयोग भिन्न भिन्न करता है फिर भी ऐसे सामूहिक योगो का ज्ञान भी किया गया है जो कि एक समान सब स्थानो पर वातघ्न शामक व क्षोमक हो सके उनमे गुग्गुलु के योग प्रधान है। फिर भी पृथक् पृथक औषधियो का अध्ययन निम्न हैं। यथा–

१ उदर के मांसपेशियो के आक्षेपको को रोकने वाली —

१ हीगु, जटामासी, कस्तूरी, धुस्तूर–देवदारु–सौंफ–गुग्गुलु–अजमोद–जीरक यमानी–शुण्ठी–इसवगोल–गोद–कतीरा–इनके एकैक या सयुक्त योगो से उदर की मासपेशियो का आक्षेप शीघ्र रुक जाता है। देवदारु व हीग प्रधान है।

२ सर्वशरीरगत ऐच्छिक व अनैच्छिक मासपेशियों के अनुचित आकुंचन को कम करने वाली औषधियां–

१.	हीग	गाजा	रोहिषतैल	धुस्तूर
	जटामासी	पद्माख	अजवायनतैल	अहिफेन
	एरण्डतैल	तम्बाकू	तगर	पुष्करमूल
	कर्पूर	कटुकी	यूकेलिप्टस तैल	रसोन

इनका प्रयोग यौगिक या ऐकिक रूप मे वाताक्षेपघ्न होता है।

३. **सार्वांगिक अवसादक औषधि के रूप में**–आक्षेपघ्न, वत्सनाभ, पद्मकाष्ठ, कटुकी, देवदारु।

४ धनुर्वात व स्वरयन्त्राक्षेप में लाभदायक—ब्राह्मी, कुष्ठ, सौभाग्य, सखिया, ताम्र व रौप्य प्रधान द्रव्य है।

५ कप वात में—गजा–सखिया व यशदक्षार।

६. फुफ्फुस प्रणालीय आक्षेप में—मोम–धुस्तूर, वासा, बेलाडोना–खुरामानी अजवायन। जब वात नाडियो की दुर्बलता होकर क्रिया समुचित नही हो पाती तो क्रियावैषम्य के पश्चात आक्षेप होने लगते हैं। इस स्थिति मे जो औषधि बल देकर वात निग्रह करती है वह अधोलिखित द्रव्य मिश्रित होते हैं।

१ स्वर्णघटित
यशदघटित
रौप्यघटित
लोह व ताम्रघटित

इनके एकैक या मिश्रित पूर्व की वर्णित वाताक्षेपघ्न द्रव्यो का योग आक्षेपघ्न होता है।

२. हीग–एरण्ड–जटामासी–मिश्रित योग लाभदायक होते हैं।

३. मस्तिष्क उत्तेजक व आक्षेपनिवारक, अहिफेन–बेलाडोना–धुस्तूर

४ वातवह नाडियो की उग्रता से आक्षेप होते हो तो अवसादक व सज्ञाहर द्रव्यो का प्रयोग लाभप्रद होता है। यथा–तमालपत्र–सुरा–अलकोहल क्लोरोफार्म–नाडी उग्रता मे अवसादनपूर्वक ही आक्षेपघ्न क्रियाये होती है।

आक्षेप जनन—

परिभाषा—वह द्रव्य जो सेवन करने पर आक्षेप उत्पन्न करते है आक्षेप जनन कहलाते हैं। इस प्रकार के द्रव्य सुषुम्नास्थित पूर्व शृग के चेष्टाकर नाडी गण्डो को क्षुब्ध करके अनियमित चेष्टायें उत्पन्न करते है जिसके परिणाम स्वरूप मासपेशियो मे अनियमित आकुचन और प्रसारण होकर आक्षेप पैदा हो जाते हैं इस प्रकार के द्रव्यो मे विशेष कर–

कुपीलु—इसके सेवन से आक्षेप आने लगते हैं।

इसमे वात शामक और आक्षेपकर दोनो प्रकार के पदार्थ मिले रहते हैं कुपीलु की अधिक मात्रा देने पर इसमे के तिक्त रस और क्षोभक गुण के कारण आक्षेप–प्रलाप–आदि उत्पन्न होते हैं।

कषाय तिक्त रस की मात्राधिक्यता से आक्षेप आकुचन–मन्यास्तभ–प्रलापादि रोग होते हैं–यथा—

तिक्तरस—स एवं गुणोप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो गात्र मन्यास्तभाक्षेप-कार्दित शिर शूल–शोथा– – –दीन् आपादयति। सु सू अ ४२

कषाय—स एव गुणोऽपि एक एवात्यर्थमुपसेव्यमान हृत्पीडास्यशोषो दराध्मान–वाक्ग्रह मन्यास्तभ गात्र स्फुरण चुमचुमायनाकुंचनाक्षेपण प्रभृतीं-जनयति–सु. सू ४२

औषधि–महानिंब–चिरायता–सुदर्शन चूर्ण

शूल प्रशमन—

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राहि वेदना।
शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥ सु. उ. ४२–८१

परिभाषा—तीव्र वेदना जो त्रिशूल या शूलभोकने जैसी होती है उसे शूल कहते है। इसे जो दूर कर दें वह शूल प्रशमन होती है। यह वेदना शरीर के किसी अग विशेष मे हो सकती है। यकृत् फुफ्फुस, हृदय, गर्भाशय–मूत्राशय आदि प्रकोष्ठो मे अथवा पेशीयवृत्ति या स्नायु अल्प किसी भी स्थान मे हो सकती है।

आयुर्वेद मे जो शूल नामक रोग का विवरण दिया है वह अधिकाश मे कोष्ठाश्रित वात पित्त या श्लेष्म विकृति जन्य है।

वातजशूल–हृत्–पार्श्व–पृष्ठ–त्रिक–वस्ति देश मे होता है।

पित्तजशूल–नाभीप्रदेश या उदर प्रदेश मे वेदना करता है।

श्लेष्मज–आमाशय प्रदेश मे तीव्र रुजा।

सन्निपातज–सर्वत्र तीव्रशूलात्मक पीडा होती है।

आमजशूल–श्लेष्मज की तरह आमोद्भव शूल।

कफपैत्तिक–कुक्षि, हृदय–नाभि–मध्य।

वातपैत्तिक–दाह ज्वरपूर्वक भयकर शूल।

इनके अतिरिक्त–परिणामशूल–अन्नद्रव शूल का भी वर्णन मिलता है।

इस प्रकार स्थान के नाम से यदि भेद करे तो पित्तज व श्लेष्मज उदर क्षेत्र के होते हैं। वातज मे हृदय, फुफ्फुस, पार्श्व आदि प्रदेश वक्षप्रदेशीय कटि, वस्ति–पृष्ठादि, रुजा, कटि पार्श्वीय होती है।

इनकी चिकित्सा का विवरण विशेपकर शूल प्रशमन द्रव्य उदरदेशीय शूलघ्न विशेष दिखाई पडती है। यथा—चरक मे शूल प्रशमन मे—

पिप्पली–पिप्पलीमूल–चव्यचित्रक–नागर–कालीमिर्च – अजमोद–यवानी–जीरक व गण्डीर को शूल प्रशमन लिखा है। उपर्युक्त द्रव्य–आम पाचक–श्लेष्महर–पित्त प्रसादन व वातशामक है और इनका अधिक प्रयोग उदर रोगो मे हुवा है।

शूलप्रशमन—सुश्रुत मे पिप्पल्यादि गण को शूल प्रशमन कहा है। पिप्पल्यादि गण मे–पीपल–पिप्पलीमूल, चव्यचित्रक, शुण्ठी–मिर्च–गज पिप्पली। रेणुका–इलायची–अजवायन–इन्द्रयव– पाठा–जीरा–सर्षप–महानिंब वीज–हीग–भारगी–मूर्वा–अतीस–वच–वायविडग–कटुका आदि सम्मिलित है।

अन्य द्रव्य जो किसी न किसी प्रकार विभिन्न समान के शूल को हरण करते है वे निम्न हैं।

पिपरमेट–दालचीनी तैल – लवग तैल – नीलगिरी तैल–कुपीलु–क्षारद्वय (यवक्षार व र्मजिका क्षार), सुरा, कृष्ण लवण–शख द्राव–व इनके वने विभिन्न योग शूल प्रशमन मे हितकारक हैं।

क्रिया—यह औपधिया दो प्रकार से प्रभाव करती हैं (१) वाह्य उपयोग–(२) आभ्यतर उपयोग–वाह्य उपयोग–वाहर से लेप–प्रलेप लगाने से उष्ण तीक्ष्ण गुणो के कारण यह वेदना को सद्य प्रशम करती है।

सेक–स्वेद–अवगाहन मे भी इनका प्रयोग होता है।

आभ्यन्तर—आभ्यन्तर मे सेवन करने पर विभिन्न प्रकार से यह अपने उष्ण–तीक्ष्ण–व्यवायी–विकाशी गुणो से वास्तव मे श्लेष्म शामक क्रिया करती है। आम विपनिर्हरण, आम पाचन–आदि करके पित्तज शूल शामक बनती है।

नोट—शूल एक सामान्य वेदनाजनित लक्षण है जो विभिन्न रोगो मे होता है किन्तु शूल रोग मे इनका समावेश नही है। यथा—

शोथ–आमवात–वातव्याधि–वात रक्त–विद्रधि मे भी भयकर शूल होते हैं इनका उल्लेख पृथक् ही किया गया है।

शूलप्रशमन—ऐसा ज्ञात होता है कि शूल रोग के पृथक् सग्रह से शूल की प्रकृष्ट मात्रा जो कोष्ठगत होती थी उनकी तरफ ही ध्यान केन्द्रित करना अभिप्राय था। वेदनास्थापन औषधियो मे इस विषय की विशद चर्चा की गई है।

अन्ययोग—

वातज—१ शूल गज केशरी २. शूल वज्रिणी

३. हिंग्वादि चूर्ण–हिंगु प्रतिविषा–व्योष–वचा–सौवर्चल

४. तुम्बर्वादि चूर्ण–तुवुरु–अभया–हिंगु–पौष्करमूल–लवणत्रय

५. हिंगु सौवर्चल योग–एरड व बिल्वमूल कषाय से

पित्तज—पित्त शामक द्रव्यो के क्वाथ से युक्त द्रव्य चूर्ण या गुटिका सप्तामृत लौह। पिप्पली घृत–बिल्वादि घृत।

नारिकेल खण्ड खण्डामलकी

श्लेष्मज—चतु समचूर्ण दीप्यक–सैंधव–पथ्या–नागर

अन्य— सामुद्रादि चूर्ण धात्री लौह (भै र.)
कोलादि मण्डूर शर्करा लौह
क्षीर मण्डूर हरीतकी खण्ड
तगर मण्डूर शूलान्तक रस
शतावरी मण्डूर शूलगजेन्द्र तैल
रसमण्डूर

वातशूलघ्न

परिभाषा— वातकोप प्रजातेन शूलोत्पत्तिर्भवेत् यदा।
शमयति शूलप्रशमनी, यथास्यात् गजपिप्पली॥

यह द्रव्य वात की विगुणता से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के शूल को शात कर देते हैं। उन्हे शूल प्रशमनी या वातशूलघ्न द्रव्य कहते हैं। सुश्रुत की परिभाषा निम्न हैं।

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राहि वेदना।
शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलंनिहोच्यते॥ सु० उ० ४२–८१

चरक ने शूल प्रशमन कहकर के निम्न गण का उल्लेख किया है–

पिप्पली	शुण्ठी	अजगधा	यमानी
पिप्पली मूल	मरिच	अजाजी	जीरक
चव्य	अजमोदा	गण्डीर	
चित्रक			

१ कटफल, करज, गुंजा, रसोन–पलाण्डु, निर्गुण्डी, वत्सनाभ, कालीमिर्च, लौंग–सोंठ–जीरा, अफीम–कर्पूर, कूठ, पुष्करमूल, चोपचीनी–दशमूल।

२. ताम्रभस्म–लौहभस्म युक्त औषधिया—

काशीश	शख
श्रृगभस्म	शुक्ति
गधक	वराटिका
सोमल	प्रवाल
पारदघटित	
शिलाजीत	

इन औषधियो मे से किसको कहा पर प्रयुक्त करना चाहिए यह चिकित्सक की दृष्टि पर निर्भर होता है क्योकि शूल एक प्रकार का तो होता नही भिन्न भिन्न स्थान पर भिन्न भिन्न कारणो से होता है अत औषधियो का प्रयोग भी भिन्न प्रकार से हुआ करता है। यया–

परिभाषा व अर्थ—

१. उदरशूल	११ शिर शूल
२ आमाशयशूल	१२. नेत्र शूल
३. पित्ताशय शूल	१३. कर्णशूल
४ सधि शूल	१४. प्लीहशूल
५ बस्ति शूल	१५ यकृच्छूल
६. वृक्क शूल	१६ पाण्डुज शूल
७ आमवातिक शूल	१७. दौर्बल्यजशूल
८ गर्भाशय शूल	१८ औषधिजनित शूल–पारद–शीशनाग–ताम्रप्रयोगज शूल
९ हृच्छूल	
१० अपतत्रकीय शूल	१९ दत शूल

इनमे किस स्थान की पीडा मे कौनसी औषधि प्रयोग करना चाहिए यह चिकित्सक को चुनना पडता है।

उदर शूल–आमाशयशूल में—हीग–अजवायन, अजमोद, जीरक–शख–गधक–वराटिका शुण्ठी, इत्यादि। कृष्ण लवण–कुपीलु तथा उदरवातघ्न औषधिया।

पित्ताशय शूल–पाण्डुज शूल—श्रृग, नरसार–इक्षुरकक्षार–ताम्र मिश्रित औषधिया–शूलगज केशरी, शूलवज्रिणी, सोमनाथी ताम्र, सूतशेखर।

मण्डूर या लौह युक्त—पुनर्नवा मण्डूर, तारामण्डूर

आमवातिकशूल–संधिशूल—रसोन अहिफेन – कर्पूर– रास्ना–एरण्ड–पुनर्नवा–एलुवा–तारपीनतैल

पारद–नाग–ताम्रविषज शूल में–गवक रसायन, नागभस्म–स्फुटिका विर्बलता जनित शूल–अभ्रक–रससिंदूर–मिश्रित उदरशूलहर औषधिया।

प्लीह-यकृच्छूल—ताम्रघटित द्रव्यकेसाथ—सप्तवर्ण—करंज—कल्पनाथकासत्व। अपतं-त्रकीय—हीग—वच—मजिष्ठासार, खुरासानी अजवायन—ब्राह्मी—हरमल। बस्तिशूल—यवक्षार—शिलाजीत—श्रीवेष्टक तैल। गर्भाशयशूल—अशोक—काशीश—शृग—जीरक—ओलटकम्बल- कार्पासमूल—पचतृण। दंतशूल—कर्पुर—लौग—दालचीनी तैल—अजवा-यन सत्वयुक्त द्रव्य। नेत्रशूल—अहिफेन—कर्पूर—रसाजन—स्फुटिका इत्यादि।

हृच्छूल—सोमनाथी ताम्र- सूतशेखर- तृणकान्त मणि इत्यादि

अजमोद डिजिटेलिस

नोट—जब वेदना का उपशम न होता हो तो वेदना स्थापक द्रव्यों में से अहिफेन—कर्पूर—धुस्तूर—भग इत्यादि के योगो का सम्मिश्रण करके तब शूल शात करते हैं। इनमे अहिफेन प्रधान है।

अहिफेन—वेदनाशमन, आक्षेपनिवारण, निद्राप्रद, स्तभन, श्वासकृच्छ्र, प्रवाहिका, वृक्कप्रदाह, आमाशयज—वमन—हिक्का—शूल—प्रदाह—मासपेशी प्रदाह-शूल—वातशूल, पार्श्वमूल।

इसका उपयोग बाह्य व आभ्यतर दोनो प्रकार से होता है और हरएक स्थान को शूल प्रशमनार्थ तद्रोगहर द्रव्य के साथ प्रयुक्त होता है।

कर्पूर—

तीक्ष्ण	कृमिनाशक
उष्ण	वातविकार
कटु	पित्तशामक
शीत	दाह
कफनाशक	तृषा
पाचन	दुर्गन्धनाशक है।

यह १. दतशूल, प्रतिश्याय, नासास्राव, आमवातिकशूल — मे लाभदायक है

२. मस्तिष्कोत्तेजक, मादक, आक्षेपनिवारक, वेदनाहर, स्वेदजनक, कामशामक।

वातानुलोमनम्—

आध्मानहर या उदर वातघ्न (Carminatives)

पर्याय—आध्मानहर, आनाहप्रशमन, उदराध्मानहर, आनाहभेदन, आटोपहर, आनाह विमोक्षण। उदरवातघ्न।

परिभाषा—जो औषधिया उदरक्षेत्र के आमपक्वाशय मध्य की वायु (गैस) की उत्पत्ति रोक कर उनका अनुगमन उर्ध्व या अधो वात संचारपूर्वक कराती है और उत्पन्न वायु का निर्गमन कराती है उन्हे उदरवातघ्न कहते हैं।

द्रव्य—अजवायन, कुपीलु, सोठ, मिर्च पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, आर्द्रक, तगर, मेथी, हीग, सोया, अजमोदा, रसोन, जीरक, कलौजी, चिनकमूल,

सर्षप, राई तथा गधद्रव्य लवंग, इलायची दालचीनी तथा इस प्रकारके अन्य द्रव्य जो सुगंधित व उड़नशील तैल युक्त होते हैं।

उद्भिज व खनिज--लवण, कपर्द, गधक, शख, ताम्र, शंखविष, यवक्षार, सर्जिकाक्षार तथा अन्य उद्भिज्जक्षार।

स्थान---इस वर्ग की औपधिया निम्न स्थानो पर अपनी क्रिया करती हैं। यथा--

१ आमाशय पेशी जाड्यपरिहार व क्रिया वर्द्धन

२. आन्त्र की पुरस्सरणगति सचार व शोषण

३. पक्वामाशय की पेशियो का, मलाशय की पेशियो का कार्यावरोधनाश।

उपयोग--१. आमाशय की निर्वलता से उत्पन्न वेदना, आक्षेप, गौरव और अग्निमाद्य से उत्पन्न वायु की उत्पत्ति के परिहारार्थ।

२. विरेचक औषधि की उग्रता से उत्पन्न मरोड़ ऐंठन व आक्षेप के शमनार्थ।

३. औषधियो के स्वाद व गध और क्रियावर्धनार्थ

४. आहार के शीघ्र पाचनार्थ

५ आमाशय व पक्वाशय की शिथिलता दूर करके उन्हें सक्रिय बनाने के लिये इस वर्ग के सुगधित द्रव्य (Arometics) और उडनशील तैलो के प्रयोग से वायु का सचय नही हो पाता और कई अगो व क्रियाओ को सहायता मिलती है। यथा-

१ आत्र को शक्ति प्रदान कर समान वायु को सबल बनाना।

२ अधोवायु को अनुलोमन करना,

३. डकार का लाना

४. उदरशूल को शात करना

५ उदराग्नि की वृद्धि करना या अग्निसदीपन

इस प्रकार के द्रव्य--पोदीना, पिपरमेट, जायफल, अजवायन, सौंफ, सोया, इलायची, सतरे की छाल, कागजी नीबू, लवग, ककोल, दालचीनी, धनिया, जीरा, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद, जटामासी।

नीबू की छाल	मेथोल
आर्द्रक	थाइमोल
कर्पूर	

तारपीन का तैल — बोल
गुग्गुलु
यूकेलिप्ट्स
राई
मिर्चलाल
हिंगु
तगर

आर्द्रक—रोहिष, सोठ, यूकेलिप्ट्स तैल, केशर, रसौन, कस्तूरी। अनीसून।

सौष्ठव–इन द्रव्यो को उदर वातघ्न योगो मे डालने से योग मे सुगधी आती है और इनके भीतर के तैल उदरवात की क्रिया को शमन करते हैं। अत' उदरवातघ्न औपधियो मे इसका प्रयोग मिलाकर किया जाता है। इनका अधिक प्रयोग या सतत प्रयोग कभी कभी हानिकारक भी होता है अतः उचित मात्रा व काल तक ही प्रयोग करना चाहिए।

गुण—ये द्रव्य–उचित मात्रा मे प्रयोग करने पर अग्निदीपक (दीपन) और वातहर होते हैं। अधिक मात्रा मे आमाशय व आत्र की श्लैष्मिक कला पर उत्तेजक प्रभाव करते हैं। अत अधिक समय तक अधिक मात्रा मे प्रयोग करने पर निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न करते हैं–

१. आमाशयिक चिरकारी प्रदाह
२ आमाशय दौर्बल्य
३. पाचनसस्थान मे रक्ताधिक्य होकर वातरक्त की उत्पत्ति।
४. मूत्र मे क्षार का अधिक निक्षेप निकलना,
५. कदाचित अश्मरी व शर्करा उत्पन्न करना

इनके तैलो का वाह्य प्रयोग व प्रभाव–यह बाह्य प्रयोग मे त्वचा मे उत्तेजक व लालिमा पैदा करते हैं। क्वचित स्फोट भी पैदा करते हैं, हृदय मे शोषित होकर त्वचा से वहिर्गमन भी करते हैं और उष्णता के लक्षण उत्पन्न करते हैं।

आभ्यन्तर प्रयोग—यह आमाशय उत्तेजक, आत्र की क्रिया उत्तेजक, रक्त की वृद्धि, बोधक श्लेष्म (लाला) की वृद्धि, आमाशयिक व आत्रिक पाचक रस की वृद्धि करते हैं। श्वासनलिका की श्लेष्मल कला द्वारा नि श्वास के साथ निकलते हैं अतः श्वास प्रणाली के भी उत्तेजक प्रतीत होते हैं। वहा पहुचकर वहां की पेशियो की शक्ति भी बढ ते हैं। अपनी उग्रता से कास की वृद्धि करते व श्लेष्म निष्काशन भी इनका कार्य है।

उड़नशील तैलों का प्रभाव–पाचक संस्थान—आमाशय उत्तेजक, दीपन कर्म कर भूक की इच्छा उत्पन्न करने वाले, उष्णता को उत्पन्न करने वाले तथा शोपण क्रिया बढ़ाने वाले। क्षुधावर्धन, वातानुलोमन, जीवाणु नाशन, अरोचक

नाशन। अधिक मात्रा मे–हिचकी–वमन व छर्दि उत्पादक–दस्त लाने वाले श्वसन-सस्थान मे क्षोभ करके श्वसन वृद्धि–वमनोत्पत्ति।

रक्तवाहक संस्थान—रक्तवाहक सस्थान के उत्तेजक रक्त वृद्धि, उत्साह-वृद्धि, जीवाणु नाशक व क्रिमिघ्न क्रिया यथा– थायमल व सुगधवास्तूक–(चिना पोडियम) क्रिमिनाशक

तारपीन का तैल–श्रीवेष्टक तैल–उत्तेजक, सुस्तीप्रद। कर्पूर–अधिक उत्तेजक–अधिक मात्रा मे–आक्षेपोत्पादक

आटोप—रुजापूर्वक क्षोभ–तनाव पूर्वक रुजा
नतु गुडगुडा शब्द
नापि आध्मान.

इनकी क्रिया विभिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न अगो पर होती है। आमाशय व आत्र पर।

१· **उदरवातघ्न**— लवगतैल, पिप्पली तैल, जायफल तैल, दाल चीनी तैल, शुण्ठी तैल, लालमिर्च तैल, काली मिर्च तैल, इलायची तैल, सौंफ का तैल, सोया का तैल, कर्पूर तैल, धनियां का तैल, तेजपत्र तैल

यह पाचनेन्द्रिय उत्तेजक व वात शामक होते हैं।

२ आमाशय कार्यशील किन्तु हृदय व केन्द्रीय वातनाड़ी मे उत्तेजना लानेवाले यथा–जटामासी, हीग, बोल (Myrrh)

३. श्वासप्रणाली की श्लेष्मल कला पर कार्यकारी–
१. रसोन तैल २. लोहवान तैल

४. वृक्क–मूत्रमार्ग–मूत्रेन्द्रिय–ककोल तैल (Oil of Qubeba)
श्रीवेष्टक तैल, चन्दन तैल

५. स्त्री जननेन्द्रिय उत्तेजक–कस्तूरी, हीग, जीरक, कर्पूर, कंकोल

६. त्वचा पर काम करने वाले उत्तेजक–तारपीन तैल, यूकेलिप्टस तैल
राई का तैल–सर्षप तैल

१ आटोप, २ आनाह, ३. आध्मान, ५ प्रत्याध्मान, ५. अलसक के लक्षणो मे लाभप्रद योग

---

१. पक्वाशयस्थोऽन्त्र कूजं–शूलाटोपोकरोति च।
२–(१) आमंशकृद्वानिचितं क्रमेण, भूयोविबद्धविगुणानिलेन।
प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेन विकार आनाह मुदाहरन्ति॥

१.	समुद्रादि चूर्ण मात्रा ३ माशे		७.	यमानीषांडव	३ ,,
२.	हिग्वष्टक चूर्ण	,,	८.	लवणाद्यम मोदकम्	३ ,,
३.	महौषधि चूर्ण	,,	९.	सुकुमार मोदक	१ तोला
४.	अग्निमुख चूर्ण	२ ,,	१०.	हरीतकी एरण्डचूर्ण	३ माशे
५.	भास्कर लवण	३ ,,	११.	अग्नितुण्डी वटी	२ वटी
६.	सैंधवादिचूर्ण	३ माशे		पिप्पली घृत	१ तो.
				बीजचूरादिघृत	१ तो.

जीवनीयम्–जीवनम् (Vitelisers)

परिभाषा—जीवनाय हितं जीवनीयम्

आयुष्यो जीवनीय. (च. सू अ. २६)

जीवनः प्राणधारणः (सु. सू. अ. ३८)

जीवनीयं प्राणानां संधारकम् (इन्दु अ. स. सू. अ. ३४)

अर्थात्—जो द्रव्य प्रयोग करने पर आयु या जीवन वर्धक हो उसको जीवनीय कहते हैं जीवन या प्राण के धारण की क्षमता रखने वाले द्रव्य को जीवनीय कहते हैं।

द्रव्य—जीवनीय द्रव्य पृथ्वी व अपतत्वाधिक गुणो से युक्त होते हैं।
यथा—पृथिव्यपां गुणैर्युक्तं जीवनीयमितिस्थिति

(र. वै. अ ४ सू. उ. भाष्य)

१.	जीवक	मेदा	जीवन्ती	इन दस द्रव्यो को चरक ने जीवनीय कहा है।
	ऋषभक	महामेदा	मुलहटी	
	काकोली	माषपर्णी		
	क्षीरकाकोली	मुद्गपर्णी		

---

२. यस्यवात प्रकुपित. कुक्षिमाश्रित्य तिष्ठति। नाधो व्रजति नाप्यूर्ध्वमानाहस्तस्य जायते। च. सू. १८।३२

३. विमुक्त पार्श्वं हृदयं तदेवामाशयोत्थितम्। प्रत्याध्मातं विजानीयात् कफ व्याकुलितानिलम्। सु.

४. साटोप मत्युग्ररुजंमाध्मातमुदरं भृशम्। आध्मानमिति तं विद्यात् घोरंवातनिरोधजम्। पक्वाशयस्थोऽत्र कूजं, शूलाटोपौ करोति च।

५. कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्यति विनश्यति। निरुद्धोमारुतश्चैव कुक्षावुपरिधावति। वातवर्चोनिरोधश्च कुक्षौयस्यभृश भवेत्। तस्यालसक मात्र कण्ठे तृष्णोद्गारावरोधको। आनह्यते समन्ताद्विवद्ध नवद्धेत्ति वेदना प्रकारः आनाहम्।

२. सुश्रुत का काकोल्यादि गण को भी जीवनवर्धक आयुष्य कहा है।

काकोल्यादि गण—

काकोली	मेदा	प्रपौंडरीक
क्षीरकाकोली	महामेदा	ऋद्धि
जीवक	गुडूची	वृद्धि
ऋषभक	कर्कटश्रृगी	मृद्वीका
मुद्गपर्णी	वशलोचन	जीवन्ती
माषपर्णी	पद्मक	मुलहठी

काकोल्यादिगण की औषधियां— जीवन, वृंहण, वृष्य—स्तन्यजनन, कफकारक, वातपित्तहर—रक्तशामक गुणयुक्त होती है। इनका प्रयोग दौर्बल्य—कार्श्य—स्तन्य विकार—रक्तपित्त मे होता है।

अन्य——इनके अतिरिक्त विदारिगधादिगण की—वृंहणीय—वृष्य—रसायन गण की औषधिया भी जीवनीय कार्य करती है। यथा——

शालिपर्णी—विदारी – महावला—नागवला – गोक्षुर—पृश्निपर्णी—शतावरी—पुनर्नवा—अश्वगधा—कपिकच्छु—ऐन्द्री, ब्राह्मी—शलिपर्णी, खनिजद्रव्य—स्वर्ण—रजत—लौह—नाग—वग—अभ्र—वज्रवैक्रान्त—मुक्ता—प्रवाल—माणिक्यादि।

संक्षेपत——जो द्रव्य स्वाद मे मधुर—गुण मे स्निग्ध—जीवन—वृहण—गुरु—और हर्षण होते हैं वह जीवनीय होती। महर्षि चरक ने क्षीर को परम जीवनीय माना है।

प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तम्। च० सू० २७

आहार द्रव्यो मे दुग्ध—घृत—नवनीत—दधि इत्यादि को जीवन, वृहण व मागल्य कहा है।

नोट——शरीर—इन्द्रिय—सत्व व आत्मा का सयोग ही जीवन हैं। जीवन के लिए लाभप्रद द्रव्य को जीवनीय कहते हैं। अत सप्तधातु जीवन के मूलस्तम हैं। इनकी स्थिति ठीक रहने पर जीवन अक्षुण्ण रहता है और इनकी क्षीणावस्था मे दु खात्मक स्थिति पैदा करता है अत जो द्रव्य शरीर धातु—वृद्धिकर पौष्टिक व वश्य होते हैं वे सब के सब जीवनीय कहे जा सकते है। आधुनिक आविष्कारो मे विटामिन को जीवन के लिये आवश्यक माना गया है। अत. आधुनिक लेखक इन्हे भी जीवनीय मानते है और यही सज्ञा देते हैं। यूनानी चिकित्सक—इस प्रकार की औषधियो को मृगज्जी कहते हैं। शरीर मे नित्य प्रतिक्षण धातुओ का क्षय होता रहता है। इसकी पूर्ति के लिये अन्नाहार व धातुवर्धक पदार्थो की आवश्यकता पडती रहती है अत क्षीर—घृत—गोधूम व शालि का प्रयोग नित्य करते है साथ ही इनकी क्षय की शीघ्र वृद्धि के लिये जीवनीय द्रव्यो का भी प्रयोग करते हैं। अत मधुर—स्निग्ध—शीत—गुणयुक्त जितने द्रव्य है जीवनीय होते हैं।

विशेष——जीवन के घटक शरीर मे पाये जाने वाले पदार्थ जो अगो के धातुओ मे मिलते हैं—स्वर्ण—लौह—फास्फोरस और अन्य कई उपादान आधुनिक

विज्ञान जीवनीय मानता है । इसी प्रकार प्राचीन चिकित्सक सप्तधातु मानते हैं । सप्तधातुओं की वृद्धि करने वाले अनेको द्रव्य तत्सम पदार्थ वृद्धिकर होते हैं चाहे आहार हो या औषधि जीवनीय होते हैं । किन्तु आहार तो सर्वदा लिया ही जाता है । जीवन द्रव्यो की क्षति होने पर जो आहार द्रव्य से न हो सकता हो औषधियों का प्रयोग कर शीघ्र पूर्ति करते हैं । अत धातुवर्धक औषधिया या तत्सम द्रव्य वर्धक या निर्माण करने वाले द्रव्यो को जो क्षति पूर्ति कर जीवन की रक्षा करते है जीवनीय होते है । चरक व सुश्रुत ने जिन द्रव्यो को लिखा है उनके अतिरिक्त भी वहुतसी ओपधिया ऐसा ही कार्य करती हैं उन सबको जीवनीय कह सकते है ।

वात प्रकोपक द्रव्य---

परिभाषा—जो द्रव्य वायु का प्रकोप करके दोपो को उन्मार्गगामी करते है और वात की क्रिया को वढा देते है अथवा घटा देते हैं या क्रिया का नाश करते हैं वे वात प्रकोपक कहलाते हैं । प्रकोपक की मात्रा---यह मात्रा कम मात्रा मे, अधिक मात्रा मे मध्यम मात्रा मे, मिलते है । अत वातकर, परवातकर, इस प्रकार के द्रव्य का उल्लेख मिलता है ।

द्रव्य---नीवार, त्रिपुट, मटर, कलाय, चना, श्यामाक, मुद्ग, आढकी, राज-शिम्बी, वन-मुद्ग, कुसुम्म, कोद्रव इत्यादि द्रव्य विशेषकर वात के वर्द्धक हैं । यव, कुलत्थ, माप, निष्पाव, दधि, आरनाल, सौवीर, शुक्त, तक्र, शुष्क-शाक, वाजरा, ज्वार आदि ।

रस---विशेष कर कटु तिक्त कषाय रस वाले द्रव्यवात प्रकोपक होते है ।

गुण---अति रूक्ष, अति-शीत, लघु, सूक्ष्म, चल-विशद-खर-गुण वाले द्रव्यो का सेवन करने पर वात प्रकोप होता है ।

विहार व विविध हेतु---विषम भोजन,, स्वल्प भोजन, उपवास, अध्यशन, अधिक परिश्रम, गर्तादि-लंघन, तैरना, पेड से गिरना, अधिक चलना, अभिघात का लगना, धातु-क्षय, जागरण स्रोतसो का मार्गावरोध, अतिमैथुन, वेग विघात, वेग धारण, वमन, विरेचनाति योग, रक्त स्रावाधिक्य, शोक, भय, वर्षा-शीत का अधिक सेवन या उस मे भीगना इत्यादि हेतु वात की वृद्धि मे भाग लेते हैं ।

वात प्रकोपण मे एक ही विधि नहीं मिलती परतु वह कई रूप मे प्रति फलित होती है । शास्त्र के अध्ययन के वाद उसकी सज्ञाओ का अध्ययन करे तो निम्न वाते दिखाई पडती है ।

१. **वात प्रकोपकः** – इसमे प्रकोपक, कर, क्षोभी, आवह व जनन, इन विशेषणो से लगे सज्ञाओ का विवरण मिलता है । यथा—

१. वात प्रकोपिणी च० सू० २७।३२

२. मारुत प्रकोपण च० सू० १२

३. अनिल कोपन

४.	वात प्रकोपक अ० सू० १०।३४	१	वातकृत् अ०सू० ६।१२
५.	वात प्रकोप अ० सू० १०।३४	२.	मारुतावह सु० सू० ४६।३०३
६.	अनिलकर सु० सू० ४६।१२	३	क्षोभी . पवनक्षोभी च सि ११।८
७.	वातकर अ० सू० ५।७४	४.	मारुतकृत् अ० सू० ६।१२५
			जनन आक्षेप जनन सु०सू० ४२

अन्य वात व्याधि जनन कर व कृत आपादनप्रद आदि विशेषण से तो न जाने कितनी ही सज्ञाये मिलती है जिनके आधार पर इनका विवेचन दिखाई पडता है ।

यथा—आक्षेप जनन, विक्षेप–जनन, विक्षेप–कर, अनिद्राप्रद, विष्टभकर, शूलमापादन, आध्मानकारक, उदावर्त–जनन, मन्या–स्तभ–कर आदि। इन सज्ञाओ से सर्व विध वायु प्रकोप का विवरण मिलता है । मात्रावत् भी दिखाई पडता है । यथा–परवातकरम् च० सू० २७।५० ।। स्वल्प मारुतम् च० सू० २७। ११ या १९ अल्प वातकरम् च० सू० २७।५७ व १४०, बहुवातकर सु० सू० ४६।४१ ।

इन सज्ञाओ के आधार पर इनको कई विभागो मे बांटा जा सकता है। यथा–नाडी विकृति जन्य स्थानिक . मन्यास्तभकर। आक्षेप कर, विक्षेप कर, क्षोभ कर, पवनक्षोभी–यह एक विशिष्ट स्थान के क्षेत्र का बीचक है । यथा–आध्मानकर । उदावर्त कर यह उदर के समग्र प्रात मे आम की आत्र की क्रिया मे विकृति सूचक है ।

वात प्रकोपण–२ नाडीगत क्रियायें जो विशेष एक नाडी मे होती हैं और क्षेत्रगत स्थान विशेष ग्रहण कर विकृति कारक होती है फिर सर्वांग मे वात विकृति करती हैं जिनका नाम विशेष न लेकर वात व्याधि नाम पर किया गया है । इस प्रकार प्रकोपण का रूप विभिन्न रूप मे दिखाई देता है । प्रकोपण विधि वात प्रकोपण द्रव्य अति रूक्ष अति कषाय अति खर अति कटु व अति तिक्त रहने पर ही अपने प्रभाव को विशिष्ठ रूप मे अधिक दिन सेवन पर करते हैं अथवा औषधिया अधिक मात्रा मे शीघ्र ही अपना प्रभाव दिलाती हैं। और शरीर मे रूक्षता खरता शीतता उत्पन्न हो जाती है और रोग का स्वरूप बन जाता है । वात का चेष्ठा व्यापार विशेष रूप से कार्य है वह विभिन्न रूप मे शरीर के भीतर होता है । और शरीर क्रिया चलती हैं इसके कारण नाडीजाल है जो कि शरीर मे फैले रहते है । नाडी वस्तु अति मृदु व अति स्निग्ध है उनका इस मृदुता व स्निग्धता मे कमी या बेशी का होना वात रोग का कारण बनता है । सामान्य रूप मे जो क्रिया वात जन्य शरीर मे श्लेष्म या पित्त के सहयोग से होती है उसमे कमी बेशी होने पर वात व्याधि की सज्ञा नही होती । बल्कि जब वात नाडी तत्र स्वत अपने गुण से रहित हो जाता है तब ही वात व्याधि नाम देते हैं । इसमे विशुद्ध रूप मे वात की क्रिया की हानि या वृद्धि पाई जाती है ।

यथा—आहार द्रव्यो के अधिक सेवन से शरीरस्थ वात तन्त्र की जब पुष्टि नही मिलती तब वात व्याधि होती है। यथा–कलाय के सेवन से नाड़ी जाति के निर्माण करने वाले वस्तु न्यूक्लियो प्रोटीन की मात्रा पूर्ति नही होती तो स्निग्धता व मृदुता की कमी हो जाती है और अपना प्राकृतिक कार्य यह नही कर पाते और कलाय खज कार्य वन जाता है।

त्रिपुट का प्रोटीन नाडी की प्रोटीन की पोषण नही कर पाती। हीन श्रेणी के प्रोटीन वनाकर नाडी पोषण नही करती तो रौक्ष्य खरत्व बढ जाता है खाज्य पागुल्य आदि हो जाता है। तिक्त रस की मात्रा अधिक होने पर आपक्षे व विक्षेप होने लगते है। आकुचन व प्रसारण होता है। रूक्षान्न सेवन से आध्मान व गौरव आटोप आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

तुवरी—अल्प वात कर बनती है।

कलाय निष्पाव जम्बु—पर वात कर कार्य करते है।

शिम्बी—रूक्ष व कषाय होने से पर वात कर होती है। प्रोटीन की मात्रा के अविक होने पर भी वह वृष्य और चक्षुष्य नही होती, देर मे पचती है।

त्रिवृत—कषाय व मधुर होने पर भी रौक्ष्य के कारण अनिल प्रकोपक हो जाती हैं। अत इसके प्रयोग के वाद उदर मे आतो की आकुचन प्रसारण की गति बढ जाती है। पेट मे परिकर्त्तन होता है। वेग से मल निष्काशन होता हैं। वेणु-वीज, रूक्ष व कटु पाकी होने से वद्ध मूत्र व पुरीष् होता है। कुमुद उत्पल शीत होकर वात कर हो जाते है विल्व दुर्जर होकर के वातकर पूति–मारुत-कृत हो जाता है। दाडिम रूक्षाम्ल होकर वात कृत बनता है। चना वातकृत वनता है। यव वह वर्चस वनता है।

मूग-व मसूर को छोड़कर द्विवदल वातकर बनता है। तिक्त रस मन्या-स्तंभकर होता है। आम कपित्थ तिदुक वातकर बनते है। इत्यादि।

मादक–द्रव्य

पर्याय—मादक, मदकारी, मदकृत

इ० डेलिरियेन्ट, डेलिरिफेसियन्ट, नारकोटिक्स

(Delirients, Delirifacients, Norcotics)

परिभाषा— **बुद्धि लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।**

तमोगुण प्रधानं च यथामद्य सुरादिकम्। शार० प्र० अ० ४

अर्थात्—जो द्रव्य सेवन करने के पश्चात तमोगुण की शरीर मे वृद्धि करके वुद्धि का लोप कर देते हैं उन्हें मदकारी या मादक कहते हैं। यथा—मद्य व सुरा आदि।

निरुक्ति–मुद हर्षे इस धातु से मद्यशब्द वनता है अत जो द्रव्य हर्षोत्पादक हो उसे मद्य कहते हैं। रा आदाने इस धातु से सु पूर्वक होने से सुरा

शब्द का (रा) अर्थ सुष्ठुराति यामम् अर्थात् जो समय को अच्छी तरह व्यतीत करा दे उसे सुरा कहते हैं। हाला-हल विलेखने धातु से बनता है। अतः पीते समय जो मुह से आमाशय तक जो लेखन करता हुवा जाता है, उसे हाला कहते है।

ऊपर की परिभाषा मे बुद्धिलोप करने वाले द्रव्य नाम मादक बतलाया गया है। बुद्धि शब्दस्तु–मेधाधृति–स्मृति–मति–प्रतिपत्तिसु वर्तते।

१. अतः मेधा[1]–ग्रथाकर्षण सामर्थ्यम्।

२. घृति संतुष्टि–नियतात्मिका बुद्धि इति अन्ये।

३ स्मृति –पूर्वानुभूतस्य स्मरणम्। अर्थधारणशक्ति इत्यन्ये।

४. मति –अनागतविषयोपदेशः त्रिकाल विषयाबुद्धि

५. प्रतिपत्ति–अन्यविबोध प्रागल्म्य।

बुद्धि शब्द का क्षेत्र ऊपर लिखे क्रमानुसार मेधाधृति–स्मृति मति और प्रति पत्ति के हृद् तक होने से इन सब को जो दुष्ट कर दे वह मदकारी है ऐसा समझना चाहिए।

द्रव्य—सुरा, तीव्रमद्य, आसुत ताडरस, अहिफेन, भाग–चरस, खुरासानी अजवायन–ईथर–क्लोरोफार्म, पूग, कोद्रव–श्यामाक आदि।

पाच भौतिक संगठन--षड्रसवाले–तीक्ष्ण–उष्ण–रूक्ष–लघु–विशद–गुण वाले द्रव्य जो आग्नेय व वायव्य भौतिक सगठन[2] वाले द्रव्य–मादक होते हैं। यथा—

मादक द्रव्यों की क्रिया—मादक द्रव्य जब सेवन किये जाते हैं तो विभिन्न प्रकार के हानिकारक प्रभाव शरीर पर करके अपने स्वभाव दिखलाते हैं। विशेषकर मद्य–सुरा–वारुणी–अल्कोहल आदि। मद्य मे विशेष कर १० गुण[3] होते है जिनके द्वारा वह शरीर धारक ओज के दसो गुणो के विपरीत होकर मादक व हानिकारक होता है। यथा—

लघु–उष्ण–तीक्ष्ण–सूक्ष्म–अम्ल–व्यवायि–आशुग–रूक्ष–विकाशी व विशद गुण मद्य मे होते हैं। इन गुणो के कारण यह शरीर मे शीघ्र फैल जाता है और तमोगुण प्रधान लक्षण उत्पन्न करता है।

---

१ बुद्धिः—बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागाभिगोचरा॥
प्रज्ञा नवनवोन्मेष–शालिनीं प्रतिभां विदु॥

२. सर्वान् रसान् तीक्ष्णोष्ण रूक्ष चलविशदांश्च गुणान् मदनीयम् तदाग्नेय वायव्यम् च। रस वै० ४–११–१२

३. (क) लघूष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्माम्ल व्यवाय्याशुगमेव च।
रूक्ष विकाशिविशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम्। च० चि० २४

(ख) मद्यमूष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशद मेव च।
रूक्षमाशुकरंचैव, व्यवायि च विकाशि च। सु० उ० अ० ४७

शरीर धारक ओज[1] मे गुरु, शीत मृदु, श्लक्ष्ण, वहलं,मधुरं, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल, स्निग्ध यह दशगुण है इनके प्रतिकूल मद्य व विष मात्राधिक्य होने पर अपना ओजोनाश कर क्रियाकर शरीर हानि कर[2] होते हैं।

क्रिया—मद्य शरीर मे पहुचकर शोषित होकर रस मे पहुचकर हानिकारक प्रभाव करता है। इस मे मात्रा वृद्धि से क्रमश चार अवस्थायें होती है जिनका प्राचीन काल के चिकित्सकों ने बडा सुन्दर वर्णन दिया है। वास्तव मे मद्य का सेवन उचित प्रकार से किया जाय तो यह 'यथैवान्न[3] तथा स्मृतम्' ॥

सुश्रुत के मतानुसार—निम्न लक्षण मद्य के नियमित पीने से होते है—

काम्पता मनसस्तुष्टिः, धैर्यं तेजोऽति विक्रमः।
विधिवत् सेव्यमाने तु मद्यैसन्निहिता गुणा.।

मद्य पीने पर तीन अवस्थायें होती हैं—

पूर्वमद्य—१. पूर्वे वीर्यरति प्रीति हर्ष भाण्यादि वर्धनः।
मध्यमद—२ प्रलापो मध्यमे मोहो युक्तायुक्त क्रियास्तथा।
पश्चिमद—३ विसंज्ञः पश्चिमे शेते नष्टकर्म क्रियागुणः।

सु० उ० अ० ४७-१०-११-१२

अधिक मात्रा मे यह हानिकर प्रभाव करता है। चरक के इस विचार से आधुनिक विचार मिलते जुलते हैं। यथा—यथैवान्न तथा स्मृतम्—

घोष[1] का कथन है कि उचित मात्रा मे अन्न के साथ या बाद मे लेने पर यह पाचन शक्ति बढाता है। आमाशय के कोष्ठीय भागको उत्तेजित कर प्रचुर मात्रा मे यह पाचक रसो की वृद्धि करता है।

मद्य के वर्गो को चरक[4] ने निम्न रूप मे प्रकट किया है—

---

१. **गुरुशीतं मृदुश्लक्ष्णं बहलं मधुर स्थिरम्।**
प्रसन्नं पिच्छिल स्निग्ध ओजोदशगुणं स्मृतम्॥ च० चि०अ० २४

२. **मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणै रोजसो गुणान्।**
दशभिर्दशसंक्षोभ्य—चेतोनयतिविक्रियाम्। च० चि० अ० २४

३. **विधिना मात्रयाकाले हितैरन्नैर्यथाबलम्।**
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्य तस्य स्यादमृतोपमम्॥ च०चि० २४
स्निग्धैस्तदन्नै.मासैश्च भक्ष्यैश्च सहसेवितम्।
भवेदायुः प्रकर्षायबलायोपचयाय च। सु० उ० ४७

४. **रोचनंदीपनंहृद्यं स्वरवर्ण प्रसादनम्। प्रीणनबृंहणंबल्य भयशोकश्रमापहम्।**
स्वापनं नष्टनिद्राणां मूकानां वाग्विबोधनम्।
बोधनं चातिनिद्राणां विबद्धानां विबंधनुत्।
बधबंधपरिक्लेश दु खानाचावमोहनम्। मद्योत्थानां च रोगाणा मद्यमेवप्रबाधकम्।
रति विषय संयोगे प्रीतिसयोग वर्धनम्। अतिप्रवचसा मद्य मुत्सवामोदकारकम्।
पंचज्वर्येषु कालेषु भारति प्रथमेमदे। यून वा स्थविराणां वा
तस्यनास्त्युपमाभुवि। च० चि० अ० २४

मद्य–रोचन, दीपन, हृद्य, स्वरप्रसादन, वर्णप्रसादन, प्रीणन, बृंहण बल्य–भयशोक श्रमहर है। निद्रा न आने वालो को निद्राप्रद, मूक के वाणीका विशोधन, विवधहर, वध बध के क्लेश को व दुःख को नष्ट करने वाला है। रतिवर्धक, प्रीतिवर्धक, उत्सव मे आमोद कारक है क्षत क्षीण वालो को वेदनाहर होता है। इस प्रकार

किन्तु मद्यस्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।
अयुक्तियुक्त रोगाय–युक्तियुक्त यथाऽमृतम् । चरक

क्रमश मात्रा बढने पर यह चार प्रकार की स्थिति उत्पन्न करता है। यथा––

प्रथम भेद––

१. प्रहर्षण. — १, Mental and Physical happiness.

२. प्रीतिकर — २ Mental inability मानसिक ह्रास

३. पानान्नगुणदर्शक. — लिखना-पढना-गाना-हसना इत्यादि मे तेजी आ जाती है।

४. वाद्यगीत–प्रहासाना कथाना च प्रवर्तक

५ न च बुद्धि स्मृति हरो — Imegination becomes brighter.

६. विषयेषु न चाक्षमः — Feeling elevated Intelect clear, sence more acute, bodily activity morepredominant and appetite sharpened

द्वितीय भेद––

१ मुहुर्मोह मुहुस्मृति — १ मानसिक सतुलन नष्ट पूर्णत ।

२. अव्यक्तवाक् नज्जतिवाक् मुहुर्मुहु — २ उचितानुचित ज्ञान नष्ट incoherent & indistinct talk अनर्गत प्रलाप

३. युक्तायुक्त प्रलाप — ३. बाते अस्पष्ट –पैर लडखड़ाना

४. प्रचलायनमेवघूर्णनम् — ४ बेहोशी–उत्क्लेश–वमन–वर्णपीला

५. स्थान–पान अन्ने नाकर्ये योजना नविपर्यया — १२ तक मद्य होने पर विषाक्तता

तृतीय भेद––

१. उन्मादमिव दारुणम् — १ पूर्ण बेहोशी २ प्रतिशत मद्य

२ भग्नदार्विवनिष्क्रिय मदमोहावृत मना जीवन्नपि मृतं. सम. । — If indulgence is continued further symtoms of acute Alcohol poisioning appears So the mental balance is lost.

३. रमणीयानविपयान् सुहृज्जनान्नवेति	The subject takes–laughs or cries without restrant, but gradually he losses control over the functions also

४. कायाकार्य, सुखदु.खं हिताहित न वेत्ति

अधिकमद में—मद्ये मोहोभयंशोक. क्रोधोमृत्युश्च संस्मृत. ।
सोन्माद मद मूर्च्छाया सापस्मारापतानका. ।
यत्रैकस्मृतिविभ्रंश तत्र सर्वं असावुवत् ।

इस प्रकार मद्य गुणकारी होते हुवे भी अधिक मात्रा मे लेने पर हानिकर व विपतुल्य हो जाता है। प्राचीन चिकित्सको ने पानात्यय व परमद के लक्षणो को वहुत ही सूक्ष्मता के साथ अध्ययन किया था और उसे रोग का स्वरूप दिया है।

सुश्रुत ने इनका वडा ही सुन्दर विवरण परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम, पानहृतम् के नाम से दिया है जिससे स्पष्ट है कि इसका कितना व्यापक प्रभाव पडता है। मद्य के पीने से शरीर के भिन्न भिन्न अगो पर भिन्न भिन्न प्रभाव पडता है। इस विषय मे प्राचीन व आधुनिक दो प्रकार के विचार समान दृष्टि गोचर होते हैं। यथा—

प्राचीन	अर्वाचीन
१. मद्य–१ स्रोतोविबंधनुत मद्यं, मारुतस्यानुलोमनम् बुद्धिस्मृतिप्रीतिकर सुखश्च, पानान्न निद्रारतिवर्धनश्च ।	१ विंज (Winzs) अल्कोहल प्रारभ मे मस्तिष्क के सस्थान के उच्च व सव केन्द्रो को उत्तेजित करता है वाद मे अवसादन करता है।
२. सुखनिद्राववोधश्च सुखद प्रथमोमद ३ किन्तुमद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्। अयुक्ति युक्तं रोगाय युक्ति युक्तं यथाऽमृतम् ।	२. शेमिडवर्ग (Schemide Berg) अल्कोहल मस्तिष्क के भिन्न भिन्न भागो को अवसादित करता है प्रारभ मे जो उत्तेजना दिखाई पडती है वह हमारे जीवन के उच्चकेन्द्रो के अवसादित होने से होती है। अथवा–मानवीय भावना समाप्त होकर पशु भावना उत्पन्न होती है। उत्तेजना सी मालुम होती है वाद मे यह भी अवसादित होती और मृत्यु होती है। अत अल्कोहल का प्रभाव सदा अवसादन है।

मद्य का शोषण—जितना मद्य पीते है इसका ¼ भाग आमाशय मे शेप भाग आत्र के प्राथमिक भाग मे शोषित होता है। यह अल्कोहल प्रति मिनिट

५ से १५ सी० सी० जारित होता है। मुख से सेवन के ५ मिनट वाद रक्त मे मिलने लगता है। आधा घटे मे अधिक मात्रा भी शोषित हो जाती है। अल्कोहल श्वास स्वेद व मूत्र से निकलता है।

– जैसे जैसे रक्त मे मात्रा वढती ज.ती है वेहोशी वढती है। प्रथम मुह लाल वर्ण का हो जाता है। फिर पाडुवर्ण रक्तहीन होता है। ओष्ठ–नील–आखे लालत्वक् से स्वेद चिपचिपा, कनीनिका विस्फारित–निष्क्रिय–नाडी दुर्वल, श्वास खर्राटे से, पैर लडखडाना, प्रलाप–मूर्च्छा–वमन–वेहोशी। यह लक्षण १२ घटे से अधिक हो तो लक्षण साघातिक होते है।

सात्म्यता—धीरे धीरे मात्रा साम्य होती है और अधिक लेने की आवश्यकता पड़ती है। इनका प्रभाव शरीर के अगो पर भिन्न भिन्न रूप मे पड़ता है।

आमाशय—आमाशयिक रस गतिवर्द्धक शोषित होने पर भी स्राव वर्धक दीपन-पाचन होता है। गुदा से देने पर भी आमाशयिक स्राव वर्धक होता है। सामान्य मात्रा मे–दीपन-पाचनरस-वर्धक।

अधिक मात्रा में—२० प्रतिशत से अधिक होने पर–आमाशयोत्तेजक और आमाशयिक रसोत्पादक ग्रंथि शोषकर (Atrophy)

आमाशय व आत्र–आम-पक्वाशय तक जाकर शोषित होता है १० सी० सी० अल्कोहल प्रति घटे जारित होता है। यह शरीर मे शक्ति देता है वसा व कार्वोहाइड्रेट का काम करता है। यह अप्रत्यक्षरूप मे प्रोटीन का स्थानापन्न (Piotoine spere) है। एक ग्राम अल्कोहल ६ कैलोरी उष्णता उत्पादन करता है। अत यह कार्वोहाइड्रेट–फैट–व प्रोटीन का स्थानापन्न कार्य करता है। यथा—आमाशय मे शोषित होकर याकृतीशिरा मे यकृत मे जाता है। कम मात्रा मे यकृत पर दुष्प्रभाव नही डालता। अधिक मात्रा मे क्षोभ व यकृत् शोथ पैदा करता है। लगातार सेवन से यकृद्दाल्युदर होने का भय रहता है (Cerihosis)or (faty degeneration of lever) यह इनस्यूलिन के साथ अधिक जारित होता है।

श्वास संस्थान—श्वास केन्द्र प्रभावित होता है। आक्सीजन की आवश्यकता से मात्रा बढ़ जाती है। प्राचीन चिकित्सकों के मत से निम्न रूप है—

अतिमात्रा— तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना।
अंतर्दाहं ज्वरंतृष्णा प्रमोहं विभ्रमं महा।

आमाशयपर— आमाशयस्य गुत्विलष्टं कफपित्तं मदात्यये।
विज्ञाय वह्नुवोपाय—दह्यमानस्य तृष्यतः।

हृदये— पार्श्वरुजा—स्तनरुजाय—काले सरक्तनिष्ठी वे।
तृष्यते सविदाहे च सोत्क्लेशं हृदयो रसि।

मस्तिष्क— मद्येनमनसश्चास्य संक्षोभ क्रियते महान्।
मद्य मारुत वेगेन तटस्थस्येव शाखिनः।
मद्ये मोहो भयं शोक क्रोधोमृत्युश्च संश्रित।
यत्रैकः स्मृतिविभ्रशस्तत्र सर्वमसाधुवत्।

मद्य के गुण

सुश्रुत— चरक

मद्य अपने १० गुणो से शरीरधारक ओज के १० गुणों को नष्ट करके विकृति लाता है और मादक होता है। यथा—

चरक—	ओज—	सुश्रुत—
१. लघु	गुरु	लघु
२ उष्ण	शीतम्	उष्णम्
३. तीक्ष्ण	मृदु	तीक्ष्णम्
४. सूक्ष्म	श्लक्ष्णं	सूक्ष्म
५. अम्ल	बहल	अम्ल
६. व्यवायी	मधुरम्	व्यवायि च
७ आशुग	स्थिर	आशुकरम्
८. रूक्षम्	स्निग्धम्	रूक्षम्
९. विकाशि	पिच्छिलम्	विकाशि
१०. विशदम्	प्रसन्नम्	विशद

चरक— लघूष्णतीक्ष्ण सूक्ष्माम्लं व्यवाय्याशुगमेव च।
रूक्षं विकाशि विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम्। च० चि०२४

सुश्रुत— मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं, सूक्ष्मं विशद मेव च।
रूक्ष माशु करंचैव, व्यवायि च विकाशि च। सु० उ० ४७—४
औष्ण्यात् शीतोपचारत्तत्वंतैक्ष्ण्याद्धन्ति मनो गतिम्।
विशत्यवयवान् सौक्ष्म्यात् वैशद्यात् कफशुक्रनुत्।
मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यात् आशुत्वाच्चाशु कर्म कृत्।
हर्षदं च व्यवायित्वात् विकाशित्वाद्विसर्पति।
तदम्लं रसत प्रोक्तं लघुरोचन दीपनम्।
केचिल्लवण वर्ज्यांस्तु रसानत्रादि शंतिहि॥ सु०

ओज— गुरुशीतं मृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम् ।
प्रसन्नं पिच्छिल स्निग्ध ओजो दशगुणं स्मृतम् । च० चि० २४

नोट—ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि उचित मात्रा के भग होते ही यह भयानक लक्षणो को उपस्थित करता है और पानात्यय-परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम, पानहृत के लक्षणो को करता है जिसे कि व्याधि रूप मे सुश्रुत व वाग्भट्ट ने स्वीकार किया है । यह अधिक पीने पर लक्षणो के उत्पादन का इतिहास है । मदकारी के लक्षणो मे पानात्यय-परमद-पानाजीर्ण-पानविभ्रम व पानहृत के लक्षण पाये जाते है जो निम्न हैं—

पानात्यय—मद्य पीने की मात्रा के अधिक होते ही निम्न लक्षण होते हैं ।

वातज—स्तभ, अगमर्द, हृदयग्रह, तोद, कम्प, शिरोरुजा ।

पित्तज—स्वेद-प्रलाप, मुखशोष, दाह, मूर्च्छा, वदनलोचन पीतता ।

श्लेष्मज—वमथू, शीत, कफप्रसेका ।

सर्वात्मक—उपर्युक्त सब लक्षण सयुक्त रूप से ।

परमदः—उष्मा, ओजगुरुता, विरसाननत्व, श्लेष्माधिकत्वम्, अरुचि, मल-मूत्रसग, तृष्णा, शिरोरुजा, सधिरुजा ।

पानाजीर्ण—आध्मान, अम्ल वमन, विदाह, विशेषकर पित्तज प्रकोपजनित लक्षण ।

पानविभ्रम—हृद्-गात्रतोद, वमथू-ज्वर, कठधूमायन, मूर्च्छा-कफस्रवण, शिरोरुजा-विदाह, अन्नद्वेष ।

पानहृतम्—ओष्ठविकृति, दाह-ताप, अतिशीत, जिह्वा-ओष्ठ-दन्त-श्याम-वर्ण, नीलवर्ण, नयन पीत या रुधिर कर्ण ।

इस प्रकार भयकर लक्षण भी मद्याति सेवन से हो जाते हैं। प्राचीनकालीन चिकित्सको ने इन सब लक्षणो का सूक्ष्माति सूक्ष्मरूप मे अध्ययन किया था ।

कुछ प्रचलित मद्य व उनकी अल्कोहल की मात्रा

		Alcohal
रम या जिन	(Rum or Gin) strong liquers	50 to 60%
व्हिस्की	Whisky	40%
पोर्ट	Port-Medira-sherrey	15 to 20%
ब्राडी	Brandy	40 to 50%
वरगैंडी	Bnrgandy-Hocks-shampagna	9 to 3%
क्लेरेट	Cleret	8 to 3%
सिडर	Cedder	6 to 3%
पोर्टरएल	Porter ale	3 to 9%
जिजर बिअर	Ginger Bear	1 to 3%

आसव अरिष्ट

द्राक्षासव	३ से ५ प्रतिशत
कुमार्यासव	”
दशमूलारिष्ट	३ से ६%

चंदनासव	२ से ९%
लोहासव	३%
लोध्रासव	३ से ७%
अशोकारिष्ट	४ से ६%
धातृअरिष्ट	२ से ४%
मृतसंजीवनीसुरा	४० से ६०%
वारुणी	६० से ९०%
द्राक्षासव परिश्रुत	४० से ५०%
मधुकासव	६०%
खदिरारिष्ट	७%
कुष्माण्डासव परिश्रुत	३० से ४०%

१. आहारश्च विहारश्च य स्याद्दोषगुणै सम ।
धातुभिर्विगुणश्चापि - स्रोतसां स प्रदूषक ।

२. अतिप्रवृत्ति' संगो वा सिराणां ग्रंन्योऽपि वा ।
विमार्गगमनं चापि स्रोतसा दुष्टिलक्षणम् ।

३. प्राणोदकान्नवाहानां दुष्टानां श्वासिकी क्रिया ।
कार्या तृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी ।
विविधाशितपीतीये रसादीनां यदौषधम् ।
रसादि स्रोतसां कुर्यात् तद्यथास्वमुपक्रमम् ।
मूत्रविट् स्वेदवाहानां चिकित्सा मौत्रकृच्छ्रिकी ।
तथाऽतिसारिकी कार्या तथा ज्वरचिकित्सिकी । च० वि० ५-२३,२४

पित्तसंशमन वर्गीय विवरण

पित्तपर्याय--पित्तमग्निस्तथा मायु' पर्यायेन च पठ्यते ।
तपनं ताप कृदुष्मा, कायेतदितिमन्यते ।।

परिचय--पित्त के विषय मे प्राय. प्रत्येक चिकित्सक जानते हैं कि यह एक शारीरिक द्रव द्रव्य है जो आग्नेय कर्म के द्वारा शरीर मे अग्नि कर्म-(पक्ति अपक्ति) से आहार का पाचन और शारीर उष्मा की मात्रामात्रत्व की रक्षा करके शरीर का धारण करता है ।

[1]पित्त शब्द व [2]मायु--यह दोनो शब्द शरीर मे ताप या उष्मा प्रदान

---

१. **पित्त**—तपसतापे धातु से व दुङ्० पालने से + क्त (३-२-१०८) अच् उपसर्गात (७-४-४७) से पित्त शब्द निष्पन्न होने से-शरीर मे उष्मा रूप से उसका पालन करता है उसे पित्त कहते है ।

२ **मायु—मिनोतिदेह उष्माणम् इति मायुः । डुमिन प्रक्षेपणे ।**
(स्वा. उ प्र) धातु से उण् प्रत्यय करने पर मायु बनता है । अर्थात्-शरीर मे उष्मा प्रक्षेपण करने वाला तत्व ।

करने के अर्थ में है। अत उष्मा अर्थात् तन शरीर धारण करने के अर्थ में ही प्राचीन आचार्यों ने इसे माना है। चरक ने इस के प्रधान दो कार्य माने हैं।

यथा— पित्तादेवोष्मण पक्तिर्नराणामुपजायते।
तच्च पित्तं प्रकुपित विकारान् कुरुते बहून ॥

और भी इसके कार्यों के विषय में सुश्रुत ने स्पष्ट कहा है कि [4]राग-पक्ति-ओज रतेज-मेधा व उष्मा को करनेवाला पित्त प्रधान रूप मे पंचधाविभक्त होकर अग्नि कर्म द्वारा शरीर का धारण करता है। वर्ण—नील-पीत-हरित हारिद्र। गंध – विस्रगंधी (आमिष गंधी) होता है। स्थान—स्वेद, रस—लसीका रुधिरः आमाशयः।

स्थान सुश्रुत के मत से—यकृत-प्लीहा, हृदय-दृष्टि-त्वक् व आमाशय।

कर्म—सामान्य रूप से पित्त शरीर मे निम्न कार्यों को करता है।

चरक	सुश्रुत
१– मात्रामात्रत्वमुष्मण	१– राग
२– पक्तिमपक्ति च,	२– पक्ति
३– दर्शनमदर्शन च,	३– ओजः
४– प्रकृतिविकृति वर्णों	४– तेजः
५– शौर्य भय क्रोध, हर्ष मोह प्रसाद मित्येवमादीनि चापराणि द्वंदानिकरोति च० सू० १५	५– मेधोष्म कृत पित्तं पंचधाप्रविभक्त अग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति। सु सू अ. २१

पित्त मे निम्नलिखित गुण है जिनके आधार पर वह अपने विभिन्न कार्यों को करता है।

१– तीक्ष्णम्
२– द्रवम्
३– पूति
४– उष्णम्
५– सरम्
६– द्रवम्
७– नीलपीत
८– कटुरस

१– पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूतिनीलं पीतं तथैव च
उष्णं कटु रस चैव-विदग्धं अम्ल मेव च।
सु०सू० २१-११

२– उष्णं तीक्ष्णं सरं द्रवम्। च० सू० १-१

इनके आधार पर यह विभिन्न प्रकार के निम्न कर्मों को शरीर मे उत्पन्न करती है।

तीक्ष्ण गुण—१ दर्शनमदर्शनम्, २. मात्रामात्रत्वमूष्मण
३ प्रकृतिविकृति वर्णो ॥

---

३. स्वदो रसो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि तत्रापि आमाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्। च० सू० २०-८

४ रागपक्ति ओजस्तेजो मेधोष्मकृतपित्त। पचधाप्रविभक्त अग्निकर्मणा नुग्रहकरोति ॥ च० सू० अ० १५-२०

द्रवगुण से-- १. रसद्रवत्वम् २. रक्तद्रवत्वम् ३. लसीकाद्रवत्वम् ४. स्वेद द्रवत्वम् ।

सरत्वम्--१. रससंवहन, २. रक्तसवहन, ३. लसीकासवहन, ५ स्वेदसवहन

इनके अतिरिक्त अन्य भी द्रव धातु उपधातु व स्रावो के स्वरूप को सर गुण से बनाता है, करता है, स्थिर रखने मे सहायक होता है।

उष्ण गुण--शरीर मे उष्मा की मात्रा के समुचित रूप मे रखने का काम पित्त का ही है। सक्षेप मे निम्न प्रकार से शरीर के भागो द्वारा उष्मा का नियंत्रण होता है।

यह क्रम है।

पूतिगंधत्व--यह पित्त रक्त कणो के टूटने से उसके रजक वस्तु को अलग करके बनता है अत. उसमे आमिष गंध रहता है।

नीलपीत—दो प्रकार के रजक तत्वो के सगठन से वना होने के कारण इसमे नील-पीत वर्ण दिखाई पडता है।

कटुरस—पित्त का स्वाद कटु (तिक्त) होता है।

विशेष व्याख्यात्मक विवरण आगे देखिए

कटुरस—पित्त के रस को सुश्रुत ने कटु व अम्ल वतलाया है। चरक व वाग्भट भी इसे मानते है। यह दोनो रस सर व द्रव गुण के परिरक्षणार्थ रक्त-रस-लसीका व शारीरिक अन्य द्रवो द्रेचणो मे रहकर कार्य करते हैं। यदि यह स्वाभाविक क्रम मे रहे तो पी० एच० ७ से ७ ३ प्रतिशत रहता है। यदि रक्त मे अम्लक्रिय अधिक हो जाय अथवा कटुकाधिक्य हो (क्षारत्व) तो नाना प्रकार के रोग शरीर मे स्थान वना लेते हैं। इसका विवरण

अम्लाधिक्य Acedosic
क्षाराधिक्य Alklosis
के विवरण मे आधुनिक ग्रथो मे दिया है

पित्तसंबंधी संज्ञायें—

पित्त वर्ग की सज्ञायें वहुत प्रकार की उपलव्ध होती है। उन्हें कम से कम २० भेदो मे और अधिक से अधिक वहुत सी सज्ञाओ मे वाट सकते हैं। पहले कम से कम का विवरण निम्न हैं।

१.	पित्त सशमन	७.	पित्त कर्पण	१३	पित्तावरोधन
२.	पित्तावसादन	८.	पित्त सशोषण	१४.	पित्त पाचन
३	पित्त प्रसादन	९.	पित्त सग्रहण	१५	पित्त शोधन
४.	पित्तघ्न	१०.	पित्त वर्धन	१६.	पित्त जनन
५.	पित्त प्रकोपण	११.	पित्त प्रदूषण	१७	पित्तकोष्ठघ्न
६	पित्तमुत्क्लेश	१२.	पित्तानुलोमन	१८.	पित्तव्याधिकर

इस प्रकार की क्रिया के अतिरिक्त पित्त सवंधी क्रियाओ के शमन से सवध रखने वाली कई सज्ञायें हैं जो कि निम्न प्रकार की हैं—

१.	पिपासा निग्रहण	५	पित्त विरेचक	९.	स्वेद्दाप हर
२.	ताप प्रशमन	६.	पित्त सारक	१०.	दाहहर
३	तापहर	७.	स्वेदोपग		
४	मूत्रल	८.	स्वेदकर		

इस प्रकार की कई क्रियायें मिलती हैं जिन्हे पित्त वर्ग के भीतर समाविष्ट कर सकते हैं। इनका विवरण आगे यथा सभव रखने का विचार करने के लिये शास्त्रो से दिये जा रहे हैं—

पित्तसंशमन विभागीय संज्ञायें—

१–पित्त शमन। सु० सू० ३८।६० अ० हृ० चि० १।५९
२–पित्त प्रशमन। च० सू० ५। सु० उ० ६३।२०, सू० उ० ४९।१९
३–पित्त सशमन। सु० सू० ३८।३८ (६०), सु० सू० ३८।८।
पित्तोपशमनाय। सु० उ० ४९।१४

४–पित्तोपशमन । च० सू० ३०, सु० सू० ४६।९९
पित्तातियोग प्रशमन । च० सू० २५

५. **पित्तावसादन**—सर्व पित्तातियोग प्रशमन
१–अग्निसादन । सु० उ० ४१।६६।
२–बलवर्णाग्नि सादन । सु० उ० ३९।३२३
३–अग्निसाद कृत अ० सू० ६।४९ अनल सादघ्न । सु सू ४६।१४५

६. **पित्तप्रसादन**—१–सु० सू० ४६।४२ २–अ० सू० ५।४६

पित्तघ्न—सु० सू० ४२।१२, अ० सू० ५।४६, पित्तहा अ० चि० ६।४४,
पित्तनाशन सु० सू० ४६।३९, पित्त हन्ता सु० सू० ४६।३३
पित्तहर च० सू० १२।१४, अ० सू० ५।१९
अतः इसके दो प्रकार के भेद बन जाते है। (१) शमन, (२) विनाशन

पित्त प्रशमन—संशमन क्रिया के अतर्गत दो क्रम दृष्टिगोचर होते हैं। यदि उन शब्दों को ध्यान मे रखे तो प्रसादन व अवसादन क्रिया का ज्ञान मिलता है। अत निम्न भेद स्वत बन जाते हैं।

१. **संशमन**—१. पित्त सशमन प्रसादन २. पित्त प्रशमन अवसादन
२. **विनाशन**—१. पित्त हर सामान्य २, पित्तहर विशेष

अतः निम्न विचार स्पष्ट दिखाई पडते हैं।
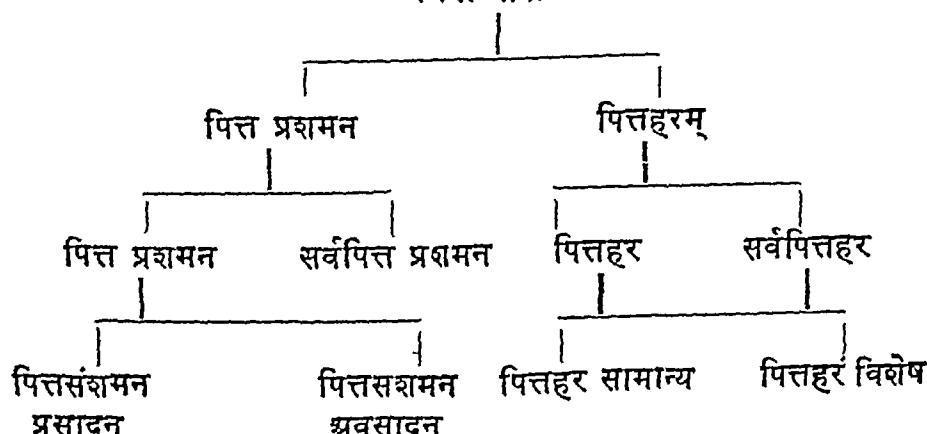
७. **पित्त संशमन**—पित्तनुत । च० सू० २७।१४०, अ० चि० ३।१०५
पित्तनाशनी अ० चि० ६।७१, पित्तापह । सु० सू० २३।४, अ० सू० ५।६०
पित्तहर । अ० चि० १।४० पित्तविनाशन । सु० सू० ३८।७७
पित्तहारि । पित्तनाशन । सु० सू० ३८।३९, अ० चि० १।१२६
पित्तजित । अ० सु० सू० १०।१५, अ० सू० ५।२६ ।

८. **पित्तप्रकोपण**—पित्त प्रकोपण अ० सू० ६।११०
पित्तकोपी सु० सू० ४६।४९ पित्त कोपण च० सू० २७।१५०

९. **पित्तोत्क्लेशन**—पित्त मुत्क्लेशन । च० सू० २७(१७०–१७३)

७. नुत् ८ नाशन ९ विनाशन
१०. पित्त हारि ११. घ्न १२ शमन

इसी सबंध की क्रियायें शताधिक है जो चरक सुश्रुत वाग्भट्ट मे प्राप्त होती है। जिनमे पुन विचार करे तो हर, हन्ता, घ्न, नुत, विनाशन, हारि, यह शब्द विशेष प्रभावशाली दृष्टि गोचर होते है। जिनके अनुसार पित्त को शात करने मे संशोधन व सशमन उभय विधि का प्रयोग करना पडता है।

द्वितीय वर्ग पित्त शमन की परिभाषा के अनुकूल सशोधन किये विना केवल सशमन विधि से पित्त शात करने का निर्देश करता है। अत. इसके दो विभेद दृष्टि पथ मे आते है। यथा– १ पित्तशमन २ पित्तहर या विनाशन।

पित्त शमन मे क्रिया के अन्तर्गत दो क्रम निर्दिष्ट होते है। यथा–१. पित्त प्रसादन २. पित्तावसादन।

इस प्रकार प्रशमन की क्रिया के अन्तर्गत निम्न क्रियाये आती है। यथा

१. पित प्रशमन –प्रसादन। २ पित सशमन–अवसादन
३. पित्तहर सामान्य क्रिया। ४. पित्तहर विशेप–क्रिया

इनकी भी क्रिया का विभाजित करे तो इस प्रकार कर सकते हैं कि सामान्य क्रिया–पित्त दोषघ्न–१ ताप प्रशमन २ तापहर ३ दाह हर ४. तृष्णा-निग्रह विभिन्न कर्म प्रदेह प्रसेक अभ्यग प्रलेप।

विशेष सशमन—पित्त विरेचक पित्तसशमन सारक पित्तसशमन विरेचक १. पित्तावसादक २. पित्त प्रसादन

पित्त संशमन वर्गीय विवेचन

पित्त प्रशमन परिभाषा—जो द्रव्य पित्तातिरिक्त अन्य दोषो व धातुओ का शोधन नही करते और समदोषो का उदीरण नही करते और केवल विषम पित्त का शमन कर देते है उन्हे पित्त प्रशमन कहते है। यथा—

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समी करोति विषमान् क्रुद्धान्वा पित्त-विक्रियाम्।
पित्त संशोधनं तद्धि पित्त-प्रशमन हि तत्। विश्व ॥
पित्त-प्रशमने वर्गे द्विधा स्यातच्च निश्चितम्।
प्रसादन प्रकारेण चाथवा चावसादितम्।
कर्म कर्तृत्वरूपेऽस्मिन् पित्तसशमन वदेत्।

पित्त सशोधनम्—जो द्रव्य पित्त को वढाकर या वढे पित्त को बल पूर्वक निकाल देते हैं उन्हे पित्त नि सारक या पित्त सशोधन कहते है। अथवा जो द्रव्य वढे हुए पित्त को सम्यक् प्रकार से आकृष्ट करके पित्त को विरेचन कराकर निकाल देते है उन्हे पित्त सशोधन कहते है। यथा–

यच्च संशोधनं कृत्वा, चाथवोदीर्ण दोषकान्।
नि सारयति पित्तं हि पित्तनिःसारकं हि तत्।
पुनश्च वर्द्धित पित्तं सम्यगाकृष्य रेचयेत्।
विरेचन हि पित्तस्य द्विविध नि सारणं हि तत्।
चरके सुश्रुते चोक्ताएतद् प्रमाणिकी क्रिया।
विरेचनं हि पित्तानां हरणे श्रेष्ठ मुच्यते। यथा–

यथोदकानामुदकेऽपनीते चरस्थिराणां भवति प्रणाश ।
पित्तं हृते त्वेव मुपद्रवाणा पित्तात्मकानां भवति प्रणाश· ।

सु० चि० ३३।८

विशेष--पाचक पित्त सर्व प्रकार के पित्तो को वल देकर उन पर अनुग्रह करके विभिन्न रूप से उनसे शेष पित्तो का कार्य करा लेता है अत: चरक व सुश्रुत मे भिन्न भिन्न शब्द पित्त प्रशमन व सर्व-पित्त-प्रशमन, पित्त हरम् व सर्व-पित्त हरम् । आदि शब्द मिलते है । इनका निराकरण करने के लिए ही पित्त नि सारक के दो भेद किये गये हैं । यथा–

१. सामान्य पित्त प्रशमन । २ विशेप पित्त या सर्व पित्त प्रशमन या सर्व पित्त हरम्–यहा पर शमन के सामान्य पित्त प्रशमन व विशेप पित्त प्रशमन से विशिष्ट प्रकार का पित्त प्रशमन यह रूप दिखाया गया है। जिसे सशमन की सज्ञा भी है ।

इन विषयो का विवरण आगे किया जा रहा है । पूर्व मे जो सज्ञायें वहा दी गई है उनमे इस प्रकार का विवरण स्पष्ट दिया गया है ।

पित्त संशमन विज्ञान का सामान्य विवरण

पित्त सशमन के विषय मे चरक, सुश्रुत व वाग्भट ने विभिन्न प्रकार के उसके अवजयन के क्रम का निर्देश किया है । उन सारी वातो पर विचार करे तो निम्न लिखित साराश प्राप्त होता हैं ।

अवजयनक्रम	चरक	सुश्रुत	वाग्भट
रस	मधुर	मधुर	मधुर
	तिक्त	तिक्त	तिक्त
	कषाय	कषाय	कषाय
उपचार	शींतोपयोग	शीतै उपाचरणम्	शीत सुगध
	हृद्य गधोपसेवन		हृद्य सेवन
	मृदु मधुर सुरभि वस्तु		पुष्पहार
	शिशिर वायु सेवन		मणिधारण
	शीत प्रोक्षणम्		शिशिरवायु सेवन
क्रियायें	स्नेहनम् अधोविरेचनम्	स्नेह	स्वादु शीतैः
	प्रदेह	विरेक	विरेचनम्
	परिपेक·	प्रदेह	शीत लेप
	अभ्यगम्	परिषेक	अभ्यग
		अभ्यग	
विशेप विधि	सर्पिष्पानम्	विरेचन तु सर्वो	विरेकश्च
	स्नेह विरेचन	पक्रमेभ्य· पित्ते	विशेपत
		प्रवानम् ।	

रसक्रम—पित्ते तिक्त ततः स्वादु कषायश्च रसो हित । अ० सं० सूत्र २१
इस प्रकार से जब हम विवेचन करने चलते है तब यह एक प्रकार का निष्कर्ष निकलता है कि ऊपर लिखे विवरण पित्त की शान्ति के लिए प्रयोगार्थ आते है। यही विचार महर्षि चरक के विचारो के दूसरे क्रमानुसार मिलते है। सूत्र स्थान मे सामान्य विवेचन करते हुए कहा है कि—

सस्नेह मुष्णं तीक्ष्ण च द्रवमम्लं सरं कटु ।
विपरीत गुणै द्रव्यै पित्त माशु प्रशाम्यति । च० सू० १।५९

पित्त कुछ स्निग्ध, उष्ण तीक्ष्ण द्रव सर व रस मे अम्ल व कटु रसवाला होता है। अत इसके विपरीत गुण वाले द्रव्यो के उपयोग से पित्त शीघ्र शान्त हो जाता है। इस विषय पर आगे चलकर विचार करेगे। ऊपर की बातो की पुष्टि के लिये प्रथम उन उद्धरणो को उपस्थित करते है जो कि आयुर्वेद के साहित्य मे उपलब्ध हैं। विवरण निम्न हैं—

पित्तशमन वर्ग—पूर्व में हम पित्त के विषय मे उसके गुण धर्म बताने-वाले श्लोक का उद्धरण दे चुके हैं। अब हम उस के विचार को विशद रूप मे उपस्थित करेगे।

१. आत्मरूप—

आत्मरूप	गुण			
रूप	चरक	सुश्रुत	वाग्भट	विपरीत गुण
अनतिस्नेह	सस्नेह	—	सस्नेहम्	रूक्षणम् विरुक्षणम्
औष्ण्यम्	उष्णम्	उष्णम्	उष्णम्	शीतक्रिया
तैक्ष्ण्यम्	तीक्ष्णम्	तीक्ष्णम्	तीक्ष्णम्	मदत्वम्
द्रवत्वम्	द्रवम्	द्रवम्	द्रवम्	सान्द्रम्
—	सरम्	सरम्	सरम्	स्थिरम्
—	लघु	लघु	लघु	गुरु
रसश्चकटुकाम्लौ	कटु	कटुअम्ल	मधुरतिक्त	कषाय
वर्ण	शुक्लारुणवर्ज्य	पीतम् नीलम्	—	—
विस्रगंध	विस्रम्	पूति	विस्रम्	सुगंध

ऊपर के विचारो के अनुसार विपरीत गुण करनेवाले द्रव्यो मे जो द्रव्य शीत, मद, सान्द्र स्थिर व गुरु गुण वाले होगे तथा आहार द्रव्यो मे मे जो मधुर तिक्त व कपाय रस वाले होगे तथा गध मे जो सुगधित द्रव्य होगे और शीत वीर्य वाले आहार व उपचार मिलकर के पित्त शामक कार्य करने वाले होगे।

१ पोषक सिद्धान्त—आत्मरूप—औष्ण्यम् तैक्ष्ण्यम्, द्रवमनति स्नेहो वर्णश्च शुक्लारुण वर्ज्यो गधश्चविस्र, रसश्च कटुकाम्लैसरत्वं च पित्तस्य आत्म रूपाणि। च०सू०।
२. पित्त तीक्ष्णं द्रवं पूतिनील पीतं तथैव च। उष्णं कटु रसं चैवविदग्धश्चोम्लतां व्रजेत। सु० सू० २१
३. पित्त सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम्। अ०हृ० अ० १।११

पित्तसंशमनीय उपक्रम

जब पित्त सशमनी क्रियाओ पर विचार करना पडता है तब पूर्व के विचारो के समाहार मे निम्नलिखित विचार ही विचारणीय होते है । यथा—

१. सुश्रुत के कहे हुये चार उपक्रम–१ पित्त सशमन क्रम, २. पित्त सशोधन क्रम ३. पित्त सशमन आहार, ४ पित्त सशमन आचार ।

इन विधियो के अनुक्रम मे निम्न विचार व चिकित्सा का क्रम पित्त सशमनार्थ विचारणीय होता है । १ पित्त सशोधक द्रव्य व उनकी क्रिया २. पित्तसशमन द्रव्य व उनकी क्रिया । ३. पित्त शामक आहार । ४. पित्त शामक उपचार आदि ।

अत सामान्य रूप से इन विषयो पर विचार करना उचित होगा ।

१ पित्त संशोधन क्रम व पित्त विरेचक द्रव्य–१. पित्त विरेचक द्रव्य विज्ञान । २. पित्त नि सारक द्रव्य विज्ञान । ३. पित्त वर्द्धक व नि.सारक । ४ पित्तविरेचक स्नेह विरेचन, पय विरेचन ।

२. पित्त संशमन विज्ञान—१. मधुर रस सेवन व पित्तशामक क्रम, मधुर तिक्त व कषाय रस का प्रयोग व योगानुसार कल्पना आदि का विचार । २. सर्पिष्पान सर्पिषा स्नेहनम् । ३. तापहर विधि' ज्वर प्रशमन । ४ दाह प्रशमन, ५. तृष्णा प्रशमन, ६ स्वेदकर ।

३. पित्त संशमन आचार व उपचार—१. शीतोपचार, २. शीत परिषेक, शीत प्रदेह लेप, अभ्यग । ३ शीतावगाहन, शिशिर वायु सेवन, शीत मणि धारण ४. शीत द्रव्यावमज्जन हृद्य गधोपसेवन ।

४. पित्तहर आहार—मधुर तिक्त, कषाय रस युक्त आहार का सेवन, लघु सुपाच्य आहार का सेवन, मृदु आहार का सेवन ।

५. पित्त सशमन अन्य उपचार व उपक्रम जो भी उचित जान पडते हो उनका उपयोग किया जाता है ।

इस प्रकार के भीतर पित्त कोष्ठ का शोधन, सारण, पित्त की प्राकृतिकता का रक्षण पित्त वर्द्धन व निष्कासन, पित्तग्राही स्थिति का दूरीकरण, पित्त-शोषण का वर्जन प्राकृत पित्त का अभिरक्षण व स्थिति स्थापन आदि सब उपक्रम शामिल है । पित्त शान्तिकर जितने भी उपाय है उन सबका करना इसमे निहित है । इन पर विचार आगे किया जा रहा है ।

सुश्रुत के मत से पित्त संशमन विधि—

१) तस्यावजयनं, तं मधुर–तिक्त–कषाय–शीतैरुपक्रमेत, (१) स्नेह (२) विरेक (३) प्रदेह, (४) परिषेक (५) अभ्यंगादिभिः पित्तहरैः मात्राकालं च प्रमाणी कृत्य ।

विशेष—विरेचनं तु सर्वोपक्रमेभ्य पित्ते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः तद्धयादित एवामाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं दोषंपित्त मूलमपकर्षति। तत्राऽवजिते पित्तेऽपि शरीरान्तर्गता पित्त विकारा प्रशान्तिमापद्यन्ते।

सु० सू० अ० २०।१६

वाग्भट—पित्तस्योपक्रम— पित्तस्य सर्पिष पानं, स्वादु शीतैर्विरेचनम्।
स्वादुतिक्त कषायाणि, भोजनान्यौषधानि च। ४
सुगध शीत हृद्याना गंधानामुप सेवनम्।
कुटे गुणानां हाराणा मणीना मुरसा धृति।५
कर्पूर चन्दनोशीरैरनुलेपः क्षणे क्षणे।
प्रदोष चन्द्रमा सौधम् हारिगीत हिमोऽनिल।६
अयन्त्रण सुख मित्र पुत्र संदिग्धमुग्धवाक्।
छन्दानुर्वातिनोदारा प्रिया शीत विभूषिता।७
शीताम्बु धारा गर्भाणि, गृहाण्युद्यान दीर्घिकाः।
सुतीर्थ विपुलस्वच्छ सलिलाशय संकेतम्। ८
साभोज जलतीरान्ते कायमाने द्रुमा कुलै।
सौम्या भावा पय सर्पि विरेकश्च विशेषत।९

अ० हृ० अ० १३

चरक—तस्यावजयनम्– (पित्तस्य)

सर्पिष्पानं, सर्पिषा च स्नेहनमअश्चदोषहरणं, मधुरतिक्त कषाय शीतानां चौषधाभ्यवहार्याणामुपयोग मृदुमधुर सुरभि शीत हृद्याना गंधाना चोपसेवा, मुक्तामणि हारावलीनां च पद्मशिशिर वारि संस्थिताना धारणमुरसा, क्षणे क्षणे चाग्रचचन्दन प्रियंगुकालीयमृणालशीतवातवारिभिरुत्पल कुमुद कोकनद सौगधिक पद्मानुगतैश्च वारिभिरभिप्रोक्षणम्, श्रुति सुखमृदुमधुर मनोऽनुगाना च गीतवादित्राणा श्रवणम् चाभ्युदयानां सुहृद्भि सयोग, संयोगचेष्टाभि स्त्रिभि शीतोपहिता शुक्लग्धारिणीभि. निशाकराशु शीतल प्रवात् हर्म्यवास, शैलान्तर पुलिन शिशिर–सदनवसनव्यजनपवनसेवनम् रम्याणांचोपवनानां सुखसुरभिशिशिरमारुतोपहितानामुपसेवनम् सेवन च नलिनोत्पल पद्मकुमुद सौगन्धिक पुण्डरीक शतपत्र हस्तानां सौम्याना च सर्व भावानाम् इति। च० वि० अ० ७–१७

पित्त संशमन वर्ग

पित्त सशमन वर्ग में—इस वर्ग मे कई प्रकार की औषधियो का सग्रह है। इनका उपयोग भिन्न भिन्न समय मे भिन्न प्रकार से होता है। विशेष कर सुश्रुत ने इस विषय पर विशेष औषधियो का उल्लेख किया है। सामान्य रूप से पित्त हर औषधियो का वर्ग निम्न है।

पित्त संशमन वर्ग—चदन, रक्त चदन, ह्रीवेर, उशीर, मजिष्ठा, विदारी, शतावरी, क्षीर विदारी, गुन्द्रा, शैवाल, कल्हार, कुमुद, उत्पल कदली, दूर्वा इत्यादि

औषधियां पित्त का प्रशमन करती है। इनके अतिरिक्त और भी गण है जो कि पित्त का प्रशमन करने मे सहायक होते हैं। यथा--

१ **काकोल्यादि गण--** काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, छिन्न रूहा, कर्कट शृगी, तुगाक्षीरी, पद्मप्रपौंडरीक, ऋद्धि, मृद्वीका, जीवती, मधुक आदि।

२ **सारिवादि गण**--सारिवा चदन, पद्मक, मधूक पुष्प, मधुयष्ठि, रक्तचदन, काश्मरी फल उशीर आदि।

३ **अजनादि गण**--अजन रसाजन, नागपुष्प, प्रियगु, नीलोत्पल जलदपद्म केशर मधुक।

४ **उत्पलादि**--श्वेतोत्पल, रक्तोतपल कुमुद सौगधिक, कुवल पुडरीक मधुक।

५ **न्यग्रोधादि**--वट मधुक, कोशाम्र, मधुक वदरी, सावर लोध्र उदुंवर कदव, चारक रोहिणी, तिदुक, भल्लातक, अश्वत्थ कुकुभ, जम्बू, वजुल शल्लकी पलाश, प्लक्ष आम्र, प्रियाल कमीतन रोध्र नन्दी वृक्ष।

६ **तृण पचमूल**--कुश कास, नल, दर्भ, काडेक्षु। इनके अतिरिक्त कई द्रव्य ऐसे हैं जिनकी गणना पित्त सशमन मे की गई है। यथा--

७ विदारि गंधादि गण। ८. पटोलादि गण। ९. गुडूच्यादि गण।

१० लघु पचमूल।

११ **दशमूल**--इन गणो को भी सुश्रुत ने पित्त शमन के वर्गों मे पाठ किया है। इनमे अतिरिक्त ऐसे कितने ही गुण हैं जिनका समावेश पित्त शमन मे किया गया है। जो पित्त की विभिन्न दशाओ का व कर्मों को ध्यान मे रखकर किया गया है।

पित्तसंशमन वर्ग--

सामान्य रूप से पित्तावजयन वर्ग मे पित्तशामक सब प्रकार के द्रव्य व उपचारो का विवरण दिया गया है। औषधियो के विशेष वर्ग का विवरण निम्न हैं --

१--पित्त संशमन वर्ग--

१--चन्दन (श्वेत)
२--कुचदन (रक्त चदन)
३--ह्रीवेर
४--उशीर
५--शतावरी
६--उत्पल
७--कदली
८--मजिष्ठा
९--वयस्या--क्षीरविदारी
१०--गुन्द्रा
११--शेवाल
१२--कल्हार
१३--कुमुद
१४--दूर्वा (सु०सू० ४२)

२. तिक्त—मधुर व कषाय रसवाली औषधिया पित्त शामक होती हैं। अतः

१—मधुर स्कध के द्रव्य
२—तिक्त स्कध के द्रव्य
३—कषाय स्कध के द्रव्य

इन रसो से युक्त होने के कारण पित्त शामक हैं। सामान्य रूप मे पित्त का रस-कटु या अम्ल कटु तीनो सहिताओ मे कहा है अत इनके विपरीत ये तीन रस मधुर-तिक्त व कषाय होते हैं। अतः पित्तशामक है।

इन रसो से युक्त निम्न गण हैं अत सुश्रुत ने इन्हे पित्तशमन कहा है।

१—काकोल्यादिगण
२—सारिवादि गण
३—अजनादि गण
४—उत्पलादि गण
५—न्यग्रोधादि गण
६—पचतृण मूल
७-गुडूच्यादि गण
८—पटोलादि गण
९—विदारिगधादिगण
१०—लाक्षादि गण
११—लघुपचमूल
१२—दशमूल
१३—कटकी पचमूल
१४—वल्ली पचमूल
१५—पद्मकादिगण
१६—प्रियग्वादि गण
१७—आवष्ठादि गण

वाग्भट्ट में—१—न्यग्रोधादि गण
२—पद्मकादि गण
३—सारिवादि गण

चरक—ज्वरघ्न गण

४. पित्त मे सर गुण है अत पित्तनिसारक औषधिया पित्तहर होती है। यथा—

१—**विरेचनं पित्तहराणाम्** । च० सू० ३५

२—**पित्तहर—विरेचन—**

यथोदकानामुदकेऽपनीते चर स्थिराणा भवति प्रणाश ।
पित्तंहृते सर्वमुपद्रवाणां पित्तात्मकाना भवंति प्रणाश ॥

सु० चि० अ० ३३।२८

अतः १—पित्तहर सारक २—पित्तहर विरेचक

पित्तहर—तापहर व ज्वरहर होते हैं इनका वर्गीकरण और भी इस प्रकार कर सकते है।

१. **पित्त शामक सारक**—(समान गुणवाले) कटुकी, आमला, इन्द्रायण, इमली, घृतकुमारी, अजीर, सर्पगधा—त्रिफला—पुनर्नवा—अमलतास की मज्जा, द्राक्षा—मुलहठी—वृक्षाम्ल—आमचूर इत्यादि।

२. **पित्तशामक ग्राही**—(विपरीत गुणवाले) दाडिम—कटुरजत्वक—विल्वपेशी—दार्वी—रसाजन वीजपूरक—जम्बू—सेव—कमल—कमल वीज—पटोल पत्र—पित्तपापडा।

३. **पित्त नि सारक**—इस वर्ग मे पित्तस्राव वर्धक—यकृदुत्तेजक (Chole-gogues) द्रव्यो की गणना आती है। यथा——द्रव्य—ताम्र भस्म—पारद घटित औषधिया—नासार—मल्ल—अम्लिका—एलुवा—स्वार्जिका क्षार—घृतकुमारी—मिर्च—सनाय निशोथ रेवदचीनी इत्यादि।

४ **पित्तस्रावोत्तेजक**——द्रव्य—ताम्र भस्म, घृतकुमारी, नासार—एलुवा कलमी शोरा का अम्ल—(नाइट्रिक एसिड) रेवदचीनी।

५ **परपरागत उत्तेजक**——(Indirect Chole gogues)——विवरण—इनमे पित्त की वृद्धि तो नही होती अपितु ये द्रव्य ग्रहणी के निम्न भाग व शेषान्त्र (Eleum) के मध्य लघ्वन्त्र (Jejunum) उत्तेजना देते है और पित्त कोष से पित्त का स्राव बढाते है और अन्त्र मे वे द्रव्य के साथ मिलाते हैं।

द्रव्य — १—पारदघटित औषधिया २—विरेचक औषधिया ३—वाम औषधिया

इनके मिलने से मल मे पित्त मिलता है और अन्न की प्रसारण क्रिया बढती है और रेचन होता है।

६ कई प्रकार के द्रव्य पित्तावरोधकर कार्य करते है। यथा——मद्य, गजा,—भगा—अहिफेन—धुस्तूर – स्वापजनकद्रव्य—(Hypnotics) बेलाडोना अवस्थायें—क्रोध—व्यायाम—परिश्रम।

७. **पित्तस्राववर्धक—अति पित्त प्रकोपण द्रव्य**——

१—तीक्ष्ण—उष्ण—लघु—विदाही गुण वाले द्रव्य।

२—तिलतैल—पिण्याक—उडद—कुलत्थ—सर्षप—अतसी—हिंगु, मेथिका, सिम—चाय—काफी—तम्बाकू—गाजा—चरस—अधिक नमक—तरबूज, ताडरस—मद्य।

३—विहार—सूर्यताप—क्षुधा तृषा वेगरोध – उष्णऋतु—शरदऋतु मध्याह्न—क्रोध—शोक—भय—परिश्रम—उपवास – दुग्धभोजन— अधिक मैथुन—अधिक घोडे की सवारी।

४—रस—कटु—अम्ल—लवण युक्त आहार।

५—आहार—मत्स्य—अम्लदधि—अम्लतक्र काजिकाम्ल—ताडका रस—मद्य—अम्ल द्रव्य।

यह द्रव्य पित्त का प्रकोप करा देते हैं।

स्वेदल—स्वेदन (मुअर्रिक) (Diaforetics)

पर्याय——स्वेदन, स्वेदल, धर्मकर, धर्मकारक, स्वेदजनन, स्वेदकर, स्यूडोरिफिक्स (Sudorifics)

परिभाषा——जो द्रव्य काय गौरव, स्तभ, शीत, उष्णता को दूर करे और पसीना ला देवे उसे स्वेदल या स्वेदन कहते हैं। स्वेदन द्रव्य उष्ण—तीक्ष्ण—सर स्निग्ध—रूक्ष—सूक्ष्म—द्रवस्थिर व गुरु द्रव्य हमेशा स्वेदल होते है। यथा——

स्तंभगौरवशीतघ्नं–स्वेदनं स्वेदकारकम्
उष्णं तीक्ष्ण सरं स्निग्धं–रूक्ष–सूक्ष्मं–द्रवं स्थिरम् ।
द्रव्यंगुरु च यत्प्राय स्तद्धि स्वेदन मुच्यते । च० सू० अ० २२

क्रिया—स्वेद क्रिया शरीर की श्लेष्म सबधी क्रियाधिक्य, रस–रक्त–मासगत द्रवाधिक्य की कमी करने, शारीरिक दोषो (विष–आमादि) को निकालने शरीर की शीत व उष्ण क्रिया को सम मात्रा मे रखने व शरीर के धातुओ को स्वस्थ रखने मे उपयोगी है। यह पित्त की क्रिया द्वारा भ्राजकपित्त के केन्द्रो द्वारा चर्मान्तर्गत क्रिया है। जब शरीर मे दोष वृद्धि होती है तब इसकी क्रिया स्वत होती है या चिकित्सक द्वारा कराई जाती है। स्पर्श विज्ञान मे त्वचागत क्रिया का करना आवश्यक है–यथा–शरीरव्याधिशामक त्रिविधकर्म–अंत परिमार्जन–बहि परिमार्जन–शस्त्रप्राणिधान। इनमे बहिः परिमार्जन कर्म मे स्वेद कराने की आवश्यकता होती है। यथा—यत्पुन बहि· स्पर्शमाश्रित्य–अभ्यग–स्वेद – प्रदेह–परिषेक उन्मर्द्दनाद्येशमयानप्रमार्ष्टितद्वहिः परिमार्जनम् ॥

स्वेद परिभाषा–मलः स्वेदस्तु मेदस (च० चि० १५।१८)
स्वेदवहानां स्रोतसां मेदो मूल लोमकूपाश्च।

स्वेदक्रिया—त्वचागत घर्मग्रथियो की क्रिया द्वारा होता है। इन स्वेद ग्रथियो का नियत्रण स्रावक नाडियो के आधीन (Secretory nerves) होता है जिसका केन्द्र सुषुम्ना मे स्थित है। वास्तव मे स्वेद का नियत्रण सावेदनिक (Sympathatic) व केन्द्रियनाडी सस्थान (Central nerves) दोनो के द्वारा होता है। स्वेद क्रिया अनवरत होती रहती है। इस क्रिया द्वारा–रस व रक्त से नेत्रजन विशिष्ट द्रव्य द्रव व लवण समय पर निकलते रहते हैं। साधारण स्थिति मे ५००–६०००–सी. सी· (१७–२५ औस) या अधिक भी द्रव शरीर से २४ घटे मे निकलता है।

दाह प्रशमन
(Refrigerants)

पर्याय—दाह–प्रदाह–दवथु–ओष–प्लोष इत्यादि प्राय सज्ञाये अल्प या अधिक परिमाण मे शरीर के एक अग या सर्वांग मे दाह–जलन–प्रदाह करते है उन्हे दाह के नाम से पुकारते हैं। यथा–करदाह–करपाद सताप, पाद दाह, अशताप, पार्श्वताप।

परिभाषा—जो द्रव्य इन विभिन्न प्रकार के दाहो को शान्त कर देते हैं उन्हे दाह प्रशमन कहते हैं।

भेद—दाह प्रशमन औषधियां दो प्रकार की होती हैं–१· स्थानीय २. सर्वांगिक।

३ **पित्त नि सारक**—इस वर्ग मे पित्तस्राव वर्धक—यकृदुत्तेजक (Chole-gogues) द्रव्यो की गणना आती है। यथा—द्रव्य—ताम्र भस्म—पारद घटित औषधिया—नासार—मल्ल—अम्लिका—एलुवा—स्वर्जिका क्षार—घृतकुमारी—मिर्च—सनाय निशोथ रेवदचीनी इत्यादि।

४ **पित्तस्रावोत्तेजक**—द्रव्य—ताम्र भस्म, घृतकुमारी, नासार—एलुवा कलमी शोरा का अम्ल—(नाइट्रिक एसिड) रेवदचीनी।

५ **परपरागत उत्तेजक**—(Indirect Chole gogues)—विवरण—इनमे पित्त की वृद्धि तो नही होती अपितु ये द्रव्य ग्रहणी के निम्न भाग व शेषान्त्र (Eleum) के मध्य लघ्वन्त्र (Jejunum) उत्तेजना देते है और पित्त कोष से पित्त का स्राव वढाते है और अन्त्र मे वे द्रव्य के साथ मिलाते हैं।

द्रव्य—१—पारदघटित औषधिया २—विरेचक औषधिया ३—वाम औषधिया

इनके मिलने से मल मे पित्त मिलता है और अन्न की प्रसारण क्रिया वढती है और रेचन होता है।

६ कई प्रकार के द्रव्य पित्तावरोधकर कार्य करते हैं। यथा—मद्य, गजा,—भगा—अहिफेन—धुस्तूर – स्वापजनकद्रव्य—(Hypnotics) वेलाडोना, अवस्थाये—क्रोध—व्यायाम—परिश्रम।

७. **पित्तस्राववर्धक—अति पित्त प्रकोपण द्रव्य**—

१—तीक्ष्ण—उष्ण—लघु—विदाही गुण वाले द्रव्य।

२—तिलतैल—पिण्याक—उडद—कुलत्थ—सर्षप—अतसी—हिंगु, मेथिका, सिम—चाय—काफी—तम्बाकू—गाजा—चरस—अविक नमक—तरबूज, ताडरस—मद्य।

३—विहार—सूर्यताप—क्षुधा तृषा वेगरोध – उष्णऋतु—शरदऋतु मध्याह्न—क्रोध—शोक—भय—परिश्रम—उपवास – दुग्धभोजन— अधिक मैथुन—अधिक घोडे की सवारी।

४—रस—कटु—अम्ल—लवण युक्त आहार।

५—आहार—मत्स्य—अम्लदधि—अम्लतक्र काजिकाम्ल—ताडका रस—मद्य—अम्ल द्रव्य।

यह द्रव्य पित्त का प्रकोप करा देते हैं।

स्वेदल—स्वेदन (मुर्आरिक) (Diaforetics)

पर्याय—स्वेदन, स्वेदल, घर्मकर, धर्मकारक, स्वेदजनन, स्वेदकर, स्युडोरिफिक्स (Sudorifics)

परिभाषा—जो द्रव्य काय गौरव, स्तभ, शीत, उष्णता को दूर करे और पसीना ला देवे उसे स्वेदल या स्वेदन कहते हैं। स्वेदन द्रव्य उष्ण—तीक्ष्ण—सर स्निग्ध—रुक्ष—सूक्ष्म—द्रवस्थिर व गुरु द्रव्य हमेशा स्वेदल होते हैं। यथा—

स्तंभगौरवशीतघ्नं–स्वेदनं स्वेदकारकम्
उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं–रूक्ष–सूक्ष्म–द्रवं स्थिरम् ।
द्रव्यंगुरु च यत्प्राय स्तद्धि स्वेदन मुच्यते । च० सू० अ० २२

क्रिया––स्वेद क्रिया शरीर की श्लेष्म सबधी क्रियाधिक्य, रस–रक्त–मासगत द्रवाधिक्य की कमी करने, शारीरिक दोषो (विष–आमादि) को निकालने शरीर की शीत व उष्ण क्रिया को सम मात्रा मे रखने व शरीर के धातुओ को स्वस्थ रखने मे उपयोगी है। यह पित्त की क्रिया द्वारा भ्राजकपित्त के केन्द्रो द्वारा चर्मान्तर्गत क्रिया है। जब शरीर मे दोष वृद्धि होती है तब इसकी क्रिया स्वत होती है या चिकित्सक द्वारा कराई जाती है। स्पर्श विज्ञान मे त्वचागत क्रिया का करना आवश्यक है–यथा–शरीरव्याधिशामक त्रिविधकर्म–अत परिमार्जन–बहि परिमार्जन–शस्त्रप्राणिधान। इनमे बहिः परिमार्जन कर्म मे स्वेद कराने की आवश्यकता होती है। यथा––यत्पुन बहि. स्पर्शमाश्रित्य–अभ्यग–स्वेद – प्रदेह–परिषेक उन्मर्द्दनाधेशमयानप्रमार्ष्टितद्वहि. परिमार्जनम् ॥

स्वेद परिभाषा–मल. स्वेदस्तु मेदस (च० चि० १५।१८)

स्वेदवहानां स्रोतसां मेदो मूलं लोमकूपाश्च।

स्वेदक्रिया––त्वचागत घर्मग्रंथियो की क्रिया द्वारा होता है। इन स्वेद ग्रथियो का नियत्रण स्रावक नाडियो के आधीन (Secretory nerves) होता है जिसका केन्द्र सुषुम्ना मे स्थित है। वास्तव मे स्वेद का नियत्रण सावेदनिक (Sympathatic) व केन्द्रियनाडी सस्थान (Central nerves) दोनो के द्वारा होता है। स्वेद क्रिया अनवरत होती रहती है। इस क्रिया द्वारा–रस व रक्त से नेत्रजन विशिष्ट द्रव्य द्रव व लवण समय पर निकलते रहते है। साधारण स्थिति मे ५००–६०००–सी सी (१७–२५ औंस) या अधिक भी द्रव शरीर से २४ घटे मे निकलता है।

दाह प्रशमन

(Refrigerants)

पर्याय––दाह–प्रदाह–दवथु–ओष–प्लोष इत्यादि प्राय सज्ञायें अल्प या अधिक परिमाण मे शरीर के एक अग या सर्वांग मे दाह–जलन–प्रदाह करते हैं उन्हे दाह के नाम से पुकारते हैं। यथा–करदाह–करपाद सताप, पाद दाह, असताप, पार्श्वताप।

परिभाषा—जो द्रव्य इन विभिन्न प्रकार के दाहो को शान्त कर देते हैं उन्हे दाह प्रशमन कहते हैं।

भेद––दाह प्रशमन औषधिया दो प्रकार की होती हैं–१. स्थानीय २. सर्वांगिक।

स्थानीय—वह औषधि जो शरीर के एक स्थान या सर्वांग में होने वाले प्रदाह को शान्त करती है उन्हे स्थानीय प्रदाह शामक कहते है। इस भेद की औषधिया कई प्रकार से प्रयुक्त होती हैं—

१. परिषेक　　४. स्नान　　७. शीतोपचार के विभिन्न भेद
२. प्रदेह　　५ अगराग
३ अभ्यग　　६ पुष्पमालाधारण

सर्वांगिक—वह द्रव्य जो मुख द्वारा भीतर प्रयोग करने पर दाह शामक होते हैं। ऐसी औषधिया पित्त की बढी हुई मात्रा को कम करके—पित्त को शुद्ध करके अपना कार्य करती है।

इसके प्रयोग—स्वरस—कल्क—क्वाथ—शीत— फांट — रसक्रिया — अवलेह—आसव—अरिष्ट इत्यादि रूप मे प्रयोग होते हैं।

दाहोत्पादन—शरीर मे पित्त की मात्रा रक्त मे होने पर जहा जहा यह अधिक सगृहीत होते है उन स्थानो पर श्रोप—चोप—प्लोप—दाह—दवथु इत्यादि उत्पन्न करते है। जब पित्त की मात्रा रक्त मे अधिक हो जाती है तब सर्वांग मे दाह होता है। ज्वर की दशा मे जब ताप का मान उच्च हो जाता है और उष्मा के कारण त्वचा या मास के सूत्रो व पुंद्गलो की स्थिति सकटापन्न होने को आती है। उदरप्रदाह होने लगता है। अतितीव्र ताप मे धातुपाक होने की स्थिति मे सर्वांग दाह होने से अरति—शिरो लोठन—अश्रुस्राव भ्रूकम्प हो जाते हैं। अतर्दाह मे रोगी को महान कष्ट होता है।

> अंतर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलाप श्वसनं भ्रम।
> संध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रह।
> अतर्वेगस्य लिंगानि ज्वरस्यैतानिलक्षयेत्।
>
> मा० नि० अ० २।५९

इसके अतिरिक्त अन्य और भी कई हेतु है जिनसे स्थानिक या सार्वांगिक दाह उत्पन्न होता है।

> त्वचंप्राप्त स पानोष्मा पित्तरक्ताभि मूर्च्छित।
> दाहंप्रकुरुतेघोरं पित्तवत्तस्य भेषजम्।

इसके कई प्रकार है यथा—सुश्रुत—(पानात्यय)—त्वचागत—दाह—रक्तगत)

१ अधिक मद्यपान करने पर पित्त प्रकुपित होकर जब कोष्ठ व त्वचा मे पहुचता है तो दाह उत्पन्न करता है। मद्य तीक्ष्ण व उष्ण होता है व्यवायी विकाशी गुण होने के कारण शीघ्र अपने प्रभाव से जहा जहा जाता है प्रहार करता है। आमाशय मे कठप्रदेश होकर जाता है अत कठाशय प्रदेश मे जहा जहा जाता है जलन पैदा करता है। रक्त मे मिश्रित होने पर सर्वांग मे ज्वलन व ताप की स्थिति प्राप्त करता है। यथा—

३. कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तंदहति ध्रुवम्
स उष्यते तृष्यते च ताम्राभ स्ताम्रलोचन ।
लोह गंधाग वदनो वह्निनेवावदह्यते ।
सु० उ० त० अ० ४७

जब रक्त मे मद्य (Alcohol)की मात्रा ४ से ७ प्रतिशत हो जाती है तो भयकर दाह सर्वांग मे होता है। उसे गर्मी मालूम होती है, तृषा लगती है—नेत्र ताम्रवर्ण हो जाते हैं और शरीर भी ताम्र वर्ण हो जाता है।

तृष्णा निरोधज दाह—तृष्णा के रोकने पर शरीर का द्रवधातु कम हो जाता है और आग्नेय तत्व अधिक हो जाते है अत तृष्णा बाह्य जल की माग के ज्ञापनार्थ होती है। न मिलने पर मुख गल तान्त्वोष्ठ मे प्रथम प्रदाह होता है फिर सर्वांग मे होता है। वह जीभ निकाल देता है और मुख फाडकर हाफने लगता है।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणेतेज समुद्धतम् ।
स बाह्याभ्यन्तर देहं प्रदहेन्मन्द चेतस ।
संशुष्कगल ताल्वोष्ठौ जिह्वा निष्कृष्यवेपते । सु०उ०अ० ४७

४. **रक्त विदाहज**—शरीर के किसी स्थान मे—कोष्ठ मे शिराधमनी अवकाश मे, जहा भी रक्त विदग्ध होता है प्रदाह करता है—चोट के लगने—शस्त्र प्रहार होने से यह दाह उपस्थित होता है।

असृज पूर्ण कोष्ठस्य दाहोऽन्यत् स्यात् सुदु स्सह । सु०

५. **धातुक्षयोत्थ दाह**—शरीर के धातु की साम्यावस्था मे शरीर—स्वस्थ रहता है जिस धातु मे जहा अधिक क्षय होता है वहा दाह होता है। स्थानीय मे एक स्थान पर यथा—कर—पाद—दाह—अशपार्श्वाभिदाह। सर्वांग मे होने पर—सर्वांग दाह होता है।

धातुक्षयोत्थो योदाहस्तेन मूर्च्छातृर्डदित ।
क्षामस्वर क्रियाहीन स्वरमेदोभृशपीडित ।

इसमे रोगी की आकृति दीन और स्वरक्षाम—क्रियाहीन हो जाता है। व्रत—उपवास—यक्ष्मा—सूरपीडित इत्यादि।

६. १. क्षतजरोगी के रसक्षय होने पर प्रदाह होता है।

३. **अन्न न खाने से**—अधिक शोक करने पर अग्निमांद्य होकर धातुक्षीण होने पर और प्रदाह होता है। इसमे रोगी के शरीर मे भयकर दाह होता है। तृष्णा—मूर्च्छा—प्रलाप आदि उपद्रव होते हैं।

क्षतजो नत श्चापि शोचतो वाप्यनेक धा ।
तेनान्तर्दह्यते ऽर्थ तृष्णामूर्च्छा प्रलापवान् । स.

७. मर्माभिघात से भी दाह होता है।

दाहशामक या दाहहर औषधियां

पूर्व मे विभिन्न प्रकार से शरीर मे दाह की उत्पत्ति होती है यह विवरण दिया जा चुका है। उनके प्रशमन की विधिया निम्न हैं।

ज्वर के दाहकाल मे निम्न विचार है—

१. अभ्यग । रोगी के दाह की स्यिति के अनुसार

२ प्रदेह । इनका प्रयोग करना चाहिए ।

३. परिपेक । वह—शीत व उष्ण दोनो प्रकार की व्याधि

४. मज्जनम् । वलावल के आधार पर होना चाहिए ।

५ शीतलान्नपान ।

अभ्यंग—१ शतधौत घृत, सहस्त्रधौत घृत ।

२ शीतल तैल यथा—चदनादि तैल । अष्टकट्वर तैल ।

प्रदेह—शीतल द्रव्यो से कल्पित प्रलेप—प्रदेह को प्रयोग करना चाहिए—यथा—चदन कर्पूर—उशीर—शीतल पक—वर्फ आदि का लेप उचित है ।

परिपेक—वर्फ-शीतल जल—शीतल द्रव्यो को मिलाकर वनाया हुवा द्रव छिडकने, सेक करने पर दाह की शाती होती है ।

मज्जन—अवगाहन—दोपानुसार मधु—आरनाल, क्षीर—दधि—घृत—सलिल का सेक व अवगाहन करने पर सद्य दाह का नाश होता है ।

१. शीतल जल वाले तालाव—नदी—पुष्करिणी मे स्नान करने से, अवगाहन करने से दाह की कमी होती है ।

अन्य उपचार—

स्पर्श—१—मणिमुक्ता, प्रवाल, हेम, शख को शीतल करके उनका धारण लाभप्रद होता है ।

२ **शीतल सुगंधित**—गुलाव व केवडा इत्यादि गधयुक्त द्रव्यो को मिला कर शीतल जल के स्पर्शन से आर्द्र वस्त्रावगुठन आदि करने से दाह का प्रशमन होता है ।

३ **शीतल वायु**—शीतल चादनी—शीतल गृह—धारागृह निवास—फौवारो आदि से युक्त गृह मे शयन—भ्रमण प्रमदादि जो चदनादि लगाई हो उनके स्पर्श से दाह नष्ट होता है ।

पद्मउत्पल—कमल दलो पर या कदली पत्रो पर जो शीतल हो शयन करने से प्रदाह नष्ट होता है। इस प्रकार के प्रयोग वाह्योपचार से शात होते हैं ।

अंत प्रयोग—१ पित्तहर व दाहहर प्रयोग जो ज्वर शामक वतलाये हैं, योग करने पर दाह प्रशमन होते हैं । यथा—

चदन-उशीर—उत्पल, शख पुष्पी यवासक के द्वारा वे कपाय दाह प्रशमक होते हैं ।

२–शीतवात व –शीतल द्रव्यो के साथ बने शर्वत शीतप्रद तापहर दाहहर होते हैं ।

३–मुक्ता व प्रवाल पिष्टी का २ रत्ती मात्रा मे प्रयोग दाहहर होता है ।

४–पित्तशामक घृतो का प्रयोग दाह शामक होता है । यथा—क्षीरपट्पल घृत, पट्पलघृत–गोघृत–शतावरीघृत–पिप्पल्यादि घृत के सेवन से दाह प्रशम होता है ।

५–शीतल आहार–अन्न–पान–शीतोपचार मे भ्रमण आदि दाह हर होते हैं ।

१. अभ्यंगाश्च प्रदेहाश्च परिषेकांश्च कारयेत् । च. चि उ २५६

२. सहस्रधौतं सर्पिवा तैलं वा चंदनादिकम् ।
दाहज्वरप्रशमनं दद्यादभ्यंजनं भिषक । च चि. ३।२५७

३. मध्वारनाल क्षीर दधि घृत सलिल सेकावगाहाश्च सद्योदाह-ज्वरमपनयति । शीतस्पर्शत्वात् ।

४. पौष्करेषु सुशीतेषु पद्मोत्पल दलेषु च ।
कदलीना व पत्रेषु क्षौमेषु विमलेषु च ।
चंदनोदकशीतेषु शीतधारागृहेषुवा । हिमाम्बुसिक्तेसदने दाहार्त संविशेत्सुखम् । हेमशखप्रवालाना मणीना मौक्तिकस्य च । चंदनोदकशीताना संस्पर्शान् रसान्स्पृशेत् । स्रर्गाभनीलोत्पलं पद्मैर्व्यजनैर्विविधैर्वा शीतवातावहै व्र्यज्येत् चंदनोदकवर्षिभि नद्यस्तड़ागा पद्मिन्यो ह्रदाश्चविमलोदकाः ।
अवगाहे हितादाह स्तृष्णाग्लानिज्वरापहा ।
शीतानिचाल्यानानि शीतान्युपवनानि च ।
वायवश्चन्द्र पादाश्च शीतादाहज्वरापहा । २६०।२६५

तृष्णानिग्रहण (Refrigirents)

पर्याय—तृष्णानिग्रहण, पिपासाहर, तृष्णाशामक–तृष्णाहर ।

परिभाषा—जो औषधिया या द्रव्य तृष्णा को कम करते हैं अथवा दूर करते हैं । या जो तृष्णावर्द्धक हेतुओ को दूर करते है उन्हे तृष्णा निग्रहण कहते हैं ।

द्रव्य—चरक ने इस द्रव्य को तृष्णा निग्रहण वर्ग मे लिखा है । जिनमे प्रधान नागर, यवासक, मुस्त–पर्पट, चदन, किरात तिक्त–गुडूची–ह्रीवेर–धान्यक–पटोल दस द्रव्य हैं ।

सुश्रुत में—सारिवादिगण, परूपकादिगण, उत्पलादिगण, गुडूच्यादिगण, आम्रादिगण को तृष्णाहर लिखा है ।

इनके अतिरिक्त—वशलोचन–लवंग–स्थूलैला–सूक्ष्मैला–लाजा–इक्षु–दधि, मधुर रस–मधुराम्लरस (निम्बू–सतरा–मौसम्बी–अम्लिका) अतिविषा–ईसव-गोल आदि भी तृषा नाशक है ।

चिकित्साक्रम—तृषा एक स्वाभाविक लक्षण है जो स्वस्थावस्था में शरीर के उदक भाव की कमी से होता है। किसी रोग वश या औषधि से भी तृषा की उत्पत्ति होती है। शरीर के उदकभाव की पूर्ति होने पर तृषा नहीं होती। इसके कम होने पर इसका अनुभव होता है तब कंठ–तालु–मुख–ओष्ठ आदि के शोष से इसका ज्ञान होता है। अत. यहां पर तृष्णा की उत्पत्ति का स्वरूप पहले उपस्थित करते हैं।

तृष्णा का निदान–दोष व दूष्य—शरीर मे ६५–७० प्रतिशत जल की मात्रा होती है। यह अपधातु शरीर के प्रत्येक धातु–उपधातु में अपना अंश रखता है। अस्थि जैसे कठोर धातु मे भी २० प्रतिशत जल होता है। जल का नियंत्रण शरीर के कफ से होता है और यह उदक कर्म से शरीर का धारण करता है। इसका नियंत्रण श्लेष्म–तर्पक श्लेष्म है जिसका स्थान मस्तिष्क में है और मस्तिष्क का उपाज्ञाख्यपिंड हाइपोथैलमस (Hypothalmus) को कहा जा सकता है आज के शरीर शास्त्री भी इसका जलनियंत्रक केन्द्र (Water Regulating Centre) मानते हैं और स्थान भी ठीक मृदु तालु के सन्निकट पडता है तथा तृष्णा की उत्पत्ति का सूचक स्थान भी तालु मूल ही चरकादि मानते हैं अत उदकवाहिनी शिराओं के दूषित होने से तृषा की उत्पत्ति होती है। चरकने स्पष्ट लिखा है—

१ अब्धातु देहस्थं कुपित पवनो यदा विशोषयति।
तस्मि छुष्के शुष्यत्यबलस्तृष्यत्यय विशुष्यन्। चरक

२. तत्प्रकोपो हि सौम्यधातु प्रदूषणात्। अ हृ

अतः उदकवाही स्रोतसो के दो मूलाधार हैं।

उदकवहे द्वे तयोर्मूलम् तालु क्लोम् च

दो प्रकार का उदकवहस्रोतस् है १–रसवह (रस व रक्तवह)
२–लसीकावह।

इनकी कई शाखा व प्रशाखायें हैं जिनसे रस का संवहन शरीर मे होता है। रसवह स्रोतसो का मूल हृदय है और इसका नियंत्रक हृत् केन्द्र का व प्राणदा नाडी है। लसीकावह स्रोतसो का मूल क्लोम है। नियंत्रक उपाज्ञाख्यपिंड है।

इन दोनो की विकृति से पिपासा की इच्छा होकर तृष्णा रोग की उत्पत्ति होती है। इनके प्रदुष्ठ होनेवाले भाग को निम्न यंत्रो को गिनाया गया है। पित्त व वात दुष्ट होकर सौम्य धातु का शोषण करते हुवे निम्न स्थानो पर प्रभाव डालता है तो तृष्णा की अनुभूति होती है। यथा—

रसवाहिनी नलिया—जिसमे

१ जिह्वामूल गला नाली २ गल नाली ३. तालुस्थित नाली ४. क्लोम स्थित नाडी	**पित्तानिलोप्रवृद्धौ सौम्यम् धातुश्चदूषयत** **रसवाहिनीश्चनाली जिह्वामूलगलतालुक्लोम्न.** **सशोष्यदेहेकुरुतस्तृषणा महावत्सावेतो।** चरक

सुश्रुतके मत से--

स्रोतांसि संदूषयतः समेतौ यान्यम्बुवाहानि शरीरिणां हि।
स्रोतःस्वपांवाहिषुदूषितेषु जायेत तृष्णाऽतिबलाततस्तु। सु०

२. अम्बुवाहीनि स्रोतांसि--इनमे भी विशेपकर--अपावाही स्रोतम्

३. अष्टांग हृदय में सौम्य धातु प्रदूषणात्

और--१. जिह्वामूलीय तोयवहा सिरा
२. गलस्थ ,, ,,
३. क्लोमस्थ ,, ,,
४. तालुस्थ ,, ,,

सामान्य रूप से निम्न रूप मे प्रकोप होता है।

(१) स्थानिक (२) सार्वांगिक

अपधातु

स्थानिक
(१) जिह्वामूलीयतोयवहा
(२) गलस्थ ,,
(३) तालुगल ,,
(४) क्लोमस्थ ,,

सार्वांगिक
अब्धातु
(१) रसरक्तवहा
(२) लसीकावहा

स्थानिक क्षेत्र मे सर्व शरीरस्थ अब्धातु की कमी का प्रभाव पड़कर उनका शोषण होकर फिर उसका ज्ञान सदा तालुस्थानीय तोयवहासिरा के शोष से पिपासा का ज्ञान होता है।

क्रिया--पूर्वोक्त औषधिया अपना तृष्णा निग्रहण कार्य निम्न रूप में करती है।

१ **केन्द्रीय क्रिया द्वारा**--यदि शारीरिक द्रव की कमी हो गई है तो जल-रस-फलरस या अन्य तरल पदार्थ क्षीर-तक्र-लस्सी आदि के देने पर [illegible] हो जाती है।

२. **यदि केन्द्र**--किसी व्याधि के विष से उत्पन्न है या पित्त व वात या प्रकोप होकर उत्पन्न हुआ है तो विष निर्गम व वात पित्त शामक औषधियों से शमन होता है। सामान्य रूप से मधुराम्ल रसवाली औषधियां पित्त गुणों से विपरीत कार्य कर तृष्णाशमन करती है। तिक्तरसवाली औषधियां अपने प्रभाव व शीतवीर्य के कारण पित्त का शमन करके तृषाहर होती हैं।

३ शरीर मे सिरा द्वारा मधुररस प्रदान करने पर तृष्णा की उग्रता कम हो जाती है।

---

१. पित्तंसवात कुपितं नराणाम्
२. तालु प्रपन्नं जनयेत् पिपासाम्।

४. ज्वर आदि चिरकालिक दोनो रक्त के द्रवत्व व मात्रा की कमी से तृषा जो उत्पन्न होती है वह ज्वरशामक क्रिया द्वारा शांत हो जाती है।

५ रक्त स्राव होकर तृषा होने पर शिरा मे रक्तभरण या द्रव भरण से तृषा की शांति हो जाती है।

६ आहारज तृषा—आहार मे अधिक मधुर व कटुरस वाले द्रव्य लेने पर द्रव की आवश्यकता होकर तृषा होती है। जलपान से ठीक हो जाती है।

७. ज्वर-श्वास-कास-क्षयजकास आदि मे इनके शामक उपक्रम से तृषा नष्ट होती है। अपधातु की पूर्ति करने पर तृष्णा की शांति होती है।

८ शीतोपचार—शीत वस्तु संपर्क—परिषेक—अवगाहन से सामान्य तृष्णा शांत हो जाती है।

९ रक्त मे अम्ल व क्षार की मात्रा की वृद्धि होने पर तृषा होती है व इनके ह्रासक औषधियो के देने से नष्ट हो जाती है। सामान्य रूप से तृषाकर जितने हेतु है उनके परिवर्जन से तृषा की शांति होती है। मद्य—कटु—अम्ल—व उष्ण पदार्थ सेवन से पित्त की वृद्धि होकर तृष्णा होती है अतः इनके त्याग से ह्रास हो जाती है।

सामान्य रूप में—स्थानिक तृषा—मे मुख—तालु—कंठ आदि की शुष्कता साधारण तृषा का परिचायक है वह आमाशय मे या आसपास के रस स्रोतस मे रस की कमी की द्योतक है। यह द्रव देने से शांत हो जाती है।

सार्वांगिक तृषा-सर्वांग मे के उदक धातु की कमी से होती है। रक्त के द्रव की कमी—उसमे वसा—शर्करा—क्षार व अम्ल की अधिकता होने पर रक्त जल परिमाण की पूर्ति के निमित्त तृषा होती है। इस द्रव की पूर्ति न होने पर विभिन्न प्रकार के लक्षण होते हैं। यथा—मुखशोष-स्वरभेद—भ्रम—प्रलाप—संताप—स्तंभ—मूर्च्छा—अरति—तालु—ओष्ठ—कंठ—जिह्वा—कर्कशता—जिह्वा स्फुटन आदि।

इसकी समुचित चिकित्सा ऊपर की औषधियो द्वारा करने पर तृषा की शांति होती है। इनसे निर्मित विभिन्न प्रकार के कल्पो का प्रयोग किया जाता है।

पित्त प्रसादन (Bile Stimulants)

प्रसादन यह पद्लृ विसरणादौ धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ प्रसन्नता वृद्धि—क्रियाशीलत्व आदि। कुछ लोग इसको अर्थ अनुग्रह, प्रीणन या स्वास्थ्यवर्धन भी करते हैं। इस अर्थ के अनुसार विचार किया जाय तो पित्त प्रसादन का अर्थ विशुद्धपित्त की वृद्धि—मात्रा व क्रिया दोनो मे होगी। पित्त प्रसादन सामान्य से पाचक पित्त प्रधान होकर पंचविधपित्त का सहायक होकर शरीर पोषण करता है। अतः आमाशय की क्रिया का प्रसादन, अग्निरस प्रसादन और यकृतस्थ पित्त रस प्रसादन व अन्य पाचन संबंधी आंत्रिक रसो का प्रसादन माना जा सकता है। विशेष अर्थ में यकृतस्थ पित्त का ही अर्थ होता है यह रस-रक्त मे पित्त का अहरहः रसरक्त प्रसादन व उनकी प्रसन्नता (शुद्धता) की रक्षा करता है।

परिभाषा—१. स्वस्वकार्येविदध्याद्य गति स्वास्थ्यहिताय वै ।
अनुग्रह प्रदानेन प्रसादनमिति स्मृत । स्व

जो द्रव्य अपने गुण व प्रभाव से पित्त कुल की क्रिया शीलता को बढाते हैं अर्थात्—आमाशय—यकृत (पित्ताशय) व अग्न्याशय को उत्तेजित कर अधिक स्राव कराकर पित्त की मात्रा वृद्धि करते है और पित्त की क्रिया को समावस्था मे रखते है पित्त प्रसादन द्रव्य कहलाते है ।

अत· पित्त प्रसादन के अर्थ शारीरस्थ पाचकपित्त के विभिन्न भागो से अम्ल तिक्त व कटुरसो के उत्पादन को सहायता मिलना समझा जाना चाहिए। यथा आमाशयिक पित्त प्रसादन ।

परिभाषा—जो आमाशयिक रस को बढाने मे क्रिया करे ।

द्रव्य—जो अम्ल लवण कटु रस वाले होते है वह इसकी वृद्धि करते हैं। यथा—

आमाशय बल्य द्रव्य—आमलक हाउबेर—एला—अनारदाना—एलुवा—बाकुची—तुलसी—सौंफ—विभीतक—मिश्री - धान—पपीता—पुदीना—नीबू, पीपल—पीपलामूल—तालीस—तेजपात—जावित्री—जायफल—यवक्षार— राई—खस—त्वक् — सोठ — नागरमोथा—टकण—कूठ—कर्पूर—अजमोद—कटुकी—कुचला— करोदा — जीरक — लवगरसोन—भारगी—हरीतकी — अजमोद — यवानी । आसव — अरिष्ट — सुरा—अल्कोहल आदि ।

यकृत बल्य—(पित्त प्रसादन) शीतद्रव्य व उष्ण भेद से दो प्रकार के द्रव्य यकृत बल्य होते है । जो तिक्त कटुरस वाले द्रव्य होते है ।

एलुवा—झावुकपत्र—पोदीना—तज—चिरायता — चुक्र— त्वक् — रेवद चीनी—लवग—केशर—शिलारस—पर्पट—कटुकी—कूठ—कासनी—मामज्जक— मिर्च — नागकेशर—नरसार—जायफल—कचूर—एला—कुपीलु—चित्रक आदि ।

यकृत शोधक व पित्तरस वर्धक—उशीर पुनर्नवा, मुण्डी—शतावरी—बला द्रोण पुष्पी—गुडूची—इन्द्रायण—चदन चव्य—काचनार—पटोलपत्र इत्यादि ।

अग्न्याशय प्रसादन—कटुतिक्त रस वाले द्रव्य जो ऊपर यकृत के लिये कहे गये है प्राय वही द्रव्य है । यथा—अजमोद—यवानी—जीरक—कटुकी पीपलामल—पिप्पली—उशीर—इन्द्रायण—इन्द्रयव आदि ।

सामान्य रूप से पित्त प्रसादन द्रव्य कटुतिक्त व अम्लरस वाले होते हैं। इनके बने योग भी लाभप्रद होते हैं। योग यथा—

१ प्राणवल्लभ रस भै० र० १—२ रत्ती
२ पचानन वटी भै० र० १—२ रत्ती
३ त्रिवृतादि मोदक भै० र० १—२ तोला
४ अविपत्तिकर चूर्ण „ आधा से २ तोला
५. हरीतकी खण्ड „ १—२ तोला
६ पूगखण्ड „ १—३ तोला

निम्नलिखित योग—पाचक पित्त का प्रसादन करते है ।

निम्न औषधिया कटुतिक्त व कषाय रस विशिष्ट होकर लवण क्षार युक्त होने से पित्तप्रसाद । का कार्य करती हैं।

१–शखवटी	८–सुधासागर रस	१–२ रत्ती
२–महाशखवटी	९–अग्निकुमार रस	१–२ रत्ती
३–टकणादिवटी	१०–अग्निसदीपनरस	१–२ रत्ती
४–भास्कर लवण	११–वडवानल रस	१–२ रत्ती
५–सैंधवादि चूर्ण	१२–लोकनाथरस	२–४ रत्ती
६–वडवानल चूर्ण	१३–कपर्द भस्म	२–४ रत्ती
७–अग्निमुख चूर्ण		

यह पाचक पित्त के आश्रय आमाशय की रस प्रसादन क्रिया करते हैं। इनके कार्य के साथ यकृतस्थ व अग्न्याशयस्थ रस भी अपना कार्य करता है। अत पित्त प्रसादन है।

यकृतस्थ पित्त प्रसादन (Tonic Anticolagogues)

निम्नलिखित औषधिया अपने सगठन व द्रव्य प्रभाव से पित्त निर्माण की क्रिया को वढा देते हैं और यकृत को वलप्रदान करते है। अत पित्तप्रसादन है।

१.	सूतशेखर	भै र.	२–४ रत्ती
२.	सुधानिधिरस	,,	१–२ रत्ती
३	स्वर्ण सूतशेखर	,,	२–४ रत्ती
४.	विद्याधराभ्ररस	,,	१–२ रत्ती
५.	मौक्तिक पिष्टी	,,	१–२ रत्ती
६.	प्रवाल पिष्टी	,,	२–४ रत्ती
७	चन्द्रकला रस	,,	१–२ रत्ती
८.	इक्षुरक क्षार	,,	४–८ रत्ती

यह यकृत को वल देकर अपनी क्रिया करते हैं। पित्त की उग्रता को शात कर उसमे वलाधान करके प्रसादन कार्य करते हैं।

सामान्य रूप से पित्त की दुर्वलता दूर कर क्रिया शीलता को वढाने वाले द्रव्य पित्त प्रसादन कहलाते हैं।

पित्त संशमन विज्ञान

परिभाषा—१. न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषां स्तथोद्धतान्।
समीकरोति विषमान् शमन तद्यथामृता ॥ शा०
२ न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समी करोति च क्रुद्धान् तत्सशमनमुच्यते ॥ वा०

यह सामान्य रूप से सशमन की परिभाषा है। पित्त के पक्ष मे यही परिभाषा प्रयोग करे तो यों कह सकते हैं। यथा—

यद्द्रव्य पित्तमुग्रत्वं शमयेन्नान्यमीरयेत्।
समीकरोति विषमान् पित्तसशमन हि तत्।

अर्थात्——जो द्रव्य पित्त की उग्रता को शात कर देते और अन्य दोषो के ऊपर कोई प्रभाव नही डालते बल्कि विषम पित्त को शात कर देते हैं। उन्हे पित्त सशमन कहते है। यथा——

द्रव्य——श्वेत चदन–रक्त चदन–ह्लीवेर – उशीर–शतावरी–अश्वगधा–उत्पल, मजिष्ठा–शुठी–गोरखमुडी–दूर्वा–किराततिक्त–कटुकी–मधुयष्ठि– कुटज——सारिवा–उसवा।

क्रिया——यह द्रव्य पित्त की उग्रता से होने वाले लक्षणो को शात कर देते हैं और कोई नया उपद्रव नही उत्पन्न करते। यहा पर दो प्रकार के पित्त का विवरण समझना चाहिए——१. सामान्य पाचक पित्त– २ विशेष पित्त (याकृत पित्त) (Bile)

सामान्य पाचक पित्त का विवरण——पित्तावसादन, अनलावसादन मे किया गया है। यहा पर विशेष पित्त का (यकृतस्थ पित्त के) अवसादन वर्णित है।

यकृतस्थपित्त रस (Bile)

यकृत के कर्म के द्वारा पित्त की वृद्धि व ह्रास का कर्म देखा जाता है। क्योकि यकृत ही इस पित्त का निर्माण करता है। अत इसकी उग्रता पर पित्त की वृद्धि हो सकती है और इसके कार्य कम होने पर पित्त का निर्माण कम हो सकता है। कुछ औषधिया यकृत की पित्त निर्माण कर क्रिया की साक्षात् वृद्धि करके पित्तवर्द्धक होते है।

पित्तवर्धक विरेचक (Colagogues)

सामान्य रूप से कटुरस व उष्ण तीक्ष्ण लघु–विशद गुण वाले द्रव्य जो आग्नेय वर्ग के होते हैं पित्तका वर्द्धन करते हैं। यह सामान्य नियम है। इनमे भी कुछ द्रव्य केवल यकृतस्थ पित्त का ही वर्धन करते हैं–यथा——घृत कुमारी सत्व (एलुवा), रेवद चीनी–सुरजान पारद घटित औषधिया समष्ठीला–गोरोचन–कुपीलू–कर्चूर–गडीर–नौसादर रसपुष्प (केलोमेल) सुधानिविरस आदि। अम्ल व लवण रस वाले द्रव्य भी कटु की तरह पित्तवर्धक होते हैं। किन्तु विशेष पित्तहर लक्षण इनमे से कुछका ही मिलता हैं।

यकृत बल्य द्रव्य——यकृत को बल देनेवाले द्रव्य पित्तका वर्द्धन भी करते हैं। भले ही उनकी बलदायक क्रिया का ज्ञान हो या न हो। यह दो प्रकार के वीर्यों से युक्त होते है। १–शीत वीर्य द्रव्य (यकृत बल्य शीतल द्रव्य) २–उष्णवीर्य द्रव्य (यकृत बल्य उष्ण द्रव्य)

इस वर्ग की औषधियो के विषय मे चिकित्सको के विचार भिन्न भिन्न हैं। इनमे से कुछ यकृत की क्रिया बढा कर पित्त बढा कर कार्य करते हैं। यथा——पित्तवर्द्धक द्रव्य जो ऊपर कह गये हैं।

कुछ यकृत को बल देने के लिये पित्त निर्माण की क्रिया सीमित रखना होता है। यथा——कासनी के रस का पतला भाग–यह यकृत की क्रिया को प्रकृत

वनाता है परतु पित्त उत्पादन की क्रिया कम होती है। कुछ सामान्य रूप से यकृत के कार्य के साथ आमाशय व आत्र की क्रिया बढा देते हैं और यकृत को वलदायक होते है।

इसके सबध मे निम्न द्रव्यो के नाम गिने जा सकते हैं। यथा--अफसतीन-कुमारी, क्षावुक पत्र, पोदीना-चिरायता-चुक्र-दालचीनी-रेवदचीनी-वालछड पर्पटक-(इयाहतरा) स्वर्ण-रजत-कासनी -तुम्वुरु, गोजिह्वा-लाक्षारस-लवग-मामज्जक, कालीमिर्च-द्राक्षा-नागकेशर-हरीतकी-नरसार, नागारमुषक-एला-जम्वीर-अम्लवेतस-अनार व अम्ल रस वाले नीवू आदि।

अम्ल रस वाले-चुक्र अम्लवेतस-अम्ल दाडिम-यह द्रव्य पित्त की असाधारण वृद्धि को कम कर देते हैं। झावुक मामज्जक, कासनी-गोजिह्वा चिरायता-मकोय-यह पित्त वस्तु का शोधन कर यकृत वल्य होते हैं। परतु पित्त की मात्रा नियमित होती है और प्रकृत रूप मे पित्त वनता है।

लाक्षा-हरीतकी-नागकेशर-नागरमुस्तक यह कषाय रस प्रभाव से यकृत शैथिल्य कम करके वल दायक वनते है।

कुछ यकृत के दोष को दूर करके वल्य होते हैं। यथा--चदनद्वय-अफसतीन-कटुकी-झावुक-गोरोचन-पित्तवर्गीय पचपित्त इनमे रक्त को द्रव वनाकर-रजनकर यकृत की क्रिया को सहायता पहुचाने का होता है। अतः कामला-पाण्डु मे गोरोचन का प्रयोग लाभप्रद होता है। यह भी इस अर्थ मे यकृत वल्य होता है।

पित्तक्षय--यकृत के दुर्वल हो जाने पर जव पित्त की उत्पत्ति कम होती है अग्नि व्यापार मे शरीर मे त्रुटि होती है और विभिन्न रोगो की उत्पत्ति होती है तव अग्निवर्द्धन या पित्तवर्धन के लिये प्रकृत के सहयोगी कटुतिक्त-उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य कार्य करते है और यकृत की क्रिया प्राकृत वनाते हैं। इस अर्थ मे भी यकृत वल्य कहलाते हैं।

पित्तार्ति योग प्रशमन--सामान्य रूप से पित्त का जहा पर ग्रहण किया गया है यकृतस्थपित्त का ग्रहण है। पित्ताधिक्य होने पर मुख का स्वाद भी तिक्त हो जाता है। ग्राम्य चिकित्सक भी जानते हैं कि पित्तोत्क्लेश होने पर जी मिचलाता है और मुख का स्वाद तिक्त होता है। यह सव लक्षण रक्त मे पित्त की मात्रा अधिक होने पर होती है। अत पित्त की मात्रा अधिक होने पर निम्न पित्तहरगण धन्वन्तरि ने लिखा है। यथा--

> **किराततिक्त कटुकामुस्ता पर्पटिकाम्वुभिः।**
> **पटोलद्विनिशाभ्या च पिवेतक्वाथ तु पैत्तिके॥**

अर्थात्--चिरायता-कटुकी-भद्रमुस्ता-पित्तपापडा - नेत्रवाला - पटोल-हल्दी-दारुहल्दी इनके प्रयोग से प्रवृद्ध सार्वांगिक पित्त जो तापोत्पादक है शात होता है।

यह सब तिक्त रस वाले द्रव्य है। यह यकृत की पित्त निर्माण कर क्रिया को कम करके पित्तावसादन रूप कार्य करते है। तिक्त रस मात्राधिक्य मे पित्त का शोषक होता है अत पित्त की मात्रा कम बनती है और पित्त को निर्माण करने वाले यकृत के सेल स्वस्थ बन जाते है और पित्त सशमन का कार्य हो जाता है। इस यकृतस्थ पित्त के अति मात्रा मे बनने पर पित्तातियोग होता है और इस निमित्त शीतवीर्य पित्तहर द्रव्यो की आवश्यकता होती है।

१. **गंध प्रियगु**—चरक ने २५ वे अ सूत्र स्थान मे शोणित पित्तातियोग प्रशमन के लिये प्रियगु को लिखा है। यथा—गधप्रियगु शोणित पित्तातियोग प्रशमनानाम् इसी प्रकार उत्पल पद्म कुमुद किजल्क साँग्राहिक रक्त पित्त प्रशमनानाम्। प्रियगु मे तिक्त कषाय रस रहता है।

पित्तशोषण—

पित्तशोषण–पित्तोपशोषण । च सू २६।४२।५

परिभाषा—जो द्रव्य अपनी तीक्ष्णता से पित्त के द्रवाश को सुखाकर उसका शोषण कर लेते है पित्त शोषण कहलाते है। यथा—तिक्त रस।

क्रम—पित्त मे उष्ण अनतिस्निग्ध–द्रव सर गुण होते है अत जिस वस्तु के साथ शरीर मे मिश्रित होता उसमे उष्मा–सरण शीलता, लाघव व द्रवत्व को बनाये रखने की क्रिया करता है। रस मे अल्प पित्त मिलता है अतः उसकी द्रवत्व शक्ति शीघ्र विकृत होती है। रक्त मे अधिक मात्रा मे इसकी मेलक क्रिया होती है अत रक्त मे रस की अपेक्षा उष्णत्व–सरत्व गतिक्रिया–द्रवत्व से प्रवहण की क्रिया अधिक होती है इसके विपरीत जिनमे इसके गुणो से भिन्न गुण होते है अर्थात् रूक्ष—शीत व लघु इन गुणो से युक्त द्रव्य इसकी क्रिया शीलता को नष्ट करते हैं। रूक्ष गुणाधिक्य से द्रवत्व व सरत्व की गुणहानि होती है। वह गाढा होने लगता है। दाने पडने लगते हैं। अश्मवत रूप धारण करते हैं और पित्ताश्मरी की उत्पत्ति करते हैं। पित्त गाढा बनाकर पित्तशूल का स्वरूप उत्पन्न करते है। गोरोचन जैसे पित्त के रूपान्तर–रूक्ष–शीत व लघु गुणाधिक्य होकर पित्त की वैकृतिक स्वरूप वृद्धि करते है। अत तिक्त प्रधान रसवाले द्रव्य पित्त ही नही–क्लेद मेद–वसा–मज्जा–लसीका–पूय–स्वेद–मूत्र पुरीप-पित्त श्लेष्म जैसे द्रव स्वरूप वाले धातु–उपधातुओ का भी शोषण करते हैं (च. सू २६।४२।५)। तिक्त रस वाले द्रव्य जो रूक्ष–खर–विशद स्वभाव वाले होते है। रौक्ष्य–खरत्व वैशद्य की वृद्धि करके रस रुधिर–मास–मेद–अस्थि–मज्ज और शुक्र को भी सुखा देते है। चरक ने स्पष्ट रसाधिक्य के लक्षणो मे इसका विवरण दिया है। स्रोतसो मे खरत्व की उत्पत्ति करके उनको कर्कश बना देते है। वे कृश होते है और पूर्वापेक्षाहीन गुण वाले (ग्लपयति) बनकर क्षीण होते है और परिणाम शोषण का होता है। यह गुण सामान्य तिक्त रस वाले द्रव्य नही अपितु अतितिक्त व अधिक मात्रा मे सेवन करने पर

इस परिणाम को लाते हैं। शरीर मे रौक्ष्य, खरत्व, वैशद्य बढा देना इनका विशेष कार्य होता है।

द्रव्य—कुपीलु–सप्तपर्ण–गोरोचन–निम्ब–महानिम्ब–कटुकी–कुटज–कारवेल्लक–त्रायमाणा–करीर–करज–किरात तिक्त–कालमेघ–इन्द्रायण–गालगुजा उशीर–इन्द्रयव इत्यादि।

पित्तमुत्क्लेशन—

परिभाषा—जो द्रव्य पित्त की उग्रता बढाकर उसे बाहर निकालते हैं उन्हे पित्तउत्क्लेशकर कहते हैं।

द्रव्य— **यवानीचार्जकश्चैव शिग्रु शालेय मृष्टकम्।**
हृद्यान्यास्वादनीयानि पित्तमुत्क्लेशयन्ति च। च. सू. २७।१७०

अर्थात्—यवानी–अर्जक–शिग्रुमूल–मरुदेश की मोटी मूली–राजिका–यह यद्यपि खाने मे मनोनुकूल लगते हैं परन्तु पित्त का उत्क्लेश करते हैं।

जो द्रव्य कटु–तीक्ष्ण गुण वाले होते हैं वे पित्त का उत्क्लेशन करते हैं। तथा जो द्रव्य सुगधित होते हैं और उन मे कुछ–कटु तिक्त रस व उष्ण गुण होते हैं उत्क्लेशन होता है। यथा—

सुगधा नातिकटुका दोषानुत् क्लेशयंति च। च. सू २७।१७२

ये द्रव्य अपनी तीक्ष्णता से पित्त के केन्द्रो को उत्तेजित कर पित्त रस की तात्कालिक उत्पत्ति कराकर पित्त को अपने स्थान से बाहर लाकर मुख से भी बाहर निकालते हैं। अत खट्टा व तिक्त उद्गार छर्दि वमी तथा थूकने की प्रवृत्ति होती है।

पित्तसंग्रहण—

नाम–पित्तसग्रहण–पित्त सग्राही। च. सू २६।४२

परिभाषा—जो द्रव्य पित्त को गाढा करते है उन्हे पित्त सग्राहक कहते है। पूर्व मे पित्त शोषण की क्रिया का विवरण दिया जा चुका है। इस मे शोषण से पूर्व द्रव की कमी होने से पित्त (यकृतस्य पित्तरस) गाढा हो जाता है और उसका स्राव जो पाचन काल मे बराबर होता था, वह गाढा होकर अवरुद्ध मार्ग होने से नही जा पाता तो कामला व पाण्डु की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार के द्रव्य उष्ण तीक्ष्ण रूक्ष–खर–विशद गुण वाले द्रव्य होते हैं। इनके सेवन से धीरे धीरे पित्त गाढा हो जाता है अत पित्त शोधक द्रव्यो का प्रयोग करना पडता है। यथा–चन्दनाद्यासव, अश्वगधारिष्ट, इक्षुरक क्षार आदि।

द्रव्य—तिक्त कटु अम्ल रस प्रधान द्रव्य, क्षार–तीक्ष्ण–उष्ण–विदाही द्रव्य–तैल का अधिक सेवन–सुरा–सौवीर का सेवन–क्रोध–अनल–आयास–धूप का अधिक सेवन, विदग्ध द्रव्यो का अति सेवन पित्त की वृद्धि और अत मे सग्राहक होते हैं।

पित्तपाचन—

संज्ञा—पित्तपाचन- पित्त पाचक। सु. ४०।६२

परिभाषा—जो द्रव्य सामपित्त को या अपक्व पित्त को पाचन कर देते हैं पित्त पाचन कहलाते हैं।

क्रम—उदर रोग व अतिसार मे आमाविक्य होकर पित्त के साथ मिलकर सामपित्त अपक्वपित्त की उत्पत्ति करते हैं। यथा—बच्चो के दतोद्गम व अतिसार रोग मे जब मल के साथ हरा-नीला-पीला पित्त-फटे हुवे छिछडेदार मल मे मिले निकलते हैं।

पित्त जब अपने कोष्ठो मे उचित मात्रा मे बनकर निकलता है आहार पाचन करता है। जब अपक्व व विदग्ध या अल्प निकलता है तब वह पाचन नही करता। आमरस के साथ अर्धपचित मल मे मिलकर निकलता दिखाई देता है।

कभी कभी युवती पाण्डुरोग (Schloresis) मे अनुत्तम पित्त हरित वर्ण का अधिक निकलता है और युवतियो का सारा शरीर हरा पीला पड़ जाता है तब पित्त उचित वर्ण-मात्रा व घनत्वादि गुण युक्त नही होता और यह लक्षण होते हैं। इस प्रकार के अपक्व पित्त को जो द्रव्य पचाते हैं, पित्त पाचन कहलाते हैं।

द्रव्य—तिक्त रसवाले द्रव्य पित्त पाचन होते हैं। यथा—

स्वेदनं लंघनं कालो यवाग्वतिक्तको रस.।
पाचनान्यविपक्वानाम्

अत निम्न द्रव्य पाचक होते हैं। शीत वीर्य होने से कोई अतर नही पडता।

१ हरिद्रा-अतिविषा-पाठा-वत्सकबीज रसाजन क्वाथ।
२ रसाजन-हरिद्रा-दारु हरिद्रा-इन्द्रयव-क्वाथ।
३ पाठा गुडूची भूनिम्ब व कटुकी क्वाथ।

यथा— **हरिद्रातिविषा पाठा वत्सबीज रसांजनम्।**
रसांजनं हरिद्रे द्वे बीजाति कुटजस्य च।
पाठागुडूची भूनिम्ब स्तथैव कटुरोहिणी।
एतश्लोकार्धनिर्दिष्ठः क्वाथास्यु पित्तपाचनाः। सु. उ ४०।६ स्कद

पित्त प्रकोपण—

परिभाषा—वे द्रव्य जो पित्त को प्रकुपित कर देते है उन्हे पित्त प्रकोपण कहते हैं। यथा—

पित्तंकट्वम्लतीक्ष्णोष्णं पटुक्रोधविदाहिभि।
शरन्मध्यातम रात्र्यर्ध विदाह समयेषु च। चा नि १।१६

अर्थात्—पित्त कोपण मे कटु अम्ल लवण यह तीन रस तथा तीक्ष्ण उष्ण गुण वाले द्रव्य, क्रोध व आहार की विदाहावस्था मे पित्त का प्रकोप होता है।

काल––शरद ऋतु, मध्याह्न व मध्यरात्रि ।

इनके अतिरिक्त––क्षार, शुक्त, शिण्डाकी, मद्यमूत्र–मस्तु–दधि–धान्याम्ल, तैल–कुलत्थ, माष, निष्पाव तिलान्न, लट्वा, कुठेरक, आम्र (अम्ल), आम्रातक, अम्लीका–पीलु–भल्लातकास्थि, लागली–मरिच, आसव–अग्नि–धूलि–धूम–क्रोध, ईर्षा, अजीर्ण–मैथुन व गमनादि आविक्य से भी पित्त का प्रकोप होता है ।

ये द्रव्य पित्त के आत्म गुणो की वृद्धि लगातार सेवन से करते हैं । अत. पित्त का प्रकोप होता है तथा वह अपनी मात्रा से अधिक निकलता है जिससे पित्त सस्थान के अगो की क्रिया मे वृद्धि होती है और पित्त कुपित होता है ।

नोट––पित्त प्रकोप से आमाशय गत पाचन पित्त या यकृतस्थ पित्त या पचविध पित्त से किसका ग्रहण करना उचित है यह विचारणीय विषय है ।

जहा तक कटुकाम्ल लवण आहार द्रव्यों का प्रयोग है वह पाचक पित्त का प्रकोप करता है। और सहकार रूप मे यकृतस्थ पित्त का भी प्रकोप करता है।

किन्तु क्रोध ईर्षा–के होने पर इस स्थान के पित्त का वर्धन न होकर पियूषग्रथि व अधिवृक्क के स्थान के पित्त द्रव्यो की वृद्धि (Adrenalin & Pituitrin) होती है और आदमी एक साथ तम तमा उठता है ।

पित्त की वृद्धि व प्रकोप से होने वाले श्वेत–पाण्डु हलीमक कामला मे यकृतस्थ पित्तोद्रेक का स्पष्ट दर्शन होता है ।

अत एक काल मे एक प्रकार के द्रव्य सेवन से एक ही तरह के पित्त का प्रकोप होता है कालान्तर सर्वविध पित्तप्रकोप होता है । किन्तु अधिकाश रोग व अवस्था के लक्षण यकृतस्थपित्त की प्रकोप की मात्रा को ही बढाते दिखाई पडते हैं ।

इसके पूर्ण विवरण के लिए इसकी विभिन्न स्थितियो पर विचार करना चाहिए । प्रकोपण के वर्ग मे (१) उत्क्लेशन प्रथम होता है । उत्क्लेशन मे विशेष कर यकृतस्थ पित्त (Bile) का ही दर्शन होता है । मुख से तिक्तरस युक्त द्रव्यो का वारवार निकलना प्रारम्भ होता है । ये द्रव्य पित्त को प्रकुपित करके रक्त मे मिलने वाले रजक पित्त की मात्रा बढा देते है ।

पित्त प्रकोपण द्रव्य जैसे–सिद्धार्थक अतसी–अम्लदाडिम

जो द्रव्य तिक्त कटु–उष्ण तीक्ष्ण गुण युक्त होते हैं वह पित्तोत्क्लेशन करते हैं । यथा––यवानी–अर्जक शिग्रुमूलत्वक–मूली और राजिका ।

सिद्धार्थक शोणितपित्तकोपी सु सू ४६।४९
अतसी–उष्णाऽतसी स्वादुरसाऽनिलघ्नी ।
पित्तोल्वणास्यात् कटुकाविपाके । सु सू ४६।४८
यवानी चार्जकश्चैव शिग्रु शालेयमृष्टकम् ।
हृद्यान्यास्वादनीयानि पित्तमुत्क्लेशयति च । च. सू. २७।१७०

अतः प्रकोपक उत्क्लेशन द्रव्य पृथक् पृथक् और पृथक् शारीर द्रव्यो पर प्रभाव डालते हैं।

पित्तोल्वण--सु. सू अ. ४६।४९

उष्णाऽतसी स्वादुरसाऽनिलघ्नी ।
पित्तोल्वणा स्यात्कटुकाविपाके ॥

परिभाषा--जो द्रव्य पित्त का कोप करके उसे प्रकुपित करते हैं पित्तोल्वण कहलाते हैं।

पित्तावसादन--

संज्ञायें--अग्निसादन । सु उ ४१।६६ व सु उ ३९।३२३
अग्निसाद कृत । अ. सं. सू ५।४९
अनल सादन । सु सू ४६।२४५

परिभाषा--जो द्रव्य पाचक पित्त की अग्निक्रिया को कम करके अपक्ति कर होते हैं वह पित्तावसादन कर होते हैं। यह पाचन दो प्रकार का अवस्थापाक व निष्ठापाक के रूप मे होता है। अत क्रिया भी दो प्रकार की होती है।

अवस्थापाक ह्रासकर--पाचन काल मे जो पाचक पित्त आमाशय के विभिन्न स्थानो से निकलते हैं उनकी क्रिया का अवसादन होना व कम पाचक रसो का निकलना इसका कारण होता है।

निष्ठापाकीय ह्रासकर--रसादि धातु मे आहार रस के निर्माण के बाद जो धात्वन्तर पाक होता है उस मे रक्तसवहन काल मे यकृत व प्लीह दोनो अपने भीतर के याकृत रस व याकृतपित्त (Bile) का मिश्रण कर रक्त पूर्वक प्रेषण करते हैं इससे उत्तरोत्तर धातुओ की पाक क्रिया होती है। न होने पर अपक्ति होती है। अत यह भी अग्निसाद कृत किया है। याकृत पित्त इन ही त्रिविध क्रियाओ मे भाग लेता है पाचन कर्म मे व रक्त मे सीधे मिलित होकर। अत अग्निसाद कृत द्रव्य अनल का अवसादन करते है। इसके दो प्रकार हैं--

१ जो द्रव्य पाचकाग्नि का ह्रास करते हैं--अर्थात्--आमाशयिकरस--अग्निरस व पित्तरस का पाचन काल मे ह्रास करते हैं।

२ जो द्रव्य याकृत पित्त की रक्त मेलन क्रिया का ह्रास करते हैं। विशेष रूप से यह अधिक इसमे वाधक होते हैं।

३ जो द्रव्य पित्तसस्थानीय उष्मकेन्द्र की क्रिया को मद करते हैं वे भी अनल (ताप) कर्मावसादक होते है।

द्रव्य--अनलसाद कर द्रव्य निम्न है--

भूम्यम्बु वायुजैः पित्त क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम्
आग्नेय मेव यद्द्रव्य तेन पित्तमुदीर्यते । सु० सू० ४१।७--९

अर्थात्--पृथिवी--अप् व वायु महाभूत प्रधान द्रव्यो से पित्त की उत्पत्ति व क्रिया मे भी कमी हो जाती है।

इन महाभूतो के मिश्रित सयोग से बने रस–मधुर–कषाय होते हैं। अग्नि तत्व प्रधान भूत द्रव्य पित्त वर्धक होते है अत: अग्नि–वायु के भौतिक संगठन वाला तिक्त द्रव्य भी पूर्वापेक्षा अल्पह्रासक होता है। अत. वे द्रव्य जो विशेष रूप से पित्तावसादक होते है। निम्न हैं–

मधुर–कुमुद–उत्पलकन्द–उत्पलबीज–दूर्वा–मूर्वा व काकोल्यादि गण के द्रव्य बीज पूर।

कषाय––न्यग्रोधादिगण – जहरमोहराखताई, कहरवा पिष्टी – बिल्व–कपित्थ–आमलकी।

तिक्त––चन्दन–रक्त चन्दन–नेत्रवाला, उशीर–कुटजत्वक्–पटोल पत्र–पित्तपापड–रसाजन–दारुहरिद्रा–अहिफेन–धुत्तूर

अम्ल––दाडिम आमलक–अम्लवेतस, सेब मौसम्बी (मधुकर्कटी)

निष्ठापक––इस काल मे पित्तह्रास कर द्रव्य विशेष का क्षार रस या क्षारीय प्रतिक्रिया वाले द्रव्य विशेष रूप से होते हैं। यथा–यवक्षार–सर्जिका क्षार–शख–शुक्ति-प्रवाल–मौक्तिक–वशलोचन–जहरमोहराखताई।

ये द्रव्य रक्त मे पित्त की मेलन क्रिया मे अवसादन नहीं करते अपितु अधिक पित्त की क्रिया का अवसादन करते है और उग्रता मे बाधक बनते हैं।

जब आमाशयिक रस अधिक बनता है और अम्लपित्त–अम्लिका या अन्य रोग होते हैं तो क्षार रस वाले द्रव्य इसकी उग्रता का अवसादन करते हैं। याकृत पित्त के अधिक मात्रा मे बनकर आहार मे मिलने या रक्त मे मिलने पर पाडु–कामला हलीमक मे जब अनलसादन होता है तो अम्लरस वाले द्रव इसकी उग्रता का अवसादन करते है। सामान्यावस्था मे भी जो द्रव्य पाचक पित्त की क्रिया का अवसादन करते हैं वह भी अनलावसादकर होते हैं। यथा मधुर व कषाय रस वाले द्रव्य। इस प्रकार अनलावसादकर कर्म कई प्रकार से होते हैं। इस प्रकार की अवसादक औषधिया पाचकपित्त पर प्रभाव डालकर इसकी नियमित मात्रा में ह्रास कर अवसादकर बनती है। उष्ण केन्द्र पर जो औषधिया पाचकपित्त पर प्रभाव डालती है वह अग्निसादकर होती हैं यथा–तिक्त रस वाले।

स्वेदल–स्वेदन (सुर्वारिक)

पर्याय––स्वेदन, स्वेदल, घर्मकर, घर्मकारक, स्वेदजनन, स्वेदकर, डायोफोरेटिक स्यूडोरिफिक्स (Diaphoratics, sudorifics)

परिभाषा––जो द्रव्य काय गौरव, स्तभ, शीत, उष्णता को दूर करे और पसीना ला देवे उसे स्वेदल या स्वेदन कहते हैं। स्वेदन द्रव्य–उष्ण–तीक्ष्ण–सर–स्निग्ध–रूक्ष–सूक्ष्म–द्रवस्थिर व गुरु द्रव्य हमेशा स्वेदल होते हैं। यथा–

स्तंभगौरव शीतघ्न–स्वेदन स्वेदकारकम्। उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं–रूक्ष–सूक्ष्मं द्रवं स्थिरम्। द्रव्यगुरु च यत्प्रायस्तद्धिस्वेदन मुच्यते। च० चि० २२

क्रिया—स्वेद क्रिया शरीर की श्लेष्म सवधी क्रियाधिक्य, रस–रक्त–मांस-गत द्रवाधिक्य की कमी करने, शारीरिक दोषो (विष–आमादि) को निकालने शरीर की शीत व उष्ण क्रिया को सम मात्रा मे रखने व शरीर के धातुओ को स्वस्थ रखने मे उपयोगी है। यह पित्त की क्रिया द्वारा भ्राजक पित्त के केन्द्रो द्वारा चर्मान्तर्गत क्रिया है। जब शरीर मे दोष वृद्धि होती है तब इसकी क्रिया स्वत: होती है या चिकित्सक द्वारा करायी जाती है। स्पर्श विज्ञान मे त्वचागत क्रिया, क्रियाओ का करना आवश्यक है। यथा–शरीर व्याधिशामक त्रिविधकर्म–अत परिमार्जन–बहि परिमार्जन शस्त्रप्रणिधान। इनमे बहिः परिमार्जन कर्म मे स्वेद कराने की आवश्यकता होती है। यथा–यत्पुन बहि स्पर्शमाश्रित्य–*अभ्यग–स्वेद–प्रदेह–परिषेक उन्मर्दनादिभिरामयानप्रमार्ष्टि तद्वहि परिमार्जनम्।*

स्वेद परिभाषा—मल स्वेदस्तु मेदस। च० चि० १५–१८

स्वेदवहानां स्रोतसां मेदो मूलं लोमकूपाश्च।

स्वेदक्रिया—त्वचागत वर्मग्रथियो की क्रिया द्वारा होता है इन स्वेद ग्रथियो का नियत्रण स्रावक नाडियो के आधीन स्थित है। जिनका केन्द्र सुषुम्ना शीर्षक मे स्थित है वास्तव मे स्वेदका नियत्रण सावेदनिक (Sympathetic Nerve) व केन्द्रीयनाडी सस्थान (central Nervous system) दोनो के द्वारा होता है। स्वेद क्रिया अनवरत होती रहती है। इस क्रिया द्वारा–रस व रक्त से नेत्रजन विशिष्ट द्रव्य द्रव व लवण के साथ निकलते रहते है। साधारण स्थिति मे ५००–७०० सी सी या (१७–२५ औस) या अधिक भी द्रव शरीर से २४ घटे मे निकलता है।

प्रतिक्रिया—स्वेद की प्रतिक्रिया आम्लिक होती है क्योंकि स्वेदस्राव मे वसा की ग्रथियो का स्राव भी सम्मिलित होता है।

सावेदनिक (Sympathetic system) नाडीमडल की उत्तेजना या उत्तेजक दवाओ से स्वेद पर कोई प्रभाव नही पडता जब कि परिसावेदनिक–(Parasympathetic) की उत्तेजन दवाई स्वेद पर प्रभाव डालती है। कुछ लोगो का विचार है निदानो की क्रिया से यह कार्य होता है। आयुर्वेद मे पित्त की क्रिया पर सावेदनिक नाडियो की उत्तेजक दवा का असर होता है और पित्तकर्म भी स्वेदकर का प्रभाव है किन्तु इसके द्वारा स्वेद वर्धन की क्रिया का दृष्टिगोचर न होना एक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है।

स्वेद कार्य—१ चर्मस्थ रक्तस्रोतसो (Cutenios vessels) को विस्फारित करके होता है यथा—उष्णस्वेद–स्नान–उपलेप–प्रदेह। औषधिया–अफीम–सुरा–तापहर औषधिया।

२ नाड्यत भागो का उत्तेजित (Nerve endings) करके होता है। एसीटिलकोलीन–पाइलोकारपीन।

३ केन्द्र को उत्तेजित करके—जो औषधिया सुषुम्ना केन्द्रों को उत्तेजित करती है स्वेद केन्द्र को भी उत्तेजित करती है। नरसार कर्पूर (Amonium citrate & Acitate) यह कार्य करते हैं।

प्रत्याक्षिप्त क्रिया के द्वारा केन्द्रोत्तेजन (Reflex Action)

वामक औषधियां—उत्क्लेशकर औपधिया, भय, चिन्ता, क्रोधाविक्य मे भी स्वेद आता है। उष्ण, तीक्ष्ण, सर, कटु, स्निग्ध, रूक्ष या सूक्ष्म द्रव्य स्वेदकर होते हैं।

औषधियां—औपधिया स्वेदोपवर्ग-सहिजन—एरण्ड, आक, पुनर्नवाद्वय, जौ, तिल—कुलत्थ, उडद व वेर यह १० हैं।

स्वेदल द्रव्य—

कलमीशोरा	सप्तपर्ण	कुलत्थ	चाय
नवसादर	सहदेवी	यव	चरमजल
यवक्षार	आक	देवदारु	जौ
चाय	सहिजनत्वक्	तुलसी	वेर
मूली	द्रोणपुष्पी	रोहिष	उडद
जगली तम्बाकू	एरण्ड	सोठ	तिल
सुरजान	पुनर्नवाश्वेत	दालचीनी	कुलत्थ
आकारकरभ	पुनर्नवारक्त	सौंफ	श्रीवेष्टक तैल
चोपचीनी	वत्सनाभ	शीतलचीनी	अहिफेन के योग या सत्व
अजमोद	कर्पूर	गधक	तारपीन का तैल
यवानी	फिटकडी	तवाक्षीर	
रवाकसी	रसोन		

स्वेद केन्द्र को उत्तेजित करनेवाली औषधियां—कर्पूर, नरसार, सर्जिका क्षार, कल्मीशोरा, क्षारवर्ग की प्राय सब औपधिया, सप्तपर्ण—कटुनाई—तुलसी—तुलसी— द्रोणपुष्पी—पटोल पत्र, अर्कमूलत्वक—अतीस—चिरायता।

नाड्यत भागो को उत्तेजित करनेवाली—एसिटिल कोलीन—उष्ण-तीक्ष्ण कटुरस युक्त औपधिया, नाड्यत भागो को उत्तेजित करती है। सखिया, कूठ—पुष्करमूल हरताल—अजमोदा।

त्वचागत रक्तवाहिनी का प्रसारण—१. सूर्यताप, अग्निताप—उष्णता, २ उष्ण स्वेद, वाष्पस्नान, परिश्रम—व्यायाम अभ्यग—उष्णजलस्नान, उष्णपेय—चाय—क्वाथादि, सुरा—आसव, मद्यार्क—अहिफेन, तूतिया—मदनफल—ताम्रभस्म, सोमल—हरताल—वत्सनाभ। क्लोरेलहाईड्रेट सालिसिलेट्स अल्कोहल इनसे भी होता है।

केन्द्र को प्रतिफलित करनेवाली उत्तेजना—अनग्निस्वेद—कठ व आमाशयिक उत्तेजना द्वारा, उष्णवस्त्रधारण, वामक औषधि प्रयोग उष्ण तीक्ष्ण, सर, स्निग्ध–सूक्ष्म–गुरुगुण द्रव्य प्राय इस क्रिया को बढाते हैं।

संतापहर—करज पित्तपापडा, खाकसी, गिलोय, चिरायता, महानिम्बत्वक्–पलास पापडा, नीम–ब्रह्मदडी–विशल्यकरणी (जदवार) अतिविषा–गूमा, कर्पूर–लोहवान–मुलहठी–कटुकी–अहिफेन–वत्सनाभ।

१. वामक औषधियां, २. मूत्रल औषधिया, ३. ज्वरहारक औषधिया, ४. अवसादक औषधिया, ५ दौर्बल्यकर औषधिया, ६ रक्तसचालन बढाने वाली औषधिया।

स्वेदकर क्रिया मे बाह्य व आभ्यन्तर दो प्रकार की क्रियायें विवक्षित है।

१. बाह्य (अ) स्वेदनक्रिया–स्वेद के चतुर्दश भेदो की विधि से स्वेद
(व) बाह्यावरण–उष्णवस्त्रधारण–धूप मे बैठना, अग्निसेवन अतिभीड का होना।

आभ्यन्तर में— १–स्वेदोपग कषाय–५ तोले की मात्रा–२ घटे पर।
२–पचतिक्त कषाय–५ तो.
३–गुडूच्यादिकषाय–५ तो
४–षडगपानीय–दुर्बल काय मे शीघ्र स्वेद लाता है।

अन्यरसादि—हिंगुलेश्वर–२ रत्ती | खाकसीर–१ माशा — १ मात्रा, ऐसी ४–५ मात्रा

मृत्युजय–२ रत्ती | पिप्पली–२ रत्ती — ऐसी ४ मात्रा

चण्डेश्वर–२ रत्ती=४ मात्रा

महाज्वराकुश–२–४ रत्ती—४ मात्रा

कस्तूरी भैरव– | वृ कस्तूरी भैरव — ४ रत्ती की मात्रा मे=३ मात्रा

शीघ्र स्वेद क्रिया करने के लिये–खाकसीर–नरसार, कलमीशोरा, पीपला मूल–पिप्पली–गोदन्ती का भस्म मिलाकर देने से स्वेद शीघ्र आता है।

अतिस्वेदल–खाकसीर १–४ माशे=१ मात्रा

रसगधकविष–मिश्रित औषधिया अवसादक होकर स्वेद लाती हैं। कर्पूर द्रव–पानी मे कर्पूर डालकर क्वथित द्रव–दीपन पाचन स्वेदल है।

गोदन्ती ४ रत्ती, कलमीशोरा ४ रत्ती मिलाकर१ मात्रा–ऐसी ३–४ मात्रा देने से स्वेदकर।

स्वर्ण मिश्रित–औषधिया भी स्वेदकर होती है।

स्वेदल उपचार—१ कर्पूर–सेधानमक की पोटली को पैरो के तलवे पर रगड़ना।

२ दीपनपाचन–कोई क्वाथ–मिलाकर वस्त्रावगुंठन ।

३ धूप

४. अष्टांग धूप–लाख, निम्बपत्र, वच, कूठ, हरड, जौ, सर्षप–घृत ।

५ अपराजित धूप–गुग्गुलु–सदा–वच, राल, निम्ब, आक–अगर–देवदारु ।

६. माहेश्वर धूप–हिंगुल–देवदारु, श्रीवेष्टक–घी–जौ, अस्थि, खस व कुटकी, सरसो–निम्ब, सर्पकांचली मार्जारविट्, गोशृंग, मदनफल, कटेरी–वनौला, मूली, छागविट्, शृगालविट्, हस्तिदंत, कोक्षजा मूत्र की भावना दे सुखाकर रखें ।

४ अजवायन का धूम–वस्त्रावगुंठन पूर्वक

५ चातुर्थिक धूम–कृष्णाम्बरदृढावद्ध गुग्गुलुम्पुच्छजः
धूप. चातुर्थिकं हन्तितम सूर्यइवोदित. ।

मानदंड–शीत शूल व्युपरमे–स्तमगौरव निग्रहे
संजात मार्ददेस्वेदे–स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ मैं० र०–ज्वर

स्वेद्य– प्रतिश्याये च कासे च हिक्काश्वासेष्वलाघवे
कर्णमन्याशिर शूले, स्वरभेदे गलग्रहे ।
अर्दितैकांगसर्वांग पक्षाघाते विनामके
कोष्ठानाह विवन्धेषु–मूत्राघाते विजृम्भके ।
पार्श्वपृष्ठकटीकुक्षिसंग्रहे–गृध्रसीषु च ।
मूत्रकृच्छे महत्वे च मुष्कयोरङ्गमर्दके ।
पादजानूरुजंघार्ति संग्रहेश्वयथावपि
खल्लीष्वामेषु शीतेच वेपथौ वातकण्टके ।
संकोचायामशूलेषु स्तम्भगौरव सुप्तिषु ।
सर्वांगेषु विकारेषु–स्वेदन हितमुच्यते– च० सू० १४

अस्वेद्य– कषाया मद्यनित्यानां गर्भिण्या रक्तपित्तिनाम् ।
पित्तिनां सातिसाराणां रूक्षाणां मधुमेहिनाम् ।
विदग्ध भ्रष्टब्रध्नां, विषमद्यविकारीणाम् ।
श्रान्तानां नष्ट सज्ञानां, स्थूलानां पित्तमेहिनाम् ।
तृष्यतां–क्षुधितानां च क्रुद्धानां शोचतामपि ।
कामल्युदरिणां चैव क्षतानामाढ्यरोगिणाम् ।
दुर्बलाति विशुष्काणां अक्षीणौजसां तथा ।
भिषक् तैमिरिकाणां च न स्वेदमवतारयेत् ॥ च० सू० १४

अतिस्विन्न– पित्तप्रकोपो मूर्च्छा च शरीरसदनं तृषा ।
दाह स्वरांग दौर्बल्य मतिस्विन्नस्य लक्षणम् ॥

संज्ञानाशकर
(Anaesthetics)

पर्याय—सम्मोहन, सज्ञाहर, स्वापजनन, सुप्तिजनन एनिस्थेटिक (Anaesthetics)

इतिहास—ईस्वीय सन् से ५००० वर्ष पूर्व, सज्ञास्थापन, सज्ञाहर, सम्मोहन आदि क्रियाओ का ज्ञान भारतीय चिकित्सक रखते थे। चरक व सुश्रुत का वर्तमान सस्करण जो आत्रेय संहिता, अग्निवेश सहिता व धन्वन्तरि सहिता के संदर्भ है इनमे इसका विवरण मिलता है। इनका प्रायोगिक विवरण व रोगो मे लाक्षणिक चिह्न दोनो पाये जाते हैं। एतदर्थ चरक[1] के कुष्ठ लक्षणो मे सुप्तता, वातरक्त में स्पर्शज्ञत्व, सज्ञानाश मे उपचार, इसी प्रकार सुश्रुत[2] ने कुष्ठ रोग मे स्वाप, वातरक्त मे स्वाप व त्वक् सुप्ति आदि शव्दो की भरमार है जिनका अर्थ एकाग या किसी शरीराश पर सुप्ति होना या अर्धांग या सर्वांग की सज्ञानाश होकर सन्यास मद मूर्च्छा का होना वर्णित है। चरक ने सूत्रस्थान अध्याय चार मे संज्ञास्थापन कषाय का विवरण दिया है। जिसका अर्थ विशिष्ट स्थान की लुप्त होती हुई सज्ञा का पुन' स्थापन करना या रोकने का विवरण मिलता है। सुश्रुत ने क्रिया कर्म मे सज्ञानाश कर विधि का प्रयोग[3] तीक्ष्ण मद्य पिलाकर करने का सुझाव दिया है जिसमे शस्त्र कर्म का ज्ञान रोगी को न हो। यही नही प्राणी क्या सज्ञाधारण करता है क्योकि वह व्यवायी, विकाशी औषधि से नष्ट होता है यह भी वर्णन किया है यथा—

> प्राणो ह्याभ्यन्तरो नृणां, वाह्यप्राणगुणान्वित
> धारयत्यविरोधेन, शरीरं पांचभौतिकम्॥ सु० सू० १७–१३

---

१. चरक—१. निदानस्थान अ०–६–कुष्ठरोग मे सुप्तता
२. च० चि० अ० २९ के १६–१७ वे श्लोक मे स्पर्शज्ञत्व व सज्ञाशून्यता
३. च० चि०–अ० ६–८६ सज्ञानाशेस्य दापयेत

२ सुश्रुत—सु० नि० अ० ५–स्वाप कुष्ठरोग
सु० नि० अ० १–स्वाप-त्वक् सुप्ति (वातरक्त)

३ प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्ठं, भोजयेदातुरं भिषक्।
मद्यपं पाययेन्मद्यं, तीक्ष्णं योवेदना सह।
न मूर्च्छत्यन्त सयोगात् मत्त शस्त्रं न बुध्यते॥सु०सू०१७–११

अर्थात्—आभ्यन्तर प्राण वाह्य प्राण से जीवनात्मक प्राण तत्व का आदान कर शरीर की प्राणसंज्ञा धारण करता है इसकी विधि का विघटन संज्ञा नाश कर होता है। सुश्रुत[1] ने शस्त्र कर्म मे यंत्र के द्वारा मूर्च्छित करने का भी प्रयोग लिखा है। भोज प्रबंध[2] मे मोहनचूर्ण का विवरण है। मादक, व्यवायी, विकाशी औषधियो का विवरण व कर्म आयुर्वेद के द्रव्यगुण मे पाया जाता है। अतः संज्ञा स्थापन की विधि का ज्ञान भारतीय चिकित्सकों को था। वह तीक्ष्ण मद्य निर्माण विधि जो शीघ्र मादक होकर मूर्च्छा लाती थी, वेहोश करती थी आज ज्ञात नही है। वह कैसी विधि है जो वाह्य आभ्यन्तर प्राण की धारण शक्ति को कम करके तमोगुण बढाकर मूर्च्छा व सन्यास पैदा करती थी लुप्त है। तीक्ष्ण मद्यपान करने, मादक द्रव्य सुंघाने से, श्वास प्रश्वास मे साथ देने से प्राण तत्व की कमी होकर विसंज्ञता उत्पन्न होती है यह सिद्धान्त ही सुश्रुत का सिद्धान्त था। आज वह वैद्य नही करते आधुनिक चिकित्सक कर के लाभ उठाते हैं। क्लोरोफार्म तीव्र मद्य प्राण तत्व की कमी को धीरे धीरे उत्पन्न करता है और वेहोशी लाता है।

चरक सुश्रुत, वाग्भट ने मद्य की अधिक मात्रा मे मूर्च्छित होना '**काष्ठी भूत मृतोपम**' लिखा है अत. यह विज्ञान स्पष्ट वतलाता है कि मादक द्रव्य, विष द्रव्य इनमे प्राणोपरोध कर व्यवायी विकाशी गुण व प्रत्येक के १०–१० गुण प्राणधारक ओज के १० गुणो के विपरीत होकर संज्ञा शून्य कर, नाशकर संज्ञाहर वनते हैं।

मद्य अल्प मात्रा मे उत्तेजन, अधिक मात्रा मे अवसादन करके मादकता बढ़ाते हैं। आज भी रक्त मे ०१ प्रतिशत अल्कोहल कोई प्रभाव नही करता, .०१५ प्रतिशत होने पर असबद्ध प्रलाप, (Incoordination), २ से ४ प्रतिशत मे मादकता, (Moderate intoxication), ४–५ प्रतिशत के लक्षण गभीर प्रमीलक–(Deep Norcosis), ७ से ८ प्रतिशत मद्य की मात्रा रक्त मे होने पर मृत्यु तक हो जाती है। इनके सेवन से प्राण वायु की क्रिया में असम्यक परिवर्तन होता है और धीरे वह विसंज्ञता की तरफ बढाकर संज्ञाशून्य हो जाता है। प्राचीन चिकित्सक तीव्र मद्य मे उसकी आशुकारित्व शक्ति के

---

१ ग्रीवावंधा पत्रेण–(सु सू अ २७)
वाहुरज्जुलतापाशैः कंठपीडनाद्वायु प्रकुपित श्लेष्माणं कोपयित्वा स्रोतो निरुणद्धि, लालास्रावं, फेनागमन, संज्ञानाशं चापादयति।

२ **ततस्तावपि राजानं, मोहचूर्णेन, मोहयित्वाशिर कपालमादाय तत्करोटिकापुटेस्थित शफर कुलंगृहीत्वा कश्चिद्भाजने निक्षिप्य सधान करण्या, कपालं यथावदास्थाप्य संजीविन्या संजीवयित्वा तस्यैरदर्शयताम्। भोजप्रबंध.**

द्वारा विसंज्ञता (Norcosis) मानते हैं। यही विसज्ञता स्तब्धता और प्रमीलकावस्था–मूर्च्छा आदि उत्पन्न करती है। मद्य के १० गुणो का प्रभाव आशुकारित्व से प्रारम होता है।

प्राण तत्व की हानि, अप्राणतत्व की वृद्धि विसज्ञता की तरफ ले जाती है यह प्राचीन चिकित्सक जानते थे।

आधुनिक सज्ञानाशकर या विसज्ञतत्व का अर्थात् (Anaesthesia) का अर्थ ग्रीक शब्द 'ज्ञान न होना'(Notfeeling) या (Insensibility) है इसका अर्थ सज्ञा का नाश ही नही अपितु ज्ञान का नाश जिसमे सामान्य सज्ञा शून्यता से विशिष्ट सज्ञा शून्यता ज्ञानाभाव अर्थ होता है। यथा—

(1) This means not only loss of all modalities of sensation but loss of consceousness

(ii) Norcosis–stuper or production of effects varying from light sleep to consceousness.

इसका ज्ञान आधुनिक चिकित्सको को सन् १९०१ मे हुवा।

इसका ज्ञान ओवरटन को १९०१ मे व मेयर को १८९९ मे हुवा। इसमे १७७६ नाइट्रास ऑक्साइड प्रथम विसज्ञकर द्रव्य था। जिसे प्रिस्टले ने पता लगाया था। १८४२ मे ईथर का ज्ञान हुवा। १८४६ मोरटन ने ईथर का प्रायोगिक क्रम बनाया। १८९४ मे सिम्पसन ने क्लोरोफार्म का पता लगाया।

क्रिया–Inhebition of sensory motor and Reflex-action

उत्तम सज्ञाहर—१ सरलता से उपयोग मे आवे।
२. बिना किसी बेचैनी के सज्ञा शून्य कर दें।
३. सरलतासे शरीर से निकल जाय।
४. ज्ञान व पेशी दार्ढ्य कम कर दें।
५ अधिक गहरा प्रभाव न करे।
६ पश्चात् कालीन प्रभाव न हो।

इनका विचार है कि शरीर मे मादक द्रव्य की घुलनशीलता, शोषण और व्याप्ति (Solubility, Absorption and permeability) ही विसज्ञकर सूत्र है। अत इस आधार पर,उनका विचार भिन्न भिन्न द्रव्यो की उपस्थिति और प्रयोग पर गया और कई विसज्ञकर द्रव्य ज्ञात हुये।

सुश्रुत की विसज्ञकर प्रणाली को आधुनिक चिकित्सको ने सक्रिय रूप दिया। श्री क्वास्टल (Qwastal) और उनके साथियो ने एक सिद्धान्त निकाला जिसका अभिप्राय था–The theory that Anaesthesics result from of depression in axidative metabolism.

अर्थात् वह विधि जो आक्सीजन पर प्राणवायु की मात्रा का सात्म्यीकरण कम कर दे, विसज्ञता उत्पन्न कर सकती है।

द्वितीय—सिद्धान्त—शक्ति की प्रायोगिक कमी को करना।

Theory that Anaesthesia is a result of decreased utilisation of energy.

यह भी विधि प्राचीन चिकित्सकों की ही है जिसे मेक्लवीन (Mecl wain) और उनके साथी तथा क्लीन (Klein) ओलसेन (Olsen) रिचटर (Richter) ने प्रधान माना। उनका सिद्धान्त था कि केवल आक्सीजन की खपत मे कमी होने से ही विसज्ञता नही होती अपितु शक्ति का निरतर प्रयोग जो शरीर मे होता है उसकी कमी कर देने से विसज्ञता आती है।

चरक व सुश्रुत[1] प्राण की शक्ति धारक तत्व ओज के गुणो को कम करनेवाले मादक व विष द्रव्य को विसज्ञ कर प्राणघातक मानते है।

तीसरा सिद्धान्त—निद्राकर या सज्ञा नाशकर श्लेष्म तत्व की शरीर में वृद्धि करके तमोगुण बढाकर निद्रा लाता है। यह भी विधि आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार चलता है। यथा—

सज्ञाशून्यकर वे तत्व है जो कोलिनेस्टेरज क्रम को बढ़ा कर विसंज्ञ करते हैं।

The theory of relation ship between cholene storage and anaesthetic lag-(3/6 Pharmacology in medicine. By Drill)

संज्ञाहर औषधियां (Anaesthetics)

पर्याय—सज्ञाहर, सम्मोहन, स्वापजनन, सुप्तिजनन।

परिभाषा—जिन औषधियो के प्रयोग से किसी स्थान विशेष या अर्धांग या सर्वांग की सज्ञा—चेतनता अर्थात् सुख दु ख की व स्पर्श ज्ञान की शक्ति हो जाती है वे सज्ञाहर द्रव्य कहलाते हैं।

भेद—यह प्राय ३ प्रकार के होते हैं।

१ सार्वांगिक (General) २ स्थानिक (Local)
३ प्रान्तीय (Regional)

सार्वांगिक—सार्वांगिक चेतनाहर औषधियो से मस्तिष्क की क्रिया अवसन्न होकर भावरुद्ध हो जाती है। ज्ञानवहा नाडीमूल मे अवसन्नता आकर उनका प्रभाव सारे शरीर पर पडता है। इस सम्मोहन क्रिया मे समस्त अग

---

१. मद्यं हृदयमाविश्य, स्वगुणैरोजसो गुणान्।
दशभि दश संक्षोभ्य, चेतो नयतिविक्रियाम्।
लघूष्णतीक्ष्ण—सूक्ष्माम्ल, व्यवाय्याशुग मेव च।
रूक्षं विकाशि विशदं, मद्यं दशगुण स्मृतम्।
गुरुशीतमृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुर स्थिरम्।
प्रसन्नपिच्छिलं स्निग्धमोजो दशगुणं स्मृतम्। च० चि० २४—३०—३४

सम्मोहित होते है । पहले ज्ञानेन्द्रियो की क्रिया मे कमी आती है । श्रवण शक्ति नष्ट होकर वाधिर्य आ जाता है फिर मानस व्यापार नष्ट हो जाता है । कुछ लोग यह कहते है कि सवेदना तो जा सकती है किन्तु उसके सग्राहक मस्तिष्क निष्क्रिय होने से ग्रहण नही करता । केवल हृदय की श्वास प्रश्वास की क्रिया चलती रहती है । जीवन बना रहता है । यद्यपि श्वास प्रश्वास की गतिपर भी इन द्रव्यो का प्रभाव पडता है ।

स्थानिक--स्थान विशेष मे औषधि विशेष के प्रयोग से स्थानिक स्पर्श ज्ञान नष्ट हो जाता है इसमे सज्ञा वनी रहती है केवल इस स्थान विशेष की क्रिया, नाडी क्रिया लुप्त होने से नही हो पाती अत स्पर्श ज्ञान नष्ट हो जाता है ।

प्रान्तिक--किसी वात की नाडी सज्ञावह नाड़ी मे या उसके पार्श्व मे औषधि विशेष का निक्षेप कर के नाडी सवधी क्रिया या वेदना का लोप करते हैं । इसमे उस स्थान की चेष्टावहा नाडियो की सवेदना मस्तिष्क तक नही जाती।

द्रव्य—मद्य, तीक्ष्ण सुरा, कोकेन, अहिफेन, गाजा, भाग, वत्सनाभ, जटामासी, तगर–लागली, ईथर, तारपीन तैल, कार्वोलिक एसिड, हाइड्रोक्लोरेट व शीतलता–वर्फ लवण, कषाय रस का अधिक उपयोग ।

गुणाधार--लघु, रूक्ष, आशु–विशद, व्यवायि, तीक्ष्ण व विकाशि, सूक्ष्म, उष्ण गुण वाले विषादि द्रव्य सज्ञाहर, मादक व विसज्ञकर होते हैं[1] ।

२. लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायि, आशुग, रूक्ष, विकाशि–विशद गुणवाले मद्यादि तीक्ष्ण सुरा सज्ञाहर होते हैं[2] ।

३. प्राणधारक गुण-गुरु, शीत, मृदु, श्लक्ष्ण, वहल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल, स्निग्ध यह दशगुण शरीरधारक शक्ति ओज मे होते हैं[3] । विष व मद्य वर्ग की औषधिया विपरीत कार्य करके सज्ञाहर व प्राणघातक होती है । अत. मोहजनन (Norcolics), निद्राप्रद–(Hypnotics) और मादक (Delerients) मदकारी तथा सज्ञानाशक विप (Poisons) इन सब मे सज्ञाहर शक्तिनिहित होती है ।

इन औषधियो का प्रभाव वाह्य व आभ्यन्तर प्राण की आदान प्रदान

---

१ लघुरूक्ष माशुविशद, व्यवायि तीक्ष्ण विकाशि सूक्ष्मं च ।
उष्णमनिर्देश्यरस दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञै ॥ च चि २३

२ लघूष्णतीक्ष्ण सूक्ष्माम्लं व्यवाय्याशुग मेव च ।
रूक्षं विकाशिविशदं मद्यं दशगुण स्मृतम् ॥ च. चि. २४

३ गुरुशीतं मृदुश्लक्ष्ण बहल मधुरं स्थिरम् ।
प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धमोजो दशगुणं स्मृतम् ।

शक्ति मे कमी करके सज्ञा वारण की क्रिया को नष्ट कर देता है।

इस प्रकार आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद के साहित्य मे इन सज्ञाहर द्रव्यो का प्रयोग कम होता है।

शल्य क्रिया मे इनका प्रयोग होता था और अब भी आधुनिक चिकित्सक करते हैं। इनके अतिरिक्त तीव्र वेदना, शूल–जल अग्निदग्ध की पीडा पर इनका प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक सूची प्रयोग के द्रव्य––

१ प्रोकेन––(Procaine) यह रक्तवारि मे मिलकर अपना संज्ञा नाशक प्रभाव करता है। प्रतिशत प्रोकेन हाइड्रोक्लोरेट लवणद्रव योग से इजेक्ट करने पर अपना प्रभाव २० मिनट मे कर देता है। स्थानिक सज्ञा शून्यता के लिए इसका प्रयोग अधिक होता है।

२ एमाइलोकेन, हाइड्रोक्लोराइड–या स्टोवेन (Stovain)

३. आर्थोकेन (Orthocain) स्थानिक सज्ञा शून्यता मे इसका प्रयोग अधिक होता है।

४. पाटोकेन भी स्थानिक सज्ञाहर है (Puntocain or Amethocaine

५ सिनको-के-हा (Cenetho caine Hydrochloride) या न्यूपर केन या परकेन आदि स्थानिक, सज्ञा शून्यता मे प्रयुक्त होते हैं। वेदना शाति के लिये अहिफेन का मुख द्वारा या स्थानीय प्रलेप वेदनाहर होता है। अहिफेन सत्व मारफिया का प्रयोग सार्वांगिक वेदनाहर के रूप मे बहुश प्रयुक्त होती है।

१. भगा, गाजा व इनके सत्व चरस का प्रयोग भी अथवा संविदा सार का प्रयोग भी मादक वेदनाहर, सज्ञाहर होता है प्रभाव सार्वांगिक होता है।

२. कर्पूर का प्रयोग स्थानिक वेदनाहर व आंगिक वेदनाहर के रूप मे होता है।

३ वेलाडोना का व उसके सत्व एट्रोपीन का प्रयोग भी वेदना स्थापक की तरह करते हैं।

४ चरक ने वेदना स्थापक गणो मे १० द्रव्यो का यथा–शाल, कट्फल, कदम्ब, अद्रक तृग, मोचरस, शिरीष, वजुल, ऐल वालुक, अशोक को वताया है।

५ लवण व कषाय का अधिक प्रयोग सर्वांगिक सज्ञा शून्यता करता हैं।

६. व्यवायि–विकाशि गुण वाले द्रव्य आशुकारी व मादक होते है इनमे निद्राकर स्वप्नजनन और मादक प्रभाव होकर विसज्ञता उत्पन्न होती है।

इस प्रकार सज्ञा शून्य कर द्रव्यो का विवरण मिलता जुलता है।

७. सोमका प्रयोग भी मादक के रूप मे किया गया है।

मूत्रकर-(Diuretics)

पर्याय—मूत्रकर, मूत्रल, मूत्रविरेचन, मूत्रकर्षी, मूत्रविरेचनीय, मूत्रजनन

परिभाषा—जो द्रव्य मूत्र को अधिक मात्रा में लावे उसे मूत्रल कहते हैं।

मूत्रस्य विरेचनं करोतीति मूत्रविरेचनीयम् (चक्र दत्त)

मूत्रस्य विरेचन बहिःसारणं तत्रहितम् (यो०)

मूत्रविरेचनीयमिति मूत्रस्य वर्तनायहितम् (ग०)

इन परिभाषाओं व व्याख्याओं को देखकर मूत्र की उत्पत्ति कराकर बाहर निकलना, मात्रा से अधिक मूत्र लाना, मूत्र को विशेष रूप से रेचन करना-वर्तन कराना इत्यादि यह सब कर्म मूत्रल औषधि मे आते हैं।

इन सब कर्मों को ध्यान मे रखकर दो विभाग हो सकते हैं। एक वर्ग तो वह जो कि मूत्र सामान्यमात्रा मे बढाते या प्रवृति उत्पन्न करते हैं, द्वितीय, जो अधिक मात्रा मे बढाते तथा विरेचन और प्रवाहण भी कराते हैं।

अत· १. मूत्र जनन, मूत्रल, मूत्रकर को प्रथम वर्ग मे।

२. मूत्रविरेचनीय, मूत्रकर्षी, मूत्रविरेचन को दूसरे वर्ग में विभक्त कर सकते हैं।

प्रथमवर्ग—मूत्रजनन-मूत्रकर-मूत्रल (Stimulating diuretics)

द्वितीयवर्ग-मूत्रविरेचन, मूत्रविरेचनीय (Hydrogogue diuretics)

Water control anterior & posterior pitutary hormones by thyroxine Adrinal cortical hormones Glomeruler water 85% Reabsorbed

द्रव्य—१ गोक्षुर-अनतमूल, शीतलचीनी, मौलसिरी के बीज, अपामार्गपत्रस्वरस, पाषाणभेद, वनगोजिह्वा, हुलहुल, वत्सनाभ, बहुफली, सहदेवी, पाठा, पलाश, पञ्चतृण, काकमाची अपराजिता, नारियल, पुनर्नवा, सहिजना, वनपलाण्डु, सप्तपर्ण, भूमिआमलक, तालमखाना, अगस्त के पुष्प, सुगधवाला, नीलकमल, प्रियगु, धाय के पुष्प, मूत्रवर्ग के क्षार।

२. कलमीशोरा, यवक्षार, कर्पूर, नौसादर, सौभाग्य तथा अन्य क्षार, शिलाजतु।

३ तरल द्रव्य, जल, शीतल-औषधिया, शीतलता, शीत।

इन औषधियो की मूत्र बढाने की क्रिया एक ही प्रकार की नही होती। यह कई प्रकार से कार्य करती हैं। यथा—

Adrinal cortical hormones

१: मूत्रोत्सिका (Glomarule) को अधिक सख्या मे कार्य कराकर।
२. मूत्रोत्सिका मे रक्त प्रवाह बढाकर या वृक्को मे रक्त प्रवाह बढाकर
३ रक्त की आम्लिक क्रिया बढाकर
४ रक्त मे लवण की मात्रा बढ़ाकर
५. वृक्कों को उत्तेजित करके

मूत्रोत्सिकाओ को अधिक मात्रा मे कार्यकर बनाकर–यह २० लाख मूत्रोत्सिकाये होती है। सब एक साथ कार्य नही करती-कुछ करती है कुछ नही। अत सबको कार्य प्रवृत्त करने पर मूत्र अधिक बनता है। इस तरह की–केफीन, मूत्रीया–गोमूत्र, महिषीमूत्र, मूत्रक्षार, चाय, काफी।

२ मूत्रोत्सिका—प्रवाह या वृक्कीय रक्त प्रवाह वढाकर–हृदय की क्रिया दौर्वल्य मे वृक्कीय रक्त प्रवाह वढ जाता है। लगातार इस प्रकार की स्थिति रहकर मूत्र कम हो जाता हैं। जब वृक्को की शिराये रक्त को वापस करने मे असमर्थ होती है तो उनमे रक्त संग्रह होकर मूत्रोत्पत्ति कम हो जाती है। इस दशा को सुधार, रक्त–प्रवाह को वढाने से मूत्र प्रवृत्ति अधिक होती है। इसमे हृदय और मूत्रल दवाये लाभ करती हे। अर्जुन हृत्पत्री, कासनी, अपामार्ग स्वरस, गोक्षुर स्वरस। हृदय को वल देकर रक्तप्रवाह वढाकर सुरा (स्प्रिट इथरिसनाइट्रोसी–) मूत्रप्रणाली मुख– विस्फारित करके तव करती है।

३. रक्त की अम्लिक क्रिया वढाकर––रक्त मे क्षारीयता को कम करके जो अम्लता की वृद्धि करते हैं ऐसे द्रव्य भी मूत्रल हो जाते हैं। यथा—नरसार, कलमीशोरा, टकणाम्ल (Boric Acid) अनारदाने चावल, कुलत्थ, नीवू, इमली, चूक व अन्य अम्ल रस का सेवन।

४. रक्त की क्षारीयता वर्धन द्वारा—इसमे रक्त की क्षारीयता वढ जाने पर लवणमात्रा अधिक होकर रक्त से इन्हे निकालने की क्रिया मूत्रल होती है। लवण, यवक्षार, पलाशक्षार, सर्जिकाक्षार, सोडावाईकार्व, मूत्रक्षार, गोमूत्र, महिषीमूत्र (एमोनिअमसाइट्रेड, एमोनियम एसीटेट इत्यादि) प्रवाल, शख, शुक्ति, वराटिका, चूना इत्यादि।

५ वृक्को को उत्तेजित करके––वृक्को मे क्षोभ पैदा कर के उसकी क्रिया वढाकर वहुत से द्रव्य मूत्रल कार्य करते हैं–क्षार व अम्ल वर्ग की वहुतसी ऐसी औपधिया है। कुछ सुगधित तैल भी इस प्रकार की क्रिया करते हैं। यथा—चन्दन का तैल, कवाव चीनी का तैल (Cubeb oil) श्रीवेष्टक तैल जूनीपर तैल।

पारद के लवणयुक्त––कज्जलीयुक्त क्षारीय द्रव्य मिश्रित पदार्थ, शीतल चीनी, नारिकेल द्रव, अपामार्ग स्वरस–कासनी–सहदेवी– सूर्यभक्तास्वरस, वनपलाण्डु, भूम्यामलकी स्वरस, तालमखाने का क्षार, मकोय का स्वरस, अम्ल लोणिका–(कुलफा), पपीता, हरमल, हाउवेर, अलसी, खट्टा अनार, अनन्नास, ऊट कटीरा, सौफ की जड़, हसराज, पोदीना, पालक के वीज, कुलफाके वीज, मूली के वीज, खीरे के वीज, यवासा, चिरायता, वदरी पापाण, गोखरु, रेवद-चीनी, शरपुखा, कलमीशोरा, पलाशपुष्प, शिलाजीत, मंजीठ–नौसादर।

गोमूत्र (यूरिया)—मूत्र आत्रो मे शोषित हो जाता है और इसमे का यूरिया शक्तिप्रद मूत्रल कर्त्ता होता है। यह जल का शोषण रोकता है और

मूत्र के Osmetic tension को वनाये रखता है। मिलर और Feldmen ने १०-२५ ग्राम तक यूरिया देकर दिन मे तीन वार (५० प्रतिशत द्रव मे) अच्छे लाभ प्राप्त किया। (५० ग्राम तक नित्य देने मे शोथहर हो जाता है।

५ से १ प्रतिशत Solution क्विनीन के साथ इजेक्शन देने मे लाभ प्राप्त होता है।

मूत्रविरेचन, वहुमूत्रकर, तीव्रविरेचन (Hydrogogue diuretics)

२. द्वितीयवर्ग मे मूत्रविरेचनीय व मूत्रविरेचन को इसलिये प्रयोग किया जाता है कि मूत्रकृच्छ्र मे मूत्राघात, (जव मूत्र न निकलता हो,) अश्मरी, शर्करा और मूत्राश्मरी के रोगो मे जव मूत्र के साथ छोटे छोटे कण, मूत्र मे प्रक्षिप्त होकर के जव मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रसग कर देते है तव इस वर्ग का प्रयोग होता है। यह वलपूर्वक मूत्रसस्थान से कार्य कराकर के मूत्र की उत्पत्ति कराते हैं।

इस निमित्त सुश्रुत में—वीरतर्वादिगण, वृहत्यादिगण, मुष्ककादिगण, परुषकादिगण, तृणपचमूल का प्रयोग किया है।

इनमे विशेपकर अश्मरी द्रावक (Lithontriptic or Antilithices) औपधियो के लिये मुष्ककादिगण, वीरसर्पादिगण, वृहत्यादि को विशेपरूप से प्रयोग किया है। यथा—

वीरतर्वादिको ह्येष गणोवातविकारनुत्।
अश्मरी शर्करामूत्रकृच्छ्राघात रुजापह ॥

द्रव्य—वीरतरु, सहचर-(पीत नील-पुष्पी) द्वय, दर्भ, वन्दाक, गुन्द्रा, नल, कुश, काश, पापाणभेद, अग्निमथ, मूर्वा, अर्क-अपामार्ग, श्योनाक, उत्पल, व्राह्मी, गोक्षुर।

मुष्ककादिगण—मुष्कक, पलाश, धव, चित्रक, मदन, कुटज, शिंशिपा, स्नुही-त्रिफला।

मुष्ककादि गणो ह्येष, मेदोघ्न शुक्रदोषहृत्।
मेहार्श पाण्डुरोगाश्म, शर्करा नाशन पर. ॥

वृहत्यादिगण—वृहती, कटकारी, पाठा, मुलहठी, इन्द्रयव यह गण भी मूत्रकृच्छ्र हर हैं।

परूषकादिगण—परूपक, द्राक्षा, कट्फल, दाडिम, राजादन, कतकफल शाक, त्रिफला।

यह गण मूत्र विरेचन न होकर मूत्र शोधन है।

तृण पंचमूल के द्रव्य—कुश, काश, नल, दर्भ इक्षुवालिका। इनमे प्रायः सव मूत्र विरेचन है।

इस प्रकार इन औषधियों के अतिरिक्त–शिलाजीत लोहवान के सत्व, मौलसिरी पुष्प, सगेयहूद का प्रयोग शीघ्र ही मूत्र की मात्रा बढा देता है। अश्मरी शर्करा जन्य मूत्राघात मूत्रकृच्छ्र और मूत्रावरोध मे ऊपर के गणो के द्रव्यो का प्रयोग सतोषजनक लाभदायक होता है। विशेषरूप से इसमे स्निग्ध किन्तु मूत्रल औषधिया देते हैं। शीतउपचार–शीतजल के टब मे बैठाना, शीत प्रलेप करना, शीत परिषेक करना भी लाभ प्रद होता है।

मूत्रकृच्छ्र–मूत्राघात अश्मरी प्रकरण के योग प्राय मूत्रल और मूत्र विरेचन होते हैं यथा––

१. तृणपचमूल कषाय–पित्तज कृच्छ्र को दूर करता और वस्ति विशोधन होता है। यथा-–

२. पचतृण क्षीरम्–

३ त्रिकण्टकादि कषाय–त्रिकण्टक–आरग्वध, कास, दुरालभा–पाषाण भेद

४. धात्र्यादि कषाय } धात्री, द्राक्षा, विदारी, यष्टी, गोक्षुर।
५ वृहत् धात्र्यादि }

६. शतावर्यादि क्वाथ–शतावरी–कुश–काश–श्वदष्ट्रा, विदारी, शालि–इक्षु–कशेरु।

७. हरीतक्यादि–हरीतकी–गोक्षुर, राजवृक्ष, पाषाणभेद–यवासक।

८ यवक्षार–सितायोग–जलेन।

९. हुल हुल के वीज–शीतकषाय।

१० तारकेश्वर रस–रस–गध – लौह–वग –अभ्र– दुरालभा–यवक्षार–हरीतकी–गोक्षुर वीज (पचतृण–कुष्माण्ड स्वरस भावना)–मात्रा २–४ रत्ती।

११. मूत्र कृच्छ्रान्तक रस––

१. वरुणादि कषाय } ५ तोला–मूत्रकृच्छ्र–अश्मरी भेदन–द्रावण
२ वृहत वरुणादि कषाय }

मूत्रजनन––१ सामान्य परिभाषा––जो द्रव्य मूत्र की उत्पत्ति करते हैं वही मूत्रजनन कहलाते हैं।

२ पूर्व मे मूत्रोत्पादन की जो क्रिया है वही जनन की भी है। इसमे केवल मात्रा की अधिकता सामान्य रूप से मूत्र राशि की होती है। अत॰ जनन की सज्ञा दी गई है।

आयुर्वेद में मूत्रोत्पादक अंश और उनके स्थान का विवरण––

पक्वाशयगतास्तत्र नाड्यो मूत्रवहास्तु या ॥
तर्पयन्ति सदा मूत्र सरित सागरं यथा
सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मुखान्यासां सहस्रश ॥
नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयान्तरात्
जाग्रत स्वपतश्चैव स नि स्यन्देन पूर्यते ॥
आमुखात्सलिले न्यस्त पार्श्वेभ्य पूर्यते नव.।
घटो यथा तथा विद्धि वस्तिर्मूत्रेण पूर्यते ॥

स्थान— नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवंक्षणशेफसाम्
एकद्वारस्तनुत्वक्वो मध्ये वस्तिरधोमुख ॥

बस्ति— वस्तिर्वस्तिशिरश्चैव पौरुषं वृषणो गुदः।
एकसंबन्धिनो ह्येते गुदास्थिविवराश्रिता ॥
अलाब्वा इव रूपेण सिरास्नायुपरिग्रह ।
मूत्राशयो मलाधारः प्राणायतनमुत्तमम् ॥ सु. नि. ३।१८।२०

दीपनीयम्

(Appetisers)

पर्याय—दीपनम्–दीपनीयम, अग्निदीपनम्, अग्निसंधुक्षणम्, अग्निपुष्टिद अग्निदम्।

परिभाषा—१ पचेन्नामं वह्निकृत दीपनं तद्यथाग्निसि । शार्ङ्गधर

२. यदग्निकृत पचेन्नामं दीपनं तद्यथाघृतम् ।
दीपन ह्यग्निकृत्वामं कदाचित् पाचयेन्नवा। अ० हृ० सू० १४-७

३. दीपनीयं वह्नेरुद्दीपनायहितम् । (ग०)

४. दीपनमन्तरग्ने सधुक्षणम्, तस्मैहितम् – दीपनीयम् (यो०)

५. तदाग्नेयम्–पित्तलान् रसान् गुणांश्च दीपनीयम्–
(र.वै.सू अ. ४–१०)

६. दीपनं त्वग्निकृच्चामं कदाच्त्पाचयेन्न वा–
क्षारपाणि–अरुणदत्त

अर्थात्—ऊपर के उद्धरणो से स्पष्ट है कि जो द्रव्य उदराग्नि को प्रदीप्त कर दे और आमरस या अन्न को न पचावे उसे दीपन कहते हैं। वाग्भट का विचार है कि कभी पचावे या न पचावे अग्निदीपन करे उसे दीपन कहते हैं। अतः अन्त· अग्नि को दीपन करने वाले, भूख लगाने वाले द्रव्य को दीपन कहते हैं।

दीपन–द्रव्य के रस–(नागार्जुन)

१ कटुकाम्ल लवणान् रसान्–तीक्ष्ण उष्ण लघून गुणाश्चाश्रितम्
तदग्निमेव निर्वत्यम् । (र० वै० पृ०–१७६ भाष्य)

अर्थात् जिन द्रव्यो मे कटु-अम्ल व लवण रस रहते है जो गुणो मे तीक्ष्ण उष्ण लघु होते है वे अग्नि तत्व द्वारा ही बनते हैं। दीपन होते हैं।

२ पित्तवर्धक रस और गुण दीपनीय और आग्नेय होते है।

३ सुश्रुत–अग्नि तत्वभूयिष्ठ द्रव्य आग्नेय–दीपन होते है।

दीपनीयगण—पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य चित्रक शृंगवेराम्लवेतस–मरिचाजमोदा भल्लातकास्थिहिंगुनिर्यासा इति दशेमानि दीपनीयानि (च.सू -४)

अर्थात्—	पिप्पली	आर्द्रक	भल्लातकबीज
	पिप्पलीमूल	अम्लवेतस	हिंगु
	चव्य	मरिच	
	चित्रक	अजमोदा	

सुश्रुत ने—	त्रिफलादिगण बिल्वादिगण गुडूच्यादिगण आमलक्यादिगण त्रिकट्वादिगण	को दीपन लिखा है।

इन गणों में—आमला, हरीतकी, बिभीतक, बिल्व–श्योनाक, गभारी–पाटला–अग्निमन्थ, गुडूची, निम्ब, धान्यक, पद्माख–चदन, पिप्पली–चित्रक, सोठ, इतने द्रव्य आते हैं। इनके अतिरिक्त दीपन और भी औषधिया है जिनका विवरण इन गणो मे नही आया है किन्तु दीपन क्रिया करते हैं। यथा—

घृत, शतपुष्पा, सोया, सतरा, नीवू, दालचीनी, जावित्री, जायफल, अर्क, अतीस, यमानी, जीराश्वेत, जीरास्याह, मेथिका, रसोन, पलाण्डु, भगा, कुलिजन मद्य, शोभाजन, लवण, हपुषा, अभ्रक, लौह, शख–प्रवाल, क्षार, सखिया तथा कटु–अम्ल तथा चुक्र, सुगधवाला विडंग, लवण रसवाले द्रव्य पृथिवी–वायु–अग्नि तत्वप्रधान द्रव्य दीपन होते है। यथा—सैंधव, विड, सौवर्चल, चुक्र, यवक्षार, शखद्राव, काजी, चुक्र, सिरका इत्यादि।

विवरण—दीपन औषधिया अपनी क्रिया द्वारा आमाशयिक रस को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति पैदा करती है किन्तु वह मात्रा मे इतना नही होता कि पचाने का कार्य करे। आमाशयिक मे रस वनकर आमाशय मे अल्प मात्रा मे पहुचते ही पित्ताशय व अग्न्याशय के पत्रो मे रस वनाने की प्रवृत्ति प्रारभकर देता है। इस अवस्था मे भूख लगने की प्रवृत्ति होती है। अत आमाशय के पाचकरस की विशेष अवस्था जिसमे पाचक पित्त सचेष्ट होकर अपनी क्रिया उत्पन्न करने की स्थिति को प्रारभ करता है दीपन क्रिया कहते हैं। आमाशय के पाचक रसो के उत्पन्न करने वाली ग्रथिया जव स्वल्प उत्तजित होती हैं तव क्षुधा का उद्रेक होता है। अधिक उत्तेजना पर पाचकरस अधिक वनने लगता है क्षुधातिरोहित हो जाती है–अपेक्षा कृत अधिक उत्तेजना पर रसाधिक्य से वमनच्छर्दि इत्यादि या लालास्राव की प्रवृत्ति होती है। पाचन औषधिया भी प्राय दीपन का कार्य अल्प मात्रा मे करती है। दीपन व पाचन क्रिया समझने के लिये आमाशय की क्रिया का अध्ययन अत्यावश्यक है।

कुछ रोगो की स्थिति मे क्षुधा तो मालूम होती है किन्तु पाचन नही होता। यथा—

१. दुर्वलताजन्य अग्निमाद्य (Atonic Dyspepsia) मे कभी कभी क्षुधाउद्रेक होता है।

२. पित्ताशय शूल के आक्रमण से पूर्व आमाशय की उग्रता वृद्धि में क्षुधापर्याप्त प्रतीत होती है–किन्तु अत्यल्प भोजन मे समाप्त हो जाती है। अत: जब आमाशय उग्रक्रिया नही करता अर्थात् जिह्वा कोमल स्निग्ध हो तब कटु रसात्मक दीपन औषधियां देना चाहिए। आमाशय की उग्रता मे जब जिह्वा फटी हुई, रक्तवर्ण प्रतीत हो तब आमाशय की उग्रता शामक क्षार व लवण प्रधान–अम्ल रस की औषधिया–प्रवाल–शख–शुक्ति–यवक्षार इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

३. चिरकालिक अग्निमाद्य और आमाशय की निष्क्रियता मे तीक्ष्ण औषधिया पारद–सखिया–ताम्र–लौह घटित हो उनका प्रयोग करने पर आमाशय चैतन्य होकर अपनी क्रिया प्रारभ करता है और क्षुधा जो चिरकालीन निवृत होती है लगने लगती है।

नियंत्रण—समान वायु के द्वारा अतराग्नि उदीर्ण होती है और अग्नि दीपन पाचन मे सहायता देती है। यथा–

समानेनावधूतोऽग्निरुदर्य: पवनेन ।
काले भुक्त समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये ।। च. चि १५

अग्निस्थान—

नव्यमत—१ आधुनिक गवेषणाओ से यह ज्ञात हुवा है कि प्राणदा नाडी की एक शाखा उद्रेचिका (Secretary fiber of vagus) के उत्तेजन से आमाशयिकरस का उद्रेचन वढ जाता है और इसका नाम मानसिक रस या दीपन रस (Psychic juice or appetite juice) कहते हैं। इसका उद्रेचन उत्तमसुस्वादु आहार द्रव्य के सुगध से, स्वाद लेने से या स्मरण से होने लगता है।

२. आमाशय की इन ट्रिजिक नर्व की क्रिया द्वारा आमाशयस्थित पाचक रसोद्रेचन स्वत होता है। आमाशयिक रस की उत्पत्ति पर प्राणदा नाडी का अकुश रहता है। जब प्राणदा की परिधीय नाडियो की सिरायें उत्तेजित होती हैं तो आमाशयिक रस का स्राव होने लगता है। स्वाद वहा नाड़ियो की उत्तेजना पर भी यह नाडिया प्रतिफलित क्रिया द्वारा रस स्राव कराती है। कुछ लोगो का विचार है पाचक पित्त का वह अश (Gastrin) जो पक्वाशय की मुद्रिका द्वारीय ग्रहणीकला की ग्रथियो द्वारा उद्रेचित होता है तब आमाशय यकृत और अग्न्याशय पाचक रस बनाना प्रारभ करते हैं। इस दशा मे क्षुधा-प्रतीत होती है और प्रचुर रस जब बनना प्रारभ होती है। क्षुधा तिरोहित हो जाती है और पाचन क्रिया प्रारम होती है।

दीपन द्रव्यो की उत्पत्ति—पाचक सस्थान के विभिन्न स्थानो के उद्रेचित रसो पर यह निर्भर करता है। यथा–

१. मौखिकी नाडी उत्तेजन–(बोधक श्लेष्म की उत्पत्ति जो स्वादु आहार द्रव्य देखकर होने लगता है)

२ प्राणदा नाडी के रसस्रावक सूत्रो की उत्तेजना पर

३. आमाशय के कोष्ठ भाग (Fundus) की उत्तेजना पर—यथा—सुरा, आसव, अरिष्ट के प्रयोग द्वारा जो क्षार व मास रस के सपर्क से होता है।

४ आमाशयिक मुद्रिका द्वारीय (Pylorous) उत्तेजन जो क्षार व मास रस के सम्पर्क से होता है।

दीपन क्रिया करने वाली औषधियां——

चूर्ण	रस	आसव-अरिष्ट	द्रव्यपानक-अवलेह-मोदक
१. सामुद्राद्यचूर्णम्	रामवाण	द्राक्षारिष्ट	जीरकादि मोदक
२ हिंग्वष्टक चूर्ण	अग्नितुडी वटी	द्राक्षासव	शखद्राव
३ सैंधवादि चूर्ण	हुताशनरस	कुमार्यासव	षडगपानीय
४. अग्निमुख चूर्ण	भास्कररस	रोहितकारिष्ट	शार्दूलकाजिक
५ अग्निमुखलवण	अग्निसदीपनरस	उशीरासव	तितिडीकपानक
६. लवणभास्कर	शख वटी	अश्वगधारिष्ट	जम्वीरद्राव
७. यवानीपाडव	महाशखवटी	लौहासव	
८. जीरकाद्यचूर्ण	अग्निरस	तक्रारिष्ट	
९. दाडिमाष्टकचूर्ण	अग्निकुमाररस	कुटजारिष्ट	
१० अभयालवण	नाथिकाचूर्ण	पिप्पल्यासव	
	चित्रकादिलोह		
	लोकनाथरस		
	मानकादिगुटिका		

दीपन— ऊपर के योग दीपन और पाचन दोनो प्रकार के कार्य करते हैं। इन्हे थोडी मात्रा मे प्रयोग करने पर यह दीपन क्रिया करते हैं और अधिक मात्रा मे प्रयोग करने पर पाचन क्रिया करते हैं। अत इनका प्रयोग करते समय चिकित्सक को विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।

पाचन Digestives Digestants

परिभाषा——जो औषधि द्रव्य अपक्व आहार (आमरस) रस, दोषधातु व मलो को पचाती है उसे पाचन औषधि कहते हैं। इस सवध की कई परिभाषायें शास्त्र मे प्रसिद्ध हैं। यथा——

१. **पचत्यामन्नवह्निं च कुर्यात् यत्तद्धिपाचनम्। शार्ङ्गधर**
नागकेशर वह्निद्यात् चित्रोदीपन पाचन ॥

चक्रपाणिदत्त ने—चरक सूत्र स्थान अ २२ श्लोक १३ की लघन की व्याख्या के साथ पाचन की परिभाषा की है वह निम्न रूप मे है——

२ **पचन्तमग्निं प्रतिपक्षक्षपणेन बलदानेन च यत् पाचयति तत् पाचनं**

३ **पचतोऽग्ने पक्तुं शक्तिमधिक यदुत्पादयति तद्द्रव्यं क्रिया वा पाचनमुच्यते। अरुणदत्त**

४. पाचनं पाचयेद्दोषान् सामान्शमनमेवतुं (अ हृदय सू अ १४।७)
५. अग्नेस्तु गुण बाहुल्यात् पाचनं परिचक्ष्महे (र वै. भा, वृ. १८)

ऊपर की परिभाषाओं का स्पष्टार्थ यही है कि जो द्रव्य आमादि दोषो का पाचन करते हुवे पाचन कर्म की प्रगति मे सहायक हो उसे पाचन कहते है।

यह द्रव्य अग्नि दीपन अर्थात् बुभुक्षा उत्पत्ति नही करते वल्कि अन्न को पचाते है। ऐसे द्रव्यो मे जठराग्नि के प्रदीप्त का प्रधानगुण नही होता। कुछ द्रव्य ऐसे हैं जो दीपन पाचन दोनो करते है। यथा—नागकेशर–यह क्रिया मात्रापेक्षिणो होती है। ऐसे द्रव्यो की सज्ञा दीपन पाचन होती है।

नोट—चरक ने दीपनीय गण का पाठ किया है किन्तु पाचन का नही लेकिन क्रिया कर्म मे पाचन[1] कर्म सर्वत्र स्वीकार किया है। साथ ही पाचन के योग्य कौन व्यक्ति है जो इसपर अच्छा प्रकाश डाला है। यथा—

पाचनार्ह— वम्यतीसारहृद्रोग विसूच्यलसकज्वरा।
विवंधगौरवोद्गार हृल्लासारोचकादय।
पाचनैस्तान् भिषक् प्राज्ञ प्रायेणादावुपाचरेत्। च सू. २२।२१

अर्थात्—वमन, अतिसार, हृद्रोग, विसूचिका, अलसक, ज्वर, विवध, गौरव, उद्गार, हृल्लास, अरोचकादि रोगो मे प्रथम पाचन कर्म करना चाहिए।

इनके अतिरिक्त–आमाजीर्ण, आध्मान, संग्रहणी, आमवात, शोथ व अग्निमाद्य की दशा मे पाचन कर्म लाभदायक होता है।

भौतिक संगठन—१. आग्नेय गुण विशिष्ट द्रव्य पाचक होते हैं (र वै.)
२. वाय्वग्नि गुण भूयिष्ट द्रव्य। (चक्रपाणि)
३ जिन द्रव्यो के रस कटुक, अम्ल प्रधान तथा क्षार लवण रस युक्त द्रव्य अप्रधान पाचक होते हैं।
४. उष्णवीर्य आग्नेय द्रव्य पाचक होते हैं।

द्रव्य— १. हरिद्रादिगण
२. मुस्तादिगण
३. पिप्पल्यादिगण
४. वृहत्यादिगण
५. दशमूल
६. वचादिगण
(सु सू ३८)

इनके अतिरिक्त चरक के दीपनीय गण की औषधिया भी प्रायश पाचन होती हैं।

१. **हरिद्रादिगण**—हल्दी दारुहल्दी, पृश्निपर्णी, इन्द्रजौ, मधुयष्टि।

२. **मुस्तादिगण**—भद्रमुस्तक, हल्दी, दारुहल्दी, हरीतकी–आमलक, विभीतक, कुष्ठ, वच, पाठा, कुटकी, काकजघा, अतीस, इलायची, भल्लातक चित्रक।

---

१. चतुष्प्रकारा संशुद्धि पिपासा मारुतातपौ।
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लघनम्॥ च सू २२।१८
पाचनैस्तान् भिषक् प्राज्ञ प्रायेणादावुपाचरेत्। च सू २२।२२

३. पिप्पल्यादिगण—पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, नागर, मिर्च रेणुका, एला, अजवायन, इन्द्रजी, पाठा, जीरक, सर्षप, हिंगु, भारगी, मूर्वा—अतीस, वच, विडंग, कटुकी।

४. वचादिगण—वच, नागरमुस्त, अतीस, हरड, देवदारु—नागकेशर।

५. वृहत्यादिगण—वृहती—कटकारिका, कुटजफल, पाठा—मधुकचेति।

६. दीपनीय गण—पीपल, पिप्पलीमूल—चव्य—चित्रक, नागर, अम्लवेतस मरिच, अजमोद, भल्लातक, हिंगु।

इनके अतिरिक्त भी निघटु के कई द्रव्य है जो पाचन क्रिया करते हैं। उनमे प्रधान धान्यक, रास्ना, रसोन, भाग, पचलवण, चुक्र, जायफल, कुपीलु, लवग, त्वक, तेजपत्र, मुगववाला, वीरण, अर्क, चिरायता, वत्सनाभ आदि तथा—ताम्र भस्म—शख, वराटिका, प्रवाल, नरसार, सर्जिकाक्षार, लौहभस्म—सोमल आदि द्रव्य।

क्रिया वा क्रम—पाचन की क्रिया की परिवृंहण करने के लिए औषधिया कई प्रकार मे कार्य करती है विशेष कर दीपन पाचन की क्रिया आमाशय की क्रिया के आधार पर निर्भर है अत निम्न क्रियाये सभव हैं। यथा—

१ आमाशयिक रस की वृद्धि कराकर।

२ आमाशय की गति वृद्धि कराकर आहार को सूक्ष्माशो मे विभाजित कराकर।

३ आमाशय की क्रिया कराकर शोषण होने योग्य बनाकर।

आमाशयिक स्राव वर्धक क्रिया के भेद—

१ प्राणदानाडी के रस स्रावी ततु (Secretery fibre) के नाड्यत भाग की उत्तेजना से रसस्राव होता है।

२. मानसोत्तेजन (Psychic Secretion) से रसोद्रेचन होने लगता है। इससे क्लेदक बोधक श्लेष्मोद्रेचन व आमाशयिक रस स्वादु—सुगधित आहार देखकर सूघकर होता हैं।

३ आमाशयस्कध (Foundus) को उत्तेजन देकर।

४ मुद्रिका द्वारीय उत्तेजन द्वारा—(Pylorus end) मास रसादि सेवन।

इस प्रकार आमाशय की भिन्न भिन्न क्रिया द्वारा पाचन कर्म होता है तदनुकूल औषधिया भी ध्यान देकर सगृहीत करना चाहिए।

१ आमाशयिक कला को उत्तेजन करने वाली—उष्ण तीक्ष्ण, आग्नेय गुण युक्त द्रव्य ताम्र, सखिया लौह, पारद घटित, सूरणकन्द—मानकन्द, पिप्पल्यादिगण के द्रव्य।

२. आमाशय की गतिवर्धक—कटुतिक्त रस वाले द्रव्य—यथा—कुपीलु कुपीलु सत्व, चव्य, चित्रक—आर्द्रक—नागकेशर। इनसे आमाशयिक मथन क्रिया तीव्र होती है।

३. आहार शोषण की क्रिया—उष्ण तीक्ष्ण—व्यवायी—विकाशी औषधिया शोषण की क्रिया बढ़ाती है। यथा—ताम्र—शख, वराटिका, कपर्द, नरसार, शुक्ति भस्म। अजमोद, यवानी, जीरक, हिंगु—भाग—सखिया।

४. आमाशयिक उत्तेजना कम करने वाली—अहिफेन — खुरासानी अजवायन।

योग—आमाशयिक गति पर कार्यकारी योग—

(१) सैंधवादि चूर्ण अग्निमुख चूर्ण ३ माशे मात्रा (२) महौषधादि चूर्ण १ माशे (३) पचनिम्बादि चूर्ण १ माशे (४) अमृतवटी २ मुद्ग (५) रामवाण रस २ रत्ती (६) क्षुधासागर।

मोदक—१. सौभाग्य शुठी मोदक, ३ मदनानद मोदक १ माशे ४. पिप्पली खण्ड ५ कुपीलु वटी ६. रसपर्पटी ७. पिप्पल्यादि क्वाथ ८ मुस्त-कारिष्ट १—२ तोले।

शोषण क्रिया वर्धक व पाचक—

१. शंखवटी १—२ वटी
२. महाशखवटी १—२ वटी
३. लवगादि मोदक १—२ माशा
४. भास्कर लवण २—३ माशा
५. भास्कर रस २ रत्ती
६. नायिका चूर्ण १ माशे
७. वृहन्नायिका चूर्ण ५ माशे
८ तक्रारिष्ट २ तो
९ कामेश्वर मोदक ५ रत्ती
१०. विजय पर्पटी २ रत्ती
११. रसमाणिक्य १ रत्ती
१२. लोकनाथरस २—४ रत्ती

आशयिक कला उत्तेजक—

१. अग्नि रस २ रत्ती
२ टकणादि वटी १—२

आमाशयिक उत्तेजन कम करनेवाली—

१. वज्रक्षार १—२ माशे
२. सर्जिकाक्षार—सौवर्चल—यवक्षार २—८ रत्ती
३. सामुद्रादि चूर्ण ६ माशे
४. भास्कर लवण ६ माशे
५ मुक्ताप्रवाल पचामृत ४—८ रत्ती
६ अहिफेनासव २० बूद
७ सूतशेखर २—४ रत्ती
८ नागरस २—४ रत्ती
९ पचामृत पर्पटी—२ रत्ती (ग्रहणी अधिकार)
१० सर्वतोभद्र रस २ रत्ती

अन्य द्रव्य—अहिफेन—धुस्तूर—खुरासानी अजवायन—कोकेन—से बने योग।

रक्तदीपे–अग्नि का नियंत्रण—

जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचक ।
सौक्ष्माद्रसानाददानो विविक्तुं नैव शक्यते ।
नाभिमध्ये शरीरस्य विद्यात्सोमस्य मंडलम् ।
सोममण्डलमध्यस्थं विद्यात्सूर्यस्य मण्डलम् ।
प्रदीपवत् नृणा स्थितो मध्येहुताशन ।
सूर्यो दिवि यथा तिष्ठन् स्तेजोयुक्तैर्गभस्तिभि ।
विशोषयति सर्वाणि पल्लवानि सरासि च ।
तद्वत शरीरिणा भुक्त ज्वलनो नाभिसाश्रित ।
मयूखै. पचतेक्षिप्रं नानाव्यजन संस्कृतम् ।
स्थूलकायेषु सत्वेषु यवमात्रप्रमाणत ।
ह्रस्वकायेपु सत्वेषु तिलमात्रप्रमाणत ।
क्रिमिकीट पतगेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते ।
वामपार्श्वाश्रिते नाभे किंचित सोमस्य मण्डलम् ।
तन्मध्येमण्डलं सौर्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थित ।
जरायुमात्र प्रच्छन्न काचकोशस्थ दीपवत् ।

ग्राही
(Astringents)

पर्याय––ग्राही एक सामान्य पारिभाषिक सज्ञा है जो कि विभिन्न कर्मो के साथ लग कर ग्राही क्रिया करती है । उदाहरणार्थ––

सग्राहक––सग्राही, सग्राहिकी, सग्रहणीय, ग्राहिणी, ग्राही, यह कई कर्मो मे सयुक्त है यथा––१ मल सग्राही, पुरीष सग्रहणीय, २ रक्तसंग्रहणम्, रक्त साग्राहिकम्, च सू २५–४०, शोणितस्थापन, ३ पित्त सग्राहकम्, ४ तृष्णा निग्रहण, ५ मूत्र सग्रहणीयम्, मूत्रग्रहणम् । ६ वमिनिग्रहण, छर्दिनिग्रहण ।

इस प्रकार–सग्रहण, ग्रहण आदि के क्रिया के रूप मे ग्राही द्रव्य–सग्राही द्रव्यो की विशेषता मिलती है । इनके वावजूद भी यह सग्राहकत्व मल के साथ अधिक रूढि होकर प्रयुक्त होता है। अत प्रत्येक ग्रथकार परिभाषा मे मल सग्रहणात्मक कर्म ही 'ग्राही' से अधिक समझते हैं––आगे इनका स्वरूप रख रहे हैं—

शाव्दिक अर्थ––'ग्रह उपादाने' से ग्रहादित्वात्णिनि होकर ग्राहि शब्द बनता है जिसका अर्थ किसी वस्तु से कुछ अश ले लेना होता है। रक्त का तारल्य लेकर रक्तसग्राही, मूत्र की तरलता कम करके मूत्र सग्राही, मल का तारल्य घटाकर मलगाही आदि उपर्युक्त कई शब्द वनते हैं ।

परिभाषा १ दीपन पाचन यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकृत् ।
ग्राही तच्च, यथा शुंठी–जीरक गजपिप्पली । शार्ङ्ग.

२. आग्नेय गुण भूयिष्ठं तोयांशं परिशोषयेत् ।
संग्रह्णाति मलं तत्तु, ग्राही शुंठ्यादयो यथा । भाव

ऊपर की परिभाषा मे सामान्य रूप मे परिभाषा यह है कि जो द्रव्य आग्नेय गुण भूयिष्ठ होने से शरीर के दोषधातु मलादि से द्रवांश को शोषित कर दे तो उसे तत्तद् संग्राही कहते है। यथा—मल को शोषित करने वाला मलसग्राही। शार्ङ्गधर की परिभाषा मे भी परिभाषा ऐसी ही है परन्तु कुछ और स्पष्ट है, वह यह कि जो द्रव्य दीपन, पाचन और उष्ण गुण वाले हो और दोषधातु मल से द्रवांश का शोषण कर ले उन्हे गाही कहते है।

शार्ङ्गधर के टीकाकार आढमल्ल ने इसकी टीका करते हुवे ग्राही के दो भेद कहे हैं। यथा—

१. उष्णग्राही=उष्ण सग्राहक
२ शीतग्राही=शीतसग्राहक

श्रीमल्ल[1] का कथन है कि जो द्रव्य ग्रहणी रोग मे आमयुक्त मल को पाचन करके द्रव शोषित कर सग्राही होता है वह उष्ण सग्राही हे और अतिसारादि मे जो द्रव्य पक्व मल को रोक कर ग्राही क्रिया करता है वह शीत सग्राही है।

सुश्रुत ने ग्राही का अर्थ निम्न किया है। यथा—

सांग्राहिकमनिलगुण भूयिष्ठ अनिलस्यशोषणात्मक त्वात्

चरक ने पुरीष से ग्रहणीय वर्ग को ग्राही माना है इसमे स्तभन द्रव्य भी है। इस प्रकार ग्राही क्रिया से यद्यपि टीकाकारो ने मल ग्राही की अधिक विशिष्टता प्रकट की है किन्तु यह पर्याप्त नही, यदि ऐसा ही हो तो रक्तसग्राही पित्तसग्राही, मूत्रसग्राही, श्लेष्मसग्राही की परिभाषा क्या होगी। अत परिभाषा —यो है—जो द्रव्य आग्नेय व वायव्य गुण भूयिष्ठ होने से दोषधातु या मल के द्रवांश को कम कर देते है व उन्हे गाढा बना देते हैं वह ग्राही कहलाते हैं। अतः मल का द्रवांश सुखाकर मलग्राही—पूय का द्रवांश सुखाकर पूयग्राही—रक्त—पित्त व श्लेष्म का द्रवांश शोषण करे वे रक्त सग्राहक—पित्तसग्राहक व श्लेष्मसग्राहक यह लक्षण बनते है।

महाभौतिक संगठन—

१ —(१) अग्नि वाय्वात्मकम् अग्नितत्व प्रधानम्
(२) लवण तीक्ष्णोष्णेभ्योऽन्यत् संग्राहिकम्—तत् पार्थिव वायव्यम्
र. वै ४।९)

---

१ पक्वामग्राहकत्वेन द्विविधं हि सग्राहकम्। तत्र यत् ग्रहण्यामामं संपाच्य वह्निं कृत्वा तत्रस्त द्रवं च शोषयित्वा संग्रहणं करोति तदुष्णग्राहकं ज्ञेयम्। यद्द्रव्यमतिसारादौ पक्वमलादिकं संस्तभ्य संग्रहं करोति तच्छीतसंग्राहकम् ज्ञेयमनिलभूयिष्ठम्। (आढमल्ल)

२ सांग्राहिकमनिलगुण भूयिष्ठम् अनिलस्य शोषणात्मकत्वात् ।
सांग्राहिकं विजानीयात् पृथिव्यनिलसंभवम् (र. वै. पृ १८७)

अत रस वैशेपिक ने जो दो मत दिये हैं उन दोनो से साग्राहिक क्रिया सभव है यथा—

द्वयो निर्ग्रहण साग्राहिकम् (र वै ४।२३) यह रसवैशेषिककार को वास्तव मे सर्व प्रथम कठिनाई का आभास हुआ। अत दो प्रकार से उनकी क्रिया होने के कारण तथा पित्त–श्लेष्म मे भी सग्राहकत्व प्राप्त रहे केवल मल मे ही न हो एतदर्थ दोनो प्रकार से शीत व उष्ण प्रकृति के पित्त–श्लेष्म मे क्रिया हो एतदर्थ यह निश्चय उत्तम रहा है। उष्ण–तीक्ष्ण–लवण जो पित्ताश्रय है उससे अन्यत् कह कर पित्त का और पृथिवी+अनिल सत्व भूयिष्ठ होने से श्लेष्म सग्रहण का कार्य भी इनसे सपन्न होता है।

अत शीत व उष्ण वीर्य दोनो प्रकार के द्रव्य से ग्राहक कर्म करते हैं। भावमिश्र की व शार्ङ्गधर की परिभाषा केवल 'उष्णत्वात् द्रव शोषकृत्' मात्र होती है। वह पुरीष मे भी आम व पक्व मे पूरी नही पडती–अत आढमल्ल को भी उष्ण–सग्राही व शीत–सग्राही की कल्पना करनी पडी। सुश्रुत की परिभाषा को ग्रहण करने पर केवल श्लेष्मग्राही वायव्य गुण प्रधान होता है। आशिक रूप मे पित्तग्राही बनता है। शार्ङ्गधर की व भावमिश्र की परिभाषा मे 'उष्णत्वात् द्रव शोषकृत्' है और सुश्रुत का केवल वायव्य गुण प्रधान है, अत नागार्जुन के दोनो विधियो से निग्रहण कार्य का होना सिद्ध होने से (उष्णवीर्य व शीतवीर्य सग्राहिक) आढमल्ल का विचार ठीक हो जाता है। किन्तु वह केवल मल मे ही सीमित होकर दोपधातु व मल, सबो पर लागू होना ठीक है, यही नागार्जुन का विचार है। कुछ चिकित्सक दीपन–पाचन व उष्ण वीर्य वाले द्रव्यो को ग्राही और कुछ शीत वीर्य वाले द्रव्यो को स्तभन मानकर ग्राही मे स्तभन को मिलाना चाहते हैं और पूर्व के द्विविध ग्राही इस विचार को इस रूप मे निर्धारण करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु–स्तभन क्रिया पृथक है और शार्ङ्गधर ने ही स्तभन की परिभाषा मे पृथक विचार उपस्थित किया है। यथा—

रौक्ष्यात् शैत्यात् कषायत्वात् लघुपाकाच्च यद्भवेत् ।
वातकृत्स्तंभन तत्स्याद्यथा वत्सक टुण्टुकौ । शा०

चरक ने— स्तभनं स्तंभयति यद् गतिमन्तं चलं ध्रुवम् । १२
शीतं मन्दं मृदु श्लक्ष्णं, रूक्ष सूक्ष्म द्रवं स्थिरम् ॥
यद् द्रव्यं लघुचोद्दिष्टं प्रायस्तत् स्तंभनं स्मृतम् ॥
च० सू० अ० २२–१७

इस प्रकार ग्राही व स्तंभन मे पर्याप्त भेद हैं।

ग्राही	स्तंभन
रस–कषाय, तिक्त	
वीर्य–उष्ण	शीत
दोषप्रभाव–वातशामक	वातवर्धक
धातुक्रिया–दीपन, पाचन	अग्निसादक
भौतिक संगठन–पार्थिव, वायव्य	अनिलभूयिष्ठम्

इस प्रकार इन दोनो मे पर्याप्त भेद हैं। स्तभन का अतर्भाव ग्राही मे उचित नही जचता। महर्षि चरक की परिभाषा से गतिमान–चल अगो की क्रिया को जो द्रव्य रोक देते हैं, वह स्तभन कहलाते है ऐसा होता है। वह शीत, मंद, मृदु, श्लक्ष्ण, रूक्ष–सूक्ष्म, स्थिर, लघु व द्रव गुण वाले होते है।

चरक–सुश्रुत के बाद–परिभाषाये, जो शार्ङ्गधर व भावमिश्र ने बनायी हैं, वह पूरी नही बैठती। जब कि चरक व सुश्रुत किसी एक के मत से यह पूर्ण नही होता। अत इनके पश्चात् नागार्जुन का विचार सधान परम उपयोगी उभयार्थ कृत् होता है। अत परम उपयोगी है।

परिभाषा में––उष्णवीर्य व शीत वीर्य द्रव्य, जो दोष–धातु–मल के द्रव का शोषकृत् होता है और उन्हे गाढा बना देता है वही सग्राहिक होता है। इस पूरे अर्थ मे आधुनिक तीन परिभाषायें आ जाती है। यथा—

१ कषाय रस वाले–स्तभन–Astringents

२. रूक्ष–कषाय, रस वाले–शीत गुण युक्त

३. ग्राही–Carminatives & Aromatics

४. सग्राहक–केवल कषाय गुण के कारण सग्राहक होते है।

द्रव्य–सुश्रुत (सू ३८)

न्यग्रोधादि वर्ग–वट, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, मधूक, कपीतन, अर्जुन–आम्र, चोरक, जम्बू, प्रियाल, मधुयष्टि, रोहिणी, वेतस, कदम्ब, बदरी, शल्लकी लोध्र, भल्लातक, पलाश, नदीवृक्ष, तिन्दुक।

पुरीष सग्रहणीयानि–प्रियंगु, अनतमूल–आम्र की गुठली, लोध्र–मोचरस, मजिष्ठा, धायफूल पद्मक–कमलकेशर–श्योनाक। च. सू ४

अन्य द्रव्य–अतीस, भाग, सर्जरस, श्लेष्मातक, तूद, कपीलु, अजमोद, केशर, शुठी, जीरक, गजपीपल, इन्द्रजौ, कुटजत्वक्, बेलगिरी, नागकेशर, खदिरसार, जामुन की गुठली, जायफल–जावित्री, अनार, दारुहल्दी–मारगी, माजूफल, फिटकिरी, जहरमोहराखताई, गैरिक, विजयसार, लालबोल, कशीश–शिलारस, तक्र।

विशेष–रूप मे कषाय रस प्रधान द्रव्य ग्राही होते हैं।

उपयोग–१. बाह्य २ आभ्यतर दो प्रकार का होता है।

बाह्य प्रयोग––लेप–द्रव–परिषेक–प्रदेह, अवचूर्णन व मलहर के रूप मे रक्तस्राव व श्लेष्मस्राव रोकने के लिये करते हैं। नेत्र मे–आश्च्योतन, अंजन

मुख मे–वटी–वटका–कवल, गडूष, कंठलेप आदि के रूप मे इनका उपयोग होता है।

आभ्यन्तर प्रयोग—ग्रहणी, अतिसार, रक्तवमन, रक्तकास, रक्तस्राव, आदि के अवरोधनार्थ आभ्यन्तर प्रयोग होता है।

मल संग्रहार्थ अतिसार—(१) अतिसार मे आंत्र की उग्रता का प्रशम करने के लिये अहिफेन–आम की गुठली, एरण्ड तैल, श्लेष्मातक, ईसबगोल, बिहीदाना।

२ आत्र मे शोषण न होने पर–नागकेशर, अतीस, भाग, इन्द्रजौ, जीरक, शुंठी–गजपीपल आदि।

३. आत्र से रसोत्पत्ति अधिक होने पर इसको दमन करने के लिये कुटजत्वक्, श्योनाक, कत्था, लोध्र, माजूफल–कासीश, अहिफेन आदि।

अतिसार में–दीपन–पाचन व ग्राही—

१. धान्य पचक
२. कुटजादि कषाय
३. वत्सकादि कषाय
४. कुटज दाडिम कषाय
५. कुटज लेह
६. आनद भैरव रस
७ कर्पूर रस
८ अहिफेनासव

मलग्राही—१ नागराद्य चूर्ण–नागर अतिविषा, मुस्त–धातकी, रसाजन वत्सकत्वक्–पान–बिल्व, कटुरोहिणी, अनुपान–तण्डुलाम्बु।

२ गगाधर चूर्ण–मात्रा ३–४ माशे–तडुलाम्बुना, अतिसाराधिकार।
३ कुटजदाडिम कषाय–२–५ तोला।
४. मध्यगगाधर चूर्ण–२–४ माशे।
५ वृहद् गगाधर–२–४ माशे।
६. लवगादि चूर्ण–२–३ माशे।
७. स्वल्प नायिका चूर्ण १ शाण=४ रत्ती
८ ग्रहणी शार्दूल २ मा०
९ जातीफलादि चूर्ण २–८ रत्ती
१०. जीरकाद्य चूर्ण २–४ माशे
११. जातीफलादि ग्रहणी कपाट= २ रत्ती
१२. ग्रहणी कपाट=२ रत्ती
१३. जातीफलाद्या वटी=२ रत्ती से ६ रत्ती
१४. महागधक रसायन—२–६ रत्ती
१५ नृपतिवल्लभ रस २ रत्ती
१६. रस पर्पटी २–४ रत्ती
१७. स्वर्ण पर्पटी २–४ रत्ती
१८. पचामृत पर्पटी २–४ रत्ती
१९. विजय पर्पटी २–४ रत्ती
२० हिरण्यगर्भपोट्टली रस २–४ रत्ती
२१ कुटजारिष्ट २–४ तोला
२२ तक्रारिष्ट २–४॥ तोला
२३. जातीफल रस १–२ वटी

कषाय रस व ग्राहित्व—कषाय रस वाले द्रव्य ग्राही क्रिया पर विशेष प्रभाव डालते हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट–इन तीनो ने कषाय रस को सग्राही–सग्राहक, ग्राही–लिखा है। कषाय रस मे टैनिन नामक तत्व होता है जिसकी विभिन्न क्रियाये विभिन्न रूप से हुवा करती है। इन्हे एस्टिजेंट के नाम से आधुनिक चिकित्सक मानते है। उनकी परिभाषा यह है कि

Astringents—is a special group of drugs whose is chrecterised by contruction or shrunkage of the tissues and deminished exudation or recretion.

These actions vegetable astringents owe their property to the presence of tannin.

श्लेष्म संवृत्ति—

स्थानिक प्रभाव—कटे हुवे स्थान पर प्रयोग करने पर यह श्लेष्म द्रव व अलव्युमिन मिले द्रव को गाढा कर देता है, जमा देता है। अघुलनशील बनाकर उस स्थान पर एक अच्छादन वातावरण बनाकर रक्षा करता है। इस प्रकार श्लेष्म सवृत्ति पैदा करता है।

२ **मुखपरिशोष**—कषाय रस मुख का शोषण करता है। कषाय तत्व प्रधान है टैनिन मुख मे शुष्कता लाता है और जिह्वा की मास पेशियो को कडाकर स्तभित कर देता है। जिसका कारण स्थानीय श्लेष्म द्रव्यो का जम जाना जो मुख की श्लेष्मल कलाओ से स्रुत होकर मुख को चिकना बनाते हैं।

१ आमाशय–मुख के बाद कठ व उसके बाद आमाशय पर कषाय रस का प्रभाव पड़ता है। बडी मात्रा मे लेने पर अग्निमाद्य करता है क्योकि पाचक रस से पेपसिन पृथक हो जाता है।

२. आमाशय अधिक कषाय रस से उत्तेजित हो जाता है वमन भी हो जाता है।

३. आमाशयिक क्षत मे रक्त स्राव वद करता है।

आंत्र १—आन्त्रो मे द्रव की कमी करके ग्राहित्व उत्पादन करके विबध पैदा करता है। यह क्रिया प्रोटीन के प्रक्षिप्त (pr cepitating protin) करता है और ग्रथिक स्राव (granular secration) को कम करता है। अत मल गाढा हो जाता है।

२ यकृतस्थ पित्त–प्रवाह पर कोई असर नही करता।

पाक्घाती (Antiseptic) यह यीस्ट (yeast) को प्रक्षिप्त करता

---

1. Tannin coagulates the mucus and the albuminous secration and forms insoluble protactive covering over the part

2. Tannic acid causes dryness of the mouth with a feeling of astringency and stiffness of the toungue and throat due to the coagulation of the secration of the mucus membran (Ghosh)

है और माईक्रोब्स पर भी असर डालता है। अत सामान्य एन्टीसेप्टिक द्रव्य की तरह कार्य करता है। अत मल मे वेक्टीरिया की उपस्थिति अधिक नही होने देता व मल दुर्गन्धित नही हो पाता। आध्मान पैदा करता है।

रक्त–टैनिक एसिड (Galects) के रूप मे प्रवेश करता है और ऐसे ही परिभ्रमण भी करता है।

स्थानिक––यह नासा कला या मुख की कलाओ पर विशदता उत्पन्न कर शुद्ध करता है। (५ प्रतिशत का द्रव)।

हृदय––हृदय मे प्रविष्ट होकर हृदय की मास पेशियो मे सकोच पैदा करके हृदय मे पीडा पैदा करता है। उदर–मे उदरमाध्मापयति। वाची–वाचनिगृह्णाति। स्रोतस्–स्रोतास्यववध्नाति। शुक्र–पुस्त्वमुपहृति। पाचन–विष्टभ्य जरा गच्छति। दोष–श्लेष्म–पित्त–प्रशमन। मल–वातमूत्र पूरीषमवगृह्णाति।

चरक, अष्टांगहृदय एव अष्टांग सग्रह के अनुसार

श्लेष्मावजयन उपक्रम

क्रम	क्रिया	चरक	अ हृ·	अ स
१	विधियुक्तानि तीक्ष्णोष्णानि सशोवनानि	+	+	+
२	कटुतिक्तकषायोपहिता रूक्षोष्णा आहारा	+	+	+
३	तीक्ष्णाना दीर्घकालस्थिताना मद्यानामुपयोग	+	+	+
४.	वावनम्	+	+	+
५	लघन	+	+	+
६	प्लवन	+	+	+
७	जागरण	+	+	+
८	परिसरण	+	+	+
९.	नियुद्ध	+	+	+
१०	व्यवाय	+	+	+
११.	व्यायाम	+	+	+
१२	रूक्षोन्मर्दन	+	+	+
१३	स्नान	+		+
१४.	उत्सादन	+		+
१५.	धूम्रपान	+	+	+
१६	उपवास	+	+	+
१७	गण्डूप	+	+	+
१८	उष्णवास	+		
१९	सुखप्रतिपेध	+	+	+
२०	उन्मर्दन	+		
२१	क्षौद्रसेवन	+	+	+
२२.	वमन		+	+
२३	रूप		+	+
२४	मेदोघ्न औषधि			
२५	वासन्तिकोविधि			

उपर्युक्त सारणी मे विभिन्न चरक, अष्टागहृदय एव अष्टागसग्रहो मे श्लेष्म सशमन चिकित्सा रूपी क्रिया, आहार एव आचारो का निर्देश किया गया है[1]। इनको हम श्लेष्मावजयन के हेतु वर्गीकरण मे निम्न रूप से उपस्थित करते हैं। यथा—

१ श्लेष्म सशमन औषधिया २. श्लेष्म सशमन हेतु विशिष्ट क्रिया।
३. श्लेष्म सशमन आहार। ४. श्लेष्म सशमन आचार।

इन चार वर्गो मे श्लेष्मावजयन हेतु चिकित्सा निम्न रूप मे विभक्त हो जाती है।

१. श्लेष्म संशमन औषधियां—

१ विधिपूर्वक तीक्ष्णोष्ण सशोधन द्रव्यो का उपयोग।
२ दीर्घकालिक तीक्ष्णमद्यो का उपयोग।
३ धूम्रपान ५ मेदोघ्न औषधि।

२ श्लेष्म संशमन हेतु विशिष्ट क्रिया—

(१) वमन (२) क्षौद्रसेवन

३. श्लेष्म संशमनाहार—

(१) यूष (२) विभिन्न कटुतिक्त कषाय रस युक्त रूक्षोष्णाहार

४. श्लेष्म संशमनाचार—

१. वासन्तिक विधि ५ जागरण
२. धावन ६. परिसरण
३. लघन ७ नियुद्ध
४. प्लवन ८. व्यवाय

---

१ तस्यावजयनम्—विधियुक्तानि तीक्ष्णोष्णानि संशोधनानि, रूक्षप्रायाणि चाभ्यवहार्याणि कटुतिक्तकषायोपहितानि, तथैव धावनलघनप्लवनपरिसरणजागरण नियुद्धव्यवायव्यायामोन्मर्दनस्नानोत्सादनानि, विशेषतस्तीक्ष्णाना दीर्घकालस्थिताना च मद्यानामुपयोगः, सधूमपान सर्वशश्चोपवासस्तथोष्ण वास, सुखप्रतिषेधश्च सुखार्थमेवेति ॥ च० वि० ६।१९

श्लेष्मण पुनर्विधिविहितानि तीक्ष्णानि सशोधनानि विरूक्षप्रायाण्यभ्यवहार्याणि कटुतिक्तकषायोपहितानि तीक्ष्णानि दीर्घकालस्थितानि हृद्यानि मद्यानि। धावन लंघनप्लवनजागरणनियुद्ध संव्यवायव्यायामरूक्षोन्मर्दनस्थानोच्छादनानि। विशेषत क्षौद्र यूषो वमनानि सर्वशश्चोपवास सधूमगण्डूष सुख प्रतिषेध सुखार्थं वासन्तो विधिरिति। अ. स. सू २१।५

श्लेष्मणो विधिना युक्तं तीक्ष्ण वमनरेचनम्।
अन्नरूक्षाल्पतीक्ष्णोष्ण कटुतिक्तकषायकम् ॥
दीर्घकालस्थितं मद्यं रतिप्रीति प्रजागर।
अनेकरूपो व्यायामश्चिन्ता रूक्ष विमर्दनम् ॥
विशेषाद्वमनं यूष क्षौद्रं मेदोघ्नमौषधम्।
धूमोपवासगण्डूषा नि सुखत्व सुखाय च ॥ अ हृ. सू. १३।१०, १२

९ व्यायाम — १३. गण्डूष
१० रूक्षोन्मर्दन — १४. उष्णवास
११. स्नान — १५. सुप्त प्रतिषेध
१२ उत्सादन — १६. उन्मर्दन

इस प्रकार उक्त रूपेण मुख्य चार विभागो मे श्लेष्मावजयन चिकित्सा विभक्त हो जाती है। अब इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं।

श्लेष्मसशमन औषधिया–

इस विभाग मे शोधन एव शमन औषधियो का समावेश होता है।

श्लेष्मावजयन उपक्रम द्वारा स्पष्ट हो चुका है कि कफ के वर्धक मधुर, अम्ल, लवण रसो के विपरीत कार्य करने वाले कटु, तिक्त, कषाय रसात्मक एवं तीक्ष्ण, उष्ण तथा लघु गुण युक्त औषधि द्रव्यो का उपयोग श्लेष्म सशमन हेतु किया जाना है। एतदर्थ उपर्युक्त औषधि द्रव्यो मे कार्य करने वाले कटु, तिक्त एव कषाय रसो की कार्य प्रणाली समझ लेना आवश्यक होगी।

श्लेष्म संशामक औषधियां

शोधनगण के अन्तर्गत चरक[1], सुश्रुत[2] एव अष्टागहृदय[3]कार ने निम्न द्रव्यो का समावेश किया है।

क्रम	द्रव्य	चरक	सुश्रुत	अष्टागहृदय
१	मदनफल[1]	+	+	+
२	मधुक	+		+
३.	निम्ब	+		+
४	जीमूत	+	+	+
५	कृतवेधन	+	+	
६.	पिप्पली	+	+	
७	कुटज	+	+	+
८	इक्ष्वाकु	+	+	+
९	एला (सूक्ष्म)	+	+	

१ मदन मधुक निम्ब जीमूत कृतवेधनम्।
पिप्पलीकुटजेक्ष्वाकूण्येला धामार्गवाणिच॥
उपस्थिते श्लेष्मपित्ते व्याधावामाशयाश्रये।
वमनार्थं प्रयुंजीत भिषग्देहमदूषयन्॥ च सू. २।७,८

२ मदन कुटज जीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकृतवेधनसर्षप विडंगपिप्पली करजप्रपुन्नाड कोविदारकर्बुदारारिष्टाश्वगंधाविदुलबन्धुजीवक श्वेता शणपुष्पी-विम्बीवचा मृगेर्वारुश्चित्रा चेत्यूर्ध्वभागहराणि। सु १ ३९।२

३ मदनमधुकलम्बानिम्बनिम्बी विशाला। त्रपुसकुटजमूर्वदेवदाली कृमिघ्नम्॥ विदुलदहनचित्रा. कोशवत्यौकरज कणलवणवचैलासर्षपाश्छर्दनानि।

अ. हृ. सू १५।१

क्रम	द्रव्य	चरक	सुश्रुत	अष्टागहृदय
१०.	घामार्गव	+		
११	लवण	+	+	
१२.	विडंग			+
१३.	सर्षप		+	
१४.	करंज		+	+
१५.	प्रपुन्नाड		+	+
१६.	कोविदार		+	
१७.	कर्वुदार		+	
१८.	अरिष्ट		+	
१९.	अश्वगधा		+	
२०.	विदुल		+	
२१.	वंवूजीवक		+	+
२२.	श्वेता		+	
२३	शण पुष्पी		+	
२४	विम्बी		+	+
२५.	वचा		+	
२६	मृगेर्व्वारु		+	
२७	चित्रा		+	+
२८.	लम्वा			+
२९.	विशाला			+
३०	त्रिपुस			+
३१	मूर्वा			+
३२.	देवदाली			+
३३.	दहन			+

उपर्युक्त तालिका मे चरक, सुश्रुत एव अष्टाग हृदयाभिमत शोधन व द्रव्यो का निर्देश किया गया है। ये द्रव्य पूर्व कथनानुसार कटु तिक्त अथवा कषाय रसात्मक एव उष्ण तीक्ष्णादि गुण युक्त होने के कारण कफ निष्कासन करके श्लेष्म सशामक होते हैं।

शोधन द्रव्यो के निर्देशानन्तर सशमनोक्त कटु तिक्त एव कषाय स्कधो का चरकाभिमत वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। यथा—

चरकोक्त कटुकस्कंध—

१. पिप्पली
२ हस्तिप्पिली
३ पिप्पलीमूल
४ चव्य
५ चित्रक
६ शृगवेर
७ तेजोवती
८ एला

९ कुष्ठ
१० भल्लातकास्थि
११ हिंगु
१२ किलिम (देवदारु)
१३ मूलक (मूली)
१४ सर्षप
१५ लशुन
१६ करज
१७ शिग्रुक
१८. मधुशिग्रु
१९ मूत्र
२० मरिच
२१ अजमोदा
२२ आर्द्रक
२३ विडग
२४. तुम्बुरु (नेपाली धनिया)
२५. पीलु
२६ फणिज्जक
२७. खरपुष्प (खुरासानी अजवाइन)
२८ भूस्तृण (गधतृण)
२९. सुमुख
३०. सुरस
३१ कुठेरक
३२ अर्क
३३ गण्डीर
३४ कालमालक
३५ पर्णास
३६ क्षवक
३७. क्षार
३८ पित्त

उपरोक्त द्रव्यो का समावेश कटुकस्कध मे किया गया है[1]—

तिक्तस्कधोक्त द्रव्य—

१ चन्दन
२ नलद (उशीरभेद)
३ कृतमाल (अमलतास)
४ नक्तमाल
५ निम्व
६ तुम्वुरु
७ कुटज
८ हरिद्रा
९ दारुहरिद्रा
१० नागरमोथा
११ मूर्वा
१२ चिरायता
१३ कटुकी
१४. त्रायमाण
१५ कारवेल्लिका (करेली)
१६ करवीर
१७ केवुक
१८ कठिल्लक (पुनर्नवा)
१९ वार्ताकु
२० कर्कश (कासमर्द)
२१. काकमाची
२२ कोकोदुम्वरिका (काठगुलरिया)
२३ सुषवी (करेला)
२४ अतिविषा
२५ पटोल
२६ कुलक (पटोलभेद)
२७ पाठा
२८ गुडूची
२९ वेत्राग्र
३० वेतस
३१ विककत (सुवावृक्ष)
३२. वकुल
३३ सोमवल्क (श्वेतखदिर)
३४ सप्तपर्ण

---

१ पिप्पली पिप्पलीमूल हस्तिपिप्पलीचव्यचित्रकशृंगवेरमरिचाजमोदार्द्रकविडगकुस्तुम्वुरुपीलुतेजोवत्येलाकुष्ठभल्लातकास्थिहिंगुनिर्यासकिलिममूलकसर्षपलशुनकरजशिग्रुकमधुशिग्रुकखरपुष्पभूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरकार्जकगन्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकक्षारमूत्रपित्तानामेवविधानाचान्येषांकटुकवर्गपरिसख्यातानामौषध द्रव्याणा · कटुकस्कन्ध (च० वि.) ८।१४२

३५. सुमना (चमेली)
३६, अर्क
३७ अवल्गुज (वाकुची)
३८. वच
३९. तगर
४०. अगर
४१. वालक (नेत्रबाला)
४२. उशीर

उपरोक्त द्रव्य तिक्त स्कन्ध मे परिगणित किये गये हैं।[1]

कषाय स्कंधोक्त द्रव्य——

१ प्रियगु
२, अनन्तमूल
३. आम्रास्थि
४. अम्वष्ठिकी (पाठा)
५. कट्वग (श्योनाक)
६ लोध्र
७ मोचरस
८. समगा (मजिष्ठा)
९ धातकी पुष्प
१० पद्मा (पद्मचारणी)
११ पद्मकेशर
१२. जामुन
१३ आम
१४ प्लक्ष (पाकर)
१५ वट
१६. कपीतन (पारसपीपल)
१७ भल्लातक
१८ अश्मत्तक
१९ शिरीष
२० शिशपा
२१. सोमवल्क
२२ तिन्दुक
२३ प्रियाल
२४ बदर
२५ खदिर
२६. सप्तपर्ण
२७ अश्वकर्ण
२८ स्यन्दन (तिनिश)
२९ अर्जुन
३० असन
३१ अरिमेद (विट्खदिर)
३२ एलवालुक
३३ परिपेलव (केवटीमोथा)
३४ कदम्ब
३५ शल्लकी
३६ जिगिनी
३७ काश
३८ कशेरु
३९ राजकशेरु
४० कटफल
४१ वश
४२ पद्म
४३ अशोक
४४ शाल
४५ धव
४६. सर्ज
४७ भूर्ज
४८ शखपुष्पी
४९. शमी (जान्डी)
५० माचीक
५१ वरक (धान्यमेव)

---

१. चन्दननलदकृतमालनक्त मालनिम्बतुम्बुरुकुटजहरिद्रादारुहरिद्रामुस्तमूर्वा किराततिक्तककटुरोहिणीत्रायमाणाकारवेल्लिकाकरवीरकेबुककठिल्लकवृषमण्डूक पर्णीकर्कोटकीवार्ताकुकर्कशकाकमाचीकाकोदुम्बरिकासुषव्यतिविषापटोलकुलकपाठा गुडूचीवेत्राग्रवेतसविकंकतबकुलसोमवल्कसप्तपर्णसुमनार्कवल्गुजवचातगरागुरुवाल्को शीराणामेव विधानं चान्येषा तिक्तवर्गपरिसंख्यातानामौषधद्रव्याणा तिक्तस्कंध (च. वि. ८।१४३)

५३	तुग (पुन्नाग)	५९	विस (कमल की जड़
५४	अजकर्ण	६०.	मृणाल
५५	स्फूजक (तिन्दुकर्मद)	६१	ताल
५६	विभीतक	६२.	खर्जूर
५७.	कुम्भी (पाटला)	६३.	तरुणी (घीजुवार)
५८	पुष्करवीज (कमलबीज)		

इस प्रकार कटु, तिक्त एव कषाय[1] इन तीन स्कन्धो का वर्णन प्राप्त होता है।

सुश्रुतोक्त श्लेष्म संशमनगण

१	पिप्पल्यादिगण	२.	बृहत्यादिगण
३.	मुष्ककादिगण	४	वचादिगण
५	सुरसादिगण	६	आरग्वधादिगण

उपर्युक्त इन गणो मे क्रमशः निम्न द्रव्यो का परिगणन किया गया है। यथा—

१. पिप्पल्यादि गण[2]—

१.	पिप्पली	८	महानिम्बफल
२.	चव्य	९	भार्गी
३	शृंगवेर (सुठी)	१०	अतिविषा
४	हस्तिपिप्पली	११.	विडंग
५	ऐला	१२	पिप्पलीमूल
६.	इन्द्रयव	१३.	चित्रक
७	जीरक	१४.	मरिच

---

१ प्रियग्वनन्ताम्रास्थ्यम्बष्ठकीकट्वंगलोध्रमोचरससमङ्गाधातकीपुष्पपद्मा पद्मकेशरजम्ब्वाम्र प्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थभल्लातकास्थ्यश्मन्तकशिरीषशिश-पासोमवल्कतिन्दुकप्रियालवदर खदिरसप्तपर्णाश्वकर्णस्यन्दनार्जुनारिमेदैलवालुक-परिपेलवकदम्बशल्लकीजिङ्गिनीकाशकशेरुकराजकशेरुकट्फलवंशपद्मकाशोकशाल-धवसर्जभूर्जशणखरपुष्पापुरशमीमाचीकवरकतुंगाजकर्णस्फूर्जकविभीतककुम्भीपुष्कर वीजविसमृणालतालखर्जूरतरुणानामेवं विधानां चान्येषां कषायवर्गं परिसंख्यातानामौषद्रव्याणाम् . कषायस्कन्ध । च० वि० ८।१४४

२ पिप्पलीपिप्पलीमूल चव्य चित्रकशृंगवेरमरिचहस्तिपिप्पली हरेणुकैलाजमोदेन्द्रयव पाठाजीरकसर्षपमहानिम्बफल हिङ्गु भार्गी मधुरसातिविषा, वचा विडङ्गानि कटुरोहिणी चेति। पिप्पल्यादि कफहर प्रतिश्यायानिलारुची।
निहन्याद्दीपनो गुल्म शूलघ्नश्चामपाचन। सु० सू० ३८।२३

१५. हरेणुका
१६. अजमोदा
१७. पाठा
१८ सर्षप
१९ हिंगु
२० मधुरसा (मूर्वा)
२१. वचा
२२. कटुरोहिणी

उपरोक्त द्रव्यों का समावेश पिप्पल्यादि गण मे किया गया है।

२. बृहत्यादिगण[1]—

१. बृहती
२. कण्टकारी
३. कुटजफल
४. पाठा
५. मधुक

३ मुष्ककादिगण[2]—

१. मुष्कक
२. पलाश
३. धव
४. चित्रक
५. मदन (पिण्डीतक)
६. वृक्षक (कुटज)
७ शिशपा
८. वज्रवृक्ष (सेहुन्ड)
९ त्रिफला

४. वचादिगण[3]—

१. वचा
२. मुस्ता
३ अतिविषा
४. अभया
५. भद्रदारु
६. नागकेशर

५. सुरसादिगण[4]—

१. सुरसा
२. श्वेतसुरसा
३ फणिज्झक
४. अर्ज्जक
५. भुस्तृण
६. सुगन्धक
७ सुमुख
८. कालमाल
९ कासमर्द
१०. काममाची
११ क्षवक
१२, खरपुष्पा
१३ विडग
१४ कट्फल

---

१. बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकं चेति।
पाचनीयो बृहत्यादिर्गण .... सु० सू० ३८।३१

२. मुष्कक पलाश धव चित्रक मदनवृक्षक, शिशपावज्रवृक्षा स्त्रिफला चेति। मुष्ककादिर्गणो ह्येष ..... सु० सू० ३८।२०

३. वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारूणि नागकेशरं चेति। सु०सू० ३८।२६

४. सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकालमालकुठेरककासमर्द क्षवक स्वरपुष्पाविडंगकट्फलसुरसीनिर्गुन्डी, कुलाहलोन्दुरुकर्णिका फंजीप्राची बल काकमाच्योविषमुष्टिकश्चेति।
सुरसादिर्गणो ह्येष कफहत् कृमिसूदन। सु० सू० ३८।१८

१५.	सुरसी	१९	फजी
१६	निर्गुन्डी	२०	प्राचीवल
१७.	कुलाहल	२१	विषमुष्टिक
१८	उन्दुरुकर्णिका		

६. आरग्वधादिगण[1]--

१	आरग्वध	११	निम्ब
२	मदनफल	१२	कुरण्टक (कटसरैया)
३	गोपघोन्टा (कर्कोटी)	१३	दासीकुरण्टक (नीलपुष्प)
४	कण्टकी	१४	गुडूची
५	कुटज	१५.	चित्रक
६.	पाठा	१६	शार्ङ्गेष्टा
७.	पाटला	१७	करजद्वय
८	मूर्वा	१८.	पटोल
९	इन्द्रयव	१९	किराततिक्त
१०	सप्तपर्ण	२०	सुषवी

अष्टांग हृदयोक्त श्लेष्म संशमनगण[2]

१	आरग्वधादिगण	५	सुरसादिगण
२	अर्कादिगण	६	मुस्तादिगण
३.	मुष्कादिगण	७	वत्सकादिगण
४	असनादिगण		

१ आरग्वधादिगण[3]

१	आरग्वध	७	मधुरसा
२	इन्द्रयव	८	स्रुवावृक्ष (विककत)
३.	पाटली (वसतदूती)	९	पाठा
४	काकतिक्ता (शार्गेष्टा)	१०.	भूनिम्ब
५	निम्ब (पारिभद्र)	११.	सैर्यक (सहचर)
६	अमृता	१२	पटोल आदि।

---

१. आरग्वधमदनगोपघोण्टाकण्टकीकुटजपाठापाटलामूर्वेन्द्रयवसप्तपर्ण, निम्ब कुरुण्टकदासीकुरुण्टक, गुडूचीचित्रकशार्ङ्गेष्टाकरजद्वय पटोल किराततिक्तानि सुषवी चेति। आरग्वधादिरित्येष गण श्लेष्मविषापह। सु सू० ३८।२

२. आरग्वधादिरर्कादिर्मुष्ककाद्योऽसनादिक।
सुरसादि समुस्तादिर्वत्सकादिर्वलासजित्। अ० हृ० सू० १५

३ आरग्वधेन्द्रयवपाटलिकाकतिक्ता। निम्बामृतामधुरसास्रुववृक्षपाठा भूनिम्बसैर्यकपटोलकरजयुग्म। सप्तच्छदाग्निसुषवीफलबाणघोण्टा॥ आरग्वधादि,..। अ हृ सू १५।१८

२. अर्कादिगण[1]—

१. अर्क (सदापुष्पी)
२, अलर्क (मन्दार)
३. नागदन्ती
४. विशल्या
५. भार्गी
६. रास्ना
७ वृश्चिकाली
८ प्रकीर्य (करज)
९. पीततैला (काकादनी)
१० उदकीर्य स० अ० (करज)
११ श्वेतायुग्म
१२ तापस (इगुदी।

इन द्रव्यो का समावेश अर्कादिगण मे किया गया है [1]

३. मुष्ककादिगण[2]

१. मुष्क
२. स्नुग् खुडा (उग्रकान्ड)
३ वरा
४. पलाश
५. धव
६ शिशपा

४ असनादिगण[3]—

१. असन (पीतशाल)
२ तिनिश
३. भूर्ज
४ श्वेतवाह (अर्जुन)
५ प्रकीर्य (पूतिकरज)
६. खदिर
७ पलाश
८ जोंगक (अगुरु)
९. शाक
१०. कलिग
११ अश्वकर्ण
१२ कदर (खदिराकारश्वेतसार)
१३ भन्डी (शिरीष)
१४. शिशपा
१५ मेषशृगी
१६ त्रिहिम (चन्दनत्रय)
१७ तल (ताल)
१८ शाल (रसनिर्यास)
१९ क्रमुक (पूगीफल)
२० धव
२१ छागकर्ण

५. सुरसादिगण[4]—

१. सुरसयुग (तुलसीद्वय)
२. फणिज्ज (मरीचक)
३ कालमाला
४. विडग

---

१ अर्कालर्कौ नागदन्तीविशल्याभार्गी रास्नावृश्चिकाली प्रकीर्या।
प्रत्यक्पुष्पी पीततैलौदकीर्या श्वेतायुग्म तापसाना च वृक्ष ॥
अयमर्कादिको वर्ग कफमेदोविषापह । अ हृ सू, १५।२९

२. मुष्ककस्नुग्वरा द्वीपिपलाशधवशिशिपा । अ हृ सू १५।३२

३ असनतिनिशभूर्जश्वेतवाहप्रकीर्या । खदिरकदरभन्डीशिशिपामेषशृग्य ॥
त्रिहिमतलपलाशा जोंगक शाकशालो । क्रमुकधवकलिगच्छागकर्णाश्वकर्णा. ॥
असनादिर्विजयते श्वित्रकुष्ठकफक्रिमीन् । अ हृ सू १५।१९, २०

४. सुरसयुगफणिज्जकालमाला विडगं, खरबुसवृषकर्णीकट्फलकासमर्द ।
क्षवकसरसिभार्गीकार्मुकाकाकमाची, कुलहलविषमुष्टीभूस्तृणोभूतकेशी ॥
सुरसादिर्गण श्लेष्ममेद कृमिनिषूदन । अ. हृ. सू. १५ ३०, ३१

५. खरबुस (मरुवक)
६. वृषकर्णी (मूषिकपर्णी)
७. कट्फल
८. कासमर्द
९. क्षवक
१०. सरसी (तुम्बरपत्रिका)
११. भार्गी
१२. कार्मुका (रक्तमंजरी)
१३. काकमाची
१४. कुलहल (भूकदम्ब)
१५. विषमुष्टि
१६. भूस्तृण
१७ गूतकेशी

६. **मुस्तादिगण**[1]—

१. मुस्ता
२. वचा
३ अग्नि
४ विषाख्या (शुक्लकन्दा)
५. द्विनिशा
६ त्रुटी
७. हैमवती
८. द्वितिक्ता
९. भल्लातक
१०. पाठा
११. त्रिफला
१२ कुष्ठ

७. **वत्सकादिगण**[2]—

१. वत्सक
२ मूर्वा
३. भार्गी
४. कटुका
५. मरिच
६. कट्वगफल
७. सिद्धार्थ (गौरसर्षप)
८ जीरक
९. विडग
१० पञ्चकोल
११. घुणप्रिया
१२. गन्डीर
१३ एला
१४. पाठा
१५. अजाजी
१६ अजमोद
१७. वचा
१८. हिंगु
१९. पशुगन्धा (अजगन्धा)

उपरोक्त गणों का वर्णन अष्टागहृदयकार ने श्लेष्म सशमन हेतु किया है। ये समस्त द्रव्य कटु, उष्ण तीक्ष्ण, आदि गुणो के कारण श्लेष्म सशामक होते हैं।

अष्टांग सग्रहोक्त श्लेष्म संशमन गण—[3]

१ आरग्वधादिगण
२ असनादिगण
३. अर्कादिगण
४ सुरसादिगण
५ मुष्ककादिगण
६ वत्सकादिगण
७ मुस्तादिगण

---

१ मुस्तावचाग्नि द्विनिशाद्वितिक्ता भल्लातपाठात्रिफलाविषाख्या।
कुष्ठ त्रुटीहैमवती च योनिस्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥ अ हृ सू. १५।४०

२ वत्सकमूर्वाभार्गी कटुकामरीच घुणप्रिया च गन्डीरम्।
एलापाठाऽजाजी कट्वंगफलाजमोदसिद्धार्थवचा ॥
जीरकाहिंगुविडग पशुगन्धा पंचकोलकं हन्ति।
चलकफमेद पीनसगुल्मज्वरशूलदुर्नाम्न ॥ अ हृ. सू १५।३३, ३४

३ आरग्वधादिरसनादिरर्कादि सुरसादिर्मुष्ककादिर्वत्सकादिर्मुस्तादि शीतघ्नश्च महाकषायो वल्लीकंटकपंचमूले च श्लेष्मसंशमनानीति।
अ. स. सू. १४

उपर्युक्त गणों के अतिरिक्त सुश्रुत एवं अष्टाग सग्रह कार ने श्लेष्म सशमन द्रव्यो की गणना पृथक रूप मे की है जो कि निम्नानुसार है[1]

१	कालेयक	१०.	प्रकीर्य	१९.	वल्लीपचमूल—
२.	अगुरु	११	उदकीर्य		विदारीकन्द
३	तिलपर्णी	१२	इगुदी		अनन्तमूल
४.	कुष्ठ	१३	सुमन		हल्दी
५.	हरिद्रा	१४.	काकादनी		गिलोय
६.	शीतशिव	१५	लागलकी		मेपश्रृगी
७.	शतपुष्पा	१६	हस्तिकर्ण	२०	कटकपचमल—
८.	सरला	१७.	मुँजातक		करोदा
९.	रास्ना	१८.	लामज्जक		गोक्षुरु
					सैरीयक
					शतावरी
					गृध्रनख

इस प्रकार से दोनो ग्रन्थकारो मे उपरोक्त द्रव्यो का कथन किया है। एतावन्त इन औषध द्रव्यो की कार्य प्रणाली एव क्रियाओ का क्रमानुसार विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

कफघ्न औषधियां (Antitussives)

"कफ हृति इति कफघ्नः" इस परिभाषा के अनुसार कफ को नष्ट करने वाली औषधियो अथवा क्रियाओ को कफघ्न कहेगे।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र ने इसके लिये एन्टीट्यूसिस (Antitussis) शब्द का उपयोग किया है। कफ एव कफ के एन्टी अर्थात् विरुद्ध कार्य करने वाली औषधि कफघ्न कहलाती है[1]। अत एन्टीट्यूसिस यह शब्द कफघ्न से साम्य रखता है। विकृतावस्था मे कफघ्न क्रिया का ज्ञान करने से पहिले प्राकृतावस्था अथवा क्रियाशारीर का परिचय आवश्यक होने से इस पर विचार करेगे।

श्लेष्म प्राकृतावस्था मे रहते हुए बलदायक[2] शरीर रक्षक एक उपयोगी द्रव्य होता है, जो कि शरीर को धारण करता है। यह अपने उदककर्म द्वारा

---

१. कालेयकागुरुतिलपर्णी कुष्ठहरिद्राशीतशिवशतपुष्पा सरलारास्नाप्रकीर्योदकीर्येङ्गुदीसुमन काकादनीलांगलकी हस्तिकर्णमुंजातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपंचमुल्यो पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्मुष्ककादिर्वचादि सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्ग। सु० सू० ३९।९

२. प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा.....। च० सू० १७-११७

शरीर को पोषण देता है, विभिन्न स्थानो के दूषित पदार्थों को मल रूप मे एव निष्ठूयत्, सिंघाणक आदि के रूप मे शरीर मे बाहर निकलना है। यह श्वास प्रणाली एव कण्ठ को आर्द्र एव स्निग्ध रखता है। तथा इनकी क्रिया होने के परिणाम स्वरूप थूक रूप मे निकल जाता है। इस प्रकार इसके निकलने की कृच्छ्रता की क्रिया के परिणाम स्वरूप कास की प्रवृत्ति होकर प्रतिफल स्वरूप थूक, शरीर से बाहर निकाला जाता है।

थूक को बाहर निकालने की इस प्रक्रिया मे सर्व प्रथम श्वास को गंभीरता से भीतर की ओर फुफ्फुस मे खीचना पडता है, पुन शीघ्र ही शक्तिपूर्वक श्वास प्रणाली के आवरण ग्लोटिस (glotis) को बन्द न करते हुए ही श्वास निकालना और इस प्रकार वक्ष को रिक्त कर और शक्ति से वायु का बहिर्गमन कराना जिसकी कि गति २०० मील प्रतिघन्टे के लगभग हो, कफ को निकाल देता है। सक्षेप मे निष्कर्ष रूप से यह कह सकते हैं कि 'वमन" के समय होने वाली पूर्व प्रक्रिया कफ निर्गमन मे भी पूर्ण करनी पडती है[1]।

कास अथवा "कमन" प्रणाली की इस क्रिया-शारीर सबधी प्रक्रिया को महर्षि चरक ने निम्नरूपेण वर्णित किया है।

अध प्रतिहतो वायुरूर्ध्वं स्रोत समाश्रित ॥
उदानभावमापन्नः कण्ठे सक्तस्तथोरसि ॥
आविश्य शिरस खानि सर्वाणि प्रतिपूरयन्।
आभंजन्नाक्षिपन् देह हनुमन्ये तथाऽक्षिणी ॥
नेत्रे पृष्ठमुर पार्श्वे निर्भुज्य स्तम्भयंस्तत।
शुष्को वा सकफोवाऽपि कसनात् कास उच्यते ॥ च०चि० १८।६–८

---

1 Cough is a protective reflex which serves the purpos of expelling obnoxious material or sputum from the upper respiratory tract and, by churning movement, assists the upward propulsion of similar material in the alveoli and small bronchioles The act of coughing consists of a deep inspiration quickly followed by forced expiration against a closed glottis which suddenly open as intrathorasic pressure builds up, forcing air through the glottis at the speed of some 200 miles per hour. Teleologically, coughing maybe considered to bear the same relation to the respiratory-tract as dose vomiting to the gastro intestinal tract Pharmacology in medicine by Victor A Drill p. 45/3.

इस उद्धरण के अनुसार 'कास" या खासने की क्रिया करने के लिये सर्व प्रथम वायु को खीचकर फुफ्फुसो मे भर लेते हैं। जब यह पार्श्वीय फुफ्फुस स्रोतसो मे आश्रय कर उनको पूर्ण कर देता है तब पुन उसे ऊपर निष्काशन (उदान-भावमापन्न) हेतु बलपूर्वक प्रश्वास को निकाला जाता है। जब यह वायु फुफ्फुस की सकोच क्रिया द्वारा बाहर की ओर आक्षिप्त होकर श्वास प्रणाली से बाहर निकलता है, तब कण्ठ एव शिरस्थ अन्य स्रोतसो यथा आभ्यतर नासामुख, तालुमूल, जिह्वामूल एव स्वरयन्त्रादि को पूर्ण करता हुआ उनसे टकराकर निकलता है। इस समय यह वायु पार्श्वीय हनु, मन्या तथा नेत्रो को भरता हुआ एव उन्हे आक्षिप्त (आक्षेपयुक्त) करता हुआ नेत्रो मे उर प्रदेश, पृष्ठदेश को सकुचित करता हुआ कफ सहित अथवा कफरहित सशब्द निकलता हुआ 'कास' शब्द का घोष करता है। इसे खासना भी कहते है।

श्वास[1] एव हिक्का[2] मे भी इसी प्रकार की मिलित प्रक्रिया का वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार शुद्ध श्लेष्म प्राकृत रूप मे रहकर कास क्रिया द्वारा दूषित पदार्थों को बाहर निकालता रहता है।

कास क्रिया के अतिरिक्त भी विभिन्न प्रयोगो द्वारा श्लेष्म को शरीर से बाहर निकाल कर प्राप्त किया जा सकता है। उर स्थल श्लेष्म का प्रधान स्थान है। अत उर स्थ श्लेष्म को प्राप्त करने की कुछ विधियो का वर्णन नीचे किया जा रहा है। जिससे कि विकृतावस्था मे भी उसकी वृद्धि एव क्षय का प्रभाव सरलता से समझकर प्रस्तुत विषय श्लेष्म सशमनानुरूप चिकित्सा की जा सके।

---

१. १. यदा स्रोतासि संरुध्य मारुत कफपूर्वक ।
विष्वग्व्रजति सरुद्धस्तदा श्वासान्करोति स ॥ च० चि० १७।४५

२. मारुतः प्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्य कुप्यति ।
उर स्थ कफमुद्धूय हिक्काश्वासान् करोति सः ॥ च० चि० १७।१६

२. प्राण स्रोतांसि मर्माणि संरुध्योष्माणमेव च ।
संज्ञां मुष्णाति गात्राणां स्तम्भं संजनयत्यपि ॥
मार्गं चैवान्नपानाना रुणदध्युपहतस्मृतेः ।
साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतभ्रुव ॥
सक्तजल्पप्रलापस्य निर्वृति नाधिगच्छतः ॥
महामूला महावेगा महाशब्दा महाबला ।
महाहिक्केति सा नृणां सद्यः प्राणहरा मता ॥ च० चि० १७।२३।२६

शुद्ध श्लेष्म निष्कासन हेतु प्रक्रियाएं—

यह प्रयोग पशुओ पर सुगमता से हो सकने के कारण उन्ही पर किए जाने वाले परीक्षणो का विवरण दिया जा रहा है—

१. किसी क्षुद्र प्राणी यथा कुत्ता अथवा खरगोश को साधारण रूप से सज्ञाहीन करके उसकी जिह्वा को कोचर सदश के द्वारा पकड कर, खींचकर एव उपजिह्विका (Epiglottis) को रोचेस्टर के ओचनर सदश (Rochester–ochsner forceps) से उठाकर स्वर, रज्जुओ को वस्त्रयुक्त ओल्ड वर्ग के सदश (Oldberg biopsy forceps) द्वारा स्पर्श करके, श्वास मुखावरण का स्तर पृथक कर श्वसन क्रिया बन्द करने के साथ ही श्लेष्म कठ से निकल आता है एव इसमे कफ के समस्त गुण प्राप्त होते है[1]।

२ श्लेष्म प्राप्त करने की द्वितीय विधि के अनुसार सामान्य रूप से श्वास प्रणाली, स्वरयत्र, कण्ठ, गल श्लेष्म प्रणाली को उत्तेजना देकर कफ निकाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसकी प्राप्ति फुफ्फुसावरण, वक्षोदर मध्यस्थ पेशी, उदर के अवयव अथवा वक्षके अगो को उत्तेजित करके या शक्ति के साथ अन्य प्रयोगो द्वारा अथवा 'कास' करके भी प्राप्त कर सकते हैं[2]।

कफ निष्कासन प्रवृत्ति प्राप्त करने की इच्छा होने पर मस्तिष्क स्थित श्लेष्म केन्द्र को उत्तेजित कर जिसका कि नियत्रण कुछ भाग मे ऐच्छिक पेशियो वक्षोदर मध्यस्थ पेशी, उदरस्थ पर्शुकान्तरीय पेशियो तथा श्वसन सम्बन्धित पेशियो एव शिर, ग्रीवा तथा धड की पेशियो को उत्तेजना देकर खासकर

---

1. Cough may be demonstrated in the lighly anesthetized dog by pulling forward the tongue with Kocher forceps, lifting up the opiglottis with Rochester Ochsner forceps and touching the vocal cords with gaurze held in oldberg biopsy forceps, the sposmodie closure of the glottis is redly seen as the animal coughs —Pharmacology in medicine by Victor A Drill P 45/3

2. The cough reflex originates commonly from irritation of the mucosa of the respiratory tract above the epiglottis, in the pharynx, or below the epiglottis, in the larynx, trachea or bronchi It may also arise from irritation of the pleura, diaphragm, organs of the abdomen, or thorax, or it may be produced volntarily —Lbid P. 45/4

निकालने से प्राप्त हो जाता है[1] ।

यह श्लेष्म जब तक वक्ष की दूषित वस्तुओ को बाहर निकाल कर उनसे शरीर की रक्षा करता रहता है, तभी तक प्राकृत समझा जाता है। इसके अतिरिक्त यह कण्ठ एव गले को स्वच्छ रखने व उसे आर्द्र करने एव बोलने मे भी सहायक होता है। इसके विपरीत अन्य परिस्थितियो या रोग काल मे यह विशिष्ट प्रयोजन का न रहकर कष्टदायक ही सिद्ध होता है तथा इस प्रकार शरीर के लिये हानिकारक भी बन जाता है[2] ।

श्लेष्म का निष्कासन, श्वास, प्रणालीय श्लेष्म कला के उत्तेजन के साथ कठ स्थानीय श्लेष्म प्रदेश मे उत्तेजना होने पर खासी आकर श्वास प्रणालीय स्निग्ध द्रव्य व थूक मिश्रण के साथ होता है। श्वास प्रणाली श्लेष्मकला उत्तेजन प्रदाह या तीव्रता की स्थिति मे श्लेष्म निकालने की क्रिया उत्पन्न करते हैं और थूक निकालते हैं एवं उनकी चिकित्सा भी श्लेष्मघ्न क्रिया द्वारा की जाती है[3]।

श्लेष्म प्राप्ति हेतु द्वितीय विधि मे सुषुम्ना शीर्षस्थ कफ केन्द्र को अहिफेन के योगो से अथवा अन्य अवसादक निद्राकर औषधियो द्वारा अवसादित कर प्राप्त कर सकते है[4] ।

---

1. The tussal impulse is carried to the medullary cough center which is under partial voluntary control, and thence out to the diaphargm, intercostal muscles, accessory muscels of respiration and in extreme coughing to muscells of the head, neck and trunk –Pharmacology in medicine by Victor A. Drill P. 45 /3

2 Cough is useful when it cause explusion of undersiroble foreign matter in the respiratory tract. It is also employed to advanetage, along with clearing of the throat, which is a controled from the coughing, by speakers and others as a time filler between trains of thought. Otherwise it is useless and may be brothersome, time consuming, pain–ful and occasionally dangerous Lbid P 45 /4

3. When irrigation of the pharyngeal mucosa, above the epiglottis, give rise to tussal typerreflexia and coughing pharyngeal demulcents and sialogogues areindicated –Pharmacology in medicine by Victor A Drill P. 45 /4

4. Secondly, the medullary cough center may be depressed by the used of opirates and other narcoties. Lbid 45 /4

तृतीय विधि के अनुसार मस्तिष्कीय प्रान्तीय भाग (Cerebral cortex) एवं श्लेष्म केन्द्र के मध्य मार्ग को उत्तेजना रहित करके कफ की वर्धन प्रवृति को कम करके प्राप्त किया जा सकता है[1]।

सैद्धान्तिक रूप से कफ उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का दमन किया जा सकता है जो कि प्राणदा के उत्तेजन नाडी गण्डो के उत्तेजन व उरस्थानीय पेशी उत्तेजन से उत्पन्न होकर कफ का कारण बनता है[2]।

उपर्युक्त विवेचन के समर्थन मे ग्लासगो के हिली एवं केली (Hilli & Kelly of Glasgow) का सन् १९५१ का कफघ्न कार्य विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि उन्होंने कफघ्न औषधिया लोबिलीन तथा हेक्सामेथोनियम के प्रयोग स्वरूप (administration of Hexamathonium over came Lobeline) दिया है[3]।

श्वास प्रणालीय द्रवश्लेष्म--

यह प्राकृतिक रूप मे स्निग्ध रहता है एवं श्वास प्रणाली की ऊपर से नीचे तक की सूक्ष्म प्रणालियो को स्निग्ध व आर्द्र रखता है। कण्ठ स्थानीय श्लेष्म, कण्ठ, स्वयन्त्र, तालुमूल को स्निग्ध रखता है। यह एक पिच्छिल तथा स्निग्ध द्रव्य है। तथा ऐसिनार ग्रथियो (Acinar glands) के द्रव से बनता है, इन ग्रथियो मे स्वतत्र नाडी मण्डल के बहुसख्यक सूत्र आते हैं तथा गोब्लेट के कोष (Goblect cells) जिनमे कम अथवा बिलकुल नाडी सूत्र नही जाते, इसके साथ स्थानीय स्यदन क्रिया से भी द्रव्य एकत्रित होकर मिल जाते हैं। इस द्रव को मात्राधिक मे एकत्र कर सकते हैं। इसको विकास विधि द्वारा निष्कासित करने का साधन पेरी एव बाल्ड ने बतलाया है। श्वास प्रणालीय श्लेष्म ऊपर की ओर श्लेष्म निष्कासक सिलिया कोपोत की क्रिया द्वारा (cilliary action) निष्पन्न होकर धीरे धीरे ऊपर श्वास प्रणाली मे आता है, और इसकी मात्रा १ से १० सी सी तक २४ घटे मे मनुष्य के शरीर भार के अनुसार (प्रति किलोग्राम भार के रूप मे) निकलती है। इसमे समयानुसार श्लेष्म के एपीथीलियल को (Mucous Epetheleal cells)

---

1. Thirdly the pathiways between the cerebral cortex and the cough center may be desinsitized to the reception of cough stimuli or trained to supperss cough reflexes.

2. Theoretically, the cough reflex might be blocked upon the mot-or side of the reflex, at ganglia or at myoneural-junctions. Lbid 45 /4

3 But it may be prophetic that mills and Kelly ef glasgow reported in 1951 that administration of hexamethonium over came lobeline stimulated coughing in 5 subjects. Lbid 45 /4

रक्तकण एव विविध प्रकार के सेन्द्रिय निरिन्द्रिय तत्वों का अश उपस्थित रहता है[1]।

उपसावेदनिक एवं प्राणदा नाडी सूत्रो पर उत्तेजक (Parasympathomimetics and Vagal stimulation) क्रिया करनेवाले द्रव्य इसकी उत्पत्ति मे बाधा उत्पन्न करते हैं। जबकि सावेदनिक एव ग्रैविक स्वतत्र नाडी सूत्र बिना प्रभाव (Simpathomimetics and stimulation of the cervical sympathetic are without influence) किये हुए ही यही क्रिया करते हैं। प्राणियो मे प्रयोग करके इस श्लेष्म द्रव्य को प्राप्त किया जाता है। यह प्रयोग मनुष्य के ऊपर भी किया जाकर श्लेष्म निग्रहण में सहायक हो सकता है। इसी प्रकार के अन्य प्रयोग कनाडा के वैज्ञानिक श्री बाण्ड ने किये हैं जो कि जैविकीय रसायन शास्त्र (Biochemistry) द्रव्य गुण विज्ञान सबधी (Pharmacology) एव क्रिया शारीर सम्बन्धी हुए हैं और ये प्रयोग श्वास प्रणालीय द्रव श्लेष्म के प्राप्त करने एवं

---

1 Respiratory tract flinct is the natural demlucent of the respiratory tract below the epiglottis and corresondes in this respect to saliva and bucooph aryngeal mucous secretions above the epiglottis. It is a watery fluid formed from the secretions of the acinar glands, which are a-bundantly supplied by autometic nerves and the goblets cells, which have little or no autonomic nerves supply together with material which may be added by transudation. The fluid may be collected quantitatively by various modifications of a technic originally described by Perry and Boyed. Respiratory tract fluid is carried upward by ciliary action to the trachea, the amount reaching the epiglottis varying between 1 and 10 c c. per kilograme of body weight per 24 hours in different species of animal It may contain occasional masses of mucous, epithelial cells, and redbloodcells and analysis of fluid demonstrates the presence of many of the organic and inorganic moieties found in blood plasma

Pharmacology in medicine by
Victor A. Drill P. 45/4

उसे समझने मे सहायक सिद्ध हुए है[1] ।

इस प्रकार उपरोक्त विस्तृत विवेचन द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि श्लेष्मा प्राकृत स्थिति मे रहते हुए श्वसन सस्थान को स्निग्ध व आर्द्र रखता हुवा वोलने मे भोजन मे सहायक एव शरीर धारक होता है। परन्तु जव यह श्लेष्मा विकृत अथवा कास, श्वासादिक रोगो की अवस्था मे प्रकुपित होकर वाहर निकलने लगता है एव शरीर को कष्टप्रद एव हानिकर हो जाता है। श्लेष्म की इसी हानिकारक अवस्था को चिकित्सा द्वारा ठीक कर उसे साम्यावस्था मे लाने के लिये विविध उपायो का अवलम्बन किया जाता है। जिनसे यह पुन शान्त हो जाता है। इन उपायो को श्लेष्म सशमन सज्ञा प्रदान की गई है। इन उपायो मे विकृत कफ को नष्ट करने की प्रक्रिया का नाम है कफघ्न चिकित्सा (Antitussive Treatment) इसी कफघ्न क्रिया का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

कफघ्न क्रिया--

कफघ्न क्रिया के हेतु चिकित्सा क्रम का उल्लेख करते हुए महर्षि चरक ने कास, श्वासादि रोगो मे कफघ्न कर्म की आवश्यकता होने से निम्न विधियो का वर्णन किया है[1] ।

१. स्निग्धैरादौ उपाचरेत्
२. स्वेदै उपाचरेत्
३. धुमैस्तम् निर्हरेद्ध्रुव.
४. (१) लेखन लवणाम्वुना[2]
   (२) छर्द्दन कासिने दद्यात्[3]

उपर्युक्त इन क्रियाओ द्वारा श्लेष्म स्नेहन, श्लेष्म निष्कासन, श्लेष्म निग्रह, श्लेष्म प्रसादन एव आवसनादिनादिक विभिन्न रीतियो द्वारा श्लेष्म सशमन किया जाता है। इस प्रकार इस कफघ्न क्रिया का विवेचन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

---

1. Parasympathomimetics and vagal stimulation augment the out put of respiratory tract fluid, while sympathomimetic and stimulation of cervical sympathtic are without influence The output of this demulcent fluid is less in the wintermonths of the year in laboratory animals studied in Canada, which, if applicable to man, could be considered as a factor contributing to the increased frequency of cough during cold weather Further information on the biochemistry, pharmacology, and physiology of respiratory tract fluid has been received by Boyds.

१. वातस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत् ।
यानघ्ननिर्द्दिष्टं स्नेहाद्यैर्यूगैर्लेहैश्च युक्तितः ।
अभ्यंगं परिषेकैश्च स्निग्धैः स्वेदैश्च बुद्धिमान् ॥ च. चि. १८।३२, ३४

२ च. चि. १७।८५

३. च. चि. १७।१२१
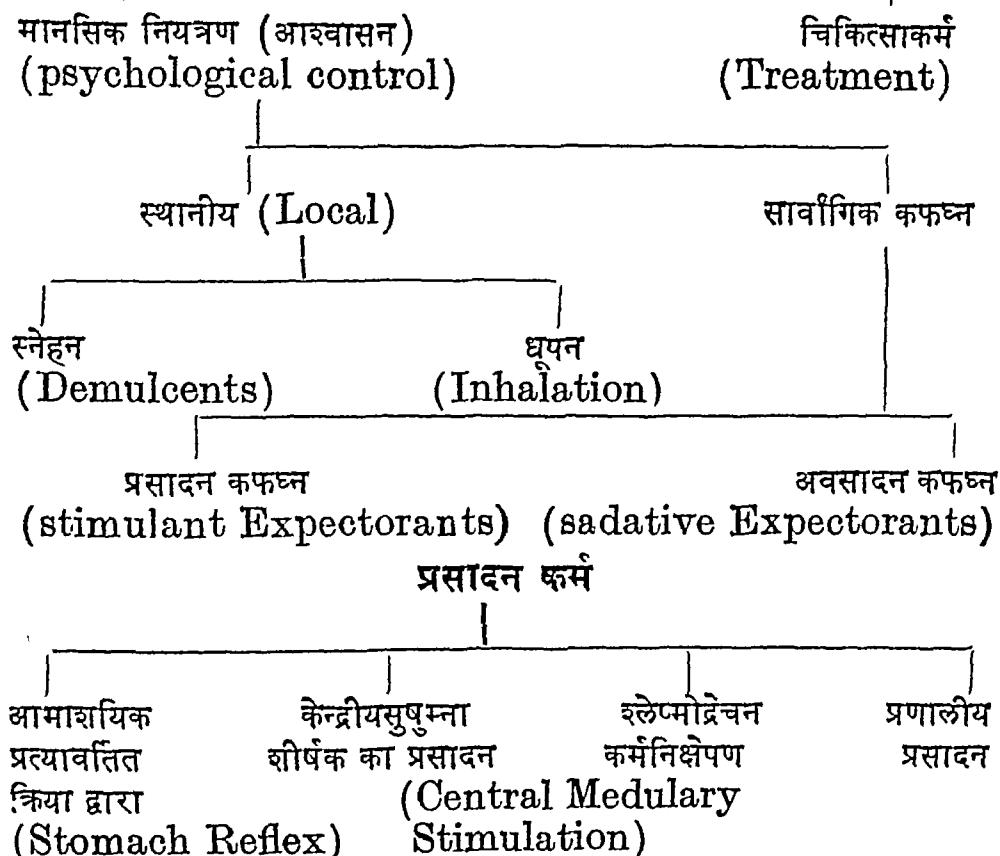
प्रस्तुत चित्र मे कफघ्न क्रियाओ का निर्देश किया गया है। अव क्रमशः इनके ऊपर विस्तृत विचार विमर्श प्रस्तुत करेगे।

मानसिक नियंत्रण (Phychological Control)

आप्तोपदेश एवं चिकित्सक का व्यवहार—

श्लेष्म व्याधि मे यथा, कास, श्वासादि से युक्त रोगी के मन एक प्रकार की कल्पना या विचार कष्टपूर्वक बार बार खासने से उत्पन्न हो जाता है, और वह वैद्य अथवा चिकित्सक के पास जाता है तथा चिकित्सक के प्रश्नोत्तरो व उनके विचारो के आधार पर एक दृढ कल्पना वना लेता है। अपने मित्रो या चिकित्सको से रोग के विषय मे भी वह सुनता है, रोग के वही समस्त लक्षण उपस्थित न होने पर भी अपने मन मे उन लक्षणो की उपस्थिति का अनुभव करना प्रारभ कर देता है कि यह अमुक प्रकार की कास है। इसमे तीव्रवेग पूर्वक खासी आती है, आनन एव कपोल रक्तवर्ण के हो जाते हैं, खासते खासते वेग परिणाम स्वरूप श्वास बढ़ जाती है, स्वेदागमन हो जाता है, वहुत खासना पडता है, इत्यादि विचार शृखला उसके मन मे उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप रोग अल्प शक्ति युक्त होने पर भी वह स्वममेव ही इस प्रकार से आचरण करके बार बार एव वल पूर्वक खासकर लक्षणो की वृद्धि करने लग

जाता है। वारम्बार थूकता है, कफ निकालने का प्रयत्न करता है, इस प्रकार रोग के तीव्रावस्था के समस्त लक्षणो को अपने मे व्यक्त करने के प्रयत्न मे रहता है। इस प्रकार रोगी मे रोग की वृद्धि होकर वह गभीरावस्था का स्वरूप धारण कर लेता है।

इसके अतिरिक्त कभी कभी चिकित्सक भी रोगी को रोगों का वीभत्स स्वरूप दिखाकर उसे चिकित्सा कराने के लिये वाध्य कर देते हैं। किसी गभीर व्याधि का नाम कहने से रोगी के हृदय पर उसका बुरा प्रभाव होने से वह अपने मे उन लक्षणो को प्राप्त करने की प्रवृत्ति मे सलग्न हो जाता है। कभी कभी वेग की भावना मे रोग तीव्र और वेगवाला समझने लगता है। कुछ चिकित्सा या औषधि लेने से अथवा स्वय ही यह लक्षण समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार रोगी समझता है कि वह व्याधि युक्त हो गया एव औषधि द्वारा लाभ हुआ। पश्चात पुन रोगाक्रात होने पर स्वय को गभीर व्याधि से पीडित समझने लगता है। एतदर्थ चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि उसके ऊपर प्रभाव उत्पन्न कर रोगी मे उत्पन्न हुई भ्रमावह कल्पनाओ का निराकरण कर दे और उचित लाभ प्रद चिकित्सा हेतु परामर्श प्रदान करे। उसे समझाकर उसमे दृढनिश्चय उत्पन्न करा दे यह रोग, जैसा कि वह समझ रहा है, गभीर- नही है, और शीघ्र ही शात हो जायेगा। इस प्रकार रोगी की मानसिक विचार शृखला छिन्न हो जाने से उसमे सद्‌भावनाओ का जन्म होता है और कास के वेगो की स्थिति मे न्यूनता आ जाती है। तथा रोगी को दृढ निश्चय हो जाने से वह आत्म निर्भर वन जाता है। एव इस प्रकार अल्पावधि के पश्चात् व्याधि शमन हो जाता है।

इस प्रकार मानसिक नियत्रण द्वारा प्रथमोपचार से रोगशमन हो जाता है। पुन यदि व्याधि प्रवल हो तो चिकित्सा की आवश्यकता होती है। यह आयुर्वेद मे आचार चिकित्सा के नाम से आती है[1]।

---

1. Psychological Control–First to be considered is the degree to which undue apprehension has forced a person to consult his physician for this ailment Undue apprerhansion make a persion atutely aware of stimuli giving rise to cough and to cough and to the act of coughing, and this state of affairs tends to augment the tussal hyperflexia Many such tussicular complaints are due simply to a mild, temporary infection or irritation of the upper respiratory passages wich will dissappear in a few days with out any drug teratment. They are best ignored. The pat-

चिकित्सा क्रम

स्नेहन चिकित्सा स्थानीय स्नेहन (Pharyngial Demulcents)

कास क्रिया मे पहिले स्पष्ट किया जा चुका है कि कण्ठ, स्वरयंत्र, तालुमूल, जिह्वामूल तथा कण्ठ प्रदेशो पर जोर पडता है। जिसमे परिणामस्वरूप कण्ठ मे शुष्कता उत्पन्न हो जाती है। अथवा उत्तेजना के फलस्वरूप कन्डू होने लगती है। इस प्रकार कफावृत वात होने पर कफज लक्षणो मे कडूयन आदि एवं वातिक लक्षणो मे कर्कशता, शुष्कता, जिसको चरकाचार्यजी ने शूकपूर्ण गलास्यता (गले मे शूकधान्य के अटक जाने के समान प्रतीत होना) एव भोज्य-पदार्थों का गले मे अवरोध हो जाना इत्यादि कहकर कास के पूर्वरूपो मे निम्नानुसार प्रदर्शित किया है। यथा...

पूर्वरूपं भवेत्तेषा शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते॥ च० चि० १८।५

इस प्रकार रूक्षता उत्पन्न होने पर कण्ठ मे उपर्युक्त लक्षण मिलते है।

इन लक्षणो की वृद्धि पर रोगी को वात प्रकोप के कारण वायु के रूक्ष, शीत, लघु, चल खर आदि गुणो की[१] वृद्धि हो जाने पर इस कास मे वायु, हृदय, पार्श्व, उरस्थल, एवं शिर मे अत्यधिक शूल उत्पन्न करता है। तथा स्वर भेद भी हो जाता है। उरस्थल, कण्ठ एव मुख मे शुष्कता उत्पन्न हो जाती है। लोमहर्ष एव ग्लानि होने लगती है। कास तीव्रवेग युक्त एव शब्द भी प्रतिध्वनित होने लगता है। वायु के रूक्ष गुण के कारण स्निग्धाग का शोषण हो जाने से रोगी का मुख मुरझाया हुआ, दीनता युक्त, आखे शुष्क दिखने लगती हैं। रोगी दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार का वर्णन करते हुए कास की व्यक्तावस्था का वर्णन किया गया है। जिसमे रूक्षता वृद्ध होकर चरम सीमा पर पहुच जाती है[२] अत इस कन्डूयन (खुजली) की प्रवृत्ति शान्त करने के लिये बार बार खांसना पड़ता है।

---

int should be assured that there is nothing seriously wrong (if such is the case) and should be advised to go about his work and to forgot to cough Honest and sinsible advice pays great dividends in peace of mind, a rare property which cannot be purchased.
–pharmacology in medicine, –by Victor A. Drill
page 45/3

१. रूक्ष शीतो लघु सूक्ष्मश्चलोऽथ विशद खर। च० सू० १।५९
२. हृत्पार्श्वोर शिर शूलस्वरभेदकरो भृशम्।
शुष्कोरः कण्ठवक्त्रस्य हृष्टलोम्न. प्रताम्यत॥
निर्घोषदैन्यक्षामास्यदौर्बल्यक्षोभमोहकृत्। च० चि० १८।१०,११

रोगी की इस अवस्था में रूक्षता को नष्ट कर पुनः स्निग्धता उत्पन्न कर आतुर को लाभ पहुचाने के लिये उपर्युक्त कथित वात रूक्ष, शीतादिक गुणों के विपरीत स्निग्ध, उष्ण, द्रव, पिच्छिल, सान्द्र गुण एव मधुर अम्ल, लवण रस वाले विपरीत द्रव्यो से जो कि वायु शामक हों[1] रौक्ष्य को नष्ट कर स्निग्धता उत्पन्न कर तद्देशीय कर्कशता को दूर करे, प्रयुक्त किये जायेंगे। इस प्रकार के रूक्षता नाशक एव स्निग्धता उत्पन्न करने वाले स्निग्ध, अम्ल व लवण रसयुक्त उष्ण गुणो का विधान इस वातशमनार्थ महर्षि चरक ने प्रतिपादित किया है।[2]

इस प्रकार इन स्निग्धाम्ल मधुर रस वाले द्रव्यो के गुणो पर विचार करते हुए उनके स्निग्धत्व गुण को ध्यान मे रखते हुए ही सैद्धान्तिक रूप से अनिलोत्पन्न कास के लिये प्रारभ मे ही स्नेहन का विधान किया है। यथा...

रूक्षस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत्। च० चि० १८।३२

एतदर्थ सैद्धान्तिक रूपेण रूक्षता के शमनार्थ स्निग्धता उत्पन्न करने के लिये उपर्युक्त स्निग्ध, द्रव, पिच्छिल मधुरादि गुणो से युक्त द्रव्यो का उपयोग किया जाता है। इन द्रव्यो के उपयोग द्वारा कण्ठ देशीय शुष्कता या रूक्षता अथवा उत्तेजना का शमन स्थानीय स्नेहन की क्रिया द्वारा बोधक श्लेष्म वर्धक (Local sialogogues) कर्म द्वारा अगो के ऊपर प्रभावकर किया जाता है। इस सर्व सामान्य चिकित्सा द्वारा कासोद्गम प्रवृत्ति को शान्त किया जाता है। अन्यथा इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार श्वास प्रणालीय उत्तेजन द्वारा श्लेष्म को उत्पन्न कराकर भी वहा की रूक्षता को नष्ट करते हैं।

श्वास प्रणाली उत्तेजन को दूर करने के लिये इस स्थान के श्लेष्मभाव का प्रसादन करना पडता है एव इस प्रकार से बोधक श्लेष्म को वढाने की प्रवृत्ति को प्रसादन कर्म कहते हैं। इस निमित्त श्लेष्म प्रसादक, मधुर, कषाय, स्निग्ध पिच्छिलादि गुणयुक्त द्रव्यो के समावेश मे निम्न द्रव्यो का अन्तर्भाव होता है।

१. सिता (मिश्री)
२. मधुयष्टि खण्ड
३. अभया
४. विभीतक
५ सार निर्यास
६. रालजातीय द्रव्य

इन मधुर अथवा कषाय रस वाले द्रव्यो को एव सार निर्यास तथा राल जातीय द्रव्यो के साथ मधुर एव कषाय रस युक्त द्रव्यो का सम्मिश्रण करके मुख मे धारण करते हैं। इस प्रकार इनका कार्य दो प्रकार से सम्पन्न होता है।

१. मुख मे रस की वृद्धि के हेतु मुख को वन्द रखने का प्रधान प्रधान सिद्धान्त स्थानीय उत्तेजन, सवेदन या शुष्कता को कम करना ही है। इस प्रकार की क्रिया द्वारा द्रव द्रव्य का सग्रह होकर उत्तेजना अथवा कर्कशता का शमन होता है।

२ आधुनिक विचार से तीव्रावस्था मे कषाय रस का प्रयोग जीवाणु सक्रमण निरोधक एव पूयनिरोधक (Antibiotics and antiseptics)

---

१. विपरीतगुणैर्द्रव्यैमरुतः संप्रशाम्यति ॥ च० सू० १।५९
२. स्निग्धाम्ललवणोष्णैश्च भुक्तपीतैः प्रशाम्यति। च० चि० १८।१२

संज्ञाशून्य पदार्थों का उपयोग करके उत्तेजना का शमन किया जाता है। इस प्रकार श्लेष्म वृद्धि रुक कर उत्तेजना कम हो जाती है।

उक्त कथित कार्यो के प्रति हेतु सिता (मिश्री) खंड अथवा मधुयष्टि के टुकड़े को मुख मे आचूषणार्थ रखा जाता है अथवा औषधि रूप मे प्रयुक्त करने के लिये इन द्रव्यो की—

१. वटी
२. वटक
३. अवलेह
४. शर्बत
५. गुटिका

इत्यादि उपरोक्त कल्पनाओ का आश्रय लिया जाता है। ये वटक या गुटिकायें मुख मे पर्याप्त समय तक बनी रहती है। धीरे धीरे घुलती हुई रस के द्वारा स्निग्धता उत्पन्न करके रूक्षता का शमन करती हुई अपना प्रभाव स्थिर रखती है। इनके प्रयोग काल मे मुख बन्द रखना आवश्यकीय होता है। इन वटकादि को अल्पावधि पश्चात् पुन पुन· प्रयोग करते रहना चाहिए।

उपर्युक्त इन चिकित्सा साधनो मे विभिन्न कल्पनाओ द्वारा निर्मित कुछ सामान्य योगो का प्रयोग किया जाता है, जो कि निम्न हैं।

१. एलादिवटी
२. खदिरादिवटी
३. लवगादिवटी
४ वासावलेह
५. वासा शर्बत
६. वासासोमशर्बत
७. कनकशार्करीय
८. शर्बत उन्नाव
९. सत उन्नाव
१०. मधुयष्टि सत्व

ऊपरि कथित ये तथा अन्य इसी प्रकार के योग भी मुख में रहकर अपने रस द्वारा स्निग्धता उत्पन्न कर रूक्षता का शमन कर उक्त सिद्धान्त के अनुसार कार्यकर होते हैं।

इन योगो के अतिरिक्त औषधि कल्क, घृत एव लेपो के प्रयोग द्वारा भी यही कार्य सपन्न किया जाता है।

कवल एवं गंडूष—मधुर अथवा कषाय रस प्रधान उष्ण गण्डूष एव कल्को का प्रयोग भी लाभदायक होता है।

स्नेह गण्डूष धारण का वर्णन करते हुए स्वस्थवृत्तचर्या मे कहा गया है कि—

गण्डूष धारण करने से, कठ शोष, मुख शोष, ओष्ठ को फटने का भय नही रहता। दन्त एव दन्तमूल पुष्टि हो जाते हैं। स्वर एव मुख तथा वदनोपचयकर होता है। अत उक्त औषधियो द्वारा गण्डूष धारण करने से स्थानीय स्नेहन होकर कास का शमन होगा, स्वत सिद्ध हो जाता है[1]।

स्वस्थ वृत्त चर्या मे भी शीतल जल के गण्डूष को कफ, कास, मलहर एवं मुखशुद्धिकर बताया है[2]।

---

१. च. सू. ५।७८, ८०

२. गन्डूषमथ कुर्वंति शीतेन पयसा मुहु। कफतृष्णामलहरं मुखान्त शुद्धिकारकम्।

3. Pharmacology in medicine by Victor A. Drill P. 45/3

प्राय इसी प्रकार मे मिलता जुलता हुआ वर्णन आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मे भी प्राप्त होता है। इस स्थिति मे वटिकाए (Lozenges) राल जातीय द्रव्य (acacia and resin) ट्रोचीश कवल (Gargals) आदि का प्रयोग स्थानीय स्नेहन के रूप मे काम मे किया जाता है। जिसका विशद विवरण निम्नानुसार है।

4. Pharyngeal demulcents—and local sialogogues should be considered best at the simplest treatment of useless cough due to irrigation of mucosa of the respiratory airway above the epiglottis. In this location, the natural demulcent is saliva and the secretions of the mucous glands, Pharyngeal irritation is augmentad by the drying of these secretions, as in mouth breathing, is lessened by increasing the production of saliva The latter may be accomplished by holding of loading in the mouth to one side af the tongue, a hard candy, troche, lozenge, cough drop, pharynget, or similar preparation containing sugar, flavor, and a binder such as acacia and a resin, molded into a suitable form. Such a lozenge serves the dual purpose of sitmulating the flow of saliva and of making the person keep his mouth shut Unless otherwise indicated, there is no need to prescribe lozenges containing special ingredints such as astrin gents, local anesthetics, antisepaticsor antibiotics,

इस प्रकार हमारे प्राचीन प्रौढ चिकित्सा सिद्धान्त मे आधुनिक चिकित्सा शास्त्रकारो के ही विचार दृष्टिगोचर होते हैं।

धूपन एवं वाष्प निगलन (Inhalation therapy)

ऐसी स्थिति मे जब गाढा कफ होने के कारण श्लिष्ट होने से श्वास प्रणाली मे चिपक जाता है और खासने पर भी सरलता पूर्वक नही निकल सकता है तो रोगी को उस श्लिष्ट कफ को निकालने के लिये बार बार बल पूर्वक खासना पडता है। और इस प्रकार समस्त श्वसन सस्थान एव श्वसन सस्थान मे सम्बन्धित वक्ष, उदर, ग्रीवा एव शिर की पेशियो की भी सहायता लेनी पडती है। इस प्रकार के उपक्रम मे रोगी को महान कष्ट होता है। खासते खासते अन्धकारवत् प्रतीत कभी कभी होने लगती है और बहुत कठिनाई के परिणाम स्वरूप अल्प मात्रा मे ही कफ निर्हरण हो पाता है। इस अवस्था

का वर्णन महर्षि चरक ने लीन दोषावस्था के द्वारा किया है। तथा इस अवस्था की चिकित्सा मे धूम्रपान के द्वारा दोष निर्हरण का विधान किया है[1]।

धूम्रपान के विधान का निर्देश करते हुए आधुनिक चिकित्सा शास्त्र द्वारा भी विवरण प्राप्त होता है कि जब श्वास प्रणाली के आवरण ग्लोटिस (Glottis) से नीचे श्वास प्रणाली मे कफ अटक जाता है एवं सुगमता से नही निकल सकता है। तब उसे निकालने के लिये धूम्रपान (Inhalation) का प्रयोग किया जाता है[2]।

चिकित्सा—हेतु विधान बतलाते हुए धूम्रपान का निर्देश किया गया है। इसके लिये दो प्रकार के धूम्र का वर्णन प्राप्त होता है—

१. स्निग्ध धूम्र २. रूक्ष धूम्र

इन धूम्रो के लिये सुगंधित द्रव्यो हरिद्रा, तेजपत्र, जटामासी, मन.सिला, प्रियगु इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

१ स्निग्ध धूम्रपान—के लिये इन सुगंधित द्रव्यो को दुग्ध मे पीस कर सरकन्डे की हृषीका (खोल) पर लिप्तकर दें यह धूमवर्ति यव के आकृति की अगुष्ट प्रमाण मोटी एव आठ अगुल लम्बी होनी चाहिये। वर्ति सूख जाने पर सरकन्डे की हृषीका को निकाल लेना चाहिये पुनः वर्ति को घृत से लिप्त करके धूम्रनेत्र द्वारा धूम्रपान करना चाहिये।

२. रूक्ष धूम्र सेवन हेतु—भी उपर्युक्त एव अन्य इसी प्रकार के सुगंधित द्रव्यो को लेकर उनका चूर्ण बनाकर धूम्रनेत्र मे रखकर धूम्रपान किया जाता है।

धूम्रपानोपयोगी ये सुगंधित द्रव्य अपने प्रभाव द्वारा श्वास प्रणालीय श्लेष्म को द्रव बनाकर निकाल देने का कार्य करते है।

आधुनिक श्वास प्रणालीय कफ प्रसादन की विचारधारा मे उडनशील तैल (Volatile oil essential oil) युक्त द्रव्यो को जो महत्व दिया जा रहा है यह सुगंधित द्रव्यो के उपरोक्त कर्म से साम्य रखता है। आधुनिक विचार निम्न है—

उडनशील तैलयुक्त सुगंधित द्रव्यो द्वारा धूम्रपान करने पर उन द्रव्यो मे उपस्थित उडनशील तैल श्वास प्रणाली तक पहुचकर वहा स्थित श्लिष्ट कफ को द्रव करके एव श्वास प्रणाली का विस्तार करके कफ निर्हरण मे सरलता उत्पन्न कर देता है। जिससे कफ निकल जाने से रोगी को शान्ति मिल जाती

---

१. लीनश्चेद्दोषशेष स्याद्धूमैस्त निर्हरेद्बुध । च. चि १७।७७

2 Inhalation therepy may be considered for useless caugh due to irritation of the respiratory tract mucosa below the epiglottis Volatile drugs such as the essential oils may be inhaled directly

Pharmacology in medicine by Victor A Drill P. 45/3

है। धूम्रपान द्वारा इन सुगंधित द्रव्यो मे स्थित उडनशील तैल की क्रिया दो प्रकार से श्वास प्रणाली पर होती है[1]। यथा—

१. उडनशील तैल श्वास प्रणालीय मांस पेशी पर क्रिया करके श्वास प्रणाली का विस्तार कर देते हैं एव दूसरी ओर से प्राणदा नाड़ी के केन्द्र पर क्रिया करके अपना प्रभाव डालकर भी श्वास प्रणाली का विस्तार कर देते हैं।

२. ये तैल श्वास प्रणालीय श्लेष्म कला द्वारा उत्सर्गित होते हुए कफ नि सारक क्रिया भी करते हैं।

उपरोक्त दोनो प्रकार की क्रिया के परिणाम स्वरूप श्वास प्रणाली का विस्तार होकर कफ निकल जाता है। एव रोगी शान्ति का अनुभव करता है। इसी क्रिया का निर्देश पूर्व सूत्र मे दोषो की लीनावस्था कह कर धूम्रपान द्वारा उसका निर्हरण करना वतलाया गया है। जो कि इस विवरण द्वारा शतप्रतिशत समर्थित हो जाता है।

उक्त क्रिया को सम्पन्न करने के हेतु सुगधित वस्तुओ मे निम्न द्रव्यों का समावेश किया गया है।

१. हरिद्रा
२. तेजपत्र
३. एरण्डमूल
४. लाक्षा
५. मनःशिला
६. देवदारु
७. अजवायन
८. श्रीवेष्टक
९. शिलारस
१०. वासा
११. हरिताल
१२. धुस्तूर
१३. कर्पूर

उक्त कथित द्रव्यो की वर्तियो द्वारा धूम्रपान करके कफ निर्हरण करना चाहिये अथवा तारपीन (Terpentine) का एव यूकेलिप्टिस तैल (Eucalyptis oil) की बिंदुओ को उष्णजल मे डाल कर उसका बाष्प सेवन किया जाता है[2]।

---

1. The alkaloid Saussurıue causes Relaxation of the Bronchial partly by directation on the muscele, and partly through the vagus centre (Chopra). The essential oil acts as an expectorant while exereted through the bronchial mucous membrane

Pharmacology medica and theraputics by R Ghosh ed 20th P 947–1957.

2 Volatile drugs such as the essential oils may be inhaled directly

Pharmacology in medicine by Victor A. Drill page 45/5

उपर्युक्त वर्णित एवं अन्य इसी प्रकार के सुगंधित द्रव्यो से निर्मित कफघ्न धूम्र के कुछ विशिष्ट योगो का वर्णन निम्नानुसार किया जा रहा है।

१. **मनःशिलादि धूम्र**[1]—मे निम्न द्रव्यो का ग्रहण है।

१. मनःशिला
२. मरिच
३ जटामासी
४. भद्रमुस्ता
५. इगुदीमज्जा

विधि—इन द्रव्यो को मिलाकर धूम्रपान करना चाहिये।

क्रिया—यह सर्व प्रथम कफोत्क्लेशन क्रिया करके श्वास प्रणाली की ग्रथियो का क्षोभकर उनकी क्रिया का अवसादन करता है। तथा श्वास केन्द्र पर प्रभाव डाल कर उसकी क्रिया को अवसादित कर देता है। इससे श्वास का वेग शान्त हो जाता है। इस प्रकार की क्रिया का कारण इसमे उडनशील तैलों की उपस्थिति का रहना है जो कि पूर्व मे प्रतिपादित किया जा चुका है।

अनुपान—क्षीर एव गुड का सेवन करना चाहिये। इस स्निग्धानुपान के द्वारा वायु के रौक्ष्य एव खरत्व गुण की वृद्धि नही हो पाती है।

सेवनविधि—इस धूम्र का सेवन दिन मे तीन वार एव इस प्रकार ३ दिन करना चाहिये।

द्वितीय योग[2]—द्रव्य–१ मन शिला २. वदरी पत्र ३ दुग्ध

निर्माण विधि—मन.शिला को दुग्ध मे पेशित करके वदरी पत्र के ऊपर इसका लेप कर वर्ति का निर्माण कर लेना चाहिये। पश्चात् इसे सुखाकर धूम्रपान करना चाहियें।

अनुपान—दुग्धानुपान करना चाहिये।

तृतीय योग[3]—द्रव्य–१. अर्कमूलत्वक् २ मन शिला ३ त्रिकटु

विधि—अर्कमूलत्वक् एवं मन.शिला सम प्रमाण मे लेकर इनसे आधा भाग त्रिकटु लेवे। पुन. इनको चूर्ण करके धूम्रपान करे।

Inhalation of volatile oils like comphor menthol and eucalyptus merely best olfactory sensation in cold, they tend to damage the delicate epithelium of the respiratory tract and delay healingpharmacology and pharmaco Theraputics.

by J. C. David P. 298, 1959
3rd ed

१. मन.शिला मरिचमुस्तमासींगुदं पिवेत्।
धूमं त्र्यहं च तस्यानुपानं सगुडश्च पयः पिवेत्॥

२ मन.शिलालिप्त दलं बदर्याउपशोषितम्।
सक्षीरं धूम्रपानं च महाकासनिवर्हणम्॥

३. अर्कमूलशिले तुल्ये ततोर्धेन कटुत्रिकम्।
चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिवेद्धूमं च योगवित्॥

की वृद्धि हो जाने के कारण बारबार खासने की क्रिया द्वारा श्वास प्रणालीय वायुपथ के द्वारा इस द्रव से सम्मिलित होकर निकल जाते है[1]।

उपर्युक्त कथनानुसार श्लेष्मनि.सारक द्रव्य श्लेष्म प्रवृत्ति का प्रसादनकर अपना कार्य करते हैं। इनकी वह श्वास प्रणालीय उदक कर्म प्रसादन क्रिया चार प्रकार से होती है।

कफनिःसारक औषधियों का श्वास प्रणालीय उदककर्म का प्रसादन (Expectorants–Machenism of Action)

कफ नि सारक द्रव्य चार प्रकार से श्वास प्रणालीय श्लेष्मपोद्रेचन एव निग्रहण पर अपना प्रभाव करते है। पूर्व मे जो चिकित्सा क्रम प्रतिपादित किया जा चुका है। उसमे बतलाया गया है कि स्नेहन कार्य के लिये अवलेह, शर्बत, शार्करीय कल्पनाये वटी एवं गुटिकाओ आदि का प्रयोग किया जाता है, ये अवलेह एव शर्बत इत्यादि मुख द्वारा ग्रहण किये जाने बाद आमाशय मे ही पहुचते है और वहा पर मधुर रस प्रधान होने से तथा स्निग्ध पिच्छिल एव शीत गुण युक्त होने के कारण स्नेहन की क्रिया करते हैं। आमाशय मे स्नेहन एव मधुर रस की वृद्धि होने से शरीर के अन्य स्थानो मे भी श्लेष्म प्रसादन कार्य आमाशय क्लेदक कफ के उदक कर्म के द्वारा होता है। जिसका कि वर्णन प्रथम खंड प्राकृतकर्म विज्ञानीय मे किया जा चुका है। इस प्रकार आमाशय एव फुफ्फुस में नाडी द्वारा घनिष्ट सबध होने के कारण फुफ्फुस पर आमाशयिक नाडी सूत्र का प्रभाव पडने से वहा पर भी श्लेष्म प्रसादन कर्म होने लगता है एव परिणाम स्वरूप कफ की वृद्धि होने लगती है। ऐसी ही स्थिति मे कफ-नि सारक क्षार कटुकाम्ल द्रव्य अपना कार्य करके श्लेष्म निष्कासन करने मे समर्थ होते है। आमाशय एव फुफ्फुस के घनिष्ट सम्बन्ध तथा अन्य प्रकार से इन कफनि सारक द्रव्यो की क्रिया का वर्णन आज का चिकित्सा शास्त्र भी आमाशय परावर्तन क्रिया इत्यादि संज्ञाओ द्वारा करता है। जो कि प्राचीन वर्णन से साम्य रखता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। यथा–

---

1. Expectorants are drugs which have the ability to augment the output of demulcent respiratory tract fluid, and this fluid covers and protects the irritated mucosa from which cough impulses arise. They are indicated particularly for dry, nonproductive, hacking coughs. Local irritants may be dissolved in or carried by, respiratory, tract fluid out of the respiratory airway (Latin expectorare, "to drive from the chest)" by continuous streaming upward of increased amounts of this fluid.

Pharmacology in medicine by
Victor A. Drill Page 45/5

१. आमाशयिक परावर्तन क्रिया द्वारा (Stomach Reflex)—

औषधियो का यह वर्ग आमाशयिक, परावर्तन क्रिया द्वारा (Reflexaction of Stomach) श्वास प्रणालीय श्लेष्म की वृद्धि को अवसर प्रदान करता है उदाहरण हेतु–

किसी साधारण सज्ञा शून्य बिल्ली के उदर मे आमाशयिक नलिका (Stomach tube) द्वारा नरसार पहुचाया गया तो नरसार पहुचने के २, ३ घन्टे बाद श्वासप्रणाली का द्रव्य द्विगुण अथवा त्रिगुणित हो गया। परन्तु इसके विपरीत एफरेट वागल फाइवर्स (Afferent Vagal fibers) को काट देने पर अथवा सिरागत सूची वेध द्वारा द्रव्य पहुचाने पर कोई प्रभाव देखा नही गया। इस परिणाम द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि आमाशयिक नाडी सूत्रो द्वारा प्राप्त होने वाली सवेदना के अभाव के कारण ही श्वास प्रणाली मे श्लेष्म वृद्धि नही हो सकी। नरसार का कार्य इसमे प्रवल रूप से देखा गया। जब कि मधुयष्टि खड व श्लेष्मातक का श्लेष्म प्रसादन कर्म अपेक्षाकृत कम है [1]।

२ केन्द्रीय सुषुम्नाशीर्षक प्रसादन (Central Medullary stimulation)

सुषुम्नाशीर्षक केन्द्र को उत्तेजना देकर इस द्रव की वृद्धि करना सभव हो जाता है। एपोमार्फीन हाइड्रोक्लोराइड (Apomorphin hydrochloride) को उचित मात्रा मे कफनि सारण के लिये प्रयोग किया गया किन्तु श्वास प्रणालीय द्रव पर उसका कोई प्रभाव देखा नही गया। परन्तु वाष्प निगलन (Inhalation) रूप मे ५ प्रतिशत कार्वनद्विओषित एव ९५ प्रतिशत ओसजन (5% carbon dioxide and 95% oxygen) के द्वारा ऐच्छिक एव अनैच्छिक (Voluntery and Involuntery)

---

1. They may act by initiating from the stomach reflexes which eventuate in an augmented output of respiratory–tract fluid An example of such an expectorant is Ammonium chloride When this drug is given by stomach tube to a lightly anes thezierep bit or eat, there follows in 2 or 3 hours a twofold to these fold incrase in the output of respiratory fluid, If however, the affarent gastric vagal fibres have been previously cut or if the drug is administred in travenously there is no augmentaction of output of respiratory–tract fluid after giving ammonium chloride. This reflex is not abolished by plan, anesthesia and is probably fairly primitive.

Pharmacology in medicine
by Victor A. Drill
page 45 /

पेशियों की क्रिया वृद्धि होकर श्वास प्रणालीय कफ को द्रव कर देने का प्रभाव प्राप्त किया गया। श्री बैनियाई ने अपने प्रयोग द्वारा ऐसे कफ को जो कि पहिले ग्रथित एव गाढ़ा था, दिन मे ३, ४ बार प्रति मिनिट ५ लीटर गैसो के मिश्रण की वाष्प को मुख द्वारा सुघाकर निकाल दिया एव खासने की प्रवृत्ति को कम कर दिया। इसी प्रकार की क्रिया स्नेहन धूम्र की भी होती है जो कि पूर्व मे प्रतिपादित की चुकी है[1]।

३. श्लेष्मानुगद्रव्य का निक्षेप—एसिनार ग्रथियो मे स्थित कोलिनर्जिक (cholinergic) नाड्यत भाग को उत्तेजित करने पर श्वास प्रणालीय द्रव्य की प्रभूत मात्रा प्रयोग शाला मे जतुओ के ऊपर प्रयोग द्वारा बायड (Boyd) एवं लेप (Lapp) ने प्राप्तकी है।

एक अन्य प्रकार से भी पेरासिम्पेथोमिमेटिक (Parasympathomemetic) द्रव्योंके प्रयोग से जैसे कार्बोकोल और मेथाकोलीनक्लोराइड (Carbocoal and Methacholine chloride) के प्रयोग द्वारा श्लेष्म की वृद्धि और एट्रोपीन (Atropine) के प्रयोग से उसका अवरोध देखा गया, किन्तु सर्वाइकल वागल नर्व (Cervical Vagal nerve) को काट देने पर कोई परिणाम नही निकला।

---

1. Central Medullary stimulation is a possible meehenism of action Apomorphine hydrochloride has been tried in ometic doses as an expectorant birt its effect upon the output of the respiratory tract fluid has not been determined Inhalation of 5 percent carbon dioxide and 95 percent oxygen, while effecting primarily the carotid body, might be placed in this catogory. Inhalation of carbon dioxide increases the movement if both voluntary and involuntary muscles associated with respiration anb liquefies mucopurulent influanmatory-exudate which may hove become stagnant in the bronchial airway Banyai found that inhalation of this gaseous mixture at the rate of 5 liters permissite 3 or 4 times a day prevented exhaustive coughing and enable the patient to expal sputum which had been priviously thick and tenacious.

Pharmacology in medicine
by Victor A Drill
Page 45/

इसी प्रकार अन्य द्रव्य जो पैरासिम्पेथेटिक नाड़ी मडल पर Pharmacologic and toxicalogic actions of parasympathomimetic agents) कार्य करते है। इन द्रव्यों के प्रभाव से भी श्लेष्मवर्धन होता है। इस प्रकार के नये रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग श्वास प्रणालीय एसिनारग्रथियो की क्रिया पर और कुछ नई क्रिया के प्रभाव द्वारा जाना जा सकता है।[1]

४. श्वास प्रणालीय कोषो की साक्षात उत्तेजना द्वारा भी श्वास प्रणालीय द्रवश्लेष्म की मात्रा वृद्धि की जा सकती है। इसके उदाहरण स्वरूप नीलगिरी के तैल (Eucalyptus oil) के प्रयोग को रखा जा सकता है जो कि श्लेष्मोद्रेचन की क्रिया को वढा देता है। अतुओ के प्रयोगो मे खरगोश को मुख के द्वारा यह तैल प्रयुक्त किया गया तो भी उसमे श्लेष्म वृद्धि हो गई। जव कि आमाशयिक प्राणदा नाडी शाखा (Gastric Vagal nerve) को काट देने अथवा सत्रवित वने रहने देने पर भी कोई प्रभाव नही देखा गया चूकि यह द्रव्य उपसावेदनिक नाडी उत्तेजक (Parasympathomimetic) नही है। फिर भी इसके एव अन्य इसी प्रकार के सुगधित व उडनशील तैल अपने कार्य द्वारा साक्षात रूप से ही श्लेष्म वृद्धि कर होते हैं एव श्वास प्रणालीय कोषो से श्लेष्मोद्रेचन कराते है। इन द्रव्यो का सेवन मुख द्वारा किया

---

1. By stimulating the receptor sites of cholinergic nerves, ending in the acinar glands, a copious increase in the volume output of respiratory tract fluid may be demonstrated in laboratory animals, as shown by Boyd and lapp This may be accomplished by administration of various parasympathomimetic agents such as carbachol, and methacholine choovide, and the effect is eliminated by atropine sulphate, but not by section of the cervical vagus nerve. The ubiguitous pharmacologic and toxicologic action of parasymapathomimmatic agents distinctly limit their usefulness as expectorants It is possible that, by sereening new chemical compounds of this type, one may be found with a circumbscribed action selective for the acinar glands of

Pharmacology in medicine,
by Victor
A Drill

जाय अथवा वाष्परूप मे, किसी भी प्रकार करने पर श्लेष्म वृद्धि कर होते हे।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित औषधियो अवलेहादिक एव सुगधित द्रव्य इन चार विभिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा फुफ्फुसो एव श्वास प्रणाली स्थित श्लेष्म की प्रसादन कर्म द्वारा वृद्धि करके उसके नि सरण मे सरलता उत्पन्न कर देते हैं। इस श्लेष्मनि.सारक एव वर्द्धक क्रिया हेतु प्रयुक्त विभिन्न सज्ञाओ के अनुसार कार्य कर औषधियो का कार्य विवरण अधिक स्पष्ट रूप से बतलाते हुए फार्माकालोजी (Pharmacology) के लेखक श्री रवीन्द्रनाथ घोष ने अपने विचार निम्नानुसार प्रगट किये है। यथा—

कफनिसारक (Expectorants) की सरल परिभाषा करते हुए श्री घोष ने कहा है कि यह ऐसे द्रव्य है जो श्वास प्रणालीय स्राव को बढा कर उसके निकलने मे सहायक होते है। यह विचार पूर्व कथित श्लेष्म प्रसादन कार्य से साम्य रखता है[2]। इन द्रव्यो की क्रिया को स्पष्ट करने के लिये निम्न साधनो का वर्णन किया गया है।

---

1. Expectorants are drugs which increase bronchicals recretion and help its expulsion

Pharmacology and Theraputics
by R ghosh P 36 ed 20th 1957

2 By direct stimulation of the secretory cells of the respiratory airway, the output of respiratory tract fluid may be increased. An example of this type of expectorant is eucalyptus oil, which augments the output of respiratorytract fluid when given by mouth to guine a pigs with afferent gastive vagal nerves either cut or intact Since this drug is not a parasympathometic agent, it and the other expectorant essential oil have some probable direct action on the secretory cells of the bronchial tree, perhaps as the volatile oil is eliminated through the lungs

Pharmacology in medicine
by Victor A. Drill
Page 45

कफनिःसारक (Expectorants)

सचालक नाडी के कार्य द्वारा (Vagus-motor nurves action)

उपस्रावेदनिक नाडी क्रिया (SecretaryNerve action)

सीलिया की निष्काशक गति (Propulsive movements of cilia)

कफ का परावर्तन कर्म (Reflex expulsive Machenism of cough)

श्वास प्रणालीय पेशी क्रिया वृद्धि (Peristaltic movement of musceles of the smaller bronchial)

क्षुद्र श्वास प्रणालीय को आर्द्र रखना (Keeps the bronchial surface moist)

उत्तेजक वस्तु को द्रव करना (Dilutes irritating substances)

उपर्युक्त चित्र द्वारा यह ज्ञात होता है कि श्लेष्म नि सरण क्रिया कई अगावयवो के सहयोग द्वारा सपन्न होती है। इस तरह यह कार्य मुख्य रूप से दो प्रकार से होता है।

१. सचालक नाडी मडल द्वारा।
२ शरीरस्थ श्लेष्म सद्रावी क्रिया सचालक नाडियो द्वारा।

१ सचालक नाडी मडल (Motor nerve system)

यह तीन प्रकार से कार्य करता है—

१ श्वास प्रणालीय श्लेष्मकला स्थिति सिलिया सैल पुर सरण गति युक्त रहते हैं।
२. कफ का प्रत्यावर्तन कर्म
३ क्षुद्र श्वास प्रणालियो की प्रसारणाकुचन गति।

२ श्लेष्मसद्रावी क्रिया श्वास प्रणाली की सतह को आर्द्र रखती हैं एव क्षोमक वस्तु को द्रव करती है।

इन सचालक नाडी मण्डल (Motor system) एव स्रावकारी नाडियो (Secretary nerves) का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रहता है।

उर स्थलीय श्वास प्रणाली को स्रावकारी ग्रथियों, कफनि सरण गति करने वाले सिलिया (Cilias) जो कि श्लैष्मिक कला स्थित होते हैं एव श्वास नलिका की मास पेशियो की पुर सरण गति ये तीनो कफनि सारक क्रिया से सम्बन्धित रहते हैं। इनका कार्य फुफ्फुस एव श्वास प्रणाली को सदैव आर्द्र रखना है। किसी उत्तेजनात्मक अथवा क्षोभक वस्तु के श्वास प्रणाली में

प्रवेश करते ही तीव्रता के साथ स्राव मे वृद्धि होने लगती है। एवं इस स्राव द्वारा उस उत्तेजनक द्रव्य को शीघ्र ही पृथक कर दिया जाता है। इस कार्य के निमित्त श्लेष्म कला स्थित सहस्रो ग्रथिया भाग लेती हैं। इनका नियत्रण प्राणदा नाडी (Vagus nerve) एव परिस्वतत्र नाडी मण्डल की क्रिया द्वारा नियत्रित होता है। प्राणदा के केन्द्रगामी तन्तु (Afferent fibres) श्लेष्मिक कला पर एव वहिर्गामी सूत्र (Efferent fibres) मास पेशियो तथा स्रावक ग्रथियो को शक्ति प्रदान करते हैं। और इन दोनो का प्रभाव कल्पित कास केन्द्र (Hypothatical cough centre) से सम्बन्धित है।

अत' यथा समय आवश्यकतानुसार शरीर वहिर्गामी और केन्द्रगामी नाडी ततुओ की क्रिया द्वारा श्लेष्मोद्रेचन प्रवृत्ति वढाता घटाता रहता है।

इस प्रकार ये कफनि सारक क्रिया कर द्रव्य कई प्रकार से अपनी क्रियाओ के द्वारा (जिनका कि विवेचन ऊपर किया जा चुका है) कफ का निष्काशन करते रहते हैं।

यहा पर वर्णित कफ नि सारक कर्म जैसा कहा जा चुका है। कफ प्रसादन पूर्वक सम्पन्न होता है। यद्यपि कफ नि·सरण कार्य कफघ्न अथवा कफच्छेदित द्रव्यो द्वारा जो कि कटुरस प्रवान एव उष्ण व तीक्ष्ण गुणवाले अपने आग्नेय

---

1. To appreciate this action it is necessary to understand the natural mechanisms for protecting the air passages–They are motor and secretary The motor mechanism consists of (1) Propalsive movement of the cilia which line the mucous membane. (2) Reflex expulsive mechanisum of cough, and (3) Peristaltic movements of the musecles of the smaller bronchi The Secretory mechanism keeps the bronchial surface moist and dilute irritating substances. The mucous membrance there fore is supplied with a large number of glands. Both these functions, viz the motor and secretary are regulated by he vagus and sampathetic nerves The afferent fibres of the vagus nerve transmit impulses from the mucous membrane, while the efferent fibres supply the musceles and the secretary glands The musceles are also supplied by the efferent fibres of the sympathetic. Both these sets of fibres converage upon a hypothatical cough centre which is related to the respiratory and vomiting centres

Pharmacology and Theraputic by R. Ghosh 20th ed 1957 P 361

एव वायव्य भौतिक सगठन के आधार पर उत्तम रीति से करते हैं। एवं यह कफघ्न कार्य भी उपरि कथित सचालक विधियो द्वारा पूर्ण होता है। इस प्रकार से कफ प्रसादन एव कफघ्न दो विधियो द्वारा कफनि सरण क्रिया पूर्ण होती है। परन्तु यहापर प्रसादन कार्य द्वारा कफ निष्काशन विधि बतलाकर पुनः कफघ्न विधि का वर्णन करेंगे।

इस प्रकार श्लेष्महर द्रव्य (Expectorants) दो वर्ग समूहो मे विभक्त हो जाते हैं जिनका कि विशद विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है

श्लेष्मघ्न (Expectorants)

इस वर्ग मे दो प्रकार की क्रियात्मक सज्ञाओ का समावेश होता है। यथा—

१ श्लेष्मघ्न अवसादक (Expectorant Sadative)
२ श्लेष्मघ्न प्रसादक (Expectorant Stimullant)

१ **श्लेष्मघ्न अवसादक**—इस वर्ग मे श्लेष्म का शमन करने वाली समस्त क्रियाये समाविष्ट होती है। ये क्रियायें विभिन्न प्रकार से अपना कार्य करती हैं। इनमे कफ प्रसादन कर, श्लेष्म उत्क्लेशन कर, क्लेद की वृद्धि करके इस प्रकार विभिन्न साधनो द्वारा श्लेष्मा की वृद्धि करके पुन उसका निष्काशन करके शमन करने से श्लेष्मघ्न अवसादक कहलाती हैं। इस प्रकार इस वर्ग मे—

१. कफप्रशमन ३. क्लेदोपशमन
२. श्लेष्मोपशमन आदि सज्ञाओ का समावेश होता है।

२. **श्लेष्मघ्न**—इस वर्ग मे कुपित हुए श्लेष्म का निष्काशन करने वाली सज्ञाओ का अन्तर्भाव होता है।

श्लेष्महर, कफ हर, कफघ्न, श्लेष्म विकारनुत्, कफ व्याधिनिषूदन् श्लेष्मापकर्षी, कफच्छेदि इत्यादि। पुन

कफच्छेदि (Antispasmodic) श्लेष्मापकर्षी,
कफव्याधिनिषूदन, कासहर,
श्वासहर आदि सज्ञाये समाविष्ट होती हैं।

अवसादक कफ नि सारक—

१ श्लेष्मवृद्धि कम करनेवाली औषधिया।
२ कास वेग शात करनेवाली औषधिया।

अथवा

१ श्वास केन्द्र की उग्रता का शमन होकर कफ नि सारण कर औषधि
२ केन्द्राभिमुखी उत्तेजना का ह्रास होकर कफ नि सारणकर औषधि

कास कष्टकर होने पर इनके अन्दर निहित औषधियो का प्रयोग होता है। अब इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्लेष्मोपशमन—इस वर्ग के अन्दर निम्न क्रिया कर औषधि द्रव्यो का समावेश होता है।

१ कफोत्क्लेदि अथवा हृल्लासकर कफ नि सारक (Nauseant Expectorants)
२. लावणिक या क्षारीय कफ नि सारक (Saline Expectorants)

३. आक्षेपहर कफ नि सारक (Antispasmodic Expectorants)

४. वेदनाहर कफ नि सारक (Analgesic Expectorants)

इन वर्गो की क्रिया का वर्णन क्रमश प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. कफोत्क्लेदि अथवा हृल्लासकर कफ नि सारक (Nauseant expectorant)

इस वर्ग मे मधुर, कषायरस युक्त एव स्निग्ध, द्रव, पिच्छिल, शीत, मृदु गुणवाली पृथिवी एव अप् भूतात्मक सगठन होने से आप्यप्रधान औषधिया स्निग्ध, मधुर, मृदु, पिच्छिलादि कफ के इन गुणो से सादृश्य स्थापित करनेवाली होने से समान के द्वारा समान की वृद्धि होना इस सामान्य नियम के अनुसार शरीर मे सेवन करने पर यह औषधि द्रव्य मधुर, स्निग्ध, पिच्छिल द्रवादि गुणो द्वारा उदक कर्म के आश्रय से जलीय भाव की वृद्धि करके श्लेष्म को बढाते हैं।

इस प्रकार उत्क्लेशन क्रिया द्वारा श्वास प्रणालीय ग्रथियो को उत्तेजना मिलने से श्लेष्मोद्रेचन की प्रवृत्ति बढकर कफोत्क्लेदन होता है। परिणाम स्वरूप कफ की वृद्धि हो जाने पर रोगी हृल्लास (जी मिचलाना) का अनुभव करने लगता है। लालास्राव होता है, प्रसेक, मुख माधुर्य आदि लक्षणो का प्रादुर्भाव होता है। वमन की ओर प्रवृत्ति होने लगती है।

इन उपर्युक्त लक्षणो द्वारा कफोत्क्लेदि द्रव्यो की सम्यक् क्रिया का ज्ञान होता है।

इस वर्ग मे जितनी वामक औषधिया हैं, उन सब का समावेश होता है साथ ही स्निग्धता कारक एव वामक औषधियो का भी समावेश होता है।

इन[1] शामक औषधियो का प्रयोग विशिष्ट रूपमे अत्यधिक अथवा कर्कशता युक्त रूक्ष कास के वेग मे जिस समय वेदनाधिक्य का प्रादुर्भाव होता है उसका शमन करने के लिये किया जाता है। इस प्रकार ये शामक औषधिया विभिन्न प्रकार से कार्य करती हैं।

इनमे से क्षुद्र श्वासप्रणालियो को साक्षात रूप से उत्तेजित न करते हुए वहा की श्लैष्मिक कला के स्राव की वृद्धि कर श्वास प्रणाली शोथ अथवा

---

1. Sedative expectorants–These are specially selected to check excessive or harasing cough. They belong to–different classes and act in the following ways—

1. By soothing acute inflammation or irritation by increasing these secretion of protective mucous in the bronchioles without directly irritating the mucous membrane They are chiefly reflex expectorants, also called nauseant expectorants

Pharmacology in medicine,
by Victor A. Drill
page 45

उत्तेजना को कम करने वाली औषधियो का परिगणन कफोत्क्लेदि, प्रत्यावर्तक कफनि सारक अथवा हृल्लासकर कफ नि.सारक (N. Expt.) औषधियो में होता है। ऊपर कही जाने वाली वामक औषधियो का भी अन्तर्भाव इनमे हो जाता है।

इस प्रकार आयुर्वेद सम्मत विचार धारा का वर्णन यहा पर भी प्राप्त होता है।

ऊपर कहे गये द्रव्यो की सूची मे निम्न वामक द्रव्यो का समावेश होता है। यथा——

१. मदनफल
२ जीमूतक
३ इक्ष्वाकु
४ वामार्गव
५. कुटज
६ कृतवेधन

(२–६: इन औषधियो के फल)

७. देवदाली
८. कटुतुम्बी
९. पीतघोपा

(७–९: पत्र एव पुष्प)

१०. आरग्वध
११ वृक्षक (कुटज)
१२. मदनफल
१३ स्वादुकण्टक
१४ पाठा
१५. पाटला
१६. शार्ङ्गेष्टा (गुञ्जा)
१७ मूर्वा
१८. सप्तपर्ण
१९. नक्तमाल

(१७–१९: इन औषधियो का कषाय)

२०. पिचुमर्द (निम्ब)
२१. पटोल
२२. सुषवी (करेला)
२३. गुडूची
२४. सोमवल्क (श्वेतखदिर)
२५ चित्रक
२६. द्वीपि (छोटी कटेरी)
२७ शिग्रुमूल
२८ मधु
२९. मधुक
३०. कोविदार
३१ कर्बुदार
३२ नीप (कदम्ब)
३३ विदुल (वेतस)
३४ विम्बी
३५ शणपुष्पी
३६ सदापुष्पी (लालमदार)
३७ प्रत्यक्पुष्पी (अपामार्ग)
३८ छोटी इलायची
३९ हरेणु
४०. प्रियगु
४१. पृथ्वीका (स्थूलैला)
४२. कुस्तुम्बुरू
४३. तगर
४४. नलद (जटामांसी)
४५ ह्वेर (गन्धवाला)
४६. तालीश
४७ उशीर (सारिवा)
४८ इक्षु

(४२–४८: कषाय)

४९ काण्डेक्षु (इक्षुभेद)
५० इक्षुवालिका (खागडतृण)
५१ दर्भ
५२. पोटगल
५३. कालकृत (कासमर्द)
५४. सुमना (चमेली)

(४९–५४: कषाय)

५५. सोमनस्यायनी (जावित्री)
५६. हरिद्रा
५७ दारुहरिद्रा
५८ वृश्चीर (श्वेतपुनर्नवा)
५९ महासहा (माषपर्णी)
६० क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी)
६१. शालमली
६२ शाल्मलक (रोहितक)

(५५–६२: कषाय)

६३. भद्रपर्णी (गम्भारी)		७१. शृंगाटिका (जीवन्ती)
६४. एलापर्णी (रास्ना)		७२. चव्य
६५. उपोदिका		७३. चित्रक
६६ उद्दालक (वनकोदो)	कषाय	७४. शृंगवेर
६७. धन्वन (धामन)		७५. सर्षप
६८ राजादन		७६. फणित
६९ उपचित्रा (पृश्निपर्णी)		७७ क्षीर
७०. गोपी (सारिवा)		७८. क्षार
		७९. नमक

उपर्युक्त रूपेण वामक द्रव्यो को विभिन्न वर्गों मे विभाजित करके उनके फल, मूल, त्वक, पत्र, पुष्प आदि उपयुक्त अगो को अथवा समग्रपचाग को ग्रहण करके यथावश्यक उनकी चूर्ण, कल्प, कषाय, अवलेह, स्नेह, माँसरस, यूष, क्षीर, मोदक इत्यादि विभिन्न कल्पनाओ द्वारा योगो का निर्माण करके उपयोग मे लाने का विधान किया गया है।

ये द्रव्य प्राय कटु, तिक्त अथवा कषाय रसात्मक, होने के कारण वामक क्रियाकर होते हैं। कुछ द्रव्य मधुर होने पर भी अपने मधुर गुण की वृद्धि द्वारा कफोत्क्लेशी या हृल्लास कर होते है। इसप्रकार यह वमन द्रव्यो का कल्प सग्रह कहा गया है[1]।

इसी प्रकार सुश्रुत ने वचादि गण का पाठ किया है। इस गण की औषधिया निम्न हैं[2]।

१. वचा	४. अभया
२. मुस्ता	५ भद्रदारु
३ अतिविषा	६ नागकेशर

इस गण की औषधिया प्रथम रूप से स्निग्ध, मधुरादि गुणो द्वारा कफवर्धन करके उत्क्लेशन क्रिया करती हैं।

अष्टागहृदयकार ने भी इसी प्रकार वर्णन करते हुए विशिष्ट औषधियो को एकत्र कर वामक गण का पाठ किया है। इन औषधियो का वर्णन शोधन गण मे किया जा चुका है अत यहा पुन कहना अनावश्यकीय है।

इस गण की औषधिया भी कटु, तिक्त, कषाय रसात्मक होने से वामक होती हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन मे कही गई औषधिया प्रथम अपने गुणो द्वारा कफ का वर्धन करके कफ का उत्क्लेशन करती हैं। पुनः वमन क्रिया कर होती हैं। कफोत्क्लेश होने पर लालास्राव, मुख माधुर्यादि लक्षण होते हैं।

---

१. यानि तु खलु वमनादिषु फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गव. . . विधिवद्वमनमिति कल्पसंग्रहो वमनद्रव्याणाम्। च वि ८।१३९

२. वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारुणि नागकेशरं चेति। सु सू. ३८।१३

इस विचार को ध्यान मे रखते हुए यूनानी चिकित्सको ने लालाप्रसेकजनन औषधियो का एक समूह मुदिर लुआवदहन[1] नाम से परिगणित किया है। उनके विचार से इस वर्ग मे निम्न औषधिया आती है। यथा—

१. नीव	६ मूली	१०. माजरियून
२. इमली	७. तमाकू	११. अम्ल पदार्थ
३. नागरग	८. राई	१२. अकरकरा
४. कालीमिर्च	९. रेवन्द	१३. सोठ
५ सिरका		१४ फिटकरी

इस वर्ग की औषधियो पर विचार करने पर ये अम्ल, मधुर, कटु तिक्त रसवाली ज्ञात होती हैं। इन रसो के सेवन द्वारा लालावृद्धि होना रसो के गुण कर्म विवेचन के समय स्पष्ट किया जा चुका है। अत ये लालास्राव कर कफ-वर्धन गुणो वाली सिद्ध हो जाती हैं। इसी प्रकार वमनोपग गण भी कफ वढाकर वमन कराने मे सहायक होता है। ऐसा चरक का विचार है।

एतदर्थ यहा पर वर्णन की गई औषधिया पहले अपने मधुर स्निग्ध, पिच्छि-लादि गुणो द्वारा आप्य भाव की वृद्रि करके कफवर्धन द्वारा उत्क्लेशन क्रिया कराती हैं। पुन उत्क्लेशन की मात्रा वृद्धि हो जाने पर स्वयमेव छर्दन (वमन) की ओर प्रवृत्ति होने लगती है। जिस प्रकार वमन कर्म मे प्रथम उत्क्लेश होकर कफस्राव वढता है ठीक उसी प्रकार से ये औषधिया भी अल्प मात्रा में सेवन कराई जाने पर प्रथम कफ की उद्रेचन क्रिया को प्रसादन करके पश्चात उत्क्लेश की अवस्था उत्पन्न करती है।

इस प्रकार इन द्रव्यो की क्रिया सेवन करने के बाद आमाशय मे पहुचने पर पूर्वकथनानुसार आमाशयिक नाडी द्वारा फुफ्फुस का सम्वन्ध होने से प्रत्या-वर्तन कर्म (Reflex action) द्वारा उत्क्लेशन होकर कफनि सारक के रूप मे होती हैं।

स्निग्धोत्क्लेशन द्रव्य (Demulcents)—ये द्रव्य अपने स्निग्ध, पिच्छिल द्रवादि गुणो के द्वारा कण्ठ, श्वास प्रणाली, तालुमूल, जिह्वामूल, गल, लाला-ग्रथियो इन सवसे श्लेष्म द्रव का उद्रेचन कराकर स्थानीय स्निग्धता एव आर्द्रता उत्पन्न करते हैं। इनसे लालास्राव वृद्धि (Salogogues) होती है। इस तरह कन्ठ की रूक्षता का शमन स्निग्धता द्वारा हो जाने से उत्तेजना कम होती है और कास की प्रवृत्ति कम होकर शान्ति मिलती है।

ये औषधिया अपने सद्य: कर्म द्वारा तात्कालिक स्थानीय स्निग्धता उत्पन्न करती हैं तथा इनका आभ्यतर प्रयोग करने पर ये अपने परावर्तन कर्म द्वारा श्लेष्म की वृद्धि कर श्वास प्रणाली एव कण्ठ आदि मे भी स्निग्धता उत्पादन करती है। इस क्रिया के निमित्त निम्न द्रव्यो का समावेश किया जाता है।

---

१ मुदिर लआवदहन
यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान पूर्वार्द्ध
(चतुर्थाध्याय पृष्ठ १४१ ठाकुर दलजीतसिहजी)

१. श्लेष्मातक (लिसौढा)	५. उन्नाव
२. मधुयष्टि	६. काश्मरीफल
३. आमलक	७ छुहारा
४ द्राक्षा	८ खर्जूर

इन औषधियो का एवं इसी प्रकार की अन्य औषधियो के वर्गों को इसमे समाविष्ट किया जाता है।

सुश्रुत ने अपने गुणो द्वारा स्निग्धता उत्पन्न करके उत्क्लेशन करने वाली औषधियो का एक वर्ग बनाकर उसको वृहत्यादिगण[1] कहा है।

१ वृहती २. कण्टकारी ३ कुटज ४. पाठा ५ मधुक

इस गण की औषधिया पूर्वोक्त प्रकार से स्निग्धता उत्पादन करके स्निग्धोत्क्लेशन कार्य करती है।

मुरत्तिव[2] (Demulcents)—इस वर्ग मे यूनानी विचारको ने उन द्रव्यो का समावेश किया है जो अपने गुण कर्म के विचार से स्निग्धता उत्पन्न करते हैं।

१. खरबूजा बीज	७ खीरा बीज
२ लौया (कहुए मराज)	८ ककडी बीज
३. तरबूज बीज	९ खीरा ककडी के बीज (तुख्मखियारैन)
४. इसबगोल बीज	१० गदही का दूध
५. गौदुग्ध	११ विहीदाना
६ अजादुग्ध	१२ भिन्डी

ये समस्त द्रव्य प्राय मधुर, स्निग्ध, पिच्छिल गुण वाले होने से स्निग्धता पैदा करके उत्क्लेशन करते हैं।

उपर्युक्त द्रव्यो की क्रिया द्वारा उत्क्लेश जैसी प्रवृति उत्पन्न होती है और श्लेष्म उत्पादन काल मे लालाप्रसेक मुख माधुर्य, हृल्लासादिक लक्षणो का प्रादुर्भाव होता है। पश्चात उत्क्लेश की मात्राधिक्य हो जाने पर वमन भी तीव्र स्वरूप का होता है। जिसमे श्लेष्माश ही अधिक निकलता हुआ देखा जाता है।

इस वर्ग की बहुतसी औषधिया शोथहर एव प्रदाह हर भी अपने इन्हीं गुणो द्वारा होती हैं। यह पहले प्रदाह शमन करती है पश्चात कफ निष्काशक बन जाती हैं। अत कुछ चिकित्सक इन्हे प्रदाह हर कफनि सारक (Anti-phylogestic Expectorants) भी मानते हैं।

प्राकृत रूप से भी श्वासप्रणालीय श्लेष्मग्रथिया अपने निरन्तर स्रवित होने वाले द्रव स्राव के द्वारा श्वासपथ को आर्द्र एव स्निग्ध बनाये रखती हैं। इस प्रकार से श्वास प्रणाली मे पहुचने वाले उग्र उत्तेजक द्रव्य को नष्ट कर उससे श्वास पथ की रक्षा करती हैं। श्वासप्रणाली मे किसी उत्तेजक वस्तु अथवा क्षोभ के कारण शोथ या प्रदाह हो जाने पर स्राव की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है और प्रदाह से उसकी रक्षा की जाती है। अत जब कफ गाढा एव पिच्छिल

१. वृहतीकण्टकारिकाकुटज फलपाठा मधुकं चेति। सु० सू० ३८। १५
२. यूनानीद्रव्यगुणविज्ञान पूर्वार्ध। द्रव्यकर्म विज्ञानीय चतुर्थाध्याय पृष्ठ १५१।

होता है तव उसे तरल वनाने के लिए इस स्राव को वढाने की आवश्यकता पडती है। वातजन्य तीव्र कास, कुक्कुर कास, श्लेष्मोल्वण सन्निपात, शोथ, यक्ष्मा आदि मे कफ ग्रथितावस्था मे रहने के कारण उसे द्रव वनाने के लिये इस विधि का आश्रय लेना पडता है। आवश्यकतानुसार यह विधि कफ निकालने मे सहायक होती है।

कफच्छेदि कफच्छेदन (Expectorants)

इस वर्ग मे कटु, तिक्त रसात्मक तीक्ष्णवीर्य वाली उष्ण एव तीक्ष्ण गुणो से युक्त अग्निवायु भूतात्मक सगठन वाली औषधियो का तथा लवण एव क्षारो का समावेश होता है। ये औषधिया कटु तिक्त रस युक्त होने से अपने तीक्ष्ण गुण द्वारा कफ का छेदन करके उसे पृथक करके निकालने मे सहायक होकर कफ नि सारक वनती हैं। इसकी परिभाषा करते हुए आचार्य शार्ङ्गधर ने निम्न विचार प्रगट किये हैं। [1]छेदनम् छेदनीयम्—

श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात्।
छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु॥ (शा० प्र० ४)

जो द्रव्य सचित एव इस प्रकार चिपके हुए कफादिक दोषो को अपने गुणकर्मो द्वारा शक्ति पूर्वक छेदन करके निकाल देते हैं वे कफच्छेदि कहलाते हैं। छेदनीय द्रव्यो की इस परिभाषा की स्पष्ट एव सरल व्याख्या करते हुए शार्ङ्गधर सहिता के प्रसिद्ध टीकाकार श्री आढमल्ल ने निम्न वक्तव्य दिया है।

जो द्रव्य शरीर मे सचित होकर श्लिष्ट अर्थात् ग्रथित हो गये हो इस प्रकार ग्रथित हो जाने से श्वास नलिका, कठ, मुख, नासिका, फुफ्फुस इत्यादि की प्रणालियो मे चिपके हुए गाढे कफ को अपने उष्ण तीक्ष्ण आग्नेय गुणो के कारण वलपूर्वक छेदन करते हैं। अर्थात् पृथक कर पतला करके निकाल देते हैं उन द्रव्यो को छेदन द्रव्य कहते हैं। इसमे क्षार, मरिच, शिलाजतु का समावेश है।

[2]इसी प्रकार विशेष विचार प्रगट करते हुए शार्ङ्गधर के अपर टीकाकार श्री काशीराम जी ने दोषो को छेदन करना इन छेदन द्रव्यो का स्वभाव वतलाया है।

[3]चरक सहिताकार ने इन द्रव्यो को महत्व प्रदान करते हुए कार्मुक द्रव्यो का दो विभागो मे ही विभाजन किया है। यथा—

१ छेदन द्रव्य   २ उपशमनद्रव्य

---

१. यद् द्रव्यं श्लिष्टान् संचितान्, परस्परग्रथितानित्येके, अत्यर्थ कुपितानित्यपरे, कफादिकान् दोषान्, आदि ग्रहणेन वात, पित्त शोणित, कृमिग्रहणम्। वला दिति स्वशक्तितः, उन्मूलयति, उच्छेदयति, तच्छेदनं, ज्ञेयम्। यथा क्षारा यवक्षारादयः, मरिचानीति वहुवचनेन श्वेतमरिचमपि ग्राह्यम्। शा० प्र० ४।
पर आढमल्ल

२ यद्रव्य श्लिष्टान् लग्नान् मलादिकान् दोषान् वलादुन्मूलयति स्वभावान्नाशयति तच्छेदन ज्ञेयम्। शा प्र. ४ पर काशीराम।

३. छेदनोपशमने द्वे कर्मणी (च. सू २६)

छेदन द्रव्यो की विवेचना करते हुए टीकाकार श्री गगाधर जी ने कहा है कि—

द्रव्याणि हि अम्ल लवण, कटूनि शारीर क्लेदादीनि छिन्दन्ति ।

(च सू, २६ पर गगाधर)

अर्थात् अम्ल, लवण एव कटु रसात्मक द्रव्य अपने गुण कर्मो द्वारा शरीरस्थ क्लेदादिक एव कफादि दोषो को छेदन कर पृथक कर देने से छेदन द्रव्य कहलाते हैं ।

[1]चरक ने अग्र्य सग्रह मे प्रधान द्रव्यो की गणना करते हुए छेदन द्रव्यो मे हिंगु निर्यास को प्रधानता दो है । एव इसे वातश्लेष्मनाशक भी कहा है ।

इस प्रकार विचार करने पर छेदन द्रव्यो मे अम्ल लवण, कटुरसात्मक द्रव्य एव क्षारो का समावेश होता है ।

छेदनीय द्रव्यों की कार्य प्रणाली

कटु, तिक्त रसात्मक एव उष्णवीर्य वाले ये द्रव्य कई प्रकार से अपनी कफघ्न क्रिया करते है ; इनमे से कुछ द्रव्य स्थानीय क्रिया करके कफ को द्रव बनाकर निकालते है । कुछ द्रव्य स्राव की वृद्धि द्वारा श्लेष्म को पतला कर करते हैं कुछ द्रव्य श्वास नलिका की श्लेष्मिक ग्रथियो का स्राव वढाकर पुनः उससे श्लेष्म को द्रव करके निकालते है । इस प्रकार ये कफघ्न क्रिया मे सामान्य रूप से निम्न प्रकारो मे विभाजित हो जाते है । यथा–

१. कफोत्क्लेदिक या हृल्लासकर कफघ्न
२. स्निग्धोत्क्लेदन द्रव्य
३ लावणिक एव क्षारीय कफघ्न

इनमे कफोत्क्लेदन तथा स्निग्धोत्क्लेदन द्रव्यो का वर्णन पहिले किया जा चुका है । अत अब लावणिक व क्षारीय कफघ्न के विषय मे विचार प्रस्तुत किया जायगा ।

लावणिक एवं क्षारीय कफघ्न[2] (Saline Expectorants)

लावणिक कफघ्न (Saline Expectoiants)–जल एव जलीय लवण द्रव्य मुख द्वारा सेवन किये जाने पर श्वास प्रणालीय द्रववर्धक नही देखे गये हैं । परन्तु इनका यह कर्म शरीर मे जलीयभाव की कमी होने पर

---

१. **हिंगुनिर्यासश्छेदनीय, दीपनीयानुलोमिक वातश्लेष्महराणाम्** । (च. सू. २५)

2. Saline Expectorants–Water admınistered by mouth does not increase the output of respiratory tract fluid except in extreame dehydratıon of the body, nor does the administration of isotonic sodıum chloride solution by mouth or parenteral ınjection Certain salts do reflexly stimulate production of bronchial secretıos by an action upon the stomach and these are freferred to saline expectorants.

Pharmacology ın medıcine
by Vıctor A Drıll.
Page 45/

(Dehydration) अवश्य ही द्रववर्धक देखा गया है। ये सामान्य लवण एव सैंघवलवण (Isotonic Sodium Chloride) का भी प्रयोग श्लेष्म-वर्धक अथवा कफच्छेदी नही देखा गया। परन्तु कुछ विशिष्ट वर्ग के लवण अथवा क्षार इस कफघ्न क्रिया को करने मे समर्थ पाये गये है। ये द्रव्य शरीर मे सेवन किये जाने के बाद आमाशय मे पहुचते है। वहा पर कार्य करते हुए अपने प्रभाव द्वारा आमाशयिक नाडी सूत्रो द्वारा प्रत्यावर्तन क्रिया के परिणाम स्वरूप श्वास प्रणाली स्राव की वृद्धि कराते हैं और इस तरह कफ की वृद्धि करके श्लेष्मनि सारक प्रक्रिया पूर्ण करते है।

इस विशिष्ट वर्ग के लवणो मे नरसारीय लवण का प्रमुख स्थान है।

१. नरसारीय लवण (Ammonium expectorants)

१. नरसार (Ammonium chloride) नरसारीय लवणो मे नौसादर सरलता से प्राप्त हो जाने वाला लवण है। बाजार मे यह श्वेतदानेदार कणो के रूप मे किसी भी रासायनिक औषधिविक्रेता से प्राप्त किया जा सकता है। अन्य पट्टियो के रूप मे प्राप्त होने वाला नवसादर औपधि के स्वरूप मे व्यवहृत करने योग्य नही होता है। यह श्वेतदानेदार कणो के रूप मे प्राप्त होने वाला नवसादर औषधोपयोगी एव कफघ्न क्रिया करने मे समर्थ होता है।

Ammonium expectorants include ammonium chloride and ammonium carbonate, Ammonium chloride is one of the most commonly used expectorants It is a white crystaline powder which is soluble in 2 6 parts of water and 100 parts of alcohol The aqueous solution has a saline taste which is readily covered by many syrups such as wild cherry Syrup Ammonium chloride is commonly prescribed as a medical liquid mixture in a vehicle of sympor of equal parts of syrup and distilled water, The advantage of a syrup as a vehicle is that it combine in the mixture, expectorant action and pharangial demulcent action, especially if the mixture in the mouth as long as possible before swallowing. The usual expectorant does is 0.3 G m. in a tea spoonful of cough mixture every 2 hours during the day. Ammonium chloride forms an acid solution in water and must not be prescribed with other drugs having analbaline reaction. Its diuratic and winery acidifying properties should be kept in mind as possible useful adjuvant theraputic actions in individual persons The sign of texic doses are gastric irritation, vomiting, the acidosis.

इसका चूर्ण रूप में प्रयोग करने की अपेक्षा यह द्रव स्वरूप मे प्रयुक्त होने पर अच्छा लाभकारी सिद्ध होता है। द्रव रूप मे आ जाने पर लवण रस का स्वाद भी वह जिह्वा को प्रदान करता है। अत. चिकित्सको द्वारा यह शर्बत मे मिलाकर भी उपयोग किया जाता है।

नवसादर को मुखमे धारण करने पर यह विशेष रूप से स्थानीय स्निग्धता उत्पन्न कर स्नेहन कार्य द्वारा कफ की वृद्धि करता है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि मधुर अम्ल एवं लवण रस कफ वर्धक होते है। अत. यह विचार प्राचीन सिद्धान्त से साम्य रखता है।

इसका आभ्यतर सेवन करने पर पूर्व कथनानुसार आमाशयिक प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा श्वास प्रणाली मे श्लेष्म की उत्पत्ति का वर्धक होता है।

अधिक मात्रा मे प्रयुक्त किया जाने पर आमाशयिक कफ वृद्धि के कारण क्षोभन के परिणाम स्वरूप वमन एव अम्लाविक्य की प्रवृत्ति भी देखी जाती है।

१. **एमोनियम कार्वोनेट** (Amonium carbonate)–नवसादर के वाद द्वितीय स्थान एमोनियम कार्वोनेट का है। यह भी नवसादर के समान कार्यकर होता है। इससे भी प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा श्वासप्रणालीय श्लेष्म की वृद्धि होती है। यह श्वेत गाँठो के स्वरूप मे वाजार मे मिलता है। इसके एव नवसादर के रासायनिक सगठन मे भिन्नता होती है। यद्यपि दोनो का कार्य प्रायः एक ही होता है।

२. **साइट्रेट्स** (Citrate)—यह भी लावणिक कफघ्न (Saline expectorant) है। इस वर्ग मे से पोटाशियम साइट्रेट (Potassium citrate) का व्यवहार किया जाता है।

Ammonium carbonate U. S P. occurs as white masses having an order of ammonia, due to the gradual breakdown of its constituent ammonium carbonate (NH2 COONH 4) to free ammonia and carbon dioxied, leaving behind the second original constituent, Ammonium Bicabonate B. P. (NH_9 HED_3) It will disolue with some shaping in about four parts of water, forming a solution which is alkaline to litmus The sharp ammonical test is reasonably well covered by prescribing ammonium carbonate in a symp such as toly Balsam Syrup U. S P. the usual dose of ammonium carbonate being O. 3 gm.

2. Citrates are used as expectorants of these salts, potossium citrate was found by boyd.

३. आयोडाइड्स[1] (Iodides)—आयोडाइड्स का कफघ्न कर्म सर्व प्रथम वैज्ञानिको द्वारा प्राप्त किया गया था।

४. एन्टमनी पोटाशियम टार्टरेट (Antimony potassium tartrate—इसका भी समावेश इस वर्ग मे होता है एव यह भी लावणिक कफघ्न की तरह क्रिया करता हैं।

उपर्युक्त वर्णित ये कफघ्न द्रव्य कफघ्न की पूर्व कथित आयुर्वेदिक परिभाषा के अनुसार श्लिष्ट एव ग्रथित कफ को अपने स्राव द्वारा द्रव करके उसे निकाल कर कफघ्न सिद्ध होते हैं।

क्षारीय कफघ्न—आयुर्वेद वाङमय मे निम्न क्षार द्रव्यो का उपयोग किया जाता है।

१.	यवक्षार	५	वासाक्षार
२.	स्वर्जिक्षार	६.	नरसार
३.	अपामार्गक्षार	७.	शोरक
४.	टकणक्षार	८	पलाशक्षार

ये क्षार द्रव्य अपने उष्ण तीक्ष्ण गुणो द्वारा ग्रथित कफ को पतला कर देते हैं पुन पतला हो जाने पर निष्काशन सरलता पूर्वक होता है।

कटुतिक्त रसात्मक द्रव्य—

१. पिप्पल्यादि गण— पिप्पली, एला, पिप्पलीमूल, अजमोदा

चव्य	इद्रयव
चित्रक	पाठा
श्रृगवेर	जीरक
मरिच	सर्षप
	महानिम्ब
हस्तिपिप्पली	मदनफल
हरेणुका	हिंगु
भार्गी	अतिविषा
मधुरसा	विडग
वचा	कटुरोहिणी

२. सुरसादिगण—सुरसा, विडग

श्वेतसुरसा	कट्फल
फणिज्झक	सुरसा
अर्ज्जक	निर्गुन्डी
भूस्तृण	कुलाहल
सुगन्धक	उन्दुरु

---

1. Iodides were among the first expectorants to be investigated by modern scientific technics.
Pharmacology in medicine by Victor A. Drill Page 45

सुमुख	कर्णिका
कालमाल	फजी
कासमर्द	प्राचीवल
क्षवक	काकमाची
खरपुष्पा	विषमुष्टिक

इन दो गणो का पाठ कफच्छेदनार्थ किया गया है। इनके अतिरिक्त द्रव्यो का वर्ग भी कहा गया है जो निम्न है।

छेदन द्रव्य—

मरिच	वासा
नरसार	तालीस
हिंगु	लवग
शिलाजतु	दालचीनी
पलाडु	यष्टीमधु
रसोन	बोल
वचा	उषक
कर्पूर	गोजिह्वा
कर्कटश्रृंगी	रुमीमस्तगी
कट्फल	लोवान
वनफ्शा	सिह्लक
खूबकला	खली
तोदरी	जूफा
शालनिर्यास	गधविरोजा

उपर्युक्त गणो मे वर्णित एव अन्य कहे गये द्रव्य सभी प्राय' कटुतिक्त रसात्मक है। ये समस्त द्रव्य अपने उष्ण तीक्ष्ण गुणो के द्वारा श्लेष्म को तरल कर देते है। एव पीछे कही गई श्लेष्मनि सारक क्रिया के अनुकूल कफ को द्रव बनाकर उसके निर्गमन मे सरलता उत्पन्न करते हैं।

इन वानस्पतिक द्रव्यो के अतिरिक्त खनिज एव प्राणिज द्रव्य भी छेदन होते हैं जो कि निम्न हैं—

खनिज—
१. अभ्रकभस्म
२. ताम्रभस्म

प्राणिज—
१. प्रवाल
२ मौक्तिकभस्म
३ शृगभस्म
४ शखभस्म
५ शुक्तिभस्म
६. कर्पर्दिका भस्म

खनिज द्रव्यो में—अभ्रक भस्म—यह उष्ण गुण के कारण कफ को शोषित करके कफघ्न क्रिया करती है।

ताम्रभस्म—लेखन होने से कफ को लेखन क्रिया द्वारा पृथक करके बाहर निकाल देता है।

प्रवाल, मुक्तादिक शीत होने से श्लेष्मोद्रेचन कराकर कफ प्रवृत्ति बढाकर कफ नि.सारक होते है।

यूनानी चिकित्सक छेदनीय द्रव्यो को मुक्तेय कहते हुए इनकी परिभाषा निम्न करते है—

मुक्तेय[1]—वह द्रव्य जो अपनी सूक्ष्म एव तीक्ष्णता से शरीरावयव मे प्रवेश करके उसमे चिपके हुए लेसदार द्रव और प्रागढीभूत दोष को काट छाटकर पृथक कर देता है। अथवा उसको सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणो मे विभाजित कर देता है। जिसमे उक्त अवयव से दोषोत्सर्ग सुगम हो जाता है। ऐसे द्रव्य मे सूक्ष्मता के साथ प्रवेशनीय शक्ति का अधिक होना अनिवार्य होता है। उक्त कर्म कभी उत्ताप की अधिकता के कारण होता है। यथा कटु द्रव्यो मे कभी उत्ताप अधिकता से नही भी होता है यथा वह द्रव्य जो अम्ल होते है उन द्रव्यो को भी छेदनीय कहा गया है गुण कर्म साम्य देखा जाने के कारण अत मुक्तेय द्रव्यो मे निम्न द्रव्यो का समावेश किया गया है। यथा—

१ राई
२ हालो
३ इजखिर
४ पीलू
५ अजुदाने
६ साबुन
७ रेवन्दचीनी
८. जरावन्द
९ मधु
१० सिरका
११. अजरूत
१२ अकरकरा
१३ हलदी
१४ त्रिफला
१५ गिलेअरमनी
१६ कुटकी
१७ बाकुची
१८ हाऊबेर (अवहल)
१९ आबनूस
२० शोरा
२१ कपोत विष्ठा
२२ सूरजमुखी
२३ मिश्री
२४ तुख्मवलसा
२५ पारपियून
२६ लवण
२७. गन्धक
२८ शीरखिश्त
२९. खरबूजा के बीज
३० चीता
३१ भिलावा
३२ हडताल
३३. जारितकनेर (कनेर सोख्ता)
३४ तिक्त बादाम
३५. मसूर
३६ लहसुन
३७ मूलीपत्र स्वरस
३८ कलोजी
३९. ईरसा
४० फिटकरी
४१ त्राकसू
४२ दालचीनी
४३ नकछिकनी
४४ जरगया हुवा नाग

उपर्युक्त द्रव्यो के विषय मे विचार करने पर इनमे कटु, तिक्त, अम्ल लवण रसात्मक द्रव्यो का समावेश पाया जाता है। इनमे से ऊपर कहे अनुसार

---

१ मुक्तेय द्रव्य

यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान पूर्वार्ध पृ ११३, १२०
ठाकुर दलजीतसिंह जी

कटु, तिक्त रसात्मक द्रव्य अपने उष्ण तीक्ष्ण गुणो से कफच्छेदन करने मे समर्थ होते हैं। एव अम्ल लवण रसात्मक द्रव्य द्रव वर्धक प्रवृत्ति द्वारा श्लेष्मोद्रेचन कराकर श्लेष्मनि सारक क्रिया करते हैं।

कफघ्न योग—

चूर्ण—	१. मरिचादि चूर्ण	शार्ङ्गधर म० ख० ७।१३।१४
	२. श्रृग्यादि चूर्ण	,, ,, ६
	३ यवक्षारादि चूर्ण	,, ,,
	४ शुठचादि चूर्ण	,, ,,
	५ विड़गादि चूर्ण	च चि १८।४६
	६. द्विक्षारादि चूर्ण	च चि १८।४७, ४८
	७. मरिचादि चूर्ण	भै र १५।३१, ३२
	८. कृष्णादि चूर्ण	भै. र १६।११
	९. हरिद्रादि चूर्ण	भै र १६।१६
	१० हरिद्रादि चूर्ण	चक्रदत्त श्वासाधिकार
	११ कृष्णादि चूर्ण	भै र १६।२०
	१२ श्रृगादि चूर्ण	भै र १६।२९
	१३ सौवर्चलादि चूर्ण	च चि १७।१०८

चूर्ण के निर्माण मे समस्त द्रव्यो को मात्रानुसार ग्रहण कर कूट पीस कर बनाते है। इनमे शुष्क द्रव्यो का योग होता है। चूर्ण स्थित ये द्रव्य अपनी तीक्ष्णोष्णता के कारण वृद्ध कफ का छेदन करके उसे निकाल देते है।

क्वाथ—	१ पौष्करादि क्वाथ	भै र १५।१५
	२ चित्रमूलकादि क्वाथ	भै र १५।२३
	३ तितिडीक पत्र क्वाथ	भै र १५।२६
	४ पचमूली क्वाथ	भै र १५।२७
	५ वासादि क्वाथ	भै र १६।२७
	६. वासादि क्वाथ	शा म ख २।६२
	७. क्षुद्रादि क्वाथ	शा म ख २।६३
लेह—	१ विडगादि लेह	च. चि १८।५१
	२ पिप्पल्यादि लेह	च चि १८।८६
	३ पिप्पल्यादि लेह	च. चि १८।११७
	४ विशालादि लेह	च. चि १८।१२०
	५. मुस्तकादिलेह	च चि १५।२५
	६. वासावलेह	भै र १५।१७९ ८१
घृत—	१. त्र्यूषणाद्य घृत	च चि १८।३८, ४१
	२. रास्नाघृत	च चि. १८।४२, ४५
	३. कुलत्थादि घृत	च चि १८।१२८
	४. तेजोवत्यादि घृत	च. चि. १७।१४०, ४३

रस—	१ पित्तकासान्तक रस	भै र	कासाधिकार
	२. महाकालेश्वर रस	भै र.	,,
	३ विजय भैरव रस	,,	,,
	४. चन्द्रामृत लोह	,,	,,
	५. श्रृगाराभ्र रस	,,	,,
	६ सार्वभौम रस	,,	,,
	७ महा श्वासारि लोह	,,	श्वासाधिकार
	८ पिप्पल्यादि लौह	,,	,,
	९ सूर्यावर्त रस	शार्ङ्गधर	श्वासाधिकार
वटी—	१ कासकर्त्तरी गुटिका	भै र.	श्वासाधिकार

उपर्युक्त योग पूर्वोक्त क्रिया द्वारा कफच्छेदि वनते हैं।

आक्षेपहर कफनि:सारक (Antispasmodic Expectorants)

वास्तव मे इस वर्ग के द्रव्य कफनिष्काशन प्रवृत्ति अथवा श्लेष्मोद्रेचन कराकर कफ प्रवृत्ति की वृद्धि करते हैं अपितु ये द्रव्य श्वास प्रणालीय मास पेशियो का विस्तार कर लेते हैं। जिससे श्वास प्रणाली की परिधि का स्थान विस्तृत होकर मार्ग सरल वन जाने से कफ निर्गमन मे सहायता मिल जाती है। और इस प्रकार कफ सरलता पूर्वक थोडी सी खासी आने के वाद उर्ध्वगति द्वारा निकल जाता है।[1]

कफ ग्रथित एव श्वास प्रणाली मे श्लिष्ट होने के कारण वार वार खासने के परिणाम स्वरूप भी जव वाहर नही निकल पाता है तो ऐसी स्थिति मे कास के वेग आने लगते है जो कि व्याधि की अवस्था या गभीरता के अनु-सार कम या अधिक समय तक रहते हैं, और रोगी जव तक वरावर खासकर कफ निकाल नही देता है तव तक कफावृत ज्ञात होने के कारण वायु का पथ अवरुद्ध होने से श्वासोच्छ्वास क्रिया मे वाधा पडती है। अत इस कफ को वार वार खासकर निकाल देना आवश्यकीय हो जाता है। रोगी कफ निकल जाने के पश्चात् (वायु का आवागमन मार्ग सरल हो जाने से) शाति का अनुभव करता है। परन्तु जव व्याधि की जीर्ण अथवा गभीरावस्था उप-स्थित हाती है। यथा, तमक श्वास या जीर्ण श्वास प्रणाली शोथ (Choronic

1 Antispasmodic Expectorants–
Although these do not act as true expectorants in as much as they do not increase the secretion of mucous or make it less viscid, they help expulsion of mucously relaxing the bronchial muscles and are of great value in bronchial asthma, and chronic bronchitis

Pharmacology and the raputics
by R Ghosh P 362 1957
ed. 20th

Bronchitis or Bronchial Asthma) मे तो ऐसी स्थिति में कफ गाढ़ा एवं श्वास प्रणाली मे चिपका रहने के कारण वार वार खांसने पर भी नही निकल पाता है। तव कास के वेग आना प्रारंभ हो जाते हैं और इन वेगो के समय वहुत समय तक कास प्रवृत्ति रहने से श्वास प्रणाली की पेशियो का अत्यधिक व्यायाम हो जाने से उनमे उद्वेष्टन होने लगता है एव उनमे ऐंठन (Spasm) की स्थिति उत्पन्न होकर वे जकड जाती हैं। तव कफ न निकल पाने से पार्श्वशूल भी रोगी को होने लगता है। व्याधि की इस भयकर अवस्था मे कफ निकालने की अत्यधिक आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था मे पुनः श्वास प्रणाली का विस्तार करने वाले एव इस प्रकार शूलशामक द्रव्यों का आश्रय लेना पडता है। ये द्रव्य आक्षेप दूर कर श्वास प्रणाली का विस्तार कर कफ निकालने मे सहायक होते हैं एवं इस प्रकार शूलघ्न भी होते हैं।

ये द्रव्य उपर्युक्त क्रिया कई प्रकार से करके कफ निष्काशन कार्य करते हैं यथा—

१ श्वास प्रणालीय प्राणदा नाडी के सज्ञावह नाड्यत सूत्रो की क्षोभकता को कम करके श्वास प्रणाली की मास पेशियो का विस्तार करने वाले द्रव्य। यथा कोकीन का स्प्रे एव वाथ निगलन।

२. कामोत्तेजक द्रव्य के विपरीत क्रिया करने वाले अथवा प्राणदा नाडी के नाडचन्त भागो को सज्ञा शून्य करने वाले द्रव्य। यथा—धुस्तूर इत्यादि।

३. प्राणदा नाड़ी के नाडी गन्ड (Vagal ganglia) को सज्ञा शून्य या पक्षाघात करने वाले द्रव्य श्वास प्रणाली का विस्तार करते हैं।

४. स्वतत्र नाड़ी मडल के सूत्रो का प्रसादन करने वाले द्रव्य श्वास प्रणालीय पेशियो को विस्तृत करके आक्षेप हर कफघ्न सिद्ध होते हैं।

५. साक्षात् रूप से श्वास प्रणालीय पेशियो पर क्रिया करने वाले द्रव्य उनका विस्तार करके क्रिया कर होते हैं।

---

1 **Respiratory Antiespasmodics**–by which the bronchial muscles can be relaxed, namely

1. Drugs which reduce the irritability of the sensary vagal ending in the bronchi, such as sprays containing cocain or Inhalations of water vapour.

2 Drugs which paralyse the vagal endings in the muscles, or are anticholinergic. Belladona

3 Drugs which paralyse the Vagal ganglla

4 Drugs which stimulated the sempathetic endings and thus relax bronchial muscles.

5. Drugs which directly relax the muscele.

६. श्वास केन्द्र पर शामक क्रिया द्वारा श्वास प्रणाली का विस्तार करने वाले द्रव्य, यथा–अहिफेन।

उक्त प्रकार के ये द्रव्य आक्षेप को दूर करके श्वास प्रणाली का विस्फार करके कफ निष्काशन एव शूल शामक होते हैं। इनकी यहा पर कथित विभिन्न प्रकार की समस्त प्रतिक्रियायें एक ही कार्य (आक्षेप शान्त कर श्वास प्रणालीय विस्फारक) साधक होती है जिसको पहिले बतलाया जा चुका है कि ये द्रव्य न तो कफ पतला करते है और न ही उसकी वृद्धि करते हैं, अपितु उपरोक्त क्रिया द्वारा इस कफ को निकालने मे सहायक होते है।

आक्षेपहर शूलघ्न कफनि.सारक द्रव्यो मे निम्न द्रव्यो का समावेश है।

१ धुस्तूर	७ शोरक
२ गिरिधुस्तूर	८ मधुयष्टि
३ क्षार	९. हरिद्रा
४. अहिफेन	१०. कुष्ठ
५ वासा	११. पुष्करमूल
६ सोम	१२ कण्टकारी

इन द्रव्यो के अतिरिक्त सुश्रुत ने द्रव्यो के समूह को एक वर्ग मे एकत्र कर वृहत्यादिगण का विधान इस क्रिया हेतु किया है यथा—

वृहत्यादिगण[1] — १ वृहती २. कण्टकारिका ३. कुटज फल ४ पाठा ५ मधुक

[1]ऊपर कहे गये समस्त द्रव्य एव वृहत्यादिगण कथित द्रव्य भी उक्त कथित विभिन्न क्रियायो द्वारा विभिन्न प्रकार से कार्य करके, श्वास प्रणाली का विस्फार कर आक्षेप शान्ति एव कफनिष्काशन क्रिया करते हैं एव शूल शामक भी होते हैं। ये समस्त औषधिया श्वास प्रणालीय पेशियो के व्यायाम-जन्य उद्वेष्टन, आक्षेप एव शूल का शमन करती है।

यूनानी चिकित्सको के भी विचार उपर्युक्त विचार धारा से सादृश्य स्थापित करते हैं। इनकी परिभाषा मे आक्षेपहर कफघ्न को दाफेयतशन्नुज[2] कहा गया है।

दाफेयतशन्नुज—वे द्रव्य हैं जो वात नाडियो और वात केन्द्र की आकुचन शक्ति को कम करके वातनाडियो के आक्षेपजनक गुण को दूर करते है। जो द्रव्य मासपेशियो को अनियमित और अस्वाभाविक क्रिया अर्थात् आक्षेप (तशन्नुज)

---

6 Central respiratory sedatives–opium.
Chloroform—

Pharmacology and theraputics of the materia Medica by J Dilling ed 19th, 1952 p. 543.

१ वृहती कण्टकारिका कुटजफलपाठा मधुकचेति। सु सू ३८।१५
२. यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान पूर्वार्ध (चतुर्थाध्याय)
दाफेयतशन्नुज द्रव्य, पृष्ठ ११६। सन १९४९

को निवारण करे, वह दाफेयतशन्नुज है। इस परिभाषा के अन्तर्गत निम्न द्रव्यों की गणना की गई है। यथा—

१. धुस्तूर पत्र
२. अवरुज
३. उशक
४. अहिफेन
५. सफेद कसीस
६. उदसलीव
७. हिंगु
८. सर्पगन्धा (छोटी चन्दड)
९. कायफल
१०. वेदस्तर
११. शुकरान
१२. रोगन सुदाव
१३. तमाकू
१४. पिपलामूल
१५ एजखिर
१६. पग
१७. जदवार
१८ लौंग
१९ करजुआ (कजा)
२० अजरुत
२१ वालछड (सुम्बुनुत्तीव)
२२. कुष्ठ
२३ वारहसिंग की चर्बी (पिपाइल)
२४ कपूर
२५. रोगन पुदीना
२६. हाऊवेर
२७. अकाशकर
२८. विरोजा
२९. सोठ
३० उस्नुरवयुस।

ऊपर कहे गये समस्त इसी प्रकार क्रिया कर आक्षेप शान्ति कारक होते हैं। ये श्वास प्रणाली का विस्तार करके कफ निकाल देते हैं।

इस प्रकार प्राप्त विभिन्न विचार धाराये एक दूसरे से सादृश्य रखती हुई दृष्टिगोचर होती हैं और सभी की कार्य प्रणाली समान ही होती है।

आक्षेपहर कफघ्न योग

अवलेह—	वासावलेह	भै० र० १५।१७९-८१
घृत—	भृगीगुडघृत्	भै० र० १६।७२, ८२
	तेजोवत्यादिघृत	भै० र० १६।१०२, ४
	छागलाद्यघृत	भै० र० १५।१९०, ९७
	दशमूलाद्यघृत	च० चि० १७।१३९
	तेजोवत्यादि घृत	च० चि० १७।१४०,४३
रस—	पचामृत रस	भै० र० कासाधिकार
	नित्योदय रस	भै० र० कासाधिकार
वटी—	वासादिवटिका	भै० र० श्वासाधिकार
	गुडादिवटिका	शा० म० ख० अ० ७
अरिष्ट—	वासकारिष्ट	भै० र० कासाधिकार

प्रसादक या उत्तेजक कफ निःसारक (Stimullant expectorants)

इस वर्ग के द्रव्य श्वास प्रणाली की श्लेष्मकला द्वारा उत्सर्जित होते हुए उसका प्रसादन करते हुए श्वास प्रणालीय स्राव की वृद्धि करके श्लेष्मनि.सारक होते हैं। यह मध्यम प्रकार की उत्तेजना स्राव की वृद्धि करके श्वासनलिका मे हुए जीर्ण शोथ को ठीक करने मे सहायक होती है।

इस वर्ग के द्रव्यो मे प्रायश: सुगंधित तैलो (Arometics) एवं उडनशील तैलो का समावेश होता है[1]। इन्हे सुगंधित कफ नि:सारक भी कहा गया है।

ये सुगंधित एव उडनशील तैल श्वासनलिका के कोषो पर साक्षात् रूप से क्रिया करके श्वास प्रणालीय द्रव का स्राव कराकर उसकी मात्रा वृद्धि करके इस प्रकार से कफ का प्रसादन करके श्लेष्म निष्काशन क्रिया करते हैं[2]।

श्वास केन्द्र को उत्तेजना देकर कफ प्रसादन कर के कफघ्न क्रिया करने वाले द्रव्यो का एक वर्ग भी नि सारक होता है[3]।

कफ नि सारक इन द्रव्यो की क्रिया से श्वासोच्छ्वास क्रिया को शक्ति मिलती है और कफज कास, फुप्फुस प्रदाह, यक्ष्मा, अहिफेनजन्य विषज श्वासावरोध के निवारणार्थ इनका सद्य फलप्रद उपयोग होता है।

उपर्युक्त क्रिया कर इन द्रव्यो की कार्य प्रणाली को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है।

१ **श्वास प्रणालीय श्लेष्मोद्रेचन ग्रंथि उत्तेजना**--इस वर्ग की औषधिया श्वासनलिकाओ मे पहुचकर उस पर क्रिया करके श्वास प्रणालीय श्लेष्म ग्रंथियो से श्लेष्मोद्रेचन कार्य कराती हैं। इस प्रकार श्लेष्म स्राव की वृद्धि होकर

---

1. **Stimullant Expectorants**--These are excreted by the bronchial mucous membrane which is mildly irritated resulting in increased bronchial secretion. This mild irritation is supposed to help repair of a chronic inflammatory process The drugs belonging to this group are mostly volatile oils and aromatics, and sollaman calles these aromatic expectorants.

R Ghosh's Pharmacology p 362
–ed 20th 1957

2, **Expectorant volatile oils**--The evidence available indicates that expectorant volatile oils stimulate the output of respiratory tract fluid by a direct action upon the cells of the bronchial tree. Included in this group are the volatile oils of anise, eucalyptus etc

Pharmacology in medicine
Victor A. Drill 45 /7, 1954

3. The respiratory centre is stimulated, by carbon dioxide, stry chnime and by this process cough reflex can be increased and coughing stimulated by meduallary stimullants

Lbid P. 544, 1952, 19th ad.

इसके द्वारा कफ की मात्रा बढकर कफ सरलता पूर्वक थोड़ी सी खांसी के बाद निकल जाता है।

इस वर्ग के द्रव्यो में निम्न सुगधित द्रव्य है।

१. कर्पूर
२. सर्जनिर्यास (लोहवान)
३. श्रीवेष्टक तैल (तारपीन का तैल)
४. तम्बाकू
५. नरसार
६ क्षार प्रधान द्रव्य।

उपर्युक्त द्रव्यो से निर्मित योग तथा अन्य इसी प्रकार के योग यथा तालीसादि, सीतोपलादि चूर्णादि उपरोक्त प्रकार से क्रिया करते हैं।

२. श्वास केन्द्रोत्तेजक Respiratory Centre stimullant--

कुछ द्रव्य सुषुम्ना शीर्पक स्थित श्वास केन्द्र को उत्तेजना प्रदान करके श्वास प्रणालीय मास पेशियो मे स्थित नाड़ी सूत्रो का क्षोभन करके तटस्थ श्लेष्मोद्रेचक ग्रथियो को प्रसादित कर उनकी क्रिया शक्ति की वृद्धि करते हुए स्राव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार से स्राव का प्रमाण बढजाने से श्लेप्म वृद्धि होकर वह सुगमता से निकल जाता है। इस क्रिया द्वारा सार्वांगिक रक्त सचय मे भी उत्तेजना प्राप्त होती है।

इस वर्ग की औपधियो मे प्रायश सुगधित तैल एव उडनशील तैल युक्त द्रव्यो की गणना है।

१ लवग
२. त्वक
३. श्रीवेष्टक
४. कुपीलु
५. गन्धक
६. नागकेशर
७. तालीस पत्र
८ तेज पत्र
९ पिप्पली
१० शुण्ठी
११ मरिच

इन द्रव्यो के सेवन किये जाने पर इनमे स्थित उडनशील तैल पूर्वोक्त प्रकार से क्रिया करके श्लेष्म निष्काशन करते हैं।

यूनानी मे मुअदिलात बलगम वर्ग के अन्तर्गत श्लेप्म प्रकृतिस्थ करने वाले कुछ द्रव्यो को कफ सशामक कहा गया है जो कि प्राय सुगन्धित है [1]।

१. सौंफ
२ अनीसून
३. जीरा
४ दालचीनी
५ मुलेठी
६. सफेद
७ सुर्ख इलायची
८. मवीज
९. तुलसी
१० वालछड
११ खुब्बाजी
१२ खतमी
१३ गुलाव पुष्प
१४ अजीर
१५ हसराज
१६. विरकासफ
१७ वादावर्द
१८ शुकाई
१९ तुख्म कसुस
२० गुलकद असली

---

१. यूनानी द्रव्यगुणविज्ञानपूर्वार्ध (चतुर्थाध्याय) मुअद्दिलातवल्गम (पृ. ११९)

क्वाथ—— १ पिप्पल्यादि क्वाथ — भै० र० १५।२९, ३०
२. दशमूल क्वाथ — भै० र० १५।२५
३. दशमूली क्वाथ — भै० र० १५।२४
४ भार्गीनागर क्वाथ — भै० र० १६।२८
५. भार्गीयनागर क्वाथ — वैद्य जीवन

शुद्ध एव सद्य. प्राप्त वनस्पतियो का रस शीघ्र फलप्रद होने से तथा सरलता के साथ निर्माण हो जाने के कारण क्वाथ अपना कार्य उत्तम रीत्या करके सद्य: लाभकर पाये गये है। इसी कारण चरक मे क्वाथ चिकित्सा का विधान प्रचुर प्रमाण मे प्राप्त होता है।

रस—— १ श्वासचिन्तामणि — भै० र० कासाधिकार
२. श्वासकास चिन्तामणि — ,, ,,
३. मृगाक वटिका — ,, ,,
४. नागार्जुनाभ्ररस — ,, ,,
५. सूर्यावर्त्त रस — ,, ,,
६ कासातक रस — ,, ,,
७. द्वितीय कासातक रस — ,, ,,
८. समशर्करलौह — ,, ,,
९, चन्द्रामृत लौह — ,, ,,
१०. भार्गोत्तर गुटिका — ,, ,,
११ श्रृगाराभ्ररस — ,, ,,
१२. सार्वभौमरस — ,, ,,
१३ नित्योदय रस — ,, ,,
१४ वसन्ततिलक रस — ,, ,,
१५ विजय वटी — ,, ,,
१६ अमृतार्णव रस — शार्ङ्गधर कासाधिकार
१७ स्वयमग्नि रस — ,, ,,

औपधि चिरस्थायी, अधिक गुणकारी एव अल्प मात्रा द्वारा शीघ्र एव शुभ परिणाम वाली बनाने के विचार से उपर्युक्त द्रव्यो द्वारा रसो का निर्माण किया जाता है। ये द्रव्य पारद गन्धक की सहायता प्राप्त करके अल्पपरिमाण मे ही अधिक शक्ति शाली होकर कार्य करके रोग मुक्ति करा देते है।

तैल—— १ चन्दनाद्य तैल — भै० र० १५।१९८, २०३
२. वासाचन्दनाद्य तैल — भै० र० १५।२०४, २१०
३ महत्चन्द्रनाथ तैल — भै० र० १६।१०५, ११४

इन तैलो के उन्मर्दन द्वारा रक्त सचार एव उष्णता वृद्धि होकर क्रिया होती है।

धूम्र—— १ मन शिलादि धूम्र — च० चि० १८।६८, ६९
२ मन शिलादि धूम्रवर्ति — च० चि० १८।७२, ७३
३ हरितालादि धूम्रवर्ति — च० चि० १८।७३
४ मन शिलादि धूम्र — च० चि० १८।१४५

२. कुछ द्रव्य प्रान्तीय शामक होने के कारण प्राणदा नाड़ी के नाडयंत सूत्रो पर क्रिया करके कास शामक होते है।

३. परिस्वतत्र नाड़ी सूत्रो को अवसादित करने वाले कुछ द्रव्य कास शामक होते है।

इस प्रकार अवसादक कफघ्न द्रव्य उपर्युक्त प्रकारेण कथित विभिन्न क्रियाओ द्वारा श्वासकेन्द्र, कफकेन्द्र अथवा स्थानीय क्रिया द्वारा अवसादन करके कफ शामक होते है। इन क्रिया कर द्रव्यो मे निम्न का समावेश होता है—

१. धुस्तूर
२. अहिफेन
३. अहिफेन के क्षार
४. विभिन्न कफ मिश्रित औषधिया
५. वत्सनाभ व दूसरे योग

पूर्व मे प्रतिपादित किया जा चुका है कि इन द्रव्यो का चिकित्सकीय उपयोग कम होता है। अत विस्तृत विवरण देना अनावश्यक होने से सक्षिप्त विचार किया गया है।

अवसादक कफघ्न योग—

चूर्ण—	त्रिफलादि चूर्ण	शा० म० ख० अ० ६।३४
	तालीसादि चूर्ण	भै० र० कासाधिकार
	इन्द्रवारुणिकादि चूर्ण	भै० र० १६।७१
	मुक्ताद्य चूर्ण	च० चि० १७।१२४, २७
क्वाथ—	कट्फलादि क्वाथ	च० चि० १८।१११, १२
अवलेह—	त्वगादिलेह	च० चि० १८।९१, ९२
	देवदार्वादिलेह	च० चि० १८।११७
	पद्मकादि लेह	च० चि० १८ १७३, ७४
	अपराजित लेह	भै० र० ४
	भार्ग्यादि लेह	भै० र० १५।५
	भार्ग्यादि लेह	चक्रदत्त
रस—	अमृतार्णव रस	भै० र० कासाधिकार
	विजयभैरव रस	भै० र० ,,
	वृहद्रसेन्द्रगुटिका रस	,, ,,
	महोदधि रस	,, ,,
	डामरेश्वराभ्रम् रस	,, श्वासाधिकार
	श्वासकुठार रस	भै० र० ,,
	श्वासकुठार रस	,, ,,
	श्वास भैरव रस	,, ,,

---

secretion. Drugs which allay cough are sometimes spoken of as respiratory sedatives.

Pharmacology and theraputics af materia medica by J. Dilling
Page 544, ed. 19th, 1952.

उपर्युक्त ये द्रव्य अपनी क्रिया द्वारा श्लेष्मनि सारक होते हैं। इन द्रव्यो मे स्थित सुगधित उडनशील तैल पूर्व कथनानुसार क्रिया करके कफघ्न होते हैं।

इन द्रव्यो की क्रिया कफ प्रसादन होती है चूंकि प्रसादन क्रिया का विस्तृत वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है। अत यहा अनावश्यक होने से सक्षिप्त विवरण ही किया गया है।

उपर्युक्त प्रसादक श्लेष्मनि सारक (Stimullant Expectorants) कुछ योगो का निर्देश किया जा रहा है। यथा—

चूर्ण—	१ समशर्करचूर्ण	भै र कासाविकार ३३, ३४
	२. तालीसादि चूर्ण	,, ,, ,, ३६, ४०
	३ द्वितीय तालीसादि चूर्ण	,, ,, ,, ४१, ४२
	४ कासान्तक चूर्ण	,, ,, ,, ४३
	५ शृग्यादि चूर्ण	,, श्वास १७
	६ कट्फलादि चूर्ण	शा. म खं ६।३५, ३६
	७ द्वितीय कट्फलादि चूर्ण	,, ,, ,,
	८ तृतीय कट्फलादि चूर्ण	,, ,, ,,
	९ मार्गीशर्करा	भै र श्वासाधिकार ३, ८९
	१० पुष्करमूल चूर्ण	च चि १७, २८ १ मा

उपर्युक्त चूर्णों मे मधुराम्ल लवण रस युक्त द्रव्य होने से प्रथम वे कफ की वृद्धि करके पुन कटुतिक्तात्मक तथा उडनशील तैलयुक्त द्रव्य शीघ्रही रक्त सचार वढाकर स्राव की वृद्धि करके श्लेष्म निष्काशन करने से प्रसादक या उत्तेजक कफनि सारक बनते हैं।

घृत—	१ दशमूलादिघृत	च० चि० १८।१२२,२३
	२ कटकारीघृत	च० चि० १८ १२४, २७
	३ गुडूच्यादिघृत	च० चि० १८।१६०, ६१
	४ कासमर्दादिघृत	च० चि० १८।१६२, ६३
	५ मन शिलादिघृत	च० चि० १७।१४४

उडनशील तैल युक्त द्रव्य स्नेहो के साथ मिलकर अधिक एव शीघ्र क्रिया कर वन जाते हैं। तथा इनकी क्रिया विलव तक चलती रहती है। जिससे कफ का प्रसादन सम्यक् रीत्या होकर पुन नि सरण सरलता से हो जाता है। स्नेहो के साथ ये द्रव्य मिलकर रक्त सचार की वृद्धि कर देते है। स्राव वनना वढ जाता है और इस प्रकार कफ आसानी से निकल जाता है।

अवलेह—	१ हरीतकी लेह	च० चि० १८।१६७,६८
	२ जीवत्यादि लेह	च० चि० १८।१७५, ७८
	३ द्राक्षादि लेह	भै० र० १५।९

घृतो के समान अवलेह भी चाटे जाने से अधिक देर तक कण्ठ, गल इत्यादि स्थानो मे रुककर स्नेहन क्रिया करते है तथा कफ प्रसादन करके उसके निर्गम मे सहायक वनते हैं।

क्वाथ—	१. पिप्पल्यादि क्वाथ	भै० र० १५।२९, ३०
	२ दशमूल क्वाथ	भै० र० १५।२५
	३. दशमूली क्वाथ	भै० र० १५।२४
	४ भार्गीनागर क्वाथ	भै० र० १६।२८
	५ भार्गीयनागर क्वाथ	वैद्य जीवन

शुद्ध एव सद्य प्राप्त वनस्पतियो का रस शीघ्र फलप्रद होने से तथा सरलता के साथ निर्माण हो जाने के कारण क्वाथ अपना कार्य उत्तम रीत्या करके सद्य लाभकर पाये गये है। इसी कारण चरक मे क्वाथ चिकित्सा का विधान प्रचुर प्रमाण मे प्राप्त होता है।

रस—	१. श्वासचिन्तामणि	भै० र०	कासाधिकार
	२. श्वासकास चिन्तामणि	,,	,,
	३. मृगाक वटिका	,,	,,
	४. नागार्जुनाभ्ररस	,,	,,
	५. सूर्यावर्त्त रस	,,	,,
	६ कासातक रस	,,	,,
	७. द्वितीय कासातक रस	,,	,,
	८. समशर्करलौह	,,	,,
	९, चन्द्रामृत लौह	,,	,,
	१० भार्गोत्तर गुटिका	,,	,,
	११. श्रृगाराभ्ररस	,,	,,
	१२. सार्वभौमरस	,,	,,
	१३. नित्योदय रस	,,	,,
	१४ वसन्ततिलक रस	,,	,,
	१५ विजय वटी	,,	,,
	१६ अमृतार्णव रस	शार्ङ्गधर	कासाधिकार
	१७ स्वयमग्नि रस	,,	,,

औषधि चिरस्थायी, अधिक गुणकारी एव अल्प मात्रा द्वारा शीघ्र एव शुभ परिणाम वाली बनाने के विचार से उपर्युक्त द्रव्यो द्वारा रसो का निर्माण किया जाता है। ये द्रव्य पारद गन्धक की सहायता प्राप्त करके अल्पपरिमाण मे ही अधिक शक्ति शाली होकर कार्य करके रोग मुक्ति करा देते है।

तैल—	१ चन्दनाद्य तैल	भै० र० १५।१९८, २०३
	२ वासाचन्दनाद्य तैल	भै० र० १५।२०४, २१०
	३ महत्चन्द्रनाथ तैल	भै० र० १६।१०५, ११४

इन तैलो के उन्मर्दन द्वारा रक्त सचार एव उष्णता वृद्धि होकर क्रिया होती है।

धूम्र—	१ मन शिलादि धूम्र	च० चि० १८।६८, ६९
	२. मन शिलादि धूम्रवर्ति	च० चि० १८।७२, ७३
	३ हरितालादि धूम्रवर्ति	च० चि० १८।७३
	४ मन शिलादि धूम्र	च० चि० १८।१४५

५. मन शिलादि धूम्र	भै० र० कासाविकार
६. मन शिला वदरीपत्र धूम्र	,, ,, ,,
७ अर्कादि धूम्र	,, ,, ,,
८ मरिचादि धूम्र	,, ,, ,,
९ धुस्तूरफलशाखा धूम्र	,, ,, ,,
१० इगुदी त्वगादि धूम्रवर्ति	च० चि० १८।७४
११ द्विमेदादि धूम्रवर्ति	च० चि० १८।१४४
१२. जीवनीयादि धूम्र	च० चि० १८।१५४
१३ मधूच्छिष्ट धूम्र	च० चि० १७।७७
१४ श्योनाकादि धूम्र	च० चि० १७।७९

उपर्युक्त धूम्रो की क्रिया से श्वास प्रणालीय क्षोभन होकर स्राव वृद्धि द्वारा कफ निष्कासन होता है। इन धूम्रो से उत्पन्न रूक्षता को शमन करने के लिये इन्हे प्रथम घृत लिप्त करके धूम्रवर्ति बनाकर प्रयोग करते हैं। धूम्रपान के पश्चात् उत्पन्न रूक्षता के शमनार्थ अनुपान रूप मे स्निग्ध एव द्रव पदार्थों यथा शर्वत, पानक, गुडघृतो का उपयोग किया जाता है।

अवसादक कफघ्न (Depressent Expectorants)

इस वर्ग की औषधिया अपनी क्रिया द्वारा श्वास केन्द्र (Respiratory Centre) एव तत्समीपस्थ कास केन्द्र (Cough Centre) की उत्तेजन शीलता को कम करके कास शामक कार्य द्वारा कफघ्न होती हैं।

कास केन्द्र एव श्वास केन्द्र सुषुम्ना शीर्षक मे समीप ही रहते हैं। अत इनको अवसादित करने वाली औषधिया दोनो केन्द्रो पर कार्य करके परस्पर एक दूसरे को अवसादित करती हैं। इन औषधियो के द्वारा केन्द्रीय अवसादन होकर श्वास प्रणाली मे कफ स्राव कम हो जाने से कास मे शान्ति मिलती है। परन्तु ये द्रव्य लाभ की अपेक्षा हानिकारक प्रभाव थोडीसी ही असावधानी या मात्राधिक्य के द्वारा उत्पन्न कर देते हैं। अत इनका वैद्यकीय प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है।

कासकेन्द्रावसादक—ये द्रव्य विभिन्न प्रकार से क्रिया करते है। यथा—

१ कुछ द्रव्य सुषुम्ना शीर्षक को अवसादित करके कफ की प्रत्यावर्तन क्रिया का अवसादन करके कास का शमन करते है।

---

1 The cough centre, which is closely connected with the respiratory centre, acts reflexly in responce to irritation of the sensory vagal endings in bronchioles

The cough reflex can be depressed and coughing diminished by–

1. Meduallary depressants.
2. Peripheral sedatives of the vagal endings
3. Parasympathetic depressants; which reduce or arrest bronchial. see on page 696.

२. कुछ द्रव्य प्रान्तीय शामक होने के कारण प्राणदा नाडी के नाडयंत सूत्रो पर क्रिया करके कास शामक होते है।

३ परिस्वतत्र नाड़ी सूत्रों को अवसादित करने वाले कुछ द्रव्य कास शामक होते हैं।

इस प्रकार अवसादक कफघ्न द्रव्य उपर्युक्त प्रकारेण कथित विभिन्न क्रियाओ द्वारा श्वासकेन्द्र, कफकेन्द्र अथवा स्थानीय क्रिया द्वारा अवसादन करके कफ शामक होते है। इन क्रिया कर द्रव्यो मे निम्न का समावेश होता है—

१. धुस्तूर
२. अहिफेन
३. अहिफेन के क्षार
४ विभिन्न कफ मिश्रित औषधिया
५. वत्सनाभ व दूसरे योग

पूर्व मे प्रतिपादित किया जा चुका है कि इन द्रव्यों का चिकित्सकीय उपयोग कम होता है। अत. विस्तृत विवरण देना अनावश्यक होने से सक्षिप्त विचार किया गया है।

अवसादक कफघ्न योग—

चूर्ण--	त्रिफलादि चूर्ण	शा० म० ख० अ० ६।३४
	तालीसादि चूर्ण	भै० र० कासाधिकार
	इन्द्रवारुणिकादि चूर्ण	भै० र० १६।७१
	मुक्ताद्य चूर्ण	च० चि० १७।१२४, २७
क्वाथ--	कट्फलादि क्वाथ	च० चि० १८।१११, १२
अवलेह—	त्वगादिलेह	च० चि० १८।९१, ९२
	देवदार्वादिलेह	च० चि० १८।११७
	पद्मकादि लेह	च० चि० १८ १७३, ७४
	अपराजित लेह	भै० र० ४
	भार्ग्यादि लेह	भै० र० १५।५
	भार्ग्यादि लेह	चक्रदत्त
रस—	अमृतार्णव रस	भै० र० कासाधिकार
	विजयभैरव रस	भै० र० ,,
	वृहद्रसेन्द्रगुटिका रस	,, ,,
	महोदधि रस	,, ,,
	डामरेश्वराभ्रम् रस	,, श्वासाधिकार
	श्वासकुठार रस	भै० र० ,,
	श्वासकुठार रस	,, ,,
	श्वास भैरव रस	,, ,,

---

secretion. Drugs which allay cough are sometimes spoken of as respiratory sedatives.

Pharmacology and theraputics af materia medica by J. Dilling
Page 544, ed. 19th, 1952.

वटी—	इन्दुमरीचि वटिका	भै० र०	श्वासाधिकार
अरिष्ट—	कनकासव	भै० र०	श्वासाधिकार
धूम्र—	हरिद्रादि धूम्रवर्ति	भै० र०	श्वासाधिकार
	धुस्तूर फल शाखाधूम्र	भै० र०	कासाधिकार

क्लेदोपशोषण श्लेष्मोपशोषक Anti-Expectorants

कफ के द्रवत्व की मात्रा को न्यून करके कफ का शोषण करने वाली औपधिया क्लेदोपशोषक वर्ग मे समाविष्ट होती है। इन औषधियो के द्वारा श्वास प्रणाली से स्रावित होने वाला कफ स्राव कम हो जाता है एव इससे शुष्कता उत्पन्न हो जाती है।

ऐसी ही परिभाषा करते हुए डा० घोष ने श्वास प्रणाली के स्राव को कम करने वाली औषधियो को श्लेष्मोपशोषक (Anti expectorants) कही है।

क्लेदोपशोषण द्रव्यो की कार्यप्रणाली[2]—

ये द्रव्य तीन प्रकार से क्रियाकर होते हैं। यथा—

१ प्राणदा नाड्यत सूत्रो को कार्यविहीन बनाकर श्वास प्रणालीय स्रावाल्पता उत्पन्न करने वाले द्रव्य।

२. स्राव कम करने वाले नाडीगण्ड (ganglia) का प्रथम अल्परूपेण प्रसादन कर पुन कार्य विहीन बनाने वाले द्रव्य।

३ सुपुम्नाशीर्षक स्थित श्वास केन्द्र पर प्रभाव करके श्वासप्रणालीय श्लेष्मस्राव को न्यून करने वाले द्रव्य।

इस प्रकार क्लेदोपशोषण द्रव्य उपयुक्त विभिन्न तीन प्रकार की क्रियाओ द्वारा श्लेष्म शोपण करते है।

इस वर्ग की औपधियो मे अम्ल, क्षार, अहिफेन युक्त द्रव्य आते हैं।

Anti-expectorants are drugs which diminish the bronchial secretion

by R Ghosh's Pharmacology
P 362, 20th ed 1957

2 The Bronchial secretions can be diminished by—

1 Drugs which paralyse the secretory vagal endings

2 Drugs which briefly stimulate and then paralyse the secretory ganglia

3 Drugs which acts centrally and reduces bronchial mucous secretion

Pharmacology and Theraputics
of materia media P. 543
by J. Dilling ed. 19th, 1952

१ मल्ल
२ हडताल
३ शिगरफ
४ फिटकरी
५ सफेदा
६ चूना
७ सगवसरी
८ सेदूर
९ दग्धकागज
१० गिले मखलूम
११ गेरू
१२ गिले अरमनी
१३ माई
१४ हीराकासीस
१५ मामीसा
१६ लाजवर्ग
१७ वशलोचन
१८ जावित्री
१९ जला हुवा गावजवान
२० जली हुई छुहारे कीं गुठली
२१ जला हुवा तावा (रूसुख्तज)
२२ काकडार्सिंगी
२३ शिरीप की छाल
२४ हब्बुल आस
२५ पीपल की पत्ती
२६ मण्डूर (खब्सुल हदीद)
२७ मोचरस
२८. नागकेशर
२९ ईरसा
३०. मुरदा संख
३१. सगजराहत
३२ सुरमा
३३ जारीतसीप (सट्फसोख्ता)
३४. तूनिया
३५ जला हुवा प्रवाल मूल (वीखामर्जानसोख्ता)
३६ प्रवाल
३७. वलूत
३८. अभ्रक
३९. जला हुवा स्पज
४०. रोशनाई
४१. माजू
४२. एलुवा
४३ वायविडग
४४ आवनूस
४५. गुलनार
४६. जुदवेस्तर
४७. अजरूत
४८. जीरा
४९ सुदाव
५० समालू
५१ वबूल की छाल
५२ अनार का छिलका
५३ वरगद के वृक्ष की छाल
५४ झाऊ की पत्ती
५५ वोल
५६ लुमोलसिरी
५७ कतूरियन
५८ वकाइन की छाल
५९ चिरायता
६० जली हुई कौडी
६१ मइछी
६२. हव्ववलसा
६३ वालछड
६४ सुकाई
६५ मकोय
६६. गुलधावा (धातकी पुष्प)
६७. वच
६८. कनेर
६९ गिलेमुलतानी
७०. कोयला
७१. हाऊवेर
७२ शादनज
७३ वाकला
७४ कगनी
७५ छडीला
७६. चुनिया गोद
७७ मेंहदी की पत्ती (वर्गहिन्ना)

७८. [illegible] (मि[illegible])
७९. [illegible]
८०. [illegible]
८१. [illegible]
८२. कुन्दु[illegible]
८३. [illegible]
८४. मीठा [illegible]
८५. उनाब
८६. जलाया हुआ बादाम का छिल्का
८७. रतन जोत
८८. इकलीलुल मलिक (नाखूना)
८९. ज्वार
९०. बाजरा
९१. सौंफ

इस प्रकार उपर्युक्त द्रव्यों की क्रिया श्लेष्मोपशोषक होती है।

यही विचार द्वारा पूर्व प्रतिपादित श्लेष्मोपशोषण की परिभाषा से सादृश्य स्थापित करती हुई दृष्टि गोचर होती है।

श्लेष्मोपशोषक योग--

चूर्ण—	१. त्रिकटादि चूर्ण	च० चि० १७।११७
	२. मद्यादिचूर्ण	च० चि० १३।१२२, १२३
	३ कुलत्थ गुड़	भै० र० १६।९६, ९६
	४. कुलत्थ गुड़	चक्रदत्त श्वासाधिकार
कषाय—	१. दशमूल कषाय	भै० र० १६।२२
	२. दशमूली कषाय	भै० र० १६।२४
लेह--	१. पिप्पल्यादि लेह	च० चि० १८।५२, ५५
	२. अगस्त्य हरीतकी	च० चि० १८।५६, ६१
	३. देवदार्वादि लेह	च० चि० १८।११७
	४ देवदार्वादिलेह	च० चि० १८।११९
	५. जीवन्त्यादि लेह	च० चि० १८।१७५, ७८
	६. वासावलेह	भै० र० १५।१७९।८१

स्थानिक कफस्रावी (Topical Expectorants)–पूर्व प्रतिपादित कफोत्क्लेदि, हृल्लासकार अथवा स्निग्धोत्क्लेदन द्रव्य अपनी क्रिया द्वारा मधुर, अम्ल एव लवण रसात्मक होने से कफस्राव बढाकर स्थानिक कफस्रावी बनते है।

धूम्रपान भी उन द्रव्यो के अतिरिक्त अपने अन्दर स्थित सुगधित उडनशील तैलो के द्वारा मुख एव श्वासनलिका की श्लेष्मिककला पर साक्षात क्रिया करके श्लेष्मोद्रेचन कराकर स्थानिक कफस्रावी होते हैं।

स्थानिक कफस्रावी द्रव्यों की कार्य प्रणाली

[1]मधुर रस वाले द्रव्य अपने मधुर, स्निग्ध, द्रव, शीत एव पिच्छिलादि गुणो के द्वारा तृप्तिकारक, तर्पक, मुखोपलेप करने वाले एव इस तरह श्लेष्मा की वृद्धि करने वाले होते है।

[2]इसी प्रकार से अम्लरस भोजन पर श्रद्धा उत्पन्न करने वाला एवं मुखस्राव को बढानेवाला कहा गया है।

---

१ तत्र यः परितोषमुत्पादयति प्रह्लादयति तर्पयति जीवयति मुखोपलेपं जनयति श्लेष्माणं चाभिवर्द्धयति स मधुर।

२. यो दन्तहर्षमुत्पादयति मुखास्राव जनयति श्रृद्धां चोत्पादयति सोऽम्लः

[3]आगे दृष्टिपात करने पर लवण रस को स्पष्ट रूप से मार्दव कार, भोजन मे रुचि उत्पन्न करने वाला एव कफप्रसेक (कफस्राव) करने वाला कहा गया है।

इन मधुराम्ललवण रसो के गुण कर्म एव इनके भौतिक सगठन मे अप्तत्व होने के कारण श्लेष्म की वृद्धि होती है एव तेजस तत्व के कारण ग्रथिनाफ द्रव होकर उसका स्राव होने लगता है ।

ऐसी स्थिति मे जव कि रूक्षता एव कर्कशता वढ जाती है स्थानिक कफ-स्रावी द्रव्यो का उपयोग किया जाता है। इनके प्रयोग कफस्राव होकर आर्द्रता एव स्निग्धता की उत्पत्ति होकर व्याधि मे लाभ पहुचता है।

धूम्रपान—इन उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त यहा पर इस स्थानीय कार्य के लिये धूम्रपान को विशिष्ट महत्व दिया है। कारण उपर्युक्त द्रव्यो का प्रयोग प्रत्येक स्थिति मे मात्राधिक्य मे कर सकना सम्भव नही होता है। इसलिये ये द्रव्य इस कार्य मे अधिक उपयोगी नही वन पाते है। धूम्रपान प्रत्येक समय आवश्यकतानुसार अल्पमात्रा द्वारा ही पर्याप्त लाभकारी होने से महत्व का स्थान रखता है। एतदर्थ धूम्रपान का विवेचन किया जा रहा है।

धूम्र—धूम्र दो प्रकार के होते हैं। यथा—

१ उत्तेजक धूम्र २ अवसादक धूम्र।

१ उत्तेजक धूम्र—उत्तेजक औषधियो के तत्वो मे विशेष रूप से मन-शिला गत सौमल धूम्रपान के द्वारा श्वास प्रणाली की श्लेष्मकला तक पहुचकर उसे उत्तेजना प्रदान करता है। यह क्षोभक एव प्रदाहक भी होता है। परन्तु धूम्रपान द्वारा प्रयुक्त होने के कारण अल्पाश मे होने से गले, मुख और श्वास-प्रणालीय श्लेष्मकला मे लग जाता है। तथा गैस के स्वरूप मे होने के कारण वाष्प वनकर कला पर उत्तेजनात्मक लवण उत्पन्न कर देता है जिससे श्वास प्रणाली के कार्य का प्रसादन होने लगता है तथा उसमे स्थित श्लेष्मग्रथियो की गति मे शीघ्रता उत्पन्न हो जाती है। और वे श्लेष्मोद्रेचन शीघ्रता के साथ पूर्वापेक्षया अधिक मात्रा मे करने लगती है। इस तरह स्राव वृद्धि होकर श्लेष्म की मात्रा वढकर वह सुगमता से निकल जाता है।

लौहवान का धूम्र
सिलारस धूम्र | ये दोनो प्रकार के धूम्र भी मन शिला की तरह उत्ते-जक कार्य करके स्थानिक कफस्रावी वनकर, श्लेष्म निष्काशन करते हैं।

शोरक के योग या जिन द्रव्यो मे शोरे का अश है वे सव यही क्रिया करते हैं। यथा पुनर्नवा, वासा, अपामार्ग आदि। इनमे शक्ति वढाने के लिये शोरा मिलाकर धूम का योग वनाते हैं। आज कल इसके वढे कीमती योग बाजार मे मिलते हैं जिनका धूम लेने से तत्काल श्वास वेग कम हो जाता है।

२ अवसादक धूम्र—धत्तूर एव वासा पत्र के धूम्रपान करने पर ये धूम्र तिक्त रसात्मक होने के कारण श्लेष्म के शोषक हो जाते हैं। तिक्त रस का

---

३. यो भक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकं जनयति मार्दवं चापादयति स लवणः ॥ सु० सू० ४२।८

कार्य शोषण करना है । अत. ये धूम्र श्लेष्मोद्रेचन की प्रवृत्ति को कम कर देते हैं और इस प्रकार अवसादक क्रिया द्वारा श्लेष्मा का शमन करते हैं। इसीलिये कास श्वास के अत्यधिक वेगो की अवस्था मे इन अवसादक धूम्रो का उपयोग किया जाता है।

कषाय रस वाले द्रव्यो का प्रभाव श्वास केन्द्र पर अवसादक स्वरूप का होता है। इनसे श्वास केन्द्र का अवसादन हो जाने पर श्वास प्रणाली को मिलने वाली उत्तेजना कम हो जाती है, परिणामस्वरूप श्लेष्मोत्पत्ति मे अवसादन क्रिया हो जाने से कफ भी कम बनने लगता है। इनके प्रयोग से स्राव नियमित तो रहता है परन्तु पूर्वापेक्षया स्राव की मात्रा मे न्यूनता आ जाती है, इस तरह से कफ निकलते रहने से ये स्थानिक कफ स्रावी कार्य कर होते है।

उपर्युक्त प्रकार से कार्य करने वाले योग नीचे कहे जा रहे है। यथा–

१. मन शिलादि धूम्र–१. मन.शिला ४. भद्रमुस्ता
२. मरिच ५. इगुदीमज्जा।
३. जटामासी

२. मन.शिलावदरीपत्र योग ३ अर्क मूलत्वक्त्रिकटु योग
४. मरिचशिला योग

उपर्युक्त योगो के गुण एवं कार्यो का विवरण पूर्व प्रकरण मे स्नेह एव रूक्ष धूम्रों मे किया जा चुका है। अत विस्तृत परिचय हेतु वही पर देखना चाहिए।

वातश्लेष्म हर द्रव्य

[1]वायु के गुण कर्मो का वर्णन करते समय आचार्यों ने इसे रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल (सर्वदागतिमान) विशद एव खर (कर्कश) बतलाया है। अतः वायु के इन गुणो के द्वारा शरीर मे रौक्ष्य, लघुत्व एव खरत्व अथवा कर्कशता का प्रादुर्भाव होता है। शरीर मे वात वृद्धि होने पर त्वचा मे रूक्षता उत्पन्न हो जाती हैं। झुर्रियां या पपड़िया त्वचा पर पडने लगती हैं। केश रूक्ष हो जाते है, मुख की कान्ति नष्ट होकर शुष्कता व्याप्त हो जाती है। शरीर की मास पेशियां कृश हो जाने से कृशता एव दौर्बल्य आ जाता है। वात के अधिक प्रकोप से भ्रम, कप शूल, मूर्च्छा आटोप, आध्मान प्रभृति विकार उत्पन्न होने लगते हैं। वात की यह वृद्धि वात प्रकोपक कटु, तिक्त एव कषायात्मक रसवाले द्रव्यो के अधिक सेवन से एव वातलविहार करने से होती है। इन रसो का विवेचन पूर्व में किया जा चुका है कि किस प्रकार इनसे वात वृद्धि होकर शोषण होकर उक्त लक्षणो का प्रादुर्भाव होता है।

[2]श्लेष्म के गुण कर्मो के वर्णन मे इसे गुरु, शीत, स्निग्ध, मधुर, मृदु, पिच्छिल कहा गया है। एव इसके कार्यों गौरव, तृप्ति, स्थिरता, पुष्टिकृत। बलदायक होना भी कहा गया है। इसका विस्तृत विवेचन प्रथम खड मे किया जा चुका है। अत विस्तृत जानकारी के हेतु वही पर देखना चाहिए।

---

१. रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः। च० सू० १।५९
२. गुरुशीत मृदुस्निग्धमधुरस्थिर पिच्छिलाः। च० सू० १।६१

इन दोनो दोषो के सम्बन्ध मे विचार करने पर ये एक दूसरे दोष परस्पर विरुद्ध क्रिया वाले देखे जाते है। यथा वात जब रूक्षता लघुता, कृशता उत्पन्न करता है, तब कफ उसके विपरीत गुणधर्म वाला होने से स्निग्धता, गुरुता, बलोपचय कारक होता है। अत ये दोष परस्पर एक दूसरे के शामक होने से चिन्तन के विषय नही बनते है। परन्तु जब इन दोनो के सयोग द्वारा व्याधि उत्पन्न होती है, तब इनके शमन करने मे कठिनाई उपस्थित हो जाती है। यथा वात का शमन करने वाले द्रव्यो के प्रयोग द्वारा कफ की वृद्धि हो जाने से भी रोग नाशन कार्य नही हो पाता है एव कफ नाशक औषधियो द्वारा पुन वात वर्धन होने से वही स्थिति उत्पन्न होती है। इसके स्पष्ट विवेचन हेतु इनके शामक रसवाले द्रव्यो पर विचार उपस्थित करते हैं। यथा—

१ **वातशामक रस**—१ मधुर २. अम्ल ३ लवण

ये तीन रस अपने मधुर, स्निग्ध, द्रव, शीतादिक गुणो के कारण वात के रूक्ष, लघु, खर सूक्ष्मादिक गुणो के विपरीत होने से वात के विरुद्ध क्रियाकर होकर वात शामक होगे[1]। आयुर्वेद के

सर्वदासर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।

ह्रासहेतुर्विशेषश्च . . . . . .॥

इस सामान्य विशेष वाद, के सिद्धान्तानुसार समान समान की वृद्धि करने वाला एव विशेष अथवा विपरीत कार्य करने वाला उसके ह्रास अथवा न्यूनता का कारण बनता है। अत वात के रूक्ष, लघु, आदि गुणो के विपरीत क्रिया करने के कारण ये मधुर अम्ल एव लवण रस वातशामक होगे[2]।

२. **कफ शामक रस**[3]—१ कटु २ तिक्त ३ कषाय

ये तीनो रस अपने उत्तेजक, दीपक, शोषक, कर्षक गुणो के रूक्षता उत्पादक होने से कफ के स्निग्ध शीत, गुरु, द्रव, पिच्छिल गुणो के विपरीत कार्य कर होने से कफ नाशक होते है।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि ये दोष परस्पर एक दूसरे के नाशक हैं। परन्तु जैसा कि ऊपर कथन किया गया है श्लेष्म वात की सयोग-जन्य स्थिति मे श्लेष्म वातविकार होने पर यथा, कास, श्वासादिक रोग उत्पन्न होने पर दोनो दोष शमन करने का विचार उपस्थित होता है। कफजन्य कास की सप्राप्ति मे कहा गया है कि. . .

---

१. स्वाद्वम्ललवणा वायुम्..........।
जयन्ति . . . . . . ॥ च सू १।६६

२ रूक्ष शीतो लघु सूक्ष्मश्चलोऽथ विशद खर।
विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुत सप्रशाम्यति। च सू १।५९

३ . . . . . . ।
जयन्ति पित्त श्लेष्माण कषायकटुतिक्तका। च सू १।६६

४. गुरुशीत मृदुस्निग्ध मधुर स्थिर पिच्छिला।
श्लेष्मण. प्रशम यान्ति विपरीतगुणैर्गुणा.। च. सू. १।६१

कुपित अर्थात् वृद्धिगत श्लेष्मा वायु के मार्ग को अवरुद्ध करके कफकास को उत्पन्न करता है[1]। इसी प्रकार कास के अन्य भेदो मे भी कफ वायु को रोककर कास उत्पत्ति करता है।

इसी प्रकार श्वास रोग को कफवातजन्य कहा गया है[2]।

अत ऐसी व्याधि के विषय मे वातश्लेष्महर द्रव्यो के सम्बन्ध मे विचारो एव अनुभवो के आधार पर यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि ..

वे द्रव्य जो कि कटु, अम्ल, लवणरस प्रधान एव वीर्य मे उष्ण होते हैं, श्लेष्म वातहर होगे।

ये उपर्युक्त गुण धर्म वाले द्रव्य उष्ण वीर्य होने से वात एव कफ दोनो के विपरीत क्रिया करेगे। तथा कटु रसात्मक कफ एव अम्ल तथा लवण होने से वात को शान्त करेगे। इन रसो के निम्न गुण होते हैं यथा–

१. **कटुरस**[3] =	१. लघु २. उष्ण ३ रूक्ष	होने से श्लेष्म शामक है।
२. **अम्लरस**[4]	लघु उष्ण स्निग्ध	होता है।
३. **लवणरस**[5]	नातिगुरु स्निग्ध उष्ण	होता है।

अत इन तीनो रसो से युक्त द्रव्य वात एव कफ दोनो के ऊपर कार्य कर सकने मे समर्थ होने से तथा उष्णवीर्य द्वारा दोनो को जीतने वाला होने से श्लेष्म वातशामक होगा। ऐसे द्रव्य के ऊपर विचार करने पर इसमे उष्ण रूक्ष एव लघु का आधिक्य होने से कफ का तथा स्निग्ध होने से वात का शमन करेगा एव वीर्य द्वारा दोनो का शामक होगा। अम्ल, लवण एव कटु रसो का भौतिक विवेचन[6] द्वारा निम्न परिचय प्राप्त होता है–

रस	**भौतिकसंगठन**	
अम्ल	पृथ्वी	अग्नि
लवण	जल	अग्नि
कटु	वायु	अग्नि
	अग्नि ३ पृथ्वी १ जल १ वायु १	

१ वृद्ध श्लेष्माऽनिलं रुद्ध्वाकफकासं करोति हि॥ च चि. १८।१७
२ कफवातात्मका वेतौ पित्तस्थान समुद्भवौ॥ च चि १७।८
३ कटुको रसो श्लेष्माणं शमयति लघुरुष्णोरूक्षश्च च. सू २६।४६
४ अम्लोरसो ...... लघुरुष्ण स्निग्धश्च। च. सू २६।४४
५. लवणो रसः . नान्यर्थं गुरु स्निग्ध उष्णश्च। च. सू २६।४५
६ पृथिव्यग्निभूयिष्ठत्वादम्ल
सलिलाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवण
वाय्वग्निभूयिष्ठत्वात् कटुक। च.सू २६।४०

इस प्रकार आग्नेय होने से उष्णवीर्य सिद्ध होते हैं।

एतदर्थ कटुकाम्ल लवण रसयुक्त एव उष्ण वीर्य वाले द्रव्यो द्वारा वात-श्लेष्म का क्षय सभावित होने से निम्न औषधिया श्लेष्म वात शामक होती हैं।

१. कर्पूर
२. जम्बीर
३. अजमोद
४. रसोन
५ शुष्कबदर
६. इगुदीफल
७. गन्डीर
८. मूलक
९ तुम्बुरु
१० नलिनी
११ विडग
१२. भृगराज
१३ सिघुवार
१४. जातीफल
१५. तेजपत्र
१६. कुसुम्बशाक
१७ तैल
१८. तुषोदक
१९. विल्वत्वक्
२०. वृक्षाम्ल
२१ जलपिप्पली
२२. शृगवेर
२३. पाठा
२४ शुण्ठी
२५ सुवर्चला
२६ ज्योतिष्मती
२७ त्वक् (दालचीनी)
२८ शिग्रुबीज
२९ हिंगु

चरक सहिता सूत्रस्थान मे अग्र्य सग्रहध्याय मे निम्न द्रव्यो को वात श्लेष्मशामक कहा गया है। यथा—

१. **तैलं वातश्लेष्मप्रशमनानाम्।**
२. **बिल्वं .. वातकफप्रशमनानाम्।**
३. **हिंगुनिर्यास ... वातकफप्रशमनानाम्।**
४. **अम्लवेतसो . वातश्लेष्मप्रशमनानाम्।**

इस प्रकार तैल, हिंगु, बिल्व, अम्लवेतस को वातश्लेष्मशामक कहा गया है। सुश्रुत[1] सहिता मे वात श्लेष्म नाशक गण मे निम्न द्रव्यो की गणना की गई है। यथा—

१ एला
२ तगर
३ कुष्ठ
४ जटामासी
५ ध्यामक
६. त्वक
७ तेजपत्र
८ श्रीवेष्टक
९ चोच (त्वगोद)
१०. चोरक
११. नागपुष्प
१२. प्रियगु
१३ हरेणुका
१४. व्याघ्रनख

---

१. एलातगरकुष्ठमासीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्प प्रियगु हरेणुका, व्याघ्रनख, शुक्तिचण्डा स्थौणेयकश्रीवेष्टकचवोचोचचोरकवालुक, गुग्गुलुसर्ज्जरसतुरुष्ककुन्दु-रुकागुरुस्पृक्कोशीर भद्रदारुकुकुमानिपुंनागकेशरं चेति।

एलादिको वातकफौ निहन्याद्विषमेव च। सु० सू० ३८।१८

१५. शुक्ति
१६. चण्डा (अजमोदाकृति चोरक मद)
१७. स्थौणेयक
१८. वालक
१९. गुग्गुलु
२०. सर्ज्जरस
२१. तुरुष्क
२२. अगुरु
२३. उशीर
२४. कुकुम
२५. नागकेशर
२६. कुन्दुरुक
२७. स्पृक्का
२८. भद्रदारु
२९. पुन्नाग

कफवातघ्न गण[1]—१. बिल्व
२. अग्निमंथ
३ टुन्टुक
४. पाटला
५ काश्मरी

अष्टाग[2] हृदयकार ने भी सुश्रुतोक्त एलादिगण को वातश्लेष्मनाशक कहा है।

श्लेष्म पित्त प्रशमन

पित्त[3] के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए इसे ईषत् स्नेहयुक्त, उष्ण तीक्ष्ण, द्रव अम्ल सर एव कटु गुणात्मक कहा गया है। पित्त का प्रकोप होने पर शरीर मे इन गुणो की वृद्धि होने से दाह, पाक, उष्णता, तीक्ष्णता श्राव होने लगता है एव पाक के परिणाम स्वरूप धातुए दग्ध होकर दुर्गंधि अथवा विग्रथि होने लगती है। पित्त का यह वृद्धि कटु, अम्ल, एव लवण रस प्रधान पदार्थों के अधिक सेवन करने पर होती है।

श्लेष्मा के गुण पूर्व कथनानुसार मधुर, स्निग्ध, शीतादिक होने से यह शरीर मे तृप्ति कर वलदायक गौरव एव पुष्टिकृत होता है।

श्लेष्मा मधुर, अम्ल एव लवण रसात्मक पदार्थों के सेवन से बढता है। कटु तिक्त कषाय रस श्लेष्मा को शमन करते हैं।

इसी प्रकार कटु अम्ल एव लवण रस से पित्त की वृद्धि होती है तथा मधुर तिक्त एव कषाय रस पित्त शामक होते हैं[4]।

श्लेष्मा एवं पित्त का सयोग होने पर उत्पन्न होने वाली व्याधि मे श्लेष्म शामक कटु रसात्मक द्रव्य देने से पित्त वृद्धि की सभावना रहती है एव पित्त शामक मधुर रसात्मक औषधि सेवन से श्लेष्म कुपित हो जाता है ऐसी अवस्था मे चिकित्सा कार्य मे वाधा उपस्थित हो जाती है।

---

१. बिल्वाग्निमन्थटिन्टुकपाटलाकाश्मर्य्यश्चेति पंचमूलम् महत्।
सतिक्तं कफवातघ्नं . . । सु० सू० ३८।१३

२. अ हृ सू १५।४३, ४४

३. सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु। च० सू० १।६०

४. . . . . कषायस्वादुतिक्तका।
जयन्ति पित्तम् . . . . । च० सू० १।६६

उपर्युक्त श्लेष्मपित्त शमन के विषय में अध्ययन एवं अनुभवों के आधार पर यह नियम स्थापित किया गया है कि—

श्लेष्मपित्त प्रशमन—द्रव्यों की श्रेणी में उन द्रव्यों का समावेश किया जायगा जो कटु, तिक्त, कषाय एवं मधुर रस प्रधान होंगे। इसके स्पष्टीकरण हेतु इन रसों पर विचार करना आवश्यक है।

रसों का भौतिक विवेचन—

	रस	भौतिक संगठन	
१.	कटु	वायु	अग्नि
२.	तिक्त	वायु	आकाश
३.	कषाय	वायु	पृथ्वी
४.	मधुर	जल	पृथ्वी

वायु ३ पृथिवी २ अग्नि अप आकाश

रसों के भौतिक संगठन पर विचार करने पर ये रस वायु तथा अग्नि महाभूत के आधिक्य से कफ का एवं पृथिवी तथा जल महाभूत के कारण पित्त का शमन करने से श्लेष्म पित्त शामक होंगे।

कटु, तिक्त, कषाय एवं मधुर रसों का गुणात्मक विवेचन—

रस	गुण
५ कटु	लघु, उष्ण, रूक्ष
६ तिक्त	रूक्ष, शीत, लघु
७ कषाय	रूक्ष, शीत, लघु
८ मधुर	स्निग्ध, शीत, गुरु

३ रूक्ष ३ लघु ३ शीत उष्ण, गुरु, स्निग्ध

इस प्रकार ये रस शीत गुरु एवं स्निग्ध होने से पित्त तथा रूक्ष, उष्ण एवं लघु होने से कफ का शमन करने से श्लेष्मपित्त शामक होंगे।

१. वायु अग्नि भूयिष्ठत्वात्कटुक
२ वाय्वाकाशातिरिक्तत्वात्तिक्त. च० सू० २६।४०
३. पवनपृथिवीव्यतिरेकात्कषाय
४. सोमगुणातिरेकान्मधुरो रस.
५. कटुकोरसो .... लघुरुष्णो रूक्षश्च। च० सू० २६।४६
६. तिक्तको रस . . . रूक्ष शीतो लघुश्च। च० सू० २६।४७
७. कषायोरस रूक्ष शीतोऽलघुश्च। च० सू० २६।४८
८. मधुरो रस . . स्निग्धः शीतो गुरुश्च। च० सू० २६।४३

श्लेष्मपित्त शामक द्रव्य—गागेरुकी
कटीर
तिंदुक
लज्जालु
छरीला
बिम्बी
धन्वन (धामन)
लोध्र
नागदमनी
नलिका शाक

चरक सहिता मे सूत्रस्थान अध्याय पच्चीस मे प्रधान द्रव्यो की गणना करते समय—

मधु श्लेष्म पित्त प्रशमनानाम्
दुरालभा पित्तश्लेष्म प्रशमनानाम् । च० सू० २५।४०

मधु एव दुरालभा को श्लेष्म पित्त शामक कहा गया है।

सुश्रुत ने पित्त कफ नाशक गण मे निम्न द्रव्यो का पाठ किया है।

१. **पित्त कफ नाशक गण– पटोलादि गण**[1]–
पटोल
चन्दन
कुचन्दन (लालचन्दन)
मूर्वा
गुडूची
पाठा
कटुरोहिणी

२. **त्रिफला**[2]—हरीतकी
आमलक
विभीतक

३. **कफपित्तनाशक**[3]—लाक्षा
आरेवत (कृतमाल)
कुटज
अश्वमार
कट्फल
हरिद्राद्वय
निम्ब
सप्तच्छद (सप्तपर्ण)
मालती (चमेली)
त्रायमाण

अष्टांगहृदयानुसार कफपित्त नाशकवर्ग[4]—
१. पटोल
कटुरोहिणी
चन्दन (गधसार)
मधुस्रावा (मरुद्री सुरगी)
गुडूची
पाठा

---

१. पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूची पाठा कटुरोहिणी चेति।
पटोलादिर्गणः पित्तकफारोचकनाशन । सु० सू० ३८।१६
२. हरीतक्यामलकविभीतकानीति त्रिफला ।
त्रिफला कफपित्तघ्नी . ॥ सु० सू० ३८।२७
३ लाक्षारेवतकुटजाश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छद मालत्यस्त्रायमाणा-
चेति । कषायतिक्तमधुर कफपित्तार्त्तिनाशनः । सु सू ३८।३१
४ पटोलकटुरोहिणी चन्दनं मधुस्रवगुडूचीपाठान्वितम् ।
निहन्ति कफपित्त ... ॥ अ. हृ. सू १५।१८

२. गुडूची[1]
   पद्मक
   अरिष्ट (निम्ब)
   धान्यक
   रक्तचन्दन

उपर्युक्त सहितोक्त द्रव्य एव गणप्राय कटुतिक्त कषाय मधुर रसात्मक होने से श्लेष्मपित्त शामक होते हैं।

कासहर द्रव्य एवं योग—

कास की उत्पत्ति मे श्लेष्म एव वात दोषो को प्रामुख्य किया गया है। जब प्राणवहस्रोतस् फुफ्फुस अथवा श्वास प्रणाली मे वात का मार्ग श्लेष्म के द्वारा अवरुद्ध हो जाता है, उस समय श्वासोच्छ्वास क्रिया मे बाधा उपस्थित होने लगती है तब वायु अपनी पूर्ण शक्ति केन्द्र द्वारा श्लेष्मा के अवरोध को दूर करता हुवा गल, कण्ठ, मुख, स्वरयन्त्रादि से टकराता हुवा निकलता है। तो 'कास' का प्रादुर्भाव होता है।

कास की सप्राप्ति के विषय मे आचार्यों के निम्न विचार हैं। यथा—

अध प्रतिहतो वायुरुर्ध्वस्रोत समाश्रित.।
उदानभावमापन्न कण्ठे सक्तस्तथोरसि ॥
आविश्य शिरस. खानि सर्वाणि प्रतिपूरयन्।
आभंजन्नाक्षिपन् देहं हनुमन्ये तथाऽक्षिणी ॥
नेत्रे पृष्ठमुर पार्श्वे निर्भुज्य स्तम्भयंस्तत ।
शुष्को वा सकफो वाऽपि कसनात्कास उच्यते ॥ च चि. १८।६, ८

उर प्रदेश कफ का प्रधान स्थान है। यह पूर्व मे प्रतिपादित किया जा चुका है कि यहा पर स्थित श्लेष्मा फुफ्फुस, श्वास प्रणाली, गल, कण्ठ, स्वरयत्र, जिह्वामूल एव तालु इस प्रकार सम्पूर्ण मुख को आर्द्र व स्निग्ध बनाये रखता है। जिससे बोलने, निगरण एव श्वसोच्छवास की क्रिया सम्यक्रीत्या सपन्न होती रहती है। परन्तु जब यही प्रकृत रूप से कार्य करनेवाला श्लेष्मा श्लेष्मलाहार विहारो के द्वारा वृद्ध होकर कुपित हो जाता है, तब यह प्रसार करके वायु के मार्ग मे रोध उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार से नीचे अर्थात् फुफ्फुस अथवा श्वास प्रणाली मे रोका गया वायु बल पूर्वक श्लेष्म का रोध दूर करते हुए कण्ठ के और ऊर्ध्व स्रोतो मे प्रस्थान करता है एव कण्ठ स्थित उदान भाव से सयोग करता (उदानभावमापन्न) है। इस तरह यह वायु कण्ठ, शिर, हनु, मन्या, वक्ष, नेत्र आदि समस्त ऊर्ध्व स्रोतसो मे व्याप्त हो जाता है और उन्हे आक्षिप्त करता हुआ उर तथा पृष्ठ को सकुचित करता हुआ सशब्द निकलता है तो कास की

---

१ **गुडूचीपद्मकारिष्टधानका रक्तचन्दनम् ।**
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दि दाहतृष्णाघ्नमग्निकृत ॥ अ. हृ. सू १५।१६

उत्पत्ति होती है। यदि इस अवस्था में वात की प्रधानता हुई तो शुष्क, कफयुक्त कास अथवा कफ का प्राधान्य होने पर कफ प्रवृत्ति पूर्वक कास आता है। कफजकास की संप्राप्ति में वृद्ध हुआ श्लेष्मा वायु के मार्ग को रोककर कफ सहित कास उत्पन्न करता है।

वृद्ध श्लेष्मानिलं रुद्ध्वा कफकासं करोति हि। च. चि. १८।१७

इस प्रकार १. शुष्क या वातज कास

२. कफजकास—के भेद से कास हर द्रव्य दो भेदो मे विभाजित हो जायेगे।

१. शुष्ककास—फुफ्फुस, श्वास प्रणाली अथवा स्वरयन्त्र की श्लेष्मिककला मे वातलादि रूक्षाहार विहार अथवा पैत्तिक निदान के सेवन से उष्ण तीक्ष्ण गुणो की वृद्धि के कारण सूक्ष्मता, कर्कशता, क्षोभ, उग्रता अथवा उत्तेजना के परिणाम स्वरूप रूक्षता उत्पन्न हो जाने से जो शुष्क कास के वेग आते हैं। गले मे ऐसी स्थिति में शूक धान्यो के चुभने जैसी प्रतीति (शूकपूर्णगलास्यता) होती है।

२. कफजकास—फुफ्फुस, श्वास प्रणाली एव कंठ इत्यादि मे श्लेष्म अथवा तत्सदृश मलीभूत वस्तु के निष्काशनार्थ कफजकास का प्रादुर्भाव होता है।

चिकित्सा—मे कफ विस्यंदनकर, कफच्छेदि, उत्तेजक, उष्ण तीक्ष्ण गुणवाले द्रव्यो का प्रयोग होता है।

कासहर की परिभाषा—कासं हरतीति कासहरम्।

(चरकोपस्कार टीकाकार योगीन्द्रनाथ सेन)

अर्थात् वे द्रव्य जो खासी के वेग का शमन करके कफ को सरलता से निकाल देते हैं। कासहर कहे जाते हैं।

कासहर द्रव्यों का वर्णन करते हुए चरकाचार्य ने कासहरदशेमानिगण मे निम्न द्रव्यो का समावेश किया है—

द्राक्षाभयामलक पिप्पली दुरालभाशृंगी कण्टकारिका वृश्चीर, पुनर्नवा तामलक्य इति दशेमानि कासहराणि भवन्ति॥ (च. सू ४।३६)

१. द्राक्षा	६. कर्कटशृंगी
२. अभया	७. कण्टकारी
३. आमलक	८. वृश्चीर
४. पिप्पली	९. पुनर्नवा
५. दुरालभा	१०. तामलक

इस दशेमानि गण के द्रव्यो मे द्राक्षा मधुर स्निग्ध होने से शुष्ककास मे पिप्पली कटु होने से कफजकास मे, इसी प्रकार से दूसरे द्रव्य अपनी क्रिया, द्वारा कासहर होते हैं।

सुश्रुत ने विदारिगधादि एव सुरसादिगण को कासहर कहा है ।

विदारिगधादिगण[1]—

१. विदारिगन्धा	११. सारिवा
२ विदारी	१२ कृष्णसारिवा
३ सहदेवा	१३. जीवक
४. विश्वदेवा	१४. ऋषभक
५. श्वदष्ट्रा	१५ महासहा
६. पृथक्पर्णी	१६. क्षुद्रसहा
७. शतावरी	१७ बृहतीद्वय
८. हसपादी (मधुस्रवा)	१८ पुनर्नवा
९. एरण्ड	१९ वृश्चिकाली (मेषश्रृंगीभेद)
१०. ऋषभी (कपिकच्छु)	

२. सुरसादिगण[2]—

१. सुरसा (तुलसी)	१२ विडग
२. श्वेत सुरसा	१३. कट्फल
३ फणिज्झक	१४ सुरसी
४. अर्जक	१५ निर्गुन्डी
५. भूस्तृण	१६ कुलाहल
६ सुगन्धक	१७ इन्दुरुकर्णिका
७ सुमुख	१८ प्राचीवल
८. कालमाल	१९. विषमुष्टिक
९. कासमर्द	२० फजी
१० क्षवक	२१ काकमाची
११. खरपुष्पा	

सुश्रुत के अनुसार ही अष्टागहृदयकार[3] ने भी विदारिगधादि एव सुरसादिगण को कासहर कहा है ।

चरक में पुष्करमूल को कासहर द्रव्यो मे श्रेष्ठ कहा है ।

पुष्करमूलं हिक्काश्वासकासपार्श्वशूलहराणाम् ।। च सू. २५

यूनानी वैद्यक मे कासहर औषधियो मे निम्न द्रव्यो का परिगणन किया है कासहर औषधि की यूनानी सज्ञा मुजय्यल सुर्फा है ।

---

१ विदारिगंधा, विदारी, सहदेवा, विश्वदेवा, श्वदष्ट्रा, पृथक्पर्णी शतावरी, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवकर्षभकौ, महासहा, क्षुद्रसहा, बृहत्यौ पुनर्नवैरण्डो हंसपादी, वृश्चिकाल्यृषभी चेति ।
विदारिगधादिरय गण पित्तानिलापह । . . .श्वासकासविनाशन ।।
सु सू ३८।२

२ सु, सू. ३८।९

३. अ हृ. सू. १५

मुजय्यल सुर्फा—

१. मुलैठी (अस्लुस्सुस)
२. सतमुलैठी (रुब्बुसस)
३. गावजवानपत्र
४. मवीज मुनक्का
५. मिश्री
६. शरुतीगाल
७ वनफ्शा
८. हुब्बवलसां
९ इसबगोल
१०. तुख्मखशखाश श्वेत
११. कुलफा के बीज
१२. मेथी
१३. खतमी बीज
१४. मधु
१५. खुब्बाजी के बीज
१६. सेव
१७. उस्तखद्दूस
१८ खिरनी
१९. राजादन
२०. निलोफर
२१. मूली
२२. मीठाअनार
२३. गूलर
२४. गाजर
२५. वालछड़
२६. कुक्कुटमास
२७. मत्स्य
२८. मूग
२९ धोया हुआ लुकर (लाक्षा)
३०. खाकसी
३१. लिसोढा (श्लेष्मातक)
३२ सुदाव
३३ दारचीनी
३४. उन्नाव
३५. दिरमना तुर्की
३६ पायो का शोरवा
३७. शिलारस (मीआसाइला)
३८. निशास्ता
३९ चादी का वर्क
४०. कायफल
४१. ईख
४२. वच
४३. जौ
४४. हरीरा
४५. वाकला
४६. मसूर
४७ खुरफा
४८. धनिये के पत्ते
४९ काहू
५० कलौंजी
५१. सातर
५२. रेवन्द
५३. सौंफ
५४. पियारागा
५५. वादावर्द
५६. बादाम
५७. वसफाइज
५८. तिल
५९ वतखके अण्डे
६०. चौलाई
६१ खुरासानी अजवायन
६२. खर्नुब
६३ रीठा
६४. मुर्गी के अण्डे की जर्दी
६५ पिस्ता
६६. निसोत
६७. हालो
६८ तोदरी
६९. जराबन्द
७०. कतीरा
७१. कदू
७२. कदू के बीब की गिरी
७३. कर्नव
७४. मटर
७५. कुटुर
७६ अखरोट की गिरी

७७ मुर (घोल)
७८ सरो
७९ शलाभ
८० गिलोय
८१ मुदहरज
८२ जलेबी
८३ जुफाखुश्क
८४. गेहू कीमूसी
८५ काकर्डासिगी
८६ सफ बीज
८७ दालचीनी (सलखा)
८८ यवमड (आश जौ)
८९ शीरखिश्त
९० बकरी का दूध
९१ भेड का दूध
९२ बबूल का गोद
९३ तुला सनावर
९४ जुही का रोगन
९५ अकरकरा
९६ अजीर
९७ तमाकू (तरकास के लिये)
९८ बुत्म का गोद
९९ केसर
१००. ऊद
१०१ बताशा
१०२. गारीकून
१०३ फरासियून
१०४ फिदक
१०५. कड (कुर्तुम)
१०६. कुटकी
१०७ चिरायता
१०८ अरवी
१०९ कहवा
११० अलसी
१११ मरवा
११२ मक्खन
११३ गुग्गुल
११४ मोमियाई
११५ केला
११६ नील
११७ बिहीदाना
११८ सतगिलोय
११९ पान

उपर्युक्त द्रव्य अपने गुण कर्मो के द्वारा कासहर होते है। (मरवजनुलद्विया)

कासहर विशिष्ट द्रव्यो की क्रिया के विषय मे विचार करने के पश्चात् योगो का विवरण किया जायगा। इसके पूर्व कासहर कुछ विशिष्ट द्रव्यो के विपय मे विचार प्रस्तुत कर रहे है।

१ वासा—कफ नि सारक, वातकारक, तिक्त, हृद्य, आक्षेपघ्न, रक्तपित्तनाशक है। श्वास कास यक्ष्मा रक्तपित्त उर क्षत नाशक है। अतः कफज कास मे उपयोगी है।

---

१ वासा— वासको वातकृत, स्वर्य कफपित्तास्रनाशन'।
तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघु शीतस्तृप्तिहृत ॥
श्वासकासज्वरच्छर्दिमेह कुष्ठक्षयापह । भा० प्र०
वृषागस्त्ययो पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाकानि क्षयकासापहानि ।
सु० सू० ४६
वासायां विद्यमानायामाशया जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ।

२. कंटकारी—कफ नि.सारक, मूत्रल, तिक्त द्रव्य वातहर है। श्वास, कास, वेदना मे कफ नि सारणार्थ प्रयुक्त होती है।

३ कर्पूर—सुगंधित मधुर, तिक्त, शीतल, लेखन, लघु, कफ पित्त नाशक, उत्तेजक, आक्षेप निवारक वृष्य है।

कर्पूर मे उड़नशील तैल होने के कारण कास के वेग मे आक्षेप निवारक होता है। वृद्धो के चिरकालीन कास मे अन्य औषधियो के साथ मिलाकर देने पर अधिक लाभ होता है।

कास वेग मे प्रयुक्त किया जाने पर श्वास प्रणाली की श्लेष्मिककला का रक्तसंवहन वढाकर कफस्राव बढ़ जाने से आसानी से कफ निकल जाता है। अत. कफ नि सारक है।

४. यष्टीमधु—मधुर, तिक्त, गुरु, स्निग्ध होने से वात शामक, पित्त शामक, कफवर्धक है। अत. क्षयजकास मे कफ की कमी होने पर कफवर्धनार्थ प्रयोग करते हैं। यह स्निग्ध होने से श्लेष्मकला को शक्ति प्रदान करती है। श्लेष्मकला प्रदाह शामक है। स्वरयत्र, श्वास प्रणाली के कफ को सरलता से निकालती है।

धत्तूर[1]—मदकारक, अवसादक, कफ नि सारक, आक्षेपघ्न, रक्त पित्त नाशक उष्ण, कण्डू एव विषनाशक है। अत अवसादक, कफ नि सार मादक होने से वेदनाहर है इसलिये आक्षेपयुक्त श्वास रोग मे लाभदायक है। यह मधुर एव तिक्त होता है। वातकारक है।

६. वदरीपत्र[2]—मधुर, स्निग्ध, कफ वातघ्न, भेदन, अम्ल होने से श्लेष्म शोषण मे सहायक शुष्क कफ वातघ्न होता है। मधुर होने से बल्य होता है।

७. पुष्करमूल[3]—यह कटु, तिक्त, उष्ण होने से कफघ्न, कासहर, श्वासहर अरोचक, शोफ एव हिक्का नाशक है।

---

२. कंटकारी—कण्टकारी सरातिक्ता कटुका दीपनी लघु।
रूक्षोष्णापाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान्। भा० प्र०
कण्टकारी रसे सिद्धो मुद्गयूष सुसंस्कृत।
सगौरामलक साम्ल सर्वकासभिषग्जितम्॥ च० चि० १८

३. कर्पूर— कर्पूर. शीतला वृष्य' चक्षुष्यो लेखनो लघु'।
सुरभिर्मधुरस्तिक्त कफपित्तविषापह॥ भा० प्र०

धत्तूर १. धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृत्ज्वरकुष्ठनुत्।
कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशन.॥
उष्णो गु व्रणश्लेष्मकण्डु कृमिविषापह। भा० प्र० गुडूच्यादिवर्ग ८२

२. वदरं मधुरं स्निग्धं भेदनं वातपित्तजित्।
तच्छुष्कं कफवातघ्नं पित्ते न च विरुध्यते॥ च०सू० २७

३. पौष्करं कटु तिक्तोष्णं कफवातज्वरापहम्।
श्वासारोचककासघ्नं शोफघ्नं पाण्डुनाशनम्॥ भा० प्र०

८ **कर्कटश्रृंगी**—यह कपाय, तिक्त, उष्ण होने से कफ नाशक होता है। इससे सचित कफ निकल जाता है, नया कफ बनता नही है तथा श्लेष्मकला को शक्ति मिलती है। अत यह श्वास, ऊर्ध्ववात, कास, हिक्का नाशक है।

उपर्युक्त औषधिया एव इसी प्रकार के गुण धर्म वाली वर्णित की गई अन्य औषधिया भी कास, श्वास, हिक्का आदि वात कफ अथवा पित्त रोग की शामक होती हैं।

इस प्रकार द्रव्यो के विषय मे विचार करने के बाद एक अथवा अधिक द्रव्यो के सयोग से निर्माण होने वाले योगो का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

चूर्ण—	१ विडगादि चूर्ण	च० चि० १८। ४६
	२. द्विक्षारादि चूर्ण	च० चि० १८।४७।४८
	३ खदिर चूर्ण	च० चि० १८।६२
	४. सैंधवादि चूर्ण	च० चि० १८।६२
	५ मरिचादि चूर्ण	शा० म० ७।१३,१४
	६ त्रिफलादि चूर्ण	शा० म० ६।३४
	७ कट्फलादि चूर्ण	शा० म० ६।३५,३६।
	८ द्वितीय कट्फलादि चूर्ण	शा० म० कासाधिकार ६
	९ तृतीय कट्फलादि चूर्ण	शा० म० अ० ६
	१० श्रृग्यादि चूर्ण	शा० म० ६
	११ यवक्षारादि चूर्ण	शा० म० ६
	१२ तालीसादि चूर्ण	शा० म० ६
	१३ मरिचाद्य चूर्ण	भै० र० १५।३१,३२
	१४ समशर्कर चूर्ण	भै० र० १५।३३,३४
	१५ तालीसादि चूर्ण	भै० र० १५।३६,४०
	१६ द्वितीय तालीसाद्य चूर्ण	भै० र० १५।४१,४२
	१७ कासातक चूर्ण	भै० र० १५।४३
क्वाथ—	१ कट्फलादि क्वाथ	च० चि० १८।१११,११२
	२. पचमूली क्वाथ	भै० र० १५।६
	३. वलादिकषाय	भै० र० १५।१०
	४ दशमूल क्वाथ	भै० र० १५ १६
	५ पौष्करादि क्वाथ	भै० र० १५।१५
	६ कटकारी क्वाथ	भै० र० १५।१७
	७ कट्फलादि क्वाथ	भै० र० १५।१९,२०
	८ चित्रमूलकादि क्वाथ	भै० र० १५।२३
	९ तितडीपत्र क्वाथ	भै० र० १५।२६
	१० पचमूली क्वाथ	भै० र० १५।२७
	११. कटकार्यादि क्वाथ	भै० र० १५।२८
	१२ पिप्पल्यादि क्वाथ	भै० र० १५।२९,३०
	१३ पचमूली क्वाथ	चक्रदत्त

	१४. वत्सादि कषाय	चक्रदत्त
	१५. कट्फलादि क्वाथ	चक्रदत्त
	१६. कण्टकार्यादि क्वाथ	भा० प्र०
	१७. पिप्पल्यादि क्वाथ	भा० प्र०
	१८. वासादि क्वाथ	शा० म० २।६२
	१९ क्षुद्रादि क्वाथ	शा० म० २।६३
अवलेह–	१. दुरालभादिलेह	च० चि० १८।४९
	२ दु स्पर्शादिलेह	च० चि० १८।५०
	३ विडगादिलेह	च० चि० १८।५१
	४. चित्रकादिलेह	च० चि० १८।५२,५५
	५ अगस्त्यहरीतकी	च० चि० १८।५६,६१
	६ शृगाटिकादिलेह	च० चि० १८।८६
	७. पिप्पल्यादिलेह	च० चि० १८।८६
	८. लाजादिलेह	च० चि० १८।८७
	९. खर्जूरादिलेह	च० चि० १८।८८
	१० पिप्पल्यादिलेह	च० चि० १८।८७
	११ सर्करादिलेह	च० चि० १८।८९
	१२ मृद्विकादिलेह	च० चि० १८।९०
	१३. त्वगादिलेह	च० चि० १८।९१,९२
	१४. पिप्पल्यादिलेह	च० चि० १८।९३
	१५ देवदार्वादिलेह	च० चि० १८।११७
	१६ पिप्पल्यादिलेह	च० चि० १८।११७
	१७ पिप्पल्यादिलेह	च० चि० १८।११८
	१८ पथ्यादिलेह	च० चि० १८।११९
	१९. देवदार्वादिलेह	चि० चि० १८।११९
	२० विशालादिलेह	च० चि० १८।१२०
	२१ पिप्पल्यादिलेह	च० चि० १८।१३४,३६
	२२ हरीतकीलेह	च० चि० १८।१६७,६८
	२३ द्राक्षादि लेह	चि० चि० १८।१७८
	२४ चित्रकादि लेह	च० चि० १८।१७२
	२५. पद्मकादि लेह	च० चि० १८।१७३,७४
	२६ जीवन्त्यादि लेह	च० चि० १८।१७५,७८
	२७ अपराजित लेह	भै० र० १५।४
	२८ भार्ग्यादि लेह	भै० र० १५।५
	२९ द्राक्षादि लेह	भै०र० १५।९
	३०. खर्ज्जूरादि लेह	भै० र० १५।११
	३१ मुस्तकादि लेह	भै० र० १५।२५
	३२ व्याघ्री हरीतकी	भै० र० १५।१६९,७२
	३३ अगस्त्यहरीतकी	भै० र० १५।१७३,७८
	३४. वासावलेह	भै० र० १५।१७९,८१

घृत—	१ कटकारी घृत	च० चि० १८।३४
	२ पिप्पल्यादि घृत	च० चि० १८।३५,३७
	३ त्र्यूषणाद्य घृत	च० चि० १८।३८४१
	४ रास्ना घृत	च० चि० १८।४२,४५
	५. दशमूलादि घृत	च० चि० १८।१२२,२३
	६ कण्टकारी घृत	च० चि० १८।१२४,२७
	७ कुलत्थादि घृत	च० चि० १८।१२८
	८ द्विपचमूल्यादि घृत	च० चि० १८।१५७,५९
	९ गुडूच्यादि घृत	च० चि० १८।१६०,६१
	१० कासमर्दादि घृत	च० चि० १८।१६२,६३
	११ कटकारी घृत	भै० र० १५।१८७
	१२ दशमूलषट्पलक घृत	भै० र० १५।१८८,८९
	१३ छागलाद्य घृत	भै० र० १५।१९०,९७
रस—	१ कासान्तक रस	भै० र० कासाधिकार
	२ द्वितीय कासान्तक रस	” ”
	३ कासकुठार रस	” ”
	४ पित्तकासान्तक रस	” ”
	५ पुरन्दर वटी	” ”
	६ पचामृत रस	” ”
	७ अमृतार्णव रस	” ”
	८ चन्द्रामृत रस	” ”
	९ डामरानन्दाभ्रम रस	” ”
	१० महाकालेश्वर रस	” ”
	११ विजयभैरव रस	” ”
	१२ काससहार भैरव रस	” ”
	१३ वृहद्रसेन्द्र गुटिका	” ”
	१४ महोदधि रस	” ”
	१५ तरुणानन्द रस	” ”
	१६ समशर्करलौह	” ”
	१७ चन्द्रामृत लौह	” ”
	१८ भागोत्तर गुटिका	” ”
	१९ लक्ष्मीविलास रस	” ”
	२०. सार्वभौम रस	” ”
	२१ शृंगाराभ्र रस	” ”
	२२ नित्योदय रस	” ”
	२३ वसन्ततिलक रस	” ”
	२४ अमृतार्णव रस	शार्ङ्गधर कास
	२५ स्वयमग्नि रस	” ”
वटी—	१ वासादि वटिका	भै० र० कासाधिकार
	२. इद्गमरीचि वटिका	” ”

	३. कासकर्तरी गुटिका	भै० र० कासाधिकार
	४ गुडादि वटिका	शार्ङ्गधर श्वासकास
अरिष्ट—	१ वासकारिष्ट	भै० र० कासाधिकार
आसव—	२. कनकासव	” ”
धूम्र—	१. मन शिलादि धूम्र	च० चि० १८।६८,६९
	२. प्रपौन्डरीकाद्य धूम्र वर्ति	च० चि० १८।७०,७१
	३ मन शिलादि धूम्र वर्ति	च० चि० १८।७२,७३
	४ हरितालादि धूम्र वर्ति	च० चि० १८।७३
	५. इगुदीत्वगादि धूम्र	च० चि० १८।७४
	६. द्विनैवादि धूम्र वर्ति	च० चि० १८।१४४
	७ मन शिलादि धूम्र	च० चि० १८।१४५
	८ जीवनीयादि धूम्र	च० चि० १८।१४७
	९ मन शिलादि धूम्र	भै० र० कासाधिकार
	१० मन शिलालिपावदरा पत्र धूम्र	भै० र० कासाधिकार
	११ अर्कादि धूम्र	भै० र० कासाधिकार
	१२. मरिचादिधूम	भै० र० कासाधिकार
	१३. धुस्तूरफलशाखाधूम्र	भै० र० कासाधिकार
तैल—	१. चंदनाद्य तैल	भै० र० १५।१९८,२०३
	२. वासाचदनाद्य तैल	भै० र० १५।२०४,२१०

उपर्युक्त योग पूर्व कथित अपनी विभिन्न प्रकार की क्रियाओ द्वारा कार्य करके कास शमन करते है ।

श्वासहर द्रव्य एवं योग——

श्वास की उत्पत्ति मे कफ एव वात दोषो का प्राधान्य पाया जाता है । उर प्रदेश कफ का स्थान है अत उर प्रदेश स्थित प्राणवह स्रोतस् फुफ्फुसो मे श्लेष्मा के द्वारा वात का मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर वह कुपित होकर सम्पूर्ण प्राणवह स्रोत मे प्रसार करके उसमे क्षोभ उत्पन्न करता हुआ कष्ट पूर्वक वेगसहित निकलता है । तो श्वास का प्रादुर्भाव होता है । चरकाचार्य जी ने इसकी सप्राप्ति मे निम्न विचार प्रकट किये हैं——

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुत कफपूर्वकः ।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति स ॥ च. चि १७।४५

श्वास एव कास एक ही स्रोत की व्याधिया हे तथा कास और श्वास की प्रक्रिया भी प्राय समान रूप से एक ही प्रकार की होती है । यह 'कास' प्रक्रिया मे प्रतिपादित किया जा चुका है । अत इसकी भी जानकारी कास प्रक्रिया के समान ही समझना चाहिये । तथा प्रक्रिया का वर्णन पूर्व प्रतिपादित कास प्रक्रिया मे देखना चाहिये ।

श्वास रोग से व्याधित रोगी कफाधिक एव वाताधिक भेद से दो प्रकार[1] के होते है।

१ **कफाधिक**—ऐसे रोगी मे कफ का प्राधान्य पाया जाता है, तो रोगी बलवान होता है और वह क्लेशासहिष्णु भी होता है।

चिकित्सा मे ऐसे रोगी को शोधन देना चाहिये। शोधन चिकित्सा (वमन) के पश्चात् पथ्य भोजन एव अवशिष्ट दोष शमन हेतु धूम्रपान एव लेहादिक का विधान करे। शोधन चिकित्सा का विशद विवेचन श्लेष्म सशमन विशिष्ट उपक्रम वमन मे किया जायगा।

२ **वाताधिक**—ऐसे व्याधित मे वात दोष की प्रधानता होने से वह कृश एव दुर्बल होता है तथा क्लेशासहिष्णु होने से शोधन चिकित्सा उसके लिये हितावह न होकर हानिकारक सिद्ध हो जाती है।

चिकित्सा— मे ऐसे व्यक्ति की वात शामक चिकित्सा करना चाहिये। एतदर्थ स्नेहन, यूष, रसादिक के द्वारा तर्पण चिकित्सा उपयोगी होगी।

उपरि कथित चिकित्सा द्वय हेतु, श्वासहर द्रव्यो का उपयोग आवश्यकीय होगा। अत श्वासहर द्रव्यो की जानकारी प्राप्त करना उपयोगी होगा।

श्वासहर द्रव्यो की परिभाषा मे—

श्वास श्वासरोग हरतीति श्वासहरम् ॥

श्वास रोग को नष्ट करने वाले द्रव्य को श्वासहर कहा गया है। चरक ने श्वासहर दशेमानिगण का उल्लेख करते हुए इसमे निम्न द्रव्यो का समावेश किया है।

शटीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिंग्वगुरुसुरसातामलकीजीवन्तीचण्डा इति दशेमानि श्वास हराणि भवन्ति च सू ४।१७, (३७)

अर्थात्	
१ शठी	६ अगुरु
२ पुष्करमूल	७ सुरसा
३ अम्ल वेतस	८ तामलकी (भूम्यामलकी)
४ एला	९ जीवती
५ हिंगु	१० चडा

उपर्युक्त १० द्रव्य श्वासहर गण मे परिगणित किये गये हैं।

चरक ने सूत्रस्थान अध्याय पच्चीस मे श्रेष्ठ द्रव्यो का परिगणन करते समय (अग्र्य सग्रह) मे पुष्करमूल को श्रेष्ठ श्वास हर माना है।

पुष्करमूल हिक्काश्वासकासपार्श्वशूलहराणाम्। च सू २५।४०

सुश्रुत सहिता मे विदारीगधादि, सुरसादि एव दशमूल इन गणो को श्वास हर माना गया है।

---

१ कफवातात्मकावेतौ ....। च. चि. १७।८

१. विदारिगन्धादिगण[1]—

१ विदारीगन्धा
२ विदारी
३ सहदेवा
४. विश्वदेवा
५. श्वदंष्ट्रा
६. पृथक्पर्णी
७ शतावरी
८. हंसपादी (मधुस्रवा)
९ एरण्ड
१०. ऋषभी (कपिकच्छू)
११ सारिवा
१२ कृष्णसारिवा
१३ जीवक
१४. ऋषभक
१५. महासहा
१६. क्षुद्रसहा
१७ बृहतीद्वय
१८ पुनर्नवा
१९ वृश्चिकाली (मेषशृंगीभेद)

२. सुरसादिगण[2]—

१. सुरसा (तुलसी)
२. श्वेतसुरसा
३ फणिज्झक (मरुवा)
४ अर्जक
५. भूस्तृण
६ सुगन्धक
७ सुमुख
८ कालमाल
९ कासमर्द
१० क्षवक (नकछिकनी)
११ खरपुष्पा
१२. विडंग
१३ कट्फल
१४ सुरसी
१५ निर्गुण्डी
१६ कुलाहल
१७ इन्दुरुकर्णिका (मूषिकपर्णी)
१८ प्राचीबल (मत्स्याक्षी)
१९ विषमुष्टिक (कुचिला)
२०. फन्जी (भार्गी)
२१. काकमाची (मकोय)

उपर्युक्त कथित द्रव्य तथा दशमूल के द्रव्य अपनी क्रिया के द्वारा श्वास हर होते है। अब इन द्रव्यो मे से अथवा अधिक द्रव्यो के योग से निर्मित श्वासहर योगो का विवरण दिया जा रहा है।

---

१ विदारिगंधा, विदारी, सहदेवा, विश्वदेवा, श्वदंष्ट्रा, पृथक्पर्णी, शतावरी, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवकर्षभकौ, महासहा, क्षुद्रसहा, बृहत्यौ, पुनर्नवैरन्डो हंसपादी, वृश्चिकाल्यृषभी चेति। विदारिगंधादिरय गण पित्तानिलापह।

श्वासकासविनाशन। सु सू. ३८।२

२ सुरसाश्वेतसुरसा फणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुख कालमालकासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडग कट्फलसुरसी निर्गुण्डी कुलाहलोन्दुरुकर्णिका फंजीप्राचीबलकाकमाच्यो, विषमुष्टिकश्चेति।

सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदन।
प्रतिश्यायारुचिश्वास कासघ्नो व्रणशोधन॥ सु सू ३८।१९

चूर्ण—	१. हिंग्वादिचूर्ण	च० चि० १७।१०७
	२ शट्यादिचूर्ण	च० चि० १७।१२२, २३
	३ मुक्ताद्य चूर्ण	च० चि० १७।१२४, २७
	४. शटीपुष्करामलकचूर्ण	च० चि० १७।१२८
	५ कृष्णादिचूर्ण	भै० र० १६।११
	६. विभीतक चूर्ण	भै० र० १६।१४
	७ हरिद्रादिचूर्ण	भै० र० १६।१६
	८. सग्यादिचूर्ण	भै० र० १६।१७
	९ कूष्माण्ड चूर्ण	भै० र० १६।१९
	१० कृष्णादिचूर्ण	भै० र० १६।२०
	११. शृग्यादिचूर्ण	भै० र० १६।२९
	१२ इन्द्रवारुणिकादिचूर्ण	भै० र० १६।७१
	१३ भार्गीशर्करा	भै० र० १६।८३, ८९
	१४ भार्गीगुड	भै० र० १६।९०, ९५
	१५ शुठ्यादि चूर्ण	शा म ख ६ श्वास रोग मे
क्वाथ—	१ दशमूल क्वाथ	भै र १६।२२
	२. दशमूली क्वाथ	भै. र १६।२४
	३ वासादि क्वाथ	भै र १६।२७
	४ भार्गीनागर क्वाथ	भै. र १६।२८
	५. वासादि क्वाथ	शा म ख २।६२
	६ क्षुद्रादि क्वाथ	शा. म ख २।६३
	७ वासादि क्वाथ	योगरत्नाकर
	८ भार्गीनागर क्वाथ	वैद्यजीवन
अवलेह एवं घृत—	१. शृगीगुड घृत	भै र. १६।७२, ७८
	२ हिंस्राद्यघृत	भै र १६।१००, १०१
	३ तेजोवत्यादि घृत	भै र १६।१०२, ४
	४ दशमूलाद्य घृत	च चि १७।१३९
	५ मन शिलादि घृत	च. चि १७।१४४
	६ तेजोवत्यादि घृत	च. चि. १७।१४०, ४३
रस—	१ विजयवटी	भै. र श्वासाधिकार
	२. डामरेश्वराभ्रम्	” ”
	३ महाश्वासारिलौह	” ”
	४ पिप्पल्याद्यलौह	” ”
	५ श्वासकुठार रस	” ”

६. द्वितीय श्वासकुठार रस — भै. र. श्वासाधिकार
७. श्वास भैरव रस — ,, ,,
८ श्वास चिन्तामणि रस — ,, ,,
९. श्वास कास चिन्तामणि रस — ,, ,,
१०. शृगांटकवटिका — ,, ,,
११. नागार्जुनाभ्ररस — ,, ,,
१२. सूर्यावर्तो रस — ,, ,,
१३ सूर्यावर्त रस — शा. श्वास रोगे

आसवारिष्ट—१ कनकासव — भै. र. श्वासाधिकार
२ कनकासव — च. चि. १७।१०५, १०६

धूम्र— १ हरिद्रादिधूम्रवर्ति — च. चि. १७।७७
२. मधुच्छिष्ट राल तथा घृत मिश्रित धूम्र — (च चि. १७।७८
३. स्योनाकादि धूम्र — च चि १७।७९
४ धुस्तूरफल शाखा धूम्र — भै. र श्वासाधिकार

तैल— १ चन्दनाद्य तैल (महत्) — भै र १६।१०५, १४

★★★

भाग ५

औषधि विज्ञान शास्त्र

भाग ५

कार्मुक संज्ञायें

पुरीष जननम्

परिभाषा—जो द्रव्य मात्रा से अधिक पुरीष की उत्पत्ति करे उन्हें पुरीषजनन कहते हैं। यथा—

१. **माषाः पुरीष जननानां**—(च० सू० अ० २५) उडद पुरीष जनक हैं।

२. **बहुवात शकृद्यव** (च० सू० अ० २७) जौ मल व वायु जनक हैं।

विवरण—प्राय प्रत्येक द्रव्य पचने के बाद सार व किट्ट रूप मे विभाजित होते है। आहार के किट्ट मे मल व मूत्र किट्ट माने जाते हैं। अत प्रत्येक द्रव्य पचकर अत मे उनके शेष भाग जो नही पचते मल के रूप मे निकलते हैं। इस मल मे निम्न लिखित अश होते हैं।

१. आहार द्रव्य का वह भाग जो पच नही पाता। शाक सब्जी के कठिन अश–द्विदलो मे के छिल्के, फलो के छिल्के आदि जो कोष्ठावरण (cellulose) के भाग होते हैं।

२. स्निग्ध द्रव्यो मे से प्रोटीन का बहुत भाग, (घृत तेलादि) का भाग तथा शर्करादि का अधिक भाग जो नही पचता।

३. जल का भाग। जिससे मल क्लिन्न बना रहता है।

४ रजक वस्तु पित्त–रक्त या आहार द्रव्य स्थित रजक वस्तु।

५ गध–विभिन्न प्रकार के गध द्रव्य।

इनमे–शाकाहारी व्यक्तियो मे शाक के भाग जो काष्ठीज के नाम से जाने जाते हैं, नही पचते। इनकी उपस्थिति से उत्तेजन होकर आन्त्रगति मे वृद्धि होती है और इसके साथ शोषित होने योग्य भाग भी सरलता से बढता जाता है और मलाशयोन्मुख होता है। अत बहुत अनपचा भाग निकल आता है और मल की मात्रा बढाता है। कुछ द्रव्यो के विष जातीय अश नही पचते या कम पचते है अधिकाश बाहर निकल जाते है और मल की मात्रा बढ़ाते हैं।

कुछ आत्रो मे पडे रहते हैं और देर मे निकलते हैं। यह भी कालान्तर मे मल की मात्रा वृद्धि करते है। जौ–माप या अन्य द्विदल जाति के प्रोटीन के सब भाग नही पचते और मल की मात्रा बढाते हैं अत. पुरीष जनन कहलाते हैं।

पुरीष विरजनीय––

चक्रपाणि ने––**पुरीषस्य विरंजन–विगत रंजनं (राग) रागसंबंधनिरासः तस्मैहितम् पुरीषविरजनीयम्।**

परिभाषा––वे द्रव्य जो पुरीष के विगत वर्ण को पुन· रंजन कर प्राकृत वर्ण कर देते हैं। वे द्रव्य जो कि पुरीष के वर्ण को विशेष रूप में रजित करते हैं उन्हे पुरीष विरजनीय कहते हैं।

विवरण––सामान्य रूप से पुरीष का रग पाचन काल मे पित्त के मिलने से पीत वर्ण का होता है। कई ऐसे द्रव्य हैं जो कि पुरीष के इस वर्ण को भिन्न वर्ण का कर देते हैं। अथवा कई रोगो मे पुरीष का वर्ण विगत वर्ण हो जाता है। तो इन अ।षधियो का प्रयोग होता है।

द्रव्य––चरक ने पुरीष विरजनीय गण मे १० द्रव्य का पाठ किया है। यथा––

जम्बूत्वक्	विदारीकद
धन्वयास	तिलकणा
मधूक	शल्लकीत्वक्
शाल्मली	उत्पल
श्रीवेष्टक	–
भृष्टमृद	–

इनके प्रयोग से मल का वर्ण निम्न रूप मे परिवर्तित हो जाता है। यथा–

जम्बूत्वक	कषायवर्ण
शल्लकीत्वक	”
धन्वयास	अल्पपीतश्वेत
मधूकपुष्प	लालवर्ण का
शाल्मलीत्वक	चिकना श्वेत वर्ण
शाल्मली फल	श्यामवर्ण
शाल्मली पुष्प	पिच्छिल रक्त वर्ण
श्रीवेष्टक	हरितपीतवर्ण
भृष्ट मृद	मृत्तिका वर्ण श्याव वर्ण
विदारीकद	अल्पपीत
उत्पल पुष्प	नीलवर्ण
उत्पल बीज (कदली)	बैंजनीवर्ण
तिल	श्वेत व कृष्ण वर्ण

बहुतसी औषधि व आहार द्रव्य है जिनके खाने से पुरीष का वर्ण विशेष वर्ण का व मूत्र का वर्ण विशेष वर्ण का होता है। यथा—

मक्का	पीतवर्ण
ज्वार	बैंजनीलाल
बाजरा	मिट्टी के वर्ण का
लाल रंग का मास	लाल
गाजर	लाल बैंजनी
मूली	पीत
जम्बूफल	नील बैंजनी वर्ण
आम की गुठली	काला स्याह
जामन की गुठली	श्यामवर्ण
औषधि—सनाय	कृष्ण पीत वर्ण
नील	नील वर्ण
शरपुंखा	नीलवर्ण
आरग्वध	कृष्ण वर्ण
जैलप	काला पीत वर्ण
एलुवा	पीतकृष्ण वर्ण
आत्मगुप्ता	बैंजनी या श्याम वर्ण
विल्वफल	पीतवर्ण

कई रोगो मे मल का वर्ण स्वाभाविक वर्ण से पृथक हो जाता है तब विरजनीय औषधि का प्रयोग करते हैं—

१ पाण्डु	पीताधिक वर्ण
२ कामला	तिलपिष्टनिभम्
३ सन्निपात	कृष्णवर्ण
४ प्रवाहिका	श्वेत वर्णयुक्त पीत पिच्छिल

इन रोगो मे स्वाभाविक मल का रूप लाने के लिये औषधि की आवश्यकता होती है।

पुरीष-ग्राही—

परिभाषा—जो द्रव्य पुरीष को गाढा करते हैं उन्हे पुरीष ग्राही कहते है। यथा—जीरक-गजपिप्पली।

विवरण—ग्राही की परिभाषा मे पुरीषग्राही का विवरण आ चुका है। जो द्रव्य दीपन-पाचन व उष्ण होते हैं वह विशेष रूप मे पुरीष को गाढा बना देते हैं। कटु कषाय रस वाले द्रव्य विशेषकर ऐसा कार्य करते हैं।

द्रव्य—ग्राही के साथ ही द्रव्य परिगणित है। उदाहरणार्थ कुछ द्रव्य लिखे जाते हैं।

जीरक-गजपिप्पली-नागरमोथा-आम्रबीज-जम्बूबीज-अहिफेन-जावित्री व जायफल।

लंघनम्—

परिभाषा—१. यत्किञ्चिल्लाघवकर देहे तल्लघन स्मृतम् । च. सू अ २२

२ लघन यत् लाघवाय देहस्य । च स. सू अ. २४

जो द्रव्य शरीर मे जाकर शरीर मे लघुता या हल्कापन उत्पन्न करे उन्हे लघन द्रव्य कहते है ।

द्रव्य— १ लघूष्ण तीक्ष्णविशद रूक्ष सूक्ष्म खर सरम् ।

कठिन चैव यद्द्रव्यं प्रायस्तल्लघनं स्मृतम् । च० सू० २४

जो द्रव्य लघु उष्ण तीक्ष्ण विशद रूक्ष सूक्ष्म खर सर व कठिन गुण वाले होते है उन्हे लघन द्रव्य कहते हैं । यथा—श्यामाक, कगु, नीवार, मद्य ।

भौतिक सगठन—वायु–अग्नि व आकाश महाभूतो के आधिक्य से सगठित द्रव्य लघन होते हैं ।

भेद—इसके दो भेद है—१ द्रव्यरूप २ अद्रव्य रूप

द्रव्यरूप—वे द्रव्य जिनका सगठन तेज–वायु आकाश प्रधान होता है और जिसमे लघ्वादि नवगुण होते है वे द्रव्यभूत है ।

अद्रव्यभूत—जिनमे किसी द्रव्य का प्रयोग नही होता और लघुत्व शरीर मे आ जाता हैं । यथा—

चतुष्प्रकारा संशुद्धि पिपासा मारुतातपौ ।

पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लघनम् ॥ च सू अ २२

वमन–विरेचन–आस्थापन–शिरोविरेचन–पिपासा–आतप–वायु पाचन व उपवास–व्यायाम यह दश प्रकार के कर्म हैं । जिनके करने पर शरीर मे लाघव मालूम होता है । अष्टाग हृदय मे ५ प्रकार लिखे है । जितने शोधन कर्म हैं उनसे लाघव होता है । वमन विरेचन–शिरोविरेचन–निरूह व रक्त स्रुति । इसी प्रकार शमन मे से भी कुछ शरीर लाघव कर कर्म होते है ।

यथा— . . शमनं तच्च सप्तधा ।

पाचन–दीपन–क्षुतृड्–व्यायामातप मारुत । अ हृ सू अ १४

शोधन के अतिरिक्त शमन मे से पाचन दीपन क्षुधा–तृष्णा–व्यायाम–आतप व मारुत यह शरीर लाघव कर होते हैं । शरीर के शोधन कर्म से शरीर गत दोष निष्काशित होकर शरीर को हल्का बना देते है । कम पानी पीना–क्षुधा मे न खाना, भूका रहना, धूप मे अधिक रहना–हवा मे अधिक रहना यह अवस्थायें शरीर मे लघुत्व उत्पन्न करती हैं । इस प्रकार–द्रव्य व अद्रव्य भूत द्विविधा क्रियाओ द्वारा शरीर मे लाघव उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा मे इसका बहुत महत्व है । ज्वर मे गौरव होने पर लघन कराने पर अथवा पाचन द्रव्यो के प्रयोग करने पर दोष पाचन होकर लघुत्व की उत्पत्ति होती है ।

क्षुधा व तृषा की दशा मे पोष्य वस्तु के न मिलने शरीरस्थ द्रव्यो के द्वारा शरीर यात्रा होती है अत. गौरव की हानि होकर लाघव उत्पन्न होता है ।

धूप के सेवन से व तीव्र वायु मे रहने पर भी शरीर से स्वेद निकल कर तथा शरीरस्थ द्रव का अधिक वायु द्वारा शोषण होकर शरीर मे लाघव उत्पन्न होता है। द्रव्यों के द्वारा जो लघुत्व की उत्पत्ति होती है वह भी स्पष्ट है कि—

लंघनं लघु भोजनं।

अल्पाहार लेने पर भी शरीर मे पूर्ण पोषक द्रव्य न मिलकर के शरीर कर्षण होने लगता है और लघुत्व की उत्पत्ति होती है।

आस्थापनम्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीरगत दोषो का सशोधन कर स्थिर बनाते है उन्हे आस्थापन कहते है।

चक्रपाणि—शरीर आस्थापयंति दोष सशोधनेन स्थिरी कुर्वन्ति इति आस्थापयानि। च० सू० अ० ४

क्रिया—आस्थापन वस्ति के द्रव्यो का प्रयोग शरीर से दोषो का अर्थात् विट–मूत्र श्लेष्म–पित्त–वात को निकाल कर शरीर का शोधन कर उसे स्थिर बनाता है। शरीर मे दोष जो मात्राधिक होकर इधर उधर कोष्ठ–शाखा व मर्म मे फैलकर व्याधि करते हैं उन सबो को निकाल कर शरीर को निरोग बनाता है। इस क्रिया से सुखवृद्धि, आयुवृद्धि अग्नि–मेधा–स्वर वर्ण की वृद्धि होती है। यह बाल वृद्ध युवक सबको समान रूप से हितकारी होती है। यथा—

वस्तिर्वय स्थापयिता सुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च।
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनां निरत्यय सर्वगदापहश्च।
विट्पित्त श्लेष्मानिलमूत्रकर्षी स्थिरत्वकृत शुक्रबलप्रदश्च।
विश्वक् लिप्त दोषचय निरस्य सर्वान् विकारान् शमयेन्निरूहः।

इसके द्रव्यो का प्रयोग वात प्रधान रोगो मे होता है। यह चरक ने सिद्धि स्थान मे लिखा है। यथा—

वातव्याधयो विशेषेण महारोगाध्यायोक्ताश्च,
एतेष्वास्थापनं प्रधानतममित्युक्तम्। च० सि० अ० २

द्रव्य—आस्थापनोपग–त्रिवृत, बिल्व, पिप्पली, कुष्ट, सर्षप, वचा, इन्द्रयव, शतपुष्पा, यष्टीमधु, मदनफल।

आस्थापन द्रव्य—चरक ने आस्थापन द्रव्यो को इस क्रमानुसार लिखा है जिनकी सूची बहुत विस्तृत है। मधुरस्कध, अम्लस्कध, लवणस्कध, कटुकस्कध, तिक्तस्कध, कषायस्कध के नाम से विमान स्थान मे सैकड़ो द्रव्यो का उल्लेख है। जो भी मधुर–अम्ल–लवण–कटु–तिक्त–कषाय रस वाले हैं सबका सग्रह है। अत. उनका विवरण देना यहा सभव नही है। विशिष्ट रूप से जो द्रव्य इन स्कधो से अधिक लाभप्रद समझे जाते हैं और सिद्धि स्थान मे जिनका उल्लेख है उनका कुछ सक्षिप्त विवरण दिया गया है। यथा—

बला, गुडूची, त्रिफला, रास्ना, पचमूल, यमानी, मदनफल, बिल्व, कुष्ठ, वचा, शताह्वा, नागरमोथा, पिप्पली, एरण्डमूल, अश्वगधा, अतिबला, पुनर्नवा,

आरग्वध, देवदारु आदि दोषानुकूल व बृहण व लेखन कर्मानुसार द्रव्यो की सख्या विभिन्न है। प्रधान वातहर का आस्थापन मे प्रयोग होता है उल्लेख किया है। यथा--

दोषानुसार आस्थापन बस्ति का प्रयोग--

	वात	पित्त	कफ
मधुरस्कध की औषधियो से निर्मित आस्थापन बस्ति	वातविकार मे घृत-तैल-मज्जा-फाणितलवण-मिश्रित	घृत-शहद मिश्रित	—
अम्लस्कध से निर्मित आस्थापन बस्ति	वातरोगी	—	—
लवणस्कध से निर्मित	काजी व तैल मिश्रित कर वातरोगी	—	—
कटुकस्कध से निर्मित	—	—	मधुतैल-लवण से कफ के रोगी
तिक्तस्कध	—	—	श्लेष्म रोगी
कपायस्कध	—	मधु घृतसे पित्तरोगमें	मधु-तैल-लवण से श्लेष्म रोगी

स्थापनम्--

पर्याय--स्थापन का अर्थ प्राकृतिक अवस्था मे ला देना होता है।

इसके सबध के शब्द--शोणित स्थापन, वेदना स्थापन, प्रजास्थापन, सज्ञास्थापन, वय स्थापन इत्यादि मिलने हैं जिनका अर्थ भिन्न भिन्न होता है। यथा--

शोणितस्थापन--शोणितस्य दुष्टस्य दुष्टिमपहृत्य प्रकृतौ शोणित स्थापयतीति शोणितस्थापनम् ।

अर्थात्--रक्त की दुष्टि को दूर कर जो द्रव्य रक्त को प्रकृतावस्था मे ला देता है वे शोणित स्थापन कहलाते हैं।

ऊपर की परिभाषा श्री चक्रपाणि दत्त की है। यह परिभाषा चरक के शोणित स्थापन के अर्थ मे भले ही ठीक उतर जाय किन्तु सुश्रुत की परिभाषा मे ऐसा नही होता। शोणितस्थापन--सुश्रुत ने बहते हुए रक्त को बद करने के लिये प्रयोग किया है और रक्त बद करने या स्थापन करने के चार क्रम लिखे हैं और--

शोणितातिप्रवृत्तिस्तंभनम्

ऐसा डल्हण ने अर्थ किया है। चार प्रकार रक्तस्तभन के लिखे हैं--

शोणितस्थापनं चतुर्विधम् सधान स्कदन चैव पाचन दहन तथा।

अत बहते हुवे को बद कर जो प्रकृतावस्था मे ला देवे या रक्त बद कर दें उन्हे भी शोणित स्थापन द्रव्य कहते हैं।

इन्दु में जो व्याख्या की है वह–शोणितवर्धन व रक्तस्राव रोधन दोनो अर्थ किया है। यथा––

- रुधिरस्थापन पुरुषस्य रुधिर वृद्धि स्थैर्यकरम् (इ०)

द्रव्य––शोणितस्थापनवर्ग––शहद, मधुयष्टि, केशर, मोचरस, मृतकपाल, लोध्र, स्वर्णगैरिक, प्रियगु, मिश्री, लाजा यह दस औषधिया चरक ने लिखी है।

सुश्रुत के मत से रक्त निर्गम को रोकने वाले द्रव्य––

१. तथातिप्रवृत्तरक्ते: रोध्र मधुक प्रियगु पतग गैरिक सर्जरस रसाजन शाल्मलीपुष्प शंख शुक्ति माष यव गोधूम चूर्ण.।

२ साल सर्ज अर्जुन अरिमेद मेषशृगी धव धन्वन अहिफेनत्वक्।

क्रिया––ऊपर के द्रव्यो की सूची का सम्यगावलोकन करे तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि कषाय रस प्रधान होने के कारण यह द्रव्य बाहर से लगाने पर शिरा–धमनी या मासमूत्रो का सकोच करके रक्तस्राव वद कर देते हैं।

२. रक्त मे कुछ द्रव्य उसके नष्ट गुणो को शुद्ध कर के या उसमे स्कदन की शक्ति बढाकर रक्त प्रवाहण रोक देते हैं। विशेष कर आभ्यतर प्रयोग करने पर–गैरिक मोचरस स्वर्ण गैरिक योग वाले आदि भीतर शरीर मे प्रविष्ट होकर रक्त मे मिलकर रक्तप्रवाह कम कर देते है। यह रक्त चाहे कही से आता हो।

सुश्रुत की वर्णित औषधिया प्रवाहित रक्त पर अवचूर्णन करने पर बाह्य प्रयोग द्वारा रक्त स्थापन करती है। उनमे बहुतसी भीतर प्रयोग करने पर भी रक्त स्थापन करती हैं।

इस प्रकार रक्त स्थापन हो जाता है। रक्तस्तभक वर्ग पृथक ही लिखा गया है। स्तंभन क्रिया की विशेषता के आधार पर यह होता है।

प्रजास्थापन––

परिभाषा–– प्रजोपघातकं दोषं हत्वा संस्थापयेद्धि यत्।
गर्भस्य पुनरावृत्ति प्रजासंस्थापनं हि तत्॥

जो द्रव्य गर्भाशय के सतान विना शकर दोष को नाश कर गर्भ स्थापन की प्रवृत्ति ला देते हैं उन्हे गर्भस्थापन या प्रजास्थापन कहते हैं। यथा––

चक्रपाणि––१ प्रजोपघातकं दोषं हत्वा प्रजास्थापयतीति। (चक्रपाणि) कई रोगो मे जैसे उपदश, उष्णवात या गर्भ के रोगो मे गर्भस्थापित होकर नष्ट हो जाता है। अथवा बच्चाउत्पन्न होकर मर जाता है। ऐसी दशा मे प्रजास्थापन औषधियाँ अपने प्रभाव से गर्भ के दोष को दूर करके पुन: प्रजोत्पत्ति की शक्ति प्रदान करती है।

द्रव्य––ऐन्द्री, ब्राह्मी, दूर्वा, शतावरी, लक्ष्मणा, हरीतकी, हरिद्रा, नागबला, महाबला, वाराहीकद यह १० द्रव्य चरक ने प्रजास्थापन गण मे पाठ किये है।

क्रिया—यह औषधिया गर्भाशय की विकृति व दुर्बलता को दूर करके उसे शक्ति प्रदान करते हैं और वह पुन: गर्भ धारण मे समर्थ होता है।

कषाय मधुर रसवाली शीत स्निग्ध औषधिया गर्भ के लिये बलप्रद होती है। यह गर्भाशय की कला वर्धन व उसकी कायपुष्टिकर प्रभावकर होती हैं। गर्भावस्था मे भी प्रयोग करने पर गर्भस्राव होने का भय नहीं होता। यह गर्भाशय को वदलने के साथ स्त्री के सर्वांग की पुष्टि व दोष का शोधन करती है।

वय:स्थापनम्—

परिभाषा—जो द्रव्य शरीर मे प्रभावकर तरुण वय को स्थापित करती है उन्हे वय स्थापन कहते हैं।

१ **वयस्तरुणं स्थापयतीति वय:स्थापनम्** (चक्रपाणि)

रसायन के प्रकरण मे देखिए।

विषघ्नवर्ग—

पर्याय—विषघ्नम्, विषप्रशमनम्, अगदम्।

परिभाषा— जो द्रव्य शरीर के ऊपर होने वाले विषो के प्रभाव को नष्ट कर देते है उन्हे विषघ्न कहते हैं।

नोट—स्थावर व जगम दो प्रकार के विषो का तथा खनिज विषो का विवरण मिलता है। इनके सेवन करने से भयकर लक्षण होते हैं और प्राणान्त हो जाता है। इनको दूर करने वाले द्रव्य विषघ्न कहलाते हैं। कुछ दोषो मे दोषो की विगुणता से शरीर मे विषाक्तरूप पैदा होकर–प्रलाप प्रसेक–मद–मोह –मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं वह भी विष के रूप मे सग्रहीत होता है।

द्रव्य—हरिद्रा-नाकुली–मजीठ, सूक्ष्मैला–त्रिवृत–चन्दन कतक (निर्मली) शिरीष-सिंधुवार–श्लेष्मान्तक यह १० चरक ने विषघ्न कहे है। (च.सू अ ४)

सुश्रुत ने आरग्वधादि लोध्रादि, अर्कादि, एलादि, पटोलादि, उत्पलादि अजनादि, त्र्प्वादि को विषघ्न गणो मे कहा है।

विष प्रशमन वर्ग मे सुश्रुत ने एकसर गण का उत्तर तत्र ६० मे प्रयोग लिखा है—यह जगम विष के लिए हैं—

एकसरगण— **सोमराजीफल पुष्प कटभी सिन्धुवारक।**
चोरको वरुण: कुष्ठ सर्पगधा स सप्तला ॥८४
पुनर्नवा शिरीषस्य पुष्पमारग्वधार्कजम्।
श्यामाऽम्बष्ठा विडगानि तथाऽऽम्राश्मन्तकानि च। ८५
भूमो कुरवकश्चैव गण एक सर: मृत ॥
एकशो द्वित्रिशोवाऽपि प्रयोक्तव्यो विषापह ॥ सु० कल्प ५

ऊपर के बताये गणो आरग्वधादि मे निम्न औषधिया प्राय आई है—

आरग्वध
मदन
कर्कोटकी
विककत
कुटज
पाठा
पाटला
मूर्वा
पत्र
नागपुष्प
प्रियगु
हरेणुका
व्याघ्रनख
मुक्ता
चण्डा
चन्दनश्वेत
स्पृक्का
उशीर
देवदारु
ककुभ
वेत्राग्र
लोध्रद्वय
पलाश
मुस्तक
अशोक
कटफल
एलवालुक

इन्द्रयव
सप्तपर्ण
निम्व
कुरटकद्वय
गुडूची
चित्रक
शार्गेष्ठा
करजद्वय
चन्दनरक्त
कटुरोहिणी
उत्पलश्वेत
उत्पलरक्त
कुमुद
सौगधिक
कुवलय
पुडरीक
जिंगिनी
कदम्ब
शाल
अर्कद्वय
नागदंती
आपामार्ग
रास्ना
इन्द्रपुष्पी
श्वेता
महाश्वेता
वृश्चिकाली

पटोल
किराततिक्त
एला
त्वक्
जटामासी
कुष्ठ
खस
तगर
स्थौणेयक
श्रीवेष्टक
वालक
गुगुल
सर्जरस
तुरुपक्
कुदुरु
अगर
ज्योतिष्मती
इगुदी
रसजन
नल्द
केशर
मवूक

———

७६

इनको यदि ध्यानपूर्वक विचारे तो यह ८० के करीब सारी औषधियां न तो स्थावर विष व न तो जगम विष का नाश करती है। बल्कि इनमे से कुछ संशोधन–कुछ सशमन, कुछ शारीरिक क्रिया को प्रसादन व अवसादन करके शरीर से विषदूरीकरण मे सहायक होती हैं। शारीरिक विष मे स्थावर-जगम व कीटाणु विष तथा व्याधिजन्य सब विषो का समन्वय है। अतः उनके द्वारा विष दूर करने की क्या विधि है। क्या क्रिया होती है जिससे विष दूर होता है विचारना है।

सामान्य रूप से विष मे १० गुण हैं जो शरीररक्षक ओज के १० गुणों को नष्ट कर शरीरोपघात कर देते हैं। [illegible] व्यवायी–आशुकर–लघु विकाशी–सूक्ष्म–[illegible] १० गुण है। ये [illegible]

पाकी होते है अत ओज के गुणो को नष्ट करते है। यह पहले धातुओं के सपर्क मे आते है फिर वहा से वातपित्तादि दोषो मे फिर मस्तिष्क पर प्रभाव कर शरीर नाश कर होते हैं।

विष की क्रियाशीलता के विषय मे–चरकसहिता मे निम्न विधि लिखी है--विष रूक्ष गुण से वायु–उष्ण होने से पित्त–अव्यक्त रस होने से श्लेष्म, सूक्ष्म होने से रस व आशुकारी होने से अन्नरस का अनुसरण करता है। व्यवायी विकाशी होने से सर्वत्र व्याप्त होता है। विशद, लघु व तीक्ष्ण होने से मर्मोपघात करके प्राणनाशक है।

इस प्रकार शरीर मे फैलकर विषमारक होता है। रक्त विषाधान है। इसमे व्याप्त होते ही सारे शरीर मे एक साथ व्याप्त हो जाता है।

विष--- लघु रूक्षमाशु विशद व्यवायि तीक्ष्णं विकासि सूक्ष्मं च।
उष्णमनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञै ॥ च० चि० २३।२४

क्रिया--- रौक्ष्याद्वातमशैत्यात् पित्तं सौक्ष्म्यादसृक् प्रकोपयति।
कफमव्यक्तरसत्वादन्नरसाश्चानुवर्तते शीघ्रम् ॥
शीघ्रं व्यवायि भावादाशु व्याप्नोति केवलं देहम्।
तीक्ष्णत्वान्मर्मघ्नं प्राणघ्नं तद्विकासित्वात् ॥
दुरुपक्रमं लघुत्वाद्वैशद्यात् स्यादसक्तगतिदोषम्।
दोषस्थानप्रकृती प्राप्यान्यतमं ह्युदीरयति ॥ २७
च० चि० २३।२५, २६, २७

अत विष रक्षा के लिये कई क्रम हैं जिससे दोष–धातु रक्षण, मर्म रक्षण व हृदय रक्षण किया जा सके।

विष के लक्षण—जगम विष—निद्रा-तन्द्रा–क्लम–दाह–पाक–लोमहर्षण शोफ–अतिसार आदि लक्षण प्रधान रूप से उत्पन्न करते हैं।

स्थावरविष—ज्वर–हिक्का, दतहर्ष–गलग्रह–फेन निर्गम, बमन–अरुचि–श्वास–मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं।

निर्णायक लक्षण--विष के ६ वेग होते हैं। एकैक धातु व दोषो मे प्रविष्ट होने पर भिन्न भिन्न लक्षण होते हैं। यथा—

प्रथमवेग—रसप्रदोषज–तृषा–दन्तहर्ष–प्रसेक–वमथु–क्लम–मोह।

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहं सपाकं लोमहर्षणम्।
शोफं चैवातिसारं च जनयेज्जंगमं विष ॥ १५
स्थावरं तु ज्वरं हिक्का दन्तहर्षं गलग्रहम्।
फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्च जनयेद्विषम् ॥ १६ च चि. २३

द्वितीयवेग–रक्तज–स्थानवैवर्ण्य– जृंभा–चिमचिमायन–भ्रम–वेपथु–मूर्च्छा भय ।

तृतीयवेग––मासज–मण्डल–कण्डू–श्वयथु–कोठ ।

चतुर्थवेग—दोषज–दाह–छर्दि–अंगशूल–मूर्च्छा ।

पंचमवेग	षष्ठवेग	सप्तम्वेग	अष्ठम्वेग
भ्रम	हिक्का	स्कध भग	मरण
तम			

ऊपर वाले लक्षण क्रमश या एक साथ भी हो जाते हैं। अत. इनके दूर करने के भिन्न भिन्न उपाय हैं।

स्थावर विष—आमाशय मे रहता है अत वमन द्वारा निष्काशन।

जंगम विष––दशस्थान मे रहता है अत दशस्थान शोधन करना।

क्रिया––अतः विषहरण प्रक्रिया मे इन औषधियो की क्रिया एक सी नही होती यह विभिन्न प्रकार से अपना कार्य करती है।

१. स्थावर विष–व औद्भिद विप मे औषधि उदर मे जाकर उसके प्रभाव को दूर करती है उसे विषघ्न कहते हैं।

यह दोनो प्रकार के विष उदर के आमाशय प्रदेश मे पहुचकर अपना प्रभाव दिखलाते है अत. स्थानीय क्रिया प्रधान होती है। यथा–वमन व शोधन।

१ **वमन**—आमाशय स्थित विष को वमन के द्वारा निकाल देना प्रक्षालन—आमाशयिक प्रक्षालन करके उसको बाहर निकाल देना।

२. दाहक व रासायनिक तीक्ष्ण पदार्थ होने पर क्रिया तीव्र न होने के लिए घृत–क्षीर या फाणित के साथ अन्य द्रव्य पिलाकर वमन कराना होता है।

३ आत्ययिक वस्तु सखिया–शीशे का चूरा आदि जैसे वस्तु के पिलाने पर घृत व पिच्छिल वस्तु पिलाकर वमन कराते हैं।

४ अम्ल (तेजाव) होने पर क्षारीय घोल भर कर आमाशय का प्रक्षालन करते हैं।

५ क्षारीय विष होने पर अम्लद्रव देकर प्रक्षालन करते हैं। इन विधियो का तात्पर्य केवल यह है कि जो द्रव्य आमाशय की स्थिति को दुष्ट कर रहा हो शीघ्र निकाल करके सत्वर शामक औषधि दी जाय।

विरेचन—१ औषधि के अन्त्र मे पहुचने पर विरेचन करके निकाल देना चाहिए।

२. शारीरिक कीटाणु विष या व्याधि जनित विप मे सशोधन पूर्वक शमन क्रिया करते हैं। शमन मे प्रभावहर द्रव्य होते है।

स्थावर विषो से कई लक्षण स्पष्ट होते हैं अत उनका विचार करके तब औषधि निर्णय करना चाहिए। यथा—

१ बलक्षय–तीव्र और अधिक मात्रा की औषधिया शीघ्र बलक्षय ला देती है। स्थावर विषो की अल्पमात्रा मे अत मे बलहानि होती है। उग्र विषो मे प्रथम ही लक्षण दिखाई पडता है।

२ मूर्च्छा–संन्यास—अहिफेन, तीव्रमद्य व सुरा आदि तथा क्लोरोफार्म के प्रयोग से मूर्च्छा आ जाती है तीव्र मूर्च्छा भी हो जाती है।

३. उत्तेजना— कई प्रकार के वानस्पतिक द्रव्यो मे उत्तेजना अत मे आती है। भाग, गाजा, खुरासानी अजवायन मे उत्तेजना अत मे आती है। मद्य मे प्रथमावस्था मे आती है। मादक द्रव्यो मे विवरण देखें।

४. शुष्कता–अहिफेन–गाजा–धत्तूर मे मुख सूखने लगता है।

५. नेत्र की विपरीत स्थिति–कई द्रव्यो से नेत्र की तारक सिकुड जाता है। यथा—अहिफेन।

कई विषो मे यह प्रसारित हो जाती है यथा—धत्तूर–एट्रोपीन तम्बाकू, खुरासानी, अजवायन आदि।

६ त्वचा विकृति–कई विष द्रव्य चर्म को सुखा देते हैं कई आर्द्र कर देते हैं ढीला बना देते है।

धत्तूर व बेलाडोना से त्वचा शुष्क होती है और अहिफेन व वत्सनाभ मे आर्द्र हो जाती है।

७ गध–कई द्रव्य खाने के बाद वैसा ही गध देते हैं। मुख मे शराब पीने पर शराब की गध व अहिफेन मे अफीम जैसी गध होती है। फास्फोरस से रसोनगधी मुख होता है।

८ वमन द्रव्य–विष खाने पर जो वमन होता है वह भी विष के निर्णय मे सहायक होता है। यथा—

१ तीव्र क्षोभक द्रव्य मे-रक्त मिश्रित काला वमन।
२ फास्फोरस मे–काली।
३ सखिया मे–काली।
४. ताम्र व तूतिया मे–हरा–नीला।

अत. स्थावर विषो का निर्णय करके सामान्य क्रिया प्रक्षालन–वमन या विरेचन के बाद विषघ्न द्रव्य देना चाहिए।

इस प्रकार विभिन्न विभिन्न प्रकार के गण जो विषघ्न लिखे गये हैं उनका प्रयोग यथाक्रम किया जाता है।

जगम विषो के निर्णयार्थ विभिन्न लक्षणो को देख कर चिकित्सा का उपक्रम करते है। यथा—

विशेषत सर्प विष मे निम्न होते है—

जंगम विष---इसमे लक्षण क्रमशः---

१ दतहर्ष-प्रथम लक्षण होता है। रोगी किसी बडी चीज चावल-यव-गोधूम का चर्वण नही कर सकता।

२. प्रसेक-मुख की धारकता शक्ति कम होते ही लालास्राव होने लगता है।

३. सज्ञा हीनता-सर्पदष्ट मे रोगी सज्ञाहीन होने लगता है अत शरीर की धारकता शक्ति कम होने लगती है।

४. वलक्षय-यह प्रारभ से ही होता है और धीरे धीरे अधिक हो जाता है।

५. मूर्च्छा-बेहोशी-यह दोनो अत मे प्रधान हो जाते है अत जंगम विष का उपचार और चिकित्सा स्थावर मे भिन्न होती है।

स्थानिक क्रम---१. पहले दश स्थान के ऊपर बध लगाना।

२. बंध के बाद क्षत कर के रक्त निकालना या आचूषण करना।

३. औषधि-प्रलेप, सेवन करना।

४ अत औषधिया जो ऊपर गण मे लिखी गई है उनका उपयोग विभिन्न प्रकार से होता है। लेप-प्रलेप प्रक्षालन बाह्य क्रम मे। तथा क्वाथ-चूर्ण-घृत-प्राश-अगद का सेवन आभ्यतर क्रम मे निर्दिष्ट है। इनके गणो के अनुसार प्रयोग भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न विषो मे होता है। इन औषधियो की क्रिया का विवरण निम्न है।

वामक— मदनफल-सप्तला-निम्ब-अश्मन्तक-सहचर-कटभी-सर्पगधा-जीमूतक-कृतवेधन- अरिष्टक-तुत्थ-ताम्र योग-यह सब वामक द्रव्य हैं। स्थावर विप को वमन क्रिया द्वारा निकालने मे सहायक होते हैं।

सहयोगी--द्राक्षा - आरग्वधमज्जा-मधुयष्टि- श्लेष्मातक-फाणित क्षीर-गुडादि मिलाकर या लवण व तिक्त रस की दवाये देकर वमन कराना चाहिए।

विरेचक -विरेचक औषधिया देकर आत्रगत द्रव्य निकालने मे प्रयत्न किया जाता है।

संशमन विषघ्न---

आयुर्वेद मे विषघ्न औषधियो का प्रयोग कई प्रकार से किया गया है। यह चरक ने विषोपक्रम मे २४ उपक्रम बतलाये हैं जिनमे कई औषधिजन्य उपक्रम है। यथा---

मंत्रारिष्टोत्कर्तन निष्पीडन चूषणाग्नि परिषेका ।
अवगाहरक्तमोक्षणवमनविरेकोपधानानि ।।
हृदयावरणाजननस्यधूमलेहौषधप्रशमनानि ।
प्रतिसारणं प्रतिविषं संज्ञासंस्थापनं लेप: ।।
मृतसंजीवनमेव च विंशतिरेते चतुर्भिरधिका ।
स्युरुपक्रमा यथा ये यत्र योज्या शृणु तथा तान् ।।

च० चि० २३-३५ से ३७

मंत्र--अरिष्ट (वधन) उत्कर्तन, निष्पीडन, चूषण-अग्नि परिषेक-अवगाह, रक्त-मोक्षण, वमन-विरेक-उपधान (शिरपर प्रच्छन पूर्वक औषधि लगाना), हृदयावरण, अजन, नस्य-धूम, लेह, प्रशमन औषध, परिसारण-प्रतिविष, सज्ञास्थापन, लेप-मृतसजीवनादि इस प्रकार यह २४ उपक्रम जो वतलाये हैं वह सव कुछ को छोड कर औषधि द्वारा ही होते हैं। अतः पूर्वोक्त औषधियो का उपयोग भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। कुछ लोग इन सारी औषधियो को निर्विष रूप रखना चाहते है। और सीधे सर्प व वृश्चिक विष के प्रतिकूल कर्म देखना चाहते है। इसी आधार पर कैयस व म्हस्कर ने इन औषधियो मे किसी का भी विषघ्न कार्य न पाकर विपहीन कहा हैं। किन्तु आयुर्वेद मे विपहारक २४ उपक्रमो मे से इनका उपयोग विभिन्न रूप से होकर विष शामक बनता है।

इनमे मत्र-वधन- उत्कर्तन-निष्पीडन, चूषण परिषेक-अवगाह-रक्त मोक्षण को छोड कर सव उपक्रम सशमन औषधि के रूप मे हैं। इनका प्रयोग भिन्न भिन्न रूप मे होता है। यथा---

जंगम विष में प्रारंभिक उपक्रम---

१ दशस्थान से ऊपर वेणिकावध (रस्सी से) करके उस पर प्रच्छन. या चीरा लगाकर निष्पीडन करके रक्त निकाल दें। दशस्थान को काटकर निकाल दें।

२. दशस्थान को चूषण कर वहा से विष निकाल दे।

३. प्रच्छन-शृग-जलौका द्वारा या वेधन द्वारा वहा का रक्त निकाल दें।

४ छेदित स्थान से रक्त बरावर निकलता रहे व विष निकल जाय इसका प्रयत्न करे इस निमित्त-

त्रिकटु-गृहधूम-रजनी-पचलवण-गोरोचन का घर्षण करने पर उस स्थान से रक्त जमना वद हो जाता है और रक्त निकलता रहता है।

५. दष्ट स्थान पर दग्धकर देने से विष फैलना बद हो जाता है अत. दशस्थान का त्वक् व मास दाह की विधि है।

६ हृदयावरण-विष रक्त से मिलकर आशु मस्तिष्क व हृदय पर प्रभाव डालकर मद-मूर्च्छादि उत्पन्न करता है। यह विधि सर्व प्रथम करना चाहिए। इस निमित्त-मधुपान-घृतपान-मज्जापान-गोमयरस-इक्षुरस-आत्मगुप्ता का रस-छाग मास या रक्त को पिला कर इससे बचने का प्रयोग करना चाहिए।

७ यदि विष स्थावर जाति का है तो पूर्व कथित प्रकार से उदरस्थ विष निकालने के लिये वमन करा कर निकालना चाहिए और यदि विष का वेग द्वितीय वेग मे हो तो विरेचन करा देना चाहिए।

८ हृदयावरण करना प्रथम कर्तव्य है।

९ तीसरा वेग हो जाने पर-क्षारागद का प्रयोग शोक हर द्रव्यो के साथ या मधु व जल के साथ।

१०. चतुर्थ वेग में।(१) गोमयस्वरस व कपित्थ रस के साथ मधु सर्पि देना चाहिए। (२) आश्च्योतन

११-१२. (३) अंजन (४) नस्य

यह शिरीष व आत्मगुप्ता के रस के द्वारा करना चाहिए या अन्य द्रव्य से।

११. पञ्चम व षष्ठ वेग में संज्ञास्थापन के प्रयोग।

१२. शरीर के बलाधान व विष नाश के लिये प्रयोग विभिन्न अगद द्वारा करना चाहिए।

नस्य--लेप-अभ्यंग-परिषेक-प्रदेह-अवगाहनादि-का प्रयोग विषहर औषधियों से यथा प्रोक्त चिकित्सक के निर्देशानुसार करना चाहिए। औषधार्थ अगद प्रयोग में जो सप्तम अष्टम वेग आने से पूर्व ही करना पडता है, विभिन्न कल्पों द्वारा करना चाहिए। यथा--गुटिका-क्वाथ-अवलेह-घृत तैलादि प्रयुक्त होते हैं। इनमें-अगद

(१) अमृतागद (२) मृतसंजीवन अगद (३) गंधहस्ति अगद (४) महागंधहस्ति अगद।

स्वेद--वात स्थान में-दधि-तगर-कुष्ठ मिलाकर पानार्थ देना व इनसे स्वेद देना।

पित्तस्थान में--घृत-मधु क्षीरपान-अम्बुपान - अवगाहन- सेक-स्वेद-सिराव्यधन यह कर्म करना आवश्यक है।

दूषी विष या रक्त स्थित विष में-रक्तस्रुति-वमन-विरेचन-नस्य-धूम पान-अंजन आदि का प्रयोग लाभप्रद है।

नस्य--नासा-कर्ण-अक्षि-कंठ-निरोध में नस्य देना चाहिए।

द्रव्य--वार्ताकु बीजपूर (बिजौरा) ज्योतिष्मती-कटभी व कट्फल का नस्यार्थ प्रयोग करना चाहिए। काकपद--विशेष दशा में--

काकपद--१ मूर्धापर काकपद करके चर्म कर्षा का एक तोले कल्क कर लगाना।

२ छाग-गव्य-कौवकुट मांस या महिष मांस लगाना।

अंजन--देवदारु-हरिद्रा-करवीर-करंज-निम्ब-तुलसी के रस का अंजन -गोरोचन-गोपित्त।

लेह--कोलास्थिमज्जा-अंजन-लाजा-उत्पल-मधु-घृत-विष खाने से वमन होने देवें।

धूमागद--(१) बृहतीद्वय बीज-आढकी पत्र की धूम व वर्तिका विषज हिक्का में लाभकर है।

(२) तगर-कुष्ठ-शिरीष पुष्प का घृत के साथ धूम।

औषधि गणों का निर्देश--चरक का विषघ्न वर्ग-दशेमानि का--

इस वर्ग की औषधियों का प्रयोग अगद-लेप-पानादि क्रम से विषहारक होते हैं।

अगद में-नाकुली-शिरीष-कतक-सिंधुवार।

रोगविष मे–मंजिष्ठा–त्रिवृत–सिंधवार–शिरीष–चन्दन–विरेचन–त्रिवृत

अन्नक्रिमिविष––हरिद्रा–चन्दन–सूक्ष्मैला–कतक–सिंधुवार

आरग्वधादिगण––रोगविप–जन्तुविष–रक्तगत विप व श्लेष्मप्रकोप मे

आरग्वधादिरित्येष गणश्लेष्मविषापहः ।

मोह कुष्ठ ज्वरवमी–कण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥ सु० सू० ३८

यह गण एलादि–रोगजनित विप–तथा स्थावर विपहर है ।

लेप––एक प्रदेह परिषेक व आभ्यतर प्रयोगो द्वारा विपशामक है ।

त्र्प्वादि गण––(१) इसमे– त्रपु– शीश – ताम्र – रजत – स्वर्ण– कृष्णलोह–प्रभृति है । उनका प्रयोग चिरकालिक रोग जनित शारीर विप की उत्पत्ति का प्रशमन करता है ।

(२) इनमे स्वर्ण–ताम्र यह स्थावर व जगम विप दोनो को शात करते हैं ।

अंजनादि गण––इसमे सौवीराजन–रसाजन–नागपुष्प–प्रियगु–नीलोत्पल–खस–पद्मकेशरादि है । यह पित्तस्थान गत विष सक्रमण को कम करते हैं ।

लोध्रादिगण––लोध्र–सावरलोध्र–पलाश – श्योनाक – फजी – कट्फल–एलवालुक–शल्लकी–जिंगिनी–कदम्ब–साल–कदली है । यह गण कफ स्थानगत विष वेग को दूर करने मे उत्तम है ।

लोध्रादि रित्युक्तो मेद. कफहरो गणः ।

योनिदोपहरः स्तंभी वर्ण्यो विषविनाशन ।

इनके अतिरिक्त विभिन्न रोगो मे व्यवहृत होता है ।

अर्कादिगण––अर्क–अलर्क–करजद्वय–नागदन्ती–मयूरक–भार्गी – रास्ना–इन्द्र पुष्पी–श्वेता– महाश्वेता–वृश्चिकाली–ज्योतिष्मती–इगुदी यह भी कफ व मेदगत विपवेग शामक है । तथा अन्य मे भी प्रयुक्त होते हैं ।

अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ।

कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ।

क्रिमिजविप कुष्ठरोग आदि का भी शामक है ।

उत्पलादि गण—पित्तस्थानीय विष वेग मे लाभप्रद है । विष के उदरस्थ प्रदाह मे प्रयुक्त होता है ।

पटोलादि––ज्वरकालीन विप–विपव्रण–कण्डू–ज्वर–पित्तरक्त व अरोचक नाशक है ।

पटोलादिर्गण· पित्तकफारोचकनाशनः ।

ज्वरोपशमनो व्रण्य श्छर्दिकण्डू विषापह. ॥

इस प्रकार विमल रूप मे इनका प्रयोग होता है ।

स्वेदापनयन

पर्याय––स्वेदापनय–स्वेदावरोधक, घर्मरोधक–घर्मावसादकर, स्वेदोपशोषण अनहार्दड्वाटिक्स–एन्टीहाईड्राटिक्स माने ऋअटक (पसीना रोकने वाला)

परिभाषा——जो द्रव्य अधिक स्वेद आने को कम कर दें या रोक दें उन्हे स्वेदापनयन कहते हैं। कई रोगो मे जब स्वेद प्रभूत मात्रा मे निकलता है तब इसका उपयोग करके रोकते हैं और शरीरोष्मा की मात्रा मे रक्षित रखते हैं।

द्रव्य——जो द्रव्य शीत गुण विशिष्ट होते हैं तथा जिनमे शीत–मन्द–मृदु–श्लक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव–स्थिर–गुण होता है वे भी स्वेदावरोधक क्रिया करते हैं। यथा——स्तभन।

औषधियां——खर्परभस्म–यशद भस्म, कपर्द भस्म, पद्मकाष्ठ, कुपीलु, उशीर, लोध्र–धतूरा, खुरासानी–अजवायन, सूचीबूटी, बेलाडोना, ब्रह्मदण्डी, वशंलोचन, सत्वगुडूची–लौहभस्म–अभ्रक भस्म, काजी, शुक्त, सीधु, शीतवस्त्राव गुठन, शीतपरिषेक, गधक द्रव, अवधूलन–व्यजन आदि–

पित्तसशमन गण–काकोल्यादिगण–सारिवादिगण–उत्पलादिगण- न्यग्रोधादि गण–तृणपंचमूल गण।

रस——अम्ल व कषाय रस युक्त औषधिया।

पित्त संशमन——चन्दन, रक्तचन्दन, ह्रीवेर, उशीर, मजिष्ठा, विदारी–शतावरी–शैवाल–कमल–कदली–दूर्वा।

घर्मोत्पादक जिन कर्मो का पूर्व मे वर्णन किया जा चुका है उनके विपरीत कार्य करनेवाली औषधियो को घर्मावरोधक कहते है। इस निमित्त निम्न लिखित औषधियो के वर्ग कर्मानुसार बनते है।

१. घर्मोत्पादक वातनाडी केन्द्र की उग्रता को शमन करने वाली इस क्रिया से रक्तवाही शिराओ के कर्म का अवसादन होता है। जितनी ज्वरघ्न और ताप ह्रासकर औषधिया है वह अधिकाश इस क्रिया को करती हैं। दुर्बलता क्षीणता से जब शीतल स्वेद बार बार आता है तो उसके अवरोधार्थ–लोहभस्म, प्रवाल, पंचामृत, कपर्द भस्म, द्राक्षारिष्ट, रससिंदूर (अल्प मात्रा मे) तथा अन्य पौष्टिक औषधियो का प्रयोग करते हैं।

२. चर्मस्थ नाडचत भागो की क्रिया का अवसादन करके इसके निमित्त खुरासानी अजवायन, धतूरा, ज्वरांकुश (धतूर बीज योग) का प्रयोग करते हैं। स्थानीय उपक्रम मे–शीत परिषेक–शीतवस्त्रावगुठन–आर्द्र आरनालसिक्त वस्त्रावगुठन, शीत द्रव्य सेवन–गधकद्राव के द्रव मे भिगोकर वस्त्र द्वारा प्रोक्षण इत्यादि शीत व्यजन–कदली–कल्हारादि वस्त्रावगुठन मणिमुक्ताप्रवालादि का स्पर्श व धारण धारागृह का सेवन, शीतगृह निवास आदि।

केन्द्राभिमुखी सावक नाडियो की उग्रता का शमन करा करके कई उग्र रोगो में नियतकाल मे स्वेदाभिनम भूरीभूरि मात्रा मे होता है यथा—राजयक्ष्मा स्वेदागम उषाकाल मे होता है। इस प्रकार की क्रिया के प्रशमार्थ–खर्पर भस्म –यशद भस्म–कपर्द व मुक्ताभस्म राजमृगाक–मृगाक आदि का प्रयोग करते हैं।

केन्द्राभिमुख प्रतिफलित होने वाली प्रत्यावर्तित क्रिया का अवसादन करके इसमे अम्ल मधुर रस मिले द्रव का उपयोग, हृल्लास–उद्वेग–भय–क्रोध

–चिन्ता का प्रशम के उपाय धतूर स्वरस–सूची बूटी सत्व का प्रयोग, शीतल उपचार, शीत व्यजन, स्थानिक शीत क्रियायें और उपचार।

दुर्बलता की अवस्था––चर्म एव शिरा शैथिल्य मे जब स्वेदाधिगम होता है तो पौष्टिक औषधियों के उपयोग से शात हो जाते हैं। छर्दिनिग्रहण जितने द्रव्य हैं वे भी स्वेद निवारक होते हैं।

पित्त प्रशमन वर्ग की औषधिया प्रायः स्वेदापनयन कर क्रियायें करती हैं।

विशेषरूप मे परिस्वतत्र नाडी मडल की नाड्यत भागो की उत्तेजना का अवसादन करके स्वेदापनयन करने मे कई औषधिया लाभप्रद हैं। उनमे धत्तूर स्वरस और एट्रोपीन की क्रिया शीघ्र होती है।

सावेदनिक नाडियो की उत्तेजना–उग्रता का ह्रास करके भी स्वेदापनयन की क्रिया का ह्रास होता है। इसमे स्थानिक शीतोपचार अधिक लाभ प्रद होता है।

कई औषधियो का प्रभाव घर्मोपरोधात्मक होता है–यथा चिरायता सप्तवर्ण–कुट्की–क्विनाईन– इन्हे शीत कषाय के रूप मे अल्प–मात्रा में देने से लाभ होता है।

तीव्र साघातिक रोगो में पित्त व वात की उग्रता से स्वेदाधिक्य प्रभूतस्वेद, शीतस्वेद, दौर्बल्य आदि उपद्रव तीव्रता से होते हैं उनके अवसादनार्थ वाह्योपचार शीत क्रिया द्वारा अवधूलन द्वारा और आभ्यतर प्रयोग पौष्टिक औषधियो द्वारा करते हैं। यथा––सन्निपात ज्वर मे प्रभूतस्वेद आने पर भिन्न अवधूलन करते हैं। इनसे स्वेदवह स्रोतसो की प्रणालियो का सकोच होकर स्वेद बंद हो जाता है। यथा – भृष्ट कुलत्थ चूर्ण, तुवरी चूर्ण, लोध्रत्वक चूर्ण, अडे की राख। दाह व ज्वरहर जितने शीतोपचार हैं वे सब स्वेदापनयन में सहायक होते हैं। यथा-–

प्रदेह अभ्यंग– अभ्यंगाश्च प्रदेहांश्च परिषेकांश्च कारयेत्।

यथाभिलाषं शीतोष्णं विभज्य द्विविधं ज्वरम्॥ च चि ३।२५६

सहस्रधौतं सर्पिर्वा तैलं वा चन्दनादिकम्।

दाहज्वरप्रशमनं, दद्यादभ्यंजनं भिषक्। चि. ३।२५७

मध्वारनाल क्षीरदधि घृत सलिल सेकावगाहाश्च।

सद्योदाहज्वरमपनयन्ति, शीतस्पर्शत्वात्।

पौष्करेषु सुशीतेषु पद्मोत्पलदलेषु च।

कदलीना च पत्रेषु क्षौमेषु विमलेषु च॥

चन्दनोदकशीतेषु शीते धारागृहेऽपि वा॥

हिमाम्बुसिक्ते सदने दाहार्तः संविशेत् सुखम्।

हेमशखप्रवालाना मणीना मौक्तिकस्य च।

चन्दनोदकशीताना संस्पर्शानुरसान् स्पृशेत्॥

स्रग्भिर्नीलोत्पलैः पद्मैर्व्यजनैर्विविधैरपि ।
शीतवातावहैर्व्यज्येचन्दनोदकवर्षिभिः ॥
नद्यस्तडागाः पद्मिन्यो ह्रदाश्च विमलोदकाः ।
अवगाहे हिता दाहतृष्णाग्लानिज्वरापहा ॥
प्रियाः प्रदक्षिणाचाराः प्रमदाश्चन्दनोक्षिताः ।
सान्त्वयेयुः परं कामैर्मणिमौक्तिकभूषणा ॥
शीतानि चान्नपानानि शीतान्युपवनानि च ।
वायवश्चन्द्रपादाश्च शीता दाहज्वरापहा. ॥

च. चि. अ. ३।२६०–२६६

मूत्रल---औषधियों का प्रयोग स्वेदग्रंथियों के कर्म को कम करके और वृक्क के कार्य को बढ़ा के स्वेदापनयन होती है ।

शीतल तैल--- चन्दनादि तैल अण्टकट्वर तैल
लाक्षादि तैल महाचदनादि तैल

कण्ठ्यम्---

परिभाषा---जो द्रव्य कण्ठ की विकृति को दूर करके उसे स्वस्थ व सबल बनाते हैं और कंठ के लिए हितकर होते हैं उन्हे कण्ठ्य कहते है । कंठ शब्द से कई अंगो का सामूहिक ज्ञान होता है यथा---स्वरयंत्र, गलपेशी, जिह्वामूलीय तालुमूल, गलतोरण, फाक्स आदि सब कंठ के क्षेत्र मे गिने जाते हैं । यह सब स्थान कफ के स्थान है अत जो पदार्थ सामूहिक रूप से इन अगो को लाभ पहुँचाते हैं कण्ठ्य के क्षेत्र मे आते हैं ।

द्रव्य---१. चरक का कण्ठ्यगण निम्न है ।

सारिवा, इक्षुमूल, मधुयष्टि, पिप्पली, द्राक्षा, विदारीकंद, महानिम्ब, हंसराज, कटकी क्षुद्रा व बृहती यह १० द्रव्य है ।

२. सुश्रुत ने निम्न गणो को कण्ठ्यम् कहा है ।

(१) वल्ली पंचमूल–(विदारी, अनन्त मूल, हरिद्रा, अमृता, मेषशृंगी)

(२) कंटकी पंचमूल (करमर्द–गोक्षुर–कृष्णसहचर-शतावरी-व्याघ्रनखी)

(३) पिप्पल्यादि गण (पिप्पली–पिपलामूल – चव्य–चित्रक नागर–त्रिफला, त्रिकटु)

(४) बृहत्यादि गण (बृहतीद्वय–इन्द्रयव–पाठा–मधुयष्टि)

(५) मुष्ककादि गण

(६) सुरसादि गण

इनके अतिरिक्त---खदिर, वंशलोचन, लवग, आर्द्रक, जायफल, लशुन पलाण्डू, बदरी–बला–शिलाजीत, लवणस्फुटिका, कुलिंजन–वच आदि द्रव्य भी

---

१. कण्ठाय हितम्–कण्ठ्यम् । चक्र
२. कण्ठस्थित स्वरापहितम् कण्ठ्यम् ।

कंठ के लिये हितकर है । सिद्धान्तरूप में स्निग्ध–कषाय–मधुर तीक्ष्ण व उष्ण द्रव्य कण्ठ्य होते हैं ।

कंठ की कार्यहानि कई रोगों में हो जाती है यथा—श्वास कास–यक्ष्मा–कंठरोग–वृंद–एकवृंद आदि में । कई औषधियां व द्रव्य अधिक सेवन करने पर कंठ के लिये हानिकारक हो जाते हैं । यथा—पारद व सिंदूर ।

आहार–विहार–निद्रा–अव्यायाम–मधुर–अम्ल–लवण–क्षार–स्निग्ध–गुरु–पिच्छिल–अभिष्यंदी द्रव्य तथा माष–तिल–गोधूम–पिष्ट–अनूपमांस का अधिक सेवन व अम्लद्रव्यों का करमर्द, बदर, क्षार–आम–कपित्थ–आदि का सेवन हानि कर होता है ।

अतः कण्ठ्य औषधियों का प्रयोग पूर्वोक्त औषधियों द्वारा संयुक्त रूप में या दो चार या अकेले भी युक्तिपूर्वक प्रयोग करने से लाभप्रद होते हैं ।

स्निग्ध द्रव्य—१. वात दोष में सलवण तैल का प्रलेप ।

२ सर्पि समाक्षिकम् (पित्त दोष में)

३ कफज दोष में सक्षार–कटुक द्रव्य क्षौद्र युक्त कवल धारण करने में लाभप्रद होता है ।

योग—१. चव्यादि चूर्ण–मधुयुक्त

२ पंचकोल चूर्ण–सक्षार मधुयुक्त

३. कवल–१ हरीतकी–स्फुटिका मिश्रित द्रव्य

२ बबूल क्वाथ व स्फूटिका युक्त

४ लेह–१ कल्याण लेह–वचा हरिद्रा, कुष्ठ–पिप्पली, शुंठी, अजाजी अजमोद–यष्टीमधु–सैंधव–घृतेन

२ वासावलेह–कफज में

३ व्याघ्री हरीतकी–सब प्रकार में १ तोला

४. अपराजिता लेह

५. घृत–व्याघ्री घृतम् १ तो

चूर्णों में— १ मरिचादि चूर्ण–मरिच–यवक्षार–गुड

२ तालीसादि

३ सितोपलादि

कंठ लेप— ४ टंकणाम्ल–मधु

५ मधुस्फुटिका

६. धन्वन्तरि लेप–शिलाजतु–२ तो, शुभ्रा १ तो, मधु २० तो हरीतकी–२ तो परिश्रुत जल १ पल–मिलाकर कंठ प्रलेप

स्थानीय प्रयोग में केवल–गण्डूष में कषाय रस वाले द्रव्य चूर्ण कल्क व कषाय का धारण लाभप्रद है ।

अभिष्यंदी (स्यन्दू–प्रस्रवणे) + अभि

परिभाषा—जो द्रव्य दोषधातु व मलवाही स्रोतसों में विषमता बढ़ाकर उनका मार्ग अवरोध कर गुरुता बढ़ा देते है उन्हें अभिष्यंदी कहते हैं । यह द्रव्य पिच्छिल व गुरु होते हैं ।

पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्य रुध्वा रसवहाशिरा ।
धत्ते यद् गौरव तत् स्यादभिष्यंदि यथा दधि । शा प्र ख ४

२. अभिष्यंदी दोषधातु मलस्रोतसां क्लेदप्राप्ति जननम् ।

डल्हण सु सू अ ४६।५

अर्थात्—जो द्रव्य अपनी पिच्छिलता–गुरुता-आदि गुणो के द्वारा रसवाही शिराओ के अवकाश को भरकर कार्यावरोधकर गुरुता वढा देते है, उन्हे अभिष्यदी कहते है । ऊपर का विचार शार्ङ्गधर का है । किन्तु सुश्रुत केवल रसवाही शिरा मे ही गौरव प्राप्ति को अभिष्यदी नही मानते,वे दोषवह, धातुवह व मलस्रोतसो मे क्लेदन करने वाले द्रव्य को अभिष्यदी मानते हैं । चरक मे भी अभिष्यदी की परिभाषा डल्हण की तरह योगेन्द्रनाथ सेन ने की है । वह भी दोषधातु–मलवह स्रोतसो को क्लेदित करने वाले द्रव्य को अभिष्यदी मानते हैं ।

अत: परिभाषा मे शार्ङ्गधर की परिभाषा माने तो रसवहाशिरा तक सीमा रहती है । किन्तु चरक व सुश्रुत के टीकाकारो मे योगेन्द्रनाथ व डल्हण दोषधातु व मलवाही स्रोतसो तक इसके प्रभाव को मानते है । सेवन करने के पश्चात् इनका प्रभाव केवल आन्त्रस्थ रसवाही स्रोतसो तक ही नही रहता, यहा से यह आगे जाकर रक्त मास आदि वहन करनेवाले स्रोतसो मे भी पहुचते है और गौरव दिखलाते है ।

अत पिच्छिल व गुरु द्रव्य जो क्लेदवर्धक होते है अभिष्यदी होते हैं । चरक ने अभिष्यदी द्रव्यो मे प्रधान लिखा है । यथा—

मंदकं दधि अभिष्यद जननानाम् । च सू अ २५

अत. स्पष्ट है कि केवल रसवहाशिरा तक ही इसकी सीमा नही रहती अपितु अन्य स्रोतसो तक पहुचते हैं । डल्हण की विचारधारा यहा उचित है ।

द्रव्य—नवधान्य, पिष्टी–पिण्याक–श्लेष्मातक–मुसली–तालमखाने–तथा निर्यासो मे–बिहीदाना–गोद बबूल–गोदकतीरा–मन्ददधि–बर्बरी बीज, तोदरी–सालम–गावजवा–दलारवक–बीजवहे, ईसबगोल–अष्टवर्ग द्रव्य–गोक्षुर–परुषक–रसोन ।

आहार—पायस–स्निग्ध आहार द्रव्य, माष-राजमाष, केला–अडे, चिल-चिलचिमत्स्य–दधि–पनस-भिण्डीतकी अरुई–वदर

क्रम—जिनमे अभिष्यदी द्रव्य है आमाशय मे जाकर पचित होकर रस मे मिलकर अपने स्वाभाविक गुण गुरु–पिच्छिल–स्निग्ध–गुण वाले अशो से आहार रस मे गुरुता–पिच्छिलता व स्निग्धता युक्त अश को प्रदान करते है । यह विभिन्न रस व रक्तवाही स्रोतसो मे जाकर के पहुचते हैं और गौरव धारण करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं उन्हें अभिष्यदी कहते हैं ।

आहार रस से स्निग्ध व पिच्छिल तत्ववाले पदार्थ मिलकर रसवाही स्रोतसो मे जाकर गुरुता उत्पन्न करते है देर मे पचते है । पुन जब रक्त मे जाते हैं तब तो सर्वांग मे गौरव उत्पन्न करते हैं ।

इनकी उपस्थिति मे स्रोतसो मे क्लिन्नता की मात्रा बढ जाती है और अधिक क्लिन्नता होने पर गौरव का अनुभव होता है। कफ के गुणो से मिलते जुलते गुण होने के कारण यह श्लेष्मवर्धक होते हैं।

प्रयोग—१ आन्त्रप्रदाह, आन्त्रव्रण होने पर अतिसार व प्रवाहिका मे इस द्रव्य का प्रयोग करते हैं।

२ विष भक्षण मे या रक्त पित्त के प्रदाह मे पित्तजन्य प्रदाह मे इसका प्रयोग होता है।

३. भस्मकरोग मे गुरु अभिष्यदी गुणवाले द्रव्यो का प्रयोग होता है।

४. व्यवायी व विकाशी द्रव्यो के सेवन मे जब अतर्दाह होता है तब भी इसको देते हैं। मद्य–सुरा आदि के सेवन से जब प्रदाह होता है तो इनका प्रयोग विभिन्न द्रव्यो के साथ करते है।

५ काच विष या धातु विष के खाने पर दूध के साथ अडे–तालमखाना–या ईसबगोल मिलाकर पिलाते हैं और रक्षा करते हैं।

६. अन्य किसी प्रकारके उष्ण–तीक्ष्ण–व्यवायी–विकाशी–द्रव्य की अति मात्रा सेवन होने पर इसका प्रयोग सशलता पूर्वक किया जाता है।

दन्त्य (Denterific)

पर्याय—दन्त्य–दतरक्षक– दतदाढ्र्यकृत दतवलकरम् दतशोधन दतहर्षप्रमर्दन दंतरक्षक	दन्त्य औषधियो के निम्न लिखित पर्याय होते हैं

परिभाषा—जो द्रव्य दातो के लिये हितकारक हो उन्हे दन्त्य सज्ञा दी जाती है। इसमे कई प्रकार के दत हितकर भाव मिश्रित हैं। दातो को हितकर दंतमूल को हितकर, दतमास (मसूडो) को जो द्रव्य लाभप्रद हो वह सब दन्त्य कहे जाते है। इनके अतिरिक्त–मुखवैशद्यकारक, मुखवैरस्यनाशन, मुखशोधन, मुखधावन, यह क्रम भी दातो के लिये हितकर होते हैं। क्योकि दत का स्थान मुख है। मुख स्वच्छ हो तो दत स्वच्छ रह सकते हैं। मुख दुर्गन्धित हो तो दत भी अस्वस्थ हो सकते हैं।

दन्त औषधियो को निम्न भागो मे बाटा जा सकता है—

१. दन्तशोधन–दातो को शुद्ध करनेवाली औषधिया

२. दंतवलकरम्–दातो को वल देने वाली औषधिया

३ **दंतदाढर्यकृत**—दात के मसूढो को दृढ करने वाली (दंतवेष्ट, दतमास, दृढकृत) औषधिया

दतशोधन—इसमे मुखशोधन, मुखवैशद्यकर, मुखदौर्गन्ध्यहर औषधिया भीसम्मिलित हैं जिनमे प्रधान—

मुखदौर्गन्ध्यहर—जातिपत्री, जायफल, त्वक, ककोल, कर्पूर युक्त चर्ण, त्रिफला, त्रिकटू, यवक्षार, सैंधव, रसाजन, तेजोपती—पान आदि का चूर्ण।

मुखवैशद्यकर—मुखगत—दुर्गन्धि व व्रण—वैरस्यकारक

१. सप्तच्छद—उशीर—पटोल—नागर मुस्त, हरीतकी, मधुयष्टी— आरग्वध चन्दन का क्वाथ।

२. तेजोवती—वचा—कुष्ठ—लोध्र—जाती—खदिर—बकुल।

दौर्गन्ध्यहर—शोधन—३. सेलखरी (खटिका) कोयला—गैरिक—स्फटिका—कर्पूर—तेजोवल—ककोल—लोध्र—त्रिफला।

दंतशोधन क्रिमिनाशक—मन.शिला—हरिताल—सैधव, दार्वीरसाजन, यवक्षार—कर्पूर—काशीश—त्वक—लवग—ककोल—आकारकरभ—तुत्थ—पिप्पली—तेजोवल—सौभाग्य—जातिपत्री—नीलगिरी तैल।

दंत्य—दंतबलकर—खदिर—इरिमेद—लोध्र—हरीतकी—मायाफल—बकुलत्वक—क्षीरीवृक्ष, क्रमुक—आर्तगल—तिल—वचा—मुस्ता—पत्तंग—लाक्षा—मधुयष्टि।

दंतशूलहर—१ लवग तैल—हिंगु—नरसार—पिपरमेट—थायमल—(अजवायन का फूला)—कर्पूर—क्षुद्राबीज धूम।

२. कालकचूर्ण—हरीतकचर्ण ३ दतार्तिहर चूर्ण

दंतक्षय—मांसक्षय—अधावन—अशोधन—अप्रक्षालन।

दंतधावन—अर्क – न्यग्रोध – खदिर – करज – क्रमुक—निम्ब—महानिम्ब—अपामार्ग—तेजोवल—आम्र—जम्बु— कदम्ब—बबूल आदि जो रस में कटु—तिक्त—मधुर व कषाय रस वाले हैं।

दंत उज्वल करणार्थ—खट्टिक—कोकिला—टकण—गैरिक—सैंधव—स्फटिका—यवक्षार—नागर—मरिच।

मुखदोषहर—अ० हृदय—क्वाथ
सप्तच्छद—उशीर—पटोल—मुस्त—हरीतकी – कटुरोहिणी—यष्टी—आरग्वध—चन्दनादि क्वाथ।

दंतमंजन (चरक)—तेजोवत्यादि चूर्ण या घर्षण

चरक—१. तेजोवल—अभया—एला—समगा—कटुकी—नागर—मुस्तक—पाठा—ज्योतिष्मती—लोध्र—कुष्ठ—हरिद्रा—दारुहरिद्रा।

२. कालकचूर्ण—गृहधूम—यवक्षार—पाठा—व्योष—रसाजन—तेजवल—त्रिफला—लोध्र—चित्रक (कवल—धारण)

३. पीतकचूर्ण—मन.शिला—यवक्षार— हरीताल—सैधव—(कवल + मजन) त्वक्। ४. खदिर तैल। ५. खदिर गुटिका।

सुश्रुत—चलदंत—भद्रमुस्तादि गुटिका।

अ० हृ०—चलदत—इरिमेदादि गुटिका।

वृ० यो० तरंगिनी—मुस्ताप्रियंगुत्रिफला—वासालोध्रपुनर्नवाः।

निःक्वाथ्यतत्कषायेण—कंठेनास्ये विधारयेत्

बहिर्लेप— कारस्करस्थूलजीर—कुष्ठ—शुण्ठी—कटुत्रिकै.।

मूत्रपिष्टैर्बहिर्लेप शस्तः शोथरुजापहः।

कुष्ठादि चूर्ण—दौर्गन्ध्य–दंतव्यथा–कण्डू

कुष्ठं दार्वी लोध्र समगा पाठातिक्ता तेजनी पीतिका च
एषां चूर्णं घृष्टमाशुद्विजाना–रक्तस्रावं हन्ति कण्डूं रुजं च

जातिपत्रादि चूर्ण–श्वयथु–रुक्–कण्डू–क्रिमि

जातीपत्र पुनर्नवा गजकणा कोरण्ट कुष्ठं वचा
शुण्ठीदीव्यहरीतकी ति च समं श्लक्ष्ण मृश चूर्णयेत ।
तच्चूर्णं वदने धृते विजयते दौर्गन्ध्य दंतव्यथा
चौचल्यं त्वमतिव्रण श्वयथुरुक् कण्डूक्रिमि व्यापद ।

कणादि चूर्ण– कणासिन्धूत्थजरण चूर्ण
(चौचतो-शोथ–रक्तस्रावहरे)

जीरकादि चूर्ण–जरण लवण पथ्या शाल्मली कंटकानां–मनुदिनमनुघृष्टं
दंतमूलेषु चूर्णम् । व्रण दरण रुगस्र स्राव चांचल्यशोथा–
नपनयति विनस्वानन्धकारा निचाशु ।

दंतचाल— दशमूलीतैल–लोध्रादितैल–सहचराद्यतैल

चरक–कवलसंग्रह—		
पिप्पली	तेजोवती	सक्षौद्र–
अगुरु	रसाजन	सीधु–माध्वीक से
दार्वी	पाठा	कवल धारण
त्वक्	पथ्या	
यवक्षार	समानभाग का चूर्ण	

२. दंतघर्षण- दंतमंजन | तेजवल–अभया, एला, समगा–कटुकी–नागरमुस्तक पाठा–ज्योतिष्मती–लोध्र–दारुहरिद्रा–कुष्ठ–इनका चूर्णकर दंतमंजन की तरह घर्षण करने से रक्तस्राव, कण्डू, रुजा इनको दूर करते हैं ।

कालकचूर्ण—	
गृहधूम – रसाजन यवक्षार – तेजवल पाठा – त्रिफला व्योष – लोध्र चित्रक लाभ–दन्तास्यगलरोगनुत् ।	इसको समान भाग लेकर चूर्ण वनाकर सक्षौद्र धारण करना अथवा मजन की तरह मलना ।

पीतकचूर्ण–	
मन शिला यवक्षार हरिताल सैंधव दार्वी त्वक्	१ इनका चूर्ण क्षौद्र सहित मजन करने २. कवलधारण करने से मुख-शोधनम्

खदिरादि गुटिका–मुखरोगं–आस्यदौर्गंध्य

दंतास्यगलरोगेषु सर्वेष्वेतत्प्रयुज्यते ।

सुश्रुत–दंतमूलगत–शीताद––१. गण्डूप–१ नागर–सर्षप के क्वाथ मे त्रिफला–नागरमोथा–रसाजन मिलाकर–गण्डूषधारण।

२. प्रलेप–प्रियगु. मुस्ता–त्रिफला।

दंतपुप्पुट––१ रक्तमोक्षण

२. प्रतिसारण–पचलवण–क्षार व क्षौद्र प्रतिसारण

दंतवेष्ट––१. विस्रावण | रोध्र–पतग–मधुयष्टि–लाक्षाचूर्ण–मधुसहित
२. प्रतिसारण |

३ गण्डूप–क्षीरीवृक्ष

४. नस्य – काकोल्यादिगण सिद्ध घृत नस्य।

शौषिर––१. रक्तमोक्षण

२ लेप–रोध्रमुस्तरसाजन ३. गण्डूष–क्षीरीवृक्ष

दंतवैदर्भ––१ दतमूल शोधनम् २ क्षार प्रयोग

क्रिमिदंतक––१ अधिमासच्छेदन

२ कवल–चत्रातेजोवतीकाष्ठ–यवक्षार–सर्जिकाक्षार, पिप्पली –सक्षौद्र

३ धावन–१. पटोल–त्रिफला–निम्ब–कपायाश्चात्रधावन

२. जाति–मदन–कटुकी–खदिर–सेमल के कटक

३. यष्टी–रोध्र–मजिष्ठा–खदिर

४ शोधन तैल––ऊपर के औषधियो द्वारा यह तैल दत नाडीव्रणहर है।

चलदंत–– १. भद्रमुस्तादि गुटिका भै० र०

१ भद्रमुस्ता | गोमूत्र विष्टा गुटिका–छायाशुष्का
२. अभया |
३. व्योप |
४. विडग |
५. निम्बपल्लव |

२. बकुलत्वक् चर्वण

दंतपवन––करज–करवीर–अर्क–मालती–ककुभ–अशन

दंतचाल––१. बकुलत्वक् २. आर्तगल दलक्वाथ ३. तिल–वचा चर्वण

नस्य––४. विदार्य्यादितैल–विदारी–यष्ठीमधु–शृगाटक–कशेरुक – दशगुणक्षीर सिद्ध तैल।

दंतकटकटायन––१. कर्कट शृगी–मूल–क्षीरपक्वघृताभ्यग

२. कर्कट मूल–लेप

३ कर्कट शृगीमूल को क्षीर करके घन होने पर पाद लेप।

४ कृष्णवर्ण के अश्वपुच्छ के ७ केश की वेणी धारण करने मे दात कटकटाना बद होता है।

अष्टाग हृदय–मुखशोधन–दत नैरोग्यकर–

हरीतकी सेवन––गोमूत्र दवथन त्रिलीन विग्रहाणां पथ्यानां जन्मिथि कुष्ठ भावितनाम् अत्तार नर मणवोऽपि वक्र रोगा श्रोतार नृपमित्र न स्पृशन्त्यनर्था:

पूतिमुख––१. वमन २ धूम ३. नावन

शोधन धावन––समंगा धातकी लोध्रफलिनीबगे शृतं जलम् ।

धावन वदनस्यात्र चूर्णितैर वचूर्णनम् ।।

नीलिकाहर–उद्वर्त्तन–प्रपुन्नाड | इनके द्वारा उद्वर्त्तन व्रग नीलिकाहर
रोध्र
दार्वी

चलदत––सहचरतैल–नीलसहचर क्वाथ से (१०० पल–१० घट जल मे)

खदिर–जम्बू–यष्टी – अनता–आम्र–अहिनार–नीलोत्पल–आवापल ।

चलदतपक्ति ।

इरिमेदादि गुटिका––खदिर–इरिमेद–का घन क्वाथ–

नागर–पत्तग–गैरिक–चन्दनद्वय–रोध्र – पुण्डरीक–यष्ठी – लाक्षा–अंजन–धातकी–कटफल–निशा दारुहरिद्रा–त्रिफला–चतुर्जात–जोगक–मुस्त– मजिष्ठा–न्यग्रोधप्ररोह–जटामासी–यवासक–पद्मक – एला–जातिपत्री – जातीफल–लवंग–ककोल–एला–कर्पूर–मिलाकर गुटिका–

दंतार्तिहर चूर्ण––पाठा–दार्वी–त्वक्–कुष्ठ–मुस्ता–समगा–तिक्ता –पीतागी –रोध्र–नेजोवतीभम्चूर्ण. –सक्षौद्रो–दत मासार्तिकण्डू पाक स्रावाना नाशनो घर्षणेन ।

मुखदोषहर––सप्तच्छदोशीर – पटोलमुस्त–हरीतकी– तिक्तक–रोहिणीभि ।यष्ट्याह्व राजद्रुम–चन्दनश्च–क्वाथ पिवेत्–पाकहर मुखस्य ।

दुर्वलद्विज––खदिरायो वटाक्वाथो मदयन्त्यहिमारकै:

गण्डूषे म्मुवश्रृतोधाया–दुर्वलद्विजशांतये ।

हृद्यम् (Cardiac Tonic)

परिभाषा––जो द्रव्य हृदय के लिए लाभप्रद हो उसे हृद्य कहते हैं । हृदय शब्द कुछ लोग हृदय और मन दोनो को शक्ति प्रदान करने वाला द्रव्य मानते हैं यथा––

हृदयाय मनसे हितम् (गगाधर–योगेन्द्र)

हृदयाय हितम् हृद्यम् (चक्रपाणि)

हृद्यम्––हृदय एक मासकृत प्रकोष्ठ है, इसमे आकुचन व प्रसारण की क्रिया होती है । अत जो औषधिआकुचन की शक्ति बढाकर नाड़ी को वलवती कर देते हैं । इसक्रिया मे नाडी की गति पर कोई प्रभाव नही पडता । पुनश्च––

वे द्रव्य जो हृदयाकुचन के साथ नाडी गति वलवती वनाकर, हृदय की गति व नाडी गति को तीव्र करते हैं वे भी हृद्य कहलाते हैं । आधुनिक मत से यह हृदयोत्तेजक व हृत्प्रसादक कहलाते हैं ।

परिचय—हृदय मांस पेशियो का वना हुवा एक प्रकोष्ठ है जिसमे नाड़ी तन्तु विशेष मात्रा मे पाये जाते हैं। अतः इसकी क्रिया स्वत एक नियमित क्रम (Rhythmical movement) मे चालित होती है। इसमे कई नाड़ी कन्द व सूत्र होते हैं जिनकी विशिष्ट क्रिया से हृदय गति चालू रहती है। यह क्रिया स्वतः शैरीयकोण (Sinus Venosus) से प्रारभ होकर नीचे अलिन्द व निलय मे होती हुई हृदयाग्र तक पहुचती है। हृद्पेशी सूत्रो की आकुचन क्रिया प्राणदानाडी (Vagus) व सावेदनिक नाड़ी (Sympathetic nerve) द्वारा सचालित होती है।

हृद्गति—हृदय की गति पर स्वतत्र नाड़ी मडल का नियंत्रण रहता है। इसके साधक दो केन्द्र हैं।

१. गतिप्रसादक या वृद्धिकर केन्द्र (Accelerator Centre)
२. अवसादक या गति हीनकर केन्द्र (Inhibitor Centre)

यह केन्द्र सावेदनिक (Sympathatic) एव उपसावेदनिक (Para Sympathetic) दोनो नाडी स्थानों मे पृथक पृथक होते है। इनमे प्राणदा नाड़ी केन्द्र कन्द या नाड्यत भागो मे उत्तेजना मिलने पर गतिमंद होती है और साम्वेदनिक नाडी केन्द्रो पर उत्तेजना मिलने से गति वढ जाती हैं।

यह कहना कठिन है कि कौनसी औषधि हृदय की पेशी पर और कौन हृदय की नाड़ियो पर कार्य करती है कभी एक ही औषधि दोनो कार्य करती है कभी नही। अत. इनका सागोपाग विवरण आगे करते हैं–

आवश्यकता—

हृद्य औषधियों की आवश्यकता हृदय के ऊपर प्रभाव डालने वाले कई हेतुओ से होकर उसे दुर्वल वना देते हैं। यथा–

सुश्रुत के मत से—१. अत्युष्ण, गुरु अन्न का सेवन–मद्यादि
२. कषाय तिक्त रसाति सेवन
३. श्रम–अभिघात
४. अति स्त्रीप्रसग–अध्यशन
५. अतिचिन्तन
६. वेगविधारण

तथा–१. तीव्र व आशुकारी व्याधि ज्वरादि
२. आमवातिक ज्वर
३. पाण्डु
४. शुक्रक्षय
५. मानसिक आघात
६ हृदय के प्रकोष्ठो की दुर्वलता व अनियमित क्रिया। अतः इन अवस्थाओ मे हृद्य औषधियो के प्रदान करने की आवश्यकता होती है।

---

१. (१) अत्युष्ण गुर्वन्न कषायतिक्त श्रमाभिघाताध्यशन प्रसङ्ग'।
संचिन्तनैवेग विनिग्रहैश्च हृदामया. पंचविधः प्रदिष्ट। सु०
(२) व्यायामतीक्ष्णाति विरेक वस्ति, चिन्ताभयत्रास गदातिचाराः।
छर्द्यामसंधारण कर्शनानि हृद्रोग कर्तृणि तथाऽभिघातः।
च० चि० २६

द्रव्य–हृद्रोग–१. अम्बादिगण–बग–नाग–ताम्र–रजत–स्वर्ण–लौह–मण्डूर

हृद्रोग––२ उत्पलादिगण–उत्पल–रक्तोत्पल–कुमुद–सौगंधिक–कुवलय–पुडरिक–मधुयष्ठि

हृद्य––३. परुषकादिगण–परुषक – द्राक्षा–कट्फल– दाडिम–राजादन–कतकफल–शाकफल–त्रिफला

हृद्रोग––४ वृहत्यादिगण–वृहती–कटकारिका–कुटजफल–पाठा–मधुयष्टि तथा अन्य।

कुपीलु, सखिया, कस्तूरी,अम्बर, कर्पूर, आमलकी, अगुरु, सूक्ष्मैला, अनारका रस तथा–लताकस्तूरी (राज. नि), रक्तचन्दन (मदन), लवग (गण नि.) जातिफल (भा प्र.), ककोल, दालचीनी, तेजपत्र, तालीस, शुण्ठी,–आर्द्रक–मेथिका, यमानी कृष्णाजाजी, आर्द्र–धान्याक (शोढल)

हिंगु (रा. नि), नाड़ीहिंगु, कुलिजन, आरग्वध, कटुकी, बाकुची, (भा.) चक्रमर्द, बिल्व, काश्मरी, रक्तपाटला, बृहती वासक, निम्ब, महानिम्ब, शोभाजन, वत्सनाभ, चव्य, सीताफल, पाटा, कमलपुष्प, पर्पट, बालमूलक, वृक्षाम्ल, मातुलुग, चागेरी, नागरग, गुग्गुलु–बदर–आम्र, तिन्तडीक, पाषाणभेद, एरण्ड, कर्कटी–कारवेल्लक–मिश्रेय, सप्तपर्ण, त्रायमाण, गोजिह्वा, तुलसी–पुनर्नवा, मरिचम्, सोम, रसोन, वनपलाण्डु, नारिकेल, खर्जूर, वचा, रोहिष, शैलेय, दुग्ध, तक्र, नवनीत–मधु–आवरेशम खाम, अनन्नास, केशर, वशलोचन, जहरमोहराखताई, पन्ना, प्रवालमूल, लौह, लाजवर्द, मुक्ता, मस्तगी, स्वर्ण, रजत, याकूत–कान्तलौहादि–

चरक के गण––१ आम्र, आम्रातक, लकुच, करमर्द, वृक्षाम्ल, अम्ल–वेतस, कुवलय, वदर, दाडिम, मातुलुग यह १० हृद्य होते है।

२. **अम्लं हृद्यानाम्** (च सू अ. २५)

इन औषधियो को पुन विशिष्ट प्रकार से क्रिया के अनुसार नवीन अनुसंधान के आधार पर विभक्त करे तो निम्न बाते कही जा सकेगी।

१. **सुषुम्ना शीर्षक को उत्तेजित कर हृदयोत्तेजक द्रव्य**—

कर्पूर	कस्तूरी	सुरा
कुपीलु	अम्बर	
केशर	मकरध्वज	

२. **उपसांवेदनिक नाड्यग्रो को निष्क्रिय करके हृदयोत्तेजक**—

१. धुस्तूर–वेलाडोना, कोकिन–खुरासानी अजवायन एट्रोपीन। इसमे नाडी स्पदन भी वढता है।

३. **हृत्पेशी प्रभाव जव हृदयोत्तेजक**––हृत्पत्री, कैफीन, वनप्याज, काकमाची, अर्जुन–शृग यह औपधिया हृदयाकुचन बढाती है चाहे नाड़ी सख्या स्पदन की वढे या न वढे।

४. हृत्पेशीवल्य––मधुर रस–ग्लूकोज–मुक्ता–जहरमोहरा खताई, कहरवा। सामान्य रूप से मधुर व अम्ल रस वाली औषधिया।

५. अप्रत्यक्ष रूप से उत्तेजक—लौह, अभ्र—स्वर्ण तथा इनके योग—आमला, हरीतकी, अर्जुन, वचा, लाजवर्द—प्रवाल—याकूत—नीलम, हृद्य को वल्य देकर हृद्य होती है।

६. हृत्पिण्ड की बलकारक औषधिया जो धमनी की गति पर प्रभाव नही डालती है यथा—क्षारघटित लवण व ताम्र तथा यशद के लवण, कर्पूर।

प्रसादक व वल्य—वे द्रव्य जो हृत्पेशी को पोषण करके अपना स्थाई प्रभाव डालते हैं। यह दो प्रकार के हैं—

१. साक्षात हृत्पेशी पर प्रभाव कर—यथा—हृत्पत्री, अर्जुन, अजमोद, हरीतकी, आमलक—चक्रमर्द—कुपीलु—कर्पूर।

२. सामान्य स्वास्थ्य सुधार कर—हृदय पर प्रभाव डालते हैं यथा—

लौह	स्वर्णभस्म
अभ्र	रजतभस्म
स्वर्णमाक्षिक	प्रवाल
रजतमाक्षिक	मुक्ता

हृद्रुक के रोगो के विभिन्न लक्षण विभिन्न स्थलो मे होते हैं—भिन्न भिन्न रोगो मे भिन्न भिन्न औषधिया प्रयुक्त होती है यथा—

हृद्रुक—हृच्छूल, उत्क्लेश, सघात, तोद स्त्यान हृद्य—हृद्ग्रह, हृद्गुरुता, हृत्स्पंदन, हृद्च्युति—हृद्स्रोतोदुष्टि—हृत्स्तंभ हृच्छोथ—हृत्क्लम—हृदशून्यता।

यह लक्षण एक ही रोग मे नही होते भिन्न भिन्न रोग मे होते हैं अतः औषधिया भी परिस्थिति वशात् भिन्न भिन्न होती है।

हृच्छूल व हृद्रुक में—

१. पिप्पल्यादि चूर्ण—(वातजशूल)	७ हिंग्वादि चूर्ण
२. पुष्करमूलादि चूर्ण	८. दशमूल कषाय
३. हरीतक्यादि चूर्ण	९ मृगशृंग
४. अर्जुनत्वक् चूर्ण—पित्तज	१०. ककुभादिचूर्ण
क्षीर व घृत अर्जुन साधित पित्तज	११. वलाद्य घृत
५. पुष्करमूल चूर्ण श्लेष्मज	१२. अर्जुनघृत
६. नागवलात्वक—अर्जुनसाधित क्षीर	१३. श्वदंष्ट्रा घृत

रसोपरसादि—	मात्रा
१. कल्याणसुन्दर रस	मात्रा १ से २ रत्ती
२. चिन्तामणि रस	२ रत्ती
३ हृदयार्णव रस	४ गुंजा
४. विश्वेश्वर रस	१—२ रत्ती
५. त्रिनेत्र रस	१—२ गुज
६. नागार्जुनम्	२रत्ती
७. पचानन रस	२ रत्ती
८. प्रभाकर वटी	२ रत्ती
९. शंकर वटी	२ रत्ती
१०. अर्जुनारिष्ट	२ तो.

हृद्विशोधन—　पिप्पलीकतृणोशीर दारुमूर्वाश्रृतं जलम् ।
पिवेत्सौवर्चलोन्मिश्रं, दीपन हृद्विशोधनम् ।
च सि. स्थान ७-९७

तीव्रहृच्छूल—　१. वृ विद्याधराभ्र　　२ गुंजा
२ शूलराज लोह　　२-४ गुजा
हृच्छूल-पार्श्वशूल व अम्ल पित्तज शूल मे लाभप्रद
३ अगस्त हरीतकी　　१-२ हरड
४ च्यवनप्राश　　१ तो पेशीवल्य
५. आरोग्यवर्धिनी　　२-४ रत्ती

तिक्त रसवाले हृद्य—चन्दन, जातीफल, ककोल, पिप्पली, यमानी, कृष्णाजाजी, हिंगु, नाडीहिंगु, कुलिजन, कटुकी, वाकुची, वत्सक, निम्ब, महानिम्ब, कारवेल्लक, काफी, सप्तपर्ण, कुचला, त्रायमाण, मरिच, रसोन-वनपलाण्डु, मधुर रस वाले व अम्ल रस वाले आम्र-आम्रातक, लकुच, करमर्द, बदर, कर्मरग, मातुलुगा, खर्जूर, नारिकेल, यव, दुग्ध-घृत-तक्र-नवनीत, चव्य-सीताफल-नारगी-परुपी-शतपत्री, एरण्ड-कर्कटी, विल्व-पाटला-काश्मरी ।

गंधित द्रव्य (Volatile oils)—

लवग	मेथिका	ककोल	तुलसी	अग्निजार
त्वक्	धान्यक	जायफल	दमनक	कर्पूर
तेजपत्र	शुण्ठी	कुलिजन	रसोन	कस्तूरी
तालीसपत्र	यमानी	गुग्गुलु	रोहिष	लताकस्तूरी

ग्राही पौष्टिक (Astringent Tonics)—

सप्तपर्ण, नीम, रोहितक, तूणी कूठ, वकुल. श्योनाक काकणसिगी हरड

कटु पौष्टिक—अतीस दारुहल्दी, करज, अहिफेन-किरात-मिर्च, गुडूची, नागरमोथा-आयापान-नागचपा, स्वर्णचपा, नाकुलीकद, कटुकी-पियारागा ।

हृदय रोगों के विभिन्न लक्षण

	रुक् व शूल	उत्क्लेश	संघात	तोद	हृद्रोग
वातज्वर	हृद्रुक	हृदयोत्क्लेश	हृदिसघात	हृत्तोद-२	हृद्रोग-२
आमज्वर	हृदयेवेदना	हृदयाशुद्धि	शूलवान	प्रपीडा	क्रिमि
श्वास	हृत्पीडा-२	रसस्थज्वर	असाध्यज्वर	हृदयस्य च हृत्पीडनम्	
अन्नद्रवशूल	हृत्पार्श्वशूल				
विशूची	हृदयेरुजम्			अतिसार	
रक्तपित्त	हृदयतुल्यापीडा			ग्रहणी (वात)	
वातिककास	हृच्छूलम्			ग्रहणी(श्लैष्मिक)	
अरोचक	हृच्छूली			मूर्च्छा	
गुल्म				मूत्रकृच्छ्र	
शूल				पानविभ्रम	
उदावर्त्त					

स्त्यानहृदय	ग्रह	गुरुता	स्पंदनम्
हृदयमन्यतेस्त्यानम्	हृद्ग्रह.	हृदयस्यगुरुता	हृत्स्पदन
श्लैष्मिक ग्रहणी	वातार्थ	हृद्गौरव	हृत्कप
		आमवात	पाण्डु
			अपस्मार

च्युति	स्रोतदुष्टि	स्तंभ
हृदयच्युति. (वक्ष)	हृदयस्रोतदुष्टि	हृत्स्तभ
क्षयजकास	उन्माद	अपस्मार
		पुरीषजानाह

शोथ		क्लम		शून्यता
गुल्म	हृच्छोथ	हृद्रोग	हृदयक्लमः	उन्माद

लक्षण—१. हृच्छूल–रुक्
२ हृदयोत्क्लेश
३ हृदयाशुद्धि | मन
४. हृदिसघात
५. हृत्तोद
६. हृद्रोगः
७. स्त्यानहृदय
८. हृदग्रह.
९. हृद्गुरुता
१०. हृत्स्पंदन
११. हृदयच्युति
१२. हृत्स्रोतस दुष्टि
१३ हृत्स्तभ
१४. हृदशोथ
१५. हृदयक्लम·
१६. हृदयशून्यता

रोगाः—१ अश्मरी
२ हृद्रोग
३. गुल्म
४. उदावर्त
५. शूल
६. आमवात
७. अपस्मार
८. उन्माद
९. पानविभ्रम
१०. मूर्च्छा
११ मूत्रकृच्छ्र
१२ तृष्णा
१३ छर्दि
१४ अरोचक
१५. श्वास
१६. कास
१७ यक्ष्मा
१८. रक्तपित्त
१९ पाण्डु
२०. क्रिमि
२१. विशूची
२२. अजीर्ण
२३. अर्श
२४ ग्रहणी
२५. अतिसार
२६. ज्वर

हृदय प्रसादक व वल्य (Tonic & stimulants)—पोषक पदार्थ हृत्पेशी को पोषण पहुचाकर अपना स्थाई प्रभाव डालते हैं यह दो प्रकार के होते हैं—

प्रथम–सीधे हृदय की पेशी पर प्रभाव करने वाला।

द्वितीय–सामान्य स्वास्थ्य सुधार कर हृदय मे सुधार करनेवाले।

प्रथम–सीधे हृदय पेशी पर प्रभावक—हृत्पत्री, अर्जुन, अजमोद, हरीतकी, आमलक, चक्रमर्द, कुपीलु, कर्पूर।

Cardiac Tonics–are drugs which improve the action of the heart by increasing the tone and nutriation of cardiac muscels.

द्वितीय—लौह
अभ्र
स्वर्णमाक्षिक
रौप्यमाक्षिक
स्वर्ण
रजत
के निर्मित योग

भैषज्य—पिप्पली
एला
वचा
हिंगु
यवक्षार
फल
धान्याम्ल
उत्पल
दधि
मद्यासव से

सैंधव
सौवर्चल
शुण्ठी +
अजमोदा
नाग + +
अर्जुन + + + + +
तिक्ता–पचमूली–वल्य मधुयष्टि द्रव
पुष्कर चूर्ण + + +
नागवला + + दुग्ध
अम्लवेतस
दुरालभा
चित्रक
मातुलुग + +
हरीतकी + +
सौवर्चल + +
यवक्षार
वला + नागबला + अर्जुन

ककुभ
वला
रास्ना
नागवला
शटी
पुष्करमूल
पिप्पली
शुठी
चित्रक + +
हस्तिशुडी
भृगराज
कर्पूर
काकमाची
आर्द्रक

हृद्रोग में प्रयुक्त औषधियाँ

सौवीरक
मस्तु
तक्र
मूत्र
गुड
प्रसन्ना
नमक

ब्राह्मरसायन
आमलकी रसायन

लवण
पुनर्नवा
रास्ना
देवदारु
बिल्व
कुलत्थ
कोल

तेलवनाकर

कार्मुक संज्ञायें

धन्वरस
गव्यक्षीर
कौलत्थ रस
धान्यरस
कफ
कट्फल
श्रृंगवेर++
पीतद्रु
हरीतकी++
अतिविषा
कृष्णा
शटी++
पुष्कर++
रास्ना++
वचा
अभया
नागर++
वट
उदुम्बर
अश्वत्थ
अर्जुन
पलाश
रोहितक
खदिर
त्रिवृत
त्र्यूषण
द्राक्षा–काश्मर्य–परुषक
त्र्यूषण
पाठा
निदिग्धिका
गोक्षुर
बला–अतिबला घृत
ऋद्धि
त्रुटि
तामलकी
आत्मगुप्ता
मेदा
महामेदा
मधूक
मधुयष्टि
शालिपर्णी

हरीतकी घृत
नागर
पुष्कर
गुडूची
आमलक
लवण
हिंगु

पुष्कर+
बीजपूर+
शुंठी+
शटी+
अभया
क्षाराबु
सर्पि पेय
लवण

पलाश
मासी
देवदारु
अजाजी
वचा पेय
यमानी
क्षार
लवण

शतावरी
जीवक
पृश्निपर्णी

पित्तज

द्राक्षा	पान	कशेरु
सिता	कल्क	शैवाल
क्षौद्र		शृंगवेर
परुषक		प्रपौण्डरीक
मधुयष्टि		उत्पल
कटुरोहिणी		मधुक
श्रेयसी		विष
एला		
काकोली द्वय		
मेदाद्वय		

तापहर विधि Antipyretics, Antifebrile, Febrifuge.

पर्याय—उत्तापहर, ज्वरहर, संतापहर, ज्वरघ्न, ज्वर प्रशमन ।

परिभाषा—जो औषधि शरीर के ताप को कम करके ज्वर को दूर कर देती है उसे ज्वर हर औषधि कहते हैं । अथवा

जो द्रव्य ज्वर की तापावस्था को अथवा रोग विशेष मे उत्पन्न ताप को कम कर दे उसे भी ज्वर हर औषधि कहते हैं ।

नियत कालिक ज्वरहर—जो औषधि नियत समय पर आने वाले ज्वर को दूर कर देती है उसे अथवा आम दोषजन्य या शारीर विषज ज्वर को दूर करती है उसे नियत कालिक ज्वर हर (Antiperiodic) औषधि कहते है ।

सामान्य रूप से ज्वर हर औषधि वह कहलाती है जो कि विविध विधियो से शरीर के ताप को कम करती है उसे तापहर कहते हैं ।

ज्वर की उत्पत्ति—शरीर मे ज्वर या ताप पित्त की उपस्थिति से ही होता है । इससे शरीर की उष्मा की मात्रामात्रत्व की स्थिति वनती है यह ताप शब्द प्राकृतिक अर्थ मे व्यवहृत होता है जव कि शारीरिक ताप ज्वर नामक रोग से व्यवहृत होता है तव शास्त्रीय क्रमानुसार उसे तव ज्वर कहते हैं जव कि उसमे स्वेदावरोध संताप व सर्वांग ग्रहण होता हैं और शरीर का ताप मान चढ जाता है । अतः इन तीनो कार्यों के क्रम को दूर करने वाले औषधि से इनका प्रशम होता हैं । अत. इस ज्वर हर वर्ग मे निम्न बातो का विवरण दिया जायगा । १. तापहर (Antipyretics) २ वेदनाहर ३. स्वेदावरोधहर (Analgesics & Diaphoretics) क्रमश. इन वातो पर प्रकाश डाल कर इनका विवरण दिया जायगा ।

सामान्य रूप से ज्वर हर दो प्रकार का होता पाया जाता है ।

१ सामान्य ज्वरहर कर्म २. विशिष्ट ज्वरहर कर्म

सामान्य ज्वरहर कर्म—आम शेष रहने से जो ज्वर हो जाता है उसकी चिकित्सा दीपन व पाचन कर्म के द्वारा की जाती है। दोष विपाचन के लिये कई विधियां वतायी गई हैं।

ज्वर के निमित्त—क्रमश. लघन पुन दीपन व पाचन सामान्य विरेचन व शीतोपचार आदि जहा पर जैसी आवश्यकता हो वहा पर वैसी ही क्रिया का आश्रय लिया जाता है। अत. आम दोष मे दीपन व पाचन व विवध मे विरेचन व अधिक ताप मे शीतोपचार का क्रम अपनाते हैं। यहा पर ताप हर सव विधियो का क्रमश. विवरण देगे। दीपन पाचन का पृथक पृथक विवरण दिया है। स्वेदल का भी विस्तार पूर्वक पृथक ही दिया है। प्रथम ताप हर क्रम यो है।

ताप—शरीर मे ताप की स्थिति पित्त के उष्म केन्द्र के द्वारा नियत्रित होती है इसे हीट रेगुलेटिंग सेटर (Heat regulating centre) कहते हैं। इसकी सामान्य क्रिया से उष्मा बनी रहती है। जव यह किसी रोग वश या शारीरिक दोप या विषो के कारण उत्तप्त हो जाता है तव ताप बढ जाता है। यह केन्द्र लघु मस्तिप्क के मूल पिण्ड द्रय के भीतर होता है। अत. इस स्थान की आसपास की क्षति मे ज्वर हो जाता है। रागिल पिण्ड मे चोट लग जाने पर ज्वर हो जाता है।

अत. ताप हर सामान्य विधि मे कई विधियो का आश्रय लेना पडता है तापहर विधि निम्न है।

१. ताप केन्द्र की क्रिया को कम करने वाली औषधियो से।

२ ताप विकिरण करने वाली औषधियो के प्रयोग से।

३ स्वेद क्रिया को वढाकर।

४. उत्ताप हर विभिन्न शीतोपचार के द्वारा।

५. वेदनाहर ताप नाशक औषधियो के प्रयोग द्वारा।

सामान्य तापहर क्रम—शास्त्रो मे तापहर औषधियो का विवरण निम्न रूप मे मिलता है। ज्वरहरगणः।

१. ज्वरघ्नगण—चरक की दशेमानि के १० द्रव्य।

२. पटोलादिगण ३. गुडूच्यादिगण ४. आरग्वधादि गण ५ सारिवादि गण ६. पित्त सशमन वर्ग आदि।

इन गणों की औषधियां कई प्रकार से कार्य करती हैं। यथा—

१. ताप केन्द्र पर प्रभाव डाल कर २. स्वेद क्रिया वढाकर ३. जीवाणु विष नाश करके ४. दीपन पाचन करके। इनकी औषधियां यह हैं।

१. **ज्वरहर वर्ग**—सारिवा, शर्करा, पाठा, मंजिष्ठा, द्राक्षा, पीलू, परुषक, अभया, आमलक, विभीतक चरक ने दशेमानि में सामान्य ज्वरहर लिखा है।

२. **पटोलादि**—पटोल, श्वेत चंदन, रक्त चंदन मूर्वा, गुडूची, पाठा, कटुकी ७ द्रव्य हैं।

३: **गुडूच्यादि**—गुडूची, निम्व, धनिया, श्वेत व रक्त चंदन, पद्माख ६ द्रव्य हैं।

४. **आरग्वधादि**—अमलतास, मदनफल. सुपारी, पाठा, कटुकी, कटेरी, पाटला, मूर्वा, इन्द्रयव, सप्तपर्ण, निम्ब, सैरेयक, द्वय गुडूची, काकजघा, करज द्वय, पटोलपत्र, किरात, कारवेल्लक ।

५ **सारिवादि**—सारिवादि मधु यष्टि रक्तचदन पद्माख गभारीफल मधक उशीर इसके अतिरिक्त पित्त सशमन की कई औषधिया हैं । यथा—

१ श्वेतचदन, रक्तचदन, बाला उशीर मजिष्ठा क्षीर काकोली, विदारी कद, शतावरी कुटज शैवाल कल्हार कुमुद उत्पलकदली दूर्वा मूर्वा आदि ।

इनके अतिरिक्त कई द्रव्य ऐसे है जिनका नाम इसमे नही आता । यथा—वत्सनाभ, धत्तूर कालमेघ अतीस तुलसी द्रोणपुष्पी सहदेवी मामज्जक अर्क व करवीर मूल त्वक । तथा—

प्राणिज व खनिज—फिटकरी नरसार गोदन्ती नीलाजन सखिया हरिताल मन शिला प्रवाल मुक्ता कपर्द शख अहिफेन कुनीन इन्द्रजौ आदि ।

अत कौनसी औषधि किस प्रकार के कार्य को करके ज्वर को दूर करती है यह इनमे से छाट कर भिन्न भिन्न रूप मे यो कहा जा सकता है ।

नियत काल ज्वरहर—सखिया, हरताल, धत्तूर, भाग, फिटकरी, द्रोण पुष्पी, सप्तपर्ण अतीस करज, अफीम, इद्रजव, कुनीन आदि । विशेष प्रकार के ज्वर पर विशिष्ठ प्रकार की औषधि का प्रयोग किया जाता है ।

इसी प्रकार जब अन्य विधि को सोचना हो तो, यो विचार कर सकते हैं ।

सामान्य ज्वर हर द्रव्य—गिलोय, चन्दन, कुचदन, कटुकी पाठा कटेरी पाटला मूर्वा निम्ब चित्रक काकजघा चिरायता अनतमूल मुलहठी मजिष्ठा क्षीर काकोली विदारीकद शतावरी शैवाल श्वेतकमल नीलकमल कुमुद कदली दूर्वा सारिवा धान्याक द्राक्षा पीलू फालसा ।

स्वेदकर ज्वरघ्न—पाटला सैरेयक तुलसी द्रोण पुष्पी धत्तूर ।

विशिष्ट तापहर—इन्द्रजौ, उशीर, यवासा, पर्पटक, सप्तपर्ण, शैवाल, क्षार, करज, कालमेघ अतिविषा, द्रोणपुष्पी ।

उष्म केन्द्र पर कार्य करनेवाली—वत्सनाभ, सप्तपर्ण, कर्पूर, तुलसी, नायी द्रोणपुष्पी पटोल त्वचागत केशिकाओ का विस्फारण कर ताप विकिरण करने वाली ।

वाष्प स्नान, धूपन, स्वेद, सुरा, अश्वगध, कटु—बादाम, पूग, सैलिसिलेट्स अलकोहल नाइट्रेट्स ।

आम दोष विष नाशक—अतिविषा, गुडूची, वरुण, कल्पनाथ, नाय कुनीन ।

विषम ज्वरहर—सखिया, हरताल, मन शिला, नरसार, नीलाजन, प्रवाल मुक्ता कपर्द शख अभ्रक त्रिफला ।

पाचन—आर्द्रक, शुठी, मिर्च, पिप्पली, वाला, पचकोल आदि ।

पटोलादि—पित्तशामक मदतापहर, पाचक सशमन दाहहर ।

ज्वरघ्नगण—पाचक सारक शीतल ।

आरग्वधादि---विषघ्न स्रंसन तापहर।

काकोल्यादि---शल्य विषहर श्लेष्मवर्द्धक।

न्यग्रोधादि---पित्त प्रशमन दाह प्रशमन तापहर।

ज्वरहर क्रिया केवल ताप मात्र हरने की विधि नही है। बल्कि जिस प्रकार से भी ताप हरण हो उन सब विधियो का सामूहिक उपयोग करना भी ज्वरघ्न विधि मे आता है। जैसे

तरुण ज्वर में---लघन स्वेदन तिक्त रस पाचन क्रम यह करना चाहिये।

तरुण ज्वर में वमन---अनुपस्थित दोष वाले का ज्वर मे वमन देना चाहिये।

विरेचन---यदि अन्य क्रियाओ से ज्वर न जाता हो तो बल मासादि युक्त रोगियों के लिये विरेचन करा कर ज्वर दूर करना चाहिये।

धूपन व अंजन---जीर्ण ज्वरो मे धूपन व अजन का भी प्रयोग लाभ कर होता है।

अभ्यंग प्रदेह परिषेक अवगाहन---ज्वरावस्था को देखते हुवे इनका उपयोग करना चाहिये यह यथोचित क्रम मे जहा पर शीत हो शीत, जहा उष्ण कर्म अभ्यगादि परिषेक व अवगाहन मे उचित हो देना चाहिये।

शिरोविरेचन व धूमवर्ती---दोषानुसार इनका प्रयोग करना चाहिये।

तापहर---शरीर मे ताप की उत्पत्ति वा क्षय।

पित्त---शरीर में ताप की उत्पत्ति पित्त के कारण होती है। वह दो रूप से कार्य करता है। १ केन्द्रीय उष्मा केन्द्र द्वारा २ शारीरिक पित्त केन्द्रद्वारा।

१. सामान्य रूप से शरीरोष्मा की उत्पत्ति मे उष्मा केन्द्र कार्य करता है जो मस्तिष्क के हाईपोथैलेसस मे होता है।

२ कुछ ताप त्वचा गत परीसरीय रक्तवाहिनीयो के सकोच द्वारा बनता है।

३ मास पेशीयो की क्रिया के द्वारा उष्मा की उत्पत्ति होती है।

४. रक्त सवहन के द्वारा व लसीका सवहन के द्वारा उष्मा बनती है इनकी उत्पत्ति के साथ क्षय भी होता है जो निम्नाकित रूप मे होता है।

---

१. लंघनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रस। पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणज्वरे।

२. अनुपस्थित दोषाणां वमनं तरुणज्वरे।

३. क्रियाभिराभिः प्रशमनप्रयाति यदाज्वरः। अक्षीणबल मांसाग्नेः शमयेत्त विरेचनैः।

४. धूपनांजन योगैश्चयान्तिजीर्णज्वरा शमम्।

५. अभ्यंगाश्च प्रदेहांश्च परिषेकावगाहनै विभज्य शीतोष्ण कृतं कुर्यात् जीर्णज्वरे भिषक्।

१. त्वचा द्वारा ८७.५ प्रतिशत
२ फुफ्फुस के श्वास द्वारा १० ७ प्रतिशत
३ शरीर द्रव्य व मल १ प्रतिशत

त्वचा द्वारा—चार प्रकार की क्रियायें त्वचा से उष्मा का निर्गमन कराती है।

१. चालन (Conduction) शरीर के पृष्ठ भाग से त्वचा संपर्क मे वस्त्रवायु आदि आकर ताप का निर्गमन करते हैं।

२. वाहन (Convection) गतिशील वायु द्वारा भी कम होता हैं।

३. विकिरण (Radiation) पृष्ठ भाग व वाह्य मध्यभाग से ७३ प्रतिशत ताप नष्ट होता है।

माध्यम—वायु की आर्द्रता, व्यक्ति का आकार—३ वस्त्र इनके माध्यम से उष्मा निकलती हैं।

४. वाष्पी भवन (Eveporetion)

१ ६०० सी सी स्वेद पृष्ठ भाग से वाष्प बनकर निकलता है। रक्त का ताप रक्त वाहिनीयो मे आकर वाहर त्वक् सपर्क मे आकर वाष्पीभवन होकर नष्ट होता या कम होता है।

२. व्यक्ति का आकार—मेदयुक्त मेद रहित स्थिति सहितस्थिती से वाष्पी भवन मे अतर होता है।

३. वायु की आर्द्रता—आर्द्र वायु मे वाष्पावरोध होता है।

फुफ्फुसो द्वारा—१. श्वास प्रश्वास द्वारा। मार्गस्थित द्रव के वाष्पीभवन से उष्मा का क्षय होता है।

२. नि.श्वसित—वायु को उष्ण करने मे ४ प्रतिशत उष्मा खर्च होती है।

आहार व मलद्वार—इसमे २ प्रतिशत उष्मा खर्च होती है। इस प्रकार इन विभिन्न कर्मों से ताप का क्षय होता है।

तापक्षयकी मात्रा १ चालन विकिरण, वाहन २१०० कॅलोरी ७० प्रतिशत त्वचा फुफ्फुस ८१० केलोरी। २७ प्रतिशत।

श्वसित वायु को उष्मा करने के लिये ६० केलोरी, २ प्रतिशत मूत्र पुरीष को उष्ण करने मे, ३० केलोरी १ प्रतिशत। कुल ३०००—१०० प्रतिशत।

साधारण ज्वरहर—यह औषधियां सामान्य दोषज ज्वरों को दूर करती हैं।

१.	मृत्युजय रस	भै र.	२ रत्ती	उष्णोदक मधु
२.	सुदर्शन चूर्ण	,,	२—३ माशे	क्वथितजल
३.	त्रैलोक्य सुन्दररस	(र.र.स.)	२ रत्ती	जीरक सैंधव आर्द्रक स्वरस
४.	प्रताप लकेश्वर	भै. र	२—६ रत्ती	मधु
५.	हिंगुलेश्वर	र. सा. सं.	२—४ रत्ती	उष्णोदक
६	पचवक्त्ररस	,,	२ रत्ती	मधु
७	अमृताष्टक कषाय	चरक	२—५ तो.	
८	पचतिक्त कषाय	,,	,,	

स्वेदोपग एवं स्वेदल—पसीना लाकर ज्वर उतारने वाली औषधिया

स्वेदोपगवर्ग कषाय—शोभाजन, एरण्ड, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, यव, तिल, कुलत्थ, वेर, उड़द, अर्क यह १० हैं। इनका कषाय।

२	पंचतिक्त कषाय	५ तो.	४ मात्रा
३	गुडूच्यादि कषाय	५ तो	४ मात्रा
४.	हिंगुलेश्वर	२ रत्ती+खाकसीर १ माशे	४–५ मात्रा
५.	मृत्युंजय (विष जयपाल) भै. र.	२+४ रत्ती पिप्पली	४–५
६.	चण्डेश्वर रस ,,	२ रत्ती	४
७.	महाज्वरांकुश ,,	२–४ रत्ती	लघुस्वेदकर
८.	कस्तूरी भैरव ,,	२–४ रत्ती	४ मात्रा
९.	ज्वरारि अभ्र ,,	२–४ रत्ती	४
१०.	त्रैलोक्यसुन्दर रस ,,	२ रत्ती	५ मात्रा २घट के अतर

इन रसो की स्वेदल क्रिया को लाने के लिए नरसार, कलमीशोरा, पिप्पली गोदन्ती का मिश्रण स्वेदोदय की क्रिया को शीघ्र करता है।

खाकसीर—१–२ माशे मिला कर देना नि सदेह स्वेद लाता है।

नोट—रस गधक और विष मिली औषधिया एक साथ मिली रहने पर स्वेदल क्रिया करती हैं। काली मिर्च–पीपल व टकण मिले योग भी स्वेदल तथा दीपन होते हैं।

अष्टांग धूप—लाक्षा–निम्ब–वच, कुष्ठ, हरीतकी जौ, सर्षप, घृत।

अपराजित धूप—गुग्गुल–खस–वच–राल–निम्ब–अर्क–अगर–देवदारु।

माहेश्वर धूप—भै० र०

अजवायन का धूप—इनको वस्त्रावगुठन पूर्वक धूप दिया जाय तो स्वेदोद्गम होता है।

विरेचक–ज्वरहर–

१. नाराच रस	भै र	२ रत्ती
२ तरुणज्वरारि रस	,,	२ रत्ती
३. प्रतापमार्तण्ड रस	,,	२ रत्ती
४. ज्वर केशरी	,,	१–३ रत्ती
५. चिन्तामणि रस	,,	२–४ रत्ती
६. मृतसजीवनी रस	,,	,,
७. शीतज्वरारि रस	,,	१–३ रत्ती
८. शीतभजी रस	,,	,,
९. अश्वकचुकी	,,	२–६ रत्ती
१०. त्रैलोक्यज्वर हर रस	र. स. स.	१–३
११. मृत सजीवन रस	र. सा. स.	२ मापमात्र

ज्वरोपरोधकर–ज्वरनिवारक वेगरोधक

ज्वराकुश द्वितीय	भै. र	२–४ रत्ती	४ मात्रा
ज्वराकुश	,,	२ रत्ती	४ ,,
ज्वर कालकेतु	,,	१ रत्ती	४ ,,
तालकादि रस	,,	१–२ रत्ती	४ ,,
शीतभजी	,,	२–३ रत्ती	४ ,,
तुवरीमल्लयोग	चि चिन्ता	२ रत्ती	५ ,,
नरसार	,,	१ माषे	४ ,,
स्फुटिक		१ माषे	४ ,,
भूनिम्वादि अष्टादशाग क्वाथ		२–५ तो.	४ ,,
पच तिक्त कषाय		२–५	४ ,,
वृ गुड्च्यादि कषाय		,,	,, ,,

हिंगुलेश्वर—पिप्पली　　गुजार्ध मवुनादये वातज्वर निवृत्तये ।
हिंगुल
विष

शीतभंजी—रस　| दती क्वाथेन समर्द्य रसो ज्वरहर परः रक्तिका द्वयम्
हिंगुल　| शीत तोय इक्षुमुद्ग रसोहित.
गधक
जैपालम्

मृत्युजय रस—विष १ | १ मात्रा　१ रत्ती=१वटी
मरिच १ | मुद्ग मात्र　४ वटी
पिप्पली १
गधक १ | नारिकेलाबु
टकण १
हिंगुल २भाग

नाराच रस–रस १ | द्विगुजा रेचेन सिद्धो नाराचोऽय महारस.
गधक २
मरिच १
पिप्पली २
शुठी २
जैपाल ८ भाग

प्रताप मार्तण्ड– विष | सद्योज्वर विनाशन
हिंगुल
जैपाल
टकण

तरुणज्वरारि–जैपाल गध विष पारदं च तुल्यं कुमारि स्वरसेनमर्द्यम्
दातव्य एषोऽह्नि पचमेव षष्ठेऽथवा सप्तम् एव चापि
जातेविरेके विगतज्वरः स्यात्–पटोलमुद्गमात्र निषेवणेन

वमनहर

पर्याय —वमनहर, वान्तिनिवारक, छर्दिनिग्रहण ।

परिभाषा—वे द्रव्य जो वमन या वमन की प्रवृत्ति, उवाक को वद कर देते हैं उन्हे वमनहर औषधि के नाम से पुकारते हैं ।

ज्ञातव्य—पहले वामक औषधि का विवरण दे चुके है अत किन प्रधान हेतुओं से कहापर प्रभाव पड़कर वमन होता है सुज्ञात हैं । विशेष रूप मे इसका अधिकरण—आमाशय होता है यह चिकित्सक[1] मानते है अत आमाशय को प्रधान-स्थल मानकर तथा उग्र रोगो मे मस्तिष्क व सुषुम्ना शीर्षक को केन्द्र मान-कर चिकित्सा क्रम निर्धारित किया जाता है ।

द्रव्य—छर्दि निग्रहण द्रव्य चरक ने निम्न वतलाये हैं ।

१. जम्बुपत्र
२. आम्रपल्लव
३. जम्बीर
४. ह्रीवेर
५ अनारवीज
६ यव
७ षष्ठिकधान्य
८ उशीर
९ पीतचदन
१० लाजा यह गण द्रव्य है ।

इनके अतिरिक्त सुश्रुत ने आरग्वधादिगण, पटोलादिगण, गुडूच्यादिगण को भी वमन निवारक माना है । इनमे निम्न द्रव्य आते है ।

आरग्वधादिगण—आरग्वध, मदनफल, पूग, कुटज, पाठा, कण्टकारी, पाटला, मूर्वा, इन्द्रयव, सप्तपर्ण, नीम, सैरेयक, गुडूची, चित्रक, मधुयष्टि, करंज–पटोल पत्र–चिरायता, कारवेल्लक यह २७ औषधिया है ।

पटोलादिगण—पटोल, श्वेतचदन, मूर्वा, गुडूची, पाठा–कटुकी ।

गुडूच्यादिगण—गुडूची, निम्ब, धान्यक, श्वेत–रक्तचदन, पद्माख ।

इनके अतिरिक्त अन्य भी द्रव्य है जो कि छर्दि हर होते है । यथा—सत्व गुडूची, आमलक, सतरे, मोसवी, अगूर, जीरक, नागकेशर, एला, नागरमुस्तक, पित्तपापड़ा, आर्द्रक, शुंठी, हरीतकी तथा स्फुटिका, वराटिका, प्रवाल, लाजवर्द–अश्वत्थत्वक् भस्म, लोहवान–वर्फ शीतोपचार आदि ।

इन ऊपर की औषधियो को दो प्रकार के कर्मविभाग मे बाट सकते है ।

यथा—(१) स्थानिक वान्तिहर (२) सार्वांगिक वान्तिहर ।

स्थानिक वान्तिहर—छर्दि उत्पन्न होने का स्थान आमाशय होने के कारण आमाशय के क्षोभ से उत्पन्न वमन को शान्त करने वाली क्रिया स्थानिक । इसमे सपूर्ण आमाशय या उसकी कला की उग्रता या क्षोभ को शान्त करना पडता है । इसके भिन्न भिन्न क्रम है । सशोधन क्रम या आमाशय श्लेष्म व पित्त का स्थान होने से श्लेष्म पित्तहारि क्रिया का प्रयोग ।

---

१. **आमाशयोत्क्लेशभवाहिसर्वाश्छर्द्योमता लघनमेव तस्मात् ।
प्राक् कारयेत मारुतजा विमुच्य, सशोधन वा कफपित्तहारि ।**

संशोधन--१ आमाशय मे विदग्ध अन्न, आमरस इत्यादि के कारण वमन होता हो तो उसकी शाति वमन क्रिया द्वारा ही होती है। अत वामक द्रव्य देकर कोष्ठ शुद्ध कर देने पर वान्ति की शान्ति होती है।

सशमन—उपर्युक्त हेतु न होकर यदि आमाशय दुष्टि हेतु हो तो सशोधन के वाद या केवल सशमन चिकित्सा से शाति होजाती है। निवारणार्थ द्रव्य–सत्व गुडूची, मुक्ता, प्रवाल, पचामृत, मुक्तामस्म, प्रवालमस्म, शुक्तिमस्म, राजावर्तमस्म, वशलोचन, निम्वुसत्व, अजवायन सत्व, इलायची। लाजा का प्रयोग करते हैं। शीघ्र आमाशय कला की उत्तेजना पर सूतशेखर, प्रवालपचामृत, शुक्ति मल तृणकान्त मणि का प्रयोग व अन्य। क्षुधायुक्त प्रयोग पर–मुक्ता शुक्ति शख। इनका व वर्फ का प्रयोग शीघ्र उग्रता का प्रशम करते हैं। वेदना प्रधान लक्षण पर–अहिफेन व धुस्तूर योग आमाशयिक उग्रता के शामक होते हैं। यथा--अहिफेनासव, कनकासव, देना चाहिए। यह छर्दि वमनोत्पादक केन्द्र, प्राण केन्द्र की उत्तेजना, नाडियो की उग्रता, रक्ताभिसरण की वृद्धि से उत्पन्न छर्दि मे तथा चिरकालिक रोग, गर्भस्थिति, पित्तवृद्धि आदि मे शामक चिकित्सा की जाती है। इस पर केन्द्र की उग्रता की शामक औषधि का प्रयोग करते हैं।

१ आत्रशूल, पित्तशूल, वृक्कशूल, अतर्वृद्धि, उपात्र शूल मे वमन होने पर तत् शामक औषधि प्रयोग से शाति होती है। अत इनमे उग्रता की दशा मे अहिफेन युक्त औषधि का प्रयोग होता है। कर्पूररस, जातीफलादि, ग्रहणी कपाट का प्रयोग शीघ्र वेदना का उपशम करता है।

२ रौप्यभस्म, मुक्ताभस्म, ताम्रभस्म का प्रयोग, मयूरपिच्छभस्म सत्वगुडूची, पूगभस्म–ववूल फल धूम्र, पूग धूम्रपान यह शीघ्र इसका शमन करते हैं। उग्रता कम कर देते हैं।

३ आमलक स्वरस, अगूर स्वरस के साथ, सुरा या अलकोहल के साथ उग्रता का प्रशम करता है।

४ तीव्र छर्दि मे आमाशय प्रवेश पर राजिका का प्रलेप छर्दि का निग्रह करता है।

५ निद्राजनक औषधियो का प्रयोग वमन शात करता है। यथा--मुक्ता व सर्पगधायुक्त योग।

६ पित्तसशोधक–द्रव्य छर्दि निग्रह करते है। यथा--उशीरासव, चदनाद्यासव, तृणकाम्ल योग–सत्व गिलोय, सूतशेखर इसमे हजरत यहूद व जवाहर मोहरा खताई का प्रयोग शीघ्र छर्दि निग्रह करता है।

पित्तशामक निम्न योग—सार्वांगिक व स्थानीय छर्दि मे शीघ्र शामक प्रभाव करते हैं--

१ चन्दनकल्क १ तो के साथ आमलकी रस मधु मिलाकर।
२ हरीतकी चूर्ण–मधु के साथ लेह।
३ एलादि चूर्ण–३ माशे मात्रा।
४. वृषध्वज रस–२ गुजा मात्रा।

५. रसभस्म–२ रत्ती+आमलकी स्वरस अनुपान
६. यमानीषाडव–३ माशे
७. तिंतिडीक यानक–वर्फ युक्त
८. पिप्पली खण्ड (अम्लपित्त)–१ तो.
९. लीला विलास रस–२ रत्ती मात्रा
१० भास्करामृताभ्र–१ माशे मात्रा (अम्लपित्त)
११. सप्तामृत लौह–१–२ माशे (शूलाधिकार)
१२. खण्डामलकी–३ माशे से १ तोले तक
१३. नारिकेल खण्ड–१ तो.

इस प्रकार की औषधियो से छर्दि निग्रहण युक्ति पूर्वक प्रयोग करने पर हो जाता है।

कुष्ठघ्न—

परिभाषा—वह औषधियां जो कुष्ठ (क्षुद्र व महान) के विकारो को दूर करके कुष्ठघ्न कहलाती है। कुछ लोग त्वक्‌रोगों मे प्रशमकारी औषधियो को भी इसी अर्थ मे लेते है।

कुष्ठघ्नगण—खदिर, हरड, आमलक, रजनी (हरिद्रा), भल्लातक (भिलावा), सप्तपर्ण, अमलतासपत्र, सफेद कनेरपत्र–त्वक्, वायविडग, जातीपत्र यह कुष्ठघ्न हैं।

इसके अतिरिक्त—सालसारादिगण, आरग्वधादिगण, लाक्षादिगण, त्रिफला, त्रिकटु यह भी सुश्रुत ने लिखा है।

सालसारादिगण	**लाक्षादिगण**	**अन्य**	
सालवृक्ष का सार	लाक्षा	चक्रमर्द	लोध्र
अजकर्ण का सार	आरग्वध	वासा	सर्जरस
खदिर श्वेत	कुटज	गुडूची	देवदारू
खदिर कृष्ण	अश्वमारत्वक्	मदनफल	सर्षप
उदुम्वर	कट्फल	विडग	चडा
सुपारी	हरिद्रा	लशुन	कम्पिल्लक
भूर्जपत्र	दारुहरिद्रा	शिरीष	लोध्रा
मेषश्रृगी	निम्ब	जटामासी	अर्कक्षीर
तिनिश	सप्तच्छद	गुग्गुल	रसाजन
श्वेतचदन	मालती	हरेणु	कपित्थरस
रक्त चंदन	त्रायमाण	वचा	इन्द्रजव
शीशम		त्रिवृत्ता	पलाशरस
शिरीष		दन्ती	रास्ना
असन		गैरिक	
धव		अजन	
अर्जुन		भल्लातकम्	

सालसारादिगण	अन्य
ताल	मनःशिला
सागौन	हरताल
करज	काशीश
अश्वकर्ण	
अगरु	
कालियाचदन	

कषायतिक्त मधुरः कफपित्तार्ति नाशन ।
कुष्ठक्रिमिहरश्चैव–दुष्टव्रण विशोधन' ।

त्रिफला– त्रिफलाकफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी
चक्षुष्या दीपनी चैव, विषमज्वरनाशनी ।

त्रिकटु–– त्र्यूषणं कफमेदोघ्नं, मेहकुष्ठ त्वगामयान् ।
निहन्याद्दीपन गुल्म पीनसाग्न्यल्पतामपि ॥
आरग्वधादिरित्येष–गण श्लेष्मविषापह ।
मेहकुष्ठज्वरवमी–कण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥
सालसारादि रित्येष गण कुष्ठ विनाशन.
मेह पाण्ड्वामयहर कफमेदोविशोषण. ॥

कुष्ठहरम्

लक्षणम्– स्पर्शाज्ञत्व मतिस्वेदोन वा वैवर्ण्यमुन्नति' ।
कोठानां लोहमर्षश्च, कण्डूस्तोद. श्रम क्लम (च चि. ७)
व्रणानामधिकं शूल, शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।
दाह सुप्तागता चेति कुष्ठलक्षणमग्रजम् । च

तेषामिमानि पूर्वरूपाणि––

अस्वेदनम्	अभिक्षणकाये-	महाकुष्ठ	क्षुद्र
अतिस्वेदनम्	च्छिद्रेषूपदेह	कपाल	चर्मकुष्ठ
पारुष्यम्	पक्वदग्ध क्षते	उदुम्बर	किटिम
अतिश्लक्षणता		मण्डल	विपादिका
वैवण्यम्		ऋष्यजिह्व	अलसक
कण्डू		पुण्डरीक	वेपु
निस्तोद		दद्रु	चर्मदल
सुप्तता			पामा
परिदाह			यच्छ्
परिहर्षा			विस्फोटक
लोमहर्ष			शतारु
खरत्वम्			विचर्चिका
गौरवम्			
श्वयथु			
विसर्पागमनम्			

सुश्रुत नि० स्था०–त्वक्पारुष्यम् अकस्माद्रोमहर्षं कण्डूः स्वेदबाहुल्यम् अस्वेदनम्, अगप्रदेशाना स्वाप, क्षतविसर्पण, असृजः कृष्णता ।

चरक	अन्य	पुनश्च
धातुपधातु आदि	ब्राह्मी	सखिया
माक्षीकधातु	विशाला	रसकर्पूर
गंधकयोग	मूर्वा	दालचिकना
पारद	पद्मक	नागभस्म
सर्वव्याधिविनाशनमद्यात्	विडगम्	सर्पविष
कुष्ठी रस च निगृहीतम्	काकमाचीपत्र	लौह
वज्रम्	कार्पासीपत्र	चालमोगरा
शिलाजतु	हिंगु	मृद्दारसिंग
तुत्थक	इगुदी	कर्पूर
काशीश	जीवन्ती	सुहागा
मनं शिला	मजिष्ठा	वायविडगम्
हरताल	प्रतिविषा	नीलगिरी तैल
गैरिक	उशीर	मुण्डी
अंजनम्	पर्पट	उसवा
गोरोचन	पटोल	
बर्हिपित्त	वाकुची	

श्रेष्ठम् गंधकयोगात् सुवर्णमाक्षिक प्रयोगाद्वा

सर्वव्याधिनिबर्हणमद्यात् कुष्ठी रसं च निगृहीतम् । च. चि ७।७१

सुश्रुत (चि० ९)	भल्लातक	प्रपुन्नाड	
	शिलाजतु	अवलगुजा	
	धातुमाक्षीक	अर्क	
	गुग्गुलु	चित्रक	
	अगुरु	विडग	
	तुवरक	मुस्तक	
	खदिर	सालसारादिगणानुपान	अरिष्ट
	असन	न्यग्रोधादि गणारिष्ट	

तैल विधाने–		
तुवरक तैल	आसव	
भल्लातक तैल	सालसारादि	
महातिक्तकवामसर्पि	न्यग्रोधादि	–आसव–सुरा–अवलेह
तिक्तक सर्पि.	आरग्वधादि	

आवल्गुजम्

महावज्रक तैल

चरक–		
मध्वासव	श्वेतकरवीर पल्लवादियोग (तैल)
कनक विन्द्वारिष्ट	तिक्तेक्ष्वाक्वादितैलम्
खदिरारिष्ट	कनकक्षीरीतैलम्

महातिक्तकघृत
तिक्तपट्पलघृत
खदिरघृत
रसमाणिक्य
तालकेश्वर

प्रदरहर—एंटी इमेनोगाग (Anti emmanogogue)

पर्याय—प्रदर हर, प्रदर नाशक, असृग्दोष विनाशन, शोणित स्थापन, रक्त प्रशमन, शोणितातियोग प्रशमन, रक्त पित्तहर।

परिभाषा—ऋतुकालेऽभृतरक्त माधिक्य स्तंभयेद्धि यत्।
शोथ, शोष हरं वल्य नाशकं प्रदरं हि तत्।

अर्थात्–वह औषधिया जो ऋतु काल के अधिक रक्त स्राव को रोक कर गर्भाशय के शोथ, शोष को दूर करके रक्त स्राव को नष्ट कर शरीर की स्थिति सुधार देती है उन्हे प्रदरहर कहते हैं।

ज्ञातव्य—प्रदर शब्द का अर्थ कष्टपूर्वक अधिक रक्त का स्राव होना है किन्तु ध्यान पूर्वक प्रदर रोग की लक्षणावली का अध्ययन करे तो ज्ञात होगा कि दोप भेद से जो रक्त पीत सित असित स्राव निकलते हैं वह एक स्थान केनही अपितु गर्भाशय का प्रदाह, गर्भाशय ग्रीवा प्रदाह, गर्भाशय शिरा प्रदाह, गर्भाशय नलिका प्रदाह तथा योनि की श्लैष्मिक कला प्रदाह इत्यादि का सामूहिक स्वरूप है। अत यहा पर अधिक स्राव को रोकने वाली औषधियो का वर्णन जिसमे रक्त स्रावाधिक्य भी सम्मिलित है वर्णन किया गया है। स्थानानुसार स्राव के विभिन्न भेद होते हैं। यथा—

गर्भाशय प्रदाह में—स्राव रक्त वर्ण या रक्त स्राव (Pure Blood)
जलवत स्राव (Watery)
मास के छिछडे मिले स्राव (Clots and Blood Clots)
चिपचिपा पिच्छिल स्राव (Slimy)
दुर्गंधित स्राव (Putrid)
विस्रगधी व पूति गधी (Fetid Smell)
अम्लगधी (Sour Smelling)
रज्जूवत् स्राव (String like things)

गर्भाशयावरण प्रदाह—जल सदृश पतला युक्त स्राव
गर्भाशय ग्रीवा प्रदाह—पिच्छिल, श्लेष्म, मय पीत वर्ण दुर्गन्ध युक्त
बीजाशय नलिका प्रदाह—पतला पूय युक्त दुर्गन्धित
योनिस्राव—पिच्छिल गाढा गोद सदृश

इन सबका ठीक सामजस्य चरक ने प्रदर की समाप्ति मे दिया है। यथा–

रक्त प्रमाण मुत्क्रम्य गर्भाशय गता शिराः। रजो वहा समाश्रृत्य रक्त मादाय तद्रज। यस्माद्विवर्धयेत्याशु रसभावाद्विमानता। तस्मादसृग्दरमाहुः...

अतः रक्त प्रमाण से अधिक रक्त व अन्य रक्त स्रावो को दूर करने वाली औषधियों का यहा पर वर्णन किया गया है।

१. **प्रदर हर द्रव्य**—सुश्रुत-रोध्रादि गण, लोध्र पलाश, श्योनाक, अशोक, भारगी, कायफल, एलवालुक, शल्लकी, मजिष्ठा, कदम्ब, शाल, कदली।

२. **मुस्तादि गण**—मुस्ता, हरिद्रा, हरीतकी, आमलकी, अभया, कुष्ठ, हेमवती, वचा, पाठा, कटु रोहिणी, ब्रह्मदडी, अतिविषा, एला, भल्लातक, चित्रक।

३. **शोणित स्थापन**—मधु, मधुक, लाजा, और, प्रियगु, मोचरस, मृतकपाल, लोध्र, गैरिक, शर्करा आदि।

४. **दार्व्यादि क्वाथ**—दार्वी, रसाजन, वृष, अब्द किरात, बिल्व, भल्लातक।

५. **अन्य सहयोगी औषधियां**—लोह, स्वर्ण माक्षिक, मडूर गैरिक, प्रवाल दुग्ध पाषाण, स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, शल्लकी निर्यास, खून खरावा, आयापान ऊन की राख, कार्क की राख, अहिफेन सविदासार आदि।

प्रदर चिकित्सा—

६ **तंडुलीयक मूल**—चौलाई का मूल तडुलोदक से पीने पर शीघ्र ही अधिक रक्तस्राव को रोक देता है।

७. **अशोक घृत**—१ से २ ताले की मात्रा मे यह लाभ प्रद होता है।

८. न्यग्रोध घृत व क्षीर कल्याण घृत मात्रा १ से २ तोले तक।

९. चन्दनादि चूर्ण भै. र. मात्रा ३ माशे तडुलोदक से।

१०. **पुष्यानुग चूर्ण**—पुष्यानुग चूर्ण की मात्रा ३ माशे। यह सब प्रकार के प्रदरो मे लाभ दायक माना गया है। अनुपान तडुलोदक मधु।

११. **धात्र्यादि चूर्णम्**—आमलक हरीतकी रसाजन को तडुलोदक से।

१२. **उत्पलादि चूर्ण**—रक्तोत्पल, रक्त कार्पास मूल, करवीर मूल लाल गुडहल का मूल, वकुल मूल. सफेद जीरक, कृष्ण जीरक, रक्त चदन का चूर्ण तडुलाम्बुना पीने से रक्तस्राव बद हो जाता है।

१३ **शरपुखामूल**—अकेले शरपुखा मूल को तडुलाम्बु से पीने पर प्रदर दूर होता है।

१४. **प्रदरारि लोह**—मात्रा २ माशे मधु से।

१५. **प्रदर रिपु**—मात्रा २ गुजा

१६ **प्रदरारि रस**—मात्रा ६ से ४ गुंजा।

१७ **अशोकारिष्ट**—मात्रा २ से ३ तोले।

१८. **पत्रांगासव**—मात्रा २ से ५ तोले तक।

१९. **लक्ष्मणारिष्ट**—मात्रा ढाई तोले।

ऊपर वाले योग रक्तातिस्राव को वद करते हैं। तथा यह सब प्रकार के स्राव को भी वद करते हैं।

इनके अतिरिक्त निम्न लिखित औषधिया भी लाभप्रद होती है।

१. मधुकादि चूर्ण
२. धात्र्यादि चूर्ण
३. पुष्करावलेह
४. प्रदरांतक लोह
५. चन्द्राशुरस
६ सर्वांग सुन्दर रस

दाह प्रशमनार्थ—लाजा, चदन, काश्मर्यफल, मधुक, शर्करा, नीलोत्पल, उशीर, सारिवा, कुटकी, ह्रीवेर यह भी प्रदर मे लाभप्रद होते हैं जब कि प्रदाह अधिक होता हो।

शोथ गर्भाशय—गर्भाशय, ग्रीवा या योनि में शोथ रहने पर दशमूल क्वाथ से प्रक्षालन और आभ्यतर सेवन से लाभ होता है।

हेतुपरिवर्जन—अधिक लवण अम्ल गुरु द्रव्य कटु तथा विदाही स्निग्ध पदार्थ कृशरा पायस दधि शुक्त मस्तु सुरा आदि द्रव्य अधिक सेवन करने से स्त्रियो को प्रदर होता है। इनका परित्याग करना चाहिए।

अत्यार्त्तव हर औषधियां–एंटी मेनोन्हेजिया—

रजोत्पादक हेतुओ से वृद्धि होकर पित्त प्रदर की तरह जब रक्त स्राव अधिक हो जाता है तो जो द्रव्य इस विकृति को दूर करके स्राव को रोक देता है उन्हे अत्यार्त्तव हर कहते हैं।

द्रव्य यदहृद्यो रक्त स्रावाधिकं ऋती।
विकृति, शोधयित्वा हि तदार्त्तव हरं परम्।

द्रव्य—अशोक लोध्र आमलक गैरिक लाक्षा, उदुम्बर, भगा, बोल, मोचरस खून खराबा आयापान बीजा बोल शल्लकी निर्यास काक की राख ऊनकी राख सविदासार, धातकी, अहिफेन आदि द्रव्य प्रयोग करने पर अधिक खून को दूर कर देते है।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद् गर्भप्रपातादति मैथुनाच्च
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च, भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा वा
त श्लेष्मपित्तानिल सन्निपातै श्चतु प्रकार प्रदरं वदन्ति।

अन्यहेतु—जिससे रजस्राव कम या अल्प होता है।

१ पाण्डु रोग–रक्ताल्पता
२. अतिकृशता
३ अतिस्थूलता
४ गर्भाशय और डिम्बाशयो मे अल्प रक्त सग्रह
५ कभी कभी युवा स्त्रियो मे भी रक्ताल्पता हो जाती है।

इनके अतिरिक्त—शिर शूल, उदरवृद्धि या उदर रोग, कोष्ठबद्धता, अतिसार, ज्वर, कास, अपस्मार–योषापस्मार हृत्कम्प, ऐंठन (Cramps) अर्श, आक्षेप, योनि रोग, गर्भाशय प्रदाह, गर्भशोष, प्रदर–बहुमूत्र–सोमरोग आदि मे भी आर्तव का स्राव उचित मात्रा मे और ठीक समय पर नही होता।

रजस्राव मे विभिन्न प्रकार के द्रव्य विकार भेद से आते हैं। चिकित्सक को उसका ज्ञान होना अत्यावश्यक है। यथा—

१. विशुद्ध रक्त स्राव (Pure Blood)
२. जलवत स्राव (Watery)
३. जमा हुवा मास खडवत (Clots)
४. बहुत चिपचिपा (Sling)
५. दुर्गन्ध युक्त (Fetid smell)
६. सड़ा हुवा (Putrid)
७. दाहपूर्वक (Ardult)
८. अम्लगंधी (Sour smelling)
९. रज्जूवत (Stringlike)
१०. रक्त–पीत्त–नील–कृष्ण वर्ण युक्त

रजःस्राव का स्वाभाविक वर्ण—किंचित रक्त, कृष्ण–पाण्डु मलिन वर्ण (Brown) और हरित वर्ण (Greennish) युक्त। और प्रत्येक स्त्री को रजः स्रावकाल मे मद कटि वेदना, किसी को शूल आदि होते है।

चिकित्सा—अत उपर्युक्त हेतुओ मे प्रधान हेतु को दूर करने की क्रिया प्रथम करना चाहिए।

चन्द्रांशु रस—योनि गर्भाशयस्थं चेत पित्तं सदूषये दसृक्।
साऽरजस्का मता कार्ष्यं वैवर्ण्य जननीभृशम् ॥

केश्यम्—

परिभाषा—जो द्रव्य केशो के लिये लाभप्रद हो उन्हे केश्य द्रव्य कहते है। सामान्य रूप से 'केशेभ्यो हितम् केश्यम्' ऐसी परिभाषा मानी गई है।

केश्य कर्म का क्षेत्र—केश्य द्रव्यो का क्षेत्र बहुत ही वृहत है। केश मे कई गुण हैं अत तदनुकूल क्रिया कर द्रव्य इस क्षेत्र मे आते हैं। यथा—बालो का कृष्ण वर्ण का होना, चमकदार होना, मृदु होना, घूंघर वाले होना, लम्बे होना, स्निग्ध होना, शीतोष्ण से रक्षा करना, मोटा या पतला रोम होना।

संज्ञायें—चरक व सुश्रुत मे इस सबध की कई सज्ञायें मिलती है व तत्तद कार्य कर द्रव्य के गण भी बनाये गये हैं। यथा—

१ केश्यम्, २. केशरजनम्, ३ कृष्णता करम्, ४ केश बहल करम्, ५. मार्दव करम्, ६. केश स्निग्ध करम्, ७ केश बहुत्व करम्, ८ पलितापहम्, ९. पलित हृत, १० पलित नुत, ११. केश व्याकरणम्, १२ केश सजननम्, १३ लोम सजननम्, १४. लोम सवेजनम्, १५ हरि लोम्नि कृत, १६ केश नाशनम्, केशघ्नम्, १७ लोम निवारणम्, १८ लोम हरम् आदि आदि सज्ञायें मिलती हैं।

इन विषयो पर विभिन्न दृष्टि कोण से विचार करेगे।

केश्यम्—ऊपर लिखे हुवे कई कर्म केश्य मे आ जाते हैं। अत केश्यम् मे निम्न विचार आ सकते हैं। यथा—कृष्णकरम्, दैर्घ्य करम्, केश मृदु करम्,

केश स्निग्ध करम्, केश वहुत्व करम्, केश व्याकरणम्। लोम सजननम् आदि आदि।

लोम का एक अध्ययन—लोम जन्मजात वस्तु है। प्रथम ६ मास मे बाल अस्थिर रहते हैं। इसके बाद ढाई वर्ष तक जाकर स्थिर हो जाते हैं। पाच वर्ष से पच्चीस वर्ष तक स्थिर बने रहते हैं और इस काल मे अधिक चिकने दृढ मृदु लम्बे और मनोहर होते हैं।

बाल गिरने की आयु—बाल यो तो गिरते और ऊगते रहते हैं। किन्तु जब समूह मे गिर जाते हैं तो विचार करना पडता हैं। यह यदि स्थायी हो जाय तो खालित्य का स्वरूप धारण करता है।

कारण—इसके गिरने के कई कारण हैं। यथा—अधिक क्रोध करना, शोक करना, भय करना, परिश्रम करना, यह प्रधान कारण हैं जब कि बाल की मूल मे का पित्त बिगड जाता है और बाल की नियमित क्रिया मे विघ्न डालता है।

स्थानीय विकृति—बालो मे तेल न डालना, उनमे रूक्षता पैदा हो जाना। खाज का बाल मे हो जाना, सफाई न रखना। सफाई के लिये अधिक कास्टिक मिले सोप का लगाना। पेट्रोलियम मिश्रित सुगधित तेल का लगाना बालो के सौंदर्य के लिये उनको अधिक गर्म करके यथा—इच्छा उन्हे काढना घुघराले बनाना, टाइट हेयर ड्रेसिंग करना। बालो की दुर्बलता के रोग बाल की जडो को बार बार कघी करके उन्हे रगडना।

शारीरिक दोष—मानसिक चिता, अधिक दिमागी काम करना, मादक द्रव्य का पान करना, ज्वर आन्त्रिक ज्वर से पीडित होना, अधिक दिन रोगी रहना, अधिक स्त्री सगम करना। प्रमेह से पीडित रहना, उपदश, सुजाक, एक्जिमा का होना, टायफाइड का होना खानदानी खल्वाट रहना।

बाल गिरने के हेतु—शरीर मे लौह और चूने की कमी।

भेद—खालित्य के भेद। तीन प्रधान हैं यथा—१ अस्थायी बाल गिरना। २ खानदानी बाल गिरना या खल्वाट होना। ३. वृद्धावस्था का बाल गिरना या पकना।

अस्थायी बाल गिरना—हमेशा बाल ४५ वर्ष की आयु के बाद गिरते हैं या पकते हैं। परतु २० वर्ष से ४५ के बीच ही बाल गिरना अस्थायी बाल गिरना या झडना कहलाता है। विशेष कर केश भूमि मे नाडी की क्रिया का ह्रास, रक्त के बहाव का ठीक न होना। विशेष चिन्ता करना। यथा—विद्यार्थी परीक्षा के चक्कर मे परेशान होते हैं या बार बार फेल होने पर चिंतित रहते हैं।

बाल की बनावट—आधे वर्ग इच की त्वचा मे निम्न अश होते हैं।

१ शीत व उष्ण भाग को ग्रहण करने वाले नाडियो के अतिम भाग २ दश लाख सूक्ष्म सेलो का होना ३. तैल बनाने वाली ग्रथियो का होना ४ सूक्ष्म रक्त वाही नाडियो का होना, पसीना बनाने वाली ग्रथियो का रहना, बालो का होना, ८ हजार सावेदनिक नाडी का होना, नाडचत भागो का अधिक सावेदनिक होना। वेदना ग्रहण करने वाली नाडियो का रहना आदि आदि विभाग मिलते हैं।

इस प्रकार इस विभाग की क्रिया कितनी पेचीदी है इसका अनुमान स्पष्ट लगाया जा सकता है।

वालो का कार्य– वाल हमारे सिर को उष्णता से बचाते है। सिर की गर्मी को नियंत्रित करते हैं। शिर की अस्थि सधि की रक्षा करते हैं। शरीर मे अल्ट्रावायलेट किरण को शोषित करके ए व डी विटामिन को संरक्षित रखते है। २४ घटो मे स्वेद सिर से निकाल कर उष्मा को वरावर रखते है। स्वेद ग्रथियो मे सावेदनिक व केन्द्रीय नाडी मडल केन्द्र व प्रातीय नाडियो के प्रतान आते है अत' यह शिर की रक्षा मस्तिष्क की रक्षा व स्वेद निष्काशन की क्रिया व सिर मे रक्त वहाव की क्रिया का सचालक माना जाता है।

वालो की क्रिया पर पीयूष ग्रथी और गलग्रथी का प्रभाव रहता है यह वालो की वृद्धि मे सहायक होते हैं। उपसावेदनिक नाडी मडल के कारण श्लेष्म जातीय कोलइनर्जिक क्रिया का सहयोग होता है।

वाल गिरने के कारण—क्रोध, शोक, श्रम व चिंता के कारण शरीरोष्मा शरीर से सिर मे जम कर केश भूमि को कमजोर करके बालो को कमजोर वना देते हैं और बाल झडने लगते है। वात व पित्त की क्रिया विगुण होकर त्वचा की उष्मा वढा कर रोम मूल की क्रिया व स्थानीय त्वचा मे विषमता पैदा करके सिर को शुष्क बना देते हैं और ऊपर से त्वचा शुष्क होकर अरूपिका पैदा करती है। यह जव वहुत वढ जाता है तब त्वचा मे खुजली और अरूसी पैदा करके कडू पैदा करके वाल को कमजोर बना देते है। वह गिरने लगते हैं। कभी कभी सिर के क्रिमि भी वालो की जड कमजोर करके उसे गिराने के हेतु बनते है।

वाल का झड़ना—वाल झडने का अध्ययन प्राचीन काल मे चिकित्सकों ने किया था। इस विषय मे तीन प्रकार के रोगो का उल्लेख मिलता है।

१ **इंद्र लुप्त—**रोम कूपो मे जाकर जब पित्त वात के साथ मूच्छित होकर रोम को या वाल को झडाने लगते है।

२. **अरूंसि—**कफ व रक्त के दोष से सिर मे अरूसी को पैदा कर देते हैं इसमे व्रण व क्लेद हो जाते है इसके वाद वाल की जडे कमजोर होकर बाल झडने लगते हैं। कभी कभी क्रिमि के कारण भी वाल झडते हैं।

पलित—क्रोध, शोक, श्रम से सिर की उष्मा वढ जाती है और केश भूमि मे पित्त जाकर उन्हे पका देता है और बाल भी झडते हैं।

इनके अतिरिक्त आज कल साबुन लगाने का अधिक रिवाज चल गया है। वालो की जड मे कई वार सावुन लगा कर अच्छी तरह धो नही पाते अत उनकी जड मे क्षारीयता बढती जाती है और वाल दुर्वल होकर झडने लगते हैं। सस्ता सावुन लगाने से गरीव लोगो के वाल झड़ने लगते है। यह पहले सिर के मध्य से झड़ता है। इसकी चिकित्सा निम्न है।

चिकित्सा क्रम—१. नस्य २ लेप ३. परिषेक ४. अभ्यग

१. नस्य–अणु तैल का नस्य। २ विदारिगधादि तैल। ३. जीवनीय गण सिद्ध तैल। ४. क्षीर पट्पल घृत। ५ प्रपौंडरीकादि। ६. मैधवादि तैल। ७ नीलिनी तैल। ८ सैरेयक तैल।

इन औषधियो के तैल का नस्य लगातार लेने से बाल झड़ना वद हो जाता है।

लेप—१. छोटी दुग्धिका का व करवीर मूल का लेप क्षीर मे पीस कर लगाना चाहिये।

२. प्रियाल यष्टीमधु जीवनीय गण के द्रव्य कृष्ण तिल का लेप क्षीर के साथ लगाना चाहिये।

३ गभारी सहचर व केतकी मूल का त्रिफला व लौह चूर्ण का क्षीर पिष्ट लेप।

४ त्रिफला नील लौहरज व भृगराज का लेप।

५. आम्र मज्जा हरीतकी आमला विभीतक लौह चूर्ण का लेप।

रंजन व बृहण—तिल आमलक, पद्म–किंजल्क, धात्री फल, मधुक मधु का लेप बाल काला बनाता हैं।

२ नीलोत्पल किंजल्क धात्री फल मधुयष्टि का लेप।

३ लौह अम्ल रस त्रिफला का लेप।

स्निग्धता कर—गोक्षुर तिल पुष्पी मधु घृत का कल्क लेप करने से।

२. मधुयष्टि कमल मृद्वीका तैल व घृत का क्षीर के साथ लेप लगाना।

क्रिमिघ्न–अर्क स्नूही लागली भृगराज वत्सनाभ गुजा इन्द्रायण सर्षप साधित तैल का लेप व अभ्यग क्रिमि नाशक है।

२. तिक्त पटोली का स्वरस या क्वाथ से धोना क्रिमि नाशक है।

३ जाती करज वरूण चित्रक करवीर क्वाथ सिद्ध तैल क्रिमि नाशक है।

४ सप्तपर्ण निम्ब महानिम्ब अरिष्टक के क्वाथ से प्रक्षालन क्रिमि नाशक है।

तैल का प्रयोग—निम्न लिखित तैल मर्दन करने से गिरते हुवे बाल रुक जाते हैं।

१ षड्बिन्दु तैल २ कुकुमादि तैल ३. त्रिफला तैल ४. महाभृगराज तैल ५ लक्ष्मी विलास तैल ६. मालत्यादि तैल ७. चन्दनादि तैल ८. महा नीलिनि तैल ९ सैरेयकादि तैल १० अणु तैल।

प्रयोग—इन तैलो का सिर मे मालिश करने और नस्य लेने से गिरते हुवे बाल रुक जाते हैं। बालो की जडें स्निग्ध हो जाती हैं और क्षारीयता नष्ट होकर बाल कोमल और काले हो जाते हैं।

केशरजक योग—१. त्रिफला, नील, लौह चूर्ण को भृगराज के रस मे पीस कर बालो मे लेप लगाने से काले बाल होते हैं।

२. त्रिफला लौह चूर्ण भृंगराज रस नारिकेल मे एक मास तक रखकर लेप लगाना।

३. उत्पल और दूव इन दोनो को एक पात्र मे रखकर १५ दिन भूमि मे गाड़ देवे। बाद मे लगावे।

४. भृंगराज पुष्प, जपा पुष्प, मेषी दूव के साथ पीस कर लौह पात्र मे कुछ देर रखकर लेप लगाना।

५. पारद और सीसे की कज्जली शंख चूर्ण और काजी के साथ पीस कर लेप लगाना।

६. लौह चूर्ण, आँवले का कल्क, जपा पुष्प का कल्क मिलाकर बालो में लगाने से।

७. निम्ब वा असन के वीज भृंगराज रस से भावित कर तैल निकाल कर लगाना।

८ निम्व तैल का सेवन एक मास तक २० बूद क्षीर मे मिलाकर एक मास तक गोदुग्ध का सेवन करने से वाल काले हो जाते हैं।

केश्य द्रव्य—मधुर स्कध के द्रव्य आमलक तिल मधुयष्ठि आत्म गुप्ता माजूफल त्रिफला भृंगराज लौह भस्म माक्षिक भस्म प्रवाल वा मुक्ता भस्म यह सव केशो के लिए हितकारक हैं।

केशवर्धन—नारिकेल, तिल, विभीतक, आमलक, हरितकी, गुजा यह सब केशवर्धक हैं।

केश रंजन—भृंगराज केशराज विभीतक मज्जा आमलास्थि त्रिफला नीलिनी मदयतिका लौह मडूर सैरेयक यह केश रजक द्रव्य हैं।

कुछ आवश्यक हिदायतें—१. नित्य तैल का सिर मर्दन या नस्य लेने से सिर के वाल नही झडते। २ बाल को सावुन से धोने के बाद तिल तैल मे नीवू का रस मिलाकर लगाना चाहिये। ३ यदि वाल झडते हो तो साबुन न लगाकर वेसन आमलक से सिर को धोना चाहिये। सिर मे रूक्षता होने पर हरे तिल के पत्र को हाथ मे रगड कर पानी के साथ मिलाकर उसका चिकना लुवाव सिरमे लगाना चाहिये।

सस्ता साबुन लगाने पर सिर की रूक्षता दूर करने के लिये ग्लीसरीन अल्कोहल व नीवू के रस का द्रव वनाकर सिर मे लगाने से क्षारीयता नष्ट होती है।

कृमिघ्नम्

Anthelmintic, Vermifuge, Vermicide

परिभाषा—वे द्रव्य जो उदरगत क्रिमि को नष्ट कर देते हैं अथवा वाहर निकाल देते हैं उन्हे क्रिमिघ्न कहते हैं।

इसके तीन प्रधान भेद हैं—१. कृमिघ्न—क्रिमिसूदन—क्रिमिनाशन
२. कृमि प्रशमन ३. क्रिमिविकारघ्न

प्रथम वर्ग—कृमिघ्न–क्रिमिसूदन, क्रिमिनाशन इस वर्ग मे वह औपधियां आती हैं जो कि पेट के भीतर के क्रिमियो को नाश कर देती है। क्रिमियो को मारने–गिराने या उत्पन्न होने के क्रम को नष्ट करने वाली औपधिया इस वर्ग मे सम्मिलित हैं।

द्वितीय–कृमिप्रशमन—इस वर्ग मे वह औपधिया आती हैं जो क्रिमियो को वाहर निकालती हे अथवा उन्हे उत्तेजित कर–विह्वलकर वाहर निकालने को प्रेरित करती है अथवा उन्हे मारती और वाहर निकालती हैं।

तृतीय वर्ग—इसमे वह औपधिया आती है जो कृमियो से उत्पन्न रोगो के प्रशमनार्थ रक्त इत्यादि धातु आमाशय या आत्र मे रहे सूक्ष्म क्रिमि उनके वीज या अण्डे को नष्ट करने वाली होती है।

औषधि द्रव्य—कृमिघ्न वर्ग के नाम से १० औपधियो का वर्णन किया है। यथा—**चरके**—

अक्षीव	विडग	वृपपर्णिका
मरिच	निर्गुण्डी	आखुपर्णिका
गण्डोर	किणिही	
केवुक	श्वदष्ट्रा	

सुश्रुत-के गणो मे कई वर्ग हैं जो कृमिघ्न हैं यथा—

१ अर्कादि गण	३. त्रप्वादि गण
२ सुरसादि गण	४ लाक्षादि गण

१ अर्कादि गण—श्वेतअर्क, रक्तार्क, करज–लता करज–नागदंती–अपामार्ग, भार्गी, रास्ना–कलिहारी–श्वेतापराजिता, नीलापराजिता, वृश्चिकाली–ज्योतिष्मती–इगुदी।

२ सुरसादि गण—श्वेततुलसी–रामतुलसी, मरुवक–अजवला, क्षुद्र तुलसी, रोहिष, कतृण, समुख (लघु वाकुची) वाकुची–कासमर्द–छिक्कणी, अपामार्ग, वायविडग, कायफल, निर्गुण्डी, गोरक्षमुण्डी–मूषा कर्णी, भारगी, काकजघा–काकमाची–विषमुष्ठि।

त्रप्वादि गण–बग–नाग–ताम्र–रजत–लौह–सुवर्ण–मण्डूर।

लाक्षादि गण—लाक्षा	करवीर	दारुहरिद्रा	मालती
आरग्वध	कटफल	निम्ब	त्रायमाण
कुटज	हरिद्रा	सप्तपर्ण	

अन्य–पारद–गधक–सखिया–हरताल–हिंगुल, मैनशिल

पलाशवीज	हीग	भल्लातक	पारसीकयवानी
अनारमूल की छाल	कचूर	डीकामाली	किरमाणीअजवायन
अतिविपा	पोदीना	कर्पूर	अजवाइन
कालीजीरी	वनपलाण्डु	मालकागनी	एरण्ड तैल
		इन्द्रजौ (अनन्नास फल स्वरस)	

तारपीन तैल
निलगिरी का तैल

लक्षण–वाम–गुदाकण्डू–वमन–उदरशूल – अतिसार–क्षुधा– आक्षेप–पाण्डु –निर्बलता ।

(१) गण्डूपदोपमा–१०–१६ इंच लम्बे मादा–६–१० पुरुष Round worm, Ascaris, Lumbricoid कहते हैं ।

लक्षण–मदज्वर–मुख दुर्गन्ध–नासाकण्डू–निद्रा मे दात कटकटाना–आक्षेप –मस्तिष्क दाह अवरोधज–कामला अतिसार–प्रवाहिका ।

(३) रुढ धान्याकुराकारा–टीनिया एकिनोकाक्स Taenia Aceno-cocus (Dog taenia)

१–६ इच । १–३ वर्ष–कुत्ता बिल्ली लोमडी–रीछ–गीदड, भेडिया ।

(२) ट्रिकिना स्पाइरेलिस–Trichena Spiralis (Trichi-nella Spiralis)

पतले, सूत्रवत् १।८ मादा १।१८ नर । सूकर–खरगोश–बकरे–कुत्ते–चूहे

लक्षण–स्नायुवेदना–खिचाव–शोथ–ज्वर–श्वासरोग–ज्वरदाह– उदरशूल–अतिसार–(श्वेत कण की वृद्धि)

(३) एंकिलोस्टोमा ड्यूडिनेली (Ankylostoma duodenle) अत्राद या हुक वर्म Hook worm

लक्षण — सूचवत्–पतले–गोल–श्वेत–१–३ इच नर १–२ स्त्री

रोग–पाण्डुशूल–अतिसार, श्वास–शोथ–यकृतवृद्धि–हृदय विस्तार

(४) आक्सीयुरिस वर्मी कुलेरिस–Oxyuris Vermicularis चुरवे–Thread worm मादा १–८ इच–न० १–८ इच

लक्षण–गुदद्वार–खुजली–आक्षेप

(५) बिलहार्जिया हिमेटोबिया–Bilharzia Haematobia सूत्र क्रिमि नर १–२ इच–स्त्री १।४ इच–प्रतिहारिणी शिरा वृद्ध मूत्राशय मे लक्षण–उदरशूल–अतिसार–ज्वर–पाण्डु–काम–यकृत प्लीह–वृक्कशोथ–रक्तमेह

(६)फायलेरिया बैंक्राफ्टी (Filaria bancrofti) श्लीपद–पिष्ट-मेह, मादा १ इच–नर १।। इच–श्लीपद–विषमेह

(७) फायलेरिया मेडिनेसिस–Filaria medinensis

नर–१ इच–मादा ४० इच तक–स्नायुक रोग

महर्षि चरक ने क्रिमि चिकित्सा मे तीन बाते लिखी हैं—

१ **सर्वक्रिमीणामपकर्षणम्**

२ **तत प्रकृतिविघात.**

३ **अनंतर निदानोक्तानां भावानामनुपसेवनम् इति ।**

अपकर्षणम्–वमन–विरेचन–शिरोविरेचन, आस्थापनम्

प्रकृतिविघात–कटुतिक्त–कषाय–क्षारोष्णानां द्रव्याणामुपयोग

निदानपरिवर्जनम्–अपथ्य सेवनम्

अपकर्षणमेवादो क्रिमीणा भेषज स्मृतम् ।
ततो विघात प्रकृतेर्निदानस्य च वर्जनम् ।
अयमेवविकाराणा सर्वेषामपि निग्रहे ।
विधिर्दृष्टस्त्रिधा योऽयं क्रिमीनुद्दीश्य कीर्तित. ।।
—चरक चि० अ० ७–२९, ३०

प्रकृतिविघातकर भाषा मे–उद्वेजन

प्रतिक्षेपण–अवघातन–मूर्च्छन मारण सब सम्मिलित है। औपधि देने के बाद विरेचन देना आवश्यक है। भिन्न भिन्न औपधियो के कार्य भिन्न भिन्न होते है और विरेचन मे निकल जाते हैं।

विशेष क्रिमिघ्न (Anthelmintic specefic)––विशेष प्रकार के क्रिमि पर विशेष प्रकार की औपधि देना उचित होता है। इससे क्रिमि विषाक्त होकर मर जाते हैं और विरेचन से बाहर निकाले जाते है।

गण्डूपद Round worm
सैंटोनीन (२।। रत्ती) रात्रिको
चेनोपोडियम तैल–१० बूद
सैंटोनीन–मादक है क्रिमियो को बेहोश करता है अतः विरेचन देकर निकालना चाहिए।
यह दृष्टि के लिये हानिकारक है अत रात्रि को देना चाहिए।
खुरासानी अजवायन, तारपीन तैल

कद्दूदाना
मेलफर्न
कम्पिल्लक
अनारमूलत्वक
कद्दू के बीज

अकुसक्रिमि–Hook worm
चुरवे
अजवायनसत्व
वीडा नेपथाल
चेनोपोडियम तैल
Thymol थायमोल २० ग्रेन
Nepthal १० ग्रेन
कैपमूल के २ घटे के अतर से देना ३ वार विरेचन पश्चात ।
वायविडग
मूसाकर्णी
नागरमोथा
कर्पूर
केशर
अजवायन
इन्द्रजौ
हल्दी
कपीलु
पलाशवीज
हीग
एरण्डतैल
तारपीनतैल
यूकेलिप्ट्सतैल

सूत्रक्रिमि (Thread worm)
१. लवण वस्ति
२ तिक्त रस वस्ति
चित्रक। किसी एक का क्वाथ सप्तपर्ण। नमक मिलाकर वस्ति द्वारा से प्रयोग करे।
एलुवा
कालम्वा

कफज क्रिमिनाशक
१ क्रिमिमुद्गर
२ मुस्तादिक्वाथ
३ कृमिघ्न गुटिका
(आमाशय मे उत्पन्न क्रिमि नाशक)
४. क्रिमिकुठार रस ।
५. त्रिफलाघृत–१–२ तो दिन मे २ वार
६ पारसीक यवानी आदि चूर्ण
३ माशे खुरासानी अजवायन +नागरमोथा पीपल–काकडा

उदरावेष्टा––
कद्दू के बीज की गिरी ५ तोले
कम्पिल्लक। सम भाग चूर्ण

सिंगि–वायविडग अतीम का चूर्ण
७ वायविडग–२ माशे २ वार–कई दिन
८ अजवायन चूर्ण ३ माशे सुबह शाम
९ इन्द्रजौ का चूर्ण १ माशे ३ वार
१० कम्पिल्लक–३ माशे एरण्ड तैल के साथ
११ पलाशबीज ३–४ माशे तक के साथ

उमारे रोन। मात्रा–६ रत्ती
वायविडग। अजवायन सत्व के साथ
करजबीज का चूर्ण। १ तृण
(१५ दिन लगातार)
मरम्श–मेलफर्न

अन्य द्रव्य–हीग–मनाय–कटेरी–चिरायता–गूमा–मुरदासग–पुदीना–नागर मोथा–अखरोट–बाकुची–सोठ–हुलहुल–रेतचीनी (वकायन के बीज व जड) निंब की छाल।

श्लीपद–क्रिमि—सोडियम–एन्टीमोनापल टार्टरेट–स्रीवोकन–हेटराजन–सोमल–अपामार्ग–सहदेवी–श्लीपद गजकेशरी–समीरपन्नग – नित्यानद रस–रस माणिक्य–हरताल भ म।

उदर क्रिमिघ्न विरेचक—(Purgative Anthelmintic)

यह औषधिया क्रिमियो के ऊपर मारक और विरेचक प्रभाव रखती हैं।

१ कम्पिल्लक–२–८ माशे–गुड के साथ। खाने पर वमनेच्छा होती है। प्रयोग–सूत्रक्रिमि–गोल क्रिमि मे
२. इन्द्रायण–क्वाथ २–५ तो (सत्व २–४ ग्रेन)
३ उशारेरेवन्द १।४–१ रत्ती (मूत्र का वर्ण पीला–उदरवेदना–वमन–रेचन)
४ जलापा–२–३ माशे–क्रिमिनि सारक
५ सवमूनिया–एक प्रकार का गोद

क्रिमि विकारघ्न (Preventine Anthelmintic)

१ पारद	६ इन्द्रजौ	११ अतीस	कीटमारी–
२ गधक	७ सर्पगधा	१२ पलाशबीज	डीकामाली (हिंगुपत्री)
३ हिंगुल	८ चिरायता	१३ अजवायन	
४ सखिया	९ हीग	१४ वायविडग	
५. कुपीलु	१० वच	१५ एलुवा	

पलाशबीज–मृदुविरेचक–क्रिमिनाशक है मात्रा २–३ माशे

वाह्य प्रयोग–वाह्य क्रिमि नाशक–पामा–दद्रु व क्रिमिजन्य रोग नाशक लेप लगाने पर यूका–लिक्षा मारक।

कीडामारी (कडू)–कटु–उष्णवीर्य–ज्वर–शोथ–कृमि नाशक
डीकामाली–उष्ण कटु–तीक्ष्ण, दीपन, कफघ्न, वातहर, विबधनाशक, सज्ञास्थापन

हिंगुपत्री–यह गोद के रूप मे मिलता है। मात्रा–२ रत्ती
थायमल–अजमोद–अजवायन–पुदीना–पिपरमेट

यमानिका–स्टेरॉप्टिन (Stearopten) नामक तेल

कुमिन–Cumin थायमिन–Thymin

टर्पिन–Terpin अजवायन का फूल–(Crude Thymol)

यमानी मे Antiseptic thymol २ प्रतिशत Essential oil अजवायन का तैल जिसमे ४०–५०% Thymol रहता है। (Chopra)

किरमानी अजवायन–Artemisia Meritima (वूंई बूटी)

७०००–११ फीट अफगानिस्तान बलूचिस्तान–ईरान–कुमायु–गढवाल।

पुष्पो मे–सेंटोनीन १.०७५ प्रतिशत निकलता है।

गुण–विरेचक–क्रिमिनाशक–विषनिवारक

कोमान — का कहना है कि यह गण्डू पद की अपूर्व दवा है।

चोपरा–पुष्प–२–४ ड्राम तक

कीडामारी–कीटारि–(Aristolochia Bracteata) हि किटमार गुण–कडवी–विरेचक–क्रिमिनाशक–स्वेदजनक–ज्वरघ्न।

क्रिमिघ्न–पारिभद्र–धुस्तूर–सीताफल। भट्ट

१ नागरमोथा–आखुपर्णी–पीपल के साथ–क्रिमिघ्न २ यवानी + लवण

विडगादि तैल हरिद्राखण्ड क्रिमिघातिनी

धुस्तूर तैल पारिभद्रावलेह भूनिंबो, कटुकी तथा

क्रिमिशार्दुलरस सोमवल्ली–विडग, पर्णवीज त्रिवृन्मूल विचुमर्दो–हरीतकी–माषमात्रा

क्रिमिशार्दुलरस–सोमवल्ली–विडग च भूनिम्बो कटुकी तथा
पर्णवीज त्रिवृन्मूल विचुमर्दो हरीतकी। माषमात्रा

कीटारिरस– शुद्धसूत इन्द्रयवश्चाजमोदा मन शिला।
पलाशवीज गंध च–देवदाली द्रवेर्दिनम्॥
सितायुक्त . ॥

कीटमर्दरस– शुद्धसूत शुद्धगध अजमोदा विडगकम्
विषमुष्टि ब्रह्मदण्डी–यथाक्रम गुणोत्तरम्
निष्कमात्रा–मुस्ताक्वाथ अनुपान

क्रिमिघातिनी गुटिका–शसिलेखा निशा कृष्णा कम्पिल्लो गिरिमृत्तिका।
त्रिवृन्मूलं–शिवावीज–पलाशस्य सम समम्॥ = ४ गुजा

रसौषधियो का कार्य—रसौषधियो मे क्रिमिघ्न–क्रिमि प्रकृति विघातकर क्रिमि उद्वेजन यह सब द्रव्य मिले हुवे है और पारद के साथ मिलने से इनकी शक्ति और भी वढ जाती है और क्रिमिघ्न क्रिया वढ जाती है। अत यह अल्प मात्रा मे रहने पर भी तीव्र कार्य करती है। इनकी जितनी मात्रा अर्थात् २ रत्ती लिखी है इतना न होकर १ माशे तक होना चाहिए तो इनका प्रभाव होता है। अल्प मात्रा मे अधिक दिन दवा देने पर प्रभाव मिलता है।

. समाप्त :

अष्टांग-संग्रह (सूत्रस्थान)—सर्वाङ्ग-सुन्दर-व्याख्या-सहित ।
व्याख्याकार—**वैद्य प० लालचन्द्र शास्त्री ।**

श्रीमद्वाग्भट्टाचार्य विरचित 'अष्टांग-संग्रह' आयुर्वेद के प्राचीन संहिताओं में सर्वोत्कृष्ट और प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें सूत्रस्थान बहुत महत्वपूर्ण है, इसीलिये सूत्रस्थानेतु वाग्भट यह सदुक्ति वैद्य विद्वानों के बीच प्रचलित है। सूत्रस्थान में कुल ४० अध्याय हैं। इन अध्यायों में जो विषय प्रतिपादित हुए हैं, वे काय-चिकित्सकों की जानकारी के लिए अत्यावश्यक एवं उपयोगी हैं। पृष्ठसंख्या—७७०, मूल्य १२) रु ।

आरोग्य प्रकाश (पन्द्रहवाँ संशोधित संस्करण)—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संस्थापक एवं प्रधान संचालक **वैद्यराज प० रामनारायण शर्मा, वैद्यशास्त्री** ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य समय पर हजारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्द्ध के विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहनेवाला व्यक्ति भी बिना दवा के नीरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में शरीर में पैदा होनेवाले सभी रोगों के कारण, निदान, रोग-लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि पर बड़ी ही सरल भाषा में सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है जिसको विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे, दोनों समान रूप से पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ४८८, मूल्य ४) रु ।

आरोग्य प्रकाश (मराठी संस्करण)—**श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा लि के प्रबन्ध निर्देशक वैद्य प रामनारायण शर्मा** द्वारा लिखित प्रसिद्ध ग्रन्थ रत्न का महाराष्ट्र की जनता भी लाभ ले सके इस उद्देश्य से भवन ने इस ग्रन्थ का मराठी संस्करण छपवाकर प्रस्तुत किया है। यह मराठी संस्करण भी हिन्दी संस्करण की भाँति सचित्र है। पृष्ठ संख्या ५०४, मूल्य ४) रु ।

आयुर्वेदीय क्रिया-शारीर—(सचित्र, रायल अठपेजी,)

लेखक **वैद्य रणजितराय देसाई, वाइस-प्रिन्सिपल, आयुर्वेद-महाविद्यालय, सूरत ।**

आयुर्वेदीय महाविद्यालयों के पाठ्य-पुस्तक के रूप में यह स्वीकृत हो चुका है। इसमें ८६ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के सप्तधातुओं के कार्य, वात-पित्त, कफ की प्राकृत वैकृत स्वरूप कार्य और उनका स्थानसंश्रय गति-प्रसार का प्राचीन-अर्वाचीन मतों के साथ सुरुचि पूर्ण विवेचन है। इसे पढ़ लेने के बाद आयुर्वेद के विद्यार्थियों को 'हैलिवर्टन फिजिओलॉजी' खरीदने की जरूरत नहीं रह जाती। पृष्ठ संख्या ८७४, मूल्य १४) रु ।

आयुर्वेद सार संग्रह (सप्तम संस्करण)—राष्ट्रभाषा में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की बहुत कमी थी, जिसमें रोग-विचार के साथ-साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझाकर सरल भाषा में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त इसमें औषध-निर्माण विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोग-विधि तथा पथ्यापथ्य के साथ सभी वैद्योपयोगी शास्त्रों का सविस्तार वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। रस-रसायन, धातुओं के शोधन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिये गये हैं, जिनके देखने से औषध-निर्माताओं को काफी सुविधा होगी। पृष्ठ संख्या ७८०, मूल्य ९) रु ।

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान (पूर्वार्द्ध)—लेखक **आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई**। इस ग्रंथ का अध्ययन कर लेने के बाद निदान-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धान्त हस्तामलकवत् प्रतिभासित हो जाते हैं। पृष्ठ सख्या १२८, मूल्य २)६०।

आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्द्ध)—लेखक **आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य**। यह ग्रन्थ उपर्युक्त ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध है। इसमें ज्वर, महास्रोतगत रोग, उरोगत रोग, रक्तपित्त रोग, पाण्डु रोग, शोथ, व्रण, विसर्प, वृद्धि भग्ननिदान, गलगण्ड, गण्डमाला, कुष्ठ आदि १५ अध्याय हैं। पृष्ठ सख्या २७४, मूल्य ३)२५।

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान—लेखक **वैद्य रणजितराय देसाई**। आयुर्वेदीय 'पदार्थ-विज्ञान' अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयो का आधारभूत है। अत इसका अध्ययन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विषद विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। पृष्ठ सख्या २८८, मूल्य ६)७५ रु।

आयुर्वेदीय हितोपदेश (द्वितीय सस्करण)—लेखक **वैद्य रणजितराय देसाई**। आयुर्वेद के रहस्य-बोधन के लिए सस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। प्राय आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम की प्रारम्भिक परीक्षाओं मे सस्कृत का अध्ययन-अध्यापन सस्कृत-साहित्य के पाठ्य ग्रन्थ-हितोपदेश, पचतन्त्र प्रभृति आयुर्वेदेतर विषयो के रूप मे होता है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर आयुर्वेदीय अध्ययन-अध्यापन के कार्य मे दक्ष रणजितराय ने **'आयुर्वेदीय हितोपदेश'** नाम की इस पुस्तक का प्रणयन किया है। पृष्ठ सख्या २८८, मूल्य ३)५० रु।

उपचार पद्धति (पचम संस्करण)—सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकडो रुपये प्रतिवर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हे उपचार ओर पथ्य का साधारण ज्ञान भी हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रख कर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। पृष्ठ सख्या १०८, मूल्य ०)६५ पै।

किशोर-रक्षा और ब्रह्मचर्य—किशोर बालको और तरुणो को कुटेव-जन्य व्याधियो से बचाने का इस पुस्तक मे सफल प्रयास किया गया है। पृष्ठ १०८, मूल्य ०)७० पै।

त्रिदोष-तत्त्व-विमर्श (द्वितीय सस्करण)—लेखक **आयुर्वेद बृहस्पति वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य**। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत् किया गया है। विद्वान् लेखक ने त्रिदोषतत्त्व के विभिन्न रूपो का भी वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। पृष्ठ २५२; मूल्य ३) रु।

द्रव्यगुण विज्ञानम् पूर्वार्ध (तीसरा सस्करण)—लेखक : **आयुर्वेद-मार्त्तण्ड, वैद्यवाचस्पति वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई**। स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है। पृष्ठ ३८०, मूल्य ४)७५ रु।

निदान-चिकित्सा-हस्तामलक (प्रथम खण्ड)—लेखक **वैद्य रणजितराय देसाई**। विद्यार्थियो और अध्यापको के लिए यह पुस्तक परमोपयोगी है। पृष्ठ ६५९, मूल्य ६) रु।

पदार्थ-विज्ञान—(देशभर की **आयुर्वेदीय सस्थाओ एव परीक्षासमितियो के पाठ्यक्रम में स्वीकृत**) लेखक **आयुर्वेद-बृहस्पति पं रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य**। पृष्ठ २६२, मूल्य ५) रु।

पारिभाष्य शब्दार्थ शारीरम्—सम्पादक—**आयुर्वेदाचार्य प दामोदर शर्मा, गौड**। भूमिका लेखक **आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी**। यह ग्रन्थ आयुर्वेद के अध्ययन अध्यापन के काय मे लगे लोगो के लिए परम-उपयोगी है। पृष्ठ २१२, मूल्य ४)५०।

वनौषधि शतक—लेखक **प्राणाचार्य वैद्य प दुर्गाप्रसाद शर्मा**। इस ग्रन्थ मे सौ वनौषधियो का विशद परिचय रगीन चित्रो के साथ प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक आयुर्वेद के

विद्वानो, छात्रो, चिकित्सको एव आयुर्वेद से प्रेम रखनेवाले साधारण जनो के लिए परमोपयोगी है। पृष्ठ २०८, मूल्य ५) रु ।

मानस-रोग-विज्ञान—इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक स्वर्गीय डॉ० बालकृष्ण अमरजी पाठक। अग्रेजी भाषा के ज्ञाताग्रो का कहना है कि मानस-शास्त्र जैसा अग्रेजी मे है, वैसा अन्यत्र नही है। किन्तु इस पुस्तक के अवलोकन से उनके भ्रम का निवारण होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। पृष्ठ २५१, मूल्य ५)७५ पै ।

मोटापन कम करने का उपाय—लेखक : श्री सन्त प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी। ग्रन्थ परम उपयोगी एव मननीय है। पृष्ठ १३८, मूल्य २) रु ।

यूनानी चिकित्सा-सार (द्वितीय सस्करण)—लेखक हकीम डॉ० दलजीतसिंह। यह सुविदित है कि यूनानी दवा के नुस्खे बहुत सस्ते तथा आशुफलदायक साबित होते हैं। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक मे ऐसे अनेक योगो का उल्लेख कर पुस्तक की उपयोगिता अत्यधिक बढा दी है। पृष्ठ ४३८, मूल्य ४)७५ ।

यूनानी सिद्धयोग सग्रह (तृतीय सस्करण)—यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्व सभी जानते है। इसके नुस्खे, आयुर्वेदीय नुस्खो की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करने वाले तथा सस्ते होते हैं। पृष्ठ २२३, मूल्य ३) रु ।

यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश (लेखक डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा, एम ए एम एस, आर एम पी भिषक्रत्न) विद्वान् लेखक ने प्राचीन व आधुनिक लेखको के पूर्वाग्रहो से हटकर स्वतन्त्र शैली द्वारा वैज्ञानिक एव सरल ढग से इस विषय को समझाने का पूर्ण प्रयास किया है। यह ग्रन्थ युवक एव युवतियो के "ज्ञान" पर निश्चित ही "नया प्रकाश" डालनेवाला साबित होगा, साथ ही अभिभावको के लिए भी मननीय होगा। पृ २०५, मूल्य ३) रु ।

रस भस्म सेवन विधि (हिन्दी)—भवन द्वारा निर्मित रस, भस्म, लौह, मण्डूर, वटी, पर्पटी एव गुग्गुलु का सेवन करने की विधि इस छोटी सी किन्तु अतीव उपयोगी पुस्तक मे बहुत ही सरल भाषा मे समझाई गई है। सेवन विधि के अलावा औषधि का गुण पथ्य आदि भी दिये गये है। पृष्ठ २१०, मूल्य ०)८० पै ।

रस भस्म सेवन विधि (मराठी)—उक्त हिन्दी सस्करण का ही मराठी अनुवाद बहुत ही सरल मराठी भाषा मे किया गया है। पृष्ठ २००, मूल्य ०)८० पै

शार्ङ्गधर-सहिता—टीकाकार आचार्य प राधाकृष्ण पराशर। शार्ङ्गधर-सहिता की अनेक टीकाओ के बावजूद इस टीका मे पाठको को आयुर्वेद का रहस्य नये ढग से समझाकर लिखा गया है। पृष्ठ ६०२, ६)२५ रु ।

सिद्धयोग-सग्रह—(पचम सस्करण) आयुर्वेदोद्धारक वैद्यवाचस्पति **श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य** के करकमलो से लिखा हुआ यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को पढने से प्रत्येक वैद्य को लाभ होगा, इसमे रत्ती भर भी सन्देह नही है। पृष्ठ १७८, मूल्य २)७५ ।

सक्रामक रोग-विज्ञान (द्वि स)-लेखक **कविराज बालकराम शुक्ल, आयुर्वेद-शास्त्राचार्य**

आज जबकि देश मे मलेरिया, कुष्ठ, यक्ष्मा, हैजा, प्लेग आदि जैसे भयकर रोगो से हजारो-लाखो मनुष्य आक्रान्त हो रहे है तो यह आवश्यक है कि सक्रामक रोगो से बचने के उपाय तथा रोग-परीक्षा, निदान-चिकित्सा आदि से भारतीय जनता को पूर्ण परिचित करा दिया जाय, जिससे ये भयकर रोग होने ही न पावे और यदि हो भी जाये, तो उनका उचित प्रतिकार किया जा सके। पृष्ठ ८१०, मूल्य १०) रु ।

★★★